मनोविज्ञान

रॉबर्ट एस० वुडवर्थ
कोलम्बिया विश्वविद्यालय
और
डोनल्ड जी० मार्क्विस
मिशिगन विश्वविद्यालय

अनुवादक
उमापति राय चन्देल

सम्पादक
गोवर्धन प्रसाद भट्ट

लखनऊ
दि अपर इंडिया पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड
१९५६

प्राक्कथन

वुडवर्थ और मा। विवसके इस अनूदित संस्करणका आधार अंग्रेजी का १९४९ का संस्करण है। चेष्टा की गयी है कि भाषा शुद्ध हो और साथ ही साथ उसमें प्रवाह भी हो।

अंग्रेजीमें जब किसी शब्द या कथन पर जोर देना होता है तो उसे झुके हुए अक्षरोंसे छाप देते हैं। हिन्दी के मोनोटाइप सिस्टम में इस प्रकार का टाइप प्राप्य नहीं; इसलिए जर्मन टाइपोग्राफ़ी के अनुसार हमने «» चिह्नकी शरण ली है। उदाहरणार्थ 'अ' पर जोर देनेके लिए उसे «अ» लिखा गया है। हिन्दीके लिए यह नया चिह्न है परन्तु हमें आशा है कि हिन्दी के पाठक शीघ्र ही इसके अभ्यस्त हो जायेंगे।

यद्यपि हम नहीं चाहते थे कि इस ग्रन्थमें अंग्रेजी लिपि कहीं भी दिखायी पड़े, किन्तु छात्रोंकी व्यावहारिक कठिनाइयोंको देखते हुए हमें अपना प्रण तोड़ना पड़ा। आशा है अंग्रेजी संस्करणके समान ही इस संस्करणका भी आदर होगा।

२५ जुलाई, १९५२
लखनऊ

—अनुवादक, सम्पादक और प्रकाशक

विषय-सूची

मनोविज्ञान का उद्देश्य और रीति

नामसे क्या? शब्दोंका अर्थ बदलता रहता है। हमारे प्राचीन विज्ञान सदियोंसे विकसित होते रहे हैं, परन्तु आज उनके नामों को देखकर उन विज्ञानोंके वर्तमान स्वरूपका स्पष्ट ज्ञान नहीं हो पाता। मनोविज्ञान भी एक प्राचीन विज्ञान है। कई शताब्दियों तक इसकी परिभाषा आत्माके विज्ञान (या दर्शन) के रूपमें की जाती थी। परन्तु आज मनोविज्ञानका जो स्वरूप है, उसका सही चित्र न तो उस शाब्दिक अर्थसे और न ही उस पुरानी परिभाषासे स्पष्ट हो पाता है। वर्तमान शताब्दीके प्रारम्भमें, जब मनोवैज्ञानिक इसको एक आधुनिक विज्ञान की रूपरेखा देनेके लिए जी तोड़ प्रयास कर रहे थे तब उनके एक नेतासे मनोविज्ञानकी परिभाषा बतानेके लिए कहा गया। उसने जो उत्तर दिया, उसे तबसे बहुधा उद्धृत किया जाता है। उसका उत्तर था--'जिसमें मनोवैज्ञानिक रुचि लें।' तात्पर्य यह है कि इस विज्ञानकी प्रकृति समझनेके लिए यह आवश्यक है कि मनोवैज्ञानिकोंके कार्यका निरीक्षण किया जाय और देखा जाय कि वे क्या प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं (१)।[१]

दूसरे महायुद्धके समय, पहिले महायुद्धसे भी अधिक, मनोवैज्ञानिकोंको राष्ट्रीय संकटको टालनेमें हाथ बटानेका अवसर मिला। उनके अर्जित ज्ञान और रीतियोंका उपयोग विभिन्न फ़ौजी समस्याओंको सुलझानेमें किया जा सकता था, और मनोवैज्ञानिकोंने युद्ध-कालमें तरह-तरहसे सहयोग किया भी। एक बड़ी समस्या जिसको युद्धके पहिले भी औद्योगिक क्षेत्रमें सुलझाने का प्रयत्न किया गया था, यह थी कि 'आदमीको उचित काम और कामको उचित आदमी मिले'। इस समस्या को कई दृष्टिकोणोंसे देखा जासकता है। आदमीकी योग्यता और रुचियोंका पता लगानेके लिए उससे कुछ प्रश्न किये जाते हैं; और कार्यका, यों कहिए कि कई कार्योंका विश्लेषण इस उद्देश्यसे किया जाता है कि मालूम होसके कि प्रत्येक कार्य के लिए कैसी योग्यता और रुचियोंका आदमी के अन्दर होना जरूरी है। परन्तु, कार्यके लिए ठीक आदमी और आदमीके लिये ठीक कार्यका चुनाव कर देने मात्रसे समस्याका हल पूरा नहीं हो जाता। आदमी को विमान-चालक या रेडियोके गुप्त संकेतोंको पकड़ने और भेजनेके या किसी अन्य नये कामका प्रशिक्षण मिलना चाहिये और मनोवैज्ञानिकों ने अच्छी-से अच्छी प्रशिक्षण पद्धतियोंको विकसित किया भी। इसके अतिरिक्त, कार्यको अच्छी तरह पूरा करनेके लिए चालकके देखने सुननेकी शक्ति या हस्त-कौशलकी बहुत अधिक आवश्यकता होती है; और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणसे सावधानी के साथ अध्ययन करके इनको बढ़ाया जा सकता है।

मनोवैज्ञानिकोंका कार्य आदमी की योग्यता को पूरी तरह परख लेने तक ही सीमित न था, वरन् उन्हें उसकी क्रोध, भय इत्यादि संवेगोंके होने पर भी अविचलित बने रहनेकी शक्ति और युद्धकी कठिन परिस्थितियोंको झेलनेकी सामर्थ्य पर भी विचार करना पड़ता था। कम्पनी, डिवीज़न या अन्य समूहों का अनुशासन व उत्साह; और अनुशासन लाना तथा फूट डालनेवाले शत्रुके प्रचार एवं प्रवादों (अफ़वाहों) का सामना करना-आदि समस्याएं कुछ मनोवैज्ञानिकोंको सुलझानेके लिए दी गयीं। कुछ अन्य मनोवैज्ञानिक कार्य भी थे, जैसे उन सैनिकों का पुनर्वास जो युद्धमें अपने अवयव खो बैठे हैं या जिनके संवेगोंमें सन्तुलन नहीं रहा; और भूतपूर्व सैनिकों को उनकी शिक्षा तथा नागरिक व्यवसायोंकी योजनाके सम्बन्ध में परामर्श, आदि (११)।

युद्धकालकी कुछ प्रमुख समस्याओंको सुलझानेमें मनोविज्ञानके जो विभिन्न उपयोग किये गये, वे निस्सन्देह शान्तिकालीन उपयोगोंसे भिन्न थे; परन्तु युद्ध और शान्ति दोनोंमें ही मनोविज्ञानका सम्बन्ध मानवीय तत्व[१] है। उद्योग, शासन अथवा शान्ति तथा समृद्धिकी वृद्धि करनेवाले एक विश्व-संगठन की स्थापनामें मानवीय तत्व होता है। उद्योग और सरकारकी मशीनरीको चलानेवाला मनुष्य होता है, उसकी इच्छा और कार्य-कुशलताके बिना ये कुछ भी नहीं करसकतीं। यदि हम शान्तिकालमें मनोवैज्ञानिकोंको अपनी प्रयोगशालाओंमें कार्य करते देखें, जहां वे व्यावहारिक प्रयोगोंकी अपेक्षा मौलिक अन्वेषणोंमें अधिक व्यस्त रहते हैं, तो हम पावेंगे कि वे यहां भी मानवीय व्यवहारकी समस्याओंको समझनेमें जुटे हुए हैं। मानवीय व्यवहार का विज्ञान---हालांकि यह अभी निर्माणात्मक स्थितिमें है तथा कतिपय अन्य विज्ञानोंकी तुलनामें बहुत कम विकसित है--मनुष्यके सामूहिक और व्यक्तिगत क्रियाकलापको सुव्यवस्थित करनेके लिए अन्तमें दृढ़ आधार प्रदान करेगा।

[१] कोष्ठकमें दी हुई संख्याका सम्बन्ध परिशिष्ट ३ से है।

[१] human factor

मनोविज्ञान व्यक्तिकी क्रियाओंका अध्ययन करता है. मानवीय व्यवहारका विज्ञान वास्तवमें कई विज्ञानोंका समूह है। एक ओर हम देखते हैं कि शरीर-शास्त्र प्राणी[1] की कार्य करनेवाली इन्द्रियों और कोशाओंकी छानबीन करता है; और दूसरी ओर हम सामाजिक शास्त्रोंको राष्ट्रों और मानव-समुदायोंका अध्ययन करते पाते हैं। ऐसी स्थितिमें एक मध्यवर्ती विज्ञानकी गुंजायश है जो मुख्यता «व्यक्ति» पर अपना ध्यान केन्द्रित करेगा। वह मध्यवर्ती विज्ञान है मनोविज्ञान या मनःशास्त्र। मनोविज्ञान गर्भाधानसे लेकर शैशव, बाल्यावस्था और किशोरावस्थासे वयस्कता तक तथा उससे भी आगे बुढ़ापे तक—सम्पूर्ण जीवन कालमें व्यक्तिकी क्रियाओं का अध्ययन करता है। अपने इस जीवन-इतिहासके दौरानमें वह सदा एक ही व्यक्ति रहता है और कई परिवर्तनोंके साथ-साथ उसके व्यवहारोंमें एक प्रकारकी अविच्छिन्नता रहती है। मनोविज्ञान बालक और वयस्क, साधारण[2] और असाधारण[3], मनुष्य और पशुकी तुलना करता है। वह व्यक्तिगत भेदोंमें रुचि लेता है और यथासम्भव इससे भी अधिक रुचि क्रियाओंके उन सामान्य नियमोंमें लेता है जो अत्यन्त विषमता रखनेवाले व्यक्तियों पर भी समान रूप से लागू होते हैं—उदाहरणके लिये, सीखने, सोचने और संवेगके नियमोंको ले सकते हैं। इस प्रकार मनोविज्ञान की यह परिभाषा दी जासकती है कि «मनोविज्ञान व्यक्तिकी क्रियाओंका विज्ञान है»।

यहां पर 'क्रिया' शब्दका प्रयोग बहुत विस्तृत अर्थमें किया गया है। इसमें न केवल चलना और बोलना जैसी गत्यात्मक क्रियाएं[4] सम्मिलित हैं, वरन् देखना, सुनना, स्मरण करना और सोचना जैसी ज्ञानात्मक क्रियाएं, हँसना, चिल्लाना, प्रसन्नता जैसी संवेगात्मक क्रियाएं, तथा प्रसन्न और उदास होना भी शामिल हैं। ये अन्तिम क्रियाएं ऊपरी तौरसे निष्क्रिय[5] जान पड़ेंगी, फिर भी ये क्रियाएं या चेष्टाएं ही हैं क्योंकि ये प्राणी के जीवन पर निर्भर करती हैं। जीवनकी किसी भी अभिव्यक्ति को क्रिया कह सकते हैं। जब कोई आदमी खेल देखता या संगीत सुनता होता है तब वह चाहे स्वयंको जितना निश्चेष्ट दिखाई दे, पर वह वास्तवमें एक क्रिया ही कर रहा होता है। पूर्णतया निश्चेष्ट हो जानेका तो एक ही रास्ता है—मर जाना।

अन्य विज्ञानोंकी दृष्टिमें मानवीय क्रियाएं. पूरी तरह तो नहीं, परन्तु काफ़ी हद तक मनोविज्ञानका सम्बन्ध उन चेष्टाओं या क्रियाओंसे है जिन्हें हम साधारणतया 'मानसिक' कहते हैं। इनमें सीखना, स्मरण करना, सोचना, योजना बनाना, निरीक्षण करना, इच्छा करना, प्रेम करना और घृणा करना आदि क्रियाएं आजाती हैं। कभी-कभी इनको ज्ञान, वेदना और कर्म नामक प्रमुख शीर्षकोंके अन्तर्गत श्रेणीबद्ध किया जाता है। परन्तु प्रत्येक मानसिक व्यापार साथ ही शारीरिक व्यापार भी है। इन सभी कार्योंमें मस्तिष्क सक्रिय रहता है और सामान्यतया मांस-पेशियां तथा ज्ञानेन्द्रियां इसमें भाग लेती हैं। ये अंग किस प्रकार कार्य करते हैं इसकी खोज करना शरीर-शास्त्रका विषय है। शरीर-शास्त्र शरीरको वास्तविक अथवा काल्पनिक रूपमें छोटे-छोटे टुकड़ोंमें विभाजित करके यह देखनेकी चेष्टा करता है कि प्रत्येक अंग पूरे शरीरको जीवित रखनेमें क्या काम करता है। वह यह जानना चाहता है कि किसी वस्तुको देखते समय आंखके भीतर तथा बोलते समय गले और मुँह के अन्दर क्या हरकतें होती हैं। वह यह जानना चाहता है कि किसी वस्तुको अंगुलियां जब पकड़ती हैं तब मांस-पेशियोंकी किस क्रियाके कारण यह सम्भव हो पाता है। किस प्रकार मानव शरीरका अत्यन्त जटिल अंग—मस्तिष्क—व्यक्ति की अनेक चेष्टाओंमें एकता लाता है और उसे इस क़ाबिल बनाता है कि वह परिस्थितियों का दृढ़तापूर्वक मुक़ाबला कर सके?—यह जानना भी शरीर शास्त्र का विषय है।

प्रश्न उठता है, यदि हम मानवीय व्यवहारोंको समझना चाहें, तो क्या शरीर-शास्त्र हमें सारी ज्ञातव्य बातें बता सकता है? यदि व्यक्तिकी चेष्टाओंका विश्लेषण उसके अंगोंकी चेष्टाओं में होसकता है, तो हमें अलगसे अविभक्त व्यक्तिका अध्ययन क्यों करना चाहिए? इसका उत्तर है कि जो कुछ हम जानना चाहते हैं, शरीर-शास्त्र उसका एक अंश ही बता पाता है। व्यक्ति वस्तुतः एक इकाई है। व्यक्ति ही प्रेम और घृणा करता है, सफल या असफल होता है। उसको कई कार्य करने होते हैं, कई समस्याएं सुलझानी होती हैं। वह दूसरे लोगों और वस्तुओंसे न्यूनाधिक प्रभावपूर्ण ढंगसे तथा प्रसन्नतापूर्वक सम्पर्क स्थापित करता है। सम्पूर्ण इकाई के रूपमें व्यक्ति और उसके चारों ओरके संसारके मध्य निरन्तर क्रिया-प्रतिक्रिया होती रहती है; इसी प्रतिक्रियाकी वैज्ञानिक छानबीन होनी चाहिए। मनोविज्ञान परिवेशके सम्पर्कमें होनेवाली व्यक्ति की चेष्टाओंका अध्ययन करता है।

अधिकांश समयमें, व्यक्ति अन्य व्यक्तियोंके साथ प्रतिक्रिया करता रहता है और सामूहिक चेष्टाओंमें भाग लेता है। समूह को एक इकाई मानकर उसका भी वर्णन किया जासकता है जैसाकि समाज-शास्त्र करता है; या व्यक्तिको इकाई मानकर उसके व्यवहारोंको दूसरे व्यक्तियोंके साथ तुलना करके समझा जासकता है; अथवा व्यक्तिकी चेष्टाओंका शरीर-शास्त्रकी दृष्टिसे विश्लेषण किया जासकता है। उदाहरणार्थ, फ़ुटबॉल के किसी मैचका वर्णन अलग-अलग खिलाड़ियोंका उल्लेख किये बिना भी दो दलोंके संघर्षके रूपमें किया जासकता है।

[1] organism [2] normal [3] abnormal [4] motor activities [5] passive

टीम 'क' गेंदको पाकर इस तरह मोर्चाबन्दी करती है कि गेंद कुछ गज आगे बढ़ जाती है, परन्तु इसके बाद जो खुलकर खेल होता है, उसमें वह पिछड़ जाती है। इसके बाद टीम 'क' गेंदको मारने की कोशिश करती है, परन्तु तभी टीम 'ख' बीचमें पड़कर गेंदको छीन ले जाती है। इसी प्रकार खेल चलता रहता है। इस मैचका वर्णन व्यक्तिगत खिलाड़ियोंकी दृष्टिसे भी किया जाता है। उस दशामें पूरी बात समझनेके लिए बताना पड़ेगा कि प्रत्येक खिलाड़ीने क्या सुना, क्या अनुभव किया, क्या करने का उसने प्रयत्न किया, किन रुकावटोंका उसने सामना किया और हरेक खेलमें उसने कहाँ तक सफलता प्राप्तकी। परन्तु उससे कहानी बहुत जटिल हो जायगी। कहनेको उसी मैचका वर्णन शरीर-शास्त्रकी शब्दावलीमें भी किया जासकता है, क्योंकि यह तो निश्चित ही है कि खेलके दौरानमें हर खिलाड़ीकी मांस-पेशियां, फेफड़े, दिल और दिमाग सक्रिय रहते हैं। अगर यह शारीरिक वर्णन पूर्ण हो तो समाचार-पत्रोंके रविवासरीय संस्करणके कॉलमोंको भरनेके लिए यह महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करेगा, किन्तु जो पाठक खेलको समझनेकी आशा लेकर इस वर्णनको पढ़ेगा उसे निराश होना पड़ेगा।

इस प्रकार हम मानवीय चेष्टाका शरीर-शास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक और समाज-शास्त्रीय चित्र प्राप्त करसकते हैं; इनमें से हरेक चित्र सच्चा और महत्वपूर्ण होगा। ये एकही देशके अनेक मानचित्रोंके सदृश हैं जो विभिन्न पैमानोंसे खींचे गये हैं। एक मानचित्र विस्तारमें बातें बताता है और दूसरा देशकी साधारण बनावटका अच्छा ज्ञान कराता है। मनुष्यके जीवनका चित्र विभिन्न पैमानोंसे प्रस्तुत किया जा सकता है—सामाजिक सम्बन्धों या शारीरिक अवयवोंके व्यापारोंकी दृष्टिसे उस पर विचार किया जासकता है। तथापि, मनोविज्ञान एक बीचका पैमाना इस्तेमाल करता है, ताकि व्यक्तिके व्यापारों और सम्बन्धोंको समझा जासके।

मनोविज्ञान में वैज्ञानिक पद्धति

अपने लम्बे इतिहासमें आरम्भ से लेकर उन्नीसवीं सदीके मध्य तक मनोविज्ञानको अनेक सुयोग्य विचारकोंने समृद्ध किया, परन्तु ये विचारक तथ्योंका सावधानीसे निरीक्षण करनेकी जरूरत नहीं समझते थे। वे अपने पिछले अनुभवोंसे प्राप्त की हुई सामान्य धारणाओंको ही पर्याप्त समझते थे। आजके कई लोगोंकी तरह वे भी यह मानते थे कि लोगोंको उनके जीवन भर देखनेके बाद उन्हें मनोविज्ञानका अच्छा ज्ञान हो जाना चाहिए, कमसे कम सभी आवश्यक तथ्य तो उन्हें मालूम हो ही जाने चाहिएं। परन्तु जब वे आपसमें मनोविज्ञान की समस्याओं पर बातचीत करते थे तब बहुधा उनमें मतभेद दिखाई देता था और विवाद-ग्रस्त प्रश्नोंका हल ढूंढनेका कोई रास्ता उन्हें न सूझता था। इससे यह स्पष्ट हो गया कि यदि मनोविज्ञान, अन्य विज्ञानोंकी भांति ठोस प्रगति करना चाहता है, तो उसे अधिक तथ्योंका संग्रह करना चाहिए(६,७)।

एक समय ऐसा था जब सुनी-सुनाई कहानियों पर विश्वास किया जाता था। ठोस तथ्योंकी आवश्यकताको उस समय महसूस तो किया जाता था, परन्तु इस दिशामें कोई व्यवस्थित छानबीन नहीं की जाती थी। कभी-कभी तो घटनाओंका वर्णन जैसा हुआ है उसका सही लेखा होता था परन्तु कभी-कभी प्रथम तो तथ्योंका निरीक्षण ही गलत होता था, दूसरे कालान्तरमें तथ्य भुलाये जाचुके होते थे या स्मृतिमें तोड़े-मरोड़े जाचुके होते थे। वैज्ञानिक अपनी निरीक्षण-शक्तिको प्रखर करनेके लिए औजारों और यंत्रोंकी सहायता लेना आवश्यक समझते हैं। इसके अतिरिक्त वे कुछ निश्चित प्रश्न तैयार करते हैं जिनका उत्तर सावधानीके साथ निरीक्षणके द्वारा प्राप्त करना होता है। वे यह भी आवश्यक समझते हैं कि निरीक्षणके साथ ही तथ्योंको लिख भी लिया जाय, स्मृति पर भरोसा न किया जाय।

किसी भी विवादग्रस्त प्रश्नके बारेमें तथ्य क्या है यह जाननेके लिए यदि प्रचलित कहानियों तथा पहिलेके साधारण अनुभव पर आधारित धारणाओं पर निर्भर रहा जाय तो डर है कि इससे वस्तुस्थिति का अधूरा या गलत ज्ञान ही हो पायेगा। कोई आदमी आपसे कहेगा कि वह अपने निजी अनुभवसे जानता है कि दुर्भाग्यपूर्ण घटनाएं महीनेकी १३ वीं तारीखको ही घटती हैं, क्योंकि इस निर्णय पर पहुँचनेके लिए उसने अपने तथा दूसरोंके जीवन की घटनाओंको खूब निरीक्षण किया है तथा इस बात की सच्चाईका उसे पूरा विश्वास है। किन्तु विचारणीय यह है कि क्या उपर्युक्त निर्णय पर पहुँचनेके पूर्व उसने केवल ऐसे ही उदाहरणों पर ध्यान दिया है जिनमें दुर्भाग्यपूर्ण घटनायें १३वीं तारीखको घटी हैं या ऐसे उदाहरणों पर भी जिनमें दुर्भाग्यपूर्ण घटनायें अन्य तारीखोंमें और १३वीं तारीखमें सौभाग्यपूर्ण घटनायें घटी हैं? यदि कोई आदमी इस बात का वैज्ञानिक अध्ययन करना चाहे, तो वह एक डायरी में नित्य-प्रति अपने सौभाग्य या दुर्भाग्यकी घटनाएं लिखता जायगा—वह ध्यान रखेगा कि इस छान-बीनके दौरानमें अच्छे और बुरे भाग्यका एक ही माप-दंड वह रखे—काफ़ी समय बाद वह लिखे हुए तथ्यों पर विचार करके किसी निश्चित नतीजे पर पहुँचेगा। इस प्रकार स्मृतिकी भूल, घटनाओंके एकांगी चुनावकी भूल और बहुत कम घटनाओं पर ध्यान देनेकी त्रुटिका निराकरण हो जायगा।

प्रयोग-विधि. अन्तमें मनोवैज्ञानिकों ने भौतिक-शास्त्र, रसायन-शास्त्र और शरीर-शास्त्रके दिखाये मार्ग पर चलने का निर्णय किया, ताकि मनोविज्ञानको एक प्रयोगात्मक

विज्ञानका रूप दिया जासके। जब कभी किसी प्रक्रिया या चेष्टाका अध्ययन करना हो तब उससे सम्बन्धित तथ्योंकी जानकारीके लिए प्रयोग ही आदर्श साधन है।

प्रयोगकी परिभाषा कभी-कभी *यह की जाती है: प्रयोग* 'प्रकृतिसे सवाल पूछना' है। सफल प्रयोग उसीको कहेंगे जो प्रकृतिसे स्पष्ट उत्तर प्राप्त करसके। प्रयोगकर्ता प्रकृतिके पास अपना प्रश्न लेकर जाता है, उसकी चतुराई इस बातमें है कि वह प्रकृतिसे इस प्रकार प्रश्न पूछे कि उसे उत्तर मिल जाय। इस 'प्रकृति' शब्दसे क्या तात्पर्य है? हम प्रायः कहते हैं कि प्रकृति 'समरूप' है। इसका अर्थ यह है कि *समान दशाओंमें समान बातें घटित होंगी, समान परिणाम प्राप्त* होंगे। मनोवैज्ञानिक प्रयोगोंमें यह बात मान ली जाती है कि मानवीय व्यवहार प्रकृतिके तंत्र[१] का एक अंग है; एकसी दशाओंमें मनुष्य एकसा व्यवहार करेगा।

प्रकृतिसे प्रश्न पूछनेका मतलब है, चीजोंको किसी जाने-बूझे क्रममें व्यवस्थित करना और तब यह देखना कि इसका नतीजा क्या होता है। कभी-कभी प्रारम्भिक पड़ताल[२] में बहुत *सामान्य-सा प्रश्न पूछा जाता है* जिसका लक्ष्य केवल यह जानना होता है कि इन सुपरिचित दशाओंमें क्या घटित होता है? वांछित परिस्थितियोंको प्राप्त करने अथवा निरीक्षणमें सहायता पहुँचानेके लिए प्रायः यंत्रों[३] का भी उपयोग किया जाता है।

आइये, एक उदाहरणसे इस बातको समझनेका प्रयत्न करें। यह जानते हुए कि विमान-चालक या गुब्बारेके साथ उड़नेवाला व्यक्ति एक निर्दिष्ट ऊँचाईमें पाई जानेवाली वायुमंडलकी दशाओंका लेखा तैयार करते समय अपना विवेक खोसकता है और यहां तक कि अत्यधिक ऊंचाई पर पहुँच कर अचेत भी हो जासकता है, प्रयोगकर्ता एक प्रारम्भिक पड़ताल यह देखनेके लिए करता है कि इन दशाओंमें क्या होता है। वह किसी विमानमें बैठकर काफ़ी ऊंचाई पर जासकता है और वहां पर अपनी श्वास, हृदय-गति, रक्तचाप, दृष्टि, सुनना, मांस-पेशियोंकी शक्ति और विभिन्न ऊँचाइयों पर मनोवैज्ञानिक परीक्षणोंका लेखा तैयार करसकता है। (इस सीधे-सादे प्रयोगमें एक कठिनाई अवश्य है। सम्भवतः प्रयोगकर्ता स्वयं ऊँचाईके कारण पड़नेवाले-प्रभावोंसे अछूता नहीं रह पाता, फलतः निरीक्षकके रूपमें वह अपनी कुशलता खो देता है। परन्तु आगे चलकर हम देखेंगे कि इस कठिनाईको हल करने के भी उपाय हैं।)

प्रारम्भिक पड़तालमें कुछ ऐसे खास सवाल उठ सकते हैं। जिनके सम्बन्धमें तथ्योंसे पूर्णतया परिचित होना आवश्यक हो जाता है। उदाहरणार्थ, कितनी ऊँचाई पर पहिला लक्षण दिखाई पड़ता है? इस एक प्रश्नको हल करने के लिए पूरे साज-सामान और सतर्कताके साथ नया प्रयोग किया जाता है। यह पता चला है कि १२,००० फ़ीटकी ऊंचाई पर पहुँचने पर श्वासकी गति स्पष्टतया तीव्र हो जाती है और १४,००० फ़ीटकी ऊंचाई पर मांस-पेशियोंमें शिथिलता तथा सिर-दर्द के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं। पूरा विवरण जाननेके पहिले कई महत्वपूर्ण प्रश्नोंका उत्तर खोजना होगा, और इनमें से कुछ प्रश्नोंका उत्तर देना तो बहुत कठिन हो सकता है। उदाहरणके लिए, यह किस मनोवैज्ञानिक परीक्षणसे जाना जासकता है कि विमान-चालक अपनी निर्णय-शक्ति खोता जा रहा है, ताकि उसे समय रहते चेतावनी दी जासके? ऐसे प्रश्नका ठीक-ठीक उत्तर पानेके पूर्व हमको अनेक प्रयोग करने पड़ेंगे।

«दशाओंका विश्लेषण». ऊपर जिस तरहके प्रश्न सुझाये गये हैं, उनसे भी तीखे प्रश्नोंका उत्तर प्रयोग-विधिसे मिल जाता है। हम कहचुके हैं कि यदि दशाएं समान रहीं तो परिणाम भी समान ही होंगे। लेकिन कुछ दशाएँ महत्वपूर्ण नहीं भी हो सकती हैं। महीनेकी कोई तारीख, चाहे वह १३वीं हो या कोई दूसरी, एक ऐसी दशा है जिससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। अगर मौसम एक सा हो, विमान भी वही और उसी दशा में हो तथा विमानको उसी ढंगपर चलाया जाय, तो वह महीने की किसी भी तारीखको उतना ही उड़ेगा। परन्तु कुछ दशाओं के सम्बन्धमें हम पहिलेसे यह निश्चय नहीं करसकते कि उनकी उपस्थितिसे कोई परिवर्तन होगा या नहीं।

हवामें ऊपर जाने पर कई दशाएं तो तुरन्त बदल जाती हैं। *हम इस उलझनको दूर करके यह जानना चाहते हैं कि ऊँचाई* का प्रभाव उत्पन्न करनेमें कौन-सी दशाएं महत्वपूर्ण हैं।

१. कोई-कोई व्यक्ति तो यह कल्पना-मात्रसे कि वे हवामें उड़ रहे हैं, भयभीत हो जाते हैं और सुधबुध खो बैठते हैं। परन्तु इस तथ्यको हम अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण मानकर छोड़ सकते हैं, क्योंकि बहुत ऊंचे पहाड़ों पर ऊंचाईके प्रभावसे तत्वतः यही लक्षण प्रकट होते हैं, हालांकि ऊपरसे गिरनेका *कोई खतरा नहीं होता।*

२. विमानकी गतिसे जी-मचलाहट[४] की दशा, जैसी कि समुद्री यात्रामें होती है, होसकती है, किन्तु ऊंचाई पर हवा पतली होती है, इसलिए यदि विमान निश्चल भी रहे, तो भी ऊंचाईका प्रभाव पड़े बिना न रहेगा।

३. हम बहुत ऊंचाई पर पड़नेवाले जाड़ेका भी विचार कर सकते हैं, परन्तु हमें मालूम है कि कम ऊँचाई पर उसी जाड़े *का ऐसा प्रभाव नहीं पड़ा करता।*

४. जैसे-जैसे व्यक्ति ऊपर हवामें उड़ता जाता है, वायुमंडल का दबाव घटता जाता है। समुद्रतलके वायुमंडलकी अपेक्षा

[१] system [२] survey [३] apparatus [४] sea-sickness

१२,००० फ़ीट पर यह दो तिहाई रह जाता है और १८,००० फ़ीट पर आधा तथा २८,००० फ़ीट पर लगभग एक तिहाई। मनुष्य की आबादी के सामान्य धरातल पर (६,००० फ़ीट तक) रहनेपर वह करता (५, ८)।

प्रयोगोंके द्वारा यह दशा महत्त्वहीन पायी गयी है (जब तक मनुष्य बहुत ऊंचाईपर ही न हो)। इन प्रयोगोंमें से एक प्रयोग यह है: एक आदमीको इस्पातके एक कमरेमें रख दिया जाता है। कमरेकी हवा इतनी निकाल दी जाती है ताकि उसमें साधारण वायुमंडलके दबावका एक तिहाई या उससे भी कम रह जाय, परन्तु आदमीको सांस लेनेके लिए विशुद्ध ओषजन (ऑक्सीजन) का एक थैला देदिया जाता है।

आकृति १. अधिक ऊंचाइयों पर ओषजनकी न्यूनता।

५. उपर्युक्त प्रयोगसे शंका होती है कि सांस लेनेके लिए उपलब्ध ओषजनकी मात्रा का कम होना एक कारण होसकता है। किसी भी ऊंचाई पर जितनी हवा होगी, उसका २१ प्रतिशत उसमें ओषजन होगा। परन्तु अत्यधिक ऊंचाईकी न्यून वायुमें अच्छी तरह सांस लेने योग्य ओषजन बहुत कम मिलेगा। ओषजन वायुमंडलके दबावके अनुपातमें मिलता है, जैसे १२,००० फ़ीट पर साधारण परिमाणका $\frac{2}{3}$, १८,००० फ़ीट पर $\frac{1}{2}$ और २८,००० फ़ीट पर $\frac{1}{3}$। किसी आदमीको एक ऐसे कमरेमें रखिए जिसकी हवामें पाये जानेवाले तत्त्वोंको इच्छानुसार घटाया-बढ़ाया जासके। कमरेके वायुमंडलके कुल दबावमें कोई परिवर्तन किये बिना, ऊंचाई पर पहुंचनेकी नक़ल करते हुए ओषजन के परिमाणमें कमी करते जाइए। धीरे-धीरे ओषजनके स्थान पर नेत्रजन (नाइट्रोजन) भरते जाइए; ऐसा करनेपर आपको विभिन्न ऊंचाइयों पर होनेवाले परिवर्तनोंके लक्षण क्रमशः मिलते जायेंगे। इस प्रकार स्पष्ट होजायगा कि वह महत्त्वपूर्ण दशा जिसके कारण ऊंचाई पर कथित् मनोवैज्ञानिक प्रभाव उत्पन्न होते हैं ओषजनकी मात्रामें कमी होते जाना है।

६. इसके अतिरिक्त स्वयं व्यक्तिके भीतर कुछ महत्त्वकी बातें होती हैं। कुछ व्यक्ति बहुत थोड़ी ऊंचाई पर या कमरेके ओषजनमें मामूली कमी कर देने पर ही प्रभावित होजाते हैं जब कि दूसरे लोगोंके साथ ऐसा नहीं होता। यह अन्तर व्यक्तिगत दशाके कारण होता है। यदि वह १२,००० से १८,००० फ़ीट तक की ऊंचाईके पहाड़ों पर कई दिनों या सप्ताहों तक रहले, तो वह उस वायुमंडलके अनुकूल अपनेको बना लेता है, पहाड़ी रोग भी दूर हो जाता है और वह वहां भली प्रकार कार्य करसकता है, यद्यपि उतनी अच्छी तरह नहीं जितनी

ऊंचाई के प्रभावोंके सम्बन्धमें इन प्रयोगोंका उल्लेख केवल यह दिखानेके लिए किया गया है कि प्रयोग किस तरह किये जाते हैं। प्रयोगकर्ता किसी ज्ञात दशामें होनेवाले परिवर्तनोंका सावधानीसे निरीक्षण करता रहता है। वह उन दशाओं पर इसलिए नियंत्रण रखता है कि वह उन्हें अच्छी तरह समझता चले। परन्तु किसी भी परिस्थितिमें कई दशाएं होती हैं। प्रयोगकर्ताके सामने समस्या है उन दशाओंको ज्ञात करना जिनका किसी निर्दिष्ट परिणामको उत्पन्न करनेमें महत्त्व है। वह परिस्थितिके किसी ऐसे तत्त्व (प्रायोगिक परिवर्त्य) में फेर-बदल कर देता है जिसके महत्त्वपूर्ण होनेकी सम्भावना होती है और व्यक्ति की चेष्टा पर होनेवाली उसकी प्रतिक्रियाको मापता है। फिर भी, यदि इसी समय किसी दूसरे तत्त्वमें परिवर्तन होजाय, तो वह नहीं जान सकता कि लक्षित होनेवाला प्रभाव पहिले तत्त्वमें परिवर्तनके कारण उत्पन्न हुआ था। इसलिए वह सावधानीके साथ शेष सभी तत्त्वोंको स्थिर बनाये रखता है।

एक को छोड़कर, शेष सभी तत्त्व स्थिर या समान रखे जाते हैं, ताकि प्रतिक्रियामें यदि कोई भी परिवर्तन दिखाई दे तो उसका कारण प्रायोगिक परिवर्त्य निश्चित होजाय।

वैज्ञानिक यह नहीं कहते कि किसी प्रश्नका उत्तर देनेके लिए कोई प्रयोग किया जाता है। इसके बजाय, वे बहुधा *कहते हैं कि किसी «परिकल्पना[1]»* की जांच करनेके लिए प्रयोग किया जाता है। कोई परिकल्पना किसी प्रश्नका *सम्भावित उत्तर होती है और प्रयोग यह* जाननेका प्रयत्न करता है कि यह उत्तर सही है या नहीं। ऊंचाईके कारण *पड़नेवाले प्रभावोंके सम्बन्धमें एक परिकल्पना यह थी कि* अत्यधिक ऊँचाई पर वायुमंडलके दबावका कम होना ही इस *का कारण है। यदि यह परिकल्पना सही है तो प्रयोग-शाला*
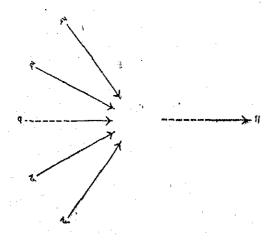
आकृति २. एक प्रयोगकी योजना। व्यक्तिकी जिस क्रियाका अध्ययन हो रहा है, उसका एक खास रूप 'प्र', अर्थात् व्यक्ति की 'प्रतिक्रिया' है। एक केन्द्र की ओर झुकने वाले तीर उन प्रभावों और दशाओंके परिचायक हैं, जो प्रतिक्रियाको प्रभावित कर सकती हैं। जिन तीरों पर 'द' *के निशान हैं, वे प्रयोगके दौरानमें* स्थिर रखे जाते हैं और जिस एक पर 'प' का निशान है, जिसे प्रायोगिक परिवर्त्य कहते हैं, उसे परिवर्तित किया जाता है और यह निरीक्षण किया जाता है कि इन बातोंका 'प्र'(प्रतिक्रिया)पर क्या प्रभाव पड़ा? इस प्रयोगके द्वारा इसी प्रश्न का उत्तर दिया जाता है।

में इस्पातके बड़े सन्दूकमें *बन्द किये हुए आदमी पर भी यह* प्रतिक्रिया दिखाई देनी चाहिए, यदि सन्दूकके वायुमंडलका दबाव काफ़ी घटा दिया *गया हो लेकिन* उस आदमीको सांस लेनेके लिए पर्याप्त ओषजन दे दिया गया हो। किन्तु जब ऐसी दशा उत्पन्न *की गयी तब प्रत्याशित प्रभाव नहीं दिखाई पड़ा।* उत्तर 'नहीं' में आया। यह परिकल्पना असत्य सिद्ध हुई। इसके बाद एक *दूसरी परिकल्पना सामने आई:* प्रतिक्रिया का कारण अत्यधिक ऊंचाई पर ओषजनकी कमी होना है। यदि ऐसी बात है तो सन्दूकके भीतरका ओषजन काफ़ी घटा देने पर किन्तु वायुमंडलका दबाव साधारण रखने पर उसमें बन्द किये हुए आदमी पर प्रभाव अवश्य पड़ना चाहिए। जब ऐसी दशा उत्पन्न की गयी तो प्रभाव पड़ा, और परिकल्पना एक सीमा तक पुष्ट हो गयी, यद्यपि वह पूर्णतः सिद्ध नहीं हुई, क्योंकि यह होसकता है कि वास्तविक कारण कोई अन्य हो जिसका *विचार न किया गया हो अथवा अन्य कोई ऐसी परिकल्पना* छूट गयी हो जिसको अभी तक प्रयोगकी कसौटी पर न उतारा *गया हो। किसी परिकल्पनाको पूर्णतः सिद्ध नहीं किया जा* सकता, परन्तु यह दिखाया जासकता है कि वह सत्य के बहुत समीप है, *क्योंकि वह अब तक ज्ञात सभी तथ्योंके अनुकूल है।*

«मनोवैज्ञानिक प्रयोग». सुविधाके लिए हम प्रयोग कर्ताके लिए 'प्र' अक्षरका उपयोग करेंगे और जिस व्यक्तिकी चेष्टाओंका निरीक्षण किया जाता है, उसे हम 'व्य' कहेंगे। कोई प्रतिक्रिया अथवा 'व्य' की चेष्टाओंका कोई पहलू निरीक्षण किया या मापा जाता है। 'प्र' यह जाननेका प्रयत्न करता है कि 'व्य' कुछ खास दशाओंमें क्या करता है, किस प्रकार व्यवहार करता है, उसकी क्या प्रतिक्रिया होती है, प्रायोगिक परिवर्त्य[2] से वह किस प्रकार प्रभावित होता है। यदि 'व्य' कोई मनुष्य हो तो वह सामान्यतया 'प्र' से कुछ «निर्देश» प्राप्त करता है, उसको कोई «कार्य» करनेके लिए दिया जाता है। साधारणतया उसको यह नहीं बताया जाता कि प्रयोगका अन्तिम उद्देश्य क्या है, परन्तु वह यह तो जानता ही है कि उसे क्या करना है। प्रयोग 'प्र' करता है, न कि 'व्य'। 'प्र' का तात्कालिक कर्तव्य यह देखना है कि प्रयोगकी दशाओं में 'व्य' किस खूबीसे अपना काम पूरा करता है।

मनोवैज्ञानिक प्रयोगमें जिन दशाओं पर नियंत्रण रखा जाता है, उनमें से कुछ तो परिवेश की दशाएं होती हैं और कुछ 'व्य' के अन्दर की। परिवेशगत अर्थात् बाह्य दशाओं पर नियंत्रण करना तो प्रयोगशालाकी टेकनीक है। उदाहरणार्थ किसी फ़िल्म को ठीक $\frac{1}{10}$ सैकेंडके लिए विगोप[3] करने (खोलने) के लिए एक अन्ध-कक्ष[4] तथा एक विशेष उपकरणकी आवश्यकता हो सकती है। परन्तु व्यक्तिगत अर्थात् 'व्य' के भीतरकी दशाओं पर 'प्र' कैसे नियंत्रण कर पायेगा? निस्सन्देह, यदि 'व्य' किसी दिन अस्वस्थ है तो वह प्रयोगसे बरी करदिया जाता है। उसकी सांवेगिक दशाओं पर पूर्ण नियंत्रण नहीं किया जा सकता, क्योंकि जिस कार्यका सम्पादन उसे करना है, उसके विषयमें वह चिन्तित या उत्तेजित हो सकता है, परन्तु प्रयोगशालामें कई बार प्रयोगका विषय बन जानेके बाद उसकी सांवेगिक दशाएं स्थिर होजाती हैं। एक बहुत बड़ी सीमा तक 'व्य' की चित्त वृत्ति 'प्र' के निर्देशों द्वारा नियंत्रित रहती है। 'व्य' निर्धारित कार्यको

[1] *hypothesis* [2] experimental variable [3] expose [4] dark room

स्वीकार करके उसे अच्छीसे अच्छी तरह पूरा करनेमें जुट जाता है। उसका प्रयत्न जो कि एक महत्वपूर्ण तत्व[1] है, एक उच्च स्तर पर प्रायः समान बना रहता है। फिर भी, कुछ कठिनाइयां उत्पन्न होसकती है।

१. यदि कार्यमें 'अ' के लिए नीरस और बोझिल होजाय तो वह आगे प्रयत्नमें ढिलाई कर देगा, इस प्रकार परिणाम गलत आयेगा।

२. यदि बाह्य दशाएं प्रतिकूल होजायें तो 'अ' और अधिक प्रयत्न करने लगेगा। यह एक मुख्य मनोवैज्ञानिक तथ्य हमारे सामने आया, किन्तु यह तथ्य बाह्य दशाके प्रकृत प्रभावको छिपानेकी चेष्टा करता है। यदि 'अ' किसी विधान-पालन स्कूलका अभ्यासी हो और कम भोजनके वायुमंडल में उसकी परीक्षा लीजाये तो 'कमाई' के साथ प्रायः उसका प्रयत्न भी बढ़ता जाता है। स्वभावतः वह यह छिपानेकी कोशिश करता है कि भोजनकी न्यूनताका उसपर कोई प्रभाव पड़ रहा है।

३. यदि 'अ' प्रयोगके उद्देश्यको जानता है या वह समझता है कि वह जानता है तो वह पक्षपातपूर्ण फल ला सकता है। शराबकी साधारण मात्रा दैनिक मस्तिष्ककी कार्य-कुशलता पर क्या प्रभाव पड़ता है, यह जाननेके लिए यदि 'अ' पर प्रयोग किया जाय और 'अ' पहिलेसे ही शराबके अवसादक[2] होनेमें विश्वास रखता हो तो यह विश्वास शराब पीनेकी अवस्थामें उसके प्रयत्नको शिथिल बना सकता है। परन्तु इसके विपरीत, यदि उसे विश्वास हो कि शराबका प्रभाव स्फूर्तिदायक होता है—कमसे कम वह ऐसी आशा करने लगे—तो शराबकी एक निश्चित मात्रा पिलाने पर वह अधिक प्रयत्न करसकता है। 'अ' के पक्षमें इस तरहका परिवर्तन लानेके लिए, 'ब' समय-समयपर थोड़ी सी नियमन-[illegible] मात्रा देता रहेगा—कोई ऐसा पेय पिलाता रहेगा जिसमें शराब तो न हो, परन्तु देखने और स्वादमें वह शराबकी तरह ही हो—ताकि 'अ' न जान सके कि उसने शराब पी है या नहीं। प्रसंगतः, इस तरहके प्रयोगोंसे मानसिक प्रक्रियाओं पर शराबके कोई वास्तविक स्फूर्तिदायक प्रभाव पड़नेका प्रमाण नहीं मिलता।

चूंकि 'अ' की आन्तरिक दशाओंको पूर्णतया नियंत्रित नहीं किया जासकता और चूंकि विभिन्न व्यक्ति एक ही परिस्थिति में भिन्न-भिन्न ढंगसे व्यवहार करते हैं, इसलिए बहुधा यह आवश्यक होजाता है कि एक बड़े पैमाने पर मनोवैज्ञानिक प्रयोग किया जाय और कई व्यक्तियोंके समूहों पर बार-बार यह प्रयोग हो। इस प्रकार जो औसत फल प्राप्त हो, उसीके आधार पर कोई निर्णय दिया जाय (२, ४)।

विकास-क्रमका निरीक्षण करनेकी रीति. मनोविज्ञानका एक आवश्यक कार्य यह भी है कि वह व्यक्तिके जन्मसे, बल्कि जन्मके भी पहिलेसे लेकर उसके वयस्क होने तक उसके मानसिक और व्यवहार-सम्बन्धी विकासका पता लगावे। इसके सम्बन्धमें कई कठिनाइयां हैं। पहिली बात तो वंशानुक्रम और परिवेशके पड़नेवाले प्रभावके सम्बन्धमें है। दूसरी बात साधारण विकासके लिए अनुकूल दशाओंका होना है। इसके अतिरिक्त उन बातोंको भी देखना होगा जिनके कारण व्यक्ति में अपराध करनेकी और पागलपन जैसी असाधारण प्रवृत्तियां उत्पन्न होजाती हैं। विभिन्न अवस्थाओंमें व्यक्तिके विकास-क्रमको मापनेके लिए और विकासकी वक्ररेखा निश्चित करनेके लिए परीक्षण और प्रयोगशालाके तरीकोंका उपयोग किया जासकता है। परन्तु विकासके सम्बन्धमें निर्णयात्मक प्रयोग करनेके लिए यह आवश्यक है कि उन हालतों पर भी नियंत्रण किया जाय जिनमें बच्चेका पालन-पोषण होता है; यहां तक कि कुछ बच्चोंको प्रतिकूल मानी हुई दशाओंमें भी रखना पड़ सकता है, ताकि यह पता चल सके कि वे दशाएं क्या सचमुच इतनी प्रतिकूल हैं कि उनकी उपेक्षा न की जासके। इस तरहके प्रयोगोंसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। परन्तु कोई भी मनोवैज्ञानिक किसी बच्चेको जान-बूझ कर प्रतिकूल परिस्थितियोंमें रखनेका अप्रिय कार्य नहीं करेगा। उदाहरण के लिए, वह अपर्याप्त भोजनका मानसिक कुप्रभाव जाननेके लिए बच्चेको भूखा रखकर उसके शारीरिक विकासको कुंठित न करेगा। ऐसा प्रयोग वह पशुओं पर करेगा, या समाजमें वह ऐसे बच्चोंको लेगा जिनको कम पोषण प्राप्त होता रहा है और वह जाननेका प्रयत्न करेगा कि क्या न्यूनपोषणके कारण उनकी मानसिक दशा पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। फिर भी पूर्ण प्रयत्नके बावजूद उसके द्वारा निकाले हुए परिणाम उतने निर्णयात्मक न होंगे जितने कि सम्यक् प्रयोगसे प्राप्त परिणाम होते।

इस तरहके प्रयोग किये बिना ही, यदि केवल बाल्यावस्था में बच्चोंके व्यवहारों पर दृष्टि रखी जाय, तो बहुत कुछ जाना जासकता है। हम इस निरीक्षण और नोट करनेके कार्य को 'केवल' शब्दका प्रयोग करके सरल बताना तो चाहते हैं, परन्तु यदि विश्वसनीय परिणाम निकालने हैं, तो यह कार्य सरलतासे कोसों दूर सिद्ध होगा। बच्चा «इतना अधिक» चंचल होता है और «इतने प्रकार» से व्यवहार करता है कि कोई भी निरीक्षक कुछ छोटे-छोटे नमूनोंको ही नोट कर सकेगा। बच्चेकी व्यवहार-सम्बन्धी बातें यद्यपि मनोरंजक होती हैं, तो भी जबतक निरीक्षकके दिमागमें निश्चित प्रश्न न हों और निरीक्षणके द्वारा वह किसी सुनिश्चित परिकल्पना

[1] factor [2] depressant

की जांच न करना चाहता हो तबतक उससे कोई बात प्रमाणित या अप्रमाणित नहीं होसकती। जब हम देखते हैं कि बच्चेके जीवनमें कोई महत्त्वपूर्ण घटना घटने वाली है जैसे वह बोलना प्रारम्भ करनेवाला है, या शीघ्र ही उसके भाई-बहिन का जन्म होनेवाला है जिसकी उपस्थितिमें घरके परिवेशसे उसे नये ढंगसे अपना समायोजन [1] करना पड़ेगा, तब हमें कुछ निश्चितसे प्रश्न बना लेने चाहिए और बच्चेके व्यवहारका निरीक्षण करके उनका उत्तर ढूंढना चाहिए। बाल-विकासके क्रमको समझनेका सारा काम बहुत विस्तृत और बहुमुखी है, किन्तु सौभाग्यसे कई वैज्ञानिक निरीक्षक इस ओर गम्भीरतापूर्वक ध्यान दे रहे हैं (६)।

व्यक्तिके इतिहासका पुनर्गठन. सच्ची विकासात्मक विधिमें निरीक्षक स्वयं यथास्थान उपस्थित रहकर सारी प्रक्रियाको देखता है। परन्तु बहुधा मनोवैज्ञानिक का कई तरहके व्यक्तियोंसे पाला पड़ता है। इनमें से कोई अलौकिक प्रतिभावाला होता है, कोई अपराधी, कोई तरह-तरहकी उलझनोंसे भरा या कोई अत्यन्त ही सुन्दर व्यक्तित्व वाला। प्रश्न है, इनमें से हर व्यक्ति जो है वह कैसे बन सका? मनोवैज्ञानिकको बाध्य होकर सच्ची विकासात्मक विधिके स्थान पर व्यक्तिके विकास-सम्बन्धी इतिहासका पुनर्गठन करना पड़ता है। इस कार्यमें वह व्यक्ति की स्मृतिका अधिकसे अधिक उपयोग तो करता ही है, साथ ही उसके सहवासियोंके संस्मरण तथा उस व्यक्तिके सम्बन्धमें उपलब्ध सारी लिखित सामग्रीका भी यथोचित उपयोग करता है। लेकिन इस विधिमें बहुत कुछ वही त्रुटियां हैं जो सुने-सुनाये क़िस्सोंके आधार मात्र पर वैज्ञानिक निष्कर्ष निकालनेकी विधिमें हैं। काफ़ी हद तक यह उन घटनाओं की स्मृति पर निर्भर करती है, जिनका कि तत्क्षण वैज्ञानिक विधिसे निरीक्षण नहीं किया गया था। फिर, स्मृति धोखा भी देसकती है। परन्तु किसी अन्य दोषहीन रीतिके अभावमें कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिए इस रीतिका अनुसरण करना ही एकमात्र उपाय रह जाता है।

अभी तक इस इतिवृत्तात्मक विधिका उपयोग अधिकतर उन्हीं व्यक्तियोंके विषयमें किया गया है जिनका व्यवहार किसी प्रकार अवांछनीय रहा है। जब किसी व्यक्तिमें कोई मानसिक विकार आ जाता है तब मनोविकृति-विशेषज्ञ किसी सामाजिक कार्यकर्ताकी सहायतासे उस व्यक्तिके वंशानुक्रम, पारिवारिक वातावरण तथा अन्य महत्त्वकी बातोंके विषयमें जानकारी प्राप्त करता है। मानसिक रोगीकी कहानी उसकी जबानी सुनी जाती है और प्रयत्न किया जाता है कि उसे प्रारम्भकी सांवेगिक उलझनोंकी ओर ले जाया जाय जो सम्भवतः उसकी आजकी परेशानियोंका कारण बनी हों। यदि कोई बालक आचरणकी गम्भीर समस्या उपस्थित करता है जैसे: चोरी, अत्यन्त उद्दंडता, घातक नीचता, लज्जालुता और पर-निर्भरता आदि, तो उसे किसी बाल-सुधार चिकित्सालयमें ले जाना चाहिए जहां अनेक बाल-विशेषज्ञ उसके इतिहासको रोग-विज्ञान, मनोविज्ञान और समाज-विज्ञानकी दृष्टिसे समझनेकी चेष्टा करेंगे। ये विशेषज्ञ बालकसे मित्रवत् व्यवहार करते हैं और उसके मनमें यह बैठानेकी कोशिश करते हैं कि वे उसपर बलपूर्वक कुछ लादना नहीं चाहते, वरन् उसको समझकर उसकी कुछ सहायता करना चाहते हैं। विशेषज्ञोंको बालक और उसके माता-पिताके सहयोगकी अपेक्षा रहती है, और उनकी पूछताछ, चतुराई और कुशलताके साथ पूरी तरहसे होनी चाहिए। वे यह मानकर चलते हैं कि बालकके जटिल आचरणके मूलमें जो कारण हैं वे या तो उस परिवेशमें हैं जिसमें वह रह रहा था, रह चुका है या वे स्वयं उसकी ही अन्दरूनी कमजोरियोंमें हैं और उनका पता लगाना चाहिये।

बाल-सुधार चिकित्सालयोंमें व्यक्तिके सत्तायपर्यन्त इतिहासके पुनर्गठनके अतिरिक्त भी बहुत कुछ किया जाता है। बच्चेके घर वालों और अध्यापकोंके सहयोगसे वहां चिकित्साकी दृष्टिसे बच्चे पर कुछ प्रयोग किये जाते हैं। इस तरहके मामलेमें कोई भी चिकित्सा एक तरहका प्रयोग ही समझी जा सकती है क्योंकि उसके सफल होनेका कोई निश्चय नहीं रहता। बच्चेके इतिहास और उसकी वर्तमान दशासे उसके गलत आचरणके कारणके विषयमें कोई परिकल्पना सूझती है; अतः चिकित्सा बच्चेके जीवनकी कतिपय परिस्थितियोंको बदलकर इस परिकल्पनाकी परीक्षा करती है। परिकल्पना यह हो सकती है कि बच्चा दुलारके कारण बिगाड़ दिया गया है, या उसकी अत्यधिक देखभालकी गयी है, या घर पर उसे प्यार नहीं मिला है, या उसकी कक्षाका मानदंड उसकी मानसिक आयुसे कम अथवा अधिक है, या उसके मूर्खतापूर्ण आचरण, बिस्तरमें पेशाब कर देना; बहुत खाना या समय-समय पर स्वभावका उग्र हो जाना दूसरोंका ध्यान आकर्षित करनेके तरीके हैं। इस प्रकारकी किसी भी परिकल्पनाके आधारपर यदि चिकित्साकी जाय, तो उसमें माता-पिता या अध्यापकोंका सहयोग मिलना आवश्यक है। यदि चिकित्सा सफल हो गयी तो कहा जायगा कि उस दृष्टान्त परिकल्पना सही निकली। परन्तु यदि परिकल्पना असफल रही, तो किसी अन्य परिकल्पनाका परीक्षण करना चाहिए (२)।

अभी तक विख्यात और सफल व्यक्तियोंके इतिवृत्त निश्चित रूपसे अप्राप्य हैं। आचरण सुधारने वाले चिकित्सालयोंका संचालन उन्हीं व्यक्तियोंके लाभके लिए किया जाता है जो किसी न किसी परेशानीमें पड़े हैं; और जबतक कोई

[1] abjustment [2] anecdotal method

पारिभाषिक पदावली बहुधा एक अनावश्यक कठिनाई पैदा करती है। परन्तु ऐसा होना नहीं चाहिए। चूंकि हम चेष्टाओं या क्रियाओंका अध्ययन करने जारहे हैं, इसलिए यह उचित है कि हम जिन पारिभाषिक पदोंका प्रयोग करें वे क्रियाएं और क्रियाविशेषण हों। इन सभी क्रियाओंके कर्ताके रूपमें हमें केवल एक संज्ञा—व्यक्ति या «शरीर[1]» की आवश्यकता होगी। जब हम शरीर-शास्त्रमें उतरते हैं तब हमें शारीरिक अंगोंके नामोंकी जरूरत पड़ती है, और जब हम बाह्य वस्तुओं के बारेमें कुछ कहते हैं तब उनके नामकी भी आवश्यकता हमें होती है। परन्तु पाठकका बहुत-सी दूसरी संज्ञाओं, चेष्टाओं के नामों और क्रिया करनेकी रीतियोंसे पाला पड़ेगा। इनमें से कुछके नाम हम यहां गिनाते हैं—बुद्धि, व्यक्तित्व, स्मृति, कल्पना, विचार, संकल्प, संवेदना, संवेग, ध्यान, प्रत्यक्ष, चेतना, व्यवहार आदि। इन संज्ञाओंमें से वस्तुतः अधिकांश क्रियाएं हैं जिनका कर्ता 'व्यक्ति' छिपा हुआ है।

यह अधिक ठीक होगा कि हम 'स्मृति' के बजाय 'स्मरण करना' या '"क्ष" स्मरण करता है' कहें; संवेदनाके बजाय हमें कहना चाहिए—'देखना', 'सुनना' आदि; और संवेगके बजाय हमें कहना चाहिए कि कोई व्यक्ति उत्सुकता, क्रोध या भयका अनुभव करता है। परन्तु अन्य विज्ञानोंकी भांति मनोविज्ञान भी अपनी क्रियाओंको संज्ञाओंमें बदल लेना सुविधाजनक समझता है। फिर होता क्या है? हम भूल जाते हैं कि हमारी संज्ञाएं केवल क्रियाओंके स्थानमें प्रयुक्त हुई हैं और हम संज्ञाओं द्वारा निर्दिष्ट «वस्तुओं»—द्रव्यों, शक्तियों, मानसिक शक्तियों—की तलाशमें परेशान हो उठते हैं; किन्तु ऐसी कोई वस्तु है नहीं। केवल व्यक्ति इन विभिन्न चेष्टाओं में लगा हुआ है।

बुद्धि, चेतना और अचेतन, दक्षता और गति जैसे संज्ञा-शब्दों को लीजिये। वस्तुतः वे क्रियाविशेषण हैं, कारण कि व्यक्ति बुद्धिपूर्वक, चेतनापूर्वक, या अचेतनापूर्वक, चतुराईसे और गतिसे कार्य करता है। अगर कभी किसी अमूर्त[2] मनोवैज्ञानिक संज्ञासे आपका सामना हो तो इसके लिए एक सुनहरा नियम याद रखिए: उसको तत्सम्बन्धी क्रिया या क्रियाविशेषणमें बदल डालिए। इस प्रकार बहुत-सी कठिनाइयों और अनावश्यक विवादसे बचा जासकता है।

इस पुस्तककी योजना. मनोविज्ञानके विविध विषयोंका कई विभिन्न क्रमोंसे वर्णन किया जासकता है। हर क्रम दूसरे क्रमोंसे बुरा न रहेगा। ऐसा इसलिए नहीं कि विभिन्न प्रक्रियाएं एक-दूसरेसे स्वतंत्र हैं, बल्कि बात ठीक इसके विपरीत है, क्योंकि ये सभी इस प्रकार अन्योन्याश्रित हैं कि यदि आप किसी एक विषयको उठाइये तो आपका मन करेगा कि इसके पहिले दूसरे विषयोंके बारेमें भी थोड़ा जान लेते तो अच्छा रहता। हम प्रारम्भ ज्ञानेन्द्रियोंसे कर सकते हैं, क्योंकि इनका उपयोग प्रायः हमारे सभी कार्योंमें होता है या इसी कारणवश हम चाहें तो स्नायु-संस्थान (नाड़ी-जाल)[3] को पहिले ले सकते हैं। हम सीखना और स्मृतिसे भी आरम्भ करसकते हैं, क्योंकि किसी भी समय हमारे विचार और क्रियाएं उन्हीं बातों पर निर्भर करती हैं जिनको हम पहिले सीख चुके होते हैं। जैसा क्रम इस पुस्तकमें रखा गया है—इसको बिना किसी विशेष कठिनाईके दूसरे क्रमसे भी सजाया जासकता है—उसके अनुसार पहिले इस साधारण प्रश्न पर ही विचार किया गया है कि 'लोगोंमें भिन्नता क्या है?' लोग अपनी योग्यताओं और व्यक्तित्वकी विशेषताओंके कारण एक-दूसरेसे भिन्न हैं। इन भिन्नताओंके कारण वंशानुक्रम और परिवेशमें ढूंढे गये हैं। इसके पश्चात् सभी व्यक्तियोंमें समान रूपसे पायी जाने वाली प्रक्रियाओं पर विचार किया गया है। ये प्रक्रियाएं हैं—व्यक्तियोंकी परिवेशके साथ प्रतिक्रिया, उनका विकास, उनकी प्रेरक प्रवृत्तियां और संवेग, तथा निरीक्षण, सीखने और सोचनेकी उनकी शक्तियां। कई बार प्रसंगवश एक प्रकरण की बातोंकी स्मृति दूसरे प्रकरणमें दिलायी गयी है। यह इस उद्देश्यसे कि छात्र व्यक्तिकी चेष्टाओंका समग्र रूप समझनेके लिए सभी प्रकरणोंकी सम्बद्धता अनुभव कर सके।

सारांश

१. मनोविज्ञान व्यक्तिके परिवेशसे सम्बन्धित उसकी प्रक्रियाओंका वैज्ञानिक अध्ययन करता है।

(क) «शरीर-शास्त्र» भी मानवीय व्यापारोंका अध्ययन करता है, परन्तु शरीरके अलग-अलग अंगोंके अधिक विस्तृत वर्णनके रूपमें।

(ख) «समाज-शास्त्र» मानवीय व्यापारोंका समाजके समूहों और संस्थाओंके व्यापारोंके रूपमें अध्ययन करता है।

२. मनोविज्ञानकी «वैज्ञानिक रीति» से तात्पर्य है सही-सही और निष्पक्ष दृष्टिसे निरीक्षणोंको पर्याप्त संख्यामें संग्रह करना और उन्हें लिख लेना, ताकि उनसे सैद्धान्तिक और व्यावहारिक प्रश्नोंका विश्वसनीय उत्तर प्राप्त होसके।

[1] organism [2] abstract [3] nervous system

(क) «प्रायोगिक रीति» में एक परिस्थितिकी कई दशाओं में से एक दशाको बदल देते हैं (इसको प्रायोगिक परिवर्त्य कहते हैं) और व्यक्तिकी किसी चेष्टा पर इसका प्रभाव (प्रतिक्रिया) मापते हैं। अन्य सभी दशाओं पर नियंत्रण रखा जाता है, इसलिए जो परिणाम निकलता है, वह प्रायोगिक परिवर्त्यके प्रभाव का फल माना जासकता है।

(ख) «विकास-सम्बन्धी रीति» में व्यक्तिकी चेष्टाओंमें से कुछ चुने हुए नमूनोंका उनकी विकासावस्थामें निरीक्षण किया जाता है और परिणाम लिख लिया जाता है।

(ग) «व्यक्तिके इतिहासके पुनर्गठन की रीति» का उपयोग प्रायः मानसिक या व्यवहार-सम्बन्धी विकृति वाले रोगियोंके साथ किया जाता है। इस रीतिमें व्यक्तिके विकास-सम्बन्धी इतिहासका पुनर्गठन करने का प्रयत्न किया जाता है और उन दशाओंका पता लगाया जाता है जिनका प्रभाव व्यक्तिके व्यवहार पर पड़ रहा है।

(घ) «अन्तर्दर्शनमूलक सामग्री» से तात्पर्य है, व्यक्ति द्वारा अपनी चेष्टाओंका स्वयं निरीक्षण करनेसे प्राप्त तथ्य। «निरीक्षणमूलक सामग्री» से ऐसे निरीक्षणोंका तात्पर्य है जो एकसे अधिक निरीक्षकों द्वारा किये जासकें। अन्तर्दर्शनमूलक सामग्री व्यक्तिगत है जब कि निरीक्षणमूलक सामग्री सार्वजनिक। मनोविज्ञान दोनों तरहकी सामग्रीका उपयोग करता है।

(ङ) मनोवैज्ञानिक पारिभाषिक पद व्यक्तिकी प्रक्रियाओंका निर्देश करते हैं, इसलिए वे क्रियाएं या क्रिया-विशेषण होने चाहिएं। लम्बे-चौड़े वाक्यांशोंके स्थान पर 'स्मृति' और 'बुद्धि' जैसी संज्ञाओंका उपयोग सुविधाजनक है।

२

योग्यता की व्यक्तिगत भिन्नताएं

इस पुस्तकके पहिले भागमें व्यक्ति-व्यक्तिके बीच पाये जाने वाले अन्तर पर विचार किया गया है। अधिकांश मनोवैज्ञानिक लोकतांत्रिक विचारोंके होते हैं। ऐसे लोग जब अमेरिकन कांग्रेस द्वारा ४ जुलाई १७७६ ई० को स्वीकृत 'स्वतंत्रताके घोषणापत्र' को पढ़ते हैं तब उनका ध्यान प्राय: व्यक्तिगत भिन्नताओंके प्रश्न पर जाता है। घोषणापत्रमें कहा गया है:

'हम इन सत्योंको स्वत: प्रमाणित मानते हैं कि सभी मनुष्य बराबर जन्मे हैं; जगन्नियन्ता ने उनको कुछ जन्मसिद्ध अधिकार दिये हैं; इनमें से कुछ हैं—जीवित रहने, स्वतंत्र और सुखी होने के अधिकार।'

इन 'स्वत: प्रमाणित सत्यों' में से पहिला सत्य मनोवैज्ञानिकों को विचार करनेके लिए कुछ सामग्री देता है। क्या घोषणापत्र पर हस्ताक्षर करनेवाले सचमुच यह मानते थे कि सभी मनुष्य बराबर हैं? वे ऐसा मान कैसे सकते थे जब उनमें ही कई व्यक्ति ऐसे थे जिनका व्यक्तित्व दूसरोंकी अपेक्षा अधिक प्रभावशाली और आकर्षक था; जब बेंजमिन फ्रेंकलिन और टॉमस जैफर्सन स्पष्टतया अन्योंसे अधिक योग्य थे। उक्त घोषणा के प्रसंगसे हम यह मान सकते हैं कि मनुष्य-मात्र की समानता से-सम्भवत: उनका जो आशय था, वह दूसरे 'सत्य' में प्रकट हुआ है, अर्थात् सभी मनुष्योंको जीने, स्वतंत्र रहने और सुखी बननेका «समान अधिकार» है। सम्भवत: इन गण्यमान्य व्यक्तियोंका यह आशय न था कि सभी मनुष्य योग्यता और व्यक्तित्वमें बराबर हैं, उनका तात्पर्य यह भी न था कि सभी मनुष्य स्वभाव और वंशानुक्रमकी दृष्टिसे समान हैं और केवल शिक्षा तथा अवसरके कारण उनमें असमानता आगयी है। उनका चाहे जो मतलब रहा हो, इसमें सन्देह नहीं कि व्यक्तिगत भिन्नताकी बात लोकतंत्रके लिए एक समस्या उपस्थित करती है।

यह ध्यान देने योग्य है कि एक पुराने साम्यवादी नारेका आशय यह था कि मनुष्य समान होनेके बजाय असमान हैं। वह नारा था: 'हर आदमीसे उसकी योग्यता के अनुसार काम लिया जाय और हर आदमीको उसकी आवश्यकताके अनुसार दिया जाय।' एक चीज तो निश्चित है कि एक सफल सरकार का निर्माण मानव-प्रकृतिके तथ्योंके आधार पर होना चाहिए; तथ्योंको गलत समझकर वह क़ायम नहीं रह सकती। यदि हम एक ऐसे संसारका निर्माण करना चाहते हैं जो अबसे अच्छा हो, तो हमें इस तथ्यको ध्यानमें रखकर चलना होगा कि व्यक्ति-व्यक्तिमें भिन्नता है।

योग्यता और व्यक्तित्वकी दृष्टिसे हर प्रौढ़ व्यक्ति दूसरे से भिन्न होता है, यह बात इतनी स्पष्ट है कि पाठक यह जाननेके लिए उतावला हो उठेगा कि व्यक्तियोंमें यह भिन्नता क्यों है? उसके सामने यही प्रमुख प्रश्न रहेगा। फिर भी जब तक हम पूरे तथ्योंसे परिचय न प्राप्त करलें तब तक उनके स्पष्टीकरणके विषयमें कुछ कहना ठीक न होगा। सामान्य वयस्कों या बालकोंको लीजिए और अपने-आपसे प्रश्न कीजिए: किन बातोंमें उनमें भिन्नता है, कितनी भिन्नता है और क्या ये भिन्नताएं मनुष्यके जीवनमें महत्त्वपूर्ण हैं भी या नहीं? व्यक्तिगत भिन्नता-विषयक तथ्य बहुत व्यापक हैं: लोगोंमें भिन्नता है, कह देने मात्रसे काम नहीं चलेगा। इन भिन्नताओंमें नियमानुवर्तिता[१] पायी जाती है; और उनके नियम रोचक एवं महत्त्वपूर्ण हैं (२)।

जब हम योग्यता और व्यक्तित्व पर विचार करेंगे तब व्यक्तिगत भिन्नताओंके कारणोंका महत्त्वपूर्ण प्रश्न हमारे मन की पृष्ठभूमिमें रहेगा। बादके प्रकरण—वंशानुक्रम और परिवेश में वह सामने आजायेगा।

योग्यता की माप

उपलब्धि[२] और सामर्थ्य[३]. योग्यता शब्द कुछ अस्पष्ट है। इसके दो अर्थ हैं। यद्यपि दोनों अर्थोंमें निकट सम्बन्ध है, तो भी उनके अन्तरको सावधानीसे समझनेकी आवश्यकता है। इस का अर्थ «वर्तमान[४] योग्यता» या «सम्भावित[५] योग्यता» दोनों होसकता है। एक आदमी जब पेरिसमें पहिली बार गया तब वह छोटे-छोटे फ्रांसीसी बच्चोंकी 'आश्चर्यजनक योग्यता पर मुग्ध होगया। वहांके बच्चे फ्रेंच भाषा इतनी खूबीके साथ बोल रहे थे कि हमारे बच्चे वैसी नहीं बोल पाते।' यह सही है कि उचित शिक्षणके अभावमें अन्य देशोंके बच्चोंमें फ्रेंच बोलनेकी वास्तविक या वर्तमान योग्यता नहीं होती, परन्तु संसारका कोई भी साधारण बालक फ्रेंच या कोई भी भाषा बोलनेकी सम्भावित योग्यता रखता है। जो बच्चा फ्रेंच बोलने

[१] law and regularity [२] achievement [३] capacity [४] actual [५] potential

की वर्तमान योग्यता रखता है, वह इस समय «बोल सकता है», जबकि फ्रेंच बोलनेकी सम्भावित योग्यता वाला बच्चा «बोलना सीख सकता है»।

इस अस्पष्टतासे बचनेके लिए हम वर्तमान योग्यताके लिए «उपलब्धि» शब्दका और सम्भावित योग्यताके लिए «सामर्थ्य» शब्दका प्रयोग करेंगे।

किसी भी व्यक्तिकी सामर्थ्य उसकी उपलब्धिसे अधिक होती है, क्योंकि हर दिशामें उसकी शिक्षा चरम सीमा तक नहीं हुई होती, बल्कि ठीक कहें तो किसी एक भी दिशामें नहीं। वास्तवमें जितनी तरहकी चीजें वह सीख चुका है, उससे अधिक तरहकी चीजें सीखनेकी क्षमता उसमें होती है और प्रायः जिन कामोंको वह पहिलेसे कर सकता है, उनमें भी अपनी उपलब्धि बढ़ानेकी सामर्थ्य उसमें होती है।

परन्तु सामर्थ्य भी असीम नहीं होसकती। सम्भवतः कोई भी मनुष्य तीन मिनटमें एक मील दौड़नेकी सामर्थ्य नहीं रखता, क्योंकि कई अच्छे दौड़नेवालोंने मीलकी दौड़का अभ्यास किया है, किन्तु अभी तक कोई भी तीन मिनटका रेकर्ड नहीं बना पाया। विकासके अपूर्ण होनेके कारण बालककी सामर्थ्य कुछ समय तक कम होती है। कुछ अधिक विकास हो जानेपर पैशिक[1] और मानसिक कार्योंके लिए उसकी सामर्थ्य में भी वृद्धि होजायगी। फिर भी उसकी सामर्थ्यकी अन्ततः एक सीमा है जिसके आगे वह नहीं जासकता। यह भी निश्चित लगता है कि अलग-अलग व्यक्तियोंके लिए सामर्थ्यकी यह सीमा भी अलग-अलग है।

उपलब्धि और सामर्थ्य का निर्धारण. जब हम कहते हैं कि एक व्यक्तिने कोई चीज उपलब्ध करली है, अर्थात् वह अमुक काम करसकता है, तब हमारे पास अपने कथनका सब से बड़ा प्रमाण यह होता है कि हमने स्वयं उसको वह काम करते देखा है। उपलब्धिका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि व्यक्ति सब के सामने उस कामको करके दिखा दे। उपलब्धि न होनेका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि व्यक्ति किसी कामको करनेका प्रयत्न करता है, पर उसमें सफल नहीं होता।

सामर्थ्यके लिए अर्थात् ऐसी योग्यताके लिए जो शिक्षाके न मिलनेसे अविकसित है, प्रमाण परोक्ष ही मिल सकता है। यदि हमसे पूछा जाय कि क्या अमुक साधारण बालक फ्रेंच बोलनेकी सामर्थ्य रखता है, तो हम बेहिचक उत्तर देसकते हैं—'हां', क्योंकि सभी साधारण बालक फ्रेंच बोलनेके वातावरणमें रहकर फ्रेंच बोलना सीख लेते हैं। परन्तु सामर्थ्यकी कोई मात्रा होती है, इसलिए यदि हमसे पूछा जाय कि यह बालक फ्रेंच बोलनेकी «कितनी» सामर्थ्य रखता है तो हमें उत्तर देनेमें सतर्क रहना चाहिए, कारण कि जिन व्यक्तियोंको अच्छेसे अच्छा अवसर और अच्छीसे अच्छी शिक्षा सुलभ थी उनका भी फ्रेंच भाषा पर अधिकार समान मात्रामें नहीं हुआ। स्पष्ट है कि फ्रेंच बोलनेकी उनकी सामर्थ्य परिमाणमें भिन्न-भिन्न है। किसी भी कार्यमें, चाहे वह खेलकूद हो, संगीत हो, राजनीति और साहित्य हो, व्यक्तियोंकी एक-सी शिक्षा और अनुभव होनेके बाद भी देखा गया है कि उनको एक-सी उपलब्धि नहीं हुई। इससे हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि कार्य प्रारम्भ करते समय उन व्यक्तियोंकी सामर्थ्य समान न रही होगी।

उपलब्धि-परीक्षाएं. हम वास्तविक कृति[2] द्वारा उपलब्धि को माप सकते हैं, परन्तु शर्त यह है कि हम उस कृतिको भी माप सकें और व्यक्ति (जिसकी परीक्षा ली जारही हो) पूर्ण मनोयोगसे उस क्रियाको करे। कृतिको सही-सही मापनेके लिए मनोवैज्ञानिकों ने कुछ नमूनेके कार्य[3] निर्धारित किये हैं जिन्हें पूर्व-निश्चित दशाओंमें रहकर करना पड़ता है। ऐसी दशाओं में रहकर किया हुआ ऐसा कार्य «परीक्षा» कहलाता है (५)।

एक उदाहरण लीजिए। मोटर लॉरी-चालन-परीक्षामें कई बातें हैं जैसे टेढ़े मेढ़े मार्ग पर लॉरीको पीछे हटाना, पहाड़पर लॉरीको ऊपर-नीचे ले जाना, लॉरीको पार्क[4] करना इत्यादि। ड्राइवरकी नौकरीके लिए ठीक उम्मीदवारका चुनाव करनेके लिए यह आवश्यक है कि परीक्षाकी शर्तें सबके लिए समान हों। टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता भी वही होना चाहिए, पहाड़ भी वही होना चाहिए और लॉरियां भी एक ही आकार तथा शक्तिकी होनी चाहिएं। हर उम्मीदवारको अंक देनेका मानदंड भी एक ही होना चाहिए।

शिक्षा-विषयक उपलब्धि-परीक्षाओंसे पता चलता है कि किसी छात्रने अपने स्कूलके विषयों, जैसे अंकगणित, इतिहास या भू-गर्भशास्त्रमें कितना ज्ञान और कौशल प्राप्त किया है और कितना आत्मसात् किया है। उपलब्धिकी माप कभी-कभी कार्य-क्षेत्रमें अर्थात् व्यावहारिक परिस्थिति में ही सबसे अच्छी तरह होती है। अन्य कृतियों, जैसे प्रतिक्रिया की गति या ज्ञानेन्द्रियोंसे प्राप्त ज्ञानकी यथार्थता की माप उत्तम कोटिके यंत्रोंकी सहायतासे प्रयोगशालामें ही भलीप्रकार होसकती है। कई मनोवैज्ञानिक परीक्षाओंमें तो उपकरणके रूपमें केवल कागज, पेंसिल, घड़ी या 'स्टॉप-वॉच' की आवश्यकता होती है। ये परीक्षाएं स्कूलोंकी साधारण परीक्षाओंके समान ही लगती हैं, अन्तर इतना होता है कि इन के प्रश्नोंको तैयार करनेमें अत्यधिक सतर्कता रखी जाती है और प्रत्येक सम्भव उत्तरके लिए कितने अंक देना उचित है, यह पहिलेसे ही निर्धारित कर लिया जाता है।

किसी भी मनोवैज्ञानिक परीक्षाका स्वरूप अन्तिम रूपसे निश्चित करनेके पहिले यह आवश्यक है कि उसकी जांच करली

[1] muscular [2] performance [3] standard tasks [4] parking

को मापनेकी आवश्यकता पड़ेगी। किसी वितरण वक्ररेखा का निरीक्षण करके आप बता सकते हैं कि उच्चतम प्राप्तांक कहां आता है और प्राप्तांकोंका सम्पूर्ण विस्तार क्या है।

वितरणके केन्द्रकी मापके लिए ठीक साधन «औसत» निकाल लेना है। बिखरावको मापनेके लिए हमें देखना होगा कि हर व्यक्ति औसतसे कितना ऊपर या नीचे रहता है। सभी व्यक्तियों का विचलन[1] मालूम करके हम औसत विचलन निकाल सकते हैं (या प्रतिमाप विचलन जान सकते हैं जो प्राप्तांकोंकी गणना में अधिक उपयोगी सिद्ध होता है)।

वितरण का रूप निर्धारण करनेकी एक दूसरी रीति शतांशीय[2] का प्रयोग है, जैसा कि आकृति ३ की टिप्पणीमें संक्षेपमें समझाया गया है। ५० शतांशीय बिन्दु या
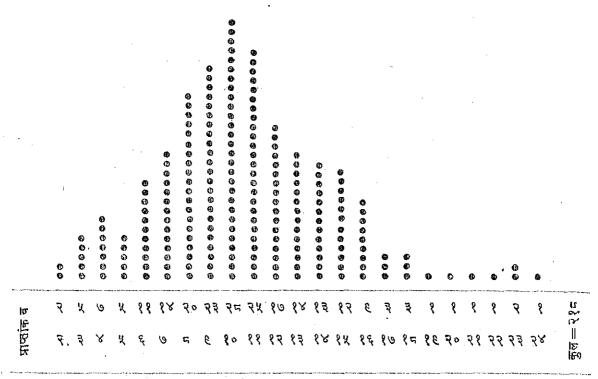
आकृति ३. जोड़नेकी गतिके एक परीक्षणमें प्राप्तांकोंका वितरण। दहाईकी संख्याओंके एक स्तम्भको जोड़नेके लिए तीन मिनटोंका समय दिया गया, जैसे :

१८
५६
४३
८८
३७
२२
६५

परीक्षा-पत्रमें इस प्रकारके २४ उदाहरण दिये हुए थे। सही योगफलोंकी संख्या परीक्षाका प्राप्तांक थी। परीक्षार्थी थे २१८ कॉलेजीय छात्र। (थर्स्टन, १९ से प्राप्त सामग्री)

इस तालिका को तैयार करने के लिए आप आधार रेखाके सहारे-सहारे सम्भावित प्राप्तांकोंको क्रमसे रखिए, और प्रत्येक व्यक्तिके प्राप्तांक को ठीक स्थल पर एक बिन्दु या सहीका निशान (✓) लगाकर अंकित कीजिए। ऐसा करते हुए आप ऊपरकी दिशामें बिन्दुओंके मध्यकी जगह (वर्टिकल स्पेसिंग) को समान रखिए, ताकि बिन्दुओंके प्रत्येक स्तम्भकी ऊंचाईसे

[1] deviation [2] centile

«मध्यमान[1]», वितरणका केन्द्र मापनेके लिए अच्छा साधन है, और आधार-रेखा[2] के साथ-साथ २५ शतांशीयसे ७५ शतांशीय तक की दूरी विस्तारका माप देनेमें बड़ा काम करती है।

वितरणमें व्यक्तिकी स्थितिकी माप. आपके सामने जो वितरण वक्र रेखा है, उसमें आप देख सकते हैं कि किसी व्यक्ति के प्राप्तांक कहां पड़ते हैं, शिखरके निकट, ऊपरी सिरेके निकट या निचले सिरेके निकट। व्यक्तिकी स्थितिको ठीक-ठीक बतानेके लिए आप नीचे लिखे दो तरीक़ोंमें से कोई भी तरीक़ा काममें ला सकते हैं।

१. *«प्रतिमान प्राप्तांक».* औसतसे व्यक्तिके 'धन' या 'ऋण' विचलन[3] को यदि औसत विचलनसे भाग दे दिया जाय तो वितरणमें व्यक्तिकी स्थितिका ठीक पता चल जाता है, क्योंकि 'धन' या 'ऋण' का चिह्न बताता है कि व्यक्ति औसतसे ऊपर है या नीचे, और प्रतिमान प्राप्तांकके मानसे पता चलता है कि पूरे समूहके विस्तार को देखते हुए व्यक्ति कितनी दूर हटा हुआ है। दशमलव और ऋणके चिह्नोंसे छुटकारा पानेके लिए प्रतिमान प्राप्तांकको बहुधा अधिक सुविधाजनक रूपमें बदल लिया करते हैं, जैसा कि आप आकृति ८ में पायेंगे।

यह पता चल सके कि एक विशेष प्राप्तांक कितनी अधिक या कम बार आता है। वक्र-रेखा खींचनेके लिए आप स्तम्भोंके शिखरोंको मिला सकते हैं।

हमारे सामने वितरणका यह जो चित्र प्रस्तुत है, इसके विषयमें हम क्या कह सकते हैं? हम कह सकते हैं कि चोटीका प्राप्तांक १० उदाहरणों का है। किन्तु किन्हीं दो छात्रोंको, जिन्होंने १० उदाहरण सही किए हैं, एक और उदाहरण लेने दीजिए; इस प्रकार चोटी ११ तक पहुँच जाती है, मानो हरेक छात्र ने एक और उदाहरण सही कर लिया हो। यह चोटी वितरणके केन्द्रको मापनेका केवल अपूर्ण (रफ़) और अविश्वसनीय मापदन्ड है और इसी कारणसे विस्तार (रेंज) और बिखराव (स्कैटर) का अपूर्ण मापदंड है। इनसे अधिक औसत और प्रतिमान विचलन (स्टैंडर्ड डेविएशन) पर भरोसा किया जा सकता है। यहां «औसत» प्राप्तांक (२१८ व्यक्तियोंके प्राप्तांकों का योग लेकर और उसे २१८ से भाग देकर) १०'६ उदाहरण है। प्रत्येक व्यक्तिका «विचलन» औसतसे ऊपर या नीचेकी ओर गिना जाता है। «प्रतिमान विचलन» ४'० उदाहरण है। (यह इस प्रकार निकाला जाता है: २१८ व्यक्तियोंके व्यक्तिगत विचलनका वर्ग करके, इन वर्गोंका योग मालूम करके योगको २१८ से भाग देकर और अन्तमें लब्धिका वर्गमूल प्राप्त किया जाता है)।

१०–शतांशीय बिन्दु (सेंटाइल पॉइन्ट) स्पष्टतः लगभग ६ उदाहरण होता है, और यदि अधिक सही-सही गणना की जाय, तो यह ५'८ उदाहरण होता है। यह बिन्दु ऐसा होता है, ताकि १० प्रतिशत व्यक्ति इसके नीचे पड़ते हैं और शेष इसके ऊपर आते हैं। इसी प्रकार २५ शतांशीय बिन्दु ८'० उदाहरण है, ५० शतांशीय या «माध्यिका» बिन्दु १०'३ उदाहरण है, ७५ शतांशीय बिन्दु १३'० उदाहरण है, और ९० शतांशीय बिन्दु १५'५ उदाहरण है। अन्य शतांशीय बिन्दुओंको भी सम्मिलित किया जा सकता है, किन्तु ये खास पांच वितरणको उपयोगी रूपमें वर्गीकृत कर देते हैं, क्योंकि आधार-रेखा के सहारे-सहारे इन पूर्वानुपर बिन्दुओं (सक्सेसिव पॉइन्ट्स्) के बीचकी दूरी लगभग बराबर है।

किसी व्यक्तिका आपेक्षिक स्थान (रिलेटिव स्टैंडिंग) या तो शतांशीय प्राप्तांक के रूपमें व्यक्त किया जा सकता है, या प्रतिमान प्राप्तांक के रूप में। प्रस्तुत वितरण में १४ व्यक्ति ऐसे हैं जिन्होंने १३ उदाहरणोंको ७५ शतांशीय रेखाके आस-पास सही किया। औसतसे उनके विचलन (डेविएशन), १३'०–१०'६ = २'४ उदाहरणोंको यदि ४'० प्रतिमान विचलन से भाग दिया जाय, तो उनका प्रतिमान प्राप्तांक + ०'६ मालूम हो जाता है।

एक पूर्ण 'सामान्य (नॉर्मल)' वितरणमें प्रत्येक शतांशीय एक विशिष्ट प्रतिमान प्राप्तांकके बिलकुल अनुरूप होता है, उदाहरणके लिए:

१०	शतांशीय	प्राप्तांक	वैसा ही	है जैसा	— १'२८	का प्रतिमान	प्राप्तांक
२५	"	"	"	"	— '६७	"	"
५०	"	"	"	"	०	"	"
७५	"	"	"	"	+ '६७	"	"
९०	"	"	"	"	+ १'२८	"	"

टेढ़े या विषम (स्क्यू या लॉपसाइडेड) वितरणमें या जब कभी कोई अनियमितताएं होती हैं, ये अनुरूपताएं सही के समीप होती हैं।

इस परिचयमें और इस प्रकरणमें हमने इस सम्बन्धमें जो बातें संक्षेपमें बतायी हैं, उनका उद्देश्य केवल इस चीजकी झांकी कराना है कि व्यक्तिगत भिन्नताओंका परिमाणात्मक अध्ययन कैसे किया जाता है। जो लोग इस विषयका पर्याप्त अध्ययन करना चाहते हैं, उनके लिए यह विषय बहुत रुचिकर सिद्ध होगा (६,९,११,१३)।

[1] median [2] base-line [3] positive or negative deviation

२. «शतांशीय प्राप्तांक». वितरणको इच्छानुसार छोटे से छोटे शतांशियोंमें वर्गीकृत करके प्रत्येक व्यक्तिका शतांशीय प्राप्तांक निर्धारित किया जा सकता है। उससे पता चलेगा कि व्यक्ति परीक्षामें समूहके किस प्रतिशत—१० या २५, या ६८ या ९०, या क्या—से आगे बढ़ गये। कई व्यक्तियोंके समूहमें एक व्यक्तिकी सापेक्ष स्थितिको जाननेके लिए यह पद्धति बहुत सुविधाजनक है, यद्यपि एक व्यक्तिकी दूसरे व्यक्ति से तुलना करते समय इसका गलत अर्थ भी लगाया जा सकता है; क्योंकि वितरणके मध्यमें जहां प्राप्तांकोंका ढेर होता है शतांशियोंमें बहुत निकटता होती है, जब कि वितरणके दोनों सिरों पर उनका अन्तर बहुत बढ़ जाता है। इसलिए ४५ शतांशीय और ५५ शतांशीय वाले व्यक्तियोंके मध्यका १० शतांशीयका अन्तर कुछ नहीं के बराबर होता है, जब कि ८५ शतांशीय और ९५ शतांशीय वाले व्यक्तियोंके बीचका अन्तर बहुत अधिक हो सकता है।

बुद्धि

उपलब्धि[1] कई तरहकी होती है और प्रवणताएं[2] भी भिन्न-भिन्न होती हैं। कुछ लोग जो चित्रकारीमें अच्छे होते हैं वे उतने अच्छे भाषणकर्ता नहीं होते और कुछ लोग जो सरलता से इतिहास याद कर लेते हैं, वे गणितको कठिन बताते पाये जाते हैं। अलग-अलग प्रकारकी योग्यताका प्रश्न हम अगले प्रकरणमें लेंगे। फ़िलहाल हम उन परीक्षाओं पर विचार करेंगे जो मनोवैज्ञानिकोंमें बहुत प्रचलित हैं और जिनका उपयोग वे अधिकतर करते हैं। वे परीक्षाएं 'बुद्धिमापक परीक्षाएं' कहलाती हैं।

बुद्धि एक संज्ञा है जिसमें एक क्रिया और क्रियाविशेषणका अर्थ छिपा हुआ है। बुद्धि कोई वस्तु नहीं जिसकी कम या अधिक मात्रा आपके पास हो। वस्तुतः यह कार्य करनेका एक ढंग है। जब कोई व्यक्ति किसी परिस्थितिको बुद्धिमत्ता-पूर्वक सँभाल लेता है तब कहा जाता है कि उसने बुद्धिका परिचय दिया; परन्तु यदि उस समस्याका सामना उसने मूर्खतापूर्वक किया तो कहा जाता है कि वह मूर्ख है।

बुद्धिका प्रज्ञा[3] से निकट सम्बन्ध है। प्रज्ञामें निरीक्षण करने, समझने, सोचने-विचारने, स्मरण करने, जानने और ज्ञान प्राप्त करनेके सभी व्यापारोंका समावेश हो जाता है। प्रज्ञा का परिणाम ज्ञान होता है। परन्तु बुद्धिमत्तासे की हुई चेष्टा इसके अतिरिक्त कुछ और भी करती है। यह किसी समस्याको सुलझाने और किसी लक्ष्य तक पहुंचनेमें उपादेय तथा सहायक होती है। उदाहरणके लिए गिनतीको लें। गिनना एक प्रज्ञात्मक का व्यापार है और उससे ज्ञान प्राप्त होता है; परन्तु यह ज्ञान उपादेय है या नहीं, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि हम क्या चीज गिन रहे हैं। यदि आप के घर मेहमान आनेवाले हों और उनको दृष्टिमें रखकर आप अपने कमरेकी कुर्सियोंको गिनें कि मेहमानोंके लिए वे कम तो न पड़ेंगी, तो यह गिननेका कार्य बुद्धिमत्तापूर्ण हुआ, परन्तु किसी पुस्तकके पृष्ठके अक्षरोंको गिनना उस पर छपा हुआ पाठ याद करनेका बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग न होगा। बुद्धिका अर्थ है «उपयोगमें लायी हुई प्रज्ञा»। किसी परिस्थितिको सँभालने या किसी कार्यको पूरा करनेमें प्रज्ञाकी शक्तियोंका उपयोग करना ही बुद्धि है।

बुद्धि ज्ञान पर निर्भर करती अवश्य है परन्तु आदमी ज्ञानके संचय मात्रसे बुद्धिमान् नहीं कहलाता, बल्कि संचित ज्ञान के अच्छे उपयोगसे। कभी-कभी हम किसी व्यक्तिके लिए कहते हैं कि बहुत-कुछ जानता है, तो भी वह कुछ मूर्ख है, क्योंकि वह अपनी जानकारी या ज्ञानका बहुत कम उपयोग करता है। वह जोड़ने, घटाने, गुणा करने और भाग देनेकी क्रियाएं भलीभांति जानता है, परन्तु जब कोई व्यावहारिक समस्या सुलझानेको होती है तो गणित की इन क्रियाओंका उपयोग उसे सूझता ही नहीं। उसके पास साधन रहते हैं, पर वह उनका उपयोग नहीं करता। एक बढ़ईके पास बहुत अच्छे औजार हों परन्तु वह उनका ठीक इस्तेमाल करना न जानता हो तो वे उसके किसी कामके न होंगे, जब कि दूसरा बढ़ई जो अपने औजारोंका अच्छा उपयोग करना जानता है, पहिलेवाले बढ़ईसे कम अच्छे और साधारण औजार रखकर भी अच्छा काम कर दिखायेगा। दूसरा बढ़ई पहिले बढ़ईसे अच्छा कारीगर और यंत्रोंसे सम्बन्धित बातोंमें अधिक बुद्धिमान है। इसी प्रकार संख्याएं भी एक तरहके औजार हैं। जिसने अंकगणितका अध्ययन किया है, उसके मनमें संख्या रूपी ये औजार भरे पड़े हैं। प्रश्न है कि आवश्यकता पड़ने पर वह इनका उपयोग करता है या नहीं। इसी प्रकार शब्द भी औजार हैं। अपने मस्तिष्क को शब्द-कोष बना देना बुद्धिमान होनेका चिह्न नहीं है, वरन् बुद्धिमत्ता तो इसमें है कि दूसरे व्यक्तिसे जो कुछ आप कराना चाहते हैं, उसे अच्छी तरह आप समझा सकें। दूसरी तरहके मानसिक औजार भी होते हैं, परन्तु यदि आप उनका उपयोग समस्याओंका हल ढूंढने और जीवनकी परिस्थितियोंका सामना करनेमें कर सकें, तभी कहा जायगा कि आपने बुद्धिसे काम लिया।

बुद्धि-दौर्बल्य. बुद्धिको मापनेका प्रयत्न किया गया। उस के बहुत पहिले लोगों पर यह बात स्पष्ट हो चुकी थी कि किसी भी बड़े समाजमें कुछ व्यक्ति बुद्धिकी दृष्टिसे कमजोर होते हैं, वे इतने बुद्धिहीन होते हैं कि अपने जीवनकी व्यवस्था ठीक तरहसे

[1] achievement [2] aptitudes [3] intellect [4] feeblemindedness

नहीं कर सकते। जिन लोगोंमें यह न्यूनता सबसे अधिक होती है, उनको जड़[1] कहते हैं। जो उनसे कुछ कम अभावग्रस्त होते हैं, उनको मूढ़[2] कहा जाता है। सबसे कम न्यूनता वाला समूह मूर्ख[3] कहलाता है; इनकी संख्या जड़ और मूढ़ोंसे बहुत अधिक होती है।

जड़ जीवनके सामान्य संकटोंसे भी नहीं बच पाते। वे अपना हाथ आगमें डाल देंगे, बिना आगा-पीछा देखे गहरे पानीमें उतर जायेंगे, या दौड़ती हुई कारके सामने खड़े हो जायेंगे। वे स्वयं नहा भी नहीं सकते और न अपने-आप कपड़े पहन सकते हैं। उनमें से जो बहुत ही निकृष्ट होते हैं, वे भोजन करना भी नहीं जानते और न अपनी किसी शारीरिक आवश्यकता की परवाह करते हैं। 'हां' या 'ना' जैसे एकाक्षर शब्दोंके अतिरिक्त वे कुछ बोलना भी नहीं जानते।

परन्तु मूढ़ जीवनके सामान्य संकटोंसे बचना सीख लेते हैं। वे थोड़ी बातचीत भी कर लेते हैं, परन्तु पढ़ना-लिखना नहीं सीख सकते। कोई लाभदायक कार्य भी वे नहीं कर पाते। मूढ़ोंमें सबसे निकृष्ट कोई काम करनेमें समर्थ नहीं होते। जो उनसे कुछ अधिक बुद्धिके होते हैं, वे किसी की देखरेखमें कुछ उपादेय कार्य कर लेते हैं। जो मूढ़ोंकी उच्चतर श्रेणीके होते हैं, वे वस्त्र धारण करना, नहाना और खाना सीख जाते हैं, परन्तु बहुत मामूली और सरल कार्योंको छोड़कर शेषकार्य वे बराबर किसी की देखरेख रहे बिना नहीं कर सकते।

'मूर्खों' को बिना किसी देखरेखके नित्यप्रतिके सरल कार्य सिखाये जा सकते हैं। किसी संस्था में वे बिछौने बिछाने और संवाद-वाहक का काम कर सकते हैं। कुछ 'उच्च श्रेणीके मूर्ख' मवेशियोंकी देख-भाल, बच्चोंको खिलाना, बढ़ईगीरी, या चमड़े या सीनेकी मशीन चलाना आदि कार्य कर लेते हैं। क्षीण-बुद्धि वाले व्यक्तियोंके लिए काम करने वाली प्रगतिशील संस्थाएं उच्च श्रेणीके 'मूर्खों' को काम-धाम सिखाकर समाजमें नौकरी करनेके लिए भेज रही हैं और इस कार्यमें उन्हें काफ़ी सफलता मिल रही है; परन्तु ऐसे 'मूर्खों' को भी थोड़ी देखरेख की आवश्यकता होती है। यह देखरेख वही व्यक्ति कर सकता है जिसके हृदयमें उनके प्रति सहानुभूति और सद्भावना हो तथा जो उनकी कमजोरियोंको समझता हो। बिना ऐसी सहायता पाये, सम्भव है कि मूर्ख अपने धन का अपव्यय करें और अपने अवकाशके समय को ग़लत ढंगसे बितायें। ऐसी स्थितिमें लड़कियां प्रायः वेश्या-वृत्ति करने लग जाती हैं और लड़के चोरी सीख जाते हैं। साधारणतया 'मूर्ख' किसी नवीन परिस्थिति या जटिल समस्या को अधिक सफलतापूर्वक नहीं सँभाल सकते।

किसी सीधे-सादे, मैत्रीपूर्ण और ढीले-ढाले समाजमें कुछ क्षीण-बुद्धि वाले बालकों या वयस्कोंका रहना कोई गम्भीर समस्या नहीं उत्पन्न करता। किन्तु जटिल समाजमें जो उद्योग-प्रधान हो, क्षीण-बुद्धि लोगोंकी उपस्थिति उपेक्षणीय नहीं रह जाती। उस समय समाजके लिए क्षीण-बुद्धि वालोंकी शिक्षा और देखभालका प्रबन्ध करना आवश्यक हो जाता है। क्षीण-बुद्धिता की परिभाषा करनेवाले क़ानून पास किये जाते हैं और उनमें सुझाया जाता है कि क्षीण-बुद्धि बालकों या वयस्कोंकी बौद्धिक-कमियोंको दूर करनेके लिए क्या क़दम उठाया जाय।

क़ानूनमें क्षीण-बुद्धि बालक उसको कहते हैं जो स्कूलके सामान्य विषयोंको औसत रफ़्तारसे या पूरी तरहसे न समझ पाता हो। ऐसे बालकोंकी शिक्षा-दीक्षा के लिए विशेष प्रबन्ध करना पड़ता है।

क्षीण-बुद्धि वयस्क क़ानून की परिभाषाके अनुसार वह व्यक्ति है जो बुद्धिकी कमीके कारण अपना भरण-पोषण स्वयं करनेमें असमर्थ हो और जो समाजमें विपत्तियोंसे अपनी रक्षा न कर सके। समाजको क्षीण-बुद्धि व्यक्तियों और अन्य व्यक्तियोंके हितको ध्यानमें रखकर उनकी 'रक्षा, देखभाल और नियंत्रण' की व्यवस्था करनी पड़ती है। कुछ व्यक्ति जो स्कूलके विषयोंमें प्रगति करते नहीं देखे गये, वे वयस्क होकर अपनी सँभाल स्वयं कर लेते हैं और वेतनके बदलेमें कुछ उपयोगी कार्य भी करते हैं तथा ख़तरनाक शरारत करने से भी बच जाते हैं। ऐसे वयस्क व्यक्ति बुद्धिकी कमीके बावजूद क़ानूनी तौरसे क्षीण-बुद्धि नहीं माने जा सकते।

उन्नीसवीं सदीके प्रारम्भिक वर्षोंमें जब क्षीण-बुद्धि वालोंकी ओर वैज्ञानिकोंकी रुचि आकृष्ट हुई तब कुछ आशा बंधी कि वे उपयुक्त शिक्षा द्वारा साधारण बुद्धि-स्तर तक लाये जा सकेंगे। किन्तु यह आशा कभी पूरी नहीं हुई। फिर भी कम से कम 'मूर्ख' को इतनी शिक्षा दी जा सकती है कि वह जीवन में अपनी सहायता स्वयं कर सके, किन्तु इसमें भी शर्त यह है कि उसकी कमजोरियोंको समझ लिया जाय। कई जड़ और मूढ़ व्यक्ति साधारण व्यक्तियोंके समान होते अगर जन्मके समय चोट लगनेसे, मस्तिष्क-शोथ[4], मस्तिष्क-सुषुम्ना-आवरण-शोथ[5], आदिके कारण उनके मस्तिष्क पर आघात न पहुंच गया होता। अधिकांश 'मूर्ख' मस्तिष्कके आघातके कारण इस स्थितिमें नहीं होते, बल्कि वे होते ही बहुत हीन-बुद्धि हैं। निम्न-कोटिके साधारण व्यक्तियोंसे उनमें कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं होता, सिवाय इसके कि वे समाजमें आत्मनिर्भर होकर नहीं रह सकते। मूर्खोंसे लेकर साधारण जनसमूह तक के व्यक्तियोंकी बुद्धिमें एक अविच्छिन्न क्रमिकता होती है।

आबादीमें क्षीण-बुद्धि वाले व्यक्ति अनुमानतः १ प्रतिशत

[1] Idiot [2] imbecile [3] moron [4] encephalitis [5] cerebro-spinal meningitis

से लेकर १ या २ प्रतिशत तक पाये जाते हैं। किन्तु कोई सही प्रतिशत इसलिए नहीं निकाला जा सकता, क्योंकि क्षीण-बुद्धि और निम्न-साधारण बुद्धि[1] के बीच कोई भेदक रेखा नहीं खींची जा सकती। एक कारण यह भी है कि व्यक्तिकी साधारणता[2] या अवसाधारणता[3] (औसत बुद्धि वाला या औसतसे कम बुद्धि वाला होना) कुछ अंशमें उस परिवेशकी भी उपज होती है जिसके भीतर व्यक्तिको रहना पड़ता है (१, १८)।

प्रतिभा[4] और अलौकिक[5] बुद्धि. क्षीण-बुद्धि वालोंके दूसरे सिरे पर अत्यधिक योग्यता वाले ऐसे व्यक्ति हैं जिनकी उपलब्धि बौद्धिक क्षेत्रमें बहुत विलक्षण है। यद्यपि वे किसी विशेषक्षेत्र,—जैसे साहित्य, संगीत, विज्ञान या राजनीति—में अपने कार्योंके कारण प्रसिद्ध हैं, तो भी हम अनुमान लगा सकते हैं कि प्रारम्भमें सामान्य बुद्धिमापक परीक्षाओंमें उन्हों ने काफ़ी अच्छे अंक प्राप्त किये होंगे। ऐसा लगता है कि वे सभी कुशाग्रबुद्धि बालक रहे होंगे। जब हम देखते हैं कि राल्फ़ वाल्डो एमर्सन ने दस वर्षकी आयुमें एक लम्बी कविता करली थी जिसकी ये दो पंक्तियां नमूना हैं:

Six score and twenty thousand, gan the fray,
Six score alone survived that dreadful day,

तब हमें मानना पड़ेगा कि उम्रको देखते हुए उसका यह कार्य विलक्षण था। अगर महान् पुरुषों और महिलाओंके जीवन की घटनाओंका सही लेखा मिलसके तो हम देखेंगे कि विलक्षण प्रतिभा-सूचक ऐसी अनेक घटनाएं उनके बाल्यकालमें घटी हैं। महापुरुषोंके जीवनमें बुद्धिके अतिरिक्त कुछ अन्य गुणोंका समावेश भी हम पाते हैं जिनके कारण उनको बादके अपने जीवनमें सफलताएं मिलीं। इन गुणोंमें सतत प्रयत्नशीलता, अपनी शक्तिमें विश्वास, चरित्र-बल, महत्त्वाकांक्षा, या सबसे आगे बढ़ जानेकी अदम्य इच्छा, और बहुधा अपने निर्वाचित कार्यके लिए पागल प्रेम, आदि गुण गिनाये जा सकते हैं (१०,१४ भाग २)।

बुद्धिमापक-परीक्षाएं

बुद्धिमापक-परीक्षाएं व्यक्तिकी प्रवणता जाननेका पैमाना है; अर्थात् व्यक्तियों, विशेषतया बालकों और किशोरोंकी मानसिक उपलब्धिके सम्बन्धमें भविष्यवाणी करनेका यह एक प्रयत्न है।

बीने[6] की बुद्धिमापक परीक्षाएं. सन् १९०० के आस-पास की बात है। पेरिस नगरके स्कूलोंके अधिकारियों ने स्कूल-कार्यमें पिछड़नेवाले छात्रोंकी बड़ी संख्यासे परेशान होकर छात्रोंकी इस मन्द-बुद्धिका कारण जानना चाहा। अध्यापकों का ख्याल था कि ध्यान न देने और शरारती होनेके कारण छात्र मन्द-बुद्धि हैं। अधिकारियों ने यह निश्चित करना चाहा कि अध्यापकोंका अनुमान ही सही है या अपर्याप्त बौद्धिक क्षमता के कारण छात्रोंमें यह दोष आगया है? वास्तवमें ये बालक बिलकुल क्षीण-बुद्धि न थे, फिर भी स्कूलमें उन्हें सफलता नहीं मिल पाती थी। पुराने सिद्धान्तके अनुसार, यदि बालक क्षीण-बुद्धि नहीं है, तो उसकी बुद्धि साधारण[7] होनी चाहिए, और यदि वह साधारण बुद्धिवाला है तो उसे स्कूलमें अच्छा चलना चाहिए। एक और सम्भावना भी होसकती थी, वह यह कि बौद्धिक क्षमता क्रमशः अलक्षित रूपसे उच्चस्तर से औसत और औसतसे निम्नस्तर तक पहुंच सकती है। परन्तु यह सिद्धान्त आजकी तरह सन् १९०० में अधिक प्रचलित न था।

उस समयके अग्रणी मनोवैज्ञानिक अल्फ्रेड बीने ने इन प्रमुख प्रश्नोंका उत्तर खोज निकालनेका बीड़ा उठाया। उन्होंने अनुभव किया कि बुद्धिको मापनेके लिए कोई साधन अवश्य ढूंढना चाहिए। कई रीतियों पर प्रयोग करनेके पश्चात् वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि कोई अकेला कार्य सभी व्यक्तियोंके लिए समान रूपसे उपयुक्त नहीं होसकता। उन्होंने एक नये प्रकारकी परीक्षाका आविष्कार किया जिसमें व्यक्तिको कई तरहके कार्य करनेको दिये जाते हैं और अपनी योग्यता दिखाने का उसे पर्याप्त अवसर मिलता है। बीने-सिमों[8] बुद्धिमाप जिसे बीने और उनके एक सहयोगी सिमों ने तैयार किया था, कई विभिन्न कार्यों या प्रश्नोंका मिलाजुला संग्रह था।

यह तो स्पष्ट था कि परीक्षाके प्रश्नोंको उत्तरोत्तर कठिन होना चाहिये। सरलसे लेकर कठिन प्रश्नोंका उसमें समावेश होना चाहिए। बीनेको एक बढ़िया सूझ मिली कि बालक ज्यों-ज्यों आयुमें बढ़ते हैं, उनकी योग्यता भी बढ़ती रहती है। इस असन्दिग्ध[9] तथ्यका उपयोग बीने ने अपने बुद्धिमापमें किया। उसकी सबसे सरल परीक्षाएं तीन वर्षके बालककी पहुंचके भीतर थीं जो उनसे कुछ बढ़कर थीं, वे औसत तीन वर्षके बालककी सीमाके तो बाहर थीं, पर चार वर्षके बालक की पहुंचमें थीं। इसी प्रकार उसकी परीक्षाओंका स्तर क्रमशः बढ़ता गया था। चूंकि कोई भी व्यक्ति किसी कार्यकी कठिनाई का अन्दाज देखने-मात्रसे नहीं कर सकता, इसलिए बीने ने अपने परीक्षा-पत्रों का प्रयोग विभिन्न आयुके बालकों पर किया और आवश्यकतानुसार उनमें तब तक संशोधन-परिवर्धन करता गया जब तक हर परीक्षा-पत्र किसी खास आयु-स्तर के लिए उपयुक्त सिद्ध न होगया। बीने की बुद्धि-परीक्षाएं सही मापके साधन माने जाने लगीं, किन्तु इसके पूर्व उनपर कितने ही

[1] low-normal [2] normality [3] sub-normality [4] genius [5] exceptional [6] binet [7] normal [8] binet simon
[9] undoubted

प्रयोग और संशोधन हुए। अपना कार्य पूरा कर पानेके पहिले ही सन् १९११ में बीनेका देहान्त होगया। किन्तु, उसकी बुद्धिमापक परीक्षाओंको कई देशोंके मनोवैज्ञानिकों ने उपादेय पाया और उन्हें अपनाया। तबसे इन परीक्षाओंमें कई बार संशोधन हो चुके हैं और अब इनका क्षेत्र एक वर्षके शिशुसे लेकर उच्च श्रेणीके वयस्कों तक विस्तृत होचुका है।

हाल ही में स्टैनफ़ोर्ड संशोधन (१५) में अन्वेषकों ने पहिले कई हजार परीक्षा-पत्रोंको एकत्र किया और उनमें से कुछ अच्छे परीक्षा-पत्रोंका १५०० व्यक्तियों पर, जिनमें स्कूल जानेकी उम्रसे नीचेके बालकोंसे लेकर वयस्क तक सम्मिलित थे, परीक्षण किया। जो परीक्षा-पत्र बालकों या वयस्कोंको जिनके लिए वह बना था, अरुचिकर प्रतीत हुआ, उसे सूचीसे निकाल देना पड़ा, क्योंकि व्यक्तिकी योग्यताका ठीक-ठीक माप जाननेके लिए यह आवश्यक है कि उसकी रुचि उस काममें हो और उसका सहयोग परीक्षकको मिले। कोई प्रश्न जो विभिन्न व्यक्तियोंके लिए विभिन्न अर्थ लेकर उपस्थित होता था तथा कोई प्रश्न जिससे पूरी तरह यह न जाना जाता था कि व्यक्ति ने उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण होने योग्य अंक इसमें पाये या नहीं, उसको भी सूचीसे हटा देना पड़ा और हर प्रश्न में प्राप्तांक लानेके लिए निश्चित नियम बनाने पड़े। इस प्रकार बहुत-से परीक्षा-पत्र चुन-चुन कर निकाल दिये गये। और दूसरी बारके प्रयोगके लिए ४०० परीक्षा-पत्र रखे गये। इनमें कुछ चुने हुए परीक्षा-पत्रोंका प्रयोग २ वर्षसे लेकर १८ वर्ष तकके व्यक्तियों पर किया गया जिनमें से सभी अमेरिका में ही पैदा हुए श्वेत अमरीकी थे, हालांकि उनके वंश भिन्न थे। देशका अधिकाधिक प्रतिनिधित्व होसके इसलिए वरमौंट और वर्जीनियासे लेकर कैलीफ़ोर्निया तक ११ राज्यों से प्रयोगके लिए व्यक्तियोंका चुनाव किया गया। शहरी और देहाती जिलों तथा विभिन्न रोजगारी समूहों (पेशेवर, व्यापारी, क्लर्क, किसान, कुशल और अकुशल मजदूर) के नमूने इस अनुपातमें लिये गये, ताकि अमेरिकाके गोरोंका उचित प्रतिनिधित्व हो जाय। इस दूसरे परीक्षणके अनुभवके आधार पर दो प्रश्नावलियां तैयारकी गयीं जिनमें से हरेकमें १२९ प्रश्न थे। प्रत्येक प्रश्नावली इस प्रकार सजायी और प्रामाणिक बनायी गयी थी कि हर व्यक्तिको दूसरे व्यक्तिके समान ही प्राप्तांक लानेका अवसर था। बीनेके बुद्धिमापकी तरह कई अन्य बुद्धिमापक परीक्षाएं तैयारकी गयी हैं, उनमें से कुछ विशेषतया छोटे बालकोंके लिए हैं और कुछ वयस्क व्यक्तियोंके लिए।

यह जाननेके लिए कि बुद्धिमापक परीक्षाएं वास्तवमें किस वस्तुकी माप करना चाहती हैं, हमें परीक्षा-पत्रों की छानबीन करनी चाहिए और समझना चाहिए कि उनको हल करनेमें व्यक्तिको किस तरहकी मानसिक क्रिया करनी आवश्यक होती है। नीचे हम प्रश्नोंके कुछ नमूने दे रहे हैं जो कई जगहों से लिये गये हैं। इनको देखनेसे आपको पता चलेगा कि बीने और उसके बादके मनोवैज्ञानिकों ने किस प्रकार विभिन्न वस्तुओंका उपयोग इन प्रश्नोंको तैयार करनेमें किया है। साधारणतया प्रत्येक आयु-स्तरमें छै प्रश्न होते हैं।

४ माह-स्तर: ३० सेकेंड तक बैठना, पीठको किसी चीज का सहारा दिया हो।

६ माह-स्तर: बच्चेकी पहुंचके भीतर फेंकी गयी किसी छोटी-सी चमकदार वस्तुको पकड़नेकी चेष्टा।

१२ माह-स्तर: परीक्षक जो किसी चीज पर ठक्-ठक् की आवाज कर रहा हो या छोटी-सी घंटी बजा रहा हो, की नकल करना।

२ वर्ष-स्तर: टॉफ़ीको मुंहमें डालनेके पहिले उसके चारों ओर लिपटा कागज अलग कर लेना।

२½ वर्ष-स्तर: खिलौनोंके रूपमें पेशकी गयीं पूर्व-परिचित ५ वस्तुओंमें से ४ का नाम बता देना।

३ वर्ष-स्तर: माला गूंथना। कमसे कम चार मणिकाएं २ मिनटके भीतर पिरो ली जायें।

६ वर्ष-स्तर: चेहरेके चित्रोंमें छूटी हुई वस्तुओंका नाम लेना। इन चित्रोंमें किसीमें से नाक, किसीमें से एक कान या एक आंख आदि गायब रहती है। इस प्रकारके चार चित्र दिखाये जाते हैं; परीक्षामें उत्तीर्ण होनेके लिए तीन सही बातें कहना आवश्यक होता है।

९ वर्ष-स्तर: यह बताना कि लकड़ी और कोयला किस प्रकार एक समान हैं और किस प्रकार भिन्न हैं। परीक्षक इसी तरह वस्तुओंके चार जोड़ोंकी समानता और असमानता पूछेगा।

१२ वर्ष-स्तर: किसी घटनाके चित्रका सही अर्थ बताना।

१४ वर्ष-स्तर: किसी चित्रमें आये हुए शारीरिक भोंडेपन को समझाना।

वयस्क, ४ स्तर: ४५ शब्दोंकी एक क्रमिक सूचीमें से २०, २३, २६ और ३० शब्दोंकी स्वतंत्र परिभाषा बताना।

आप पूछ सकते हैं कि 'प्राप्तांकोंके लिए ऐसे मनमाने नियम क्यों रखे गये हैं—एक परीक्षा में से ४ सही उत्तर मांगे जा रहे हैं, दूसरी परीक्षामें ४ में से ४ प्रश्नोंके सही उत्तर चाहिएं और तीसरी परीक्षा में ३५ शब्दोंमें से २० की परिभाषा करनेको कहा जा रहा है—ऐसा क्यों?' उत्तर है, प्राप्तांकों के नियम वास्तवमें मनमाने नहीं हैं; वे विभिन्न अवस्थाओंके औसत बालकोंकी वास्तविक सफलताको ध्यानमें रखकर सावधानीके साथ निर्धारित किये गये हैं।

मनोवैज्ञानिक परीक्षक का विशेष रूपसे प्रशिक्षाप्राप्त और कुशल होना बहुत जरूरी है। जबतक वह परीक्षा-पत्रके प्रति परीक्षार्थी की रुचि उत्पन्न नहीं करलेता और इतना करके भी उसको किसी तरहकी सहायता दिये बिना पूर्व निर्धारित मानदंडसे परीक्षा नहीं लेता, तबतक उसकी माप बहुत गलत निकलेगी। बीनेकी बुद्धिमापक परीक्षाओंकी प्रणाली मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रामाणिक और कसौटीकी तरह मानी जाती है, इसलिए नवसिखुओं को विशेषज्ञसे आवश्यक विधि का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए।

भिन्न-भिन्न प्रकारकी बुद्धि-परीक्षाओंमें जो चीजें इस्तेमाल होती हैं उनकी जानकारी प्राप्त करके अपना ज्ञानवर्धन करनेके लिए हम दूसरे प्रकारकी बुद्धि-मापक परीक्षाओंपर भी दृष्टि डाल सकते हैं। ये परीक्षाएं बीनेके बुद्धिमापसे कुछ-कुछ भिन्न हैं।

कृति-परीक्षा. बीनेकी बुद्धिमाप-पद्धतिकी अपेक्षा कृति-परीक्षामें ठोस वस्तुओंका अधिक प्रयोग होता है, मौखिक प्रश्न और उत्तरका कम। कुछ व्यक्ति मौखिक प्रश्नोंका उत्तर देनेसे अधिक कुशलता ठोस वस्तुओं पर कार्य करनेमें दिखाते हैं। कोई व्यक्ति जो मौखिक या कृति-परीक्षामें से किसीमें अच्छी सफलता दिखाता है, उसके लिए कहा जासकता है कि वह इस कार्यशील संसारमें अच्छी तरह निभ जायगा और समाजमें अच्छा स्थान बना सकेगा। «फ़ॉर्म बोर्ड» का उदाहरण देकर हम कृति-परीक्षाको समझानेका यत्न करेंगे। बोर्डमें कई आकार-प्रकारके छिद्र कटे होते हैं। उन छिद्रोंमें उनके ही आकार-प्रकारके लकड़ीके टुकड़े बैठाने होते हैं। परीक्षार्थीको कुछ मिनट दिये जाते हैं और उसकी गलतियोंको गिन लिया जाता है। गलती तब मानी जाती है जब परीक्षार्थी एक आकारके छिद्रमें दूसरे आकारका टुकड़ा बैठानेका प्रयत्न करता है। औसत वयस्क व्यक्तिकी बुद्धि-परीक्षाके लिए यह कार्य बहुत आसान जान पड़ता है, किन्तु बालकके लिए यह मुश्किल होता है। निम्न-बुद्धिका वयस्क भी छोटे बालककी तरह अंट-संट तरीक़े से काम करता है, गोल छिद्रमें वह वर्गाकार टुकड़ा घुसेड़ने की व्यर्थ चेष्टा करता है। वह एक-दूसरे के आकारके अनुसार छिद्र और टुकड़ेका मिलान मिलानेके सिद्धान्तको हृदयंगम कर ही नहीं पाता।

«मनुष्य-चित्रण-परीक्षा» चार वर्षसे लेकर दस वर्ष तकके बालकोंके लिए उपादेय है (७)। बालकको केवल काग़ज़-पेंसिल देदी जाती है और उससे कहा जाता है: 'अच्छेसे अच्छा आदमी जो तुम बना सकते हो, बनाओ'। उसकी ड्राइंग पर सौन्दर्यके लिहाजसे नहीं, पूर्णता और सम्बद्धताके लिहाजसे अंक दिये जाते हैं। बालक जितना ही बड़ा होगा, अपने चित्र में वह उतनी ही अधिक बातें दिखायेगा तथा उन बातोंके पारस्परिक सम्बन्धका भी ध्यान रखेगा (बांहोंको सिरके पास मिलानेके बजाय वह गर्दनके पास मिलायेगा)। इसके

क

ख

ग
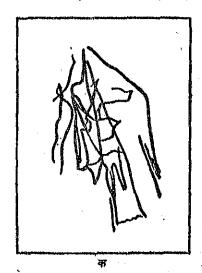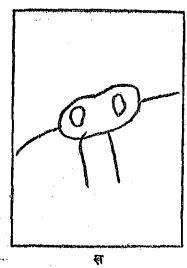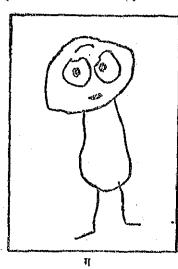
आकृति ४. बच्चों द्वारा खींची हुई एक मनुष्यकी रेखाकृतियां (गुडैनफ़ से)।

क. प्राप्तांक ०; मानसिक आयु, ३ वर्षसे भी कम।

ख. प्राप्तांक ४; सिर, टांगों, भुजाओं, आंखोंके लिए; मा० आ० ४ वर्ष।

ग. प्राप्तांक ८; सिर, टांगों, धड़, धड़ चौड़ा होनेके बजाय लम्बा अधिक, आंखें, आंखोंकी पुतलियां, मुंह, ललाटके लिए; मानसिक आयु ५ वर्ष।

घ

ङ

च
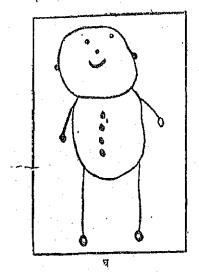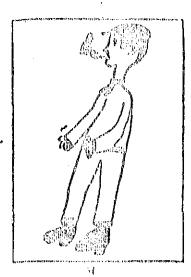
घ. प्राप्तांक १४; सिर, टांगों, भुजाओं, धड़, धड़ चौड़ा होनेके बजाय लम्बा अधिक, भुजाएं और टांगें धड़से जुड़ी हुई, आंखें, नाक, मुंह, कान, हाथ, धड़के उचित अनुपातमें टांगे, कुछ वस्त्र, दृढ़ और सुनियंत्रित रेखाएं दिखानेके लिए; मानसिक आयु ६ वर्ष ६ माह।

ङ. प्राप्तांक २६; उपरिलिखित अंगोंमें से अधिकांश और उनके अतिरिक्त: कन्धे, गर्दन, सिरसे लगी हुई गर्दन, बाल, अपारदर्शक वस्त्र, अंगुलियां, अंगूठे, भुजाओं और टांगोंका दो विमाओं (डायमैन्शन्स) में दिखाया जाना, एड़ियां, उचित अनुपातमें सिर, भौंह दिखानेके लिए; मानसिक आयु ९ वर्ष ६ माह।

च. प्राप्तांक ४४; उपरिलिखित अंगोंमें से अधिकांश और उनके अतिरिक्त: ओठ, नथुने, कोहनी, घुटना, आगेको निकली हुई ठोढ़ी, एक पार्श्वका चित्र, आंखोंकी विस्तृत बातें (४ अंक), ठीक स्थान पर और उचित अनुपातमें कान, ठीक स्थल पर जुड़ी हुई भुजाएं, टांगें और पैर, अच्छी रेखाएं और खड़े होनेका तरीक़ा संतुलित (३ अंक), बिना बेतुकेपनके पूरी पोशाक (सिर से लेकर पैर तक); मानसिक आयु १३ वर्ष या उससे कुछ ऊपर।

अतिरिक्त वह यह भी ध्यान रखेगा कि एक मनुष्य एक समयमें जैसा दिखाई देता है, उसके अनुसार ही उसके अंग दिखाये जायें (बग़लकी ओर मुड़े चेहरे पर वह दो आंखें नहीं दिखायेगा और न पाजामे के ऊपरसे टांगोंकी लकीर खींचेगा)।

एक दूसरे प्रकारकी क्रियात्मक बुद्धि-परीक्षा में एक भूल-भुलैया दी जाती है और व्यक्तिसे कहा जाता है कि इसमें से बाहर निकलनेका सबसे छोटा मार्ग पेंसिलसे दिखाओ। इस में सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि ठीक सीधमें देखा जाय और अन्धाधुन्ध जानेसे हाथको रोका जाय। बुद्धिमाप के लिए इसी तरहके कई अन्य ठोस कार्य कराये जाते हैं।

«सामूहिक बुद्धि-परीक्षा» में एक ही समयमें कई व्यक्तियों की जांच की जाती है। इनमें साधारणतया काग़ज़-पेंसिल के सहारे छोटे-छोटे उत्तर देने होते हैं। आजकल कई छात्र इस तरह की परीक्षा से परिचित होचुके होंगे। व्यक्तिगत परीक्षाकी अपेक्षा सामूहिक परीक्षाको कम उपयुक्त समझना चाहिए। व्यक्तिगत परीक्षा में अनुभवी परीक्षक इस बातसे आश्वस्त हो सकता है कि परीक्षा की परिस्थितियां परीक्षार्थीके अनुकूल पड़ रही हैं या नहीं। परन्तु पूर्ण बुद्धि-परीक्षा के लिए दोनों पद्धतियां काममें लायी जासकती हैं। सामूहिक बुद्धि-परीक्षा को सन् १९१७-१८ में अमरीकी सेनामें काम करनेवाले मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रोत्साहन दिया गया। उनका काम था, बहुत थोड़े समयमें हजारों रंगरूटोंकी परीक्षा करके यह बतला देना कि इनमें से कौन-कौन आदमी सैनिक-कर्तव्य सीखनेमें बहुत मन्द-बुद्धि सिद्ध होंगे और कौन से आदमी अफ़सर या ग़ैर-कमीशन अफ़सरका उत्तरदायित्व संभालनेके उपयुक्त हो सकेंगे (२०)। उन्होंने एक सामूहिक सैनिक बुद्धि-परीक्षाकी योजना तैयारकी जिसमें कई भाग थे। परीक्षा-पुस्तिकामें एक पृष्ठ पर अंकगणितके कुछ प्रश्न थे जो क्रमशः ऊपरसे नीचेको कठिन होते गये थे; एक पृष्ठ सामान्य जानकारी (जेनरल नॉलेज) से सम्बन्धित था; और एक पृष्ठ पर पर्याय तथा विलोम शब्दोंमें अन्तर बतानेके लिए प्रश्न थे। उदाहरणके लिए:

चढ़ना[1]—उठना[2]—पर्याय हैं या विलोम? उच्चतम बिन्दु[3]—निम्नतम बिन्दु[4]—पर्याय हैं या विलोम? ये तीनों

[1] ascend [2] rise [3] acme [4] nadir
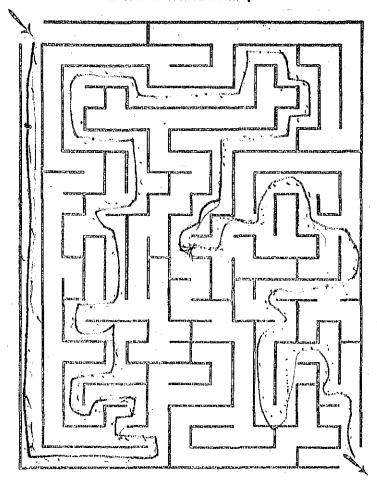
आकृति ५. एक पेंसिलकी भूलभुलैया। पेंसिल या अंगुली की सहायता से प्रवेशद्वारसे लेकर बाहर निकलनेके द्वार तक का सबसे सीधा रास्ता खोज निकालिए। एक बार आगे चलकर उसी रास्तेसे पीछे लौटने की अनुमति नहीं है। कई तरहकी भूलभुलैया दी जासकती है, कुछ इससे सरल होंगी, कुछ इससे कठिन। प्रश्न यह है कि प्रथम प्रयासमें ही परीक्षार्थी कितनी कठिन भूलभुलैया को पूरी तरह सुलझा सकता है। एक ही भूलभुलैया पर उसे कई बार प्रयास करनेका अवसर भी दिया जा सकता है। पूरी तरह भूलभुलैया को सुलझानेके पहिले परीक्षार्थी को जितने प्रयासों की आवश्यकता होती है, वही उसके प्राप्तांक समझे जायेंगे।

उप-परीक्षाएं यद्यपि पूर्णतः नहीं, तो भी बहुत कुछ व्यक्तिके «ज्ञान» भंडार पर निर्भर करती हैं। अन्य उप-परीक्षाओंमें से तीन ऐसी थीं जिनमें अधिकतर सतर्कता[1] और मानसिक लचीलापन (शीघ्रता के साथ एक के बाद दूसरे काम पर ध्यान देने की क्षमता) की आवश्यकता होती थी। इनमें से एक में मौखिक आज्ञा दी जाती थी, जैसे:

'अक्षरोंकी लाइनकी ओर देखो। जब मैं कहूं, "करो", तब लाइनके आखिरी अक्षरको काट दो, 'थ' अक्षरके चारों ओर गोला खींच दो और 'ठ' अक्षरके बादके दो अक्षरोंके नीचे लकीर खींच दो। करो!' (निर्धारित समय: १० सैकेंड)।

क ख ग घ च छ ज झ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म

दूसरी परीक्षा में संख्याओंके क्रमको जारी रखनेके लिए कहा जाता था, जैसे:

[1] alertness

१	३	२	६	३	..	..
४६	३६	२५	१६	६	..	..

एक दूसरी परीक्षा में चुनावकी काफ़ी गुंजाइश देकर तर्क-संगत या मेल खाते हुए शब्द रखनेको कहा जाता था। उदाहरणके लिए :

बायां—दाहिना : : ऊपर—(सामने, पीछे, नीचे, बाहर)

चाकू—ब्लेड : : बाण—(भाला, सिर, धनुष, मारो)

निरक्षर लोगोंके लिए दूसरे प्रकारकी परीक्षा-योजना तैयार की गयी। इसमें मूक अभिनयसे और श्यामपट पर लिखकर आदेश दिये जाते थे। इस योजना में अन्य उप-परीक्षाओंके अलावा इस तरहकी बातें भी होती थीं : किसी चित्रके छूटे हुए अंगोंको बनाकर चित्रको पूरा करना; भूलभुलैया; और 'क ख' के क्रमको, जैसा कि नीचेकी दो पंक्तियोंमें दिखाया गया है, जारी रखना :

क ख क ख क . . . .

क ख ख ख क क ख ख क क क ख क ख ख ख . . . .

बुद्धिका स्वरूप जैसा कि वह परीक्षाओंसे प्रकट होता है. बुद्धिमापक परीक्षाओंमें कई तरहकी वस्तुओंका प्रयोग किया जाता है, क्योंकि उनका उद्देश्य व्यक्तिकी मानसिक क्रियाओं की विस्तृत बानगी लेना होता है। उनमें ऐसी चेष्टाएं करने का आदेश दिया जाता है जो व्यक्तिकी स्वाभाविक रुचिके अनुकूल होती हैं। यदि हम यह जाननेके लिए परीक्षा-पत्रों की ओर देखें कि उनमें उत्तीर्ण होनेके लिए व्यक्तिको क्या करना चाहिए और क्या करनेसे वह उनमें अनुत्तीर्ण होसकता है, तो हमें उस 'बुद्धि' के स्वरूपका कुछ ज्ञान होजायगा जिसकी परीक्षा ली जारही है।

१. हम यह देखते हैं कि कई परीक्षाओंमें व्यक्तिके «पिछले अनुभव» से प्राप्त ज्ञानके उपयोगकी आवश्यकता पड़ती है। यह बिलकुल साफ़ है क्योंकि कभी-कभी परीक्षार्थीसे किसी शब्दकी परिभाषा पूछी जाती है और शब्दोंका अर्थ समझनेके लिए कहा जाता है। मनुष्याकृति खींचनेकी परीक्षा अथवा किसी चित्र-परीक्षा में भी यह बात स्पष्टतया लक्षित होती है। परन्तु भूलभुलैयों के बुझव्वलके सम्बन्धमें ठीक यही बात नहीं कही जासकती, क्योंकि बहुत सम्भव है, परीक्षार्थीका पाला इसके पूर्व ऐसी पहेलीसे पड़ा ही न हो। फिर भी, यहां भी पिछले अनुभवसे वह फ़ायदा उठा सकता है अगर वह जल्दबाज और चंचल नहीं है बल्कि दूरदर्शी है, तो यह गुण उसको पहेलियोंके सुलझानेमें भी सहायता देगा। सम्भवत: किसी भी नियोजित कार्यको करनेमें पिछले अनुभवका उपयोग किया जासकता है। कोई भी आचरण बुद्धिमत्तापूर्ण तभी कहा जायगा जब व्यक्ति उसमें पहिलेके सीखे हुए अपने ज्ञानका उपयोग करे।

२. फिर भी, बहुत थोड़े परीक्षा-विषय ऐसे होते हैं जिनमें पिछले अनुभवका हूबहू उपयोग करनेकी आवश्यकता पड़े। अधिकांश परीक्षाओंमें तो व्यक्तिके सामने जो समस्या रखी जाती है उसमें थोड़ी-बहुत नवीनता होती है। मान लीजिए, वह गेंद और सन्तरा— दोनोंसे अच्छी तरह परिचित है, परन्तु इसके पूर्व शायद उससे कभी नहीं पूछा गया कि ये दोनों वस्तुएं किस प्रकार समान और किस प्रकार भिन्न हैं। उसने अंकगणितके कई प्रश्न किये होंगे, परन्तु हरेक नया प्रश्न एक नयी समस्या सामने रखता है, ख़ासतौरसे उस समय जब परीक्षा में कई तरहके प्रश्न मिला दिये जाते हैं। विभिन्न कार्योंको एक जगह मिला देनेसे प्रत्येक परीक्षा-विषय एक नयी समस्या के रूपमें उपस्थित होता है।

३. अब तक हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि व्यक्तिकी बुद्धि का पता इस बातमें चलता है कि वह नयी परिस्थितियोंका सामना करनेमें पिछले अनुभवसे अर्जित ज्ञानका उपयोग कैसे और कहांतक करता है। कुछ हद तक तो यह परिभाषा ठीक कही जासकती है, परन्तु नयी परिस्थितियोंका सामना करनेकी प्रक्रिया में यह सोलहों आने ठीक नहीं उतरती।

नवीन परिस्थितियोंका सामना सफलतापूर्वक कैसे किया जासकता है? इस प्रश्न पर कुछ प्रकाश परीक्षा-विषयोंमें अनुत्तीर्ण होनेवाले व्यक्तियोंके तरीकोंसे पड़ता है। अनुत्तीर्ण होनेके कई तरीके होते हैं :

(क) समस्या को समझनेमें असफल रहना, लक्ष्य तक पहुंचनेकी कतई चेष्टा न करना। किसी छोटे बच्चेके हाथमें छेदोंवाला तख्ता और काठके टुकड़े दे दीजिए, वह काठके टुकड़ोंको यथानुरूप छेदोंमें डालनेके बजाय उन टुकड़ोंसे खेलना शुरू कर देगा।

(ख) समस्या को ठीक-ठीक न समझ पाना, लक्ष्य को न भेद पाना। विलोम-शब्द परीक्षा में परीक्षार्थी दिये हुए शब्दोंका ठीक अर्थ न समझकर और उनके उपयुक्त विलोम शब्द न ढूंढकर अस्पष्ट तथा सामान्य उत्तरोंसे ही सन्तुष्ट होजाता है।

(ग) समस्या को «समग्र» रूपमें समझनेमें असफल रहना। व्यक्ति जल्दबाजीमें समस्या के एक अंशको तो समझ ले, किन्तु यह न सोचे कि इससे समस्या की सारी बातें वह नहीं समझ पाया। किसी पहेलीको बूझते समय, वह दूर तक देखकर यह नहीं निश्चय कर लेता कि जिस गलीसे होकर वह अपनी पेंसिल घुमा रहा है, वह आगे जाकर बन्द तो नहीं होजाती। किसी चित्रका वर्णन करते समय वह चित्रका भाव समग्र रूपमें समझनेके बजाय कभी उसकी एक विशेषता

का वर्णन करता है और कभी दूसरी का।

(घ) अपने प्रथम उत्तरको जांचने या सिद्ध करनेमें असफल रहना। दूसरे शब्दोंमें, अपने-आप को एक आलोचक की दृष्टि से न देख पाना। संख्या-विषयक परीक्षाओं में व्यक्ति एक स्थान पर दो संख्याएं रख देता है, और पीछे फिर कर यह नहीं देख लेता कि सभी संख्याएं ठीक-ठीक रख दी गयी हैं। कुछ इसी प्रकार की चीज 'वाक्य-पूर्ति परीक्षा' होती है जिसमें हर रिक्त स्थान पर एक शब्द रखना पड़ता है। उदाहरणके लिए:

पहाड़की ······के निकट जहां·········वृक्षोंका बाग है, आपको उत्तर और·········में फैले हुए विस्तृत मैदानोंका ············दृश्य दिखाई देगा और दक्षिण तथा पश्चिममें उससे भी······पहाड़ दृष्टिगोचर होंगे।

कभी-कभी परीक्षार्थी उतावलीमें एकके बाद दूसरे रिक्त स्थानमें शब्द रखता चला जायगा बिना इस प्रकार पूर्ण हुए वाक्यको पढ़े और यह निश्चय किये कि उपयुक्त शब्द यथा-स्थान रखे गये हैं या नहीं।

संक्षेपमें, परीक्षाओंमें प्रयुक्त समस्याओंको और परीक्षाओं में उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण होनेवाले व्यक्तियोंके तरीक़ोंको देखने से यह पता चलता है कि बुद्धिमत्तापूर्ण आचरणमें यह सारी बातें आजाती हैं: समस्या को स्पष्टतया और सम.ा रूपमें देखना; समस्या को सुलझानेमें पिछले अनुभवसे प्राप्त ज्ञान का उपयोग करना और तबतक किसी हलको सही न समझना जबतक दुबारा जांचनेके बाद यह पूरी तरह विश्वास न हो जाय कि समस्या वास्तवमें सुलझ गयी है (१२)।

मानसिक[1] आयु और बुद्धिलब्धि[2]

किसी बुद्धि-परीक्षासे प्राप्त निरपेक्ष प्राप्तांक[3] का तात्पर्य केवल उन परीक्षा-विषयों से है जिनमें व्यक्ति उत्तीर्ण हो सकता है। जैसा अन्य परीक्षाओंमें होता है, वैसा यहां भी, निरपेक्ष प्राप्तांक व्यावहारिक दृष्टिसे निरर्थक होता है। इसको किसी ऐसे रूपमें बदलना चाहिए जिससे यह पता चल सके कि «परीक्षार्थी अन्य व्यक्तियोंकी तुलनामें कहां तक पहुंचता है।» बीनेने यह जाननेके लिए एक बहुत सुविधाजनक पद्धति निकाली है जो «मानसिक आयु» (मा० आ०) के नामसे जानी जाती है।

मानसिक आयु. विभिन्न आयुके बच्चोंके बहुतसे नमूनों का परीक्षण करनेके पश्चात् आयु-प्रतिमानों[4] को निर्धारित किया जाता है अर्थात् यह निश्चित किया जाता है कि किस आयुमें प्राप्तांक कितना होना चाहिये। आठ वर्षके बच्चोंके नमूनोंका औसत प्राप्तांक अष्टवर्षीय प्रतिमान है। १५ वर्षकी अवस्था तक प्रतिमान प्रति वर्ष बढ़ते जाते हैं और इस प्रकार हमें मानसिक आयु का मापदंड मालूम हो जाता है। किसी व्यक्तिके निरपेक्ष प्राप्तांकको अब मानसिक आयुमें बदला जा सकता है। किसी बच्चे या वयस्क का प्राप्तांक यदि अष्टवर्षीय प्रतिमानके बराबर है तो यह कहा जायगा कि उसकी मान-सिक आयु ८ वर्ष है। यदि उसका प्राप्तांक अष्टवर्षीय और नववर्षीय प्रतिमानके ठीक बीचमें पड़े तो उसकी मानसिक आयु ८½ वर्ष मानी जायगी।

किसी समय व्यक्तिकी जो मानसिक आयु होती है उससे उस समय के उसकी बुद्धिके स्तरका पता चलता है। यह कहना कि अमुक बच्चा या वयस्क आठ वर्षकी मानसिक आयु, अर्थात् औसत ८ वर्ष वाले बच्चेके मानसिक स्तर तक पहुंच चुका है, एक निश्चित अर्थका बोध कराता है। इसका मतलब यह होता है कि वह तीसरी कक्षा की पढ़ाई करनेके लिए बौद्धिक दृष्टिसे योग्य हो चला है, किन्तु किसी भी तरह चौथी या पांचवीं कक्षा का काम करनेके योग्य वह नहीं है। कारखानोंमें आठ वर्षकी मानसिक आयुका तात्पर्य यह होता है कि व्यक्ति किसी भी प्रकारकी क्लर्की करनेके अयोग्य है, परन्तु उचित शारीरिक पुष्टता प्राप्त करनेके बाद वह साधारण पैकिंग तथा दूसरे ऐसे काम सन्तोषप्रद ढंगसे कर सकता है जिनको करनेमें बहुत बुद्धि नहीं लगानी पड़ती।

बुद्धिलब्धि. मानसिक आयुसे उन सभी बातोंका पता नहीं चलता जिनको किसी बच्चेकी बुद्धिके विषयमें हम जानना चाहते हैं। यदि वह बच्चा जिसकी मानसिक आयु ८ वर्ष है, केवल ५ वर्षकी अवस्था का है तो हम उसे तीव्रबुद्धि कहेंगे, किन्तु यदि उसकी अवस्था १२ वर्षकी हो तो उसे बहुत मन्दबुद्धि कहा जायगा। उसकी मानसिक आयुके साथ-साथ हम जानना चाहते हैं कि उसकी वास्तविक आयु[5] के अन्य बच्चोंकी तुलनामें वह कितना कुशाग्र है। कुशाग्रता जांचने की एक आसान पद्धति यह है कि मानसिक आयुमें वास्तविक आयुका भाग दिया जाय और इसप्रकार «बुद्धि-लब्धि» (बु० ल०) प्राप्त की जाय:

$$\text{बु०ल०} = \frac{\text{मा० आ०}}{\text{वा० आ०}}$$

८ वर्षकी मा० आ० और १२ वर्षकी वा० आ० वाले बच्चे की बु० ल० $\frac{८}{१२}$ या '६७ होगी। दूसरा बच्चा जिसकी मा० आ० वही है, किन्तु वा० आ० ५ वर्ष है, उसकी बु० ल० बहुत ऊंची अर्थात् $\frac{८}{५}$ या १'६० होगी। किसी भी आयुके औसत बच्चेकी बु० ल० १'०० होती है, क्योंकि उसकी मा० आ० उसकी वास्तविक आयुके प्रतिमानके बराबर-सी है।

सामान्यतया दशमलव बिन्दु छोड़ दिया जाता है और औसत

[1] mental age [2] Intelligence quotient [3] raw score [4] age norms [5] जन्मसे गिनी जानेवाली आयु

दर्जेके बच्चेके लिए यह मान लिया जाता है कि उसकी बुद्धि-लब्धि १०० है। जिस बच्चेकी बु० ल० १०० से अधिक होती है, वह *अपनी वास्तविक आयुकी* सही औसतसे ऊपर माना जाता है; इसी प्रकार जिस बच्चेकी बु० ल० १०० से कम होती है, वह सही औसतसे नीचे समझा जाता है। जिन व्यक्तियोंकी बु० ल० १०० से कुछ ही बिन्दु कम या अधिक होती है, उनको व्यावहारिक तौर पर औसत दर्जेका ही मान लिया जाता है।

मा० आ० और बु० ल० दो तरहके मापदंड हैं जिनके विभिन्न उपयोग इस बात पर निर्भर करते हैं कि आप किसी व्यक्तिके विषयमें क्या जानना चाहते हैं। दो बच्चोंका उदाहरण लीजिए, जिनमें से एक ५ वर्षका है, दूसरा १२ वर्षका। इनमें से प्रत्येकको मानसिक आयु ८ वर्ष है। इस समय दोनोंका स्तर एक है, दोनोंकी वर्तमान बुद्धि समान है (बुद्धि-परीक्षाओंसे जहां तक पता चलता है)। किन्तु छोटा बच्चा अपनी उम्र को देखते हुए, विशेष रूपसे बुद्धिमान है, जब कि बड़ा लड़का वा० आ० की दृष्टिसे बुद्धिमें बहुत पिछड़ा हुआ है। इसलिए दोनोंकी बुद्धि-लब्धियोंको प्रमाण मानकर हम कहते हैं कि दोनों बच्चोंमें से छोटा बच्चा अधिक प्रखर बुद्धिका है। तो, इसको हम इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं: मानसिक आयु बौद्धिक उपलब्धिका स्तर जाननेका एक माप है और बुद्धि-लब्धि बुद्धिकी प्रखरताकी या उसी आयुके अन्य व्यक्तियों की तुलना में उपलब्धिकी सूचक है। यह भविष्यमें होनेवाली बौद्धिक उपलब्धिका भी पूर्वज्ञान कराती है।

जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है, उसकी बुद्धि विकसित होती है और उसकी मानसिक आयु बढ़ती है। यह आवश्यक नहीं कि उसकी बुद्धि-लब्धि भी बढ़े। वास्तवमें बचपन और युवावस्था के वर्षोंमें «औसत» बुद्धि-लब्धि १०० ही रहती है। मा० आ० और बु० ल० की परिभाषा जिस ढंगसे की जाती है, उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है।

बुद्धि-लब्धि की स्थिरता. यद्यपि सभी बुद्धि-लब्धियोंका औसत १०० पर आकर स्थिर होजाता है, तो भी इसका यह अर्थ नहीं है कि व्यक्तिकी बुधि-लब्धि स्थिर रहनी चाहिए। औसतमें उलटफेर किये बिना भी राम ऊपर उठ सकता है और श्याम नीचे गिर सकता है। किन्तु साधारणतया, तथा कुछ सीमाओंके भीतर, व्यक्तिकी बुद्धि-लब्धियां एक-सी रहती हैं।

व्यक्तिकी बुद्धि-लब्धि में कुछ उतार-चढ़ाव की आशा की जा सकती है। किसी दिन उसकी तबियत अन्य दिनोंकी अपेक्षा अच्छी होती है और वह दूसरे दिनोंकी अपेक्षा उस दिन अधिक अच्छा काम करता है; और एक समान कठिन प्रश्नोंमें भी, कुछ प्रश्न उसको दूसरे प्रश्नोंकी अपेक्षा रोचक जान पड़ते हैं। इसके अलावा परीक्षक की मनोदशा का भी प्रभाव पड़ता है। परीक्षार्थीकी किसी परिभाषा पर अंक देनेमें वह किसी दिन अत्यन्त उदार हो सकता है और किसी दिन अत्यन्त कठोर। शब्द-भंडार[1] की परीक्षा लेते समय प्राय: ऐसा होजाता है। यह ध्यान देनेकी बात है कि बुद्धि-परीक्षा के यथासम्भव सही होते हुए भी, यदि व्यक्तिकी दुबारा परीक्षा, बुद्धिमें वास्तविक परिवर्तन हो सकनेका अवसर मिलनेसे पूर्व ही ली जाय तो उसकी बुद्धि-लब्धि के ऊपर या नीचे जानेकी सम्भावना रहती है। जब «एक सप्ताहके भीतर» ही संशोधित स्टैन्फ़ोर्ड-बीने पद्धतिकी दो समान स्तरकी प्रश्नावलियोंके आधार पर बच्चों की परीक्षा ली गयी, तब देखा गया कि उच्च बुद्धि-लब्धियां ६ बिन्दु तक ऊपर या नीचे गयीं, मध्यम बुद्धि-लब्धियां लगभग ५ बिन्दु और निम्न बुद्धि-लब्धियां लगभग २·५ बिन्दु तक। और कुछ व्यक्तियोंमें तो इन औसत परिमाणोंसे भी कुछ अधिक परिवर्तन देखे गये। मन्दबुद्धि बालकोंकी अपेक्षा प्रखर बुद्धि बालकोंमें, और बड़े बच्चोंकी अपेक्षा छोटे बच्चोंमें इस तरहके उतार-चढ़ाव अधिक पाये जाते हैं (१५)।

जब «बहुत दिनोंके बाद» किसी व्यक्तिकी पुनः परीक्षा ली जाती है, तब व्यक्तिकी बुद्धि-लब्धियोंमें होनेवाले बहुतसे परिवर्तनोंको हम गम्भीरतापूर्वक नहीं लेते, यों अकस्मात् ५-१० बिन्दुके उतार-चढ़ाव की छूट हम दे सकते हैं। यहां हम एक छोटी लड़कीके परीक्षा-विवरणको उदाहरणस्वरूप दे रहे हैं। ६ वर्षकी अवधिमें इस लड़कीकी ५ बार परीक्षा ली गयी:

	वास्तविक आयु	मानसिक आयु	बुद्धि-लब्धि
पहिली परीक्षा	६ वर्ष ८ महीना	५ वर्ष ६ महीना	८३
दूसरी परीक्षा	७ „ १ „	५ „ ४ „	७५
तीसरी परीक्षा	८ „ २ „	६ „ १० „	८४
चौथी परीक्षा	८ „ ७ „	७ „ ० „	८२
पांचवीं परीक्षा	१२ „ १० „	९ „ १० „	७७

यह लड़की ८० से केवल कुछ बिन्दु ही ऊपर या नीचे जाती है। अब एक दूसरी लड़कीका उदाहरण लीजिए, जिसकी बुद्धि-लब्धि पहिले वालीसे ऊंची है और जिसमें अधिक भिन्नता है।

	वास्तविक आयु	मानसिक आयु	बुद्धि-लब्धि
पहिली परीक्षा	८ वर्ष ० महीना	९ वर्ष ९ महीना	१२२
दूसरी परीक्षा	९ „ १ „	११ „ ५ „	१२६
तीसरी परीक्षा	१० „ ० „	११ „ ४ „	११३
चौथी परीक्षा	१० „ ११ „	११ „ ७ „	१०६
पांचवीं परीक्षा	१२ „ ० „	१३ „ ६ „	११३

[1] vocabulary

अन्य व्यक्तियोंके लिखित-विवरणोंका उदाहरण लेकर स्थिरता[1] या अस्थिरता[2] को सरलतापूर्वक स्पष्ट किया जा सकता है। काफी लम्बी अवधि पर्यन्त सैकड़ों बच्चोंकी पुन: परीक्षा लेने पर पता चला है कि उनकी बुद्धि-लब्धि में औसतन ५ या १० बिन्दुका उतार-चढ़ाव हुआ है; केवल कुछ बुद्धि-लब्धियों में २० या २५ बिन्दुका अन्तर पड़ा है। निष्कर्षत: पूरी तरह तो नहीं, पर बहुत कुछ हरेक बच्चेकी बुद्धि-लब्धि स्थिर ही रहती है और प्रखर-बुद्धि वाला बालक बुद्धिमान वयस्क बन जाता है। इस प्रकार बचपनमें प्राप्त बुद्धि-लब्धि से बच्चेकी भावी प्रगतिका बहुत कुछ आभास मिल जाता है। यदि ६ वर्षकी आयुमें किसी बच्चेकी मानसिक आयु ८ हो और इस प्रकार बुद्धि-लब्धि १३३, तो हम भविष्यवाणी कर सकते हैं कि उसकी वास्तविक आयु १० वर्षकी होने पर संभवत: (निश्चित रूपसे तो नहीं) उसकी मानसिक आयु १३ वर्ष होगी और बादमें वह कॉलेजकी ऊंची पढ़ाई करनेके योग्य हो सकेगा। फिर भी स्कूल जानेके पूर्वकी अवस्था में लीगयी परीक्षाओंके आधार पर की गयी भविष्यवाणी उतनी ठीक नहीं उतरती जितनी ६ वर्षकी अवस्था के बाद ली गयी परीक्षाओंके आधार पर की गयी भविष्यवाणी।

कभी-कभी बुद्धि-लब्धि की स्थिरता का उपयोग यह सिद्ध

५ से १० वर्ष के २५ बच्चों की बुद्धि-लब्धि
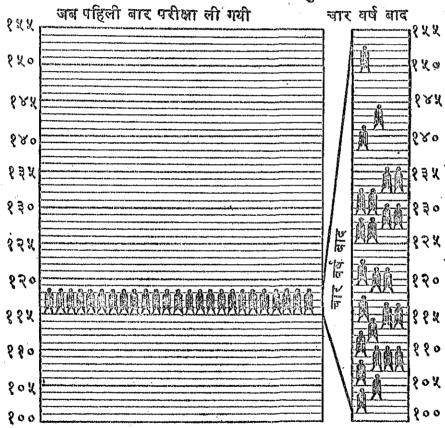
आकृति ६. २५ बच्चोंकी बुद्धि-लब्धि में परिवर्तन, जिनकी बुद्धि-लब्धि पहिले परीक्षणमें ११५ थी। प्रगतिशील विद्यालयोंमें ४ वर्ष रह लेने पर इनमें से कुछ बच्चोंकी बुद्धि-लब्धि तो ऊपर उठगयी, जब कि अन्य बच्चोंकी बुद्धि-लब्धि नीचे गिर गयी। ०—२०० की समस्त बुद्धि-लब्धि विस्तारकी तुलना में ये परिवर्तन कुछ बड़े नहीं कहे जा सकते। औसत परिवर्तनमें ५ अंकोंका लाभ रहा (कोलम्बिया विश्वविद्यालयके मनोवैज्ञानिक अभिलेखोंसे संगृहीत सामग्री)।

[1] constancy [2] inconstancy

करनेके लिए तर्कके रूपमें किया गया है कि व्यक्तिकी बुद्धि पूर्णतया वंशानुक्रमसे निर्धारित होती है और शिक्षा तथा परिवेश सम्बन्धी अन्य प्रभावोंसे उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। परन्तु इस दलीलमें दोष यह है कि सामान्य परिस्थिति में बच्चेका परिवेश बहुत-कुछ स्थिर या अपरिवर्तित रहता है। यदि उसके घरका परिवेश अच्छा है, तो वह साधारणतया अच्छा ही रहता है। यदि बचपनके प्रारम्भिक वर्षोंमें उसको अच्छा स्कूल और पड़ोस मिल गया, तो बचपनके बाद के वर्षोंमें भी प्रायः उसको ऐसी सुविधाएं मिलती रहती हैं। इसलिए तर्ककी दृष्टिसे बुद्धि-लब्धि की स्थिरता का कारण या तो परिवेशकी स्थिरता में, या उसकी वंश-परम्परा में, या दोनोंके मेलजोलमें ढूंढा जा सकता है।

आंशिक रूपसे अन्धे और बहरे बच्चोंकी ये कमियां जब किसी प्रकार दूर करदी जाती हैं, तब उनकी बुद्धि-लब्धिमें निश्चित और स्थायी उन्नति दिखाई देती है। इसका कारण यह है कि उनको परिवेशसे अपेक्षाकृत अधिक उत्तेजना[1] मिलती है और बौद्धिक कार्योंका अभ्यास करनेके लिए उनको अपेक्षाकृत अधिक अवसर मिलते हैं। परिवेशमें जानबूझकर परिवर्तन करके प्रायोगिक रूपसे यह देखनेकी भी चेष्टा की गयी है कि उन्नत परिवेशका बुद्धि-लब्धि की बुद्धि पर क्या प्रभाव पड़ता है? इनमें से कुछ प्रयोगोंके परिणामों पर अगले किसी प्रकरणमें विचार किया जायगा।

वयस्क बुद्धि. प्रश्न उठता है कि एक औसत वयस्क व्यक्ति कितना बुद्धिमान है? देखनेमें यह सरल-सा प्रश्न लगता है, लेकिन इसमें दो कठिनाइयां हैं: पहिली कठिनाई तो वयस्कोंके लिए उपयुक्त परीक्षा-साधनोंका निर्धारण करनेमें है, दूसरी कठिनाई है परीक्षणके लिए वयस्कोंका अच्छा नमूना प्राप्त करनेमें।

वयस्क व्यक्ति विभिन्न दिशाओंमें विशेष जानकारी प्राप्त करनेकी चेष्टा करते हैं; इसलिए ऐसी परीक्षा का चुनाव करना एक कठिन समस्या हो जाती है जो उच्च-कोटि के व्यक्तिके लिए काफ़ी मुश्किल भी हो और जिसमें सबके साथ समान रूपसे न्याय होसके। यों तो आसानीसे क़ानून, चिकित्सा-विज्ञान और इंजीनियरिंग आदि विषयोंसे उत्कृष्ट बुद्धिको मापनेकी क्षमता रखनेवाले प्रश्न चुने जासकते हैं, परन्तु स्पष्ट है कि इसप्रकार सबके साथ न्याय नहीं होसकेगा। इसलिए मनोवैज्ञानिकोंने एक उपाय निकाला है। वयस्कोंकी परीक्षा लेनेके लिए भी वे वैसे ही विषयोंका चुनाव करते हैं, जैसे विषयों का उपयोग बच्चोंकी परीक्षा लेनेमें वे करते आये हैं। अन्तर केवल इतना होता है कि वयस्कोंके प्रश्न कुछ कठिन होते हैं। वयस्कोंके प्रश्नोंमें यदा-कदा बारह वर्षके प्रखर-बुद्धि बालक या बालिका भी उत्तीर्ण होजाते हैं, पर उत्कृष्ट वयस्क तो निश्चित रूपसे सफल हो ही जाते हैं।

वयस्कोंके नमूने प्राप्त करनेकी समस्या तो सचमुच परेशानी पैदा करनेवाली है। जबतक लगभग सब बच्चे स्कूल जाते हैं, तबतक विभिन्न अवस्थाओंके बच्चोंका प्रतिनिधित्व करनेवाले नमूने स्कूलसे ही छांटे जासकते हैं और इस प्रकार ठीक-ठीक आयु-प्रतिमान[2] निर्धारित किये जासकते हैं। परन्तु ज्यों ही काफ़ी संख्यामें किशोर स्कूल छोड़ देते हैं, स्कूलमें अध्ययन जारी रखनेवाले अपनी आयुवाले वर्गके वास्तविक प्रतिनिधि नहीं रह जाते। उदाहरणके लिए, २१ वर्षकी स्त्रियों या पुरुषोंके उचित नमूने हम कैसे प्राप्त करें, ताकि उनकी परीक्षा लेकर २१ वर्षीय प्रतिमान निश्चित किया जासके? १९१७-१८ के महायुद्धमें कई हज़ार रंगरूटोंकी, जिनकी आयु २०-३० वर्ष की थी, 'आर्मी अल्फ़ा[3] और आर्मी बीटा[4]' परीक्षाएं लीगयीं—नमूना काफ़ी बड़ा था, परन्तु वह पूर्णतः प्रतिनिध्यात्मक नहीं था, क्योंकि बहुतसे रंगरूट इन परीक्षाओंमें बैठनेसे बरी कर दिये गये थे। रंगरूटों द्वारा प्राप्तांकोंका औसत १३ वर्षीय बालकोंके समान ही था। इसका तात्पर्य यह है कि उस आयुके बादमें बुद्धिका बहुत विकास नहीं हुआ। देखनेमें यह कितना अप्रिय परिणाम था—पूर्ण वयस्क व्यक्तियोंकी मानसिक आयु १३ वर्षके बालकके बराबर!

स्टैन्फ़ोर्ड-बीने-परीक्षा-पद्धति का प्रमाणीकरण[5] करते समय इस बातके लिए पूरा प्रयत्न किया गया कि १८ वर्ष तक की आयु वाले वर्गोंके ठीक नमूने मिल सकें और परीक्षाओंका स्तर भी ऊंचा उठाया जासके, ताकि १८ वर्ष आयुका प्रखरतम बुद्धि वाला व्यक्ति भी अपनी पूरी योग्यता प्रदर्शित करसके। औसत प्राप्तांक धीरे-धीरे १३ वर्षके आगे तो सरके, किन्तु १५ वर्षके बाद तो बिरले ही बढ़े। इस परिणामके अनुसार १५ वर्षकी आयु तक वयस्क-बुद्धि आजाती है, यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि कुछ व्यक्ति अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा धीरे-धीरे प्रौढ़ता प्राप्त करते हैं। कुछ दूसरे नमूनोंसे पता चला है कि १६ वर्षकी अवस्था तक भी बुद्धिमें हल्की वृद्धि हुई है, या कुछ लोगोंके साथ तो १८ वर्ष तक ऐसा होता देखा गया है (५, १६)।

किशोरावस्था में बुद्धि-विकास की प्रक्रिया को एक दूसरी विधिसे भी जाना जासकता है जिसमें नमूने एकत्र करनेकी परेशानी नहीं होती: उन्हीं व्यक्तियोंकी बार-बार, प्रति वर्ष, परीक्षा लीजिए। अनेक बार परीक्षा देनेके कारण उनकी बुद्धिमें जो अभ्यासजन्य विकास हो, उसके लिए उचित छूट दे देनी चाहिए। इस प्रकारके कुछ अध्ययनोंसे पता चला है कि १४ वर्षकी अवस्था के बाद बुद्धिमें कोई प्रगति नहीं होती,

[1] stimulation　[2] age norms　[3] Army Alpha　[4] Army Beta　[5] standardization

अन्य अध्ययनोंसे १८ या २० वर्ष तक भी मामूली प्रगति होती देखी गयी है। (आगे चलकर मानसिक विकासके प्रश्न पर विचार करते समय इस समस्या को विस्तारसे समझानेका प्रयत्न किया गया है।)

इन प्रयोगोंसे एक बात साफ़ होगयी कि शारीरिक बुद्धिकी तरह मानसिक बुद्धि भी किशोरावस्था में कम होने लगती है और १५–१८ वर्षकी अवस्थामें वह वयस्कता के स्तर तक पहुंच जाती है। इस प्रकारके निष्कर्षसे डरने की आवश्यकता नहीं। यदि बुद्धिकी प्रौढ़ता का स्तर ऊंचा उठाया जासके, तो यह सुन्दर ही रहेगा। परन्तु मान लीजिए कि मानसिक विकासकी प्रक्रिया को बढ़ाने या रोकनेकी शक्ति आपमें होती। तो, क्या आपको इस प्रक्रिया को लम्बी खींचनेसे कोई लाभ जान पड़ता? इस तरह से तो ३० या ४० वर्ष की अवस्था से पूर्व बुद्धि परिपक्व हो ही न पाती। क्या प्रत्येक व्यक्तिके लिए यह ठीक न रहेगा कि वह किशोरावस्था में ही मानसिक विकासकी चोटी पर पहुंच जाय, ताकि वयस्कावस्था के उत्तरदायित्वोंको वह सँभाल सके? वयस्क-स्तर तक पहुंचने का अर्थ यह है कि व्यक्ति सीखने, नवीन विचारोंको ग्रहण करने और नयी समस्याओंका हल ढूंढनेके लिये पूरी तरहसे योग्य होगया है। अध्यवसायी वयस्क तो कई वर्षों तक विद्यार्थी बना रहता है। संसार तथा अपनी समस्याओंके सम्बन्धमें उसे जो ज्ञान प्राप्त होता है, उससे वह अपने परिवेश का सफलतापूर्वक सामना करनेमें समर्थ होजाता है, भले ही उसकी सामर्थ्य और शक्तिमें कोई वृद्धि न हुई हो। नयी समस्याओं का सामना करनेमें वह २० वर्षकी अवस्था में जितना कुशल था, उससे अधिक कुशल वह सम्भवतया ४० वर्षकी अवस्थामें नहीं हो पाता, किन्तु पिछले अनुभवोंके कारण उसके लिए वे समस्याएं एकदम नयी नहीं रहतीं।

वयस्कों की बुद्धि-लब्धि का निर्धारण. एक बच्चेकी बुद्धि-लब्धि (बु० ल०) उसके मानसिक विकासकी रफ़्तारके सम्बन्ध में कुछ जानकारी कराती है। वह 'उपलब्धि'[1] के एक निश्चित स्तर तक पहुंच गया है (यह हुई उसकी मा० आ०) और वहां तक पहुंचने में उसको कुछ वर्ष लगे हैं (उसकी वा० आ०)। किन्तु एक वयस्कके बारेमें बुद्धि-लब्धि का स्पष्टत: यही अर्थ नहीं होसकता। उसकी परीक्षा के प्राप्तांक या मा० आ० से उसकी उपलब्धिका स्तर मालूम होजाता है, परन्तु उसकी वा० आ० से पता नहीं चलता कि इस स्तर तक पहुंचनेमें विकास के कितने वर्ष उसने लगाये। सम्भवत: वह १२ से २० वर्ष तक की अवस्था के बीच अपनी वयस्कता को प्राप्त हुआ और हम यह मान सकते हैं कि १५ वर्षकी अवस्थामें वह इस स्तर तक पहुंच गया। उसकी बुद्धि-लब्धि निर्धारित करनेके लिए इस संख्या को हम उसकी वा० आ० के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं। वयस्कोंकी 'बुद्धिलब्धि' निकालनेके लिए यह नियम परम्परा से चला आरहा है। वास्तवमें, हम किसी वयस्कके विषयमें यही जानना चाहते हैं कि अन्य वयस्कोंकी तुलनामें उसका स्थान क्या है, अर्थात् वयस्क-बुद्धि के वितरणमें उसकी स्थिति क्या है (१६)।

जनसंख्या में बुद्धि का वितरण

बुद्धि-परीक्षा का तात्पर्य यह जानना है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिकी तुलनामें कैसा है। अधिक ठीक कहें, तो समस्त जनसंख्या की तुलनामें किसी भी व्यक्तिकी स्थितिका ज्ञान करना इसका उद्देश्य होता है। व्यक्तिकी बुद्धि-लब्धिकी तुलना सामान्य व्यक्तियोंकी बुद्धि-लब्धियोंसे करनी चाहिए। हमें यह जानना आवश्यक है कि बुद्धि-लब्धियोंकी परिधि[2] क्या है और आबादीकी कौन-सी संख्या या प्रतिशत उस परिधिके प्रत्येक भागमें पड़ता है।

यदि हमें यह मालूम होजाय कि किसी बच्चेकी बुद्धि-लब्धि से जनसंख्यामें उसके स्थानके विषयमें कितना पता चलता है, तो इस समस्या का स्पष्टीकरण होजाय। यदि उसकी बुद्धि-लब्धि १०० है, तो वह ठीक तौरसे औसत पर है; यदि १०० से ऊपर है तो वह औसतसे कुछ ऊपर है। इतना हम पहिले ही जान चुके हैं। किन्तु यदि हम किसी खास बच्चेमें दिलचस्पी रखते हैं तो हम इससे कुछ अधिक बातें जाननेकी चेष्टा करते हैं। यदि उसकी बुद्धि-लब्धि ११० है, तो हम जानना चाहते हैं कि क्या यह संख्या औसतसे इतनी अधिक है कि उसे विशेष रूपसे प्रखर-बुद्धिका व्यक्ति माना जाय, या यह कतई अपवादस्वरूप नहीं है।

बुद्धि-लब्धि की "परिधि[2]" मालूम होजाने पर हमें इस प्रश्न का आंशिक उत्तर मिल जाता है। जैसा कि पहिले ही बताया जा चुका है, यह परिधि लगभग शून्यसे लेकर २०० तक फैली रहती है। चूंकि ११० इस परिधिके मध्यके आस-पास पड़ता है, इसलिए हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि यह व्यक्ति औसत से बहुत ऊपर नहीं है। परन्तु हम इससे अधिक सही विवरण जानना चाहते हैं।

बुद्धि-लब्धि के वितरण से पता चलता है कि जनसंख्यामें कितनी बार बुद्धि-लब्धि के प्रत्येक मानकी पुनरावृत्ति हुई है। जनसंख्या के एक अच्छे नमूनेकी परीक्षा ली जानी चाहिए और उसमें प्रत्येककी बुद्धि-लब्धि निकालनी चाहिए। बुद्धि-लब्धियोंकी परिधि बराबर भागोंमें विभक्त की जाती है, जैसे १०० से १०५, १०५ से ११०, ११० से ११५ इत्यादि; और

[1] achievement [2] range
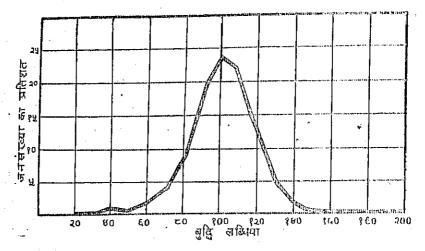
आकृति ७. २ से १८ वर्षकी मिली-जुली आयुके लगभग २,९०० बच्चोंकी बानगी में बुद्धि-लब्धियोंका वितरण। जैसा कि पृष्ठ ३७ पर समझाया गया है, यह बानगी अमेरिका के आदिवासी गोरे बच्चोंका यथासम्भव अच्छे से अच्छा प्रतिनिधित्व करनेके लिए बड़ी सावधानीसे चुनी गयी थी। आधार-रेखा के किसी बिन्दुसे ऊपर वक्ररेखा की ऊंचाई यह बतलाती है कि ५ अंक बुद्धि-लब्धि ४० या ६० या १०० इत्यादिके अन्तर्गत आनेवाले बच्चोंकी संख्या कितने प्रतिशत है। [टरमैन और मेरिल (१५) से संगृहीत सामग्री]

हर भागके अन्दर पड़नेवाली संख्या या प्रतिशतको गिन लिया जाता है। इसप्रकार एक वितरण-तालिका बन जाती है और एक वितरण-वक्ररेखा निर्मित होजाती है। हमको अधिकतर बच्चोंसे प्राप्त परिणामों पर ही निर्भर रहना पड़ता है, क्यों कि उनके नमूने वयस्कोंकी अपेक्षा अधिक ठीक रीतिसे तैयार किये गये हैं। बच्चोंके बहुतसे प्रतिनिध्यात्मक नमूनोंके आधार पर प्राप्त कियेगये बुद्धि-लब्धि-वितरण (आकृति ७) सम्भवतः वयस्कोंके विषयमें लागू होसकते हैं। अन्य वितरण-वक्र-रेखाओं की भांति इस वक्ररेखा में भी सबसे अधिक व्यक्ति औसतके समीप दिखाई देते हैं और दोनों सिरोंकी ओर उनकी संख्या उत्तरोत्तर कम होती जाती है। ११० की अपेक्षा १२० की बुद्धि-लब्धियां सामान्यतः कम पायी जाती हैं, १३० की बुद्धि-लब्धियां तो और भी कम मिलती हैं। इसीप्रकार जितना ही ऊपर चढ़ते जाते हैं, यह न्यूनता बढ़ती जाती है। १०० से नीचे विपरीत क्रममें यही चीज देखनेमें आती है। और कहीं भी कोई रिक्तता[1] नहीं दिखाई देती—उत्कृष्ट[2] और औसतमें तथा औसत और मन्दबुद्धिमें कोई विच्छिन्नता नहीं जान पड़ती। यहां तक कि मन्दबुद्ध[3] और दुर्बलबुद्धि[4] में भी कोई विच्छिन्नता नहीं दिखाई पड़ती। वस्तुतः ये लोगोंके पृथक्-पृथक् वर्ग नहीं हैं, वरन् ये प्रखरता[5] और मन्दता की क्रमशः घटती-बढ़ती मात्राएं हैं।

यही तथ्य, कुछ भिन्न रूपमें, नीचे एक तालिकामें दिये जा रहे हैं जो बताती है कि बुद्धि-लब्धि के मानोंकी परिधिके हर भागमें व्यक्तियोंका कौन-सा प्रतिशत आता है।

बुद्धि-लब्धि के मानों का वितरण

बुद्धि-लब्धि	जनसंख्याका प्रतिशत	
१४० से ऊपर	१	प्रतिभाशाली[6]
१३० से १३९ तक	२	अत्यन्त उत्कृष्ट
१२० से १२९ तक	८	
११० से ११९ तक	१६	उत्कृष्ट[2]
१०० से १०९ तक	३२	औसत
९० से ९९ तक	२३	
८० से ८९ तक	१६	निम्न औसत बुद्धि
७० से ७९ तक	८	सीमागत[7]
६० से ६९ तक	२	मानसिक अभावग्रस्त[8]
६० से नीचे	१	

यदि हम पुनः अपने प्रश्न पर आ जायें कि जनसंख्या में ११० की बुद्धि-लब्धि कितनी अपवादस्वरूप है, तो इस वितरण-तालिका से हमें उत्तर मिल जाता है। हम देखते हैं कि १४० की बुद्धि-लब्धि अत्यन्त प्रखरबुद्धिका द्योतक है, यहां तक कि

[1] gap [2] superior [3] dull [4] feebleminded [5] brightness [6] genius [7] border line [8] mentally deficient

केवल १ प्रतिशत लोगों ने उसका अतिक्रमण किया। १३० की बुद्धि-लब्धि का अतिक्रमण १ + २ = ३ प्रतिशत ने किया और ११० की बुद्धि-लब्धि का १ + २ + ८ + १६ = २७ प्रतिशत ने। इसी प्रकार विपरीत दिशा में ६० की बुद्धि-लब्धि से, जो कम बुद्धिका द्योतक है, केवल १ प्रतिशत आबादी नीचे गयी है, जबकि ७० की बुद्धि-लब्धि का अतिक्रमण, अधिक मन्द होनेकी दृष्टिसे ३ प्रतिशत लोगों ने किया है।

इस तालिका को दूसरे रूपमें रखकर यह दिखाया जासकता है कि १४० या १३० आदिकी बुद्धि-लब्धि द्वारा बुद्धि-लब्धियों के किस प्रतिशतका «अतिक्रमण» किया जाता है। (अगले पृष्ठकी तालिका देखिए)।

शतांशीय बुद्धि-प्राप्तांक और प्रामाणिक बुद्धि-प्राप्तांक[1]. इस अन्तिम तालिका में वर्णित तथ्योंको इस प्रकार भी बताया जा सकता है कि एकसौ चालीस, ९९ शतांशीय बुद्धि-लब्धि है; एकसौ दस ७३ शतांशीय बुद्धि-लब्धि है; नब्बे २७ शतांशीय बुद्धि-लब्धि है, इत्यादि। शतांशीय मूल्योंकी गणना विस्तारसे की जा सकती है। ५० शतांशीय बुद्धि-लब्धि वस्तुतः १०० है और २५ शतांशीय तथा ७५ शतांशीय बुधि-लब्धियां क्रमशः ८९ और १११ हैं। इस प्रकार आधी जनसंख्या इन संकुचित सीमाओंके भीतर आ जाती है।

१४०	की बुद्धि-लब्धि	सभी	बुद्धि-लब्धियोंके	९९	प्रतिशतका	अतिक्रमण[4]	करती है
१३०	,,	,,	,,	९७	,,	,,	,,
१२०	,,	,,	,,	८९	,,	,,	,,
११०	,,	,,	,,	७३	,,	,,	,,
१००	,,	,,	,,	५०	,,	,,	,,
९०	,,	,,	,,	२७	,,	,,	,,
८०	,,	,,	,,	११	,,	,,	,,
७०	,,	,,	,,	३	,,	,,	,,
६०	,,	,,	,,	१	,,	,,	,,

इन्हीं आंकड़ोंसे प्रतिमान प्राप्तांक[2] निकाले जा सकते हैं। जैसा कि इस संशोधित स्टैन्फ़ोर्ड-बीने परीक्षा के लिए निश्चित किया गया है, औसत बुद्धि-लब्धि १०० है और प्रतिमान विचलन[3] १६ बुद्धि-लब्धि बिन्दु है। तदनुसार ११६ की बुद्धि-लब्धि + १ के प्रतिमान प्राप्तांकके बराबर है, १३२ की बुद्धि-लब्धि बराबर है + २ के, १४० की बुद्धि-लब्धि + २·५ के; और इसी प्रकार ८४ की बुद्धि-लब्धि — १ के प्रतिमान प्राप्तांकके बराबर है, ६८ की बुद्धि-लब्धि — २ के, ६० की बुद्धि-लब्धि — २·५ के, इत्यादि। वास्तवमें कोई भी बुद्धि-लब्धि प्रतिमान प्राप्तांकके रूपमें समझी जा सकती है, जैसा कि इस व्याख्या से स्पष्ट है: औसत १०० कहलाता है और प्रतिमान विचलन १६ बुद्धि-लब्धि बिन्दु है। मा० आ० और वा० आ० के अनुपातके रूपमें बुद्धि-लब्धि का जो अर्थ है, उससे अधिक सार्थक एक वयस्ककी बुद्धि-लब्धि इस प्रकार विचार करने पर हो जाती है।

जब हम यह कहें कि एक व्यक्ति जिसकी बुद्धि-लब्धि ११० है, बुद्धिमें ७३ प्रतिशत जनसंख्या का अतिक्रमण कर जाता है, तब हमें दो गम्भीर बातोंको ध्यानमें रखना चाहिए। पहिली, बार-बार परीक्षा लेने पर व्यक्तिकी बुद्धि-लब्धि में कुछ बिन्दुओंका उतार-चढ़ाव दिखाई देता है, इसलिए हम अधिक से अधिक यही कह सकते हैं कि वह लगभग ७३ प्रतिशत जनसंख्यासे आगे निकल जाता है। दूसरी बात यह कि किस तरह की बुद्धि-परीक्षा उपयोगमें लायी जाती है, इससे भी अन्तर पड़ता है—आया वह बीने-परीक्षा है, कागज-पेंसिल परीक्षा है, या कोई कृति परीक्षा[5] है—क्योंकि सम्भव है, जो व्यक्ति एक बुद्धि-परीक्षा में ७३ शतांशीय पाता है, वह दूसरी परीक्षा में केवल ६० शतांशीय पावे, या नीचे जानेकी अपेक्षा वह और ऊपर ही चला जाय। ऐसा लगता है कि बुद्धि भी कई प्रकार की होती है; तथा योग्यता तो निश्चय ही कई प्रकारकी होती है; और कोई आदमी जो एक योग्यता में ऊंचा या नीचा स्थान पाता है, वह अन्य सभी योग्यताओंमें उतना ही ऊंचा या नीचा स्थान नहीं पाता। अगले प्रकरणमें हम इसी समस्या पर विचार करेंगे।

नयी सैन्य-बुद्धि-परीक्षाओंके परिणाम. प्रथम महायुद्ध और उसके बादके वर्षोंका अनुभव प्राप्त करके मनोवैज्ञानिकों ने द्वितीय महायुद्धके दौरानमें वयस्कोंकी सामूहिक परीक्षाओं का स्तर उन्नत कर लिया। साक्षर व्यक्तियोंके लिए निर्धारित प्रमुख परीक्षाओंमें ये बातें होती थीं: (१) भाषा-सम्बन्धी प्रश्न जिनमें शब्दोंका ठीक-ठीक अर्थ समझनेकी आवश्यकता होती थी; (२) अंकगणितके प्रश्न जिनमें गणना और समस्या हल करनेकी जरूरत पड़ती थी; और (३) वस्तुओंकी स्थिति, दिशा, आकार इत्यादि से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्न। प्रश्न

[1] Centile intelligence scores and standard intelligence scores [2] standard scores [3] standard deviation
[4] surpasses [5] performance test
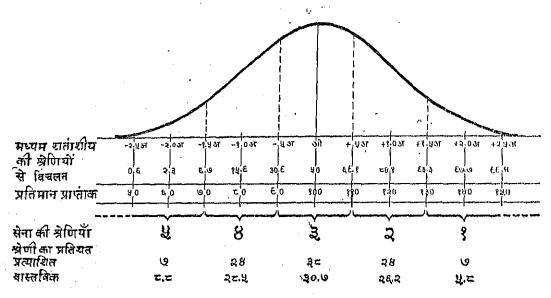
आकृति ८. सेना की परीक्षा के परिणामोंकी तुलना में बुद्धि-परीक्षा प्राप्तांकोंका एक सामान्य वितरण। यहां पर, औसत «औ» के द्वारा और प्रतिमान विचलन (स्टैंडर्ड डेविएशन) «अ» के द्वारा प्रदर्शित किया गया है। औसत को १०० इकाइयां और प्रतिमान विचलन को २० इकाइयां मानकर विचलनोंसे 'प्रतिमान प्राप्तांक' मालूम किये गये हैं। ये प्रतिमान प्राप्तांक बुद्धि-लब्धियों के सदृश दिखायी देते हैं, किन्तु ये बुद्धि-लब्धियां नहीं हैं, क्योंकि मानसिक आयु (मा० आ०) को वास्तविक आयु (वा० आ०) से विभाजित करके इन्हें नहीं प्राप्त किया गया था, और क्योंकि प्रतिमान विचलन १६ के बजाय २० बिन्दु माना गया है। यदि २० के स्थान पर १६ कर दिया जाय, तो उनकी बुद्धि-लब्धियों से अच्छी तरह तुलना की जा सकेगी। इससे वे अबकी तरह ५० से १५० तक १० बिन्दुओंकी सीढ़ियोंसे न चलकर ६० से १४० तक ८ बिन्दुओंकी सीढ़ियोंसे चलेंगे। प्रत्येक स्तर या श्रेणी (ग्रेड) में वास्तविक प्रतिशतकी तुलना प्रत्याशित प्रतिशतसे करने पर हम देखते हैं कि वक्ररेखा द्वारा प्रदर्शित काल्पनिक या सामान्य वितरणकी तुलना में वास्तविक वितरण मध्य-भाग में अधिक सघन था (विषम, ४ से)।

सरल से सरल और कठिन से कठिन होते थे। पहिले ३,००० आदमियोंकी परीक्षा लेकर इन प्रश्नोंका प्रमाणीकरण किया गया और बादमें १०,०००,००० रंगरूटों पर इनका प्रयोग किया गया। वास्तवमें इतनी अधिक संख्यामें वयस्कोंकी एक साथ कभी परीक्षा नहीं ली गयी थी। यद्यपि यह नमूना इतना विशाल था, तो भी जनसंख्याका पूर्ण प्रतिनिधित्व इससे नहीं होता था, क्योंकि कुछ सबसे नीचे ओहदेके रंगरूट इसमें शामिल ही नहीं किये गये थे और कुछ ऊंचे ओहदेके अफ़सरों (रेगुलर मिलिटरी अफ़सरों, डॉक्टरों और अन्य पेशेवरों) के लिए परीक्षा में भाग लेना आवश्यक नहीं समझा गया था। जिन आदमियों की परीक्षा ली गई थी, उनमें से भी कुछ अपर्याप्त शिक्षाके कारण प्रश्नोंको सन्तोषप्रद ढंगसे हल न कर सके। इन और ऐसे ही अन्य कारणोंसे परीक्षा-प्राप्तांकोंका वास्तविक वितरण 'साधारण'[1] वितरणके सदृश ठीक नहीं उतरा, क्योंकि सम्भवतः उसके समान निश्चित् मान वाली परिस्थितियोंमें यह परीक्षा नहीं ली गयी थी।

कुल मिलाकर अच्छी तरह शिक्षित व्यक्तियोंने ऊंचे अंक प्राप्त किये। परन्तु कुछ लोगोंने जिन्होंने हाई स्कूल तककी शिक्षा भी नहीं पायी थी, प्रथम श्रेणीके अंक प्राप्त किये, जब कि कुछ कॉलेज स्नातकों (ग्रेजुयेटों) ने केवल मामूली अंक प्राप्त किये। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण यह तथ्य था कि बहुतसे युवकों द्वारा प्राप्त उच्च श्रेणीके अंकोंसे यह प्रकट होता था कि वे कॉलेजकी और पेशेवर शिक्षा प्राप्त कर चुके होंगे, किन्तु वास्तवमें इन लोगोंकी शिक्षा माध्यमिक विद्यालयसे ऊपर हुई ही न थी।

परीक्षाओंसे उनके महत्त्वका कई प्रकारसे पता चला। सामान्यतया उनसे यह अच्छी तरह दिख गया, यद्यपि पूर्ण निश्चय पूर्वक नहीं, कि कोई व्यक्ति आधुनिक सैनिकके विविध कर्तव्योंको सीखनेके लिए कितना समर्थ है।

अभी तक इस परीक्षाके परिणाम प्रकाशित नहीं किये गये जिनसे पता चलता कि इन वयस्कोंका विभिन्न आयुके

[1] normal

बच्चोंकी तुलना में क्या स्थान रहा। यदि इसके पूरे परिणाम का पता चल सके, तो सम्भवतः कई अन्य वैज्ञानिक तथा व्यवहारिक प्रश्नोंका उत्तर पानेमें मदद मिल सके।

सारांश

१. सभी मनोवैज्ञानिक लक्षणों[१]—जैसे शारीरिक योग्यताओं, मानसिक योग्यताओं, ज्ञान, आदतों, व्यक्तित्व, और चारित्रिक विशेषताओं—में «व्यक्तिगत भिन्नताएं[२]» होती हैं।

२. «योग्यता» के तीन स्पष्ट अर्थ हैं:

(क) «उपलब्धि[३]» वास्तविक योग्यता है और परीक्षाओं की सहायता से इसकी प्रत्यक्ष माप होसकती है।

(ख) «सामर्थ्य[४]» सम्भावित योग्यता[५] है। समान रूपसे शिक्षा और अनुभव प्राप्त करनेके बाद भी जब व्यक्तियोंकी उपलब्धि असमान दिखाई देती है, तब परोक्ष रूपसे 'सामर्थ्य' का अनुमान होता है।

(ग) «प्रवणता[६]» उपलब्धिका पूर्वाभास है और विशेष रूपसे तैयार की गयी परीक्षाओं द्वारा इसकी माप की जा सकती है।

३. «परीक्षा-प्राप्तांकों» का तात्पर्य किसी प्रामाणिक कसौटी या व्यक्तियोंके किसी समूहमें प्राप्तांकोंके वितरणके प्रसंगमें समझा जासकता है।

(क) «साधारण वितरण» घंटीके आकार का और सम होता है।

(ख) «निरपेक्ष प्राप्तांक» का सम्बन्ध किये गये प्रश्नों, या किसी विशेष कार्यके करनेकी गति, या क्रियाके सही होनेसे है।

(ग) औसतसे व्यक्तिगत प्राप्तांकके विचलन[७] में यदि «प्रामाणिक विचलन» का भाग दे दिया जाय तो उसके भजनफलको «प्रामाणिक प्राप्तांक» कहेंगे।

(घ) «शतांशीय प्राप्तांक[८]» से सभी प्राप्तांकोंके प्रतिशत का पता चलता है जिसका अतिक्रमण कोई विशेष प्राप्तांक करता है।

४. «बुद्धि[९]» उस सामान्य योग्यता का नाम है जो पूर्व अध्ययन और वर्तमान आवश्यक बातोंको समझनेके आधार पर बौद्धिक समस्याओंको सुलझाती है।

(क) दुर्बल-बुद्धि व्यक्ति बौद्धिक दृष्टिसे इतने अभावग्रस्त होते हैं कि वे बिना किसीकी देखभालके अपने जीवन की व्यवस्था नहीं करसकते। दुर्बल-बुद्धि वालों की तीन श्रेणियां मानी गयी हैं: मूर्ख[१०], मूढ़[११] और जड़[१२]।

(ख) प्रतिभाशाली व्यक्ति[१३] अपवादस्वरूप बुद्धिमान व्यक्ति होते हैं जिनको यदि अनुकूल अवसर मिले तो उत्कृष्टतम बौद्धिक उपलब्धि मिल सकती है।

५. «बुद्धिमापक-परीक्षाएं» बौद्धिक प्रवणता की प्रमाणीकृत, वस्तुगत माप होती हैं।

(क) «बीने-परीक्षा» एक व्यक्तिगत परीक्षा है जिसमें उत्तरोत्तर कठिन प्रश्न होते हैं तथा जो प्रत्येक आयु के बच्चोंके औसत स्तरके अनुसार वर्गोंमें व्यवस्थित कर दिये जाते हैं।

(ख) «कृति-परीक्षाओं» में ठोस, तथा शब्दोंके अतिरिक्त अन्य वस्तुओंका प्रचुर उपयोग होता है।

(ग) «सामूहिक-परीक्षाएं» छोटे जवाब वाले उन प्रश्नों का संग्रह है जो एक साथ कई लोगोंसे पूछे जासकें।

६. बच्चोंके «बुद्धि-परीक्षा-प्राप्तांक» आयु-प्रतिमानों[१४] प्रामाणिक प्राप्तांकों, या शतांशीय प्राप्तांकोंके रूपमें प्रकट किये जासकते हैं।

(क) «मानसिक आयु» बच्चेके उस प्राप्तांकको कहते हैं, जो एक विशेष आयुके औसत बच्चों द्वारा सामान्यतया उत्तीर्णकी जानेवाली परीक्षाओंमें उत्तीर्ण हो जाने पर मिलता है।

(ख) मानसिक आयुको वास्तविक आयुसे विभाजित करने पर बुद्धि-लब्धि प्राप्त होती है। यह बच्चेकी आपेक्षिक बुद्धि की सूचक[१५] है और उसके जीवन-पर्यन्त प्रायः एक-सी रहती है।

७. बचपनमें «बुद्धिका विकास» निरन्तर हुआ करता है। मानसिक आयु १३ या १५ वर्षकी अवस्था तक निश्चित रूप से बढ़ती है, उससे धीमी गतिसे १६ या १८ वर्ष तक भी बढ़ती है, किन्तु इसके पश्चात् कोई वृद्धि नहीं होती।

८. जनसंख्या में «बुद्धिका वितरण» सामान्य वक्ररेखा[१६] के अनुरूप होता है और किसी व्यक्तिको तीव्र बुद्धि का पता इस वितरणमें उसकी सापेक्ष स्थितिसे चलता है।

[१] characteristics　[२] individual differences　[३] achievement　[४] capacity　[५] potential ability　[६] aptitude
[७] deviation　[८] centile score　[९] intelligence　[१०] moron　[११] imbecile　[१२] idiot　[१३] geniuses
[१४] age norms　[१५] index　[१६] normal curve

३

योग्यताओं का अनुबन्ध[1]

पिछले प्रकरणमें हमने विभिन्न प्रकारकी योग्यताओंका प्रश्न उठाये बिना बुद्धि-माप पर विचार किया। किन्तु हम जानना चाहेंगे कि योग्यता सामान्य[2] होती है या विशेष[3], और क्या बुद्धि-परीक्षाओं से किसी व्यक्तिकी सर्वांगीण बौद्धिक योग्यता की उचित माप हो जाती है ? जब किसी व्यक्तिके विषयमें कहा जाता है कि वह 'बहुत योग्य व्यक्ति' है, या दूसरेके विषयमें कि वह 'थोड़ी योग्यता' रखता है, तो इसके मूलमें यह धारणा निहित रहती है कि व्यक्तियोंकी सामान्य सर्वांगीण योग्यता में अन्तर है। परन्तु जब हम किसी राजनीतिज्ञ के बारेमें कहें कि उसमें भाषण करनेकी अच्छी योग्यता तो है, पर शासनकी योग्यता बहुत थोड़ी है, या खिलाड़ीके लिए कहें कि वह पोल-जम्प (लट्ठा-कूद) की अपेक्षा दौड़नेमें अधिक कुशल है, या किसी युवती-स्त्री के विषयमें कहें कि उसमें विक्रेता (सेल्समैन) के अच्छे गुण हैं, तो इसमें एक नितान्त भिन्न धारणा गर्भित है। इन विशेष योग्यताओंके साथ-साथ यह प्रश्न उठता है कि क्या सामान्य योग्यता नाम की भी कोई वस्तु है ? व्यक्तिगत भिन्नताओंका वैज्ञानिक अध्ययन करते समय जिन प्रश्नोंकी छानबीन करनी होती है, उनमें से यह भी एक प्रमुख प्रश्न है। यह इस विस्तृत प्रश्नका एक भाग है कि विभिन्न योग्यताएं किस प्रकार आपसमें और विभिन्न दिशाओंमें कार्य करनेकी सफलता से सम्बन्धित रहती हैं।

प्रतिभाशाली जड़बुद्धि[4]. यह पद उन हीन-बुद्धि व्यक्तियोंके लिए प्रयुक्त होता है जिनकी बुद्धि इतनी निम्न नहीं होती कि उन्हें ठीक तौरसे जड़बुद्धि कहा जा सके। ऐसे लोग कभी-कभी किसी विशेष क्षेत्रमें बहुत ही ऊंची योग्यता का प्रदर्शन करते हैं। विभिन्न व्यक्तियों ने विभिन्न योग्यताएं प्रदर्शित की हैं। कुछ लोगोंने संगीत याद रखने और किसी बाजेके बजानेमें अच्छी योग्यता का परिचय दिया है। पचास वर्ष पहिले 'अन्धा टॉम' अपनी संगीत-सम्बन्धी योग्यता का सार्वजनिक प्रदर्शन करता था। वह उन कठिन स्वर-लिपियों को भी बाजे पर सफलता-पूर्वक उतार लेता था (इस पुस्तकके लेखकोंमें से एक ने उसका वाद्य-संगीत सुना था), जिन्हें उसने केवल सुनकर सीखा था। कभी-कभी तो केवल एक बार सुनकर वह अत्यन्त कठिन और जटिल नये गीतोंको ज्योंका त्यों बाजे पर बजाकर सुना देता था। सब जानते थे कि 'अन्धा टॉम' हीन-बुद्धि है। प्रत्येक गीत समाप्त करनेके बाद वह श्रोताओंके साथ स्वयं भी तालियां बजाने लगता था।

अन्य प्रतिभाशाली जड़बुद्धि व्यक्तियों ने चित्रकला या यंत्र बनाने—एक बार तो एक ने जहाजका नमूना तैयार कर दिया था—में अपनी योग्यता का प्रदर्शन किया है। ऐसा करनेमें प्रत्येक व्यक्तिने अपनी कुछ विशेषता दिखायी है। इन विशेषताओंके बारेमें उल्लेखनीय बात यह है कि किसी न किसी प्रकार संख्याओंसे इनका सम्बन्ध रहा है—हालांकि यह समझ रखना चाहिए कि ऐसे उदाहरण बहुत बिरले ही मिले हैं। एक हीन-बुद्धि बालक गत पांच वर्षोंकी कोई तारीख किस वार को पड़ी थी, यह तुरन्त बता देता था, और एक अन्य बालक गत हजार वर्षोंकी किसी तारीखका वार सही-सही बता देता था। ये केवल स्मृतिकी करामातें न थीं, बल्कि ये अंशतः गणना और लीप वर्षों[5] के विचार पर निर्भर करती थीं। ये व्यक्ति अपनी इन विशेष योग्यताओं पर बहुत गर्व करते हैं और अपने ज्ञान तथा टेकनीक को पूर्ण बनानेके लिए अपना अधिकांश समय इसी दिशा में लगाते हैं (२२)।

अंकगणितमें विलक्षण प्रतिभाएं[6]. हीन-बुद्धि व्यक्तियों से बहुत भिन्न, कुछ थोड़ेसे व्यक्ति ऐसे हैं जो मानसिक गणना की अपनी योग्यता के लिए प्रसिद्ध हैं। परन्तु संख्याओं-सम्बन्धी उनके ज्ञानको देखते हुए, उनकी बुद्धि साधारण ही होती है। इनमें से कुछ व्यक्तियोंका मनोवैज्ञानिकों ने सावधानीसे अध्ययन किया है। संख्याओंको स्मरण रखनेकी अद्भुत् क्षमता इन लोगोंमें होती है। अधिकांश शिक्षित वयस्क एक बार सुननेके बाद ही ७ से १० तक इकाई की संख्याएं दुहरा सकते हैं, जब कि अंकगणितके इन अद्भुत् जानकारोंमें से बहुतसे व्यक्ति २० से २५ तककी संख्याएं दुहरा सकते हैं। दिनों या सप्ताहों पहिले सुनी हुई संख्याओंको याद रखनेकी अलौकिक क्षमता भी इनमें होती है। मनमें ही बड़ीसे बड़ी संख्याओंको गुणा करने ; वर्ग, वर्गमूल और घनमूल निकालनेकी उनकी योग्यता इतनी बढ़ी-चढ़ी और अद्भुत् होती है कि श्रोता

[1] correlation of abilities [2] generalized [3] specialised [4] idiots savants [5] leap years [6] arithmetical prodigies

विस्मित रह जाते हैं। लोग इतने चकित हो जाते हैं कि वे मान बैठते हैं कि इस 'गणितज्ञ' के पास कोई दैवी शक्ति अवश्य है; या कम से कम उसका 'अचेतन मन' निश्चय ही इतनी तेज़ीसे गणना कर लेता है। वास्तवमें ये क्रियाएं अचेतन हो ही नहीं सकतीं, क्योंकि बिजली की तेजी से गणना करते हुए गणक के अन्दर जो मानसिक क्रियाएं चलती हैं उनका उसे पूरा ज्ञान रहता है। इन व्यक्तियोंमें से अधिक बुद्धिमान व्यक्ति यह बतानेमें भी समर्थ होते हैं कि वे किस प्रकार इस कार्य को करते हैं। इतनी शीघ्रता से उनके काम करनेकी तहमें दो ही बातें हैं: पहिली बात तो यह कि कई संख्याओं और संख्याओंके पारस्परिक सम्बन्धोंसे उनका परिचय बहुत घनिष्ट होता है; दूसरी बात यह कि संक्षिप्त[1] विधियों का उनको ज्ञान होता है। इन विधियोंको या तो वे दूसरोंसे सीखते हैं, या स्वयं इनका आविष्कार करते हैं।

बचपनसे ही, इन गणितज्ञोंने संख्याओंमें बहुत रुचि दिखायी है। एक बच्चा जैसे ही बातचीत करना सीख गया और कुछ संख्याएं जान गया, वह चीज़ोंको गिन-गिन कर अपना मन-बहलाव करता रहा। उसके सामने जो भी चीज आती, उसे वह गिननेकी कोशिश करता। अपनी इस आदत को उसने तब तक जारी रखा जब तक वह बारह वर्षका न हो गया। अब उस की दिलचस्पी केवल चीज़ोंको गिनने तक ही सीमित न रही, बल्कि उसने हिसाबकी जानकारी भी करली। गुणा करने का उसका अभ्यास १० × १० तक के सामान्य गुणनफल तक ही न रुका, बल्कि कुछ ही वर्षोंमें वह १०० × १०० तक के, और उसके आगे तक के भी सभी गुणनफलोंको याद कर गया। किसी भी गुणाके प्रश्न जैसे ५४ × ८७, के उत्तरको ज़बानी याद कर लेने के कारण उसके लिए हज़ार तक की संख्याओंका गुणनफल निकालना उतना ही सरल हो गया, जितना किसी व्यक्ति के लिए दहाई तक की संख्याओं का गुणनफल निकालना।

यदि आप पर्याप्त समय दें और दिलचस्पी दिखावें तो आप भी १,००० तक की संख्याओं से घनिष्ठ परिचय स्थापित कर सकते हैं, बल्कि उससे आगे की संख्याओंसे भी। इन गणितज्ञों को इस विषयमें रुचि थी और इसमें उन्होंने अपना बहुत सा समय दिया — क्योंकि वे हर समय संख्याओंके विषयमें ही सोचते रहते हैं—फलतः वे बड़ी संख्याओंसे उसी प्रकार परिचित हो गये, जिस प्रकार हम १२ या २५ जैसी संख्याओं से हैं। उनके लिए ५७६ और ६७६ इसलिए परिचित हैं, क्योंकि वे २४ और २६ के वर्ग हैं, और ७७६ इसलिए याद रह जाता है कि अमरीकी स्वतंत्रता की घोषणा के वर्षमें से १,००० घटा देने पर यह संख्या मालूम हो जाती है। आप प्रायः किसी भी संख्या के सम्बन्धमें कोई न कोई स्मरणयोग्य बात पा सकते हैं, क्योंकि उसका सम्बन्ध अन्य संख्याओंके साथ होता है; और यदि आपको संख्याओंकी इस जादूगरीमें मजा आवे और अपनी आश्चर्यजनक गणना-विधि के कारण आपको जनता की वाहवाही और प्रशंसा मिले, तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि आप संख्याओंके अध्ययनमें अपना काफ़ी समय लगानेके लिए तैयार हो जायेंगे। तेजीसे गणना करने वालोंकी संक्षिप्त विधियोंमें प्रायः एसी बातें शामिल होती हैं, जैसे—वे ५ से गुणा करनेके बजाय २ से भाग देना पसन्द करेंगे और विभिन्न प्रश्नोंको हल करनेके लिए सूत्रों (फ़ॉर्मुलों) और वर्गोंका तरह-तरह से उपयोग करते रहेंगे।

अंकगणितके प्रसिद्ध अद्भुत् ज्ञाताओंमें से अधिकांश अंक-गणित तक ही अपनेको सीमित कर बैठे, उच्च गणितमें उन्होंने प्रगति नहीं की। फिर भी इनमें से कुछ की गणना उच्च कोटिके गणितज्ञोंमें की जाती है।

पढ़नेकी अयोग्यता. जिस प्रकार कुछ व्यक्तियोंमें एक ऐसी योग्यता होती हैं जो उनकी सामान्य योग्यताओंकी अपेक्षा अत्यन्त उत्कृष्ट होती है, उसी प्रकार कुछ व्यक्ति और सब बातोंमें ठीक होते हुए भी, एक खास विषयमें ही कम योग्य हो सकते हैं। सम्भवतः आप किसी कॉलेज प्रोफ़ेसर को जानते हों, जो अपनी उच्चकोटि की प्रतिभा के बावजूद दरवाज़े पर बिजलीकी घंटी या जले हुए 'फ़्यूज़' की जगह अच्छा तार न लगा सकता हो। अपने साथी किसी विद्यार्थी को भी आप जानते ही होंगे जिसको गणितका नाम सुनते ही बुखार चढ़ आता है और जो अन्य सभी विषयोंमें अच्छा चलते हुए भी यह विश्वास किये है कि वह गणितमें अवश्य अनुत्तीर्ण रहेगा। ऐसे उदाहरण आपको अपने चारों ओर एक नहीं, अनेक मिलेंगे।

हाल ही में स्कूलोंके बहुतसे ऐसे बच्चोंकी ओर ध्यान दिया गया जो अन्य विषयोंमें सामान्य योग्यता रखते हुए भी पढ़ने में बड़ी कठिनाई अनुभव करते हैं (८)। ११५ बुद्धि-लब्धि वाला आठवीं कक्षा का कोई विद्यार्थी प्रायः आपको मिल जायगा जो तीसरी कक्षाके विद्यार्थीसे अच्छी योग्यता किताब पढ़ने में नहीं रखता। आप पूछेंगे, फिर वह कक्षाएं कैसे उत्तीर्ण करता गया? अपनी पुस्तकके मुख्य शब्दोंको उसने याद कर लिया, अध्यापक ने जो दर्जेमें ज़बानी पढ़ाया उसे उसने ध्यानपूर्वक हृदयंगम करनेकी चेष्टा की, और अंकगणितमें उसने अपना अभ्यास अच्छा बढ़ाया। लगता है कि पढ़नेमें वह स्वयंको विशेषरूपसे अयोग्य पाता है। यदि प्रारम्भमें ही ध्यान दिया जाय तो विशेष शिक्षणके द्वारा उसके पढ़नेकी शक्ति को उन्नत बनाया जासकता है, परन्तु उसके पढ़नेकी रफ़्तार

[1] short-cut

धीमी रहनेकी तो सदा ही सम्भावना है। कई वयस्क व्यक्ति भी ऐसे हैं जिनको पढ़ना इतना कठिन और अप्रिय लगता है कि वे चिन्हों और समाचार-पत्रों के शीर्षकोंके अतिरिक्त कुछ भी पढ़नेका कष्ट नहीं उठाते।

अनुबन्ध[1] की विधि

ऊपर हमने कुछ व्यक्तियोंके उदाहरण दिये हैं जिन्होंने अलग-अलग क्षेत्रोंमें अलग-अलग मात्राओंमें उपलब्धियां कीं। इससे हमारे सामने यह प्रश्न उठता है कि क्या योग्यताओंकी समानता या असमानता साधारण मानवीय विशेषताएं हैं? हम केवल अलग-अलग योग्यताओंमें रुचि नहीं रखते, वरन् विभिन्न योग्यताओंके परस्पर सम्बन्धमें भी। अनुबन्ध की यही समस्या है। इस समस्या को कई प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है:

१. जो व्यक्ति एक योग्यतामें उच्च, मध्यम या निम्न स्थान पाते हैं, क्या वे अन्य किसी योग्यता में भी वही स्थान प्राप्त करते हैं?

२. एक योग्यता में (मान लीजिए किसी परीक्षामें) किसी व्यक्ति द्वारा प्राप्त स्थानको देखकर आप कितने सही तौरसे यह बता सकते हैं कि दूसरी किसी योग्यता में उसका क्या स्थान रहेगा।

३. विभिन्न योग्यताओंमें कितनी समता होती है?

पहला और दूसरा प्रश्न, दोनों प्रायः एक ही बात प्रकट करते हैं; क्योंकि यदि प्रत्येक व्यक्तिका स्थान दो योग्यताओंमें एक सा हो, और यदि हमें यह बात मालूम हो तो हम एक योग्ता में उसकी परीक्षा लेकर अनुमान कर सकते हैं कि दूसरी योग्यता में उसका क्या स्थान रहेगा। यदि उसका स्थान केवल मोटे तौर पर दोनों योग्यताओंमें एक ही हो, तो हम ठीक-ठीक तो नहीं, पर मोटे तौर पर एकके परिणामसे दूसरे का अन्दाज कर सकते हैं। परन्तु दोनोंमें यदि कोई सम्बन्ध न हो तो एक योग्यतामें उसके स्थानसे दूसरी योग्यता में उसके स्थान का अनुमान करना हमारे लिए सम्भव न होगा।

उपर्युक्त प्रश्नोंमें से तीसरा प्रश्न इतने स्पष्ट रूपसे अन्य दो प्रश्नोंके समान प्रतीत नहीं होता, इसलिए हम थोड़ा ठहरकर इस प्रकरणके अन्तमें उसपर विचार करेंगे।

धनात्मक, ऋणात्मक और शून्य अनुबन्ध. आइए, इस मामले पर हम जरा विस्तारसे गौर करें। मान लीजिए कि वही बीस आदमी दो परीक्षाओंमें भाग लेते हैं। हम जानना चाहते हैं कि एक परीक्षा में उनके स्थान दूसरी परीक्षामें उनके स्थानोंके कितने अनुरूप हैं। क्या पहिली परीक्षामें प्रथम स्थान पाया हुआ व्यक्ति दूसरी परीक्षा में भी प्रथम स्थान ही पाये है, क्या पहिली परीक्षामें द्वितीय स्थान पाया हुआ व्यक्ति दूसरी परीक्षामें भी वही स्थान पाये है? यही बात क्रमशः नीचेके नम्बरोंमें भी देखी जाय, और मालूम किया जाय कि पहिली परीक्षा में २०वां स्थान पाने वाला व्यक्ति क्या दूसरी परीक्षा में भी २०वां स्थान पाता है? यदि ऐसी बात हो, तो दोनों परीक्षाओंके प्राप्तांकोंमें पूर्ण सादृश्य या मेल है, और ऐसी दशामें हम कहते हैं कि दोनों प्राप्तांकोंके समूहों—या दोनों परीक्षाओंके मध्य 'पूर्ण धनात्मक अनुबन्ध' है।

यह भी कल्पना की जा सकती है कि दोनों योग्यताओंमें पूर्ण ऋणात्मक अनुबन्ध हो। ऐसी स्थितिमें सम्भव है क्षति-पूर्ति का कोई नियम काम करता हो, जिसके अनुसार यदि कोई व्यक्ति पहिली योग्यता में अच्छा स्थान न पा सके, तो निश्चय ही दूसरी योग्यतामें उसका स्थान अच्छा रहेगा। यदि क्षति-पूर्तिका यह नियम दोनों परीक्षाओं पर पूर्णतः लागू होता हो, तो जो व्यक्ति एक परीक्षामें सर्वोच्च स्थान पाता है, उसे दूसरी परीक्षामें निम्नतम स्थान पाना चाहिए; और एक परीक्षामें व्यक्तियोंका जो क्रम है, उससे ठीक विपरीत दूसरी परीक्षामें होना चाहिए।

इन दोनों परीक्षाओंमें शून्य अनुबन्ध भी हो सकता है। पहिली परीक्षामें शीर्ष-स्थान पाने वाला व्यक्ति दूसरी परीक्षा में कोई भी स्थान पा सकता है। यही बात निम्नतम स्थान वाले व्यक्ति या किसी भी अन्य व्यक्ति के साथ हो सकती है। दोनों योग्यताओंके बीच कोई सम्बन्ध—कोई सादृश्य, कोई क्षति-पूर्ति का नियम न होगा, बल्कि फेंटे हुए (मिलाये हुए) ताश के पत्तोंकी तरह सारी बात संयोग पर निर्भर होगी।

यथार्थमें, दोनों परीक्षाओंके प्राप्तांकोंके बीच हमको कभी पूर्ण ऋणात्मक अनुबन्धके उदाहरण नहीं मिलते क्षति-पूर्ति का नियम तो स्पष्टतः अनुपस्थित रहता है। हमको पूर्ण धनात्मक अनुबन्ध के उदाहरण भी कभी नहीं मिलते, यद्यपि कभी-कभी हमें उसके नजदीकी उदाहरण मिल जाते हैं। बहुधा हमें शून्य या शून्य के समीपवर्ती अनुबन्ध दिखाई देते हैं। अधिकतर «न्यूनाधिक» सादृश्य होता है, सो भी अधिक या कम धनात्मक अनुबन्ध का।

स्पष्ट है कि हमें अनुबन्धके किसी «मापदंड» की आवश्यकता है जिससे पता चल सके कि दोनों परीक्षाओंके प्राप्तांकों के बीच «कितना» सादृश्य है। पूर्ण धनात्मक अनुबन्धको संख्या + १ द्वारा प्रकट करते हैं, पूर्ण ऋणात्मक अनुबन्धको — १ द्वारा, और केवल आकस्मिक सम्बन्धको ० (शून्य) द्वारा। तब हम देख सकते हैं कि +·८ के अनुबन्धका तात्पर्य निकट

[1] correl ation
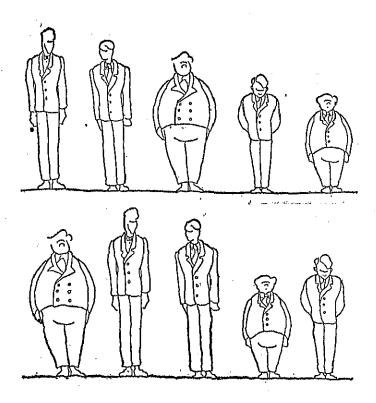
आकृति ६. ऊंचाई और वजनका अनुबन्ध। इन व्यक्तियोंको पहिले ऊंचाईके क्रमसे और बादमें वजनके क्रमसे खड़ा कीजिए, और देखिए कि उनकी स्थितियोंमें कितना कम या अधिक परिवर्तन होता है। श्रेणी-अन्तरसूत्र[१] द्वारा इन व्यक्तियोंका अनुबन्ध + '६० निकलता है।

सादृश्य है, + '३ का अनुबन्ध न्यून किन्तु धनात्मक है और — '३ का अनुबन्ध न्यून और ऋणात्मक है। — '४ से लेकर + '७ तक के अनुबन्धोंको मध्यम[२] कहा जा सकता है।

अनुबन्धकी गणना करनेकी किसी विधिके लिए हमें संख्यिाशास्त्रियों[३] की शरण लेनी पड़ती है, और हम देखते हैं कि ऐसी विधियोंका विकास न केवल मनोविज्ञान ने अपने उपयोगके लिए किया है, वरन् जीव-शास्त्र, अर्थशास्त्र और कई अन्य क्षेत्रोंमें भी इन विधियोंका विकास हुआ है। मनोवैज्ञानिकों ने कुछ विधियोंका निरूपण किया है, क्योंकि मनोविज्ञानमें ऐसी आंकड़ा-सम्बन्धी विधियोंकी बहुत उपयोगिता है।

अनुबन्धकी माप कैसे की जाय? इसके लिए, एक ही सामान्य सिद्धान्त पर आधारित कई सूत्र हैं। पूर्ण धनात्मक अनुबन्धके लिए यह आवश्यक है कि दोनों परीक्षाओंमें प्रत्येक व्यक्तिका स्थान वही हो—अर्थात् सम्पूर्ण समूहमें प्रत्येक की आपेक्षिक स्थिति एक ही हो। यदि समूह छोटा हो तो सरलतम विधि यह है कि व्यक्तियोंको प्रत्येक परीक्षा में योग्यतमसे लेकर अयोग्यतम तक की श्रेणीमें यथास्थान रखा जाय, इस प्रकार प्रत्येक व्यक्तिकी दो श्रेणी-संख्याएं होती हैं जिनसे दोनों परीक्षाओंमें उसकी स्थिति का पता चलता है। यदि प्रत्येक व्यक्तिकी दो श्रेणी-संख्याएं एक ही हैं, तो अनुबन्ध पूर्ण समझा जायेगा; यदि उनमें काफ़ी अन्तर है, तो अनुबन्ध न्यून माना जायेगा। एक व्यक्तिकी दो श्रेणी-संख्याओं का अन्तर मालूम कीजिए और इस अन्तरको «अ» अक्षरसे प्रकट कीजिए। «अ» का वर्ग कीजिए। प्रत्येक व्यक्तिके साथ ऐसा ही कीजिए। इन वर्गोंका योग मालूम कीजिए और निम्नलिखित सूत्रका उपयोग कीजिए:

$$म = १ - \frac{६ \text{ योग } अ^२}{स(स^२ - १)}$$

[१] rank difference formula [२] moderate [३] statisticians

यहां «स» व्यक्तियोंकी संख्या व्यक्त करता है। «म» अनुबन्ध की माप है। इसको «श्रेणी-अन्तर[1]»की माप भी कहते हैं। अब आप आसानीसे समझ सकते हैं कि पूर्ण अनुबन्धके लिए म = १ है, क्योंकि तब प्रत्येक «अ» शून्य है। (गणित के अनुसार इससे यह परिणाम भी निकलता है कि पूर्ण ऋणात्मक अनुबन्धके लिए म = – १ और दोनों प्राप्तांकों के वर्गोंके मध्य केवल आकस्मिक सम्बन्धके लिए म = ० है)।

अनुबन्ध निकालनेकी इस विधिके उदाहरण-स्वरूप १० ऐसे व्यक्तियोंके प्राप्तांकोंको लीजिए, जिन्होंने एक जोड़की और एक भागकी परीक्षा दी है; जैसा कि नीचे किया गया है, उनके प्राप्तांकोंको क्रम में रखिये।

श्रेणी-अन्तरों से «म» (अनुबन्धका माप) निकालना

व्यक्ति	योग श्रेणी		भाग श्रेणी		'अ' अन्तर	अ²
	प्राप्तांक	निरपेक्ष संख्या	प्राप्तांक	निरपेक्ष संख्या		
क	१८	१	९	२	१	१
ख	१४	२	११	१	१	१
ग	१२	३	८	३	०	०
घ	११	४	४	८	४	१६
ङ	१०	५·५	५	६·५	१	१
च	१०	५·५	७	४	१·५	२·२५
छ	८	७	३	९	२	४
ज	७	८	६	५	३	९
झ	६	९	५	६·५	२·५	६·२५
ञ	४	१०	२	१०	०	०

स = १०　　　　　　　　　　योग अ² = ४०·५०

स² – १ = ९९　　　　　　　　६ योग अ² = २४३

$$\text{म} = १ - \frac{६\ \text{योग अ}^2}{\text{स}(\text{स}^2 - १)}$$

$$= १ - \frac{२४३}{१० \times ९९}$$

$$= १ - \text{'}२५$$

$$= + \text{'}७५$$

योगकी श्रेणी-संख्याओं में एक जरूरी गणनाशास्त्रीय बात उठती है। «ङ» और «च» व्यक्ति ५वें स्थानके योग्य हैं और हम सोच सकते हैं कि उन दोनोंको श्रेणी-संख्या ५ देनी चाहिए, और इसी क्रमसे «छ»को ६, «ज» को ७ और इसी प्रकार अन्योंको भी। ऐसी हालतमें हमारे पास कोई श्रेणी संख्या १० न होगी और हमारा सूत्र निरर्थक सिद्ध होगा। यह कहना भी पूर्ण तर्कसंगत होगा कि «ङ» और «च» जिस प्रकार ५वें स्थानसे बंधे हुए हैं, उसी प्रकार छठे स्थानसे भी, इसलिए दोनोंको ५·५ की श्रेणी दी जानी चाहिए। इसी तरह मानलीजिए यदि तीन व्यक्ति क्रमशः ७, ८ और ९ के स्थानों के लिए बंधे होते, तो हमें उन सभीको श्रेणी-संख्या ८ देनी चाहिए।

अनुबन्ध निकालनेकी एक विशेष टेकनीक होती है। मनोविज्ञानमें आंकड़े-सम्बन्धी विधियोंके उपयोग पर जो पुस्तकें लिखी गयी हैं उनका सहारा इस टेकनीकको जाननेके लिए लिया जासकता है (४, ६, ७, ११)। यहां हमारा मतलब आंकड़ोंके विशेष ज्ञानमें पारंगत होनेसे नहीं है, किन्तु विभिन्न योग्यताओंके पारस्परिक सम्बन्धोंके विषयमें कुछ जानकारी प्राप्त करनेसे है।

कुछ अनुबन्धोंके नमूने. भले ही आपको कभी अनुबन्ध निकालनेका अवसर न मिला हो, परन्तु अध्ययनके सिलसिले में '५० या '८० के अनुबन्ध तो आपकी निगाहसे गुजरे होंगे; आप जानना भी चाहेंगे कि ऐसी संख्याओं द्वारा जो निकट सादृश्य लक्षित होता है, उसका यथार्थ भाव क्या है? नीचे वस्तुतः प्राप्त मूल्यों[2] की एक तालिका दी जारही है, उससे अनुबन्धोंके ठोस अर्थके सम्बन्धमें आपको कुछ जानकारी हो सकेगी। हम देखते हैं कि शरीरकी ऊंचाई या कद और बाहों की लम्बाई + '८२ तक अनुबन्धित हैं; यहां हम, दोनोंमें निकट सम्बन्धकी आशा करेंगे, और यद्यपि + '८२ पूर्ण अनुबन्ध तो नहीं है, तो भी व्यवहारतः वह काफ़ी ऊंचा अनुबन्ध है। जैसा कि हम सोच सकते हैं, शरीरके कद और वजनके मध्य अनुबन्ध इतना ऊंचा नहीं होता (म = + '५९) है, क्योंकि एक व्यक्ति अपनी ऊंचाई बदले बिना ही अपना वजन काफ़ी हद तक बदल सकता है। '८५ से ऊंचे अनुबन्ध विरले ही मिलते हैं। यदि मिलते भी हैं तो तभी जब परीक्षाएं लगभग एक ही होती हैं। जहां योग्यताएं प्रकारकी दृष्टिसे बिलकुल भिन्न होती हैं, जैसे कि हाथकी पकड़[3], जोड़ना और रंगमें भेद पहिचानना आदि, वहां अनुबन्ध शून्य, निम्न धनात्मक और निम्न ऋणात्मक ही प्रायः मिलते हैं। किन्हीं भी दो योग्यताओंके मध्य एक सच्चा, सार्थक ऋणात्मक अनुबन्ध शायद ही कभी पाया जाता हो। इससे जो साधारण निष्कर्ष निकलता है, वह बिलकुल साफ़ है: योग्यताएं ऋणात्मक रूपके बजाय धनात्मक रूपमें परस्पर सम्बन्धित रहती हैं, यद्यपि यह बात अवश्य है कि इनका सम्बन्ध घनिष्ठ होनेकी अपेक्षा साधारणतः हलका होता है।

[1] rank difference　[2] values　[3] grip

कतिपय अनुबन्ध
(विभिन्न सूत्रोंसे संगृहीत)

« मानवमितीय[1] और बल सम्बन्धी परीक्षाएं »	
शरीरका कद और हाथकी लम्बाई (पुरुष)	·८२
शरीरका कद और वजन (पुरुष)	·५९
शरीरका कद और पकड़ (पुरुष)	·४३
दाहिने हाथकी पकड़ की तुलना बायें हाथकी पकड़से (पुरुष)	·७४
पकड़ और खटखटाना (पुरुष)	·२५
पकड़ और १०० गजकी दौड़ (स्त्रियां)	·१६
« स्कूल-सम्बन्धी[2] परीक्षाएं »	
शब्दों और अनुच्छेदों[3] के अर्थ	·८०
अंकगणित : गणना[4] और तर्क	·७०
विराम-संकेतों[5] की शुद्धि और शब्द विन्यास[6]	·६०
शब्द-भंडार[7] और शब्द-विन्यास	·५०
पढ़ना और सामान्य जानकारी	·४०
« हाई-स्कूल स्तर[8] »	
बीज गणित और रेखागणित	·६५
अंग्रेजी और फ्रेंच	·५०
अंग्रेजी और कला	·१५
« कॉलेज-स्तर » (वैस्ट पॉइन्ट[9])	
अंग्रेजीके दो पाठ्यक्रम	·७७
अंग्रेजी और इतिहास	·६८
अंग्रेजी और भौतिकशास्त्र	·४८
अंग्रेजी और गणित	·४९
अंग्रेजी और ड्रॉइंग	·२५
गणित और भौतिक शास्त्र	·७८
गणित और इतिहास	·४४
गणित और ड्रॉइंग	·४८

सामान्य योग्यता या विशेष योग्यताएं ?

प्रथम प्रकरणमें जांच-पड़ताल की जिन प्रायोगिक और विकासात्मक विधियोंका उल्लेख किया गया है, उनके साथ-साथ अनुबन्धात्मक (समन्वयात्मक) विधिका भी अपना स्थान है। आजकल इसका प्रचुर उपयोग विभिन्न योग्यताओंके आपसी सम्बन्धोंको जाननेके लिए किया जाता है। गणना[4] और तर्कके बीच + ·७० के अनुबन्धसे हमें पता चलता है कि दोनों योग्यताओंमें बहुत कुछ सादृश्य है, फिर भी ये दोनों योग्यताएं किसी भी दशामें एक-सी नहीं हैं, क्योंकि यह अनुबन्ध १·०० से कुछ दूर है। अंग्रेजी और ड्रॉइंगके मध्य + ·२५ के अनुबन्धसे हम समझते हैं कि इन दोनों योग्यताओं में बहुत ही कम समानता है। साधारणतया अनुबन्धसे पता चलता है कि कहां तक दो योग्यताएं समान हैं और कहां तक भिन्न।

इस प्रकरणके प्रारम्भमें ही हमने एक प्रश्न किया था कि क्या योग्यता सामान्य[10] होती है, या विशेष? अनुबन्धोंसे इस प्रश्न पर कुछ प्रकाश पड़ता है। प्रश्न है, क्या «सामान्य योग्यता» जैसी भी कोई वस्तु है ?

व्यक्तियोंके एक समूहको उनकी योग्यताओंकी जांचके लिए कई भिन्न-भिन्न परीक्षाओंसे होकर गुजरने दीजिए। यदि कुछ व्यक्ति हमेशा शीर्षस्थान पाते, कुछ व्यक्ति हमेशा निम्नतम स्थान, और अन्य लोग सदैव वही मध्यवर्ती स्थान पाते, तथा इनमें से कोई अपने स्थानसे अधिक इधर-उधर न हटता, तो इन परिणामोंसे पता चलता कि कोई सामान्य योग्यता नाम की वस्तु भी है। ऐसी दशामें केवल कुछ व्यक्ति अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक योग्य होते। किन्तु हम कभी भी इस परिणाम पर नहीं पहुंचते। अनुबन्ध कदापि + १·०० के निकट नहीं होते। इसका अपवाद केवल वहीं मिलता है जहां दो परीक्षाएं स्पष्टतया एक ही योग्यताकी परीक्षाएं होती हैं, जैसा कि जोड़ की दो परीक्षाएं, या विलोम शब्द बतानेकी दो परीक्षाएं। जब परीक्षाओंमें अलग प्रकारके कार्य करने होते हैं, जैसे जोड़ना और गुणा करना; शब्दोंकी परिभाषा करना और उन के विलोम बताना; संख्याओंको याद रखना या किसी अनुच्छेदका भाव स्मरण रखना, तब अनुबन्ध ० से लेकर + ·७० तक मिलते हैं और उनका औसत लगभग + ·३० होता है। मानवीय बौद्धिक योग्यताका विश्लेषण करनेमें ऐसे आधारभूत तथ्यों पर विचार करना पड़ता है।

दो पुराने सिद्धान्त. ये तथ्य योग्यताके दो पुराने सिद्धान्तों का खंडन करनेके लिए पर्याप्त हैं। एक सिद्धान्त यह था कि प्रत्येक कार्यको करनेके लिए एक अलग विशेष योग्यता की आवश्यकता पड़ती है, और हर कार्यको करनेमें व्यक्तियोंमें केवल इसलिए अन्तर दिखाई देता है, क्योंकि उनमें यह विशेष योग्यता अलग-अलग मात्राओंमें होती है। लेकिन यदि योग्यताएं इतनी अलग-अलग होतीं, तो किन्हीं दो परीक्षाओं का अनुबन्ध धनात्मक होनेकी अपेक्षा शून्य होता। परन्तु

[1] Anthropometric [2] scholastic [3] paragraphs [4] computation [5] punctuation [6] spelling [7] vocabulary [8] grades [9] यहां तात्पर्य नेशनल मिलिटरी एकेडमी से है जो संयुक्त राज्य, अमेरिका के 'वेस्ट पॉइन्ट' नामक नगरमें स्थित है। [10] generalized

साधारणतया ऐसा नहीं देखा जाता। दूसरा सिद्धान्त जो इससे नितान्त विपरीत है यह मानता था कि योग्यता एक ही होती है, यह सामान्य, सर्वांगीण योग्यता कुछ व्यक्तियोंके पास अधिक होती है और कुछ व्यक्तियोंके पास कम। लेकिन ऐसी हालतमें किन्हीं दो परीक्षाओंके बीचका अनुबन्ध + १·०० के आसपास, होना चाहिए; जबकि वस्तुतः हम ऐसा नहीं पाते। इसलिए तथ्य हमें विवश करते हैं कि हम कोई बीचका सिद्धान्त तलाश करें।

सामान्य योग्यताके साथ कई विशेष योग्यताएं. एक सम्भावना यह मान लेनेकी है कि सामान्य योग्यताके साथ-साथ बहुत-सी विशेष योग्यताएं भी होती हैं। ऐसी स्थितिमें सामान्य योग्यताके कारण ही धनात्मक अनुबन्ध प्राप्त होगा, क्योंकि हर अलग-अलग कामके लिए विशेष योग्यता भी अलग-अलग मान ली गई है। किसी परीक्षामें व्यक्तिकी कुशलता दो बातों पर निर्भर होगी: उसमें कितनी सामान्य योग्यता है और कुछ कामोंको एक खास तरहसे करनेकी उसमें कैसी विशेष योग्यता है (उदाहरणके लिए, संख्याओंको जोड़ना)। हम मान सकते हैं कि कुछ परीक्षाएं सामान्य योग्यता पर अधिक निर्भर करती हैं और कुछ परीक्षाएं विशेष योग्यताओं पर। दो परीक्षाओंमें जो अधिकांश सामान्य योग्यता पर निर्भर हैं, उच्च अनुबन्ध दिखाई देगा, जबकि दो अन्य परीक्षाओंमें जो अधिकांश विभिन्न विशेष योग्यताओं पर निर्भर करती हैं, केवल नीचा अनुबन्ध दिखाई देगा। इस सिद्धान्तके अनुसार अनुबन्धोंकी एक क्रमिक श्रेणी होनी चाहिए, जैसाकि वास्तवमें हम पाते हैं। लेकिन अब हमारे सामने एक बड़ी कठिनाई उपस्थित होती है।

सामूहिक तत्व[1]—मध्यम विस्तारकी योग्यताएं. अभी हमने जिस सिद्धान्तका उल्लेख किया है, उसमें एक सामान्य सर्वांगीण योग्यताके अतिरिक्त केवल बहुत संकीर्ण विशेष योग्यताओंकी सत्ता कबूलकी गयी है। फिर भी, विभिन्न परीक्षाओंके मध्य पाये हुए अनुबन्धोंसे ऐसी योग्यताओंकी सत्ताका पता चलता है, जो विस्तारमें इतनी विशद नहीं हैं कि उन्हें सामान्य योग्यता कहा जासके, और न वे इतनी संकीर्ण हैं कि कुछ विशेष कार्यों तक ही उन्हें सीमित समझा जासके। परीक्षाओं के समूह पाये जाते हैं, एक समूहकी परीक्षाओंके बीच अनुबन्ध ऊंचे होते हैं, किन्तु एक समूहकी परीक्षाओं और दूसरे समूह की परीक्षाओंके बीचके अनुबन्ध बहुत नीचे होते हैं।

उदाहरणके लिए, कॉलेजके छात्रोंकी परीक्षाएं जोड़ने, घटाने, गुणा करने और भाग देनेकी गतिके सम्बन्धमें ली गयीं और इनमें परस्पर + ·६० का अनुबन्ध पाया गया; इसके बाद विलोम, पर्याय, पठन, और शब्दकोषके ज्ञानकी परीक्षाएं ली गयीं और देखा गया कि इनमें + ·५५ का अनुबन्ध है। किन्तु इनमें से किसी भाषा-सम्बन्धी परीक्षा और किसी भी अंकगणितकी परीक्षाके बीच केवल + ·२० का अनुबन्ध पाया गया (१६)। एक दूसरे प्रयोगमें परीक्षार्थी १० वर्षके बालक थे और इनका अनुबन्ध पहिलेसे ऊंचा पाया गया, क्योंकि बालकोंके साथ प्रायः ऐसा ही होता है। भाषा-सम्बन्धी परीक्षाओंके एक समूह के बीच लगभग + ·६३ के अनुबन्ध थे, और दूरी इत्यादिके प्रत्यक्षीकरणसे सम्बन्धित परीक्षाओंके समूहमें लगभग + ·६६ के; जबकि भाषा-सम्बन्धी और दूरी इत्यादिके प्रत्यक्षीकरणसे सम्बन्धित परीक्षाओंके बीचके अनुबन्ध लगभग + ·४३ थे (२)। यहां पर हम तीन बड़ी योग्यताओंकी सत्ताका प्रमाण पाते हैं, जो अन्य अध्ययनोंसे भी सिद्ध हो चुकी हैं, वे हैं—भाषा[2], संख्या[3] और देश-सम्बन्धी योग्यताएं। अन्य सामग्रीसे कुछ अतिरिक्त सामूहिक तत्वों का पता मिलता है, जैसे, शाब्दिक प्रवाह[4], प्रत्यक्षीकरण की योग्यता[5] और तर्कना[6]। पूर्णतया बौद्धिक कार्योंके क्षेत्रोंसे बाहर अनुसन्धान करने पर कलात्मक योग्यता, यांत्रिक योग्यता[7] और संगीत-सम्बन्धी योग्यता[8] का भी पता चला है; इसके अलावा अन्य योग्यताएं भी हैं जो इतनी तो बड़ी हैं कि उन्हें विशेष योग्यता नहीं कहा जा सकता, किन्तु इतनी अधिक बड़ी नहीं हैं कि उन्हें साधारण योग्यता ही कहा जा सके।

आइए, हम भाषा[2], संख्या[3] और देश-सम्बन्धी योग्यताओं को जरा अधिक निकटता से परखें।

«भाषा-सम्बन्धी» का नामकरण ठीक नहीं किया गया है। कम से कम यह ठीक वही चीज नहीं है जो कोई व्यक्ति समझता होगा। इस योग्यताके लिए उस तरहकी परीक्षा नहीं ली जाती, जिस तरहकी भाषा-दोष-चिकित्सालयमें या किसी स्कूलमें, या अच्छा व्याख्यान सिखानेवाले किसी कॉलेजके पाठ्यक्रममें ली जाती है। वे स्पष्ट उच्चारण, व्याकरणकी शुद्धता, वार्तालापकी धाराप्रवाहिता, या पढ़नेकी गतिके लिए, लिये जानेवाले परीक्षण नहीं हैं। जिस योग्यताकी परीक्षा ली जाती है, वह शब्दोंके माध्यमसे विचारोंको प्रकट करनेसे सम्बन्धित है। चूंकि शब्द वस्तुओं, घटनाओं, गुणों, और सम्बन्धोंके लिए प्रयुक्त होते हैं, इसलिए शब्द-भंडार-परीक्षा केवल शब्द-ज्ञान की परीक्षा नहीं है, बल्कि व्यक्तिके वस्तु-ज्ञान इत्यादिकी सूचक है। शब्दोंके विलोम बतानेवाली परीक्षाओंमें शब्दोंका सही अर्थ समझना पड़ता है। वाक्य पूर्ति परीक्षामें वाक्यके अर्थको पूर्ण करनेके लिए रिक्त स्थानों पर शब्द रखनेकी आवश्यकता होती है। प्रायः भाषा-सम्बन्धी परीक्षाएं ऐसी ही होती हैं।

[1] group factors [2] verbal [3] numerical [4] word fluncey [5] perceptual ability [6] reasoning [7] mechanical ability [8] musical ability
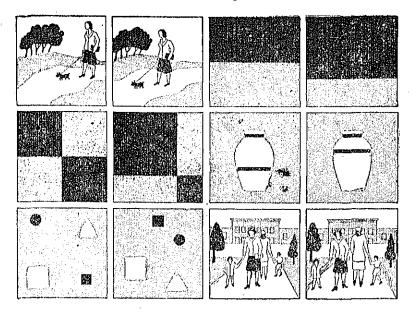
आकृति १०. सौन्दर्य की परखसे सम्बन्धित एक परीक्षण। हर जोड़ेमें कौन-सी रेखाकृति अधिक कलात्मक है?

भाषा सम्बन्धी योग्यता का क्षेत्र विस्तृत होता है, क्योंकि भाषा कई प्रकारके अर्थोंको प्रकट करनेका एक साधन है। किन्तु शब्दों द्वारा ये सभी प्रकारके अर्थ समान रूपसे स्पष्ट नहीं होपाते। ऐसे भूगोलकी कल्पना कीजिए जिसमें नक्शे न हों, या ऐसे गणितकी कल्पना कीजिए जिसमें आकृतियां और अन्य संकेत न हों! भाषा-सम्बन्धी परीक्षाएं सब प्रकारकी मानवीय योग्यताओंके साथ न्याय नहीं करसकतीं; सबके लिए उनका उपयोग नहीं किया जासकता।

«संख्या-सम्बन्धी योग्यता» में इतनी बातें शामिल हैं: संख्याओं और उनके सम्बन्धोंका ज्ञान, तथा अंकगणितकी मौलिक क्रियाओंको करनेमें सरलता। अंकगणितके प्रश्नोंको हल करनेके लिए बहुधा तर्क-शक्ति की आवश्यकता होती है, जो एक अलग योग्यता जान पड़ती है। संख्या-सम्बन्धी योग्यता का क्षेत्र यों तो बहुत संकुचित है, फिर भी कुछ प्रयोजनों के लिए इसका बहुत महत्त्व है। इस योग्यता की परीक्षा में सीधे जोड़, गुणन इत्यादि शामिल हैं। इसके अलावा संख्या-सम्बन्धोंको बतानेवाली परीक्षाएं भी सम्मिलित रहती हैं, जैसा कि नीचे दी हुई एक 'संख्या-पूरक परीक्षा' से स्पष्ट हो जायेगा।

रिक्त स्थानोंकी पूर्ति इस प्रकार कीजिए, कि प्रत्येक बायेंसे दायेंको जानेवाली पंक्तिकी संख्याएं एक निर्दिष्ट नियमका पालन करें, हरेक पंक्तिके लिए नियम अलग-अलग हैं।

२	४	६	८	१०	—	१४
१०	९	८	७	६	—	४
१	२	४	८	१६	—	६४
३	५	१०	१२	२४	—	५२
१००	९०	८१	७३	६६	—	५५
१	४	९	१६	२५	—	४९

«देश-सम्बन्धी योग्यता» वस्तुओंका आकार, दूरी, स्थिति इत्यादिको समझने और तत्सम्बन्धी ज्ञानका उपयोग करने की योग्यता को कहते हैं। सम्भवतः इसमें इस प्रकारकी चतुराई भी आजाती है, जैसे अपना रास्ता मालूम करना, अपनी आपेक्षिक स्थितिमें रहना और स्थानोंको स्मरण रखना। बहुधा इसकी परीक्षामें रूपों, आकारों और ठोस वस्तुओंके रेखाचित्रोंका उपयोग किया जाता है (देखिए आकृति ११)। नीचे दिये हुए प्रश्नोंके उत्तर देश-सम्बन्धी योग्यता पर निर्भर हैं (भाषा-सम्बन्धी योग्यताकी भी इनमें आवश्यकता पड़ेगी, क्योंकि ये प्रश्न शब्दोंमें लिखे गये हैं)।

१. साढ़े पांच बजे और साढ़े छै बजेके बीच किस समय घंटा और मिनटकी सुइयां एक दूसरेकी ठीक विपरीत दिशामें होंगी?

२. यदि मैं एक मील दक्षिण-पूर्व में जाऊं और उसके बाद एक मील दक्षिण-पश्चिम में, तो इस समय में अपने रवाना होने के स्थानसे किस दिशा में हूं?

३. एक लुढ़कते हुए पहियेमें कौन-सा बिन्दु किसी क्षणमें
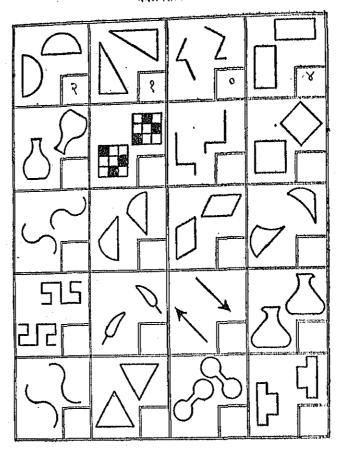
आकृति ११. समान शक्लें।

निर्देश:

हर खानेमें ऊपर की आकृति को एक चपटा टुकड़ा मान लीजिए और नीचे की आकृति को एक छेद जिसमें ठोस टुकड़े को ठीक-ठीक बैठा देना है। कितने प्रकारसे वह छेदमें बैठाया जा सकता है? कोनेमें जो छोटा-सा वर्ग दिया गया है, उसमें अपना उत्तर लिखिए।

पहिले खानेमें स्थित अर्द्धवृत्त को घुमाकर समतल पर कर दिया जायगा और छेदमें बैठा दिया जायगा। इसके बाद इसे उठाकर पैसे की तरह ऊपर का भाग नीचे और नीचेका भाग ऊपर करके, दोबारा छेदमें बैठाया जा सकता है। उत्तर २ है।

दूसरे खानेमें स्थित ठोस त्रिभुजको छिद्रवाले त्रिभुजमें केवल फिसला कर ही नहीं बैठाया जा सकता, बल्कि उसे उलटकर रखना पड़ेगा। उत्तर: १

तीसरे खानेमें स्थित टेढ़ी-मेढ़ी रेखा किसी भी तरह ठीक नहीं बैठायी जा सकती।

चौथे खानेमें, आयतको बिना उलटे हुए दो स्थितियोंमें (एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक) ठीक-ठीक बैठाया जासकता है। इसके बाद उसे उलट कर फिर दो बार बैठाया जासकता है।

५ मिनट के समय में कॉलेज के छात्रों ने जितने खानोंकी आकृतियों को सही-सही बैठा दिया, वह औसतन ८ के आसपास थीं।

सबसे तेजी से घूमता है ?

क्या कोई सामान्य योग्यता भी होती है ? योग्यताओंके अनुबन्धका अध्ययन करते हुए जो तथ्य सामने आये हैं उनके आधारपर दो क़िस्मकी विशेष योग्यताओंको मानना आवश्यक हो जाता है: एक तो वे जिनका क्षेत्र बहुत संकीर्ण है और दूसरी वे जिनका क्षेत्र अपेक्षाकृत व्यापक है। सामान्य योग्यताके अस्तित्वको मानना भी आवश्यक है या नहीं, यह निश्चित नहीं है। विशेषज्ञों में प्राप्त सामग्रियोंका उपयोग करनेके लिए विशद गणित-सम्बन्धी विधियोंका विकास किया है, परन्तु इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर उनमें अभी कोई समझौता नहीं हुआ है (१७)। सामान्य योग्यताका विचार आकर्षक लगता है। इसका तात्पर्य (क) «शीघ्रतापूर्वक सीखना» और जो कुछ भी सीखा गया है, उसे अच्छी तरह याद रखना भी हो सकता है। क्योंकि मान लीजिए, एक व्यक्ति सीखने और उसे याद रखनेकी अच्छी क़ाबलियत रखता है; तो वह व्यक्ति काफ़ी ज्ञान और कौशल जमा करलेगा, जिसका उपयोग वह अपने सामने आने वाली किसी भी नयी समस्याको सुलझानेमें कर सकेगा। इसके अतिरिक्त नयी समस्याके लिए आवश्यक नये ज्ञानको सीखना भी उसके लिए आसान होगा। जो आदमी बहुत कम सीखता और याद रख सकता है, वह अपने पिछले अनुभवोंसे अधिक लाभ नहीं उठा पाता और उन्हीं ग़लतियोंको बार-बार दुहराता है। यदि सामान्य योग्यता नामकी कोई वस्तु है तो वह (ख) चीज़ें «सम्बन्धोंको ठीक-ठीक और शीघ्रतासे हृदयंगम करनेकी योग्यता» भी हो सकती है, क्योंकि किसी समस्याको सुलझाना इस बात पर निर्भर है कि उसमें छिपे हुए आवश्यक सम्बन्धोंको समझ लिया जाय। सामान्य योग्यता-सम्बन्धी ये दो विचार जिनके प्रणेता क्रमशः थॉर्नडाइक (१८) और स्पीयरमैन (१३) हैं, प्रायः एक ही बातको प्रकट करते हैं, क्योंकि बौद्धिक दृष्टिसे उपयोगी जिन तथ्योंको हम सीखते हैं, वे अधिकांशतः सम्बन्ध होते हैं।

विशेष योग्यताओंके बीचका अनुबन्ध छोटे बच्चोंमें ऊँचा होता है। यह एक सामान्य योग्यता—शायद सामान्य *सामर्थ्य—के पक्षमें एक प्रबल प्रमाण है। बड़े बच्चोंमें* अनुबन्ध नीचा हो जाता है। उदाहरणके लिए तीसरी श्रेणीके विद्यार्थियोंकी शाब्दिक योग्यता और संख्या सम्बन्धी योग्यताके बीच ·८३ का अनुबन्ध पाया गया; वयस्कोंमें यह ·२६ था (९)। अन्य परीक्षाओंसे और विभिन्न आयु-वर्गोंमें भी ऐसे परिणाम पाये गये हैं (५)। इससे पता चलता है कि अवस्थाके साथ योग्यताओंका अन्तर और विशिष्टीकरण उत्तरोत्तर अधिक होता जाता है।

वयस्कोंकी उपलब्धियोंमें जो अन्तर पाये जाते हैं, वे पूर्णतः उनकी भिन्न सामर्थ्योंके कारण नहीं होते; अंशतः वे शिक्षण और प्रयत्नके अन्तरोंके कारण होते हैं। एक व्यक्ति किसी एक काममें विशेष योग्यता प्राप्त करता है, और दूसरा व्यक्ति किसी दूसरे काममें; और इस प्रकार उपलब्धिका विशिष्टीकरण हो जाता है। निस्सन्देह उपलब्धि सामर्थ्यकी अपेक्षा अधिक विशिष्टीकृत होती है।

पेशे की सफलता की भविष्यवाणी

इस प्रकरणमें अबतक हमने योग्यताओंके पारस्परिक सम्बन्ध के विषयमें दिलचस्पी ली है। किन्तु, मुख्यतया परीक्षाएं इस मतलबसे ली जाती हैं कि व्यक्तियोंके विषयमें पहिलेसे मालूम किया जा सके कि वे किसी ख़ास पेशेमें कितनी सफलता प्राप्त करेंगे। जब परीक्षाओंका उपयोग इस अर्थमें किया जाता है, तब उन्हें «प्रवणता-मापक परीक्षाएं» कहते हैं। यह तो निश्चित है कि इन परीक्षाओंसे व्यक्ति की वर्तमान उपलब्धि का पता चल जाता है, किन्तु इनसे यह भी संकेत मिल जाता है कि अधिक शिक्षण या अनुभवके बाद भविष्यमें उसकी उपलब्धि कैसी होगी।

प्रवणता-मापक परीक्षा की आवश्यकताएं. यदि हम चाहते हैं कि किसी परीक्षासे वास्तवमें फ़ायदा हो, तो उसकी रचना और प्रमाणीकरण[१] सावधानीके साथ होना चाहिए। इसके अतिरिक्त उसको पहिले ही प्रयोग करके जांच लेना चाहिए कि किसी निर्दिष्ट क्षेत्रमें सफलताकी सही भविष्यवाणी करनेमें वह कहां तक सहायक है। परीक्षाओंको अधिक से अधिक भरोसेके योग्य बनानेके लिए पूर्ण सावधानीसे काम लेना चाहिए। किसी अच्छी परीक्षामें दो विशेष गुण होते हैं, जिनको मनोवैज्ञानिक विश्वसनीयता[२] और प्रमाणिकता[३] कहते हैं।

«विश्वसनीयता». यदि किसी परीक्षामें कई बार बैठने पर प्रत्येक व्यक्तिके प्राप्तांकोंमें संगति[४] दिखाई दे, तो समझना चाहिए कि वह परीक्षा «विश्वसनीय» है। यह जाननेके लिए कि परीक्षा कितनी विश्वसनीय है, आप दो अलग-अलग समय पर व्यक्तियोंके एक बड़े समूहकी परीक्षा लीजिए। यदि प्रत्येक व्यक्ति दोनों बार लगभग एक-से अंक पावे, तो परीक्षा को विश्वसनीय मानना चाहिए। किन्तु, यदि प्राप्तांक दोनों बार एक दूसरेसे काफ़ी भिन्न हों तो समझना चाहिए कि परीक्षा अविश्वसनीय है, क्योंकि इससे यह पता नहीं चलता कि जिस योग्यता को आप मापनेका प्रयत्न कर रहे हैं, उसमें किसकी स्थिति अच्छी है और किसकी बुरी। पहिली बारकी परीक्षा और दूसरी बारकी परीक्षाके बीचके अनुबन्ध को आत्मानुबन्ध[५] कहते हैं। एक अत्यन्त विश्वसनीय परीक्षाका आत्मानुबन्ध ·९०

[१] standardization [२] dependability [३] validity [४] consistency [५] self-correlation

तक पहुंचना चाहिए, किन्तु कई उपयोगी परीक्षाएं इस आदर्श तक पूरी तरह नहीं पहुंच पातीं।

«प्रामाणिकता». विश्वसनीय परीक्षा द्वारा आप किसी निर्दिष्ट योग्यताकी माप तो भलीभांति कर सकेंगे, किन्तु जिस कार्यकी सफलताका पूर्वज्ञान आप करना चाहते हैं, उससे यदि वह योग्यता अच्छी तरह सम्बन्धित नहीं है, तो आपकी परीक्षा पूर्वज्ञानका आधार बननेके लिए प्रामाणिक नहीं कही जा सकती। पकड़ की शक्तिकी जांचके लिए डाइनामो-मीटर-परीक्षा बहुत विश्वसनीय है, लेकिन यह भविष्यवाणी करनेके लिए कि कोई व्यक्ति १०० गजकी दौड़ कितनी तेजीसे दौड़ लेगा, इस परीक्षाका कोई उपयोग नहीं और इसलिए इस दृष्टिसे यह प्रामाणिक नहीं है। इन दोनों योग्यताओंमें केवल ·१६ का अनुबन्ध है, इससे ही हमारी बातकी पुष्टि हो जाती है।

जिस कार्य¹ के विषयमें आप पूर्वाभास पाना चाहते हैं, यदि उसका अच्छा संकेत परीक्षा से मिल सका तो उसमें प्रामाणिकता मौजूद है, ऐसा समझना चाहिए। यदि परीक्षा के प्राप्तांकोंको देखकर आप यह बता सकें कि ये व्यक्ति निर्दिष्ट कार्यमें कितने सफल होंगे तो इस उद्देश्यके लिए आपकी परीक्षा प्रामाणिक है। एक मनोवैज्ञानिकको कोई परीक्षा (परीक्षाओं का समूह) तैयार करने दीजिए जिससे किसी पेशेमें व्यक्तियों की सफलता या असफलता की बात पहिलेसे ही जाननी हो; उसको ऐसे बहुत-से लोगोंकी परीक्षा लेने दीजिए जो उस पेशे में घुसना चाहते हों, और फिर वे प्रत्येकको देखे कि उसने वास्तवमें उस पेशेमें कितनी सफलता प्राप्त की। यदि परीक्षा प्रामाणिक है तो प्राप्तांकों पर आधारित उसकी भविष्यवाणी पेशेमें व्यक्तियोंकी वास्तविक सफलता या असफलतासे काफ़ी हद तक मेल खायेगी। पेशेमें सफलता ही वह «कसौटी» है जिसपर परीक्षा को जांचकी जानी चाहिए, और उसकी प्रामाणिकता के लिए यह आवश्यक होना चाहिए कि परीक्षा और कसौटीमें अच्छा अनुबन्ध हो। चूंकि दो योग्यताओंके बीचका अनुबन्ध कभी उतना ऊंचा नहीं होता, जितना किसी अच्छी परीक्षा का आत्मानुबन्ध, इसलिए प्रामाणिकता विश्वसनीयता के बराबर ऊंची कभी न होगी। ·७५ का प्रामाणिकता-अनुबन्ध व्यक्तिकी सफलता का अच्छी तरह पूर्वाभास करा देता है, और निम्न प्रामाणिकता वाली परीक्षाएं किसी एक व्यक्तिकी अपेक्षा लोगोंके एक बड़े समूहकी औसत क्रियाओंसे सम्बन्धित कुछ व्यावहारिक समस्याओंके लिए अधिक उपयुक्त हैं।

स्कूल की सफलता का पूर्वाभास. बुद्धि-परीक्षाओं के सम्बन्धमें एक व्यावहारिक प्रश्न यह उठता है कि उनसे जो व्यक्तिगत भिन्नताएं प्रकट होती हैं, उनका बच्चे या वयस्कके दैनिक जीवनमें क्या प्रभाव पड़ता है। यदि उनका प्रभाव पड़ता हो, तो शिक्षा और पेशेके सम्बन्धमें रास्ता बतानेमें उनका अच्छा उपयोग किया जा सकता है। यदि किसी बालक की बुद्धि-लब्धि इतनी ऊंची है जिससे उसकी सफलता की निश्चित आशा बंध सके तो उसे कॉलेजकी शिक्षा पानेके लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है, हालांकि उसमें यह शर्त तो रहेगी ही कि वह अपनी पढ़ाईमें परिश्रम करे। अथवा अगर बालककी बुद्धि-लब्धि काफ़ी ऊंची नहीं है तो उसे कॉलेज की पढ़ाई शुरू न करनेकी सलाह दी जा सकती है। किन्तु परामर्शदाता को निर्णय करनेमें भी सावधानी बरतनी चाहिए, क्योंकि उसकी सलाह पर एक बालकके जीवनका भविष्य निर्भर करता है। उसे बुद्धि-परीक्षा के परिणामों पर ही निर्भर न रहकर अन्य बातों, जैसे बालकके चरित्र, व्यक्तित्व, परिस्थितियों और पेशेमें प्राप्त होनेवाले सुअवसरोंको भी ध्यानमें रखना चाहिए।

सब बातोंको देखते हुए बच्चेकी बुद्धि-लब्धि और उसकी स्कूली सफलता में बहुत अच्छा अनुबन्ध है। यह अनुबन्ध खासतौरसे सब अधिक होता है जब हर बच्चेको, चाहे वह कितना ही प्रखर-बुद्धि क्यों न हो, अपने तरीकेसे आगे बढ़नेका अवसर दिया जाता है। प्रारम्भिक स्कूलकी ऊंची कक्षाओंमें नीची बुद्धि-लब्धि वाले बालक पिछड़ने लगते हैं। सम्भवतः आठवीं कक्षाका नियमित कार्य पूरा करनेके लिए बुद्धि-लब्धि का ९० होना आवश्यक है, हाई स्कूल की पढ़ाई खत्म करनेके लिए बुद्धि-लब्धि १०० होनी चाहिए, और ग्रेजुएट कक्षाओं का कार्य सन्तोषजनक रीतिसे पूरा करनेके लिए ११० बुद्धि-लब्धि होनी आवश्यक है; यद्यपि यह याद रखना चाहिए कि इन संख्याओंसे एक मोटा अन्दाज ही लगाया जा सकता है। कई कॉलेजोंमें केवल उत्कृष्ट योग्यता के विद्यार्थी ही भरती किये जाते हैं। ये कॉलेज साधारण जनसंख्या के प्रतिभाशाली व्यक्तियोंका अच्छा प्रतिनिधित्व करनेवाले छात्रोंको छांटनेमें सफल होते हैं, इसका पता छात्रोंकी बुद्धि-परीक्षा के परिणामोंसे अच्छी तरह चल जाता है।

किन्तु बुद्धि-परीक्षा के प्राप्तांकों और शिक्षा-सम्बन्धी सफलताके बीच सादृश्यकी मात्रा क्रमशः कम होती जाती है। जो मात्रा प्रारम्भिक पाठशालामें होती है, वह माध्यमिक स्कूल में नहीं रहती, और जो माध्यमिक स्कूलमें होती है, वह कॉलेजमें नहीं मिलती। बुद्धि-लब्धि और स्कूलके प्राप्तांकोंके बीचका अनुबन्ध क्रमशः कम होता जाता है। यदि छोटी कक्षाओंमें वह लगभग ·७५ रहता है, तो माध्यमिक स्कूलमें ·६०-·६५ हो जाता है, और कॉलेजमें ·५० या उससे कुछ कम-अधिक रहता है (३)। इसका एक कारण तो यह

¹ performance

है कि कॉलेज[1] के छात्रोंका वर्ग अच्छी तरह छाँटा हुआ होता है; निम्न बुद्धि-लब्धि के छात्र, जिनका कॉलेज की कक्षाओं में अनुत्तीर्ण होना निश्चित-सा रहता है, पहिले ही छंट-छंट कर निकल जाते हैं और जो लोग भरती कर लिये जाते हैं, उनकी उपलब्धि बहुत कुछ उनकी रुचि पर निर्भर करती है। उच्च बुद्धि-लब्धि वाले कुछ छात्र कॉलेजके पाठ्यक्रमके बजाय कुछ अन्य विषयों पर अपना ध्यान् केन्द्रित करना पसन्द करते हैं; जबकि कुछ छात्र पाठ्यक्रमको बहुत आसान पाते हैं। इस सम्बन्धमें यह ख्याल रखना चाहिये कि कार्यमें सफलता के लिए उसकी योग्यता तो चाहिये ही, लेकिन साथ ही उसे करनेके लिए प्रेरणा[2] का मिलना भी आवश्यक है।

« बुद्धि-परीक्षा के प्राप्तांकोंसे कॉलेजकी श्रेणियोंके बारेमें पूर्वाभासका एक उदाहरण»। एक बार कॉलेजमें भरती हुए १०० छात्रोंका, जिनकी बुद्धि-परीक्षा के प्राप्तांकोंमें अन्तर था, निरीक्षण इसलिए किया गया कि देखा जाय कि उनकी परीक्षासे उनके पाठचक्रमके प्राप्तांकोंका अन्दाज कितने सही ढंगसे हो सकता था। इस निरीक्षण का परिणाम आकृति १२ में दी हुई अनुबन्ध-तालिका या विकीर्ण चित्र[3] में प्रदर्शित किया गया है। प्रत्येक बिन्दु १०० छात्रोंमें से एक छात्रका प्रतिनिधित्व करता है। जितनी ही दाहिनी ओर उसका बिन्दु है, उतना ही अच्छा वह बुद्धि-परीक्षा में रहा था; और जितना ही ऊपर उसका बिन्दु पड़ता है, उतना ही अच्छा वह कॉलेजकी श्रेणीमें रहा। इस आकृतिमें एक बात दिखाई देती है कि जो बिन्दु जितने ही दाहिनी ओर हटकर हैं, उतनी ही उनकी प्रवृत्ति ऊपरकी ओर स्थित होनेकी है। इससे कुछ हद तक धनात्मक अनुबन्ध का लक्षण मिलता है। किन्तु अनुबन्ध इसलिए ऊंचा नहीं हो सका है, क्योंकि बिखराव बहुत ज्यादा है। प्रश्न उठता है, हम परीक्षा-प्राप्तांकों से कहां
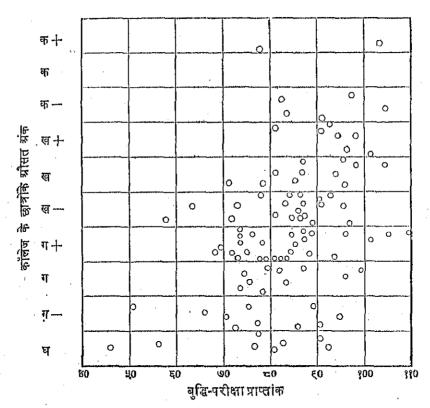
आकृति १२. बुद्धि-परीक्षा प्राप्तांकों और १०० छात्रोंकी कॉलेज श्रेणियोंमें अनुबन्ध दिखानेवाली बिखराव (स्कैटर) का चित्र। यदि अनुबन्ध +१·०० होता, तो सभी बिन्दु एक कर्णरेखा (डाएगोनल लाइन) में, बायें हाथकी ओर नीचेसे लेकर दायें हाथकी ओर ऊपरी कोने तक फैले होते। यदि अनुबन्ध शून्य होता, तो बिन्दु किसी ओर के लिए कोई खास झुकाव न दिखाते। किन्तु इस आकृतिमें जैसा है, +·४० के अनुबन्ध सहित बिन्दु काफ़ी बिखरावके बावजूद कर्णरेखा की ओर झुके हैं। (ये बुद्धि-परीक्षा प्राप्तांक बुद्धि-लब्धियां नहीं हैं)। समरविल (१२) से संगृहीत सामग्री।

[1] यह वर्णन अमेरिका के कॉलेजोंके लिए विशेष रूपसे उपयुक्त है—अनुवादक [2] motivation [3] scattered diagrams

तक भविष्यवाणी कर सकते हैं ? आइए देखें कि कॉलेज के प्राप्तांकोंको बतानेकी उनमें कुछ शक्ति है या नहीं।

विकीर्ण चित्रसे दो मापदंडों (यहां परीक्षा-प्राप्तांकों और कॉलेजके प्राप्तांकोंसे तात्पर्य है) के सम्बन्धोंका पूरा चित्र प्राप्त होजाता है, किन्तु अनुबन्धसे कोई सार्थक अनुमान लगाने के पहिले उसका विश्लेषण होना आवश्यक है। विश्लेषणकी एक पद्धतिमें पहिले समूहोंमें तुलना की जाती है। परीक्षा-प्राप्तांकों के आधार पर १०० छात्रोंके समूहको चतुर्थांशोंमें बांट दीजिए और इन चतुर्थांशोंमें से उच्चतम और निम्नतम के कॉलेज-प्राप्तांकों में तुलना कीजिए। आप देखेंगे कि बुद्धि की दृष्टिसे सबसे नीचा चतुर्थांश कॉलेजकी श्रेणियोंमें औसतन 'ग' रहा, जबकि सर्वोत्तम बुद्धि वाले चतुर्थांश ने कॉलेजकी श्रेणियोंमें 'ख' का औसत प्राप्त किया। इस प्रकार मोटे तौर पर जो लोग बुद्धि-परीक्षा में अच्छे रहे, उन्होंने कॉलेजकी श्रेणियोंमें भी अच्छा स्थान पाया।

शेष बचे हुए दो चतुर्थांशों पर भी विचार करना चाहिए। ऐसा करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं :

बुद्धिकी दृष्टिसे सबसे निम्नतम चतुर्थांश ने कॉलेजके प्राप्तांकोंमें 'ग' का औसत प्राप्त किया ;

बुद्धिकी दृष्टिसे द्वितीय चतुर्थांश ने कॉलेजके प्राप्तांकोंमें 'ग' + का औसत पाया ;

बुद्धिकी दृष्टिसे तीसरे चतुर्थांश ने कॉलेजके प्राप्तांकों में 'ख' — का औसत प्राप्त किया ;

बुद्धिकी दृष्टिसे सबसे ऊंचे चतुर्थांश ने कॉलेजके प्राप्तांकों में 'ख' का औसत पाया।

बुद्धि-प्राप्तांकों की वृद्धिके समानान्तर कॉलेज-प्राप्तांकोंमें ऊपरकी ओर जो निश्चित प्रगति दिखाई देती है, उससे लगता है कि इन दोनोंमें कोई वास्तविक सम्बन्ध है। यदि हम दो ऐसे समूहोंको लें जिनमें से एक समूह बुद्धिकी दृष्टिसे घटिया अंक पाता है और दूसरा अच्छे, तो हम यह भविष्यवाणी कर सकते हैं कि नीचे दर्जेकी बुद्धिवाले समूहकी अपेक्षा ऊंची बुद्धि वाला समूह कॉलेजमें अच्छे नम्बर पायेगा। हम कुछ और आगे बढ़कर कह सकते हैं कि किसी समूहकी बुद्धि जितनी ही ऊंची होगी, कॉलेजकी कक्षाओंमें वह समूह उतने ही अच्छे अंक पायेगा। जहां तक छात्रोंके «समूहों» का प्रश्न है, हम यह भविष्यवाणी कुछ विश्वासके साथ कर सकते हैं। किन्तु यदि हम «एक व्यक्ति» के कॉलेज-जीवन के विषयमें भविष्यवाणी करना चाहें, तो हमें तुरन्त सावधानीसे काम लेना चाहिए, क्योंकि हम ऊपरकी आकृतिमें देख चुके हैं कि हर समूहके छात्रों ने कॉलेज-प्राप्तांकोंके सम्बन्धमें कितना अधिक बिखराव प्रदर्शित किया है।

मुख्य तथ्योंके निरूपणके लिए एक दूसरी विधि भी है। छात्रोंके समूहको चतुर्थांशोंमें विभाजित कर दीजिए, एक बार बुद्धि-प्राप्तांकों के अनुसार और दूसरी बार कॉलेज-प्राप्तांकों के अनुसार ; और फिर देखिए कि चतुर्थांशोंमें कितना सादृश्य रहता है। इस विधिसे निम्नलिखित तालिका बन जाती है, जिसमें घटिया बुद्धि-प्राप्तांक वाले २५ छात्रोंके विषयमें पता चलता है कि १ ने कॉलेजकी कक्षाओंमें सबसे ऊंचा स्थान पाया, ६ न उससे नीचेका स्थान, और ७ तथा ११ ने शेष दो नीचे वाले स्थान पाये। इसी प्रकार चतुर्थांशोंमें से प्रत्येकमें काफ़ी बिखराव दिखाई देता है ; किन्तु सभी छात्रोंकी लगभग आधी संख्या दोनों मापोंमें एक ही चतुर्थांशमें पड़ती है।

छात्रोंके समूहका चतुर्थांशोंमें विभाजन

(बायेंसे दायें बुद्धि-परीक्षा के प्राप्तांकोंके अनुसार और ऊपरसे नीचे कॉलेजके प्राप्तांकोंके अनुसार)

कॉलेज प्राप्तांक				
ऊंचा	१	६	५	१३
	६	३	११	५
	७	१०	५	३
नीचा	११	६	४	४
	नीचा			ऊंचा

बुद्धि-परीक्षा प्राप्तांक

रेखाकृति और तालिका में संगृहीत सारी जानकारी को हम संश्लिष्ट रूपसे एक संख्यामें प्रकट कर सकते हैं, वह संख्या है : बुद्धि-परीक्षा-प्राप्तांकों और कॉलेज-प्राप्तांकों के बीचके अनुबन्धका माप। श्रेणी-अन्तर विधि[1] या अन्य विधियोंसे गणना करने पर अनुबन्ध लगभग +·४० उभरता है। कॉलेजके छात्रोंके अन्य समूहोंमें कुछ ऊंचा अनुबन्ध (लगभग +·५० या ·५५) दिखाई दिया है। यह किसी भी तरह ऊंचा अनुबन्ध नहीं कहा जा सकता, तो भी यह इतना ऊंचा अवश्य है, जिससे यह सिद्ध होता है कि कॉलेजमें छात्रके प्राप्तांकोंको निश्चित करनेमें बुद्धि एक निर्णयात्मक तत्व है। परन्तु साथ ही साथ इसका पलड़ा इतना हलका है कि जिससे यह

[1] rank-difference method

मानना पड़ता है कि अन्य बातोंका भी छात्रके कॉलेज-प्राप्तांकों पर प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार वे दो छात्र जिन्होंने विकीर्ण रेखाकृतिमें बुद्धि-परीक्षा में सर्वोच्च अंक पानेके बावजूद कॉलेजमें केवल 'ग' + ही प्राप्त किया, निश्चित रूपसे वहां भी अच्छा स्थान पाये होते, यदि कुछ बातों ने उनके मार्गमें बाधा न दी होती। वे बाधाएं होसकती हैं: समय या रुचिका अभाव, या शायद बुरा स्वास्थ्य। कॉलेजकी उपलब्धिकों प्रभावित करनेवाली कई बातें हैं, जिनमें से बुद्धि भी एक है।

विमान-चालन-शिक्षण की सफलता के बारेमें भविष्यवाणी. गत महायुद्धके शुरू होने पर हजारों नौजवानोंको विमान-चालन की शिक्षा देना आवश्यक होगया। समयकी मांग थी कि शिक्षणमें काफ़ी जल्दी की जाय। जितने लोगों ने प्रशिक्षा लेनी शुरू की, उनमें से लगभग एक तिहाई व्यक्ति अपना पाठ्यक्रम पूरा करनेमें असफल रहे और नौकरी न पा सके। चूंकि विमानों और शिक्षकोंकी संख्या सीमित थी, इस लिए यह जरूरी जान पड़ा कि केवल ऐसे ही विद्यार्थी प्रशिक्षा के लिए चुने जायें जो पाठ्यक्रमको पूरा करनेकी क्षमता दिखावें। इसलिए मनोवैज्ञानिकोंसे ऐसे प्रवणता-परीक्षण तैयार करनेके लिए कहा गया, जिनसे सभी छात्रोंकी जांचकी जासके।

वायु-सेना में कई तरहके परीक्षणोंका प्रयोग किया गया और विमान-चालन-शिक्षण में प्राप्त सफलता अथवा असफलता के साथ परीक्षा-प्राप्तांकों का अनुबन्ध मालूम किया गया। कोई भी परीक्षा अकेली इतनी प्रामाणिक सिद्ध नहीं हुई कि केवल उसीसे काम निकाला जासकता। उदाहरणके लिए, बुद्धि-परीक्षाओं और सफलता का अनुबन्ध काफ़ी नीचा रहा, शायद इसलिए कि उम्मीदवारोंमें से अधिकांश कॉलेजोंके छात्र थे, जिनमें विमान-चालनकी प्रशिक्षाके लिए आवश्यक बुद्धि पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थी। प्रतीत हुआ कि बुद्धिके अतिरिक्त अन्य योग्यताएं भी सफलता के लिये आवश्यक हैं। तदनुसार, कई प्रकारकी १८ परीक्षाओंकी एक «समूह[1]» तैयार की गयी और उससे भविष्यवाणी करनेकी चेष्टा की गयी। किसी भी एक परीक्षा की प्रामाणिकता ऊंची नहीं थी, परन्तु जब सभी परीक्षाओंके प्राप्तांक एक साथ मिलाये गये तो प्रामाणिकता पर्याप्त होगयी। कागज-पेंसिल की १२ परीक्षाओंमें संयुक्त प्रामाणिकता '५१ प्राप्त हुई, यही बात चेष्टा-संयोजन[2] के निमित्त ली गयीं ६ उपकरण-परीक्षाओंमें भी मिली (देखिए आकृति १३)। अठारहों परीक्षाओंको संयुक्त कर देनें पर प्रामाणिकता '६० होगयी। आकृति १४ से आपको पता चलेगा कि इस परीक्षा-समूह से कितनी अच्छी तरह विमान-चालन की प्रशिक्षा में होनेवाली सफलता का अनुमान लगाया जासका (१४)।

कर्मचारियोंका चुनाव. कई व्यापारिक और औद्योगिक संस्थाएं अच्छे कर्मचारियोंकी प्राप्तिके लिए प्रवणता-परीक्षाओं का आश्रय लेती हैं। वायु सेना वाले चुनावकी तरह ही इनके चुनावकी विधियां वहीं तक मूल्यवान होंगी जहां तक पेशोंकी जरूरतोंको पहिलेसे बतानेमें परीक्षाएं विश्वसनीय और प्रामाणिक होंगी। एक प्रकारका काम दूसरे प्रकार के कामसे बिल्कुल भिन्न होता है, इसलिए कोई प्रवणता-परीक्षा जो एक कम्पनीके बारेमें अच्छी भविष्यवाणी दे पाती है, दूसरी कम्पनीके लिए व्यर्थ होसकती है (१, २०)।

प्रवणता-परीक्षा के लिए कार्यक्रम निश्चित करनेकी दिशा में पहिला काम होना चाहिए, हर नौकरीका विश्लेषण। इस विश्लेषण द्वारा यह जाननेकी चेष्टा करनी चाहिए कि नौकरी की आवश्यकताएं क्या हैं, साथ ही काम पर लगे हुए अच्छे और कमजोर कर्मचारियोंके बीचका वास्तविक अन्तर मालूम करना चाहिए। इस विश्लेषणके आधार पर विभिन्न प्रकार की परीक्षाओंका चुनाव और निर्माण किया जाता है। इसमें परख और अनुमानकी काफ़ी जरूरत होती है। इसके बाद सफल कर्मचारियों और कम सफल कर्मचारियोंको परीक्षा में बैठाया जाता है। जो परीक्षाएं इन दोनों समूहोंके प्राप्तांकों में भिन्नता प्रदर्शित करती हैं, उनको अन्तिम रूपसे चुन लिया जाता है।

अब नये उम्मीदवारों पर प्रयोग करनेके लिए प्रवणतापरीक्षावली तैयार होगयी। इसके बाद यह काम रह जाता है कि प्रत्येक व्यक्तिके कार्यका सावधानीसे निरीक्षण किया जाय। हर कर्मचारीकी सफलता की कसौटी बनानेके लिए उत्पादन की गति, निरीक्षक के मतों, अनुपस्थितियों और अन्य बातोंका संग्रह किया जाता है। परीक्षावलीकी प्रामाणिकता कसौटीके साथ अनुबन्ध निकालकर मापी जाती है। इन परीक्षाओंकी बार-बार छान-बीन करते रहनेसे इनमें उन्नति भी सम्भव होती है।

पेशेके चुनाव में पथप्रदर्शन[3]. कर्मचारियोंके चुनावमें जिन रीतियोंका अनुसरण किया जाता है, उनमें से कुछ पेशों के चुनावके सम्बन्धमें भी उपयोगी होसकती हैं। दोनों कार्यों में काफ़ी सादृश्य है, फिर भी दोनोंमें भिन्न बातों पर बल दिया जाता है। कर्मचारियोंको चुननेमें जोर इस बात पर होता है कि कामके लिए अच्छेसे अच्छा आदमी प्राप्त किया जाय, और पेशेके चुनावमें आदमीके लिए उपयुक्त पेशा पाने पर जोर दिया जाता है। (१०, १६, २१)।

शिक्षा और कार्यके लिए सबसे उपयुक्त क्षेत्र ढूंढनेकी समस्या सभी छात्रोंके लिए सर्वाधिक महत्व की है, और यह कोई सीधी या सरल समस्या नहीं है। अमेरिका की

[1] battery [2] motor co-ordination [3] vocational guidance

जनगणना से पता चला है कि उस देशमें लगभग २५,००० विभिन्न पेशे हैं, और बौद्धिक व्यवसायोंकी भांति इन पेशोंमें बहुतसे अलग-अलग तरहके काम शामिल हैं। छात्रको इतनी जानकारी सुलभ नहीं होती कि वह इनमें से अपने लिए कोई अच्छा काम चुनसके। सम्भवतः इस दिशा में पहिला उचित प्रयत्न यह होगा कि छात्र किसी व्यवसायोंका परामर्श देने वालेके पास जाय और उसे अपनी योग्यताओं और विशेष प्रवणताओंसे परिचित कराये।

इन तथ्योंसे सम्भव है, बहुत कम कार्य ऐसे रह जायें जो उसके करने योग्य हों या जिन्हें वह करसकता हो, क्योंकि कुछ कार्यों में तो बहुत अधिक और एक खास तरहकी योग्यता की जरूरत होती है, जबकि कुछ कार्योंमें बहुत थोड़ी योग्यता की
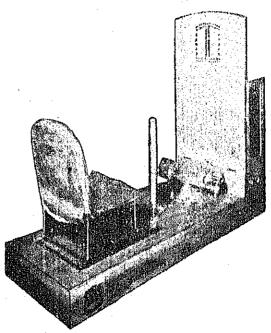
आकृति १३. वायु-सेना द्वारा प्रयुक्त जटिल समन्वय परीक्षा (कोऑर्डिनेशन टैस्ट)। उम्मीदवार प्रकाशकी बत्तियोंकी तीन दोहरी पंक्तियोंके सामने बैठता है, जिनमें से प्रत्येक में एक लाल बत्ती जलती होती है। अपने हाथसे एक छड़ीको और पैरसे एक पतवारको चलाकर वह तीनों पंक्तियोंमें से हरेक पंक्तिमें, लाल प्रकाशसे मिलान खाती हुई एक हरी बत्ती जला देता है। जब ये तीनों जोड़े एक साथ मिलान खाते हैं, सभी तीन लाल बत्तियों की एक नयी बानगी (पैटर्न) स्वतः प्रकट होजाती है। उम्मीदवारकी क्रियाशीलता इस बात से नापी जाती है कि एक निर्दिष्ट समयमें वह कितने तरहके नमूने पूरे कर लेता है। [फ़ोटो ए० ए० एफ़० स्कूल ऑफ़ एविएशन मेडिसिन (१५) के प्रोफ़ेसर ए० डब्ल्यू० मेल्टनके सौजन्यसे।]

इस परीक्षा को सन् १९३४ में कर्नल नीली सी० माशबर्न ने 'ए० ए० एफ़० स्कूल ऑफ़ एविएशन मेडिसिन' में विकसित किया था। द्वितीय महायुद्धमें इस परीक्षा के समान कोई अकेली परीक्षा इस योग्य सिद्ध न हुई कि इतनी खूबीसे वायुयान-चालकोंकी सफलता का पूर्वाभास दे सके। दृष्टि-चेष्टा समन्वयकी अन्य परीक्षाएं, जो परीक्षाओंके समूहमें सम्मिलित की गयी थीं दोनों हाथोंका सहयोग चाहनेवाली परीक्षाएं थीं। इनमें से एक परीक्षा में दोनों हाथोंसे खरादकी मशीनके हत्थोंकी तरहके दो हत्थोंको साथ-साथ घुमाना पड़ता है। एक परीक्षा में अन्तर बतानेकी प्रतिक्रिया का समय जाना जाता है। एक परीक्षा अंगुलियोंकी निपुणता जांचनेके लिए ली जाती है, इसमें उम्मीदवार छोटी-छोटी कीलों को उठाता है, उन्हें उल्टा करता है और उनके छिद्रोंमें उन्हें वापस रख देता है। एक बहु-विमानुसरण (मल्टी डायमैन्शनल) परीक्षा होती है, जिसमें एक साथ तीन यंत्रोंके मीटरों (मापकयंत्रों) पर ध्यान देना पड़ता है।

आवश्यकता होती है। यदि उसके व्यक्तित्वकी विशेषताओं, उसके आदर्शों और उसकी रुचियोंका मूल्य आंका जाय, तो उसके अपनाने योग्य पेशोंकी संख्या और सीमा और भी संकुचित हो जायगी (अगला प्रकरण देखिए)। फिर भी उसके सामने चुनावके लिए कई पेशे रह जायेंगे। कोई भी व्यावसायिक परामर्शदाता निश्चित और अन्तिम सिफ़ारिश करनेका उत्तरदायित्व शायद ही कभी लेता है। आख़िरकार व्यक्ति को ही अपने लिए उपयुक्त व्यवसायका चुनाव करना पड़ेगा।
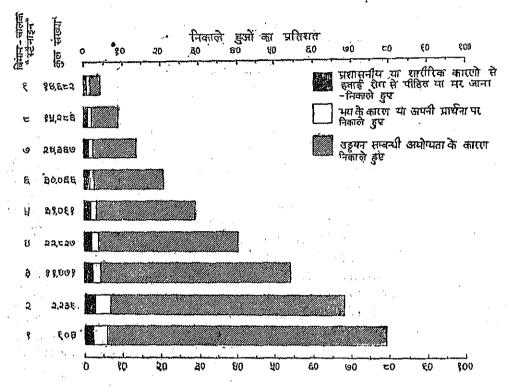
आकृति १४. प्रवणता-परीक्षाओं की एक समूहा की सहायतासे विमान-चालनकी प्रशिक्षामें असफलता पानेका पूर्वाभास पाना। यह आकृति तेरह विमान-चालक कक्षाओंके १,५३,००० छात्रों पर किये हुए परीक्षाओंके परिणामों पर आधारित है। प्रत्येक पंक्ति एक खास प्रवणता-प्राप्तांक वाले छात्रोंका, जो प्रशिक्षा को पूरा करनेमें असफल रहे, प्रतिशत बताती है। [(१४) के आधार पर]

सारांश

१. कुछ व्यक्ति स्पष्टतः अन्य विषयोंकी अपेक्षा एक विषय में अत्यधिक योग्यता रखते हैं।

(क) «प्रतिभाशाली जड़बुद्धि[१]» उन बिरले हीन-बुद्धि व्यक्तियोंको कहते हैं जो एक विशेष कार्यमें बहुत ऊंची योग्यता रखते हैं।

(ख) «अंकगणितकी विलक्षण प्रतिभाएं» सामान्य योग्यता में तो साधारण होती है, किन्तु तेजीके साथ मानसिक गणना करनेकी उनमें अद्भुत् क्षमता होती है।

(ग) «पठन-सम्बन्धी अयोग्यता» प्रायः उन बच्चोंमें पायी जाती है जिनकी बुद्धि-लब्धि या तो साधारण[२] है या साधारणसे अधिक।

२. दो परीक्षाओंमें व्यक्तियोंके एक समूहके स्थानोंका सादृश्य मापनेके एक मापदंडको « अनुबन्ध[३]» कहते हैं। यदि पूर्ण सादृश्य हो, तो +१·०० के अनुबन्ध द्वारा उसे प्रकट करते हैं। पूर्ण किन्तु विलोम[४] सम्बन्धको —१·०० द्वारा और आकस्मिक सम्बन्धको ० द्वारा प्रकट किया जाता है।

[१] Idiote savants [२] normal [३] correlation [४] reverse

३. दो परीक्षाओंके बीचके अनुबन्धकी मात्रा मापी हुई योग्यताओंका तादात्म्य[1] या अन्तर प्रकट करती है।

(क) इस तथ्यसे कि अधिकांश अनुबन्ध नीचे होते हैं, पता चलता है कि कई «विशिष्ट योग्यताएं» होनी चाहिएं।

(ख) इस तथ्यसे कि अधिकांश अनुबन्ध धनात्मक[2] होते हैं, पता चलता है कि कोई «सामान्य योग्यता[3]» नाम की वस्तु होनी चाहिए जो किसी न किसी मात्रामें प्रत्येक परीक्षा में काम करती है।

(ग) इस तथ्यसे कि परीक्षाओंके एक समूहमें आपसमें ऊंचा अनुबन्ध होता है, किन्तु अन्य परीक्षा के साथ नीचा अनुबन्ध होता है, पता चलता है कि समूहगत तत्व[4]—मध्यम विस्तारकी योग्यताएं—भी होने चाहिएं। कुछ उदाहरण नीचे दिये जारहे हैं:

१. «भाषा-सम्बन्धी योग्यता[5]» वह योग्यता है जो शब्दोंके प्रयोग द्वारा विचारों और अर्थोंको स्पष्ट करनेमें काम आती है।

२. «संख्या-सम्बन्धी योग्यता[6]» संख्याओंके पारस्परिक सम्बन्धोंका निरूपण करनेवाली और हिसाब लगानेवाली योग्यताको कहते हैं।

३. «देश-सम्बन्धी योग्यता[7]» उस योग्यता को कहते हैं जिससे वस्तुओं की स्थिति, दूरी इत्यादि और उनके देशीय सम्बन्धोंको समझा जाता है और तत्सम्बन्धी ज्ञानका समस्याओंको सुलझानेमें उपयोग किया जाता है।

(घ) विशेष योग्यताओंके पारस्परिक अनुबन्ध वयस्कों की अपेक्षा बच्चोंमें ऊंचे होते हैं। योग्यता का यह बढ़ता हुआ भेद-भाव शिक्षा और अर्जित रुचियों[8] के अन्तरोंका परिणाम होसकता है।

४. पेशोंमें सफलता की भविष्यवाणी अंशतः «प्रवणता-परीक्षाओं[9]» केआधार पर की जाती है। प्रवणता-परीक्षाएं वर्तमान योग्यताको नापनेके साथ ही यह भी बताती हैं कि यदि उचित शिक्षण मिले तो किसी व्यक्तिकी उपलब्धि[10] कहां तक होसकती है।

(क) विश्वसनीय प्रवणता-परीक्षाओं का निर्माण और प्रमाणीकरण भलीभांति होना चाहिए। उनकी उपयोगिता उनके निम्नलिखित गुणों पर निर्भर करती है:

१. «विश्वसनीयता[11]»—मापदंडकी संगति[12], जैसी कि एक बारकी परीक्षा और दूसरी बार की परीक्षाके अनुबन्धसे निर्धारित होती है, और

२. «प्रामाणिकता[13]»—कसौटी के साथ परीक्षा का अनुबन्ध (अन्तिम सफलता या असफलता की माप)।

(ख) बुद्धि-परीक्षा-प्राप्तांकोंके आधार पर स्कूली सफलता की भविष्यवाणी जितनी ठीक छोटी कक्षाओंमें होती है, उतनी कॉलेजमें नहीं होती, उस दशा में अनुबन्ध ·५० से ·७५ के बीच होता है।

(ग) विमान-चालन शिक्षणमें सफलता प्राप्त करनेके सम्बन्धमें भविष्यवाणी करनेके लिए १८ विभिन्न परीक्षाओं के एक समूहका उपयोग किया गया है। उसके परिणामोंसे प्रमाणित हो चुका है कि ऐसी परीक्षाएं किसी भी एक परीक्षा के बजाय अधिक प्रामाणिक होती हैं।

(घ) कर्मचारियोंके चुनावके लिए जो प्रवणता-मापक परीक्षाएं ली जायें, उनको प्रत्येक पेशेकी आवश्यकताओंके अनुसार प्रामाणिक बना लेना चाहिए और तब उनके प्राप्तांकोंके आधार पर कोई भविष्यवाणी करनी चाहिए।

(ङ) पेशोंके सम्बन्धमें परामर्श देनेवाला व्यक्ति प्रवणता-परीक्षाओं का उपयोग उम्मेदवारके लिए पेशोंके क्षेत्रको सीमित करनेमें करता है, ताकि वह व्यक्ति अपनी रुचि और योग्यता के अनुसार पेशेका चुनाव आसानी से करसके।

[1] identity [2] positive [3] general ability [4] group factors [5] verbal ability [6] numerical ability [7] spatial ability [8] acquired interests [9] aptitude tests [10] achievement [11] reliability [12] consistency [13] validity

४

व्यक्तित्व

पिछले दो प्रकरणोंमें हमने व्यक्तिगत अन्तरोंकी चर्चा की। अभी हम उस चर्चा को आगे जारी रखना चाहते हैं। किन्तु अब हम योग्यता के अन्तरोंसे हटकर उनकी अपेक्षा कम मापे जासकनेवाले पर व्यक्तिके प्रायः अत्यधिक महत्त्वके लक्षणों पर विचार करेंगे, जिनको चरित्र और व्यक्तित्वके नामसे पुकारा जाता है। «चरित्र» का संकेत अधिकतर उस आचरण की ओर होता है जिसे अच्छा या बुरा कहा जासके, जो समाज द्वारा स्वीकृत आदर्शोंके अनुकूल होनेमें सफल या असफल रहता हो। «व्यक्तित्व» का संकेत उस व्यवहारकी ओर है जो भले ही अच्छा या बुरा न हो, परन्तु दूसरे लोगोंको जो रुचिकर या अरुचिकर लगे तथा जो अपने साथियोंके बीच व्यक्तिकी स्थिति को अनुकूल या प्रतिकूल बना दे। चरित्र और व्यक्तित्वके बीच का भेद बहुत स्पष्ट नहीं है और जहां तक हमारा (मनोवैज्ञानिक का) सम्बन्ध है, उसकी उपेक्षा की जासकती है।

यदि आपके किसी मित्र ने किसी नौकरीके लिए आवेदन-पत्र देते समय आपको अपने परिचितोंमें गिना दिया है, तो नियुक्तिकर्ता अफसर आपसे पूछेगा कि आप उम्मीदवारकी योग्यता और अनुभव तथा उसके व्यक्तित्वके विषयमें क्या जानते हैं। उत्तरमें ईमानदारीका पालन करते हुए आप लिख सकते हैं कि उम्मीदवारका व्यक्तित्व दिलचस्प, किन्तु दबंग है, वह उत्साही और अध्यवसायी होनेके साथ साथ प्रसन्न चित्त और सरल मिजाज वाला है, आत्मनिर्भर है किन्तु स्वार्थी नहीं है, और वह अपने सहयोगियोंके साथ अच्छी तरह मिल जुलकर काम करना जानता है। इसी प्रकार हजारों ऐसे विशेषण हैं जिनका उपयोग व्यक्तित्वके वर्णनमें किया जासकता है। ये गुण निश्चय ही पेशे, घरेलू जीवन और सामाजिक जीवनके हर पहलूमें बहुत महत्त्वपूर्ण और उपयोगी सिद्ध होते हैं।

यदि आप क्षण भर सोचें तो आपको पता चल जायगा कि ये विशेषण सही अर्थमें क्रियाविशेषण ही हैं। ये व्यक्तिके व्यवहारके तरीकेका ज्ञान कराते हैं। एक आदमीका आचरण अच्छा लगता है, दूसरेका आचरण चिढ़ या खीझ पैदा करता है, एक उत्साहपूर्वक कोई काम करता है, और दूसरा सुस्ती से। व्यक्तित्वकी विशेषता बतानेवाले शब्द विभिन्न क्रियाओं के नाम नहीं हैं, वरन् व्यवहारके गुणोंके नाम हैं। एक छोटेसे कामको करनेमें भी किसी व्यक्तिका व्यक्तित्व प्रकट हो सकता है। उस कार्यको वह अपने एक विशेष ढंगसे करेगा, यही विशेष ढंग उसका व्यक्तित्व है। व्यक्तित्वकी परिभाषा मोटे तौर पर यह की जासकती है: व्यक्तित्व «व्यक्तिके व्यवहारकी वह व्यापक विशेषता है, जो उसके विचारों और उनको प्रकट करने के ढंग, उसकी अभिवृत्ति और रुचि, कार्य करनेके उसके ढंग, और जीवनके प्रति उसके व्यक्तिगत दार्शनिक दृष्टिकोणसे प्रकट होती है।

वास्तवमें, व्यक्तित्व मनोविज्ञानका सबसे अधिक दिलचस्प अंग है। यदि लोग किसी मनोवैज्ञानिकसे पूछें कि 'आप अपने विषयके सम्बन्धमें कुछ बताइए', तो सम्भवतः वह अपने श्रोताओंसे पूछेगा कि वे अपना प्रश्न कुछ और स्पष्ट करें। वह पूछेगा—'आप किस प्रसंग पर मुझसे चर्चा सुनना पसन्द करेंगे?' 'अच्छा, हमें व्यक्तित्वके सम्बन्धमें कुछ बताइए' श्रोताओंकी ओर से प्रायः उत्तर मिलता है। 'अच्छा, आप व्यक्तित्वके विषयमें क्या जानना चाहेंगे—यदि मैं स्वयं जानता होऊंगा तो चेष्टा करूंगा।' श्रोतागण सम्भवतः ये दो प्रश्न करेंगे (१) व्यक्तित्वकी परख कैसे करनी चाहिए? और (२) किस प्रकार व्यक्तित्वका विकास और सुधार किया जा सकता है? 'कृपया बताइए कि यदि किसी व्यक्ति से हमारी नई नई जान पहचान हुई हो तो उसके विषयमें हम यह कैसे जान सकते हैं कि उसके साथ हमारी पटरी अच्छी बैठेगी। कृपया यह भी बताइए कि हम अपने व्यक्तित्वका विकास स्वयं कैसे कर सकते हैं।' जब कोई व्यक्ति दूसरे लोगोंके प्रति उत्तरदायी होता है, तब इस दूसरे प्रश्नका क्षेत्र विस्तृत हो जाता है। माता पिता, अध्यापक, पुरोहित, मनश्चिकित्सक या मनोवैज्ञानिक परामर्श दाता यह जानना चाहता है कि दूसरे लोगोंके व्यक्तित्वको कैसे विकसित किया जाय।

यदि कोई मनोवैज्ञानिक विद्यार्थियोंके बीच बोल रहा है, तो वह कभी भी व्यक्तित्वकी जांच करनेके लिए बंधे बंधाये नियमोंकी सूची उनके सामने प्रस्तुत न करेगा। छात्रोंके प्रति उसका कर्तव्य है कि उन्हें किसी मौलिक तथ्यकी ओर ले जाय। जिस प्रकार बिजलीका इंजीनियर बिजलीके वैज्ञानिक ज्ञानको आधार बनाकर अपना काम शुरू करता है, उसी प्रकार मनोवैज्ञानिक इंजीनियरको कारण और कार्यका ज्ञान करके आगे बढ़ना चाहिए।

इस प्रकरणमें व्यक्तित्वकी परख करनेकी समस्या पर वैज्ञानिक ढंगसे विचार किया जायगा और इसके अगले प्रकरण में कारणों और साधनों[1] के प्रश्न पर विचार होगा, जिनका ज्ञान व्यक्तित्वके विकासकी अभिलाषा रखनेवाल प्रत्येक व्यक्तिके लिए आवश्यक है।

व्यक्तित्व का वर्णन करना

किसी भी व्यक्तिके व्यक्तित्वका सही चित्र या वर्णन देना कोई आसान काम नहीं है। जो लोग उससे परिचित हैं, उनसे भी उसके विषयमें निष्पक्ष विवरण मिलना कठिन है। आप किसी व्यक्तिके विषयमें इसलिए जाननेको इच्छुक होंगे कि आया वह आपका अच्छा मित्र बन सकता है या नहीं, और आपकी मित्रमंडलीसे उसकी कैसी पटेगी? जो आदमी उस व्यक्तिको जानता है, आपसे कहेगा, 'हां, वह ऐसी प्रकृतिका आदमी है', इसके बाद वह कुछ घटनाओंके उदाहरणों द्वारा व्यक्तिके व्यवहारकी कतिपय विशेषताओं पर प्रकाश डालेगा। उसके कथन पर अपना विचार बनानेके लिए आप स्वतंत्र होंगे। इस नाटकीय ढंगकी अपेक्षा आपको सूचना देनेवाला व्यक्ति विश्लेषणात्मक ढंग अपना सकता है और कुछ विवरणात्मक विशेषणोंके जरिये उस व्यक्तिका चित्र आपके सामने खींच सकता है। चाहे नाटकीय ढंग हो, या विश्लेषणात्मक ढंग, किसीसे भी शायद आप उस अपरिचित व्यक्तिके विषयमें कोई निश्चित या सही धारणा नहीं बना सकेंगे। विशेषण अपने आपमें अमूर्त[2] होता है, यदि आप उसे ठोस अर्थ देनेकी चेष्टा करेंगे तो गलती कर जानेकी सम्भावना रहेगी। किसी घटना से केवल इतना ही पता चलता है कि एक निर्दिष्ट परिस्थितिमें व्यक्ति ने कैसा व्यवहार किया, किन्तु आप तो जानना चाहते हैं कि वह दूसरी परिस्थितियोंमें कैसा व्यवहार करेगा।

व्यक्तिके विशिष्ट लक्षण[3]. व्यक्तित्वके वैज्ञानिक विवेचन में, मनोवैज्ञानिक व्यक्तिके व्यवहार द्वारा प्रदर्शित सबसे महत्वपूर्ण लक्षणोंको पहिचानने का प्रयास करता है। व्यक्तित्वके विशिष्ट लक्षणसे तात्पर्य व्यक्तिके व्यवहारके किसी खास गुण, जैसे हंसमुख होना या आत्मविश्वास, से होता है जो व्यक्तिके अनेक कार्योंमें स्वत: प्रकट होता रहता है और जो कुछ समय तक स्वभावका अंग बनकर स्थिर रहता है। इन्हीं विशिष्ट लक्षणोंसे व्यक्तिका समग्र व्यक्तित्व बनता है। किन्तु यह ध्यान रहे कि केवल अलग-अलग गुणों या विशेषताओंके समूह मात्रका नाम व्यक्तित्व नहीं है। इसमें एक प्रकारकी एकता होती है। उदाहरणके लिए, कोई व्यक्ति न केवल प्रसन्नचित्त और आत्मनिर्भर है, बल्कि वह प्रसन्नचित्त होते हुए आत्मनिर्भर है। दूसरा आदमी कायरतापूर्ण ढंगसे परावलम्बी है, एक अन्य व्यक्ति है जो प्रसन्नचित्त होते हुये परावलम्बी है। हरेक व्यक्तिकी अपनी एक शैली या विशेषता होती है, किन्तु उसके व्यक्तित्वके विशिष्ट लक्षणोंको गिनाते समय उसका चित्रण केवल मोटे तौर पर ही हो पाता है (१, २४)।

कई विशिष्ट लक्षणोंकी जानकारी केवल सामाजिक परिस्थितियों अर्थात् उन हालतोंमें ही होती है जब व्यक्ति दूसरे व्यक्तियोंके सम्पर्कमें होता है। शायद आपसे किसीने कहा हो कि अमुक व्यक्ति बहुत मिलनसार है। जानकारीके लिए तो यह सूचना अच्छी है, किन्तु यही पर्याप्त नहीं है, क्योंकि 'क' और 'ख' आपसमें मिल-जुल कर रहते हैं, इससे यह अर्थ कदापि नहीं निकलता कि 'क' और 'ग' भी निश्चित रूपसे मिलकर ही रहेंगे। मिलनसारता[4] दो या दो से अधिक व्यक्तियोंके बीचका सम्बन्ध है और यह «व्यक्तित्वोंकी परस्पर प्रतिक्रिया» पर निर्भर करती है। यदि हम सुखी और दुःखी विवाहित जोड़ोंका अध्ययन यह जाननेके लिए करें कि व्यक्तित्वके किन लक्षणोंके कारण एक का वैवाहिक जीवन सुखी है और दूसरेका दुःखी, तो हम पायेंगे कि सुखी वैवाहिक जीवनमें भी हर तरहके व्यक्ति मिलेंगे और दुःखी जीवनमें भी हर तरहके। हम देखते हैं कि कुछ खुशमिजाज व्यक्तियोंका वैवाहिक जीवन भी दुःखद होता है और कुछ रूखे व्यक्तियोंका वैवाहिक जीवन काफी सुखद और संतोषप्रद। रूखे या जिद्दी तथा सीधे, भावुक तथा कठोर, स्थिर तथा अस्थिर—सभी तरहके लोग वैवाहिक जीवनमें सुखी अथवा दुःखी होसकते हैं। यह बहुत कुछ व्यक्तित्वोंकी परस्पर प्रतिक्रिया और कुछ हद तक बाह्य परिस्थितियों पर भी निर्भर करता है (३५)।

इस प्रकारके तथ्योंसे मनोविज्ञानके कुछ विद्यार्थी यह निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि व्यक्तित्व कोई व्यक्तिगत वस्तु नहीं है। उनका कहना है कि यह व्यक्तियोंके बीचका सम्बन्ध है। वे इस बातसे इन्कार करते हैं कि एकाकी व्यक्तिका भी कोई व्यक्तित्व होसकता है। वे व्यक्तिके अलग व्यक्तित्वके वर्णनका मजाक उड़ाते हैं। इस तरहका निष्कर्ष तथ्योंसे बहुत दूर जान पड़ता है और कतिपय तथ्योंके तो बिलकुल विरुद्ध है। यद्यपि हर तरहके लोगोंका वैवाहिक जीवन सुखी पाया जाता है, तो भी इसका यह मतलब नहीं कि आप किन्हीं दो व्यक्तियोंको बेसमझे-बूझे वैवाहिक बन्धनमें बांध दें और फिर सुखी जीवनकी आशा करें। चूंकि व्यक्तियोंमें भिन्नता होती है, इसलिए व्यक्तियोंके जोड़ों[5] में भी अन्तर

[1] sources [2] abstract [3] personality traits [4] congeniality [5] pairs

होता है। यदि सभी व्यक्ति समान होते और किसी का अपना निश्चित व्यक्तित्व न होता, तो व्यक्तियोंके जोड़े भी एक समान होते, किन्तु स्पष्टतया यह बात तथ्योंके प्रतिकूल है।

हम इस दावे को भी क़बूल नहीं करसकते कि व्यक्तित्वका प्रकाशन केवल सामाजिक जीवनमें ही होता है। चिड़चिड़ा व्यक्ति अपने-आप से झगड़ता है और अध्यवसायी अकेले क़ाम पर लगा रहता है। कोई व्यक्ति ऐसा होता है कि मित्रोंके बीच रहनेकी अपेक्षा अकेले रहनेमें ही उसे सुविधा होती है। वह तबियतमें ताजगी लानेके लिए गला फाड़कर गाना चाहेगा, किन्तु तभी जब उसे विश्वास हो कि कोई उसका गाना नहीं सुन रहा है।

लेकिन आरामकुर्सी पर लेटकर ऊंघते हुए किसी व्यक्तिको देखकर यदि हम कहें कि वह जिन्दादिल आदमी है, या चिड़चिड़ा है, या अध्यवसायी है, या कोई अन्य विशिष्ट लक्षण उसमें है, तो यह कहनेसे हमारा क्या तात्पर्य होसकता है? जब हम यह कहते हैं, तब हमारा मतलब वही होता है जो यह कहनेसे कि इस व्यक्तिमें कुछ योग्यता है जिसका इस्तेमाल इस क्षण वह नहीं कर रहा है। दोनों अवस्थाओंमें प्रमाण यह है कि हमने उसे ऐसा करते प्रत्यक्षत: देखा है। यह मान लेना कि जिस योग्यता या विशिष्ट लक्षणका प्रदर्शन इस व्यक्ति ने अपने सक्रिय व्यवहारमें किया था, वह योग्यता या लक्षण उसमें इस समय भी है अकारण नहीं है। इस ऊंघते व्यक्ति ने अपनी योग्यता को बिदा नहीं देदी है। व्यक्तित्व व्यक्तिका अपेक्षाकृत स्थायी गुण है।

व्यक्तित्व के विशिष्ट लक्षणों[1] का वितरण. विशिष्ट लक्षणोंके अनेक प्रचलित नामोंमें से, कई नाम विलोम शब्दों के जोड़ेके रूपमें लिए जाते हैं, जैसे: प्रसन्नचित्त—उदास, दबंग—'जी हुजूर', दयालु—क्रूर। चूंकि विलोम शब्दोंके रूपमें व्यक्तिके स्वभावका वर्गीकरण हमारे लिए सुविधाजनक होता है, इसलिए हम प्राय: व्यक्तिको प्रसन्नचित्त अथवा उदास समझनेकी ग़लती कर बैठते हैं, मानों ये दोनों एकदम अलग-अलग वर्ग हों। किन्तु द्वितीय प्रकरणमें दी हुई वितरण-वक्ररेखासे हमें एक चेतावनी मिलती है। लोग विरोधी प्रकार के नहीं होते। वे एक सिरेसे दूसरे सिरे तक बिखरे रहते हैं और सबसे ज्यादा लोग विस्तार[2] के मध्यमें पड़ते हैं। जब कभी हम किसी भी रूपमें लोगोंकी माप करते हैं, यही बात सामने आती है। प्रसन्नचित्तता को मापना तो सम्भव नहीं है, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि बजाय प्रसन्नचित्त या उदास होनेके लोग कम या अधिक मात्रामें प्रसन्नचित्त होते हैं। विशिष्ट लक्षणोंके प्रचलित नामोंका प्रयोग करनेकी सबसे उत्तम विधि यह है कि एक रेखा के दोनों सिरों पर विलोम शब्दोंके जोड़े रखे जायें और उस रेखा को व्यक्तित्वकी एक विमा[3] माना जाय तथा व्यक्तियोंको उस रेखा के विभिन्न भागोंमें स्थित समझा जाय।

ये विमाएं या विशिष्ट लक्षण भाषा, गणित और देश-सम्बन्धी योग्यताओंके, जो योग्यताकी विमाएं हैं, सदृश हैं। प्रश्न यह है कि व्यक्तित्वके क्षेत्रमें भी कोई प्रसिद्ध[4] विमाएं पाई जाती हैं क्या? विलोम शब्दोंके जोड़ोंके प्रयोगसे हम सैकड़ों सम्भव विमाओंके नाम ढूंढ सकते हैं, किन्तु वे पूर्णत: एक दूसरेसे भिन्न न होंगे। कई विशिष्ट लक्षण जो नामोंसे स्वतंत्र मालूम पड़ते हैं अंशत: एक होते हैं। उनकी संख्या घटाकर कम की जासकती है। अनुबन्धकी विधिसे कुछ रोकथाम होजाती है। आबादीमें से एक अच्छा नमूना छांटकर उसे प्रसन्नचित्त—उदास विमामें सजाइये और उन्हीं व्यक्तियोंको दयालु—क्रूर विमामें रखिये। यदि दोनोंमें व्यक्तियोंका क्रम लगभग एक-सा रहे, अर्थात् यदि दोनोंके बीचका अनुबन्ध ऊंचा हो, तो दोनों विमाएं बहुत कुछ एक ही हैं। यदि अनुबन्ध शून्य हो तो उन्हें भूगोलकी अक्षांश और देशान्तर रेखाओंकी तरह अलग और स्वतंत्र विमाएं समझना चाहिए। हाल ही में विशिष्ट लक्षणोंके पारस्परिक सम्बन्धोंके बारेमें कई विधिवत् अध्ययन किये गये हैं। नीचेकी तालिकामें कुछ माने हुए मौलिक «विशिष्ट लक्षणों[5]» की एक सूची दी गयी है (६)। श्रेणी-निर्धारण, प्रश्नावली और परीक्षा-अनुसन्धानोंसे प्राप्त फलोंमें प्रयुक्त अनुबन्धकी विधि द्वारा ढंगसे व्यक्तित्वके विशिष्ट लक्षणोंको क्रमबद्ध करके पहिलेसे कम संख्यामें मौलिक विशिष्ट लक्षणोंके रूपमें रखना हमारे लिए सम्भव होसका है। एक मौलिक विशिष्ट लक्षणमें कई विशेष लक्षण सम्मिलित रहते हैं जो परस्पर अनुबन्धित होते हैं; इसीलिए उनमें बहुत कुछ समानता होती है। बारह मौलिक विशिष्ट लक्षण अपेक्षाकृत स्वतंत्र हैं और उनमें परस्पर बहुत नीचा अनुबन्ध है।

मौलिक विशिष्ट लक्षण[5]	विलोम[6]
१. हड़बड़ी पसन्द न करने वाला, मिलनसार, मधुर स्वभावका, उदार।	अकड़ पसन्द, रूक्ष, झेंपू, शत्रुता पूर्ण, लज्जालु।
२. बुद्धिमान, स्वतंत्र, विश्वसनीय।	मूर्ख, विचारशून्य, सिड़ी (छोटी बातों पर उलझने वाला)।
३. भावात्मक दृष्टिसे स्थिर, यथार्थवादी, दृढ़।	स्नायविक रोगी, पलायनवादी (टालू), भावात्मक दृष्टिसे अस्थिर।

[1] traits [2] range [3] dimension [4] outstanding [5] primary traits [6] opposites

४. प्रभावशाली, अधिकारप्रिय, आत्मगौरवशील।	विनयशील बड़प्पनकी भावना से दूर।
५. प्रशान्त, प्रसन्नचित्त, सामाजिक, बातूनी।	दुःखित, निराश (उदास), एकान्तसेवी, उद्विग्न।
६. संवेदनशील, कोमलहृदय, सहानुभूतिशील।	भावनाशून्य, सन्तुलित बुद्धि, स्पष्टवक्ता, संवेगहीन।
७. शिक्षित और संस्कृत बुद्धिका, सौन्दर्यप्रेमी।	असभ्य (जंगली), असंस्कृत।
८. ईमानदार (आत्मशोधक), उत्तरदायी, परिश्रमी (सहिष्णु)।	भावात्मक दृष्टिसे परनिर्भर, अवेगशील (झोंकी), गैरजिम्मेदार।
९. साहसी, चिन्तारहित, दयालु।	निरुद्ध, कम मिलनसार, सतर्क, बुझे उत्साहका।
१०. शक्तिसम्पन्न (तनमनसे), उत्साही, लगनशील, शीघ्रता से कार्य करने वाला।	निरुत्साह, ढिलमिल (सुस्त), दिवास्वप्न द्रष्टा।
११. भावात्मक दृष्टि से अत्यधिक संवेदनशील (तुनुकमिजाज), क्षणमें तुष्ट, क्षणमें रुष्ट होनेवाला, उत्तेजनशील।	आसानीसे उत्तेजित न होने वाला (ढीलाढाला), सहनशील (सहिष्णु)।
१२. मैत्रीपूर्ण विश्वास करनेवाला।	सन्देहशील (शंकालु), शत्रुतापूर्ण।

विशिष्ट लक्षणोंका अन्तर्मुखी—बहिर्मुखी समूह. कुछ *लेखकोंने उपरिलिखित बारह विशिष्ट लक्षण समूहोंकी अपेक्षा* कुछ अधिक व्यापक लक्षणोंका सुझाव रखा है। उपर्युक्त जोड़े को शुरू-शुरू में युंग[1] ने प्रस्तावित किया था। तबसे कई वर्षों तक इसकी ओर लोगोंका ध्यान बहुत आकर्षित होता रहा है (१७)। युंगकी परिभाषा के अनुसार बहिर्मुखता[2] से तात्पर्य व्यक्तिकी बाह्य जगत (लोगोंका संसार भी इसमें सम्मिलित है) में केन्द्रित रुचिसे है जिसके कारण व्यक्ति बाह्यजगतको ही अधिक महत्त्व देता है। अन्तर्मुखता[3] से तात्पर्य *व्यक्तिकी उस आन्तरिक वृत्तिसे है जिसके कारण वह अपने* ही विचारों, अनुभूतियों और आदर्शोंमें प्रधानतया रुचि लेता है और उन्हीं को महत्त्व देता है। ये दोनों प्रकारकी रुचियां प्रत्येक व्यक्तिमें पायी जाती हैं और हर आदमी कभी एक की ओर उन्मुख होता है तो कभी दूसरीकी ओर। किन्तु सम्भव है, कुछ व्यक्ति अधिकतर अपने इर्द-गिर्द की चीजों में रुचि लेते हों और उनको बहिर्मुखी कहना उचित हो, जबकि इससे प्रतिकूल वृत्ति[4] वाले व्यक्तियोंको अन्तर्मुखी कहा जासकता है।

ये दोनों वृत्तियां किन रूपोंमें प्रकट होती हैं, यह प्रश्न हमारे सम्मुख है। युंग तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों ने दोनों वृत्तियोंकी पहचान करनेके लिए कई विधियां ढूंढ़ निकाली थीं। बहिर्मुखी व्यक्ति वर्तमानमें रहता है और अपनी सम्पत्ति तथा सामाजिक सफलताको महत्त्व देता है, जबकि अन्तर्मुखी व्यक्ति भविष्यके स्वप्न देखेगा या योजना बनायेगा और अपने ही आदर्शों[5] और भावनाओंको महत्त्व देगा। बहिर्मुखी व्यक्ति दृश्य, भौतिक जगतमें रुचि लेगा, जबकि अन्तर्मुखी व्यक्ति प्रकृतिके अव्यक्त, अदृश्य नियमों तथा शक्तियोंमें दिलचस्पी लेगा। बहिर्मुखी व्यावहारिक होगा और अन्तर्मुखी आत्माकी आवाज़ पर काम करनेवाला और काल्पनिक जगतके ऊहापोह में पड़ा रहनेवाला। बहिर्मुखी व्यक्ति सक्रिय रहना पसन्द करेगा और शीघ्र निर्णय करनेमें उसे आसानी होगी, जबकि अन्तर्मुखी व्यक्ति सोचना-विचारना, योजना बनाना पसन्द करेगा और अन्तिम निर्णय करनेमें सदा हिचकता रहेगा।

अभी तक जितने अन्तर दिखाये गये हैं, उनको «बौद्धिक» अन्तर्मुखता-बहिर्मुखता के अन्तर्गत रखा जासकता है। परन्तु नीचे लिखे प्रश्नोंकी तरहके प्रश्न विशेषतया सामाजिक जीवनसे सम्बन्ध रखते हैं:

क्या आप लोगोंके समूहके सामने बातें करना पसन्द करते हैं?

क्या आप हमेशा दूसरोंको अपनेसे सहमत करनेकी चेष्टा करते हैं?

क्या आप लोगोंसे आसानीसे मित्रता स्थापित करलेते हैं?

क्या अपरिचितोंके बीच भी आप मजेमें रह लेते हैं?

क्या किसी समूहमें आपको नेतृत्व करनेकी इच्छा होती है?

क्या आप इस बातसे परेशान रहते हैं कि लोगोंका आपके बारेमें क्या ख्याल है?

क्या आप दूसरे लोगोंके प्रयोजनों[6] या हेतुओं पर शक करते हैं?

क्या आप दूसरों की तुलनामें स्वयं को हीन समझनेकी भावनासे पीड़ित रहते हैं?

क्या आप जल्दीसे छोटी-छोटी बातोंसे परेशान हो उठते हैं?

क्या आपकी भावनाओंको शीघ्र चोट पहुंच जाती है?

इन प्रश्नोंमें से, यदि प्रथम पांचका उत्तर 'हां' हो, तो यह बहिर्मुखी व्यक्तिका लक्षण समझा जायगा और यदि अन्तिम पांचका उत्तर 'हां' हो, तो यह *अन्तर्मुखीकी पहचान होगी।* ये प्रश्न वस्तुतः «सामाजिक» अन्तर्मुखता-बहिर्मुखतासे

[1] Jung [2] extraversion [3] introversion [4] tendency [5] standards [6] motives [7] inferiority

सम्बन्धित समझे जाने चाहिएं।

इन प्रश्नोंमें से अन्तिम पांच सांवेगिक स्थिरता और संतुलन से भी सम्बन्ध रखते हैं (१२)। अन्तर्मुखता के क्षेत्रमें तीन बातें आ जाती हैं: काम करने की अपेक्षा सोचते रहनेकी ओर प्रवृत्ति, लोगोंमें रहनेकी अपेक्षा अकेले रहने में रुचि और जीवन में केवल झंझट ही झंझट देखना। इस प्रकार आप देखेंगे कि व्यक्तित्व का वर्णन करने के लिए अन्तर्मुखता-बहिर्मुखता का तरीका बहुत विस्तृत और व्यापक है। इस तरीकेमें कई विशेष गुणोंका समावेश हो जाता है जो बादके अनुसन्धानों द्वारा अलग और स्वतंत्र लक्षण प्रमाणित हुए हैं।

हम बहिर्मुखता और अन्तर्मुखता के विभेद को चाहे जितना पसन्द करें, किन्तु हमें हर व्यक्तिको बहिर्मुख या अन्तर्मुखके वर्गमें रखने की आदत नहीं डालनी चाहिए। जब कभी किसी उपयुक्त विधि द्वारा लोगोंके एक बड़े समूह का परीक्षण हुआ है, तब यह देखने में आया है कि अधिकांश व्यक्ति दोनों विपरीत सिरोंके बीचमें पड़ते हैं। अन्तर्बहिर्मुखता का एक मिला-जुला प्रकार स्वीकृत किया जा चुका है और अधिकांश व्यक्ति इस मिले-जुले प्रकारके होते हैं (१५)। व्यक्तित्व की किसी भी विमा[१] में वितरणका शिखर दोनों विपरीत छोरोंके लगभग बीचमें पड़ता है।

व्यक्तित्वके सूक्ष्म विश्लेषणमें एक बड़ी बाधा यह है कि हमारी आदत पड़ गयी है यह कहनेकी कि हम अमुक व्यक्ति को कितना पसन्द करते हैं। ऐसा कहने के बजाय हमें यह ढूंढ़ना चाहिए कि उस व्यक्तिमें ऐसी क्या चीज़ है जिसे हम पसन्द या नापसन्द करते हैं। हम कहा करते हैं कि अमुक व्यक्ति मजेदार है, दिलचस्प है, उपयोगी है; या इसी तरहके अन्य शब्दोंमें अपने लिए «उसका मूल्य हम दूसरोंको बताते हैं»। बहुधा हम अच्छा या बुरा कहकर अपनी दृष्टि में उसका नैतिक मूल्य बताते हैं। वास्तवमें इनमें से कोई भी मूल्यांकन-सम्बन्धी कथन व्यक्तिकी व्याख्या नहीं करता। हमें यह जाननेकी जरूरत है कि वह व्यक्ति «किस प्रकार» मजेदार दिलचस्प, भला या बुरा है। हमें अपनी भावनाओं को दूर रखकर उसको जितनी निरपेक्ष दृष्टिसे देखना सम्भव हो, देखना चाहिए। यदि वह केवल हमारे प्रति नहीं बल्कि सभीके साथ रुक्ष है, यहां तक कि उसे वास्तवमें रुक्ष कहा जा सके, तो भी उसे इस विशेषणसे सम्बोधित करके हम उसके व्यक्तिगत गुणोंके वर्णनमें बहुत आगे नहीं बढ़ते और न इससे उसके व्यक्तित्वका विकास करनेमें ही हमें कोई सहायता मिलती है। ज्यों ही हम अधिक सूक्ष्म अध्ययनकी ओर बढ़ते हैं हमें इस तरहके मूल्यांकनसे अलग हटकर कारण और फलके अध्ययनमें प्रवृत्त होना पड़ता है। रुक्षता केवल एक फल[२] है, हमें उन स्वभाव-गुणों[३] को ढूंढ़ना चाहिए जो किसी व्यक्ति को रुक्ष बना देते हैं।

व्यक्तित्व की परख

जो विद्यार्थी चरित्र और व्यक्तित्वकी परख करनेकी अपनी शक्ति बढ़ाना चाहता है, उसके लिए मनोवैज्ञानिक कोई आसान नियम या चिह्न नहीं बता सकता। मनोवैज्ञानिक ज्योतिष पर रंचमात्र विश्वास नहीं करता, क्योंकि वह मानता है कि सुदूरवर्ती गृह-नक्षत्र आपके व्यवहार और भाग्य पर उतना ही प्रभाव डाल सकते हैं जितना प्रभाव आपके कार्यों का गृहों-नक्षत्रों पर पड़ता है। किन्तु मनोवैज्ञानिक कुछ चरित्र-विश्लेषकों द्वारा शारीरिक चिह्नों, जैसे ठोढ़ीकी बनावट या नाककी लम्बाई आदि पर दिये जाने वाले जोरके प्रति इतने सन्देहशील नहीं होते, क्योंकि व्यक्तिका शारीरिक ढांचा और उसका व्यवहार, दोनों ही वस्तुएं एकही प्राणी[४] से सम्बन्धित होती हैं। साथ ही मनोवैज्ञानिक शारीरिक और आचरण-सम्बन्धी लक्षणोंके बीच बहुत नीचे अनुबन्धकी आशा करता है, और जो अनुबन्ध वह प्राप्त करता है, वे इतने भिन्न होते हैं कि उनका कोई व्यावहारिक उपयोग नहीं किया जा सकता (२६)। यथार्थमें आप किसी आदमीके ललाट, नासिका या ठोढ़ीसे उसके चरित्रके विषयमें कुछ भी नहीं जान सकते। यदि चरित्र-विश्लेषक विश्लेषण करनेमें सफल रहता है, तो केवल व्यक्तिकी शारीरिक बनावटके अध्ययनके कारण नहीं, वरन् उसके आचरणका निरीक्षण करनेके कारण (१६)। आप किसी व्यक्तिके चेहरेके «भाव[५]»; या उसकी बोली, या उस व्यक्तिके दो मिनटके मूक चलचित्र (फ़िल्म) से जिसमें उसे काम करता हुआ दिखाया गया हो, उसके विषयमें कुछ ज्ञान अवश्य प्राप्त करसकते हैं (६)। आप उसके लेखों या निबन्धोंसे भी कुछ जान सकते हैं और कुछ विशेषज्ञ तो उसकी हस्तलिपिसे भी कई मार्केकी बातें खोज सकते हैं। कुछ लोग अपने व्यक्तिगत विशिष्ट लक्षणों की अभिव्यक्ति दूसरोंकी अपेक्षा अच्छी तरह करते हैं, कुछ लक्षणोंका अन्य लक्षणोंकी अपेक्षा अधिक अच्छी तरह निरीक्षण किया जा सकता है; और दो निर्णायकों में से, जिनको किसी व्यक्तिका निरीक्षण करने के लिए एक समान अवसर तथा सुविधाएं मिली रहती हैं, एक दूसरेके बजाय व्यक्तिके बारेमें अधिक सच्ची और पूर्ण धारणा बना लेता है।

चरित्रका अच्छा निर्णायक होने के लिए आपको पर्याप्त अनुभव होना चाहिए। जिस व्यक्तिकी परख आपको करनी है, उसके विषयमें तो आपको जानना ही चाहिए, परन्तु जिन व्यक्तियोंसे उसकी तुलना आपको करनी है, उनके बारेमें भी

[१] dimension [२] effect [३] characteristics [४] organism [५] expression
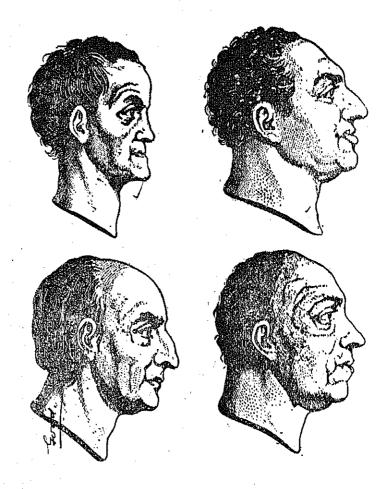
आकृति १५. आकृति सामुद्रिक (फ़िजियोनौमी)। समय-समय पर लैवेटर (१७४१-१८०१) और अन्य वैज्ञानिकों ने इस तरह के कई चेहरों का अध्ययन इस आशासे किया कि चेहरेकी बनावट और चरित्र तथा व्यक्तित्वके बीच यदि कोई सम्बन्ध है, तो उसका पता लगाया जाय। ऊपरके समूहमें पहिले चेहरेके विषयमें यह माना गया कि व्यक्तिमें शक्ति का अभाव है; दूसरे चेहरेसे कुछ असंस्कृतपन तथा आराम पसन्दगी; तीसरेसे बहुत अच्छे गुण और चौथेसे विषयी होनेका प्रकट होना माना गया। ये मान्यताएं गणनाशास्त्रीय परीक्षणोंमें कभी नहीं टिक सकी हैं।

जानकारी होनी चाहिए। इसके अलावा प्रथम धारणा और बादकी जान पहचानके बाद पड़ी हुई धारणा का मिलान करनेका अच्छा अनुभव भी आपको होना चाहिए। आपको चाहिए कि आप व्यक्तिको निष्पक्ष दृष्टिसे परखें, न मित्रकी भांति न शत्रुकी तरह। आप उस व्यक्तिको उसके अधिकारों समस्याओं, साधनों और बाधाओं के साथ मिलाकर देखें, न कि इनसे अलग।

भेंट (इन्टरव्यू) करना. यह कहा जाता है कि यदि आप किसी व्यक्ति को जानना चाहते हैं, तो आपको उस व्यक्तिके साथ कमसे कम तीन महीने रहना चाहिए, ताकि आप तरह-तरहकी परिस्थितियोंमें उसके व्यक्तित्वको देखनेका अवसर पा सकें। परन्तु व्यावसायिक या मनोवैज्ञानिक परामर्शदाता को इससे कुछ कम समयसे ही काम निकालना पड़ता है। बहुधा एक घंटेकी भेंट ही पर्याप्त समझी जानी चाहिए। एक अच्छा भेंटकर्ता (इंटरव्यूअर) शीघ्र ही व्यक्ति से हिल-मिल जाता है। वह व्यक्तिका विश्वास प्राप्त करता है; यथासम्भव उसको मजे-मजे में अपनी बात कहने देता है; ऐसी कोशिश करता है कि वह न तो डरे और न तो दिखाव करे। संक्षेप में, वह व्यक्तिकी समस्याओं, उसके गुणों और उसकी कमियों को समझनेमें

उसका सहयोग प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है। अच्छा भेंट-कर्ता लोगोंमें स्वभावत: रुचि रखते हुए भी निष्पक्ष दृष्टिकोणसे उनको देखना नहीं छोड़ता। चूंकि वह कई व्यक्तियोंसे भेंट करता है, इसलिए उसका वास्तविक कार्य होता है एक व्यक्ति की तुलना दूसरे व्यक्तिसे करना। किसी निश्चित योजनाके अनुसार चलकर उसे कुछ हद तक सभी व्यक्तियोंको एक-सी परिस्थितिमें रखना चाहिए, फिर भी जिस व्यक्तिसे वह भेंट कर रहा हो, उसके प्रति कुछ उदार भी उसको होना चाहिए। व्यक्ति द्वारा दी गयी जानकारियों और उसके आचरणसे भेंटकर्ता व्यक्तिके विशेष गुणों या स्वभावके विषयमें कुछ निर्णय करनेमें समर्थ होता है। अच्छा भेंट-कर्ता अध-कचरा निर्णय करनेसे बचता है। वह यह जानता है कि प्रथम धारणा बहुधा भ्रामक होती है, इसलिए जबतक व्यक्तिको अपने आपको प्रकट करनेका काफ़ी मौक़ा वह नहीं दे लेता तबतक उसके बारेमें वह निर्णय स्थगित रखता है। यदि एक-से व्यवहारका सदैव एक ही कारण न हो तो कभी-कभी अच्छेसे अच्छा भेंटकर्ता भी कुछ ग़लतियां कर जाता है। जो व्यक्ति आपके चेहरेकी ओर सीधा देखकर आपके प्रश्नोंका उत्तर नहीं देता, उसका चरित्र अस्थिर या चंचल हो सकता है, या वह बहुत आज्ञानुवर्ती और विनयशील होनेके कारण ऐसा कर सकता है, या वह आपके प्रश्नका उत्तर सोचते समय किसी कम आकर्षक वस्तु पर अपनी दृष्टि टिकाना पसन्द करता है। अच्छी तरह भेंट (इंटरव्यू) लेना भी एक कला है (५)। इस सम्बन्धमें आपको «निर्देशहीन परामर्श[१]» में प्रयुक्त विधियों, जिनका उल्लेख बारहवें प्रकरणमें किया जायगा, को भी देखना चाहिए।

'रोगी' का अध्ययन[२]. कोई भी व्यक्ति मानसिक उलझनों या ग़लत आचरण के कारण 'रोगी' कहलाता है और उसको ठीक करनेके उद्देश्यसे उसका अध्ययन किया जाता है। अध्ययनकी विधियों की ओर संकेत हमने पहिले ही प्रथम प्रकरणमें 'व्यक्तिके इतिहास का पुनर्गठन' शीर्षकके अन्तर्गत कर दिया था। शारीरिक और मानसिक विकासकी आयुमें 'रोगी' का जो निजी इतिहास रहता है, उसको जाननेके लिए 'रोगी' के माता-पिता या उसके तत्कालीन मित्रों और विशेषत: स्वयं 'रोगी'से वार्तालाप किया जाता है। उसके अध्ययन-कालीन और पेशे-सम्बन्धी इतिहासकी जांचकी जाती है। वह कई विशेषज्ञोंकी निगाहोंसे होकर गुजरता है जो अपने-अपने दृष्टिकोणसे उसका निरीक्षण करते हैं और अपनी संयुक्त बैठकमें अपने निष्कर्षोंको पेश करते हैं। उसकी योग्यताओंकी परीक्षा ली जाती है। उसकी इच्छाएं, आशाएं और योजनाएं, उसके उद्देश्य तथा उन उद्देश्योंको प्राप्त करनेके उसके साधन, इन सभी बातोंका उपयोग अन्तिम निष्कर्ष पर पहुंचनेके लिए किया जाता है। पूरी जांचका उद्देश्य यह होता है कि व्यक्ति के लिए कैसी सिफ़ारिशोंकी जायें, उसको कौनसे उपाय सुझाये जायें जिनपर चलकर वह अपनी कठिनाइयोंको दूर कर सके और पुन: अपने पैरों पर खड़ा होसके। जहां तक सम्भव होता है, उस व्यक्तिका इन सिफ़ारिशोंको तैयार करनेमें हाथ रहने दिया जाता है और वह इनको सबसे अधिक आशाजनक उपाय मानकर स्वीकार करता है। इस प्रक्रियाकी सबसे महत्वपूर्ण वस्तु है, इन उपायोंके अवलम्बनसे व्यक्ति पर पड़ने वाले प्रभावकी बार-बार जांच-पड़ताल करते रहना।

यह सही है कि इस प्रकार 'रोगी' का सूक्ष्म—अध्ययन करनेका सुअवसर बहुत कम ही मिला करता है, क्योंकि जब तक कोई व्यक्ति किसी कठिनाईमें फंस नहीं जाता और उसको सहायताकी अत्यन्त आवश्यकता नहीं होती, तबतक वह ऐसे अध्ययनमें सहयोग देनेके लिए तैयार नहीं होता। इसलिए यदि कॉलेजका कोई छात्र कुछ इसी प्रकारके अध्ययनके लिए अपने को प्रस्तुत करे, तो उसको इससे बड़ा लाभ होसकता है और व्यक्तित्वके विद्यार्थीको भी इस तरहका अध्ययन करके काफ़ी नयी बातें मालूम होंगी। ऐसा भी होसकता है कि दो विद्यार्थी आपसमें सहयोग करके इस तरहका अध्ययन करें—एक दूसरेको बारी-बारीसे अध्ययनका विषय बनावें, जैसा कि प्राय: प्रयोगशालाके प्रयोगोंमें होता है। दोनों छात्र मिलजुलकर काम तो करें, किन्तु परस्पर अत्यधिक स्नेह न रखें, क्योंकि अध्ययन तभी सफल होगा जब वह निष्पक्ष दृष्टिसे किया जायगा। व्यक्तिगत जीवनकी गहराइमें उतरे बिना ही, अध्ययनके जरिए व्यक्तियोंकी पृष्ठभूमि, रुचियों, अभिवृत्तियों, लक्ष्य और विशिष्ट लक्षणोंको प्रकाशमें लाया जा सकता है और इनकी सहायतासे दोनों व्यक्तित्वोंका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जासकता है।

कोई छात्र बिना किसी की मददके, अपने लिए स्वयं को ही 'अनुसन्धानका विषय' मानकर निरीक्षण कर सकता है और यह निरीक्षण उसके लिए बड़ा दिलचस्प होगा। वह अपनी रुचियों, आशाओं, भविष्यकी सम्भावनाओंको अपने पिछले-इतिहास के प्रकाशमें जांच सकता है। ऐसा करते हुए उसे परिवार, पड़ोस और स्कूलके निर्माणात्मक प्रभावों तथा अब तकके जीवनकी सफलताओं और विफलताओं पर जोर देना चाहिए। तत्पश्चात् इन पर आलोचनात्मक दृष्टिसे विचार करना चाहिए। वयस्कोंकी आत्मकथाओंसे भी कभी कभी व्यक्तिके अध्ययनके लिए ज्ञानवर्धक सामग्री मिल जाती है (२४,३३)।

[१] non-directive counselling [२] the case study

व्यक्तित्व की परीक्षा और उसकी माप

किसी व्यक्तिका वर्णन करते समय हम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपमें उसकी तुलना दूसरोंके साथ करते हैं। यदि उस क्षण हम किसी खास व्यक्तिको ध्यानमें न लावें, तो हम सामान्य कोटिके लोगोंके साथ उसकी तुलना करते हैं। अनेक प्रकार के लोगोंके साथ सम्पर्क होनेके कारण हमें औसत व्यक्तिका भान हुआ है और किसी विमा[8] पर लोगोंके बिखराव[1] को भी हम समझ पाये हैं। योग्यता या शारीरिक आकारकी जांच करनेकी तरह ही व्यक्तित्वकी जांच भी होती है। जब हम कहते हैं, 'है वह लम्बा-चौड़ा आदमी !', तब हम अपने ध्यानमें आये एक खास व्यक्तिके अलावा किसी दूसरेकी बात नहीं सोचते होते, किन्तु हम अप्रत्यक्ष रूपसे उस व्यक्तिकी तुलना अपने परिचित बहुत से व्यक्तियोंके समूहसे कर रहे होते हैं। यदि हमको ब्रॉबडिंगनाग[2] भेज दिया जाय, जहांके निवासी महाकाय होते हैं, तो आकारका हमारा मापदंड बदल जायगा और हमारा 'लम्बा-चौड़ा आदमी' उस समय अपेक्षाकृत छोटा जान पड़ेगा। इसी प्रकार हमारा वह साथी जिसकी 'समस्या' को हम बहुत जटिल समझे बैठे हैं, आगे चलकर अन्य व्यक्तियोंकी तुलनामें साधारण सा जान पड़ेगा। व्यक्तित्व का विज्ञान व्यक्तियोंका स्थान व्यक्तित्वकी विभिन्न विमाओं में निर्धारित करने और व्यक्तित्वके विशिष्ट लक्षणोंको यथासम्भव सही-सही मापनेका प्रयत्न करता है। इस कार्यमें जो अनेक विधियां प्रयुक्त होती हैं, उनका वर्गीकरण श्रेणी माप[3] प्रश्नावलियां, परिस्थिति-परीक्षण[4] और अभिक्षेप-परीक्षण शीर्षकोंके अन्तर्गत किया जाता है।

श्रेणी मापदंड[5]. यह कहनेके बजाय कि अमुक व्यक्ति 'बहुत अध्यवसायी' 'सामान्यतया अध्यवसायी' या 'अनध्यवसायी' है, हमको कुछ और नपे-तुले और परिमाण-बोधक शब्दोंका प्रयोग करना चाहिये। यदि सही अन्दाज लगाये जा सकें तो सलाहकार या निरीक्षक कई परिस्थितियोंमें (यथार्थ मूल्यांकन यदि प्राप्य हों तो) उनका अच्छा उपयोग कर सकते हैं। अध्यापकोंकी श्रेणी उनकी अध्यापन-योग्यताके अनुसार निश्चित की जाती है, विद्यार्थीका दर्जा अध्ययनकी और अन्य सफलताओंके आधार पर, तथा सेनाके अफ़सरोंका उनकी सेवा के महत्व पर। कभी-कभी किन्हीं अंशोंमें पदोन्नतियां और अन्य महत्वपूर्ण निर्णय भी ऐसे अनुमानोंके आधार पर किये जाते हैं।

किसी भी मूल्यको प्रतिशतके रूपमें प्रकट किया जा सकता है। जितने अधिक प्रसन्नचित्त व्यक्तिकी आप कल्पना कर सकते हैं, उसको १०० प्रतिशत प्रसन्नचित्त कहा जायगा, औसत व्यक्तिको ५० प्रतिशत और निम्नतम व्यक्तिको ० प्रतिशत। व्यक्तित्वके अधिकांश लक्षणोंका अन्दाज ५ या १० चरणों[6] से बड़े मापदंडोंसे सही-सही नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए ० से ५ चरणों तकके मापदंडका प्रयोग किया जाय, तो ० और ५ चरम अवस्थाओंके लिए, १ और ४ अत्यधिक नीचे और ऊंचे व्यक्तियोंके लिए, २ औसतसे कुछ नीचे व्यक्तियों के लिए और ३ औसतसे कुछ ऊपरके व्यक्तियोंके लिए माना जासकता है। मूल्यांकनके लिए 'रेखीय' मापदंड[7] सुविधाजनक होता है। इसमें किसी खास विमा[8] या लक्षण को एक रेखा द्वारा दिखाते हैं और इस विमा या लक्षणमें व्यक्तिके अनुमानित स्थानको इस रेखाके बीच कहीं भी × के निशानसे निर्दिष्ट करते हैं। उदाहरणके लिए, आकृति १६ में दिखाए हुए ६ लक्षणोंमें अपने कुछ परिचितोंका स्थान निर्धारित कीजिए। या दो परिचित व्यक्तियोंको लीजिए जिनको 'अ' और 'ब' मानकर उसी आकृतिमें उनके स्थानका अन्दाज कीजिए।

किसी भी लक्षणमें औसत व्यक्तिका स्थान रेखाके मध्यमें पड़ता है। यह सम्भावना है कि परखने वाले व्यक्ति[9] अपने परिचितोंको औसतसे कुछ ऊपरकी दिशा में ही दिखावें और इस प्रकार 'उदारता की भूल[10]' कर जायें। कुछ परखने वाले अन्योंकी अपेक्षा अधिक उदार होते हैं, किन्तु यदि एक ही व्यक्ति बहुतसे व्यक्तियोंका स्थान निर्धारित करता है, तो उसके वितरणकी तुलना सामान्य वितरण[11] से की जासकती है, और उसकी भूलको गणना-शास्त्रीय विधियों[12] से सुधारा जा सकता है (११)।

दूसरी गलती 'प्रतिभा-प्रभाव[13]' के नामसे अभिहित होती है। यदि कोई व्यक्ति किसी विशिष्ट लक्षणके विषयमें आप पर अच्छा प्रभाव छोड़ता है, तो बहुत सम्भव है कि आप बिना किसी भेद-भावके उसे प्रत्येक लक्षणमें प्रायः शीर्षस्थान देदें। यदि एक बार उसने आप पर अच्छा प्रभाव नहीं डाला तो आप उस प्रभावको मिटानेमें कठिनाई अनुभव करते हैं और विभिन्न लक्षणोंमें उसका स्थान निर्धारित करते समय उससे प्रभावित होते हैं।

इस तरहके मापदंडोंका प्रयोग करनेका मुख्य लाभ यह है कि किसी लक्षणके मध्यकी मात्राएं शब्दोंकी अपेक्षा इस प्रकार अच्छी तरह व्यक्तकी जासकती हैं। इसके अतिरिक्त दो या दो से अधिक परीक्षकों के निर्णयोंको मिलाकर, औसत

[1] scatter [2] Brobdingnag [3] rating scales [4] situation tests [5] rating scales [6] steps [7] graphic rating scale [8] dimension [9] raters [10] generosity error [11] normal distribution [12] statistical means [13] halo effect
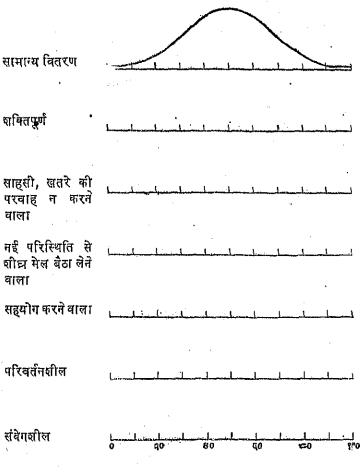
श्रेणी निर्धारण (प्रतिशतमें)।

आकृति १६. मनुष्य की श्रेणियां निर्धारित करनेके लिए एक बिन्दुरेखीय, पैमाना। शक्तिके सम्बन्धमें किसी व्यक्तिकी श्रेणी निर्धारित करनेके लिए, यदि उसमें तनिकभी शक्ति नहीं है, तो उसका स्थान रेखाके बिल्कुल बायीं ओर निश्चित कीजिए; यदि उसमें अत्यधिक परिमाणमें शक्ति मालूम पड़े तो उसका स्थान रेखा के बिल्कुल दायीं ओर रखिए; यदि वह औसतके आसपास मालूम पड़ता है, तो उसका स्थान मध्यके निकट रखिए। ऊपर जो वितरण वक्र-रेखा दी गयी है, वह एक तरहसे उस प्रवृत्ति के प्रति चेतावनी देती है जिसके अनुसार हम किसी व्यक्तिको या तो एक सिरे पर रखते हैं या दूसरे विपरीत सिरे पर, तथा जिसके अनुसार हम हर व्यक्तिको बिना किसी भेद-भाव के मध्यमें ही रखने लगते हैं। किसी भी विशिष्ट लक्षणमें जब कई व्यक्तियोंकी श्रेणी निर्धारितकी जाय तब उनके प्राप्तांक उसी तरह बिखरे होने चाहिएं जिस तरह वितरण-वक्ररेखा में हैं।

निकाल कर सत्यके निकट पहुंचा जासकता है। कोई भी एक परीक्षक पक्षपात कर सकता है या किसी व्यक्तिके बारेमें गलत धारणा बना सकता है, किन्तु अलग-अलग परीक्षकोंके पक्षपात और गलत धाराणायें अलग-अलग दिशाओंमें होंगे और उनके परस्पर टकरानेसे अन्त में जो औसत मूल्य आयेगा उसके पक्षपात रहित होने की आशा है। पक्षपात और भ्रमकी बात यदि थोड़ी देरके लिए छोड़ भी दें तो यह तो मानना ही पड़ेगा कि अलग-अलग परीक्षक व्यक्तिको विभिन्न परिस्थितियोंमें डालकर देखते हैं और उसके विषयमें अलग-अलग धारणायें बनाते हैं। इन सभी के निष्कर्षोंको यदि मिलाकर देखा जाय तो किसी भी लक्षणके अन्तिम स्थान-निर्धारण की समस्या सरलतासे हल होजाती है। संयुक्त निष्कर्षों पर बहुत आशा न बांध ली जाय, इसलिए दो बातोंका उल्लेख करना

आवश्यक जान पड़ता है। पहिली बात तो यह कि यदि विभिन्न परीक्षक एक-सी पक्षपातपूर्ण धारणा किसी लक्षणके विषयमें बनालें, तो संयुक्त निष्कर्षों में यह पक्षपात[1] बना ही रह जायगा। हाईस्कूलके अध्यापक यदि अपने किसी विद्यार्थी का स्थान-निर्धारण करने बैठें, तो चूंकि उन्होंने उसे कक्षा में बराबर देखा है और उसके सम्पर्क में रहे हैं, इसलिए वे कक्षा में उसके कार्यके प्रतिभा-प्रभाव[2] से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। वे किसी छात्रको कम महत्त्वाकांक्षी मान लेनेमें एकमत होसकते हैं, किन्तु दूसरे लोग जिन्होंने उसे दूसरी परिस्थितिमें देखा है, इससे बिल्कुल भिन्न निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं।

दूसरी बात यह है कि परीक्षकों के निष्कर्षोंको एक साथ मिलाकर देखने से कोई लाभ नहीं, यदि अलग-अलग निष्कर्ष अन्दाज-मात्र हैं, उससे ऊपर नहीं। यदि तीन निर्णायक एक बिल्कुल अपरिचित व्यक्ति 'अ' का श्रेणी-निर्धारण करने लगें तो उनके निष्कर्षोंको संयुक्त करनेसे भी सच्चे निर्णय पर पहुंचनेमें कोई मदद नहीं मिलेगी। किन्तु, यदि प्रत्येक निर्णायक ज़रा भी सही धारणा बनाता है, तो उनके संयुक्त निर्णय सत्यके फिर भी निकट होंगे (२७, ३६)।

जब दो या दोसे अधिक निरीक्षक एक ही व्यक्तिका स्थान निश्चित करते हैं, तब उनके निष्कर्षोंको संयुक्त करनेकी दो विधियां हैं। एक विधि तो यह है कि सब अलग-अलग अपना निर्णय करें और बादमें सबके निर्णय एक गणक[3] को सौंप दिये जायें जो औसत स्थानका निर्धारण करे। अथवा निरीक्षकगण एक साथ मिलते रहें और अपनी टिप्पणियोंकी तुलना करके एकमत होकर व्यक्तिका उचित स्थान निर्धारित करें। प्रश्न यह है कि कौन-सा तरीका सही श्रेणी-निर्धारण कर सकेगा? सामाजिक मनोविज्ञानका यह एक सुन्दर सा छोटा प्रश्न है और व्यक्तित्वके विद्यार्थीके लिए यह एक प्रमुख प्रश्न है। दोनों के पक्षमें कुछ न कुछ कहा जासकता है। निर्णायकों के मिलते रहने और बातचीत करनेसे एक लाभ यह होगा कि जिन बातों पर अलग-अलग निर्णायकों ने अच्छी तरह विचार न किया होगा, वे भलीप्रकार सामने आजायगी और किसी निर्णायक ने यदि कोई खास बात व्यक्तिमें देखी होगी, जिससे अन्य निर्णायक अनजान रहे, तो वह भी सबके सामने आ जायगी। यहां तक तो यह तरीक़ा बड़ा सुन्दर है। किन्तु दूसरी ओर, यह सम्भव है कि पहिलेसे ही भ्रामक धारणा रखने वाला कोई निर्णायक अपनी तर्क-शक्तिसे अपने साथियों को प्रभावित करदे और इस प्रकार अन्तिम निर्णय में उसी का प्रभाव बना रहे। यहां ध्यान रखना चाहिए कि पक्षपात-पूर्ण धारणाके कुछ सूक्ष्म रूप भी होते हैं। दूसरे व्यक्तिके विषयमें धारणा बनानेमें निरीक्षक का अपना व्यक्तित्व भी एक विचारणीय वस्तु है (३२)। निरीक्षक उस व्यक्तिके निजी लक्षणोंके प्रति विशेषतः सहानुभूतिपूर्ण या असहानुभूतिपूर्ण होसकता है। यह साफ़ है कि व्यक्तित्वके किसी भी श्रेणी-निर्धारण की प्रामाणिकता के प्रति आश्वस्त होना कठिन है; किन्तु जहां तक ऊपरके उदाहरणोंसे पता चलता है, वाद-विवाद का तरीक़ा स्वतंत्र निर्णयोंको संयुक्त करने की विधि से कुछ श्रेष्ठ है (८, २४, ३६)।

श्रेणी-निर्धारण की प्रामाणिकता[4] से भिन्न, उसकी विश्वसनीयता[5] का पता इस बातसे चलता है कि विभिन्न निर्णायक अलग-अलग स्वतंत्र रूपसे कार्य करते हुए भी एक ही व्यक्ति के श्रेणी-निर्धारणमें कितने निकट रहते हैं। जब श्रेणी-मापदंड भली प्रकार निश्चित किया होता है और निर्णायक अपने कार्यकी अच्छी प्रशिक्षा पाये होते हैं तथा जिस व्यक्तिके बारे में निर्णय देना है उससे काफ़ी परिचित होते हैं, तब विश्वसनीयता का अच्छा स्तर (निर्णायकोंके बीच '८० या '९० का अनुबन्ध) देखनेमें आता है।

यदि दूसरोंसे अपना स्थान निर्धारित न कराके व्यक्ति स्वयं यह कार्य करे, तो प्रायः देखा गया है कि वह अपने प्रिय लक्षणोंके प्रति दूसरे निर्णायकोंकी अपेक्षा अच्छी राय क़ायम करसकता है और उसके इस निर्णयमें काफ़ी सच्चाई होती है। किन्तु इसमें अपवाद भी होते हैं। देखनेमें आया है कि अपने को श्रेष्ठ समझनेकी भावना के कारण व्यक्ति अपनेको 'औसतके निकट' देखना पसन्द नहीं करता, ऐसी दशामें अपने प्रति पक्षपात हो जाना असम्भव नहीं है।

प्रश्नावलियां[6] साधारणतया प्रश्नावली प्रश्नोंकी वह सूची है जिसका उत्तर लिखित रूपमें या मौखिक रूपसे 'हां' या 'ना' में दिया जाता है। ये प्रश्न किसी भी विषयके प्रति जानकारी प्राप्त करनेके लिए तैयार किये जासकते हैं। मनोवैज्ञानिक प्रश्नावली एक विशेष प्रकारकी होती है जिसका उत्तर देते हुए व्यक्ति व्यक्तित्वकी एक निर्दिष्ट दिशामें अपना स्थान स्पष्ट करता है। मान लीजिए कि दिशा दो चरम बिन्दुओं—'जीवनमें सर्वत्र कठिनाइयां ही कठिनाइयां देखना' और 'जीवन में कहीं कोई कठिनाई ही न पाना' के मध्य विस्तृत हो, तो ऐसी दशामें उपयुक्त प्रश्नावली बहुत सी कठिनाइयों की एक सूची होगी।

सम्भावित परेशानियों की सूची

साधारण निर्बल स्वास्थ्य	शर्मीलापन (झिझक)
शारीरिक हीनता	आत्मविश्वास का अभाव
कम भूख लगना (मन्दाग्नि)	मानसिक चंचलता
अनिद्रा	मूर्खतापूर्ण भय

[1] bias [2] halo effect [3] computer [4] validity [5] reliability [6] questionnaires

दुःस्वप्न	पश्चात्ताप की भावना
गुप्त पीड़ाएं और दर्द	आलोचना का विषय होना
चक्करके दौरे	अपमानित होना
स्नायविक निर्बलता	लोगों द्वारा ग़लत समझा जाना
लगातार थकान का अनुभव करना	दुर्भाग्य
लगातार सिर-दर्द होना	अनुचित व्यवहार
हमेशा चिन्तित रहना	सतत असफलता
सदा चिड़चिड़ाहट रहना	जीवनकी असुरक्षा
अकेलापन	जीवन का व्यर्थ होजाना
उकता जानेकी भावना[1]	लोगोंकी दुष्टता
सच्चे मित्रोंका अभाव	जीवनका निरानन्द होना

व्यक्तिसे पूछा जाता है कि वह इनमें से कितनी कठिनाइयों को दरअसल अपने जीवनमें महसूस करता है। प्रश्नोंकी सूची में साधारणतः सीधे संक्षिप्त प्रश्न होते हैं और वे बहुत विस्तृत भी हो सकते हैं।

सूचीमें जिन कठिनाइयोंका उल्लेख किया गया है वे मुख्यतः व्यक्ति पर ही निर्भर करती हैं, उसके वातावरण की आकस्मिकताओं पर कम। अधिक कठिनाइयां होनेका मतलब यह है कि व्यक्तिको अपने परिवेशसे समायोजन कायम करनेके लिए किसी विशेषज्ञका परामर्श लेना आवश्यक है। कठिनाइयों-सम्बन्धी ये प्राप्तांक बहुत परिवर्तनशील होते हैं। एक बार २०० कठिनाइयों-सम्बन्धी प्रश्नोंकी सूची (३७) बहुतसे नवागन्तुकों की कक्षा को दीगयी और उनके उत्तर अंकित किये गये। पता चला कि प्राप्तांक ० से लेकर १०० तक गये थे और औसत ३५ था। जो लोग अपने जीवनमें अधिक कठिनाइयां गिनाते हैं, वे सभी स्नायविक रोगी[2] नहीं होते, और न वे सभी रोगी जिनको मनश्चिकित्सक[3] मनोव्याधिग्रस्त समझते हैं, प्रश्नावलीमें ऊंचा प्राप्तांक पाते हैं, हालांकि उनमें से अधिकांश पाते हैं (२०)। सम्भवतः स्नायविक विकृतिका कारण जीवनमें बहुत कठिनाइयोंका पाया जाना उतना नहीं है, जितना उन कठिनाइयोंके बोझके नीचे हमेशा अपनेको दबा-दबा सा अनुभव करते रहना।

कठिनाइयों-सम्बन्धी प्रश्नावलीमें अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीयता[4] रहती है, क्योंकि दुबारा परीक्षा लेने पर व्यक्तियोंके प्राप्तांकों[5] में बहुत अन्तर नहीं पाया जाता। वे कुछ प्रश्नों का उत्तर बदल सकते हैं, परन्तु अन्ततः उनकी परेशानियों की कुल संख्या ज्योंकी त्यों रहती है। परन्तु प्रामाणिकता[6] का प्रश्न अधिक कठिन है। प्रामाणिकता इस बात पर निर्भर करती है कि प्राप्तांकोंका कैसा उपयोग किया जाता है। यदि परीक्षा लेनेका उद्देश्य ऐसे व्यक्तियोंको ढूंढ़ निकालना हो जिनमें स्नायविक विकृतिके लक्षण उभरनेकी सम्भावना है, या जो गम्भीर स्नायविक या मानसिक विषमायोजनके शिकार होनेवाले हैं, तो इसकी सबसे उत्तम विधि यह है कि बहुत से व्यक्तियोंको—नये विद्यार्थियोंको ही सही—कठिनाइयों-सम्बन्धी प्रश्नावली उत्तर देनेके लिए दीजाय। उनके उत्तरोंकी सत्यता का निर्णय करनेके लिए कॉलेज-पाठ्यक्रमों में उनकी प्रगति का निरीक्षण किया जाय और देखा जाय कि जिन लोगोंके कठिनाई-प्राप्तांक ऊंचे थे, उन्होंने क्या ऐसी व्यक्तिगत कठिनाइयोंका अनुभव किया जिनसे नीचे प्राप्तांकों वाले व्यक्ति मुक्त रहे। इस आधार पर प्रश्नावली अंशतः प्रामाणिक मानी जाती है, पूर्णतः नहीं, क्योंकि देखा जाता है कि प्रश्नावलीमें अधिक कठिनाइयां गिनानेवाले कुछ व्यक्ति कॉलेज-कक्षाओं में कोई कठिनाई नहीं अनुभव करते, जबकि कम कठिनाइयां गिनानेवाले कुछ व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत समस्याओंको बुरी तरह उलझा लेते हैं (१३)। वायु-सेना के व्यक्तियोंमें से अधिक गहरी मनश्चिकित्सात्मक परीक्षाओंके लिए व्यक्तियोंको छांटनेके कार्यमें उन्नत प्रश्नावलियां किसी हद तक लाभप्रद प्रमाणित हुई हैं (३१)।

यदि हमारा उद्देश्य किसी ऐसे कार्यके लिए सर्वोत्तम व्यक्तिका चुनाव करना हो, जिसमें संवेगात्मक दृढ़ता[7] की बहुत आवश्यकता पड़ती हो, तो हमें भूलना नहीं चाहिए कि परीक्षार्थी प्रश्नावलीका उत्तर देते समय अपनेको ग़लत रूपमें पेश करसकता है। मान लीजिए, यदि वह कोई सरकारी नौकरी चाहता है, तो लोग उसको सिखा सकते हैं कि वह कम से कम कठिनाइयोंको गिनावे। इसका परिणाम यह होगा कि 'पब्लिक सर्विस कमीशन' के लिए इस प्रश्नावलीका कोई उपयोग नहीं रह जायगा। यदि वह सरकारी नौकरी नहीं चाहता, जैसा कि लड़ाईके दिनोंमें अनिच्छापूर्वक भरती होनेवाले बहुत से रंगरूट चाहते हैं, तो उनको पहिलेसे ही सिखाया जासकता है कि वे अधिक कठिनाइयोंका नाम लें, ताकि युद्ध-सेवा के लिए वे अनुपयोगी करार दे दिये जायें। किन्तु निस्सन्देह, इस तरह मक्कारी करनेवाला व्यक्ति अगले व्यक्ति-परीक्षण में पर्दाफ़ाश हो जानेका ख़तरा उठाता है।

व्यक्तित्वके अध्ययनमें कठिनाइयों-सम्बन्धी प्रश्नावलीकी विधि बहुधा प्रयुक्त होती है, इसीलिए हमने इसे उदाहरणके रूपमें पेश किया है। इसके अतिरिक्त व्यक्तित्वके अन्य लक्षणों, जैसे शासनप्रियता[8], सामाजिकता और अन्तर्मुखता-बहिर्मुखता[9] आदिके लिए भी प्रश्नावलियों का निर्माण किया जा चुका है।

[1] ennui [2] neurotic [3] psychiatrist [4] reliability [5] scores [6] validity [7] emotional stability [8] ascendancy
[9] Introversion-extraversion

रुचियोंकी प्रकृति और विस्तार का निर्धारण भी प्रश्नावली के ज़रिए किया जासकता है। इस तरहकी प्रश्नावलीमें *अलग-अलग तरहकी पसन्दगी और नापसन्दगीको बताने वाले* प्रश्न सम्मिलित रहते हैं। एक ऐसी ही प्रश्नावलीमें जिसका बहुधा उपयोग किया जाता है, १६८ प्रश्न हैं, जिनके उत्तरों के आधार पर मालूम किया जाता है कि यांत्रिक, गणना सम्बन्धी, विज्ञान-सम्बन्धी, तर्क-सम्बन्धी, कलात्मक, साहित्यिक, संगीत-सम्बन्धी, समाज सेवा और क्लर्की आदि क्षेत्रोंमें परीक्षार्थी की कितनी अधिक रुचि है (१९)। जो मनोवैज्ञानिक किसी व्यक्तिको किसी खास शिक्षा सम्बन्धी तथा व्यावसायिक कार्यके सम्बन्धमें परामर्श दे रहा हो, उस को उस व्यक्तिकी रुचियोंकी जानकारी होना परमावश्यक है, ताकि जिस पेशेको अपनाने की सलाह वह दे, उसमें वह व्यक्ति पूर्ण सफल तथा सन्तुष्ट हो सके। एक दूसरी रुचि-*विषयक-प्रश्नावली का उत्तर यह जाननेके लिए मालूम किया* जाता है कि ३६ तरहके विभिन्न पेशोंमें से प्रत्येक पेशेमें सफल हुए व्यक्तियोंकी रुचिसे परीक्षार्थीकी विविध रुचियोंका क्या सामंजस्य है (३४)। आप आश्चर्य करते होंगे कि जब मनोवैज्ञानिक व्यक्तियोंसे सीधे-सीधे पूछ सकते हैं कि किस पेशेमें उनकी सर्वाधिक रुचि है, तब वे इतनी लम्बी-चौड़ी प्रश्नावलियोंके चक्करमें क्यों पड़ते हैं? कहना न होगा कि इस सरल सीधे प्रश्नकी अपेक्षा परीक्षा-प्रश्नावलियोंसे कई असन्दिग्ध लाभ हैं। पहिली चीज तो यह है कि इसमें दूसरे व्यक्तियोंसे एक व्यक्तिकी तुलना हो जाती है। इससे रुचियों के आपेक्षिक बलाबलका अन्दाज मिलता है। बहुधा ऐसा भी होता है कि व्यक्ति स्वयं पेशे-सम्बन्धी अपनी रुचिके विषयमें *स्पष्ट ज्ञान नहीं रखता;* उसको भले ही पक्का यक़ीन हो कि वह अपने पिताकी तरह एक अच्छा डॉक्टर बनेगा, परन्तु उसके परीक्षा-प्राप्तांकों से पता चलता है कि उसकी सामान्य रुचियां डॉक्टरी पेशेके प्रतिकूल और इंजीनियरिंग पेशेके अधिक अनुकूल हैं। इन परिणामोंसे वह महसूस कर सकता है कि वास्तवमें पेशे-सम्बन्धी उसका चुनाव उसके पिताकी इच्छाओंसे प्रभावित था और अब वह इंजीनियरिंग का पेशा ही अपनावेगा। कुछ लोग अपने लिए पेशोंका चुनाव करने में इसलिए भी असमर्थ रहते हैं, कि उन्हें कभी इस तरह के कार्यों, जैसे क़ानून, एकाउंटिंग (मुनीमी), या विज्ञापन लिखना आदिके बारेमें पहिलेसे कोई ज्ञान या परिचय नहीं होता।

प्रश्नावली-विधि का प्रयोग धर्म, पूंजीवाद या समाजवाद, और राष्ट्रीयतावाद बनाम अन्तर्राष्ट्रीयतावाद, जैसे विषयों के प्रति व्यक्तिकी अभिवृत्ति जाननेके लिए भी किया जाता है। इसके लिए जो प्रश्नावली बनायी जाती है, उसमें निम्न-लिखित प्रश्न भी रखे जा सकते हैं :

क्या स्थायी शान्तिकी आशा स्वप्न-मात्र है?

क्या जनताकी शक्ति और स्फूर्तिको बनाये रखनेके लिए समय-समय पर युद्ध होना आवश्यक है?

क्या शान्तिप्रिय नागरिकोंका यह कर्तव्य है कि वे युद्धमें भाग लेनेसे इन्कार कर दें?

कुछ प्रश्न जानबूझकर दूसरे प्रश्नोंकी अपेक्षा कठिन बनाये जाते हैं। सम्भव होता है तो प्रश्नोंका एक क्रममें रख कर इस विधिमें और सुधार कर दिया जाता है—अर्थात् ऐसे प्रश्नोंका चुनाव किया जाता है जो किसी विषय के एक छोरसे दूसरे छोर तक समान अवकाशके स्तरोंसे सम्बन्धित होते हैं। अभिवृत्ति[1] की जानकारी करानेवाले प्रश्नोंका उपयोग विभिन्न समूहोंकी तुलना करनेमें, या एक ही समूहको अलग-अलग समय पर, जैसे किसी प्रचार (प्रोपेगेंडा) से प्रभावित होनेके पहिले और बाद में, तुलना करनेमें भी किया जा सकता है (७)।

व्यक्तित्वकी परखके लिए परिस्थिति-परीक्षाएं[2]. अच्छे आचार-व्यवहार या चतुराई से काम करने के नियमोंके सम्बन्ध में किसी व्यक्तिको कितना ज्ञान है, इसकी परीक्षा लेना आसान है, किन्तु कभी-कभी ऐसा होता है कि जो लोग नियमोंको जानते हैं, वे उनका पालन नहीं करते हैं। हम ऐसी परीक्षाएं चाहते हैं जिनसे व्यक्तिके वास्तविक व्यवहार का नमूना मिल सके। ऐसी परीक्षाओंका उद्देश्य परीक्षार्थियों से छिपा रहना चाहिए, क्योंकि आप परीक्षार्थीको साफ़-साफ़ यह नहीं बता सकते कि *'यह परीक्षा तुम्हारी खुशमिजाजी की जांच करनेके लिए ली जा रही है'* या 'यह परीक्षा सहयोग करने की तुम्हारी इच्छा को मापने के निमित्त ली जा रही'। ऐसा बता देने पर आपको उसके व्यवहारकी सच्ची बानगी नहीं मिलेगी। योग्यता-परीक्षा और व्यक्तित्व-परीक्षामें यह भेद है कि पहिलीमें तो आप यह जानना चाहते हैं कि व्यक्ति क्या «कर सकता है», किन्तु दूसरीमें आप जानना चाहते हैं कि जीवनकी एक विशेष परि-स्थितिमें वह क्या «करेगा»। इसके विवेचनसे आप समझ गये होंगे कि चरित्र और व्यक्तित्वके लिए सही परीक्षा निर्धारित करनेका काम किसी मनोवैज्ञानिकके लिए कितना कठिन पड़ता है।

परन्तु इस दिशा में कई प्रयत्न किये जा रहे हैं और कुछ तो काफ़ी सफल भी हो रहे हैं, खास तौरसे बच्चोंके साथ। प्रश्नों के उद्देश्य को किस प्रकार छिपाकर रखा जाता है, इसका भली

[1] attitude [2] situation tests of personality

भांति पता ईमानदारी की कुछ परीक्षाओंसे चल जाता है (१४)।

एक कक्षा में शब्द-विन्यास[1]-परीक्षा ली गयी। प्रश्नपत्रमें गलत और सही विन्यास वाले शब्द रखे गये थे। छात्रोंसे कहा गया कि प्रत्येक गलत विन्यास वाले शब्दके आगे पेंसिल से एक निशान बना दो। दूसरे दिन उत्तरकी कुंजी सहित छात्रोंको उनके पर्चे लौटा दिये गये और उनसे कहा गया कि वे स्वयं अपने प्राप्तांक निश्चित करें। यदि कोई छात्र धोखा देना चाहता, तो उसे केवल कुछ गलत शब्दों पर लगाये अपने निशानको बदलना था। इस प्रकार धोखा देना आसान था। कुछ ने ऐसा किया भी। किन्तु इसी बीच परीक्षक ने छात्रोंके असली निशानोंकी एक सूची बना डाली थी, इसलिए जिन छात्रोंने परीक्षक की आंखोंमें धूल झोंकने की कोशिशकी, उनका पता उसे चल गया।

ईमानदारीकी परीक्षाओंके समान ही 'अत्युक्ति' की परीक्षाएं भी होती हैं। उदाहरणके लिए, शब्द-कोष की एक परीक्षा में परीक्षार्थीसे कहा जाता है कि वह उन शब्दोंको चिह्नित करदे, जिनको वह जानता है। सूचीमें कुछ मनगढ़न्त शब्द रखे होते हैं, यदि परीक्षार्थी ने उनको भी चिह्नित कर दिया तो यह उसकी अत्युक्ति का प्रमाण होगा। 'मैंने जो पुस्तकें पढ़ी हैं' की चिह्नित सूचीमें भी कुछ मनगढ़न्त शीर्षक रख दिये जा सकते हैं।

इन परीक्षणोंके कतिपय परिणामों पर इस प्रकरणमें बाद में विचार किया जायगा।

ऐसा लगेगा कि लगनशीलता—बाधा के बावजूद किसी कामसे विमुख न होना—एक ऐसा लक्षण है जिसकी आसानी से वस्तुगत परीक्षा ली जा सकती है। परीक्षार्थीको कोई काम दीजिए और कोई समय निश्चित न कीजिए, फिर देखिए वह कितनी देरतक उसे करने में जुटा रहता है। यहां भी परीक्षाके उद्देश्य को गुप्त रखना जरूरी हो जाता है, क्योंकि परीक्षार्थियोंके एक समूहको यदि यह मालूम हो कि लगनशीलता की ही परीक्षा ली जा रही है, तो वे संगठित होकर प्रयोगकर्ता को थका देंगे और उसकी चाल सफल न होने देंगे। लगनशीलताकी परीक्षामें जो कार्य उपयोगी सिद्ध हुए हैं, उनमें से कुछ ये हैं—एक दिये हुए शब्दके अक्षरोंसे जितने सम्भव हों, शब्द बनाना; अंगूठोंके बल तब तक खड़ा रहना जब तक खड़ा रहा जा सके, इत्यादि। किसी भी कार्यमें लगनशीलता के अतिरिक्त अन्य बातें भी आ सकती हैं, किन्तु परीक्षाओंके एक समूह[2] से लगनशीलता की परीक्षा कुछ अच्छी तरह हो सकती है। लगनशीलता का प्राप्तांक बुद्धिके साथ लगभग शून्य अनुबन्ध रखता है, किन्तु अध्ययन-सम्बन्धी उपलब्धिके साथ काफ़ी ऊंचा धनात्मक अनुबन्ध रखता है (३०)।

कई अन्य लक्षणों, जैसे आक्रमण की प्रवृत्ति, लापरवाही, निर्देशग्रहणशीलता[3], आदिके लिए वस्तुगत परीक्षाएं बनायी जा चुकी हैं (२३)।

गत महायुद्धके दौरानमें 'परमावश्यक सेवाओं सम्बन्धी कार्यालय[4]' में कुछ विशेष गोपनीय कार्योंके लिए आदमियोंका चुनाव करते समय परिस्थिति-परीक्षाओं का खुलकर प्रयोग किया गया (२)। अठारह-अठारह की टोलीमें उम्मेदवार मनश्चिकित्सकों और मनोवैज्ञानिकों के एक दलके साथ वाशिंगटन नगरके बाहर एक जमींन्दारीमें साढ़े तीन दिन तक रहे। उनपर कई बार परिस्थिति-परीक्षाओंके अलावा इंटरव्यू, प्रक्षणता-परीक्षाओं और प्रश्नावलियोंकी विधिका प्रयोग करके देखा गया कि विभिन्न परिस्थितियोंमें वे कैसे व्यवहार करते हैं और उनमें उनका क्या स्थान रहता है। परिस्थितियों को इस प्रकार बनाया गया था, जिसमें व्यावहारिक योग्यता, अग्रगामिता, नेतृत्व, संवेगात्मक दृढ़ता, सहयोग आदि व्यक्तित्वके लक्षणोंकी मात्रा प्रकाशमें आ सके। उदाहरणके लिए जब हर आदमी लट्ठों और काठके टुकड़ोंकी सहायता से ५ घनफ़ुटका घेरा तैयार करता था, तब उसका निरीक्षण किया जाता था। इस कार्य को करने के लिए उसको दो ऐसे 'सहायक' दिये जाते थे जो उसके काममें सहायता पहुंचानेके बजाय उल्टे हर तरहसे बाधा ही पहुंचाते थे। छै आदमियोंकी एक टोली को यह काम सौंपा गया कि एक सोते के ऊपर जिसे तेज धारा का छोटा सा नाला मानने को कहा गया, एक बांध बनाकर १०० पौंड भारी एक सन्दूक़ को उस पार पहुंचाओ। उनको इस कार्यके लिए जो सामग्री दी गयी, उसमें कई तख़्ते थे जो बहुत छोटे थे; रस्सीके कुछ टुकड़े थे, एक लट्ठा और एक ढोल था जिसके दोनों मुंह टूटे हुए थे। मनोवैज्ञानिकोंके दल ने हर व्यक्तिका निरीक्षण नेतृत्व, सहयोग, उपाय सोचनेमें चतुरता आदि लक्षणोंको दृष्टिमें रखते हुए किया।

एक दूसरी विधि जिससे जीवनकी वास्तविक परिस्थितियों का रूपक उपस्थित किया जासके, अप्रस्तुत क्रिया-परीक्षा[5] थी। इसमें दो आदमियोंको भिन्न और विरोधी कार्य करने को दिये जाते थे। फिर उनसे कहा जाता था कि वे उस कार्य को कक्षा के सामने करें और उसी प्रकार व्यवहार करें जैसा वास्तविक जीवनमें ऐसी परिस्थितिमें पड़ने पर वे करते। उदाहरणके लिए, 'क' से केवल यह कहा गया कि मान लो, तुम किसी नगर में आये हो जिसमें तुम्हारा मित्र 'ख' रहता है। 'ख' तुम्हें नगरके एक सबसे प्रमुख क्लब (गोष्ठी) का

[1] spelling [2] battery of tests [3] suggestibility [4] office of strategic services [5] improvisation test

सदस्य बनानेका प्रस्ताव रखता है। 'ख' उस क्लबकी सदस्यता-समिति का भी सदस्य है। 'क' को 'ख' के पास जाकर कहना था कि वह नगरमें फैली हुई इस अफ़वाह को रोके कि समिति ने उसके आवेदन-पत्र पर विचार कर लिया है। 'ख' से कहा गया कि यदि वह सुने कि समितिके अन्य सदस्य उसके मित्रके विरोधमें मत प्रकट करेंगे, तो वह स्वयं अपनी ओरसे प्रस्ताव को रद्द कर देने के सुझाव वाला मत-पत्र डाल दे। जब मत गिने गये तो देखा गया कि प्रस्ताव को रद्द कर देने का केवल एक ही मत-पत्र डाला गया है। इस प्रकार 'ख' अपने मित्रको सदस्य न बनने देने का उत्तरदायी स्वयं हुआ। 'क' और 'ख' एक मेज़के दोनों ओर बैठाये गये थे। दोनोंको अपने-अपने कार्य का तो पता था, परन्तु दूसरा व्यक्ति क्या करेगा, इसका पता न था। कभी-कभी जिन लोगों ने 'ख' का पार्ट खेला, वे झूठ बोलकर साफ़ निकल गये; कभी-कभी उन्होंने अपने मित्रके विरोध में कुछ भी करने से अपनेको बचा लिया, और कभी-कभी उन्होंने साफ़-साफ़ अपनी ग़लती अपने मित्रके सामने कुबूल करली। हर मामलेमें परीक्षकोंको काममें लगे व्यक्तिके व्यक्तित्वकी झांकी मिल गयी। इससे वे महत्वपूर्ण लक्षणोंमें उस व्यक्तिका स्थान निर्धारित करने में समर्थ रहे। इंटरव्यू (भेंट) जैसी हल्की परिस्थितियोंमें तो ये लक्षण प्रायः स्पष्ट ही नहीं हो पाते।

व्यक्तित्वकी 'अभिक्षेप' परीक्षाएं. यदि हम किसी व्यक्तिको कोई ऐसा काम सुपुर्द करें जिसमें वह स्वतंत्र रूपसे अपनी कल्पना का प्रयोग करसके, तो उसके कार्यसे हम उसकी प्रतिक्रिया की विशिष्ट विधियों, उसकी संवेगात्मक वृत्तियों, और उसके सोचने के तरीकोंके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। स्वतंत्र तथा निर्बाध चेष्टामें वह अपने व्यक्तित्व का प्रकाशन या 'अभिक्षेप' अच्छी तरह कर सकता है।

आकृति १७. इस चित्रके सुझाव पर एक-छोटा किस्सा लिखिए।

'अभिक्षेप-परीक्षा' के लिए कई तरहकी परिस्थितियोंका निर्माण किया गया है। हम व्यक्तिसे कल्पनाकी उड़ान भरनेको कह सकते हैं और बादमें उसकी कल्पनाओंके विषयमें पूछ सकते हैं, किन्तु यह ज्यादा ठीक रहेगा कि उसे अपनी ओरसे कोई विषय पहिलेसे सुझा दिया जाय। उदाहरणके लिए, कोई कहानी प्रारम्भ करके उसे दे दीजिए और कहिए कि वह उसे पूरा कर डाले। कभी-कभी परीक्षार्थीके सामने शब्दोंकी सूची एक-एक शब्द करके प्रस्तुत की जाती है और उससे कहा जाता है कि वह दिमागमें सबसे पहिले आये हुए शब्दको कहकर प्रत्येक शब्द के प्रति अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करे। उसको एक अस्पष्ट चित्र दिखाया जाता है और उसके आधार पर एक कहानी रचनेको कहा जाता है। बादलके चित्र और स्याहीके धब्बे दिखाकर उससे पूछा जाता है कि वह इनमें क्या देखता है।

इन परीक्षाओंकी जैसी प्रतिक्रिया परीक्षार्थी पर होती है, उससे उसके व्यक्तित्वका एक सामान्य—हलका—ज्ञान ही हो पाता है। यदि मनोवैज्ञानिक इससे कुछ अधिक गहरे उतरना चाहता है तो उसे कई लोगोंकी प्रतिक्रियाओंकी तुलना करनी चाहिए और प्राप्तांक निर्धारित करने की कोई रीति अवश्य खोज निकालनी चाहिए। रोर्शाख[१] और उसके अनुयायियोंने इस दिशामें प्रमाणीकरण[२] करनेका प्रयत्न किया है और एक प्रमाणीकृत विधि निकाली है। इस विधिमें दस धब्बोंका एक संग्रह प्रयुक्त होता है। कुछ धब्बे सफ़ेद काग़ज पर बिल्कुल काले होते हैं और कुछ अन्य रंगोंमें होते हैं। ये ऐसे धब्बे होते हैं जिनमें अधिकांश लोगोंको 'कुछ न कुछ दिखाई देगा'। धब्बोंका यह प्रामाणिक संग्रह एक-एक करके व्यक्तिको दिखाया जाता है और वह बताता है कि उसने उनमें क्या वस्तुएं देखीं। वह एक ही धब्बेमें एकके बाद दूसरी चीज देख सकता है। उसकी प्रतिक्रियाओं पर अंक दिये जाते हैं, जिससे इस प्रकारके प्रश्नों का उत्तर दिया जासके:

कितनी बार वह मनुष्यकी आकृतियां देखता है, कितनी बार पशुओंकी, पेड़-पौधोंकी और प्राकृतिक दृश्योंकी, इत्यादि?

क्या वह आकृतिको समग्र रूपमें देखता है या उसके विभिन्न अंगोंको अलग-अलग भी।

उसके मनमें जिस चित्रका उदय हुआ, वह धब्बेकी शक्लसे प्रभावित था या उसके रंगोंसे?

कितनी बार वह वस्तुएं देखता है, विशेषतया चलती-फिरती मानवाकृतियां?

जिन आकृतियोंको वह देखता है, वे कितनी सुन्दर हैं?

उसकी कल्पनाएं कितनी मौलिक या विलक्षण हैं?

इन सभी प्राप्तांकोंको एक साथ मिलाकर रोर्शाख-पद्धति से कई आश्चर्यजनक निष्कर्ष निकाले गये हैं। धब्बोंको समग्र रूपमें देखनेका अर्थ यह है कि व्यक्तिमें सूक्ष्म (अमूर्त) और संश्लेषण[३] करने की योग्यता है; उन्हें विस्तारमें देखनेका अर्थ है कि व्यक्ति ठोस बातोंको अधिक पसन्द करता है। रंगोंकी प्रतिक्रिया आवेगमें आ जाने की प्रवृत्ति (झक्कीपन) प्रकट करती है; चलती-फिरती मानवाकृतियोंको देखना गहरे चिन्तनको अधिक पसन्द करने की प्रवृत्ति प्रकट करता है। अधिकतर पशुओंकी आकृतियां देखनेका तात्पर्य यह निकलता है कि व्यक्तिके विचारोंमें नवीनता के बजाय जड़ता अधिक है। अच्छी और स्पष्ट आकृतियोंको देखनेका अर्थ निकलता है कि व्यक्तिमें अच्छा आत्मनियंत्रण है। सभी संकेतोंको एक साथ मिलाकर देखने पर परीक्षक इस निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि एक व्यक्ति 'जो बाहरसे शान्त दिखाई देता है उसके अन्तरमें गजबका संवेग और अन्तर्द्वन्द्व उपस्थित है, किन्तु वह अपने ऊपर इतना नियंत्रण रखता है कि उसके अन्तरका प्रतिबिम्ब उसके बाह्य पर नहीं पड़ने पाता। उसमें जितनी शक्ति छिपी है, उतनी बाहर प्रकट नहीं हो पाती'। यह ऐसी बात है जिसपर सहसा विश्वास नहीं होता। क्या ये निष्कर्ष प्रामाणिक[४] हैं? प्रामाणिकताको जांचने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि रोर्शाख-पद्धतिके निष्कर्षोंके अनुसार व्यक्तिके व्यक्तित्वका चित्र खड़ा किया जाय और बादमें व्यक्तिके विषयमें अन्य सूत्रों से जानकारी एकत्र करके उनसे उसका मिलान किया जाय।

आकृति १८. स्याही का एक धब्बा।
(रोर्शाख सूची का नहीं है)

[१] Rorschach [२] standardization [३] synthetic [४] valid
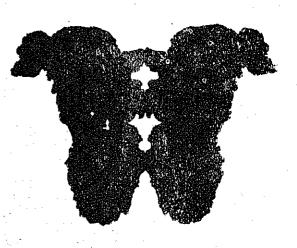
चिकित्सालयमें परीक्षित कुछ 'रोगियों' के सम्बन्धमें यह विधि ठीक सिद्ध हुई है, किन्तु अभी रोर्शाख[1] की परीक्षा-विधि के सभी दावोंके पक्ष या विपक्षमें कोई मन्तव्य प्रकट करना संगत न होगा। यदि कोई अनुभवी मनोवैज्ञानिक अपने चिकित्सालयमें रोर्शाख-विधि का प्रयोग करे, तो अन्य विधियोंसे उसका मेल ठीक बैठता है। यदि उसका कुछ और प्रमाणीकरण कर दिया जाय, तो सम्भव है कि यह परीक्षा अधिक वस्तुगत[2] होसके।

आत्म-संगति[3] और लक्षणकी सामान्यता. जब हम किसी व्यक्तिको प्रसन्नचित्त कहते हैं, तब हमारा मतलब केवल यही नहीं होता कि वह रोचक वातावरणमें ही प्रसन्नतापूर्वक कार्य करता है। अगर हर चीज़ उदास हो और वह व्यक्ति भी उस समय उदास दीखे, तो हम कोई आक्षेप नहीं करते, किन्तु हम उसे अधिकांश समयमें प्रसन्नचित्त ही देखना चाहते हैं। किसी भी व्यक्तिके लिए यदि ऐसा कोई विशेषण प्रयुक्त हो, तो इसका तात्पर्य यह होता है कि उसका उस विशेषणके अनुसार जो व्यवहार होता है उसमें कुछ समरूपता होती है। किन्तु चूंकि उसको प्रभावित करनेवाले वातारणमें ही समरूपता नहीं पायी जाती, इसलिए उसकी प्रतिक्रियाओंमें हम समरूपता की आशा कैसे कर सकते हैं?

वास्तवमें, कोई भी व्यक्ति पूर्ण समरूपता के साथ किसी भी विशिष्ट लक्षणका प्रदर्शन नहीं करता। किसी प्रश्नावली को भरते समय, कोई भी व्यक्ति न तो सभी बहिर्मुखी उत्तर देता है और न सभी अन्तर्मुखी, और जैसा कि बालकोंके शिविरमें होता है, जब एक ही व्यक्तिका विभिन्न परिस्थितियों में नित्यप्रति निरीक्षण किया जाता है, तब कभी तो उसका व्यवहार बहिर्मुख सिरे की ओर झुकता हुआ प्रतीत होता है, और कभी अन्तर्मुख सिरेकी ओर। ऐसा लगता है कि आचरण जितना परिस्थिति पर निर्भर करता है, उतना ही व्यक्ति पर भी (२५)।

दो प्रकार की समरूपता: हमें (१) आत्म-संगति[3] और (२) लक्षणकी सामान्यता का अन्तर समझ लेना चाहिए। आत्म-संगति का अर्थ समझनेमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। कोई व्यक्ति आत्म-संगत तब कहा जाता है, जब वह एक-सी परिस्थितिमें एक-सा व्यवहार करता है, हालांकि भिन्न परिस्थितियोंमें उसका व्यवहार आश्चर्यजनक रूपसे भिन्न होता है। एक व्यक्ति ऐसा है कि वह एक मौक़े को छोड़ कर प्रायः सदा शान्त रहता है, किन्तु वह एक मौका ऐसा है जिस पर वह क्रोधित हुए बिना नहीं रह सकता। फिर भी, यह कहा जायगा कि यह व्यक्ति पूर्णतः आत्म-संगत है। एक दूसरा व्यक्ति है जो समान परिस्थितियोंके रहते हुए भी अलग-अलग अवसरों पर अलग-अलग तरह से व्यवहार करता है। ऐसे व्यक्ति के लिए कहा जायगा कि उसमें आत्म-संगति का अभाव है।

लक्षणकी सामान्यता[4] से तात्पर्य यह है कि एक ख़ास लक्षण परिस्थितियों के बदलने पर भी पूर्ववत् बना रहता है। यदि शान्त-प्रकृति का होना किसी व्यक्तिका सामान्य लक्षण हो, तो वह व्यक्ति सभी दशाओंमें इस लक्षणको क़ायम रखेगा।

विद्वत्ता के प्रसंगमें यह अन्तर स्पष्ट होजाता है। यदि विद्वत्ता पूर्णतः सामान्य लक्षण हो तो जो छात्र एक पाठ्य-विषयमें 'क' अंक पाता है, वह सभी विषयोंमें वही अंक प्राप्त करेगा, बशर्ते कि अंक देनेका ढंग सही हो। इसी प्रकार अन्य विद्यार्थी भी हमेशा एक ही-सा अंक पायेंगे। यदि बात ऐसी न हो तो हम कहेंगे कि इस लक्षणमें पूर्ण सामान्यता का अभाव है। किन्तु यदि कोई विद्यार्थी भाषाओंमें सदा ऊंचे अंक पाता है और विज्ञानमें नीचे, तो वह पूर्णतः आत्म-संगत है। उसपर भरोसा किया जासकता है, और यदि आप उसकी विद्वत्ताका स्वरूप समझ जायें, तो आप यह भविष्यवाणी भी कर सकेंगे कि वह आगे चलकर कैसे अंक प्राप्त करेगा।

हमने इसी प्रकरणके प्रारम्भमें प्रारम्भिक लक्षणोंकी जो सूची दी है, उसका चुनाव अधिकांश व्यक्तियोंके प्रसंगमें पायी जानेवाली उनकी संगति और सामान्यता के आधार पर ही किया गया है। स्फूर्ति—शिथिलता, विनम्रता—उद्धतता इत्यादि लक्षण जो हर परिस्थितिमें और समय-समय पर रंग बदलते रहते हैं, स्थायी व्यक्तित्व[5] के अध्ययनमें उतने उपयोगी नहीं होसकते।

ईमानदारी के मामलेमें आत्म-संगति और लक्षण-सामान्यता का स्वरूप. ८ से १५ वर्षके स्कूली बालकोंके विस्तृत निरीक्षणके परिणामों पर विचार करते समय हमें इस अन्तरको स्मरण रखना चाहिए। इन निरीक्षणोंमें ईमानदारी की परीक्षाओंका प्रयोग किया गया, जिनका वर्णन हम पहिले ही कर चुके हैं (१४)। परीक्षा-समूह की प्रत्येक परीक्षामें धोखा देनेका प्राप्तांक उपलब्ध हुआ था। यह प्राप्तांक शून्य से लेकर, जबकि बालकने धोखा देने की कोई चेष्टा न की, उस सीमा तक पहुंचा था जिसमें बालक ने धोखा देने का कोई अवसर खाली नहीं जाने दिया। यदि दो परीक्षाओंमें बालकों के प्राप्तांकोंका अनुबन्ध +१·०० रहा, तो इसका मतलब यह हुआ कि जिस बालकने एक परीक्षामें सबसे अधिक धोखा दिया, उसने दूसरी परीक्षामें भी वही किया, और इसी प्रकार हर परीक्षामें हरेक बालकने अपने समूहमें अपना स्थान बनाये रखा। आइए, अब वास्तविक परिणामों पर विचार करें।

[1] Rorschach [2] objective [3] self-consistency [4] trait generality [5] stable personality

(१) उसी परीक्षामें या व्यवहारतः उसी तरहकी परीक्षाओं में अनुबन्ध ऊंचा था, किन्तु जैसे-जैसे परिस्थितियोंमें भिन्नता होती गयी, अनुबन्ध नीचा होता गया। उदाहरणार्थ, कई कक्षा-परीक्षाओं में धोखा देनेका मतलब था एक कुंजीमें से उत्तर नक़ल करना। इन परीक्षाओंमें +·७० का अनुबन्ध था। कुछ परीक्षाएं व्यायामशाला में ली गयीं जिनमें धोखा देने का मतलब था, अपने शारीरिक कौशलके विषयमें अत्युक्ति; इन परीक्षाओंमें अनुबन्ध +·४६ था। किन्तु इन बहुत भिन्न दो परिस्थितियोंमें धोखा देनेकी चेष्टाओंका पारस्परिक अनुबन्ध केवल +·२० था। एक परीक्षामें धोखा देनेसे यह पता तो चला कि छात्र सम्भवतः दूसरी परीक्षामें भी धोखा देनेकी चेष्टा करेगा, किन्तु यह भविष्यवाणी करनेका कोई आधार नहीं दिखायी दिया कि वह व्यायामशाला के अपने कौशलके विषयमें भी अत्युक्ति करेगा।

(२) व्यक्तिगत दृष्टिसे कुछ बालक दूसरोंकी अपेक्षा अपने व्यवहारमें अधिक समरूप[1] दिखायी दिये। कुछ सदा ईमानदार रहे, पर शायद ही कोई सदा बेईमान रहा। सबसे अधिक ईमानदार बालक अत्यन्त अनुकूल वातावरणमें पले थे, उनकी बुद्धि तीव्र थी, उनका घर अच्छा था, पड़ोस अच्छा था और उनका संवेगात्मक समायोजन अच्छा था। सबसे ज्यादा बेईमान बालकोंकी बुद्धि तो विशेष रूपसे निम्न कोटिकी न थी, किन्तु उनके घर और पड़ोसकी परिस्थितियां उनके अनुकूल न थीं।

(३) कभी-कभी एक स्कूलकी कोई कक्षा, आसपास या उसी नगरके अन्य स्कूलोंकी कक्षाओंके मुकाबलेमें अधिक ईमानदार साबित हुई, मानों हरेक कक्षा, अपने अध्यापक के प्रभावके कारण, धोखा देनेके सम्बन्धमें अपनी अलग नियमावली बनाये हुए थी।

इन जांच, पड़तालों से क्या निष्कर्ष निकाले जासकते हैं? चूंकि प्रत्येक बच्चे ने एक-सी परिस्थितियोंमें एक-सी प्रतिक्रिया दिखायी, इसलिए उनमें अत्यधिक आत्म-संगीत[2] का परिचय मिला। परन्तु चूंकि विभिन्न परिस्थितियोंके बीचका अनुबन्ध न्यून था, इसलिए ईमानदारीके लक्षणमें सामान्यता[3] की मात्रा बहुत कम दिखायी दी। कमसे कम जब हम स्कूली बच्चोंके सम्बन्धमें बात कर रहे हों, तब हमें बेईमानीको एक अलग लक्षण बतानेके बजाय बेईमानीके प्रकार और परिस्थिति के स्वरूपको स्पष्ट करना चाहिए। कक्षामें अध्यापककी आंखोंमें धूल झोंकना एक लक्षण है, एवं व्यायाम-प्रतियोगिता में धोखा देना दूसरा लक्षण है जिसका पहिले लक्षणसे बहुत कम सम्बन्ध है। ईमानदारीके सभी आचरणोंमें कुछ सादृश्य होसकता है, परन्तु यह अन्य कई बातोंके कारण लुप्त हो जाता है।

इस तथ्यसे कि सभी परिक्षाओंमें ईमानदार रहनेवाले बच्चे अल्प संख्यामें थे, एक दूसरा निष्कर्ष भी निकलता है। उन बच्चोंने ईमानदारीके एक सामान्य लक्षण[4] का परिचय दिया, जबकि बहुत धोका देनेवाले बच्चोंने, सर्वत्र एक-सी बेईमानी न दिखानेके कारण, बेईमानीके किसी सामान्य लक्षणका परिचय नहीं दिया। सम्भवतः 'बेईमानीकी सामान्य आवश्यकता' जैसी कोई चीज नहीं पायी जाती। धोखा देने, झूठ बोलने या चोरी करनेके लिए प्रलोभनों और कारणों की कमी नहीं। इन में से कुछ कारण एक व्यक्तिको प्रभावित करते हैं, तो कुछ दूसरे व्यक्तियोंको, किन्तु सम्भवतः हमेशा बेईमान बने रहने की कोई स्वाभाविक प्रवृत्ति मनुष्यमें नहीं पायी जाती। अधिकांश बच्चोंके सामने ईमानदारीका एक सामान्य आदर्श होता है, और जो बच्चे इस आदर्शको अपना लेते हैं वे नितान्त परिवर्तित परिस्थितियोंमें भी ईमानदार बने रहते हैं। कुल जनसंख्यामें से कुछ लोग अवश्य ऐसे होते हैं जिन्हें पूरी तरह ईमानदार कहा जासकता है, परन्तु शायद ही किसी व्यक्तिको पूरी तरह बेईमान कहा जासकता है।

व्यक्तित्व का एकीकरण[5]

जब एक ही व्यक्तिके कई विशिष्ट लक्षणोंका श्रेणी-निर्धारण[6] या माप किया जा चुके, तब उनको एक रेखाकृति[7] में संयुक्त किया जासकता है। उस रेखाकृतिको व्यक्तित्वकी रूपरेखा[8] कहते हैं। उससे मालूम होता है कि सामान्य जनताकी तुलनामें व्यक्ति किस प्रकार ऊंचा, नीचा या औसत स्थान प्राप्त करता है। रेखाकृतिमें औसतको प्रकटकरनेवाली एक मध्य-रेखा होती है। प्रत्येक लक्षणमें व्यक्तिका जो स्थान होता है, उसका निर्देश उक्त मध्यरेखा के ऊपर या नीचे स्थित किसी बिन्दुसे किया जाता है। यह मध्यरेखा सीधी होती है और दायें-बायें जाती है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि औसत व्यक्ति प्रत्येक दृष्टिसे समरूप[1] होता है, वरन् इसका अर्थ केवल इतना ही है कि हरेक लक्षणमें जो समूहका औसत होता है, उसे आधार या प्रमाण[9] मानकर व्यक्तिकी माप की जानी चाहिए। यदि कोई व्यक्ति प्रत्येक लक्षणमें औसतसे कुछ ही ऊपर स्थान पावे, तो उसकी रूपरेखा[10] मध्यरेखासे कुछ ऊपर बायें से दायें एक रेखा खींचकर प्रकटकी जायेगी। नीचे की आकृतिमें जिस काल्पनिक व्यक्तिकी रूपरेखा दिखायी गयी है वह कुछ लक्षणोंमें औरोंकी अपेक्षा काफ़ी ऊंचा स्थान पाये है।

[1] uniform [2] self-consistency [3] generality [4] general trait [5] personality integration [6] rating [7] diagram [8] personality profile [9] standard [10] profile
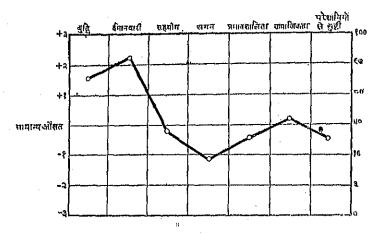
आकृति १६. व्यक्तित्व-सम्बन्धी एक रेखाकृति। बायीं ओर वाला पैमाना प्रतिमान प्राप्तांकों को सूचित करता है, दायीं ओर वाला पैमाना शतांशीय प्राप्तांकों को (पृष्ठ १७)।

इस रूपरेखा से साधारणतया व्यक्तिके ऊंचे या नीचे स्थान और उसके व्यक्तित्वकी समता वा विषमता के विषयमें पता चलता है। हम यह झूठा दिखावा तो नहीं करसकते कि यह 'समग्र व्यक्तित्व[1]' का चित्रण करता है, क्योंकि इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि अनेक लक्षण किस प्रकार व्यक्तिके व्यवहारमें « संयुक्त रूपसे कार्य करते हैं »।

व्यक्तित्वके लक्षणोंकी परस्परक्रिया. व्यक्तित्वके किसी लक्षण को एक विशेष व्यवहार करने की प्रवृत्ति समझा जा सकता है। सामाजप्रियता सामाजिक ढंगसे व्यवहार करनेकी, साथ ढूंढ़नेकी और सामाजिक कार्योंमें उत्साहपूर्वक भाग लेनेकी एक प्रवृत्ति है। शासनप्रियता[2] भी एक प्रवृत्ति है जिसका तात्पर्य किसी भी परिस्थिति पर अधिकार करनेसे है--चाहे परिस्थिति में अन्य व्यक्ति हों, चाहे नहीं। जिस व्यक्तिमें ये दोनों लक्षण काफ़ी मात्रा में होंगे, वह सामाजिक नेता होसकता है, किन्तु शर्त यह है कि उसमें अन्य ऐसे लक्षण और योग्यताएं भी हों जिनके कारण समूह उसके नेतृत्व को स्वीकार करसके। एक दूसरा उदाहरण लीजिए। मान लीजिए, कोई व्यक्ति स्वार्थ-साधन में तत्पर हो, किन्तु शक्तिकी उसमें अल्पता हो। जब उसका सीधा स्वार्थ होगा, तब तो वह उत्साहपूर्वक कार्य करेगा, पर सहकारी कार्योंमें वह फिसड्डीपन दिखायेगा। इस व्यक्तिके कई लक्षण, जिनको प्रवृत्तियां या शक्तियां कहा जाता है, परस्पर क्रिया करते हैं और उसके व्यवहारमें उनका संश्लिष्ट रूप प्रकट होता है (१, २४)।

दूसरे लक्षणोंके स्वरूपमें परिवर्तन लाये बिना किसी लक्षणमें परिवर्तन नहीं किया जासकता। उदाहरणार्थ, उस व्यक्तिकी शासनप्रियताकी ऊंची मात्राकी कल्पना करनेकी चेष्टा कीजिए जिसकी रूपरेखा आकृति १६ में दिखाई गई है। अब सारा चित्र बदल जाता है। सहयोगके प्रसंगमें उसका स्थान औसतसे भी नीचे है। पहिले तो साधारणतः शुष्क, नीरस और प्रायः असामाजिक व्यक्तिमें ऐसे लक्षणका पाया जाना स्वाभाविक ही प्रतीत होता था, किन्तु अब तो यह निश्चित रूपसे दूसरों के लिए खतरा बन जाता है---इन लक्षणोंके रहते हुए तो उसे क्रूर और मनमानी करवाने वाला होना चाहिए। अथवा आप एक ऐसे व्यक्तिकी कल्पना कीजिए, जिसमें निम्नलिखित लक्षण मिलते हों:

उत्साही, निश्शंक, बातूनी, रूक्ष, व्यंग्य करने वाला, जिज्ञासु (उत्सुक), तर्ककुशल,

उत्साही, निश्शंक, बातूनी, भावुक, व्यंग्य करने वाला, जिज्ञासु, तर्ककुशल ?।

केवल एक कक्षामें भिन्नता होनेके बावजूद इन व्यक्तियोंके समग्र व्यक्तित्वोंमें काफ़ी अन्तर दिखायी देगा (३)।

हम समग्र व्यक्तित्वमें जिन लक्षणोंको विश्लेषण करके पृथक् कर सकते हैं, वे वस्तुतः पृथक् वस्तुएं अथवा पृथक् प्रवृत्तियां भी नहीं हैं। एक विशेष व्यक्तिका आलसीपन और स्वार्थ-परता दो पृथक् प्रवृत्तियां नहीं हैं। उसका व्यवहार यथासम्भव कम प्रयत्न करके प्रत्येक सम्भव वस्तुको अपने लिए उपलब्ध करने तक सीमित है। इस प्रकारके व्यवहारके विश्लेषण करने के उपरान्त उपर्युक्त दो प्रवृत्तियोंके दर्शन होते हैं। किसी रूपरेखा में चित्रित लक्षण असम्बद्ध और यहां तक कि परस्पर विरोधी भी प्रतीत होसकते हैं, किन्तु यदि हम व्यक्तिमें उनके

[1] total personality [2] ascendancy

प्रकाशित होनेकी विधिका निरीक्षण करें तो बहुधा मालूम होगा कि वे मिल-जुलकर काम करते हैं जिससे व्यक्तिका व्यक्तित्व सामंजस्यपूर्ण होजाता है। किसी व्यक्तित्वको पृथक-पृथक टुकड़ोंमें तोड़नेके पश्चात्, और लोगोंके मुकाबलेमें अनेक विमाओं[१] में उसका परीक्षण और स्थान-निर्धारण कर चुकनेके बाद, आवश्यकता है कि हम लौटकर व्यक्तिकी ओर जायें और उसे एक जीवित, अविभाज्य व्यक्ति घोषित करें (१)।

व्यक्तित्वमें एकता[२] का अभाव. यद्यपि व्यक्ति एक संश्लिष्ट इकाई है, तो भी उसकी एकता के पूरी होनेमें किसी बातकी कमी रह सकती है। हममें से सभीमें इस मानेमें स्वगत विरोध है कि हम कई भिन्न दशाओंमें इधर-उधर होते रहते हैं और हमारा व्यवहार विभिन्न दशाओंमें बिल्कुल भिन्न होता है। एक हालतमें हम उत्साही दिखते हैं और दूसरी हालतमें शिथिल; एक हालतमें हम वातावरणके प्रति प्रतिक्रिया करते हैं और दूसरी हालतमें उससे मुंह छिपानेकी कोशिश करते हैं; एक दशामें हम खूब जागते रहते हैं और दूसरी दशा में प्रगाढ़ निद्रामग्न। जब हम भूखे होते हैं, तब हम भिन्न प्रकार का व्यवहार करते हैं और जब भरे पेट होते हैं तो भिन्न प्रकार का। इसी प्रकार जल्दी और फ़ुर्सतके वक़्तके हमारे व्यवहारमें भी अन्तर होता है। मनुष्यका व्यक्तित्व बहुमुखी प्रवृत्तियोंसे युक्त है, विभिन्न दशाओं और क्रियाओंमें विभिन्न प्रवृत्तियां प्रबल हो उठती हैं। हमारी इच्छाएं हमें विभिन्न दिशाओंमें खींचती हैं और हमारी रुचियां जीवनके एक सर्वग्राही उद्देश्य के साथ आसानीसे अपना मेल नहीं बैठा पातीं। कुछ व्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक एकता (संश्लिष्टता) लिए होते हैं, जबकि अन्य व्यक्ति उखड़े-उखड़े से और अस्थिर दिखाई देते हैं।

बच्चे अपनी आदतों, लक्षणों और अभिवृत्तियों[३] का विकास अपन दैनिक जीवनकी परिस्थितियोंके विशिष्ट प्रभावोंसे प्रभावित होते हुए करते हैं। उनके व्यवहारोंमें प्रायः असमानता दिखाई देती है। उदाहरणके लिए, एक बच्चा अपनी मां से किसी क्षण घृणा करेगा, तो दूसरे ही क्षण वह उसके प्रति अपना प्रेम भी प्रदर्शित करने लगेगा। वह एक ही सांसमें झूठ बोलेगा और झूठ बोलनेका प्रतिवाद भी करेगा। धीरे-धीरे विकासके दौरानमें ही उसके व्यक्तित्वके विभिन्न पहलुओंका संस्कार होता है और सभी भाग एक दूसरे से संश्लिष्ट होजाते हैं। कुछ वयस्क इस सामंजस्यपूर्ण एकता को नहीं प्राप्त कर पाते, इसीलिए उनके व्यक्तित्वको 'अपरिपक्व' कहा जाता है (२१)। किसी मानसिक रोग का कारण भी व्यक्तित्वका छिन्न-भिन्न होजाना होता है। उदाहरणार्थ, मनोविच्छेदमूलक भ्रान्ति[४] रोगमें यह बात ध्यान देने की है कि रोगीके संवेगों का उसके विश्वासोंसे मेल नहीं होता।

बहुविधि व्यक्तित्व[५]. विघटन[६] (व्यक्तित्वकी एकताका नष्ट होजाना) का सबसे स्पष्ट उदाहरण द्वैध व्यक्तित्व[७] में मिलता है। इस तरहका व्यक्तित्व बिरला ही मिलता है (२२)। व्यक्ति एक दशासे दूसरी दशामें गुज़रता है और दोनों दशाओंमें उसका व्यक्तित्व बहुत भिन्न दिखायी देता है। गौण (अपेक्षाकृत अस्थायी) दशामें उसने जो कुछ किया होता है, उसे वह मुख्य या अधिक स्थायी दशा में बिल्कुल भूल जाता है। गौण दशा[८] में उसे मुख्य दशा[९] की बातें साधारणतया याद रहती हैं, परन्तु उसके विषयमें ऐसे बात करता है, मानों वह किसी दूसरे व्यक्तिके बारेमें बात कर रहा हो। मुख्य दशा कुछ-कुछ असाधारण[१०] सी या सीमित सी होती है। उसमें व्यक्ति ऐसे व्यवहार करता है, मानों उसका सम्पूर्ण 'आत्मा' उसके साथ न हो। गौण दशा मुख्य दशाकी पूर्तिकारक होती है, हालांकि वह स्वयं बहुत अपूर्ण होती है। जो व्यक्ति मुख्य दशामें अत्यन्त शान्त और विनीत दिखायी देता है, वही गौण दशामें अत्यन्त उद्धत हो सकता है। ऐसा लगता है कि वह अंशोंमें बंटकर जी रहा हो, अपनी एकता वह कभी नहीं प्राप्त कर पाता।

डोरिस[११] नामक लड़कीके प्रसिद्ध मामलेमें, एक पिता ने शराबके नशेमें अपनी तीन वर्षकी लड़की डोरिसको क्रोधित होकर जमीन पर फेंक दिया था। डोरिसका अपराध इतना ही था कि वह अपनी मां की बग़लमें अपने पिताके स्थान पर सोगयी थी। उसी क्षणसे वह अत्यन्त शांत, परिश्रमी और समझदार बच्ची हो गयी थी। बीच-बीचमें कुछ समयके लिए वह बहुत उद्दंड और उपद्रवी हो उठती थी। शान्त डोरिसको शैतान डोरिसकी कोई स्मृति न रहती थी, हालांकि शैतान डोरिसको शान्त डोरिस की पूरी स्मृति रहती थी और उसके प्रति वह घृणा प्रकट करती थी। इससे भी प्रसिद्ध मामला ब्यूशां[१२] नामक युवती स्त्री का है। उसका क़िस्सा इस प्रकार है: ब्यूशां की बाल्यावस्था बहुत कठिनाइयोंके बीच व्यतीत हुई। इससे लड़की ने अत्यन्त धार्मिक, आत्मसंयमपूर्ण और आत्मनिषेधात्मक रुख अपना लिया। किन्तु उसके जीवनमें यदा-कदा अकारण ही कुछ शरारतपूर्ण व्यवहारकी छोटी-मोटी घटनाएं घट जाया करती थीं। जब वह एक मानसिक चिकित्सक के सुपुर्द की गयी, तब उसके व्यक्तित्वके शरारती अंग ने एक गौण बच्चे की सी अवस्था का रूप ग्रहण कर लिया और एक तीसरे व्यक्तित्वका आविर्भाव हुआ

[१] dimensions [२] integration [३] attitude [४] schizophrenia [५] multiple personality [६] disintegration
[७] double personality [८] secondary state [९] primary state [१०] abnormal [११] Doris [१२] Beauchamp

जिसमें सामान्यतया आक्रामक (झगड़ालू) और स्वार्थपरक प्रवृत्तियोंका उदय हुआ। आत्मसंयम वाली मुख्य दशा को न तो स्वार्थपरक दशाकी और न शरारत भरे बचपनेकी दशाकी कुछ स्मृति रहती थी। इस प्रकार चिकित्सकके हाथोंमें आकर यह मामला द्वैध व्यक्तित्वसे बिगड़कर त्रैध व्यक्तित्व का होगया। मानसिक चिकित्सक ने व्यक्तित्वके इन तीनों अंशोंको एक समग्र व्यक्तित्वमें गूंथने का प्रयत्न किया और वर्षोंके कठिन परिश्रमके पश्चात् वह अपने कार्यमें सफल प्रतीत हुआ। उस चिकित्सक का खास तरीक़ा यह था कि वह अपने रोगीको निश्चेष्ट[1] ग्रहणशील[2] दशा में, जिसे मोहनिद्रा[3] कहते हैं, पहुंचा देता था। इस स्थितिमें वह लड़की अपनी तीनों परिवर्तनशील दशाओं का स्मरण कर सकती थी। चिकित्सक उसे आदेश देता था कि जब वह सम्मोहन की स्थिति से जागेगी, तो उसकी सारी स्मृतियां बनी रहेंगी। एक भूतपूर्व सैनिक का व्यक्तित्व भी जो युद्धकी परेशानियोंके कारण विभक्त हो गया था, कुछ बीती घटनाओंका पुनःस्मरण कराके संश्लिष्ट किया जा सका था। पुरानी घटनाओंकी स्मृति ने उसकी विच्छिन्न स्मृतियोंको जोड़नेमें पुल का काम किया (१०)। इस प्रश्नका निर्णय अभी तक नहीं हो सका है कि इन मामलोंमें सफलता का वास्तविक कारण व्यक्तिकी स्मृतियों का संश्लेषण[4] है, या उसके उद्देश्यों और प्रवृत्तियों का संश्लेषण?

सारांश

१. «व्यक्तित्व» व्यक्तिके व्यवहारका समग्र गुण है जिसका प्रकाशन व्यक्तिके विचार और व्यवहारकी विशिष्ट आदतों, उसकी अभिवृत्तियों और रुचियों, काम करनेके उसके तरीक़े और जीवनके प्रति उसके दार्शनिक दृष्टिकोणमें हुआ करता है।

२. व्यक्तित्वका विवरण साधारणतया विशिष्ट लक्षणों[5] के रूपमें दिया जाता है।

(क) व्यक्तित्वका लक्षण व्यवहारका एक खास गुण है। यह व्यक्तिकी वह विशेषता है जो उसकी चेष्टाओंके एक बड़े क्षेत्रमें पाई जाती है और यह काफ़ी समय तक एक-सा बना रहता है।

(ख) यद्यपि सामाजिक परिस्थितियोंमें व्यक्तियोंकी पारस्परिक क्रिया से कई लक्षण स्पष्ट होते हैं, तो भी अन्य समय भी ये व्यक्तिकी विशेषता प्रकट करते हैं।

(ग) साधारणतः लक्षणोंका नामकरण विलोम विशेषणों के एक जोड़ेके द्वारा किया जाता है जो एक सीधी रेखा के दो छोरों के समकक्ष होते हैं। किन्तु सामान्यतया एक विशेष लक्षण की दृष्टिसे व्यक्तिका स्थान इन दो छोरोंके मध्य कहीं भी हो सकता है।

(घ) कतिपय लक्षणोंका अन्य लक्षणोंके साथ ऊंचा अनुबन्ध होता है और इन परस्पर ऊंचे अनुबन्ध वाले लक्षणों को एक साथ मिलाकर «लक्षण-समुच्चय[6]» की संज्ञा भी दी जासकती है।

(ङ) अन्तर्मुखता और बहिर्मुखता व्यक्तित्वके सबसे व्यापक लक्षण समझे जाते हैं, उनके क्षेत्रमें अनेक महत्त्वपूर्ण कम व्यापक लक्षणोंका समावेश रहता है।

३. यदि निर्णायक व्यक्तिके उन पहलुओंका निरीक्षण करता है जो उसके गुणोंको अच्छी तरह प्रकाशमें ला देते हैं और यदि उन पहलुओं का आशय निकालने का उसे पर्याप्त अनुभव है, तो «व्यक्तित्वकी परख» अच्छी तरह की जासकती है।

(क) «भेंट करने (इंटरव्यू)» की विधि द्वारा व्यक्तिको अपेक्षाकृत छोटे और निश्चितमान[7] वाले वार्तालापकी परिस्थितिमें डालकर उसके व्यक्तित्वकी परखकी जाती है।

(ख) «'रोगी' का अध्ययन[8]» करनेकी विधिमें व्यक्तिके सम्बन्धमें प्राप्य सारी जानकारी, जिसमें उसका जीवन-इतिहास भी सम्मिलित है, के आधार पर व्यक्तिका विशद विश्लेषण किया जाता है।

४. «व्यक्तित्वके मापदंडों» का निर्माण इस उद्देश्यसे किया जाता है कि वे अन्य व्यक्तियोंके साथ तुलना करते हुए किसी व्यक्तिका ठीक स्थान व्यक्तित्वकी विभिन्न विभाओंमें निर्धारित करसकें।

(क) «श्रेणी-मापदंडों[9]» से लक्षणके बीचके विभिन्न दर्जों को निश्चित किया जाता है। इस विधिमें दो या दो से अधिक श्रेणी-निर्धारकों[10] के निर्णयोंका औसत निकाला जासकता है।

(ख) «प्रश्नावलियों» का उपयोग संकट-भीरुता, शासन-प्रियता, समाजप्रियता, और अन्तर्मुखता-बहिर्मुखता इत्यादि लक्षणों तथा रुचियों और अभिवृत्तियों का माप करनेमें किया जाता है। यदि प्रश्नावलियोंका निर्माण समझ-बूझ कर किया गया है, तो वे पर्याप्त

[1] passive [2] suggestible [3] hypnosis [4] integration [5] traits [6] trait cluster [7] standardized [8] case study [9] rating scales [10] raters

रूपसे विश्वसनीय हैं, किन्तु जिन हेतुओंके लिए उन का उपयोग किया जाय, उनमें अलग-अलग उनकी (प्रश्नावलियोंकी) प्रामाणिकता[1] का निर्धारण किया जाना चाहिए।

(ग) «परिस्थिति-परीक्षाएं» जीवनकी परिस्थितियों की बानगी[2] होती हैं जिनमें कतिपय ऐसे लक्षणोंका निरीक्षण करना सरल होता है, जिनका मूल्यांकन किसी भी तरहकी काग़ज-पेंसिल परीक्षा द्वारा करना कठिन रहता है।

(घ) «अभिक्षेप-परीक्षाओं» में व्यक्तिको भिन्नार्थक उत्तेजनाएं पेश की जाती हैं जो काल्पनिक प्रतिक्रियाओंको जन्म देती हैं। इन प्रतिक्रियाओंका इस प्रकार मूल्यांकन किया जासकता है ताकि मूल व्यक्तित्व-लक्षण और नमूने प्रकट होजायें।

५. व्यक्तित्वके लक्षण व्यक्तिके व्यवहारमें न्यूनाधिक «समरूपता[3]» के साथ प्रकट होते हैं।

(क) अलग-अलग समय पर, एक-सी परिस्थितियोंमें एक-सी प्रतिक्रिया करने को «आत्म-संगति[4]» कहते हैं।

(ख) परिवर्तनशील परिस्थितियोंके एक विस्तृत क्षेत्रमें एक-सी प्रतिक्रिया करनेको «लक्षणकी सामान्यता[5]» कहते हैं।

६. व्यक्तित्वके लक्षण अलग और स्वतंत्र गुण[6] नहीं हैं बल्कि उनमें परस्पर निकट सम्बन्ध होता है और वे अन्योन्याश्रित होते हैं।

(क) «पूर्ण या संश्लिष्ट व्यक्तित्व[7]» उसे कहते हैं जिसमें अनेक लक्षण, रुचियां और इच्छाएं परस्पर संगठित होकर एकतामें आबद्ध रहती हैं। यह एकता बच्चों की अपेक्षा प्रौढ़ोंमें अधिक पायी जाती है।

(ख) कुछ मानसिक रोगोंमें व्यक्तित्वकी एकता नष्ट हो जाती है। इसका चरम रूप «बहुविध व्यक्तित्व[8]» में दिखायी देता है।

[1] validity [2] sample [3] uniformity [4] self-consistency [5] trait generality [6] characteristics [7] integrated personality [8] multiple personality

५

व्यक्तित्वके निर्माणमें शारीरिक और सामाजिक तत्व[1]

व्यक्तित्वके नियंत्रण और विकासकी समस्या का (चाहे अपने व्यक्तित्व का विकास करना हो, चाहे किसी के बच्चों का, या जन साधारणका) हल जाननेके लिए यह आवश्यक है कि इस क्षेत्रमें कारण और कार्य[2] का कुछ ज्ञान कर लिया जाय। हमें उन बातोंकी ओर भी ध्यान देना जरूरी है जिनके कारण व्यक्तित्व परस्पर भिन्न हो जाते हैं। इसके साथ-साथ यह जानना भी आवश्यक है कि प्रयोग और व्यावहारिक अनुभवसे व्यक्तित्वमें परिवर्तन करनेकी विधियों पर क्या प्रकाश पड़ा है। यद्यपि हरेक व्यक्ति एक तरह से अपने ढंग का अकेला होता है, तो भी प्रत्येक के लिए नियम अलग-अलग नहीं होते, और न प्रत्येक अपने लिए मनमाना नियम ही गढ़ सकता है। सभी लोगों पर, यहां तक कि अत्यन्त भवकी और असाधारण व्यक्तियों पर भी एक ही कार्य-कारणके नियम लागू होते हैं। यदि व्यक्तित्व-सम्बन्धी कोई सामान्य नियम न होते, तो मनोवैज्ञानिक परामर्शदाता कुछ भी कर पानेमें असमर्थ होता। उसने दूसरे व्यक्तियोंके अध्ययनसे जो अनुभव प्राप्त किये हैं, तथा प्राणीके और परिवेशके साथ प्राणीके सम्बन्धोंके विषयमें वह जो कुछ जानता है, उनका उपयोग उसे किसी भी व्यक्ति पर करना होगा।

व्यक्तित्व ही शारीरिक मनोविज्ञान[3] और सामाजिक मनोविज्ञान[4] का संगम-स्थल है। उनका मिलन कभी-कभी बड़ा द्वन्द्व उपस्थित कर देता है। एक पक्ष चिल्लाता है कि व्यक्तित्व के निर्माणमें केवल जैविक[5] तत्वोंका हाथ है, और दूसरा पक्ष सामाजिक तत्वोंकी बल पूर्वक दुहाई देता है। एक हमसे कहेगा कि व्यक्तित्व ग्रंथियों[6] पर निर्भर करता है, और दूसरा कहेगा कि सामाजिक प्रभावों पर निर्भर करता है। हमको दोनोंकी बातें सुननी चाहिएं। आइए, पहिले शारीरिक पक्षको लें।

किसी व्यक्तिके व्यक्तित्वमें उसका «आकार-प्रकार» निश्चयरूपसे एक तत्व है। व्यक्तिके आकारका प्रभाव दूसरों के प्रति उसके रुख और उसके प्रति दूसरोंके रुख पर पड़े बिना नहीं रहता, हालांकि महाकाय आदमी सदा प्रभावशाली नहीं होता और न अल्पकाय आदमी सदा विनीत ही होता है। इस के अतिरिक्त पेशियों विकास और रूपका भी प्रभाव पड़ता है।

व्यक्तियोंकी शरीर-रचना[7]—में भिन्नता होती हैं। ये भिन्नताएं बहुधा व्यक्तित्वके विशिष्ट गुणोंसे सम्बन्ध रखती हैं। प्रायः यह देखा जाता है कि गोल-मटोल आदमी हास्यप्रिय, आरामपसन्द और सामाजिक होते हैं; दुबले-पतले आदमी संयमी, तनावकी हालतमें रहनेवाले[8] और अन्तर्मुख होते हैं।

शिर
पीप-ग्रन्थि -च्यासर्ग (पिट्यूटरी हॉर्मोन)
गल-ग्रन्थि च्यासर्ग (थाइरॉयड हॉर्मोन)
उपगलग्रन्थि -च्यासर्ग (पैरा-थाइरॉयड हॉर्मोन)
फेफड़ा, ओषजन का भीतर जाना, कार्बन डाइऑक्साइड का बाहर जाना
यकृत (लिवर), शर्करा
सर्वकिण्वी (पैंक्रियाज़), इन्सुलिन
गुर्दा, मूत्र (यूरिया) का बाहर निकालना
उपवृक्की (एड्रेनल), च्यासर्ग
आंत, भोजन का भीतर जाना, मल का बाहर निकलना
प्रजन-ग्रन्थि (गोनैड), च्यासर्ग
मांसपेशी, थकान उत्पन्न करने वाले पदार्थ
टांगे

आकृति २०. रक्त-प्रवाहमें रासायनिक पदार्थ छोड़ने वाले अंग।

[1] Physiological and Social Factors in Personality [2] cause and effect [3] physiological psychology [4] social psychology [5] biological [6] glands [7] constitution [8] tense

यह अन्तर शेक्सपियरके नाटकोंके दो पात्रों—फ़ॉल्स्टाफ़[1] और हैमलेट[2] में बहुत स्पष्ट हो गया है। आजकल शरीर-रचना और व्यक्तित्वके सम्बन्धोंके विषयमें पूरी जानकारी प्राप्त करने के लिए खोज हो रही है।

दूसरा जैविक तत्व व्यक्तिके शरीरमें होने वाली «रासायनिक क्रियाएं[3]» हैं। प्राचीन लोग जिस चीजको «स्वभाव[4]» कहते थे, यह लगभग वही है। वे 'चार स्वभावों' को शरीरके चार प्रमुख 'द्रवों' के अलग-अलग प्रभाव मानते थे। वे कहते थे कि आदतन आशावादी[5] व्यक्तिमें अतिरिक्त रक्त रहता है; और चिड़चिड़े व्यक्ति[6] में पित्त[7] की, शान्त व्यक्ति[8] में कफ़[9] की और उदास रहने वाले व्यक्ति[10] में प्लीहा या तिल्ली[11] की अधिकता रहती है। कभी-कभी एक पांचवां स्वभाव—चेतामय[12]—भी माना जाता था जिसके विषयमें कहा जाता था कि वह 'स्नायु-द्रव[13]' की अधिकता के कारण पैदा होता है।

यद्यपि यह शरीरशास्त्रीय सिद्धान्त पुराना पड़कर आजके उपयोग का नहीं रह गया है, तो भी यह सम्भावना अभी बनी है कि रासायनिक द्रवोंका व्यक्तिके व्यवहारसे काफ़ी सम्बन्ध है। इनमें से कुछ रासायनिक द्रव्य भोजन, पेय या संक्रमण—छूत—के जरिए बाहरसे शरीर के भीतर पहुँच जाते हैं। इसके अलावा कुछ रासायनिक द्रव्योंका शरीरमें ही निर्माण होता है और उनका व्यक्तिके विकास और व्यवहार पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

व्यक्तित्वके रासायनिक तत्व रक्त-संचार (रक्त परिभ्रमण[14]) पर निर्भर करते हैं। स्नायु संस्थान[15] के समान ही रक्त-संचार भी शरीर का संयोजन[16] करता है यद्यपि दोनोंके ढंग अलग-अलग हैं। द्रव्यों को ले जानेमें रक्त-संचार रेलगाड़ी का काम करता है और सन्देशोंके वहनमें स्नायु-संस्थान तार और टेलीफ़ोन का। परन्तु इनमें से कोई भी मनुष्यके बनाये हुए साधनोंके सदृश कार्य नहीं करता। द्रव्योंका संवहन इस प्रकार होता है: प्रत्येक अंग अपने उत्पादित द्रव्यों को रक्तमें छोड़ देता है; हृदयसे परिचालित होकर रक्त सभी अंगोंमें परिभ्रमण करता है; उस समय सभी अंग रक्त में बहने वाले द्रव्योंको अपनी आवश्यकतानुसार ग्रहण कर लेते हैं। रक्त-संचारकी गति आश्चर्यजनक रूपसे तेज है। रक्त-प्रवाह में डाले हुए किसी द्रव्यको पूरे शरीरके सभी अंगों तक पहुँचने और मांस-पेशियों या मस्तिष्क की क्रियाको प्रभावित करने में केवल १५ सैकेंड लगते हैं!

दैहिक प्रभाव

नित्य-प्रतिके निरीक्षणसे यह बात स्पष्ट हो गयी है कि शारीरिक दशाका व्यक्तित्वके ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ जब कोई व्यक्ति शरीरसे थका होता है, या भूखा होता है, तब उसके अधिक चिड़चिड़े होने की सम्भावना रहती है। रक्त-स्वल्पता (लाल रक्त-कणोंकी कमी) के रोगियों या रक्त-संचारकी न्यूनता वाले व्यक्तियोंमें बल और किसी नये कामको प्रारम्भ करने की शक्ति का अभाव दिखायी देता है, क्योंकि उनके रक्तमें पर्याप्त ओषजन नहीं होता। यदि शारीरिक गड़बड़ अत्यधिक है तो हम उसे रोगकी संज्ञा दे देते हैं, किन्तु साधारण गड़बड़का भी प्रतिबिम्ब व्यक्तिके व्यवहार पर दीख पड़ता है। सम्भवतः आपने देखा हो कि जब जुकाम होने को होता है, तब एक तरह की सुस्ती आ घेरती है और दैनिक कार्यों में जी नहीं लगता। आप के साथियों ने यह भी देखा होगा कि आप बहुत शीघ्र क्रोधित हो जाते हैं और चिड़चिड़े से रहते हैं।

जब शरीरकी दशाओंमें कोई प्रयोगके लिए कोई परिवर्तन किया जाता है, तो उसके पहिले और बादमें व्यक्तित्वका निरीक्षण करनेसे शारीरिक तत्वोंका प्रभाव अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है। इसी रीतिसे दवाओं, रक्त-द्रव्यों, भोजन और रोग-के प्रभाव की जानकारी की जा सकी है।

दवाएं. शामक दवाइयों[17], जैसे 'निद्राकारक गोलियां', से शरीरकी सामान्य चेष्टा घट जाती है, ध्यान उचट जाता है, पेशियोंकी गतियोंमें मेल नहीं रहता है, ऊंघ आने लगती और अन्तमें नींद आ जाती है। ये प्रभाव मस्तिष्क के कुछ अंगोंको निष्क्रिय या शिथिल कर देनेसे उत्पन्न होते हैं। शराब के सम्बन्धमें लोगोंका इससे उल्टा विचार है, उनकी धारणा है कि इससे शरीर और मनमें उत्तेजना आती है, किन्तु निकट अध्ययनसे मालूम हुआ है कि शराब भी मस्तिष्क की क्रिया को मन्द कर देती है। मदिरा-सेवन से 'उत्तेजित' होने के पश्चात् व्यक्तिमें जो अधिक बातूनीपन, सामाजिकता और किंचित् लड़ाकू प्रवृत्ति आ जाती है, उसका कारण भी मस्तिष्ककी उन शक्तियोंका निष्क्रिय हो जाना है जो सामान्यतया इन आचरणोंमें संयम लाया करती हैं (८)। इसी प्रकार जब शामक दवाओं[18] का प्रभाव धीरे-धीरे होने लगता है, तब कुछ क्षणके लिए उत्तेजना की स्थिति आ जाया करती है।

कुछ दवाओं का प्रभाव मस्तिष्कके एक खास अंग पर होता

[1] Falstaff [2] Hamlet [3] chemique [4] temperament [5] sanguine [6] choleric [7] bile [8] phlegmatic [9] phlegm [10] melancholic [11] spleen [12] nervous [13] nerve fluid [14] circulation [15] nervous system [16] integration [17] sedative drugs

है, इसलिए उनका प्रभाव भी कुछ विशेष प्रकार का दिखाई देता है। उदाहरणके लिए अफ़ीम या 'मॉर्फ़िया'[1] देने पर मनुष्यकी सुखद, स्वप्निल-सी दशा हो जाती है; 'मैरी-जुआना'[2] के प्रयोगसे समयका यथार्थ ज्ञान नष्ट हो जाता है और थोड़ा समय भी बहुत लम्बा जान पड़ता है। 'कैफ़ीन'[3] और 'बेन्ज़ेड्रीन'[4] से कुछ स्फूर्ति और कार्य-क्षमता बढ़ जाती है और कुछ देरके लिए थकानकी अनुभूति दब जाती है (३२)।

रक्त-शर्करा[5]. मस्तिष्क और अन्य अंगोंको सुचारु रूपसे कार्य करने देनेके लिए रुधिरमें शर्करा की मात्रा एक निर्दिष्ट स्तरसे ऊपर रखने का प्रयत्न करना चाहिए। जब रक्त-शर्करा की मात्रा इस स्तरसे भी कम हो जाती है, तब मानसिक शक्तियां क्षीण हो जाती हैं और व्यक्तित्वमें परिवर्तन होने लगता है। इन परिवर्तनोंमें प्रमुख हैं—मनोदशा[6] में परिवर्तन, चिड़चिड़ाहटमें वृद्धि, भयभीत बना रहना। जैसा कि पहिले प्रकरणमें बता दिया गया है, ओषजन की कमी के कारण भी व्यक्तित्वमें इसी तरहके अस्थायी परिवर्तन दिखायी देने लगते हैं (३२)।

भोजन. युद्ध या अकालसे बरबाद हुए क्षेत्रोंमें सहायता-कार्य करने वाले कार्यकर्ताओं ने देखा है कि बहुत दिनों तक पर्याप्त पोषण न मिलनेके कारण उन क्षेत्रोंके लोगों का मानसिक सन्तुलन बिगड़ जाता है। गत महायुद्धके दौरानमें अमेरिकामें, ३२ नौ जवानों पर एक सुनियंत्रित प्रयोग किया गया था। इन युवकों ने स्वेच्छासे ६ महीने तक आंशिक भुखमरी की हालतमें रहना स्वीकार किया था। इस अवधि में इनका वजन २५ प्रतिशत घट गया (११)। यद्यपि उनकी बौद्धिक योग्यताओं को कोई नुक़सान नहीं पहुँचा, तो भी व्यक्तित्वके विशेष गुणोंमें परिवर्तन दिखायी देते थे। इन लोगोंका मन सदा भोजनके विचारों और स्वप्नोंमें ही उलझा रहता था; और सम्भोग, खेलकूद तथा सिनेमा आदिमें उनकी सामान्य रुचि कम हो गई थी। वे साधारणतया उदास, चिड़चिड़े और असामाजिक हो गये थे, हंसी-मजाक करने की ओर उनकी प्रवृत्ति ही न होती थी। छै महीने बाद जब उन को क्रमशः पूर्ववत् भोजन और पोषण प्राप्त होने लगा, तब व्यक्तित्वमें हुए ये परिवर्तन भी धीरे-धीरे ग़ायब होने लगे। कुछ ऐसे रोगियोंके व्यक्तित्वमें भी इस तरहके परिवर्तन दिखायी दिए हैं जिनका भोजन तो परिमाणमें कम न था, परन्तु उसमें खाद्योज (विटामिन) 'बी' की कमी थी।

बीमारी. किसी भी बीमारीकी गम्भीर स्थितियोंमें मनुष्य के व्यक्तित्वमें उल्लेखनीय परिवर्तन दिखायी देते हैं। कुछ परिवर्तन तो इसलिए होते हैं, कि ज्वर की गर्मी और रोग के विषोंसे मस्तिष्क ठीक-ठीक काम नहीं कर पाता; किन्तु रोगके कुछ अप्रत्यक्ष परिणाम भी हो सकते हैं, जैसे आत्मपूर्णता का अभाव और परनिर्भरताका रुख। ये कु-लक्षण बीमारी के बाद भी बने रह सकते हैं। गम्भीर रोग के पश्चात्की मनोवैज्ञानिक स्थितिका, विशेषतया बढ़ने वाले बच्चों के मामलेमें सावधानीसे निरीक्षण करना चाहिए, क्योंकि वयस्कों के व्यक्तित्वको समझनेमें इससे मदद मिल सकती है।

इनसिफ़ालिटिस[7] नामक रोगको ही लीजिए। इस रोगमें मस्तिष्कको क्षति पहुंचनेके कारण व्यक्तित्व पर काफ़ी प्रभाव पड़ता है। यह रोग बच्चों और वयस्कों दोनोंको होता है और इसके बाद ऐसे लक्षण दिखायी देने लगते हैं जो प्रारम्भिक बीमारी के खत्म हो जानेके वर्षों बाद तक चलते रहते हैं। इसके कारण व्यक्तित्वमें जो परिवर्तन होते हैं, उनमें अत्यधिक संवेगशीलता, चिड़चिड़ाहट, अधिक चंचलता, अति-सक्रियता और आवेशमय आचरण जो बहुधा समाज-विरुद्ध या क़ानून-विरुद्ध कार्योंकी सीमा तक जा पहुँचते हैं, प्रमुख होते हैं। कभी-कभी, खास तौरसे बच्चोंमें, इस आचरणके साथ-साथ मानसिक ह्रास और कुंठित विकासके चिन्ह भी दृष्टिगोचर होने लगते हैं, किन्तु प्रौढ़ व्यक्तियोंकी बुद्धि पर प्रायः अधिक कुप्रभाव नहीं पड़ने पाता (३,४)।

नीचे हम एक 'रोगी' का विवरण[8] दे रहे हैं जिससे पता चलेगा कि इनसिफ़ालिटिस[7] के कारण व्यक्तित्वमें किस तरह का परिवर्तन हो सकता है :

१२·५ वर्षका बालक ऐंजेलो[9] जब चोरी करने के अपराधमें तीसरी बार गिरफ़्तार किया गया, तब उसे 'सरकारी बाल-गृह[10]' में भेजा गया। ऐंजेलोका जन्म अमेरिका में हुआ था; उसके माता-पिता सम्भ्रान्त इटालियन थे। तेरह बच्चों के परिवारमें ऐंजेलोका नम्बर सातवां था। उसके माता-पिता और अन्य भाई क़ानूनके अनुसार चलने वाले हैं तथा घर सुखदायी है। आठ वर्षकी अवस्था तक वह सामान्यतया सुशील बालक गिना जाता था और उसके व्यवहारमें कोई विचित्र बात नहीं देखी गयी थी। तभी उसे इनसिफ़ालिटिस हुआ। इस बीमारीके तुरन्त बाद ही वह घबड़ाया हुआ और अस्त-व्यस्त रहने लगा।

कुछ महीनोंके बाद उसके अंत्र-पुच्छ-रोग[11] की शल्य-चिकित्सा[12] हुई। इस लम्बी बीमारीके दौरानमें, यह स्वाभाविक ही था कि उसका बड़ा लाड़-प्यार, नाज़-नेवाज होता। किन्तु बादमें

[1] morphine [2] marijuana [3] caffeine [4] benzedrine [5] blood-sugar [6] mood [7] encephalitis [8] case study [9] Angelo [10] State Home for Boys [11] appendicitis [12] operation

जब वह बहुत चिड़चिड़ापन, परनिर्भरता और चंचलता दिखाने लगा, तब उसके माता-पिता तथा दूसरे लोगों ने भी कहा कि बहुत दुलारसे उसकी आदतें बिगड़ गयीं हैं। जिस अनुशासनमें उसके भाई-बहिन रहते थे, वह उसके लिए पर्याप्त सिद्ध न हुआ। जैसे ही वह चलने-फिरने योग्य हुआ, उसमें चोरीकी आदत पड़ गयी। जिस चीज पर उसकी तबियत चल जाती, उसे चुराये बिना वह न मानता। सिनेमा देखने वह जाता था पर कुछ मिनट भी मुश्किलसे चुपचाप बैठ पाता था और फिर उकताकर वह बाहर आ जाता था। हवालातके जीवन, माता पिता की डांट-फटकार, डॉक्टरों की चिकित्सा और अदालतकी सजाओं ने उस पर कोई असर न किया। स्कूलकी पढ़ाईमें भी वह असफल रहा, क्योंकि बारह वर्षकी अवस्था में, वह अभी दूसरी कक्षामें ही था।

'सरकारी बाल-गृह' में भरती किये जानेके बाद एक मनोवैज्ञानिकने उसकी बुद्धि-परीक्षा ली और देखा कि उसके प्राप्तांक उस स्तरके थे जिसमें औसत और दुर्बल बुद्धि का अन्तर स्पष्ट नहीं रहता किन्तु उसके व्यक्तित्वमें इतनी अस्त-व्यस्तता वर्तमान थी कि वह तत्काल कोई उपाय न कर सका। उसका अवधान[1] बहुत अस्थिर था, अतः यह सम्भावना समझी गयी कि ध्यान की स्थिरता में वृद्ध होने पर उसके बुद्धि-प्राप्तांक भी ऊंचे होजायेंगे। परीक्षक ने उसका स्थान निर्धारित करते हुए उसे चिड़चिड़ा, बातूनी और अपनेको दूसरों पर थोपनेवाला बताया। परीक्षा के बाद डॉक्टरों और स्नायु-विशेषज्ञों ने यह बताया कि इनसिफ़ालिटिस[2] के पश्चात् उत्पन्न मानसिक अस्थिरता के कारण ये उपद्रव उसमें दिखाई दे रहे हैं।

यद्यपि ऐंजेलो के लिए स्कूल और अन्य कार्योंका कार्यक्रम निर्धारित था, उसकी बराबर देख-रेख भी की जाती थी तो भी बाल-गृह में उसका आठ महीनेका निवास विभिन्न उपद्रवों की कहानी ही रहा। एक समय तो वह सबमें फूट फैलाने पर उतारू होगया था। अपने सहवासी बालकों को वह तरह-तरह से परेशान करता था, कभी उनको बेवकूफ़ बनाता, कभी उन से झगड़ पड़ता, कभी उनकी चीजें चुरा लेता और झूठ बोलना तो गोया उसका पेशा होगया था। जिस-जिस अफ़सर की देख-रेख में वह रहा, उसकी सम्मति यही होती थी कि यह लड़का बड़ा बेढब और परेशान करने वाला है। इतना होते हुए भी ऐंजेलो प्यारा लड़का था, क्योंकि वह हमेशा जिन्दादिल रहता था कभी उदास न होता था और अपने ऊपर उसका विश्वास आश्चर्यजनक था। उक्त संस्थामें उसके आठ मासके निवास-काल में उसकी स्कूली पढ़ाईमें तो कुछ उन्नति दीख पड़ी, परन्तु उसके आचरणमें कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं दिखायी दिया (३६)।

अन्तरासर्गी ग्रन्थियां[3]

अन्तरासर्गी ग्रन्थियां उनको कहते हैं जो अपने उत्पन्न किये द्रव्यको रक्तमें मिला देती हैं। ये ग्रन्थियां एक या अधिक आभ्यन्तर «न्यासर्गों[4]»—वे द्रव्य जो शरीर या उसके किसी अंगकी क्रियाओंको बढ़ाने या घटानेकी शक्ति रखते हैं—को उत्पन्न करती हैं। उदाहरणार्थ, सर्वकिण्वी[5] दो उदासर्ग[6] पैदा करती है। इनमें से एक, सुप्रसिद्ध सर्वकिण्वियूष[7] है। यह अतः उदासर्ग नहीं है, क्योंकि यह ग्रन्थि[8] से रक्तमें न जाकर छोटी आंत में चला जाता है, जहां यह भोजनको पचानेमें सहायता करता है। फिर भी, सर्वकिण्वी[5] रक्तमें «मधुवशि[9]» नामक द्रव्य डालती है। जब इस न्यासर्ग को रक्त मांस-पेशियों तक ले जाता है, तब इसकी सहायता से वे शर्करा का उपयोग ईंधन के रूपमें करती हैं, अर्थात् शर्करा को जलाती या ओषजनके सम्पर्कमें उसे लाती हैं। यदि सर्वकिण्वी[5] मधुवशि[9] का उत्पादन करनेमें असफल रहती है, तो शरीरमें मधुमेह रोग होजाता है जिसमें शर्करा ओषजन द्वारा न जल पानेके कारण रक्तमें इकट्ठी हो जाती है और बादमें गुर्दे द्वारा पेशाबके साथ बाहर निकाली जाती है। मधुवशि[9] के उत्पादनकी मात्रामें परि-वर्तन होनेसे व्यक्तिकी रक्त-शर्करा के परिमाणमें कमी-बेशी होती है, जिसका प्रभाव व्यक्तित्व और व्यवहार पर पड़ता है जैसा कि 'रक्त-शर्करा' शीर्षकके नीचे कहा गया है।

साधारणतः अन्तरासर्गी ग्रन्थियां शरीर के छोटे-छोटे अंग हैं और देखनेमें यह तनिक भी महत्त्वपूर्ण नहीं जान पड़ते, किन्तु शरीर-शास्त्र और औषधि-विज्ञान ने इन छोटी रासायनिक उत्पादनशालाओं को बहुत महत्त्व का पाया है (१४)। शरीर शास्त्री पशुओंके ऊपर अपना अन्वेषण-कार्य दो प्रमुख विधियों से करते हैं: एक ग्रन्थिको निकालकर वे देखते हैं कि इसके अभावमें पशुके विकास, स्वास्थ्य और व्यवहार पर क्या प्रभाव पड़ता है; अपनी दूसरी विधिके अनुसार वे ग्रन्थिको यथास्थान रहने देते हैं और न्यासर्ग को मुंह या सूच्यानिक्षेप (इंजेक्शन) के जरिए शरीरमें प्रविष्ट कराते हैं। पशुओं पर किये गये इन प्रयोगोंका लाभ उठाकर डॉक्टर लोग ग्रन्थियों की अतिक्रिया और अवक्रिया[10] से उत्पन्न रोगोंका निरीक्षण करते हैं और उनको चिकित्सा ग्रन्थियोंके निस्सार[11] से करते हैं। रसायनशास्त्री भी चुप नहीं बैठे हैं, वे ग्रन्थियोंसे उन

[1] attention [2] encephalitis [3] the endocrine glands [4] hormones [5] pancreas [6] secretions [7] pancreatic juice [8] gland [9] insulin [10] over activity and under activity [11] glandular extracts

रासायनिक द्रव्योंको अलग करनेमें संलग्न हैं जो वास्तवमें काम करते हैं। इनमें से कुछ स्यासर्गों[1] को अब संश्लिष्ट रूपसे रासायनिक प्रयोगशालाओंमें तैयार किया जा सकता है; अन्य स्यासर्ग पशुओंको मारकर उनसे प्राप्त ग्रन्थियोंसे प्राप्त किये जाते हैं।

गलग्रन्थि[2]. यह ग्रन्थि ग्रीवाकी जड़में श्वास-नलिका[3] के सामने स्थिति रहती है। सामान्यतया इसका वजन एक औंस होता है। कभी-कभी यह असामान्य रूपसे बढ़ जाती है, परन्तु इससे इसके कार्यमें कोई चिन्ताजनक गड़बड़ी नहीं होती। जब यह ग्रन्थि रोगके कारण विनष्ट हो जाती है, तब व्यक्ति में पहिलेकी सी फुर्ती और शक्ति नहीं रहती और उसपर एक तरह का शैथिल्य हावी हो जाता है। इस दशा को श्लेष्मस्फाय[4] कहते है। इसमें चमड़े पर शोथ आ जाती है, मस्तिष्क और पेशियोंकी क्रिया मन्द पड़ जाती है। व्यक्ति में शिथिलता, बोदापन[5] भुलक्कड़ आ जाता है और वह दृढ़तापूर्वक न ध्यान केन्द्रित कर सकता है, न सोच-विचार कर सकता है, न काम ही कर सकता है। यदि यह ग्रन्थि जन्म से दोषपूर्ण हो या शैशवावस्थामें ही विनष्ट होगयी हो, तो बच्चेकी वृद्धि कुंठित हो जाती है और उसकी बुद्धि का विकास नहीं होता। सबसे भयंकर रोगियों को 'अ-जाम्बुकबाल[6], कहते हैं; इस स्थितिमें व्यक्ति बौना, कुरूप और मूढ़-बुद्धि[7] रह जाता है; परन्तु उसका स्वभाव शान्त रहता है।

इसे अन्तरासर्ग-विज्ञान[8] का एक नाटकीय अनुसन्धान ही कहना चाहिए कि इसने श्लेष्मस्फाय[4] जैसे रोग की चिकित्सा खोज निकाली। यह मालूम किया गया कि भेड़ की गल-ग्रन्थि खिलानेसे जादू का सा असर होता है और व्यक्ति अपनी सामान्यावस्थामें आ जाता है। इस ग्रन्थि का निस्सार[9] लेनेसे भी ऐसा ही चमत्कार होता है। यह तो निश्चित है। कि इस चिकित्सासे रोगीकी नवीन गलग्रन्थि नहीं निकलती, किन्तु जब तक वह गलग्रन्थि-द्रव्य उचित मात्रा में ग्रहण करता रहता है, तब तक उसकी दशा सामान्य बनी रहती है। यहां तक कि बेचारे अ-जाम्बुक-बाल[6] भी यदि रोगकी प्रारम्भिक अवस्थामें गलग्रन्थि-द्रव्य लेना शुरू करदें, तो उनको भी काफ़ी लाभ हो सकता है। उनकी बुद्धि लब्धि चिकित्सा न किये गये अ-जाम्बुक-बाल से काफ़ी ऊंची उठायी जा सकती है, हालांकि औसत स्तरसे उसे ऊपर नहीं उठाया जा सकता।

गलग्रन्थि-स्यासर्ग[10], जिसे "गलतिरिन[11]" कहते हैं, का रासायनिक विश्लेषण किया गया है और उसकी संरचना मालूम
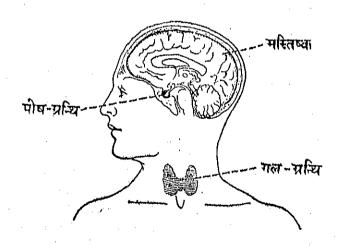
आकृति २१. पोष-ग्रन्थि (पिट्यूटरी) और गलग्रन्थि (थाइरॉयड) के स्थान। पोष-ग्रन्थिके दूसरे दृश्य के लिए आकृति ५१ देखिये।

[1] hormones [2] the thyroid gland [3] wind pipe [4] myxoedema [5] stupidity [6] cretins [7] imbecile [8] endocrinology [9] extract [10] thyroid hormone [11] thyroxin

की गई है जिसे क$_{१५}$ उ$_{११}$ ओष$_{४}$ नत्रजन$_{४}$[१] के निबन्ध-सूत्र (फ़ारमूले) से प्रकट किया जा सकता है। इस सूत्रमें प्रयुक्त, कार्बन[२] उदजन[३], ओषजन[४] और नत्रजन[५] शरीरके सामान्य रासायनिक तत्व हैं, जब कि गलतिग्मि[६] में जम्बुकी[७] एक विशिष्ट तत्व है। भोजन और पीनेके पानीके द्वारा शरीर में थोड़ी मात्रामें जो जम्बुकी जाती है, उसको गलग्रन्थि उपर्युक्त रासायनिक यौगिक[८] में एकत्र कर देती है। जिन क्षेत्रोंमें जैसे स्विटज़रलैंड और अमेरिकाके भील क्षेत्रमें—सारी की सारी जम्बुकी जमीनसे निचुड़ कर समुद्रमें बह गयी है, वहांके लोगोंके शरीरकी गलग्रन्थिका काम दुहरा कठिन हो गया है, क्योंकि जो जंम्बुकी इन क्षेत्रोंके लोगोंके शरीरमें पहुंच पाती है, वह परिमाणमें नगण्य-सी होती है। इन क्षेत्रोंमें गलग्रन्थिकी अभावग्रस्तता प्रायः दिखायी देती है, किन्तु खानेके नमक का जम्बुकीकरण[९] करके इस अभाव

आकृति २२. श्लेष्मस्फाय (माइक्सोडेमा) रोगका एक रोगी—गल-ग्रन्थि-निस्सार (थाइरॉयड ऐक्सट्रैक्ट) से चिकित्सा करनेके पहिले और बादमें। (बैस्ट और टेलरकी «लिविंग बॉडी» नामक पुस्तकसे प्राप्त।) (प्रकाशक: हैन्री होल्ट कम्पनी, न्यूयॉर्क।)

को दूर करके गलग्रन्थि को ठीक स्थितिमें रखा जा सकता है।

गलतिग्मि[६] का मौलिक कार्य है चयापचय[१०] या शरीर की रासायनिक प्रक्रिया, विशेषतः जारणकी प्रक्रिया[११] को क्षिप्र बनाना। जब यह न्यासर्ग[१२] परिमाणमें कम होता है तब, चयापचय[१] धीमा पड़ जाता है, ओषजन का कम इस्तेमाल हो पाता है और शरीरसे कम मात्रामें कार्बन डाइऑक्साइड[१३] निकल पाती है। जब गलग्रन्थि अत्यधिक न्यासर्ग[१२] उत्पन्न करने लगती है, तब चयापचय[१०] की गति सामान्य स्तरसे ऊपर उठ जाती है।

जब गलग्रन्थि अतिक्रियाशील होती है, तब व्यक्ति अशान्त, तनाव की दशामें, चिड़चिड़ा, चिन्तित और अस्थिर दिखायी देता है। यदि व्यक्ति अभी बढ़नेकी अवस्थामें है, तो उसका विकास विशेषतया लम्बाईमें बहुत तेजीसे होता है और शारीरिक दृष्टिसे वह दोनोंका ठीक उलटा दिखायी देता है। फिर भी, यह पता नहीं चलता कि इस शारीरिक वृद्धिसे उसके मानसिक विकासकी गति भी तीव्र हुई है और उसकी बुद्धिका स्तर भी ऊंचा हुआ है या नहीं।

गलग्रन्थिकी अधिकता या अभावके उदाहरणोंके अतिरिक्त कई उदाहरण इस तरहके भी मिलते हैं जिनमें सामान्य स्तरसे कुछ ही ऊपर या नीचे इसका विचलन होता है। जहां तक ज्ञात है, इस तरहके विचलन[१४] और बुद्धिमें कम अनुबन्ध होता है, किन्तु इस बातके कुछ प्रमाण मिले हैं कि गलग्रन्थिकी सामान्य कमीसे जनित औदासीन्यसे जिसका पता मन्द चयापचय[१०] से चलता है, बच्चोंकी स्कूल-उपलब्धि उनके बुद्धि-स्तर से नीचे जा सकती है (३७)। व्यक्तित्वमें अतिक्रिया और न्यूनक्रियाके जो अन्तर मिलते हैं उनका कारण कभी-कभी गलग्रन्थिकी अधिकता या न्यूनता होता है, किन्तु अन्य कारणोंसे भी वैसा हो सकता है। केवल व्यक्तित्वके लक्षणों को देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि गलग्रन्थिमें ही गड़बड़ है।

उपवृक्कय ग्रन्थियां[१५]. गुर्दे[१६] के निकट स्थित रहनेके कारण इन लघु ग्रन्थियोंका यह नामकरण हुआ है, हालांकि गुर्दोंके कार्यसे इनका कार्य नितान्त भिन्न होता है। प्रत्येक उपवृक्कय[१७] में एक बाहरी भाग होता है जिसे त्वक्ष या बाह्यक[१८] कहते हैं। उसके अन्तर्भागको मज्जक[१९] कहते हैं। इन दोनों भागोंमें बनावट और कार्यकी दृष्टिसे अन्तर है और अपने-अपने ढंगसे प्रत्येक अन्तःसर्गी ग्रन्थिका काम करता है। मज्जक[१९] से उत्पन्न न्यासर्ग[१२] को उपवृक्की[२०] और त्वक्ष[१८] से उत्पन्न न्यासर्गको त्वक्षि[२१] कहते हैं।

उपवृक्की[२०] एक अत्यन्त शक्तिशाली न्यासर्ग होता है। रक्तमें इसकी थोड़ी-सी मात्रा भी निम्नलिखित प्रभाव उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त होती है

तेज और जोरदार दिलकी धड़कन;

[१] $C_{15}H_{11}O_4NI_4$ [२] carbon [३] hydrogen [४] oxygen [५] nitrogen [६] thyroxin [७] iodine [८] compound [९] iodizing [१०] metabolism [११] oxidation [१२] hormone [१३] carbon dioxide [१४] deviation [१५] the adrenal glands [१६] kidneys [१७] adrenal [१८] cortex [१९] medulla (pith or marrow [२०] adrenin [२१] cortin

ऊंचा रक्त-चाप जो रक्तको चर्म या शरीरके भीतरी अंग[1] के रास्ते न धकेल कर मुख्यतः मांस-पेशियों और मस्तिष्कके रास्ते धकेलता है;
उदर और आंतोंकी क्रिया का स्थगित होजाना;
फुफ्फुसों[2] के वायुमार्गोंका चौड़ा पड़ जाना;
यकृतसे एकत्र शर्करा का निकास;
मांस-पेशियों में देर तक थकानका न आना;
खुलकर पसीना आना;
आंखकी पुतली[3] का फैल जाना[4]।

स्वतंत्र स्नायु-संस्थान[5] के सहभावी अंग[6] की क्रियासे भी ये प्रभाव उत्पन्न होते हैं। सहभावी नाड़ियों द्वारा ये प्रभाव शीघ्रतासे और थोड़े समयके लिए उत्पन्न किये जाते हैं, जब कि ग्रन्थिसे रक्तमें छोड़ा हुआ उपवृक्की[7] यही प्रभाव धीरे-धीरे किन्तु अधिक समयके लिए उत्पन्न करता है। इस प्रकार उपवृक्वय मज्जक[8] सहभावी नाड़ियों[9] का सहकारी[10] है।

ऊपर तरह-तरह के प्रभावोंकी जो सूची दी गयी है, उसमें कोई सम्बद्धता भी है? कैनन[11] ने पता लगाया है कि पशुमें ये परिवर्तन किसी संवेगात्मक परिस्थितिमें होते हैं और ये अकस्मात् आयी हुई विपत्तिका सामना करनेके लिए पशुकी शक्तियोंका संगठन करते हैं (६)।

शरीर द्वारा सोडियम[12], पोटैशियम[13] और शर्करा[14] का उपयोग करनेमें त्वक्षि[15], से काम लिया जाता है और पेशियों की तथा यौन क्रियाओं पर इसका बड़ा प्रभाव रहता है। यह शरीरको उपयुक्त दशामें रखता है, परन्तु कैसे, यह अभी तक स्पष्ट नहीं होसका है। वह जीवनके लिए आवश्यक वस्तु है। आमतौरसे राजयक्ष्मा के कारण पुरुषमें उपवृक्कय त्वक्ष[16] का सम्पूर्ण विनाश होजाता है, फलतः एक घातक रोग हो जाता है जिसे उसके अनुसन्धानकर्ता के नाम पर (१८५५) 'एडीसन की बीमारी' कहते हैं। इसके लक्षण ये हैं: निर्बलता और शिथिलता में तेजीसे वृद्धि, यौन-क्रिया में अरुचि, मन्द चयापचय[17] और किसी संक्रामक रोगका प्रतिरोध करनेकी शक्ति कम होजाना। इस बीमारीमें शरीर-चर्म काला पड़ जाता है, रोगी गर्मी या जाड़ा सहन नहीं कर सकता और अनिद्रा[18] से पीड़ित रहता है। उसके व्यवहारमें परखकी कमी, चिड़चिड़ाहट और सहयोगकी भावना का अभाव दिखायी देने लगता है। यदि रोगीको त्वक्षि[15] दिया जाय, तो ये लक्षण दूर होजाते हैं।

आपने देखा होगा कि कभी-कभी पुरुष या स्त्रीमें पुरुषोचित लक्षणों[19] की अधिकता होजाती है। इसके कई कारणोंमें से एक कारण उपवृक्कय त्वक्ष[20] की अतिक्रियाशीलता भी है। स्त्रियोंमें इसके कारण उनके अंगोंकी गोलाई[21] नष्ट होजाती है, आवाज भारी होजाती है और दाढ़ी उगने लगती है।

प्रजन-ग्रन्थियां[22]. मूल कामेन्द्रियां[23], डिम्बग्रन्थि[24] और पुरुषके अंडकोष[25] सन्तानोत्पत्ति-सम्बन्धी कोषों (रजकीट[26] और शुक्रकीट[27]) को उत्पन्न करनेके साथ-साथ आभ्यन्तर न्यासर्गोंका स्राव भी करती हैं जिनका शारीरिक विकास और व्यवहार पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। ये न्यासर्ग काफ़ी संख्यामें होते हैं और इनमें से कुछ, पुरुष और स्त्री दोनोंमें उपस्थित होते हैं। पुरुषके न्यासर्गोंका सन्तुलन पुरुषमें पुरुषत्व[28] का और स्त्रीके न्यासर्गोंका सन्तुलन स्त्रीमें स्त्रीत्व का विकास करता है। यौन-प्रौढ़ता[29] के समय ये न्यासर्ग जननेन्द्रियों[30] और यौन-लक्षणों, जैसे स्त्रियोंमें दुग्ध-ग्रन्थियों[31] तथा पुरुषोंमें भारी आवाज व दाढ़ीका विकास करते हैं। प्रजन-ग्रन्थियों[22] के अभावमें स्त्री और पुरुष क्लीव[32] बन जाते हैं जिनमें प्रबल यौन-चिह्न नहीं मिलते।

स्त्रियोंके भीतर सन्तानोत्पत्ति सम्बन्धी प्रक्रियाएं[33] भी, जिनमें मासिक धर्म[34], गर्भाधान और शिशुको दूध पिलाना[35] आदि क्रियाएं सम्मिलित हैं, न्यासर्गोंके द्वारा काफ़ी हद तक नियंत्रित होती हैं। यहां तक कि शिशुका पालन-पोषण करने की प्रेरणा भी स्त्रीको इन न्यासर्गोंके कारण ही मिलती है; यद्यपि मातृवत् व्यवहारकी क्षमता मस्तिष्क पर निर्भर करती है (२, १९)।

यद्यपि यौन न्यासर्ग[36] बचपनमें मौजूद रहते हैं, तो भी किशोरावस्थामें उनमें वृद्धि होती है। ये यौन-रुचि के विकासके लिए निश्चयात्मक रूपसे आवश्यक होते हैं। जहां तक व्यक्तित्वके लक्षणोंका प्रश्न है, कुछ व्यक्तियोंमें काम-वासना अत्यधिक होती है और कुछ में अत्यन्त कम। इन विभिन्नताओं का कारण न्यासर्गोंको माना जासकता है, परन्तु इसके प्रमाण अभी बहुत कम मिल सके हैं। कुछ लोगोंकी रतिक्रियामें औसत लोगोंसे बहुत कम रुचि होती है। ऐसे लोग प्रायः अपने मित्रोंकी आलोचना का विषय बने रहते हैं।

[1] viscera [2] lungs [3] pupil of the eye [4] dilation [5] autonomic nervous system [6] sympathetic division [7] adrenin [8] adrenal medulla [9] sympathetic nerves [10] adjunct [11] Cannan [12] sodium [13] potassium [14] sugar [15] cortin [16] adrenal cortex [17] metabolism [18] insomnia [19] masculine characteristics [20] adrenal cortex [21] rounded contours [22] the gonads [23] primary sex organs [24] female ovary [25] male testis [26] ovum [27] spermatozoon [28] masculinity [29] puberty [30] genital organs [31] mammary glands [32] neutral [33] reproductive processes [34] menstrual or ovulation cycle [35] lactation [36] sex hormones

इसकी प्रतिक्रिया उन पर इस रूपमें होती है कि वे कुछ विचित्र प्रकारकी यौन-चेष्टाओंमें संलग्न होजाते हैं। अन्य सामान्य न्यासर्गों वाले व्यक्ति अपने सामाजिक परिवेशकी विचित्रताओं और दूसरी रुचियोंके यौन-रुचि के प्रतिद्वन्द्वी या उससे संयुक्त होजानेके कारण एक खास तरहकी यौन-अभिवृत्ति ग्रहण कर लेते हैं।

पोष-ग्रन्थि[1]. यह ग्रन्थि 'ग्रन्थिपति[2]' मानी जाती है, इसलिए कि इसके न्यासर्ग अन्य अन्तरासर्गी-ग्रन्थियों पर नियन्त्रण रखते हैं। पोष-ग्रन्थि एक छोटी-सी ग्रन्थि है जो मस्तिष्क के निचली ओर होती है (देखिए आकृति २१)। इस ग्रन्थिका पुच्छ भाग[3] ऐसे न्यासर्गोंको उत्पन्न करता है जो शरीरकी प्रक्रियाओं, जैसे रक्तचाप और जलके चयापचय[4] का नियमन करते हैं। ग्रन्थिका अग्रभाग[5] ऐसे न्यासर्गोंको पैदा करता है जो गलग्रन्थि, प्रजन-ग्रन्थि, उपवृक्कवल्कल और सम्भवतया अन्य ग्रन्थियोंको भी उत्तेजित करते हैं; पोष-ग्रन्थिके न्यासर्गों[6] के बिना ये ग्रन्थियां विकसित नहीं होतीं या सामान्य रीतिसे कार्य नहीं कर पातीं।

पोष-ग्रन्थिके अगले भागका शारीरिक वृद्धि पर भी काफ़ी प्रभाव पड़ता है। यदि यह ग्रन्थि बचपनमें अतिक्रियाशील रहे, तो अस्थियां और पेशियां बड़ी तेजीसे बढ़ती हैं और व्यक्तिकी ऊंचाई दैत्यकी तरह, सातसे नौ फ़ुट तक जा सकती है। इतने समय तक अतिक्रियाशील रहनेके बाद यह सम्भावना रहती है कि यह ग्रन्थि शक्तिहीन होजाय और फलतः वह दैत्याकार व्यक्ति अपनी मांस-पेशियों की शक्ति खो बैठे और कम उम्र में ही काल-कवलित होजाय। यही ग्रन्थि यदि शरीरके विकास-काल में सामान्य क्रियाशील रहनेके बाद, प्रौढ़ जीवनमें अतिक्रियाशील होजाय, तो व्यक्ति क़दमें और अधिक लम्बा होने के बजाय लम्बे-लम्बे हाथ, पैर, नाक वाला होजाता है और उसका निचला जबड़ा भी बड़ा होजाता है—इस स्थितिको 'बृहत् आत्यन्तिकता[7]' की स्थिति कहते हैं। शरीरके विकास-काल में यदि पोष-ग्रन्थिका अगला भाग कम क्रियाशील रहे, तो व्यक्ति बौना रह जाता है, यद्यपि उसके अंगोंमें भोंड़ापन नहीं होता। ऐसे लोग अजाम्युक-बाल[8] से भिन्न प्रकारके होते हैं, क्योंकि ये देखने में आकर्षक होते हैं और इनकी बुद्धि सामान्य स्तरकी होती है। ऐसे व्यक्तियोंको छोटी अवस्था में ही यदि पोष-ग्रन्थि-निस्सार[9] दिये जायें, तो उनकी वृद्धि होसकती है।

अन्तरासर्ग-सन्तुलन[10]. व्यवहार और व्यक्तित्वके साथ पोष-ग्रन्थिका क्या सम्बन्ध है, यह पता लगाना बहुत कठिन है। इसका एक कारण तो यह है कि यह ग्रन्थि दूसरी ग्रन्थियोंको उत्तेजना देनेका महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। अन्तरासर्ग-विज्ञानवेत्ताओं[11] का दृढ़ विश्वास है कि पोष-ग्रन्थिकी सामान्य अतिक्रियाशीलता से व्यक्ति पुष्ट पेशियों वाला, कठिनाइयों से न डरने वाला, आत्मसंयम और विचार करनेवाला बन जाता है, जब कि इस ग्रन्थिकी न्यून क्रियाशीलताके कारण व्यक्ति दुबला-पतला, शिथिल, आसानीसे हतोत्साह होनेवाला और कठिनाई आने पर काम छोड़ देनेवाला बन जाता है। यह सही है कि अकेली पोष-ग्रन्थिके न्यासर्गोंकी कमी या अधिकताके कारण ही ऐसी शारीरिक और मानसिक स्थिति नहीं पैदा हो सकती, बल्कि सभी न्यासर्गोंमें उचित «सन्तुलन» के अभावके कारण भी। किसी विशेष अन्तरासर्गी ग्रन्थिमें गड़बड़ है ऐसा केवल व्यक्तिके व्यवहार मात्रसे नहीं जाना जासकता। इन्हीं कारणोंसे, कोई व्यक्ति यदि अन्तरासर्ग-सिद्धान्त के आधार पर अपने व्यक्तित्वका विश्लेषण करना चाहे और ग्रन्थियोंकी चिकित्सा कराके उसको उन्नत करनेकी कोशिश करे, तो यह व्यर्थ सिद्ध होगा।

हमारे सामने एक और जटिल समस्या है। कुछ व्यक्ति अपनी शारीरिक हालतके सम्बन्धमें अपने मित्रोंकी आलोचनासे परेशान हो उठते हैं और इसकी प्रतिक्रिया उनपर अच्छी नहीं होती। उदाहरणके लिए, गलग्रन्थिके अभावके कारण व्यक्ति में शिथिलता आ जाती है, किन्तु यदि उनके साथी हमेशा उस की इस शिथिलता की आलोचना करते रहें, तो उसके व्यवहार में एक तरहका चिड़चिड़ापन आ जायगा, जिसकी आशा केवल गलग्रन्थिके अभाव वाले व्यक्तिसे नहीं की जासकती। स्वभावतः प्रजन-ग्रन्थियोंके न्यासर्गों[12] की कमीके कारण यौन-रुचि का अभाव होजाता है, परन्तु जैसा कि हम पहिले ही बता चुके हैं, मित्रोंकी आलोचना से उसपर ऐसी प्रतिक्रिया होसकती है कि वह एक असाधारण तरहका यौन-व्यवहार करने लगे। किसी किशोरमें यदि अन्तरासर्ग-सम्बन्धी कुछ असन्तुलन हो जाय, तो वह ऊंघनेवाला होसकता है और किसी वस्तु पर ध्यान केन्द्रित करनेमें असमर्थ रहता है; जबकि उसकी क्षुधा भयंकर होती है और वह चर्बीके बढ़नेसे मोटा होता जाता है। उसकी हालत पर लोग टीका-टिप्पणी अवश्य ही करते हैं। इसकी प्रतिक्रिया उसपर यह होसकती है कि वह समाजसे अलग एकाकी रहना अधिक पसन्द करने लगे, या अपने अधिकारियोंके प्रति असहिष्णुता तथा क्रोधका रुख धारण कर ले या मिठाई खानेकी अपनी भूख मिटानेके लिए वह चोरी करना शुरू कर दे (२३)।

सम्भवतया अधिकांश व्यक्तियोंमें अन्तरासर्ग-सन्तुलन

[1] the pituitary gland [2] master gland [3] posterior lobe [4] water metabolism [5] anterior lobe [6] pituitary hormones [7] midgets [8] cretins [9] pituitary extracts [10] endocrine balance [11] endocrinologists [12] gonadal hormones

सामान्य ही होता है। किसी भी ग्रन्थिकी अतिक्रियाशीलता या न्यूनक्रियाशीलता का प्रभाव व्यवहार और व्यक्तित्व पर निश्चित रूपसे पड़ता है और इसके कारण उनमें परिवर्तन भी होते हैं, फिर भी ऐसे मामले अपेक्षाकृत बहुत कम होते हैं। अभी तक यह मालूम नहीं होसका कि सामान्य व्यक्तियोंके व्यक्तित्वमें जो मामूली परिवर्तन होते हैं, उनका न्यासर्गोंकी क्रिया में होनेवाले मामूली परिवर्तनोंसे कितना-क्या सम्बन्ध है। कुछ लेखकोंने व्यक्तित्वकी भिन्नताओंके लिए न्यासर्गोंको उत्तरदायी ठहराने पर बहुत जोर दे डाला हैं, किन्तु ग्रन्थियां यदि सामान्य रूपसे क्रिया कर रही हैं तो सम्भवतः व्यक्तित्व की भिन्नताओंके लिए कुछ अन्य कारण जिम्मेदार हैं। इन अन्य कारणोंमें से कुछ कारण जैविक[१] हैं और कुछ सामाजिक। अधिक से अधिक हम इतना ही कह सकते हैं कि व्यक्तित्वके आधारभूत जैविक तत्वोंमें अन्तरासर्गी ग्रन्थियां भी हैं (१५)।

सामाजिक तत्व[२]

मनोविज्ञानका आधारभूत सिद्धान्त है: व्यक्तिको उसके परिवेश के साथ देखना-समझना। इस सिद्धान्तका जितना महत्त्व व्यक्तित्वके विकासको समझनेमें प्रकट होता है, उतना अन्य किसी क्षेत्रमें नहीं। योग्यताकी भांति ही, व्यक्तित्वका विकास व्यक्तिकी क्रिया द्वारा हुआ करता है; और क्रिया निर्भर करती है स्वयं व्यक्ति पर तथा परिवेशसे प्राप्त उत्तेजनाओं पर। «सामाजिक» परिवेश पर ही सारा जोर देना ठीक नहीं। सम्भव है कि उष्ण जलवायु के निवासी आलसी और ढीले-ढाले होते हों, जबकि शीतोष्ण प्रदेशों, जहां कई मौसम बदलते रहते हैं, के निवासी अधिक उत्साही और स्फूर्तिमय होते हों। ऐसी सम्भावनाओंका जितना वैज्ञानिक अध्ययन होना चाहिए था उतना नहीं होसका है, किन्तु व्यक्तित्व पर सामाजिक परिवेशके पड़नेवाले प्रभाव पर लोगोंका अधिक ध्यान गया है।

«नियमावली[३]» और «कार्य-भाग[४]», इन दो शब्दोंसे सामाजिक परिवेशके दो प्रमुख प्रभावोंका संकेत मिलता है। व्यक्ति आचरणकी एक नियमावली सीखता है। वह अपने समुदाय की नियमावलीको अपना लेता है, या उस समूहके साथ रहते हुए अपनी व्यक्तिगत नियमावली बना लेता है, समुदाय में या तो उसके लिए पहिलेसे ही कोई कार्य होता है, या वह अपने लिए कार्य-भाग[४] का चुनाव स्वयं कर लेता है।

समुदाय की नियमावली[५]. कोई भी सामाजिक समूह अपने सदस्यों पर आचरणके कुछ नियम लागू करनेका प्रयत्न करता है। समुदायके नियम आचार-व्यवहारके तरीकोंके बारेमें होते हैं और कुछ नैतिक आदर्शों[६] का पालन करनेके लिए कहते हैं ताकि व्यक्तिका आचार अच्छा बन सके। इनमें लोक-रीतियां भी सम्मिलित होती हैं और ये हर कुटुम्ब, हर दल और हर प्रदेशमें काफ़ी भिन्नता लिये रहती हैं। बच्चा इनमें से कई नियमोंको सरलता से और प्रसन्नता से अपना लेता है, परन्तु जब वह इनका प्रतिरोध करता है तब उसकी आलोचना की जाती है, हंसी की जाती है, उसे दंड दिया जाता है, समाज-बहिष्कृत किया जाता है। ऐसा व्यवहार उसके साथ तब तक जारी रहता है, जब तक वह अपने परिवार या समूहके नियमोंको मानने नहीं लगता। अन्ततः बच्चा समूहके नियमों को अपना कर अपना प्रतिरोध समाप्त कर देता है।

किसी भी समूहमें नैतिक आदर्शों और आचरणकी रीतियों के नियमोंके अतिरिक्त आचरणके ऐसे सूक्ष्म भेद भी माने जाते हैं, जो व्यक्तित्वके लक्षणोंके निकटवर्ती जान पड़ते हैं। जिस प्रकार कोई व्यक्ति किसी नये स्थान पर जाकर वहांकी भाषाके उच्चारणकी नकल करनेकी कोशिश करता है, उसी प्रकार वह स्थानीय आचरणकी «शैली» का भी अनुकरण करने लगता है। सभ्य समाजसे दूर, एकान्तमें बसी हुई जातियों का अध्ययन करने पर इस तरहके सामाजिक प्रभावका साफ़ पता चल जाता है। 'ब्ल्यू रिज[७]' के जंगलोंमें एक छोटी-सी पहाड़ी जाति रहती थी। उस स्थान तक कोई सड़क नहीं जाती थी। सैकड़ों वर्षोंसे उन्हीं जंगलोंमें वह जाति पलती आ रही थी। इस बीच कितनी राष्ट्रीय घटनाएं घटीं, इसका कुछ पता उन्हें न था। दूरस्थ नगरों तक जाने-आने के लिए कोई अच्छी राह भी न थी। कुछ लोग थोड़ा साहस करके नगरोंमें गये भी, किन्तु कुछ समय बाद वे वापस लौट आये; और अपने वासस्थान पर लौटकर उन्हें खुशी ही हुई, क्योंकि यहां वे कम परिश्रमसे अपनी आजीविका कमा सकते थे, और सोने-जागने तथा वस्त्र पहननेके सम्बन्धमें उनपर कोई पाबन्दी न थी। उस समूची जातिका रहनसहन आरामपसन्द, ढीला-ढाला, महत्त्वाकांक्षाहीन और भाग्यवादी था; और जब जातिका यह हाल हो, तब व्यक्तियोंका इससे भिन्न कैसे हो सकता था। व्यक्ति अपने परिवेशसे अपने व्यक्तित्वके लक्षणोंको कैसे ग्रहण करता है, इस बातका यह एक स्पष्ट उदाहरण है। लेकिन हमें अत्युक्ति नहीं करनी चाहिए, क्योंकि इस जातिमें भी व्यक्तिगत भिन्नताएं वर्तमान थीं। एक आदमी बहुत परिश्रमी और अध्यवसायी था, दूसरा अपेक्षाकृत अधिक साहसी था; एक लड़का था जो संसारमें सफलता प्राप्त करने की महत्त्वाकांक्षा रखता था; कम से कम एक युवती स्त्री तो ऐसी थी ही जो वहांके इस भाग्यवादी विश्वासका कि प्रत्येक स्त्रीके भाग्यमें यह लिखा है कि उसके ढेर-से बच्चे होने चाहिए,

[१] biological [२] social factors [३] code [४] role [५] group code [६] morals [७] Blue Ridge

विरोध करती थी। यहां हम पाते हैं कि व्यक्ति थोड़ी-बहुत कामयाबीके साथ अपने सामाजिक परिवेशका « प्रतिरोध » करता है और व्यक्ति पर व्यक्तित्व थोप नहीं दिया जाता। उसका व्यक्तित्व परिवेशके प्रति उसकी प्रतिक्रिया है और वह व्यक्तिके शरीर तथा परिवेश दोनों पर निर्भर करता है (३१)।

हर समूहके अन्दर कुछ लोग नक्कू होते ही हैं जो आचार-व्यवहारके बारेमें समूहके नियमोंको पूरी तरह नहीं मानते। जो लोग समूहके आचरण से बहुत दूर हट जाते हैं, उनका दमन कर दिया जाता है, किन्तु मामूली फ़र्ककी गुंजाइश तो हर समूह में रखी ही जाती है, यद्यपि यह बात अवश्य है कि कुछ समूह अपने नियमोंका पालन करवानेमें अन्य समूहोंकी अपेक्षा अधिक कठोर होते हैं। चूंकि हर समूहके नियमोंमें भिन्नता होती है, इसलिए एक व्यक्ति जो एक समूहमें बेढब (बेमेल) बैठता है, दूसरे समूहमें खप जाता है। कुछ समूह खुले तौरसे और दृढ़ताके साथ प्रतियोगिता करना पसन्द करते हैं; यहां तक कि जो व्यक्ति दूसरोंसे धन और शक्तिमें बढ़ जाता है, उससे आशा कीजाती है कि वह खुल्लमखुल्ला अपनी उत्कृष्टताकी डींग मारे। दूसरे समूह यदि प्रतियोगिता पसन्द भी करते हैं, तो वे सफलताका ढिंढोरा पीटना पसन्द नहीं करते। कोई व्यक्ति समाज द्वारा मान्यता और प्रशंसा प्राप्त करनेका अधिकारी होसकता है, किन्तु तभी जब वह विनयपूर्वक समाजकी सेवा करे। हमारी अपनी ही संस्कृति इस दृष्टिसे अत्यन्त जटिल है। उदाहरणके लिए, हम खेलोंकी प्रतियोगिताको पसन्द करते हैं, किन्तु इसमें भी दलों और उप-दलों में प्रतिद्वन्द्विता का भाव आजाता है। खेलमें अपनी निजी सफलता की डींग मारना या सारी असफलता का दोषी स्वयंको बनाकर घुटते रहना—दोनों ही चीज़ें बुरी हैं। यदि कोई व्यक्ति अपने समूहमें बेमेल बैठता है, तो उसके व्यक्तित्वमें एक उलझन पैदा होजाती है—कभी तो उसका स्वरूप विद्रोहात्मक होता है और कभी कायरतापूर्ण तथा मानसिक रोगी जैसा। जब एक आदमी अपनी जातिसे हट कर दूसरी जाति[१] में रहने जाता है जिसकी जीवन-शैली उस की जातिसे बहुत भिन्न हो, तब वह उसमें बेमेल बैठता है। ऐसा बहुधा प्रवासियों[२] के साथ होता है। व्यक्ति अपने या दूसरे समूहमें इसलिए भी बेमेल बैठ सकता है, कि उसकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों और समूहके प्रतिमानों[३] में विरोध होता है। इस प्रकार आप समझ गये होंगे कि कभी-कभी व्यक्ति और समूहके असामंजस्यके कारण भी व्यक्तित्व-सम्बन्धी उलझनें पैदा होजाती हैं। निस्सन्देह व्यक्तित्वकी कुछ उलझनोंका समूहसे कोई ख़ास सम्बन्ध नहीं होता और उनके मूलमें केवल आन्तरिक दशाएं, जैसे गलग्रन्थिकी अल्पता आदि, कारण होती हैं। स्नायविक रोग और उन्मादके कारणोंकी पूरी तरह छानबीन नहीं की गयी है, किन्तु हमें यह मानकर चलना चाहिए कि इनके पीछे शारीरिक और सामाजिक, दोनों तरहके कारण होसकते हैं।

बाल्यावस्थामें समूह की नियमावली को सीखना. कोई सामूहिक खेल नियमावली का मूर्त उदाहरण होता है, जिसका पालन करना खेलको अच्छी तरह चलानेके लिए आवश्यक होता है। स्विस बालकोंका निरीक्षण करने पर पता चला है कि गोली-जीतके खेल-सम्बन्धी नियमों को वे किस प्रकार धीरे-धीरे सीखते हैं और उनके अनुसार चलते हैं (२८)। प्रयोगकर्ता ने अपने सामने लड़कोंको खेल खिलाया और नियमोंके सम्बन्धमें उनको परखने की चेष्टा की। उसने देखा कि सबसे छोटे बच्चोंको नियमोंकी कोई आवश्यकता न थी, हरेक बच्चा अपने-अपने तरीकेसे खेलता था, जिधर मनमें आता गोली फेंक देता था। उनसे कुछ बड़ी उम्रके लड़के ढीले-ढाले तरीकेसे नियमोंका पालन करते थे, परन्तु उनको उतनेकी भी जरूरत न थी, क्योंकि वे वास्तव में प्रतियोगिता की भावनासे नहीं खेल रहे थे। हर लड़का गोलदायरेमें पड़ी हुई गोलियोंको अपनी गोलीसे मारनेका प्रयत्न करता था और दो खिलाड़ी एक ही खेलमें जीत सकते थे। केवल बड़ी आयुके लड़के ही नियमोंका पालन करते देखे गये, क्योंकि वे प्रतियोगिता की वास्तविक भावनासे खेल रहे थे। इस तरहके नियमानुशासित खेलका उद्देश्य लड़कों की कुशलता को नापना और खेलके सामाजिक पहलू को प्रमुखता देना होता है।

जब छोटे लड़के शुरू-शुरूमें खेलके नियमोंको सीखते हैं, तब वे उन्हें पवित्र और किसी अधिकारी पुरुष द्वारा प्रणीत समझते हैं। प्रत्येक छोटा बच्चा यह कह सकता है कि उसके पिता ने इस खेलका आविष्कार किया तथा इसके नियम निर्धारित किये। किन्तु बड़ी उम्रके बालक यह जानते हैं कि खेलको अच्छा बनानेके लिए ही ये नियम बनाये गये हैं और यदि खेलमें उन्नति होनेकी सम्भावना हो, तो सब खिलाड़ियों की सहमतिसे उसके नियमोंमें आवश्यक परिवर्तन भी किये जा सकते हैं। जिस प्रकार बारह या तेरह वर्षके बालकोंमें कुछ बालक ही गोलीके नियमोंकी वास्तविकता को समझते हैं, उसी प्रकार कुछ ही वयस्क अपने समूहके नियमोंकी सच्ची प्रकृतिको समझनेमें समर्थ होते हैं।

स्विस अनुसन्धानकर्ता ने झूठ बोलनेके विषयमें लड़कोंका विचार जानना चाहा। उसने उनसे पूछा कि झूठ बोलना किसे कहेंगे, यह बुरा क्यों है और दो झूठोंमें कौन-सा झूठ अपेक्षाकृत बुरा है। छः वर्षके बालकों ने बताया कि

[१] community [२] immigrants [३] standards

'नटखटपनकी बातें' कहना झूठ है और यह बुरा इसलिए है, क्योंकि ऐसा कहने पर दंड मिलता है। उनका विचार था कि किसी बच्चेसे झूठ बोलना बुरा नहीं है, 'क्योंकि बच्चा आपका विश्वास कर लेगा'। एक बच्चा जिसने अपनी मां से झूठ-मूठ यह कहा कि उसके शिक्षकने उसको अच्छे नम्बर दिये हैं, झूठ 'नहीं' बोला, क्योंकि उसकी मां ने उसकी बात पर विश्वास किया और प्रसन्न होकर उसे मिठाई खानेको दी। किन्तु एक बच्चा जो अपने परिवारके एकत्र व्यक्तियोंके सामने यह कहता है कि उसने इतना बड़ा कुत्ता देखा, जितनी बड़ी गाय होती है, तो वह बहुत बुरा झूठ बोलता है, क्योंकि उसकी बात पर किसी ने विश्वास नहीं किया।

परन्तु आठसे दस वर्ष तक के बालकोंका विचार इससे बिल्कुल भिन्न था। उनके विचारमें झूठ उसका नाम है जो दूसरोंको धोखा देनेके लिए कहा जाता है। बच्चेसे झूठ बोलना वयस्कसे झूठ बोलनेसे भी बुरा है, क्योंकि बच्चा आपका विश्वास कर लेगा। झूठ बोलना इसलिए बुरा है, 'क्योंकि यदि प्रत्येक व्यक्ति झूठ बोलने लगे, तो हर आदमी के लिए किसी निर्णय पर पहुंचना कठिन हो जायगा'। इस प्रकार बड़े बालक खेलके नियमोंकी तरह ही असत्य भाषण को भी उनके सामाजिक प्रभावोंके आधार पर परखते हैं।

छोटे बच्चेका यह तर्क कि झूठ बोलना इसलिए बुरा है, क्योंकि उसके लिए दंड मिलता है, असंगत जान पड़ेगा, किन्तु बच्चेके दृष्टिकोणसे यह तर्क बिल्कुल ठीक है। बच्चा कई कार्योंको करनेके बाद देखता है कि इनमेंसे कौन-से कार्य उसके बड़ोंको मान्य हैं और इस प्रकार वह नियमोंकी खोज करता है। वह आचरणके किसी नियमकी खोज तो कर लेता है, किन्तु उसकी सामाजिक उपयोगिता का परिचय उसको मिलने के पहले ही घरके बड़े व्यक्ति उस नियम पर अपनी स्वीकृति की मुहर लगा देते हैं। हम यह ठीक-ठीक नहीं बता सकते कि बच्चा अपने बड़ोंकी स्वीकृति या अस्वीकृतिके मापदंडसे नियमोंको मापना छोड़कर कब उनकी उपयोगिता या अनुपयोगिता का मापदंड अपना लेता है।

सामाजिक कार्य-भाग[१]. किसी समूहकी नियमावली चाहे जितनी कठोर हो, फिर भी उसमें व्यक्तियोंके विभिन्न कार्योंके लिए गुंजाइश रहती है। प्रत्येक व्यक्तिको अपना अलग काम करना होता है। कुछ हद तक व्यक्तियोंके काम समूहके संगठनमें विभिन्न आवश्यकताओंके अनुसार निश्चित किये जाते हैं। एक साधन जुटाने वाला होना चाहिए, एक नेता होना ही चाहिए और यदि एक दिलबहलाव करने वाला भी हो, तो पूछना ही क्या। यदि सभी व्यक्ति शक्तिमें एक-समान होते, तो उनके कार्योंका वितरण भी मनमौजी होता और उसके बाद हरेक व्यक्ति अपना कार्य करते योग्य सामर्थ्य का विकास स्वतः कर लेता। अपने कार्य-भाग[२] के अनुसार वह व्यक्तित्वके विभिन्न लक्षणोंका विकास कर लेता। साधन जुटाने वाला व्यक्ति दूरदर्शी या मितव्ययी बन जायगा, नेता अधिकार-प्रिय बन जायगा और दिल-बहलाव करनेवाला दिलचस्प बन जायगा। समाजकी तुलनामें व्यक्तिको नगण्य माननेवालोंके दृष्टिकोणसे तो समूह द्वारा सौंपे गये कार्यके प्रति व्यक्तिकी जो प्रतिक्रिया होती है, उसे व्यक्तित्व कहेंगे। व्यक्तिगत भिन्नताओंका निरीक्षण करनेवाले विद्यार्थीको यह अधिक उचित मालूम होगा कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी विशेषताओंके अनुकूल कार्योंकी ओर आकर्षित होता है और अपनी रुचि तथा शक्तिके अनुसार वह अपने लिए कार्य ढूंढ़ लेता है, या बना लेता है; समूह द्वारा मनमाने ढंगसे उसके ऊपर कार्य नहीं थोपा जाता। जब वह कार्यरत हो जाता है, तब निस्सन्देह कार्यकी आवश्यकताओं और अवसरोंके अनुसार अपना विकास भी कर लेता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि किसी वयस्क का व्यक्तित्व अंशतः तो उसके द्वारा स्वीकृत कार्य पर निर्भर करता है, और अंशतः उसकी जन्मजात विशेषताओं पर तथा उसके विकासकी हर सीढ़ी पर सामाजिक और व्यक्तिगत तत्व साथ-साथ काम करते हैं।

घरमें बच्चेका कार्य-भाग[१]. बचपनकी शारीरिक अवस्था के अनुसार, व्यक्ति का प्रथम सामाजिक कार्य-भाग निर्बल और परावलम्बी होना होता है, किन्तु साथ ही विकसित होना और अधिकाधिक आत्मनिर्भर होना भी। बच्चेका कार्य-भाग चाहे जो कुछ हो, परन्तु निष्क्रिय होना नहीं होता और वह स्वयं अनुभव करने लगता है कि उसका सबसे प्रमुख कार्य विकसित होना है। प्यार किया जाना और प्रशंसित होना भी उसके कार्य-भागमें शामिल है। किसी भी बच्चेके कार्य भाग का ठीक स्वरूप बहुत-कुछ उसके माता-पिता पर निर्भर करता है, किन्तु पूर्णतया नहीं, क्योंकि प्रारम्भमें ही बच्चा इस तरहके लक्षण प्रदर्शित करता है जिनका खयाल शेष परिवारको रखना पड़ता है। कुछ माता-पिता अपने बच्चे को विकासके लिए किंचित् मात्र अवसर नहीं देते। कई बच्चे जो आचरण-चिकित्सालयोंमें व्यक्तित्वकी उलझनोंको ठीक करानेके उद्देश्यसे लाये जाते हैं, उनका निरीक्षण करने पर पता चलता है कि उनके व्यक्तित्वकी उलझनें उनके माता-पिताके अनुचित बर्तावके कारण उत्पन्न हुई हैं। किसी कुटुम्ब में माता-पिता बच्चेको हर तरहके खतरे और कठिनाईसे बचानेके लिए इतने तत्पर रहते हैं कि उनके दुलारके कारण बच्चा अपने प्रयाससे कुछ भी करना नहीं सीख पाता। दूसरे प्रकारके परिवारमें बच्चा डांट-फटकार के वातावरणमें इतने

[१] social roles [२] role

बन्धनमें रखा जाता है कि वह भी अत्यधिक पर निर्भर बन जाता है। लाड़-प्यार से बिगाड़ा हुआ बच्चा और डरा-धमकाकर कुचला हुआ बच्चा—दोनोंके व्यक्तित्वके लक्षण उनके परिवार द्वारा थोपे हुए होते हैं। प्यारे बच्चों और अवांछित बच्चोंको घरमें जो कार्य-भाग दिया जाता है, उसका प्रभाव उनके व्यक्तित्व पर पड़े बिना नहीं रहता (२२,२६)।

घरमें यदि दो बच्चे हों, तो दोनोंके लिए घरेलू वातावरण एक-सा नहीं होता। यद्यपि माता-पिता दोनोंको एक समान प्यार करते हैं, तो भी दोनों बच्चोंमें से प्रत्येकको भिन्न तरहका साथी मिलता है। दोनोंमें से बड़े बच्चेके परिवेशमें एक छोटा भाई आ उपस्थित होता है और छोटे भाईको अपने परिवेशमें प्रारम्भसे ही एक बड़ा भाई मिलता है—कितनी भिन्न चीज होती है यह प्रत्येक के लिए! कुछ मनोवैज्ञानिकों ने, विशेष कर अल्फ्रेड ऐडलर[१] ने बच्चेकी पारिवारिक स्थिति या «जन्म-क्रम[२]» पर बहुत जोर दिया है। बच्चा जब तक एकलौता रहता है, उसको अधिकारच्युत करनेवाला कोई नहीं रहता, न कोई उसकी चीजोंमें हिस्सा बंटा सकता है, इसलिए जहां वह अत्यधिक परावलम्बी होजाता है, वहां वह निर्दय भी होजाता है। विकासके कुछ वर्षों तक एकलौता बच्चा बने रहने पर, बड़ा बच्चा अपने छोटे भाईके जन्मके बाद पदच्युत कर दिया जाता है। ऐसी हालतमें हम आशा कर सकते हैं कि वह छोटे भाईके प्रति ईर्षालु होजायगा तथा अपने विशेषाधिकार और प्रभुत्वमें विश्वास करते हुए अपनी स्थिति को पूर्ववत् बनाये रखनेकी कोशिश करेगा। दूसरा बच्चा जो सदा परिवारमें अपना स्थान बनानेके लिए सचेष्ट रहता है एक विशेषरूपसे उत्सुक व्यक्ति बन सकता है तथा बंधी हुई व्यवस्थाके प्रति विद्रोह करनेवाला भी बन सकता है। सबसे छोटा बच्चा, जो परिवारमें सदैव सबका 'बबुआ' ही बना रहेगा, कोशिश कर सकता है कि उसे सबका लाड़-प्यार मिला करे और वह हमेशा दूसरोंकी ओर सहायताके लिए देखता रहेगा। बड़े परिवारोंकी बात यदि छोड़ दें, तो मालूम पड़ेगा कि हर बच्चेका कार्य-भाग दुभर्यिपूर्ण रहता है।

आचरण-चिकित्सालयोंमें अनुसन्धानकर्ताओंने जन्म-क्रम सम्बन्धी इन सुझावोंकी सत्यता की जांच करनेका प्रयत्न किया है, किन्तु उन्हें बहुत कम सफलता मिली है। कुल मिला कर, परिवारमें कोई स्थान दूसरोंसे बुरा नहीं सिद्ध होता। प्रत्येक स्थानके बच्चोंमें एक ही तरहकी व्यक्तित्वकी उलझनें एक-सी संख्यामें पायी जाती हैं। वास्तवमें, आचरण-चिकित्सालयोंमें जो बच्चे लाये जाते हैं, उनमें एकलौते बच्चोंकी संख्या औरों की अपेक्षा ज्यादा नहीं होती और उसके आचरणमें भी कोई विचित्र उलझन नहीं दिखायी देती, बल्कि उसकी समस्याएं भी वैसी ही होती हैं जैसी अन्य बच्चोंकी समस्याएं। विश्वविद्यालयके छात्रोंमें भी एकलौते लड़कोंका 'कठिनाई-प्राप्तांक[३]' अन्य लड़कोंकी अपेक्षा अधिक नहीं होता और न जन्म-क्रमके साथ इसका कोई निश्चित सम्बन्ध ही पाया जाता है (१७)। चिकित्सालयोंमें कार्य करनेवाला मनोवैज्ञानिक बच्चेका जन्म-क्रम एक ज्ञातव्य तथ्यके रूपमें जानना चाहता है, क्योंकि इससे संकेत मिलता है कि उसकी उलझनें क्या «हो सकती हैं», किन्तु इससे निश्चित रूपसे यह नहीं जाना जा सकता कि वास्तवमें उसकी उलझनें हैं क्या। बहुत कुछ घरके वातावरण पर निर्भर करता है और बहुत कुछ प्रत्येक बच्चे की जन्मजात विशेषताओं पर निर्भर करता है।

ऐडलरके साथ न्याय करनेके लिए यह कहना ठीक होगा कि उसने जन्म-क्रमके अतिरिक्त घरकी अन्य बातोंका भी महत्व पूर्णतः स्वीकार किया था। बहुत कुछ इस बात पर भी निर्भर करता है कि माता कितनी चतुराईसे बच्चेको सामूहिक जीवन में भाग लेनेके लिए प्रोत्साहित करती है; सामाजिकता का विकास करने, अन्य व्यक्तियोंको समझने, दूसरोंको सहायता देने और दूसरोंकी सहायता लेने तथा समूहका एक सक्रिय सदस्य बननेमें अर्थात् एक सामाजिक प्राणी बननेमें वह अपने बच्चेकी किस प्रकार मदद करती है। यदि हरेक बच्चा इस वांछित कार्य-भाग को अपना भी ले तो भी वह अपने प्रारम्भिक अनुभवोंके अनुसार अपने कार्य-भागमें कुछ विशेषता ले आता है। जब कि लाड़-प्यारसे बिगाड़ा हुआ बालक यह आशा करता है कि वह सदा दूसरोंके ध्यान का केन्द्र बना रहे, तब उपेक्षित बालक लोगोंकी निगाहसे बच कर रहनेकी चेष्टा करता है। इस प्रकार, ऐडलरके अनुसार, प्रत्येक बच्चा अपने प्राथमिक कुछ वर्षोंमें 'जीवनकी एक शैली' बना लेता है जो उसके जीवन-पर्यन्त अपने मूल रूपमें अपरिवर्तित बनी रहती है।

फ्रायड[४] और उसके अनुगामी मनोविश्लेषकोंने बच्चेके कार्य-भाग और नियमावलीको समझनेके लिए «तदात्मीकरण[५]» का प्रत्यय[६] सामने रखा है। बच्चा अपने बड़ों का अनुकरण निष्क्रिय रूपसे नहीं, वरन् जान-बूझकर और उत्सुकतापूर्वक करता है। बच्चा अपने पिताकी तरह बनना चाहता है और बच्ची अपनी माताकी तरह—कभी-कभी क्रम इससे भिन्न रहता है, अर्थात् बच्चा अपनी मां की तरह बनना चाहता है और बच्ची अपने पिता की तरह। बच्चा पिता को बड़प्पन और शक्तिसम्पन्नता का प्रतीक मानता है और वह बच्चेको प्यार भी करता है। बच्चेकी मां प्रायः उसके पिता को अच्छा आदमी समझती है

[१] Alfred Adler [२] birth order [३] trouble score [४] Freud [५] identification [६] concept

तथा उसका आदर करती है। इन सारी बातोंकी छाप बच्चे पर पड़ती है और वह अपने पिताको प्यार करने लगता है। दूसरी ओर, पिता को कभी-कभी कड़ाई भी बरतनी पड़ती है, कभी उसको बालकको सजा देनेका अप्रिय कार्य भी करना पड़ता है। इसलिए पिता बच्चेके सामने अप्रिय « प्रशासक » के रूपमें भी उपस्थित होता है जिसका प्रतिरोध करनेकी प्रवृत्ति बच्चेके अन्दर पैदा होती है। इस प्रकार पिताके प्रति बच्चेके रुखमें परस्पर विरोधी तत्व होते हैं, किन्तु पिता के साथ अपना तादात्म्य स्थापित करके बच्चा इस विरोधका अन्त कर लेता है।

प्राधिकारी (पिता) से अपना तादात्म्य स्थापित करके बच्चा स्वयं प्राधिकारी बन जाता है और अपने आचरणोंके लिए अपने को उत्तरदायी मानने लगता है (वह यह भी समझ बैठता है कि दूसरे लोगोंके आचरण पर टीका-टिप्पणी करनेका भी उसे अधिकार है)। जो नियमावली प्रारम्भमें उसपर थोपी गई थी, वही आगे चलकर अच्छाई और बुराईकी उसकी निजी नियमावली बन जाती है। इस प्रकार बच्चेके « अन्तःकरण[1] » (अच्छे बुरेके विवेक) का विकास होता है जो नपे-तुले नियमों के संग्रह मात्रसे कुछ अधिक होता है। इसका कारण यह है कि तदात्मीकरण[2] की इस सारी प्रक्रिया के मूलमें निष्ठा (वफ़ादारी)की एक सशक्त भावना रहती है; पहिले यह निष्ठा अपने माता-पिता और परिवारके प्रति होती है, बादमें इसका प्रसार उन सामाजिक समूहोंके प्रति हो जाता है जिनके साथ वह अपना तदात्मीकरण करता है (६)।

फ़ायड और ऐडलर इस बातमें एकमत हैं कि व्यक्तिके जीवनमें उसके मुख्य कार्य-भाग को समझनेके लिए बहुत प्रारम्भिक वर्षोंकी पारिवारिक परिस्थितियोंके विषयमें जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। वे यह मानते हैं कि घर से बाहर के सामाजिक प्रभावोंका बच्चे और युवकके व्यक्तित्व पर कोई असर नहीं पड़ता, लेकिन उनका यह दृष्टिकोण एकांगी है। वे यह मानते हैं कि शैशवके बाद पड़नेवाले प्रभाव हल्के होते हैं और व्यक्तित्वकी तह तक नहीं पहुंचते। उनका विश्वास है कि व्यक्तित्वके मूल लक्षणोंकी जड़ शैशवावस्था में ही जम जाती है। फ़ायड और ऐडलर ने जो निष्कर्ष निकाले हैं, वे मानसिक विकृतिके वयस्क रोगियोंका निरीक्षण करके निकाले गये हैं, इसलिए उनको हम प्रामाणिक नहीं मानसकते, क्योंकि इन मानसिक रोगियोंके व्यक्तित्वका सम्यक् विकास नहीं हुआ रहता। हम विश्वास कर सकते हैं कि अधिकांश व्यक्ति अधिक लचीले होते हैं और बचपनमें वे स्कूल और खेलके मैदानके प्रभावोंको तथा वयस्क होने पर विस्तृत सामाजिक समूहके प्रभावोंको ग्रहण करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि विकासकी प्रक्रिया, निरन्तर चलती रहती है, शैशव और प्रौढ़ावस्था में कोई विच्छिन्नता नहीं होती; फिर भी जैसे-जैसे बच्चा सामूहिक जीवनके विभिन्न कार्योंमें भाग लेने लगता है, उसकी अभिवृत्तियों और जीवनकी शैलीमें गम्भीर परिवर्तन होसकते हैं।

गिरोह में बच्चेका कार्य-भाग. खिलाड़ियोंके समूहका अध्ययन सामाजिक मनोविज्ञानमें और व्यक्तिके व्यक्तित्वके विकास-क्रम का अध्ययन करनेके लिए महत्त्व रखता है। घरके वातावरणका व्यक्तित्वके लक्षणोंको निर्धारित करनेमें बड़ा महत्त्व होता है, फिर भी बच्चा बहुधा खेलके अपने साथियोंमें विशेष रुचि लेता है और घरकी परिस्थितिकी अपेक्षा अपने साथियोंके बीच वह अपना कार्य-भाग खोज लेता है तथा अपनी नियमावली निर्धारित कर लेता है। अपने साथियोंके साथ रहकर वह परनिर्भरता की भावना को दूर भगा देता है और अपने प्रिय साहसपूर्ण कार्योंके लिए अवसर पाता है। उसके साहसपूर्ण कार्य ग़ैरक़ानूनी होंगे या नहीं, यह बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि उसे कैसी सुविधाएं मिलती हैं और उसके पड़ोसका मानदंड कैसा है। लड़कोंके गुटमें नियमित सदस्यों और पिछलग्गुओंके अलावा दलका एक नेता और अन्तरंग गोष्ठी भी होती है। दलके कार्योंसे एक ढांचा तैयार हो जाता है, जिसके भीतर लड़के को अपना स्थान प्राप्त होता है। दलमें एक लड़का तो दलका 'मस्तिष्क' होसकता है, एक साहसमें दैत्यकी तरह, और एक विदूषक होसकता है। एक लड़का ऐसा होसकता है जो सबकी सेवा-सुश्रूषा करके ही खुश रहता हो। दलके महत्त्वपूर्ण कार्य-भाग तो प्रतियोगिता के द्वारा ही प्राप्त किये जासकते हैं। लड़ाकू दलों या डकैतोंके गिरोहके नेता को व्यवहारतः सबसे अच्छा लड़ाका बनकर अपनी नेतृत्व-योग्यता को दिखाना पड़ता है। कुछ व्यक्तिगत गुण भी, जैसे उदारता, प्रमुख कार्य-भाग प्राप्त करनेमें सहायक होते हैं। हर लड़केको बेसमझे-बूझे कार्य नहीं सौंपे जाते, बल्कि प्रायः उसमें उपस्थित चारित्रिक विशेषताओंके द्वारा ही उसको दिये जानेवाले कार्योंका निर्धारण होता है। इसलिए हम यह नहीं कह सकते कि कार्य-भाग से लड़के के व्यक्तित्वका निर्माण होता है, यद्यपि यह ठीक है कि जिस लड़के को मनोनुकूल कार्य मिल जाता है, वह उसके अनुसार अपने व्यक्तित्वका विकास कर लेता है (३०,३४)।

लड़कोंके कई गिरोह ग़ैरक़ानूनी होते हैं और उनमें ऐसे लड़के ही सम्मिलित होते हैं जिनपर कई बार मुक़दमे चल चुके होते हैं, और इनको हम «बाल-अपराधियों» और गुप्त अपराधियोंके वर्गमें रख सकते हैं। प्रश्न उठता है कि इन

[1] conscience [2] identification

अपराधियोंकी बुद्धि कैसी होती है? बुद्धि-परीक्षाओं का आविष्कार होनेके बादसे इस प्रश्न पर बहुत ध्यान दिया गया है। शुरू-शुरू के अध्ययनोंसे पता चला कि अधिकतर अपराधी और बदमाश हीन-बुद्धि के होते हैं, किन्तु परीक्षाओंमें सुधार होनेके बाद भिन्न तरहके परिणाम निकले हैं। अब पता चलता है कि अपराधियोंकी बहुत थोड़ी संख्या हीन-बुद्धि होती है। कुछ औसत स्तरके होते हैं और कुछ औसतसे थोड़ा ऊपर, किन्तु ८०-९० की बुद्धि-लब्धि आमतौरसे पायी जाती है। कुल मिलाकर, बाल-अपराधियों की बुद्धि औसतसे नीचे होती है; वे भाषा-सम्बन्धी परीक्षाओंके बजाय कृति-परीक्षाओं तथा यांत्रिक प्रवणता-परीक्षाओं में अच्छे साबित होते हैं। ऐसे लड़कोंका स्कूलमें मन नहीं लगता और आसानीसे उनको स्कूलसे फ़रार रहनेकी आदत पड़ जाती है। आगे चलकर ये अपराधीकी ओर झुकने लगते हैं। सम्भव है कि यदि इन बच्चोंको बुनियादी तालीम दी जाय, अर्थात् स्कूलमें ही उनको हाथके काम और आर्थिक लाभ के कार्य सिखाये जायें, तो उनका चित्त स्कूलसे न उचटे और वे अपराधी न बनें (५, २५, ३३)।

«किशोरावस्था» में, व्यक्तित्वमें जो परिवर्तन होते हैं, उनके विषयमें हमें और अधिक ज्ञान होना चाहिए। पहिले जो अध्ययन किये गये हैं, उनके आधार पर हमें ज्ञात होता है कि किशोरावस्था के प्रारम्भमें पहुंचने पर उससे पहिले अधिकतर खेलोंमें दिलचस्पी लेनेवाले बच्चे-बच्चियां एकाएक नाच-गान तथा अपनेसे भिन्न लिंग वालेकी ओर आकर्षित होने लगते हैं। यह परिवर्तन लड़कोंकी अपेक्षा लड़कियोंमें दो वर्ष पहले होता है। इसका कारण लड़कियोंका शीघ्र वयस्कता की ओर बढ़ना है। इसलिए हम रुझानके इस परिवर्तनके मूलमें शारीरिक कारणोंको मानसकते हैं। इस कालमें किशोरोंकी रुचि बचपन के कुछ प्रिय खेलों, जैसे गोलीके खेल, पतंग उड़ाना, लट्टू नचाना आदिसे हट जाती है। कुछ अन्य कार्य, जैसे गाय चराना और सरकसका खेल सीखना आदि, जिनको करने की उमंग उनको बचपनमें रहती है, अब अरुचिकर जान पड़ते हैं (१०, २१)। लोगोंका ऐसा ख्याल है कि किशोरावस्था का काल मनुष्यके जीवनमें बहुत तूफ़ानी और उपद्रवी होता है, किन्तु ऐसा सदैव नहीं—हमारी संस्कृतिमें तथा संसारकी कुछ अन्य स्वतंत्र संस्कृतियोंमें तो बिल्कुल नहीं—पाया जाता (२४)। किशोरावस्था में बचपनसे होते चले आनेवाले विकास की रफ़्तार बढ़ जाती है। संसारके कार्यों तथा सामाजिक जीवनमें किशोर अपना अलग स्थान बनाने और अपना कार्य-भाग खोजनेमें अधिक तत्पर दीखता है (३५)।

वयस्कोंके कार्य-भाग[1]. कोई लड़का जो अपने स्कूलमें नेता रहता है, यह आशा करता है कि वह कॉलेजमें भी नेता बना रहेगा, किन्तु कॉलेजमें उसकी प्रतियोगिता उन लड़कोंसे हो सकती है जो अपने-अपने स्कूलोंमें नेता रहे हों। युवक वयस्क के सामने ऐसी ही परिस्थिति उस समय भी आ सकती है जब वह किसी प्रौढ़ोंकी पाठशाला या व्यावसायिक समूहका सदस्य बनता है। वहां उसका ऐसे व्यक्तियोंसे पाला पड़ता है जो भले ही नेता बननेकी अभिलाषा न रखते हों, परन्तु धौंस किसी की भी बर्दाश्त नहीं कर सकते। किसी भी विशाल संस्था में व्यवस्थापक का कार्य महत्त्वपूर्ण होता है, किन्तु कर्मचारीगण सदा उसके प्रबन्धकी आलोचना करते रहते हैं। कई व्यक्तियोंके लिए किसी के नीचे कार्य करना बड़ा कठिन होता है। इस कठिनाईसे पार पानेका कोई रास्ता अभी तक नहीं निकल सका है, किन्तु अधीनस्थ कर्मचारीको उत्तर-दायित्व और कुछ मामलोंमें क्या करना है, इसका स्वयं निर्णय कर लेनेका अधिकार देकर इस कठिनाईको अंशतः दूर किया जा सकता है। विभिन्न योग्यताओं और निजी लक्षणों तथा रुचियोंकी व्यक्तिगत भिन्नताओं के मनोविज्ञानका अधिक उपयोग इस कठिनाईको हल करनेमें करना चाहिए।

व्यक्तित्व को विकसित करना

यह एक बड़ा विषय है। ऐसे प्रश्नोंका, जैसे सहानुभूति और स्पष्टवादिता जैसे गुणोंका, कैसे विकास किया जाय, या अत्य-धिक मानसिक तनावकी आदतको या अति-संवेदनशीलता को कैसे दूर किया जाय, हमारे पास कोई वैज्ञानिक उत्तर नहीं है। इस सम्बन्ध में सामान्य नियम और सूत्र गढ़ना खतरेसे खाली नहीं है, क्योंकि जो लोग अक्षरशः उन नियमों पर चलने लगते हैं, सम्भव है, उनका अधिक लाभ उससे विपरीत चलनेसे होसके। उदाहरणके लिए, स्पष्टवादिता एक अच्छा गुण है और अपने मित्रके किसी अशोभन कार्यके प्रति समय-समय पर विनम्र स्पष्टवादितासे काम लेकर आप उस मानसिक घुटनसे बच सकते हैं जो एक दिन भड़क कर गम्भीर झगड़ेका रूप ले लेती है। किन्तु जो आदमी इस नियम पर लकीरका फ़क़ीर बनकर चलने लगेगा, वह या तो हमेशा टोक कर अपने मित्रको चिढ़ा देगा, या उसकी मित्रता खो बैठेगा। कतिपय व्यक्तियों और कुछ परिस्थितियोंमें 'स्पष्ट-वादी बनो' से अधिक कारगर 'गम खाओ और सहो' वाला नियम होता है।

साधारणतया ऐसा होता है कि व्यक्ति जब यह महसूस करने लगता है कि उसके व्यक्तित्वमें कुछ परिवर्तन होने आवश्यक हैं, तब तक उसका व्यक्तित्व निखरकर एक स्थायी स्वरूप ग्रहण कर चुकता है। तथापि यदि व्यक्ति लगनशील हो और उसमें

[1] adult roles

अपने स्वभावगुणोंका स्पष्ट रूपसे सामना करनेकी हिम्मत हो, तो वह अपने व्यक्तित्वमें काफ़ी सुधार करसकता है। सबसे आसान होता है समाजमें किये जानेवाले व्यवहार के तरीकेमें सुधार करना। इसके लिए 'शिष्ट आचरण'[1] पर कोई अच्छी पुस्तक पढ़कर तदनुसार चलना पर्याप्त होगा। अपने समूहके सफल व्यक्तियोंके आचरणका निरीक्षण करके भी व्यक्ति यह समझ सकता है कि किस तरहके आचरणको वह समूह उपयुक्त मानता है। यदि व्यक्तित्व-सुधारका यह प्रयास अतिरंजित रूपमें किया जाय, तो इसको 'सामाजिक आरोहण'[2] कहा जाने लगता है। अपेक्षाकृत अधिक मौलिक लक्षणों, जैसे आत्मविश्वास और शासनप्रियता, को प्राप्त करना इतना आसान नहीं होता।

शासनप्रियता और अधीनता ऐसे दो लक्षण हैं, जिनका अत्यधिक विकास ठीक नहीं रहता। जो आदमी सदा दूसरों पर धाक जमानेके फ़िराकमें ही रहता है और कभी किसी के नेतृत्वमें नहीं चलता, वह बड़ा बुरा साथी सिद्ध होता है। इसी प्रकार वह आदमी भी अच्छा साथी नहीं साबित होता जो कभी नेतृत्व नहीं ग्रहण करता और अधिकारोंकी प्राप्तिके लिए डटकर मोर्चा नहीं लेता। ये दोनों परस्पर विरोधी लक्षण कैसे विकसित होते हैं? एक बार कॉलेजकी लड़कियोंका अध्ययन करके यह मालूम किया गया कि अधिकांश दबंग लड़कियां बचपनमें बहुत स्वतंत्रता का उपभोग कर चुकी थीं और अच्छा बनने या प्रशंसा प्राप्त करनेके बजाय उन्होंने अपनी उपलब्धिमें सन्तोष पानेका प्रयत्न किया था (७)। हम निश्चयपूर्वक यह नहीं कहसकते कि इसके लिए उनकी पारिवारिक परिस्थिति पूर्णतया उत्तरदायी थी, क्यों कुछ बच्चे अन्य बच्चोंकी अपेक्षा स्वतंत्रता और सक्रिय उपलब्धि पर स्वतः अधिक ज़ोर देते हैं।

शासनप्रियता सिखानेका एक प्रयोग. इस प्रयोगमें नर्सरी स्कूलों (शिशु-शालाओं) के बच्चोंको विषय बनाया गया था। सम्भवतः ये बच्चे व्यक्तित्वके लक्षणोंमें परिवर्तन करने के प्रयोगोंके लिए सबसे अच्छे विषय होते हैं, क्योंकि बड़ी आयु वाले बच्चोंकी अपेक्षा इनमें आत्मचेतनता कम होती है। चार वर्षकी अवस्था वाले बच्चोंकी कक्षाके सबसे शर्मीले तथा कम से कम शासनप्रिय बच्चोंको कुछ प्रशिक्षण देकर यह देखा गया कि बादमें उनकी शासनप्रियता का प्राप्तांक काफ़ी बढ़ गया। इस प्रयोगमें एक बार प्रशिक्षण देनेके पहले परीक्षा ली गयी, एक बार प्रशिक्षण-कालमें ली गयी और फिर प्रशिक्षण समाप्त होने पर प्रशिक्षणके पूर्व ली गयी परीक्षामें हर लड़के को एक दूसरे लड़के के साथ बालूके सन्दूकमें खेलने को कहा गया। जब बच्चे क्रीड़ारत थे, प्रयोगकर्ता परदेके पीछे छिपकर बच्चेके प्रयत्नोंका निरीक्षण करता जा रहा था। वह देखता था कि बच्चेने खेलकी वस्तुओंको प्राप्त करनेके लिए शब्दोंका या बल-प्रयोग का सहारा लिया या नहीं, दूसरे बच्चेका नेतृत्व करने और उसको आदेश देनेका उसने क्या प्रयास किया, इन प्रयत्नोंमें वह कहां तक सफल रहा और अपने साथीकी आवश्यकताओंका उसने किस हद तक ख्याल रखा आदि। पूर्व परीक्षाओंमें जिन शिशुओंने बहुत कम अंक पाये, उनको प्रयोगकर्ताने खेलकी कुछ ख़ास वस्तुओं, जैसे कुछ लकड़ी के टुकड़ोंसे आकृतियां बनाना, टेढ़ी-मेढ़ी पहेलियां बूझना, या किसी चित्रोंकी पुस्तककी कहानियां कहना, आदिमें दक्ष बना दिया। इसके बाद प्रशिक्षण पाये हुए बच्चेको ये खेल खेलनेके लिए एक दूसरे बच्चेके साथ रख दिया गया। प्रशिक्षण-प्राप्त बच्चेके पक्षमें यह बात थी कि उसका साथी प्रशिक्षण नहीं पाये था। उसने इस सुविधाका लाभ उठाया और एक शिक्षक की तरह अपने साथीको सारी बातें समझाने लगा। इस तरहका थोड़ा-सा अनुभव हो जानेके बाद प्रशिक्षण-प्राप्त बच्चेकी पुनः परीक्षा ली गयी जो पूर्व परीक्षासे भिन्न नहीं थी। इस परीक्षाके प्राप्तांकसे देखा गया कि शासनप्रियता उसमें पहलेकी अपेक्षा बढ़ी हुई है। नियामक परीक्षाओं[1] से यह भी मालूम कर लिया गया कि प्राप्तांकोंके इस अन्तरका कारण परीक्षाओंके बीचकी अवधिमें बच्चेकी आयुका कुछ सप्ताह बढ़ जाना न था (१६, २६)।

इसी तरहका एक दूसरा प्रयोग किया गया। किसी समस्या को सुलझानेमें जिन बच्चोंने बहुत कम आत्मविश्वास दिखाया, उनको स्वतंत्र कार्यके ऊंचे स्तर तक लानेके लिए पहले तो सरल समस्याएं हल करनेको दी गयीं और बादमें क्रमशः कठिन समस्याएं दी जाने लगीं—ऐसा करनेमें उनको सदा प्रोत्साहन दिया गया, किन्तु वास्तविक सहायता कभी न दी गयी (१८)। बहुत कुछ इसी प्रकारका प्रयोग कुछ समय पूर्व सैनिकों पर किया गया, जो कुछ समय तक घायल होनेके कारण अपनी भुजा नहीं उठा सकते थे। एक छोटे यंत्रकी सहायतासे उनकी भुजाको इस प्रकार सशक्त बनाया जा सका। यंत्रसे पता चल जाता था कि भुजा वास्तवमें कितनी ऊंची उठी। पहले तो उनकी भुजा बहुत कम उठती थी, परन्तु चूंकि यंत्रसे चिह्न मालूम हो जाता था, इसलिए सैनिकों ने नित्य-प्रति पिछले दिनके चिह्नसे ऊपर भुजा उठानेकी चेष्टाकी और अन्ततः वे पूरी भुजा उठानेमें सफल रहे। मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालामें किये हुए कई प्रयोगोंसे मालूम हुआ है कि अपनी उपलब्धिके ज्ञानसे व्यक्तिके अन्दर आत्मविश्वासकी वृद्धि होती है और आगे प्रयत्न करनेके लिए प्रेरणा मिलती है।

व्यक्तित्व की उलझनों की चिकित्सा. कौन-सी बात

[1] etiquette [2] social climbing [1] control tests

अपेक्षाकृत बुरी है—आत्मविश्वासका अभाव या अपने अतिरिक्त किसी व्यक्तिमें विश्वास ही न रखना ? सबसे बुरी बात तो यह है कि व्यक्ति न स्वयं में विश्वास करे, न दूसरों में। यही बात कुछ बुरी तरह अस्त-व्यस्त व्यक्तियोंमें पायी जाती है। 'चिकित्सा' की दिशामें बहुधा पहिला चरण यह होता है कि किसी योग्य परामर्शदाताके प्रति 'रोगी' में विश्वास पैदा किया जाय। मानसिक स्वास्थ्य-विशेषज्ञ किसी विषमायोजित बच्चेकी चिकित्सा करते हुए, पहिला काम यह करता है कि वह बच्चेके दृष्टिकोणसे उसकी कठिनाईको समझकर उस का विश्वास प्राप्त करता है और बादमें उसके सुधारके किसी आशाजनक कार्यक्रममें उसका सहयोग प्राप्त करता है। चिकित्सा की सफलता के लिए खास चीज यह है कि बच्चेके साथ-साथ चिकित्सक भी आशावादी हो। बहुधा माता-पिता का सहयोग और बच्चेके प्रति उनका आशापूर्ण रुख भी चिकित्सा को सफल बनानेके लिए आवश्यक होते हैं।

जैसाकि चोरी या सुधरनेके अयोग्य होनेकी दशाओंमें होता है। जब बच्चेके व्यक्तित्वकी उलझन समाजके साथ संघर्ष उत्पन्न कर देती है, तब उसके घरेलू वातावरणको बदलना आवश्यक होसकता है। बहुत सम्भव है कि बच्चे और उसके परिवारके सदस्योंमें विरोध उत्पन्न हो गया हो जिसको दूर न किया जासकता हो, और यदि ऐसी स्थितिमें उसको पुनः अपने पुराने वातावरणमें रख दिया जाय तो वह अपनी पहिले की उलझनमें पहुंच जायगा। इसलिए बच्चेको उसके किसी आत्मीयके घर रख दिया जाता है, परन्तु इसके पूर्व बच्चे और उस घर, दोनोंका निरीक्षण करके आश्वस्त हो लिया जाता है कि वहां उसका मेल बैठ ही जायगा। इस प्रकार रखे हुए बच्चोंकी स्थितिका काफ़ी समय तक निरीक्षण करने से पता चला है कि अधिकांश बच्चे (लगभग ९० प्रतिशत) स्वस्थ होगये। जो नहीं स्वस्थ हुए, उनमें वे बच्चे थे जिनके व्यक्तित्वमें प्रारम्भसे ही स्पष्टतया असाधारण प्रवृत्तियां दिखाई देने लगी थीं। अनुकूल घरेलू वातावरणके प्रभावके कारण बच्चेकी चोरी करने, झूठ बोलने, स्कूलसे फ़रार रहने आदिकी आदतें छूट गयीं, यद्यपि एक साथ ही नहीं, धीरे-धीरे; और भीरुता, चिड़चिड़ाहट तथा अविश्वासकी आदत भी जाती रही। अपरिपक्वावस्था में उत्पन्न यौन-रुचि भी नष्ट होगयी। इतना सब होते हुए भी, बच्चे वही बच्चे रहे। जो अतिक्रियाशील[१] थे, वे अतिक्रियाशील ही रहे, हालांकि पहिलेसे कम विघ्नकारी रूपमें; और जो आरामपसन्द थे, वे अपने व्यवहारमें परिवर्तनके बावजूद पहिलेके समान आरामपसन्द ही रहे। संक्षेपमें, बच्चेके शरीरके जैविक और स्वभाव-सम्बन्धी[२] तत्व परिवर्तित वातावरणमें भी सक्रिय बने रहे (१२)।

जो व्यक्ति अपने बाह्य व्यवहारमें अत्यधिक दबंग और साहसी होते हैं, वे सदैव अन्तरमें सबसे अधिक आत्म-विश्वास वाले नहीं होते। बहुत सम्भव है कि वे अपने ऊपरी व्यवहार में आन्तरिक अविश्वास और अरक्षा की भावना की कमी पूरी कर रहे हों। हो सकता है कि वे अपने 'स्व' और अपने परिवेशके बीच विभेदकी गहरी रेखा खींचकर रहते हों, इसीलिए वे समूहके कार्योंमें पूरे मनसे भाग नहीं ले पाते (१३)।

हम इस तरहकी सामान्य समस्याओं पर बारहवें प्रकरण में विचार करेंगे।

व्यक्ति में आन्तरिक और बाह्य तत्वोंकी परस्पर क्रिया

ऊपरके विवेचनसे दो बातें स्पष्ट हुईं : व्यक्तित्वके निर्माणमें अन्तरासर्गी ग्रन्थियां तथा अन्य जैविक तत्व भाग लेते हैं; और सामूहिक नियमावली, पारिवारिक परिस्थिति तथा समूहमें व्यक्तिका कार्य-भाग आदि परिवेशसे सम्बन्ध रखनेवाले तत्व भी उसके निर्माणमें हाथ बटाते हैं। क्या हम सामाजिक तत्वोंको ही एकमात्र प्रभावकारी समझकर जैविक तत्वों को हटा दें, या इससे उल्टी बात मान लें ? हम को इन दोनों तरहके तत्वोंका महत्व स्वीकार करते हुए इस बात पर जोर देना चाहिए कि इन तत्वोंके योगका नाम व्यक्तित्व नहीं है, बल्कि व्यक्तित्व दोनों तत्वोंकी परस्पर-क्रिया की उपज है। व्यक्तिको रांगेकी तरह सांचेमें नहीं ढाला जा सकता, परिवेशसे प्रेरणा पाकर वह क्रियाशील बनता है और अपनी चेष्टाओंके द्वारा ही उसका विकास होता है। किसी क्षणमें उसका व्यवहार परिवेशसे प्राप्त उत्तेजना पर और उसके शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक स्वभाव-गुणों पर निर्भर करता है। तात्पर्य यह कि वह आन्तरिक और बाह्य दोनों तत्वों पर निर्भर रहता है।

दो व्यक्तियोंको यदि एक ही कार्य करनेको दिया जाय, तो वे भिन्न तरीक़ोंसे उसे करेंगे, क्योंकि उनकी आन्तरिक बनावट भिन्न है। वे एक ही परिणाम पर पहुंच सकते हैं, किन्तु अपनी व्यक्तिगत विशेषताओंके अनुसार उनकी पद्धति अलग-अलग होगी। उदाहरणस्वरूप दो नेताओं को लीजिए। दोनों ही नेता प्रभावशाली हो सकते हैं, किन्तु नेतृत्व का उनका तरीका भिन्न होगा। एक ओजपूर्ण हो सकता है, तो दूसरा सौम्य। दो भिन्न प्रकृतिके व्यक्तियोंको यदि एक-सा कार्य-

[१] over-active [२] temperamental

क्षेत्र दिया जाय, तो भी वे अपना विकास भिन्न रूपमें करेंगे, क्योंकि उनकी प्रवृत्तियां उन्हें भिन्न प्रकारसे काम करनेको बाध्य करती हैं। किन्तु यह भी सही है कि यदि दो समान प्रकृति के व्यक्तियोंको दो भिन्न कार्य-क्षेत्र दिये जायं, तो उनका विकास भिन्न प्रकारसे होगा, क्योंकि कार्यों की विभिन्नता का यही तक़ाज़ा है। चूंकि छोटे बच्चोंके साथ भी यही बात देखनेमें आती है, इसलिए हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि जीवनके प्रारम्भसे लेकर, सम्भवतः जीवनके अन्त तक आन्तरिक और बाह्य तत्वोंकी परस्परक्रिया चलती रहती है। एक दूसरी बात भी विचारणीय है। व्यक्ति एक समूहसे दूसरे समूहमें आता-जाता रहता है—बच्चोंके गिरोह और घर, कक्षा और फ़ुटबॉल टीम, इन सभी समूहोंमें उसका आना-जाना बना रहता है और इन सबमें उसका कार्य-भाग रहता है, परन्तु वह भिन्न समूहोंमें भिन्न प्रकारसे कार्य करता है। यदि व्यक्तित्व व्यक्तिके कार्य-भाग पर ही पूर्णरूपेण निर्भर होता, तो अनेक प्रकारके कार्य-भागोंके कारण व्यक्तित्व भी विविध होता। फिर भी हममें से अधिकांश व्यक्ति, जो दो या दोसे अधिक कार्य-भाग अपनाते हैं, विच्छिन्न व्यक्तित्वके नहीं होते। वास्तवमें व्यक्तित्वमें अनेकता इस कारण उत्पन्न होती है कि व्यक्ति सामान्यतया अपने हिस्सेके बहुविध कार्य-क्षेत्रों में अपना भाग अदा करनेसे «इन्कार कर देता है»। वह केवल गम्भीर और त्यागी व्यक्तिकी भांति काम करता है; वह न सामान्य व्यक्तिकी तरह उत्साही होता है और न उसकी तरह खुशमिज़ाज ही। लेकिन इससे उसका पिंड नहीं छूटता। साधारण स्थितिमें जिन कार्य-क्षेत्रों में उसने अपना भाग अदा करनेसे इन्कार कर दिया था, विशिष्ट मनोदशाओंमें उन्हीं कार्य-क्षेत्रोंमें उसे काम करना पड़ता है, परन्तु इन मनोदशाओंमें वह अपनी इच्छाके विरुद्ध पहुंच जाता है। जरा इस व्यक्तिसे उस सामान्य व्यक्तिकी तुलना कीजिए जो मन पर बिना कोई बोझ लादे एक कार्य-भागसे दूसरे कार्य-भागमें आसानीसे गुज़रता रहता है और इस दौरान में वह अपने व्यक्तित्व की एकता एवं अविच्छिन्नता भी बनाये रखता है। निश्चय ही, यह एकता और अविच्छिन्नता परिवेश की देन नहीं है, प्रत्युत वे इस तथ्य की उपज हैं कि प्राणी स्वयमेव एक इकाई है।

व्यक्तित्व की अविच्छिन्नताके प्रमाणमें एक व्यक्तिके जीवन का उदाहरण. स्नायविक विकृतिके रोगियों[१], अपराधियों, ऐसे बालकों जिनका सुधार एक समस्या बना हुआ है तथा ऐसे ही अन्य व्यक्तियों के रोगोंके विवरणोंका अध्ययन करनेसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि व्यक्ति निरन्तर विकास करते रहने और नये-नये परिवेशों के सम्पर्कमें आते रहने के बावजूद भी बहुत कुछ वही बना रहता है। कुछ लोग इस अविच्छिन्नता की आशा महान् पुरुषोंकी जीवन-कथाओं में भी करते हैं, किन्तु वे भूल जाते हैं कि निर्माणात्मक[२] वर्षोंके वृत्तान्त इन जीवनियोंमें बहुत कम रहते हैं। अमेरिकन हास्य-लेखक सैम्युएल लैंघर्न क्लीमेन्स[३], जो मार्क ट्वेन[४] के नाम से अधिक प्रसिद्ध है, के जीवनमें आपको मनोवैज्ञानिक दिलचस्पी का अच्छा मसाला मिलेगा (२०, २७)।

मार्क ट्वेन का बचपन मिस्सीसीपी नदी पर स्थित हैनीबॉल[५] नामक एक सीमाके निकटस्थ नगर (संयुक्त राज्य अमेरिका) में बीता। उसका पिता उत्कृष्ट चरित्र और महत्त्वाकांक्षाओंका वकील था, किन्तु उसकी आय अच्छी न थी, इसलिए परिवार सदा ग़रीबीके मुंहमें रहता था। उसकी माता ऐसे परिवारकी बेटी थी जो आशावादी तथा उन्नतिशील था। वह स्वयं बहुत स्फूर्तिमय, साहसी तथा स्पष्टवक्ता थी। वह इस तरह रुक-रुक कर बोलती थी, जो बड़ा अच्छा लगता था। उसको हंसीकी बातें कहनेकी ऐसी कला मालूम थी कि जैसे वह स्वयं न जानती हो कि वह कोई हँसीकी बात कह रही है, और सुननेवाले हँसते-हँसते लोट-पोट होजाते थे। मार्क ट्वेन में अपनी मां के ये सभी गुण आ गये थे। एक बार एक पड़ोसी ने उसकी मां से पूछा कि क्या वह अपने लड़केके साहसी कारनामोंकी विचित्र कहानियों पर विश्वास करती है? उसकी मां ने उत्तर दिया—'बेशक, मुझे उसका अन्दाज़ है। मैं उसकी बातोंको ९० प्रतिशत छूट दे देती हूं। शेष १० प्रतिशत खरा सोना है'। अपने पिता के सात बच्चोंमें से मार्क या सैम का नम्बर छठा था। उसकी देख-भाल अधिकतर हब्शी ग़ुलामों द्वारा हुई थी जिनकी कही हुई कहानियोंका वह बहुत शौकीन था। हब्शी जातिके लिए उसके हृदयमें कोमल स्थान था। उसकी रचनाओंमें पद-दलित व्यक्तियोंके लिए बड़ी सहानुभूति मिलती है। बचपनमें वह लड़कोंके एक गिरोहका नेता था। इस दलका काम था जंगलों में घूमना, नदियोंमें तैरना और 'मांगी हुई' नावोंमें बैठकर उन्हें पार करना। उसके पास साहसपूर्ण योजनाओं और व्यावहारिक दिल्लगियोंका ख़ज़ाना था और जब वह धीमे-धीमे रुक-रुक कर अपनी बातें कहता तो उसके चारों ओर उत्सुक श्रोताओंकी भीड़ जमा होजाती थी। उसके दलका एक लड़का हक्लबरी (हक्लबरी फ़िन नामक उपन्यासका असली पात्र) उसीके कस्बेके एक पियक्कड़का पुत्र था। वह इतना उपेक्षित था कि सम्भ्रान्त परिवारके लड़कोंको उसका साथ करनेसे मना किया जाता था। किन्तु मार्क ने उसके साथ दोस्ती की। मार्कको स्कूल जाना पसन्द न था और जब वह ग्यारह वर्षका था, तभी उसके पिता का देहान्त होगया। इसलिए उसकी माता ने उसको एक स्थानीय मुद्रणालय (प्रेस) में नौकरी करनेकी अनुमति

[१] neurotics　[२] formative　[३] Samuel Langhorne Clemens　[४] Mark Twain　[५] Hannibal

दे दी। थोड़े समयमें ही वह एक अच्छा कम्पोजिटर बन गया। सत्रह वर्षकी अवस्थामें उसने घर छोड़ दिया और कई नगरों में काम करता फिरा। एक बार एक स्टीमरमें यात्रा करते समय उसने नाविक बननेकी ठान ली—यह उसके बचपनकी चिरपोषित अभिलाषा थी। उसने नाविकका पेशा भी सीख

आकृति २३ और २४. मार्क ट्वेन युवावस्था में और प्रौढ़ावस्था में।

This is a story

लिया और सेंट लुई तथा न्यू आर्लियंसके बीच उसने कई बार स्टीमर चलाया। यह पेशा कई वर्ष तक चलता रहा। बादमें गृहयुद्ध छिड़ जानेके कारण जब नदीका यातायात बन्द होगया, तब उसने यह पेशा छोड़ दिया। उसके कुछ समय बाद ही हम उसको नेवादा नगरमें देखते हैं। इस समय चांदीका बाजार चढ़ाव पर था, फलत: उसने कुछ महीनों बड़ी उम्मीदोंके साथ खान खोदनेका व्यवसाय परखा, किन्तु जल्दी ही यह काम छोड़ कर वह उसी क्षेत्रके एक अग्रणी समाचार पत्रका रिपोर्टर बन गया। (उसने अपनी युवावस्थामें समय-समय पर कुछ स्केच[1] लिखे थे)। कुछ वर्षोंके बाद वह समाचारपत्रका संवाददाता बनकर यात्राएं करने लगा और इस दौरानमें उसने भाषणकर्ता के रूपमें भी अपनी आजमाइशकी। पहिले भी, उसने एक-दो बार दावतोंके बाद मनोरंजक वार्ता करनेका कार्य किया था और उसमें उसको अच्छी सफलता मिली थी। जब वह अपने खास लहजेसे बातें करना शुरू करता, तब लोग मंत्रमुग्धसे उसकी ओर देखते रहते थे। उसने अपनी इनोसेंट ऐब्रॉड[2] नामक पुस्तकमें यात्राकी अवधिमें लिखे कुछ दिलचस्प पत्रोंका संग्राह किया है। इस पुस्तकका जनता में जो स्वागत हुआ, उससे न केवल उसे आर्थिक लाभ हुआ, बल्कि लेखक का पेशा स्थायी रूपसे अपनानेकी प्रेरणा भी मिली। उसको, अपने मनकी पत्नी भी मिल गयी। वह अपने बच्चोंको बहुत प्यार करता था। उसकी पत्नी उसकी रचनाओंमें संशोधन करती थी और शिष्टता की सीमा से, जिसका उल्लंघन करनेकी प्रवृत्ति मार्कमें पायी जाती थी, उसे बाहर न जाने देती थी। उसने जो अनेक प्रशंसनीय पुस्तकें और स्केच प्रकाशित कराये, उनके अतिरिक्त कई अप्रकाशित ही रह गये, क्योंकि उसकी पत्नी ने उनको प्रकाशित करानेसे मना कर दिया था। उसकी कई पुस्तकें इसी कारण अधूरी ही रह गयीं। उसकी सदासे इच्छा थी कि एक अच्छी टाइप कम्पोज करने वाली मशीनका आविष्कार किया जाये। इस कार्यमें उसने अपना बहुत-सा धन लगा दिया और एक प्रकाशन संस्था का भागीदार बन गया। परन्तु यह संस्था कुछ दिनों तक बहुत जोरशोरसे चलनेके बाद अचानक दिवालिया हो गयी। मार्कको लगभग ६० वर्षकी अवस्था में संस्थाके असफल हो जानेके कारण हो गये ऋण को चुकानेके लिए व्याख्यानदाता का पेशा फिरसे अपनाना पड़ा। अपने जीवनमें, उसे समय-समय पर कई निराशाओं और दु:खोंका सामना करना पड़ा, उसने उनको गम्भीरतासे महसूस भी किया, किन्तु अन्तमें वह उनपर विजयी रहा और परिस्थितियोंकी विडम्बनाके सामने उसने घुटने नहीं टेके। of Mark Twain

मार्क ट्वेनकी रचनाओंमें एक गम्भीर उद्देश्यकी अन्तर्धारा प्रवाहित मिलती है। वह चाहता था कि पक्षपात और द्वेषका चश्मा उतार कर चीजोंको उनके यथार्थ रूपमें देखा जाये। धर्म और सार्वजनिक जीवनमें प्रचलित कई बातोंका वह तीव्र आलोचक था और इस 'अभागी मानव जाति' पर तरस खाता था। उसके विचारमें, मानव जाति पशुओंसे केवल एक बात में भिन्न है, वह है बुद्धि। अन्यथा कई बातोंमें तो वह मनुष्य को पशुसे भी गिरा हुआ बताता था। परन्तु उसकी गम्भीर बातोंमें भी उसके पाठकों और श्रोताओंको कोई मजाक छिपा लगता था और वे हँसीके मारे लोट-पोट होजाते थे। उसने अपना कार्य-क्षेत्र स्वयं बनाया था और वह उसपर स्थिर रहा। स्पष्ट है कि बचपनमें भी अपने गिरोहमें एक सदस्यकी हैसियत से उसने अपना कार्य-भाग स्वयं निश्चित किया था। निस्सन्देह उसको अपने जीवनमें विभिन्न परिस्थितियोंसे गुजरना पड़ा और विभिन्न पेशोंको अपनाना पड़ा, फिर भी उसके व्यवहार में हमें एक अविच्छिन्नता मिलती है। हम यहां उसके व्यक्तित्व के कतिपय ऐसे लक्षणोंका उल्लेख करना भी न भूलेंगे जिन का उसके जीवनमें महत्वपूर्ण स्थान था और जो जैविक तथा शारीरिक रचनासे सम्बन्धित थे। वे लक्षण थे: उसके चरित्र का लचीलापन (परिवेशसे प्रभावित होते हुए भी अपने यथार्थ रूपको कायम रखना), उसका अडिग साहस, उसकी महान् सहनशक्ति (बिना थके हुए वह सारी रात बिलियर्ड खेल सकता था), और सामने आये हुए हर अवसरका लाभ

[1] sketches [2] Innocent Abroad

उठानेकी उसकी प्रवृत्ति।

मार्क ट्वेन की उत्कृष्ट योग्यता और उसके आकर्षक व्यक्तित्वसे जैविक तथा सामाजिक तत्वोंकी परस्पर क्रिया पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है। जिस दिशामें उसने अपना विकास किया, उसका निर्धारण स्पष्टतया समाजमें उसके कार्य-भाग से हुआ, किन्तु समाज ने अपनी ओर से उसे कोई कार्य-भाग नहीं सौंपा था, क्योंकि इस व्यक्तिमें आगे बढ़कर अपना कार्य-भाग स्वयं निश्चित कर लेनेकी असाधारण क्षमता थी। उसने जैविक आधार पर रचित अपने शरीरकी शक्तिका अन्दाज करके वही कार्य अपनाये जिनका सामाजिक मूल्य था और जिनको सामाजिक स्वीकृति प्राप्त हो सकती थी। ऐसा ही उसके तुल्य जैविक रचना वाला अन्य व्यक्ति भी करता।

इस तरहका जीवन-विवरण हमें एक ऐसी समस्याके सामने ला खड़ा करता है जिसके चारों ओर हम काफ़ी समयसे चक्कर लगा रहे थे; वह समस्या है: व्यक्तित्व, बुद्धि और साधारणतया व्यवहार पर वंशानुक्रमका क्या प्रभाव पड़ता है? हम अब तक 'जैविक तत्व' के महत्वको स्वीकार करनेके लिए इच्छुक रहे हैं, परन्तु हमने किसी भी तरह यह नहीं माना है कि यह जैविक तत्व[1] वंशानुक्रम (वंश-परम्परा) से भिन्न नहीं है, बिलकुल एकरूप है।

सारांश

१. व्यक्तित्वके विकास पर जैविक और सामाजिक दोनों तत्वोंका स्पष्ट प्रभाव होता है।

(क) व्यक्तिके «शरीर की गठन»—उसका क़द, शक्ति, रूप, और शारीरिक रचना—का प्रभाव दूसरे व्यक्तियोंके प्रति उस व्यक्तिके रुख पर और उसके प्रति दूसरे व्यक्तियोंके रुख पर पड़ता है।

(ख) व्यक्तिके «शरीरके रसायन[2]» का तात्पर्य उन रासायनिक द्रव्योंसे है जो रक्तमें प्रवाहित होते हैं और मस्तिष्क तथा शरीरके अन्य अंगों पर अपना प्रभाव डालते हैं।

२. शारीरिक दशाएं मस्तिष्ककी क्रियाको प्रभावित करके उसके जरिये व्यवहार और व्यक्तित्व पर प्रभाव डालती हैं।

(क) «शामक औषधियां[3]» मस्तिष्ककी क्रियाशीलता को मन्द कर देती हैं, फलतः चेष्टाओंमें न्यूनता आ जाती है, कार्यकुशलता घट जाती है और आदमी ऊंघतासा रहता है। मदिराके कारण मस्तिष्ककी कतिपय नियंत्रणकारी शक्तियां शिथिल पड़ जाती हैं, इस लिए प्रत्यक्षतः लगता है कि उससे उत्तेजना मिली है (व्यक्ति मदिरा पीकर असंत चेष्टाएं इसीलिए करने लगता है)।

(ख) «रक्त-शर्करा की कमी» के कारण मनोदशा[4] में परिवर्तन दिखायी देती है, चिड़चिड़ापन आजाता है और कल्पित भयोंकी सृष्टि होती है।

(ग) «भोजनकी न्यून मात्रा», विशेषतया भोजनमें खाद्योज (विटामिन) 'बी' के अभावसे आलस्य, चिड़चिड़ापन और निरुत्साहकी उत्पत्ति होती है।

(घ) «बीमारियां» मस्तिष्ककी शक्तियोंको विनष्ट कर के व्यक्तित्व पर प्रत्यक्ष रूपसे और रोगीमें परावलम्बन की भावना उत्पन्न करके अप्रत्यक्ष रूपसे व्यक्तित्वको प्रभावित कर सकती हैं।

३. «अन्तरासर्गी ग्रन्थियां[5]» रक्त धारा को रासायनिक द्रव्य, न्यासर्ग प्रदान करती हैं।

(क) «गलग्रन्थि[6]» से 'गलतिग्मि[7]' नामक द्रव्य उत्पन्न होता है जो शरीरके चयापचय की प्रक्रिया[8] की गति को ठीक बनाये रखता है। विकास-कालके प्रारम्भ में यदि गलतिग्मिका अभाव होजाय तो बच्चोंको एक तरहकी बीमारी होजाती है जिसे «अजाम्बुकबाल्य[9]» कहते हैं; प्रौढ़ व्यक्तियोंमें यदि इसका अभाव होजाय, तो उन्हें «श्लेष्मस्फाय[10]» नाम रोग होजाता है।

(ख) «उपवृक्कय ग्रन्थि[11]» दो न्यासर्गों[12] का उत्पादन करती है। संवेगात्मक दशाओंमें «उपवृक्की» कई तरहसे शरीरकी आन्तरिक स्थितियोंको प्रभावित करता है। यदि त्वक्षिकी कमी हो जाये, तो निर्बलता, यौन-रुचिका विनाश, और चयापचयका मन्द पड़ना आदि लक्षण दिखाई देने लगते हैं। त्वक्षि[13] के अतिरिक्त-उत्पादन के कारण पुरुषत्व[14] में वृद्धि हो जाती है।

[1] biological factor [2] chemique [3] sedative drugs [4] mood [5] endocrine glands [6] thyroid gland [7] thyroxin [8] metabolism [9] cretinism [10] myxœdema [11] adrenal gland [12] hormones [13] cortin [14] masculinty

(ग) «प्रजन-ग्रन्थियों» से ऐसे न्यासर्ग निकलते हैं जो स्त्रियों और पुरुषोंमें गौण[1] यौन-चिह्नों (दाढ़ी-मूंछ इत्यादि) तथा यौन रुचिकी मात्राओंका विकास निर्धारित करते हैं।

(घ) «पोष-ग्रन्थि[2]» विकासकी गतिका नियमन करती है। यदि यह अतिक्रियाशील होती है, तो व्यक्तिका क़द दैत्याकार होजाता है; यदि यह न्यून क्रियाशील रहे, तो आदमीका क़द बौनों[3] की तरह रहता है।

(ङ) पोष-ग्रन्थिसे निकले हुए न्यासर्ग विभिन्न ग्रन्थियों के उदासर्गकी मात्राका नियमन करते हैं। शरीरकी सामान्य क्रियाके लिए सभी न्यासर्गों[4] में सन्तुलन रहना आवश्यक है।

(च) यद्यपि किसी भी ग्रन्थिकी चरम अतिक्रियाशीलता और न्यूनक्रियाशीलता के कारण व्यक्तित्वमें असन्दिग्ध रूपसे परिवर्तन होते हैं, तो भी यह निश्चित रूपसे ज्ञात नहीं हो सका है कि न्यासर्गोंके परिमाण में मामूली परिवर्तन होनेसे भी व्यक्तित्वमें सामान्य अन्तर उपस्थित हो जाते हैं।

४. «समूहकी नियमावली[5]» आचरणके नियमों, आचरण की रीतियों[6], नैतिक आदर्शों और लोकरीतियों[7] के समुच्चय को कहते हैं। ये नियम समूहमें व्यापक होते हैं।

(क) समूह अपने नियमोंको मनवाने पर जोर देता है, फिर भी व्यक्तिगत विचलनकी थोड़ी-सी गुंजाइश उसमें होती है।

(ख) वे व्यक्ति सामाजिक दृष्टिसे अनमेल[8] कहे जासकते हैं जो समूहके नियमोंका पालन नहीं करते। ऐसे व्यक्तियोंके व्यक्तित्वमें उलझन पैदा होनेकी सम्भावना रहती है।

(ग) बच्चे समूहके नियमोंको क्रमशः, किन्तु तेजीके साथ सीखते हैं। जो नियम पहिले दंड-भयसे बाध्य होकर माने जाते हैं, बादमें सामाजिक उपयोगिता की भावनासे उनका पालन किया जाता है।

५. प्रत्येक समूहमें भिन्न-भिन्न प्रकारके सामाजिक कार्य-भाग[9] होते हैं। व्यक्ति जो कार्य-भाग स्वीकार करता है, उस के अनुसार ही वह अपने व्यक्तित्वका विकास कर लेता है।

(क) परिवारमें बच्चेके कार्य-भाग का निर्धारण बहुत कुछ माता-पिता करते हैं। यदि माता-पिता आवश्यकतासे अधिक लाड़ प्यार और बच्चेकी अत्यधिक देख-भाल करते हैं, तो बच्चेके व्यक्तित्वमें परावलम्बनके लक्षण पैदा हो सकते हैं। दूसरी ओर, यदि माता-पिता बच्चेके प्रति लापरवाह हों, उसे प्यार न करते हों और कड़ा दंड देते हों, तो बच्चेके व्यक्तित्वमें आत्म-रक्षा की प्रवृत्ति प्रधान हो जाती है और वह विद्रोही होसकता है।

(ख) अपने गिरोहमें बच्चेका जो कार्य-भाग होता है, उस का मेल उसके परिवारके कार्य-भागसे बैठ भी सकता है और नहीं भी।

(ग) वयस्कोंके कार्य-भाग में पेशों और सामाजिक वर्गके कारण बहुत अन्तर होता है।

६. «व्यक्तित्वके विकास» का कार्य कठिन है, उसके लिए कोई स्पष्ट नियम नहीं निर्धारित किये जा सकते।

(क) प्रयोगात्मक परीक्षणोंसे पता चला है कि यदि बच्चों को ऐसे खेलों और कार्योंमें कुशल बनाया जाय, जिन को उनके समूहमें मूल्यवान् समझा जाता है, तो बच्चोंमें शासनकी प्रवृत्ति पैदा की जा सकती है।

(ख) एक भली प्रकार प्रशिक्षित मानसिक-स्वास्थ्य-विशेषज्ञ ही व्यक्तित्वकी उलझनोंकी चिकित्सा कर सकता है। कभी-कभी तो व्यक्तिकी कठिनाइयां ऐसे व्यक्तियोंके परामर्शसे हल हो जाती हैं, परन्तु कभी-कभी केवल परिवेशमें परिवर्तन करनेसे भी इन उलझनोंको दूर करनेमें मदद मिलती है।

७. व्यक्तिके विकास पर शारीरिक और सामाजिक—दोनों प्रकारके तत्वोंका प्रभाव पड़ता है। व्यक्तित्व इन तत्वों का योग[10] नहीं होता, बल्कि उनकी परस्परक्रिया[11] की उपज होता है।

[1] secondary [2] pituitary gland [3] midgets [4] hormones [5] the group code [6] manners [7] folkways [8] social misfits [9] social roles [10] sum [11] interaction

व्यक्तिगत अन्तर के कारण : वंशानुक्रम और परिवेश

यहांतक, हमने योग्यता और व्यक्तित्व सम्बन्धी भिन्नताओंका अध्ययन करते समय, कारणोंकी ओर विशेष ध्यान दिये बिना, तथ्योंकी ही जानकारी करनेकी चेष्टा की है, परन्तु अब इस विषयको समाप्त करनेके पहिले कारणोंके प्रश्न पर दृष्टिपात कर लेना उचित है।

लोग एक-दूसरे से भिन्न क्यों हैं, किन बातोंके कारण वे भिन्न लगते हैं? यदि कोई व्यक्तिगत भिन्नताओंके लिए उत्तरदायी «एक» कारणकी जानकारी करना चाहें, तो इस प्रश्नका उत्तर देना हमारे लिए असम्भव है, क्योंकि इस की तहमें एक ही कारण नहीं है। कई तत्वोंके कारण व्यक्तियों में भिन्नता होती है। पिछले प्रकरणमें हमने शारीरिक और सामाजिक तत्वोंपर विचार किया था। हमने अपने विवेचन में यह देखा कि किस तरह गलग्रन्थि (थाइरॉयड ग्लैंड) के न्यासर्ग[1] की अधिक अथवा न्यून मात्रा के कारण लोगोंके व्यक्तित्वोंमें अन्तर हो जाता है। हमने यह भी देखा कि सामाजिक समूहमें विभिन्न कार्य-भाग अपनानेके कारण व्यक्तियोंके व्यक्तित्वमें किस प्रकार विभिन्न लक्षण दिखायी देने लगते हैं। हम इस प्रश्नकी ओर पीछे धकेल सकते हैं यह जिज्ञासा उठाकर कि ग्रन्थियोंमें भिन्नता क्यों हुई और व्यक्तियों ने अलग-अलग कार्य-भाग क्यों अपनाये?

लोगोंकी भिन्नता के बहुत-से कारण वंशानुक्रम और परिवेश में खोजे जा सकते हैं। गलग्रन्थि जम्बुकी[2] की प्राप्तिके लिए परिवेश पर निर्भर करती है, और यदि उसे बहुत थोड़ी जम्बुकी मिली, तो यह लगभग निश्चित-सा है कि व्यक्तिमें गलग्रन्थि के न्यासर्गका अभाव बना ही रहेगा। परन्तु बात यहीं समाप्त नहीं हो जाती। एक ही परिवेशमें रहनेवाले व्यक्तियोंमें भी कुछ की गलग्रन्थियां औरोंकी अपेक्षा कम क्रियाशील होती हैं। लोगोंमें शुरू से ही भिन्नता होती है, अर्थात् इस और अन्य शारीरिक विशेषताओंके लिए वंशानुक्रम[3] उत्तरदायी होता है। इसलिए व्यक्तित्वकी भिन्नताओं का कोई शारीरिक कारण भी वंशानुक्रम और परिवेश—दोनोंका परिणाम हो सकता है। सामाजिक तत्वोंके मूलमें भी वंशानुक्रम और परिवेशको पाया जा सकता है। कई मामलोंमें व्यक्तियोंमें इसलिए अन्तर होता है कि एक को दूसरेकी अपेक्षा अच्छी सुविधाएं, अच्छे अवसर प्राप्त रहते हैं। यह परिवेश-सम्बन्धी तत्व है। किन्तु समान अवसर और सुविधाएं देने पर भी देखा जाता है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिकी अपेक्षा उनका अच्छा उपयोग करता है, क्योंकि अपने वंशानुक्रमके कारण यह व्यक्ति परिवेश की देन से लाभ उठानेके लिए दूसरे व्यक्तिके बजाय अधिक समर्थ रहता है।

वंशानुक्रममें वे सभी बातें आ जाती हैं जो जीवनका प्रारम्भ करते समय (जन्मके समय ही नहीं, बल्कि गर्भाधानके समय—जन्मसे लगभग ९ महीने पहले) व्यक्तिमें उपस्थित थीं; और परिवेशमें वे सभी बाहरी बातें आ जाती हैं जिन्होंने उसके बादसे उसपर प्रभाव डाला है। इससे ऐसा लगता है कि व्यक्तिके जीवन और विकास पर प्रभाव डालने वाली प्रत्येक वस्तुका समावेश वंशानुक्रम और परिवेश में हो जाना चाहिए। किन्तु वंशानुक्रम और परिवेशके तत्व ऐसे पेचीदा ढंग से घुलमिल जाते हैं और परस्परक्रिया करते हैं कि बहुधा वंशानुक्रम और परिवेशके प्रभावको अलग-अलग पहचानना असम्भव होता है।

वंशानुक्रम और परिवेश की परस्परक्रिया

वंशानुक्रममें विकसित होनेकी विशिष्ट प्रवृत्तियोंका समावेश हो जाता है, जैसे—अन्य किसी प्रकारके जीव या पौधेके रूपमें विकसित होनेके बजाय मनुष्यके रूपमें विकसित होना; गोरा या काला, लम्बा या ठिंगना, जिन्दादिल या शान्त बनना, इत्यादि। वंशानुक्रम की ये प्रवृत्तियां केवल बचपन तक सीमित नहीं रहतीं, बल्कि जीवन भर साथ रहती हैं। परन्तु यदि परिवेश से उत्तेजना[4] और अवसर[5] न मिले, तो ये प्रवृत्तियां निरर्थक सिद्ध होंगी। वंशानुक्रमके अनुसार किसी व्यक्तिकी मांस-पेशियां सुदृढ़ और सशक्त होनी चाहिए, किन्तु यदि उसे परिवेशसे समुचित भोजन और व्यायामकी सुविधा नहीं मिलती, तो मांस-पेशियां केवल वंशानुक्रमके कारण सुदृढ़ और सशक्त नहीं बन पायेंगी। इसलिए यह कहा जासकता है कि किसी वयस्क की मांस-पेशियां वंशानुक्रम और परिवेश का संयुक्त परिणाम हैं। यही बात उसके सभी शारीरिक अंगों एवं व्यवहारोंके लिए भी सच है।

[1] hormones [2] Iodine [3] heredity [4] stimulation [5] opportunity

एक पौधेका वंशानुक्रम उसके बीजमें छिपा रहता है, जबकि परिवेशके तत्व मिट्टी, नमी, धूप, जंगली घास आदि हैं। यदि आप पास ही पास एक करमकल्लेका और एक टमाटर का बीज बोयें, तो एक-सा परिवेश दोनोंके लिए होने पर भी एक बीजसे करमकल्लेका और दूसरेसे टमाटरका ही पौधा उगेगा। चाहे लाख चेष्टा आप करें, किन्तु एक को दूसरेमें बदलना सम्भव न होगा। लेकिन अच्छी खाद, समय पर पानी और गोड़ाई आदि देने पर एक ही पौधेके अच्छे नमूने और इन्हीं के अभावमें उसी पौधेके रद्दी नमूने दिखाई दे सकते हैं।

वंशानुक्रम और परिवेश का तुलनात्मक महत्व. कभी-कभी आप देखेंगे कि लोग इस प्रश्न पर गरमागरम बहस कर रहे होते हैं कि 'कौन-सी वस्तु अधिक महत्वपूर्ण है —वंशानुक्रम या परिवेश?' अगर बहसके दौरानमें वे उत्तेजित हो उठते हों, तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं, क्योंकि इस नग्न रूपमें यह प्रश्न बेतुका लगता है और इसका कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता। यह तो वैसा पूछनेके ही समान हुआ कि किसी मोटरकारके लिए इंजिन का अधिक महत्व है या पेट्रोलका? यदि आप करमकल्ला उगाना चाहते हैं, तो कौन-सी चीज अधिक महत्वपूर्ण है—उसके कुछ बीज या उनको उगानेके लिए जमीनका एक टुकड़ा? बिना उपयुक्त परिवेशके बीज न तो अंकुरित होगा, न विकसित होगा और बिना बीजके तो अंकुर या उसके विकासका प्रश्न ही कहां उठता है।

यदि आप किसी «एक व्यक्ति» के बारेमें सोच रहे हों, तो यह पूछनेका कोई मतलब नहीं होता कि उसके विकास और व्यवहार के लिए वंशानुक्रम और परिवेशमें से कौन अधिक महत्वपूर्ण है। दोनोंमें से हर एक सम्पूर्ण आवश्यक है।

फिर भी, साधारणतया जब कोई यह पूछता है कि कौन अधिक महत्वपूर्ण है—वंशानुक्रम या परिवेश तो वास्तव में इसका सम्बन्ध «व्यक्तियों या समूहोंके आपसी अन्तरोंसे होता है»। वह जानना यह चाहता है कि लोग एक-दूसरे से भिन्न इसलिए हैं कि उनके वंशानुक्रम भिन्न हैं या इसलिए कि उनको भिन्न-भिन्न परिवेश मिले हैं? यह प्रश्न सार्थक है। एक मोटरकार दूसरी मोटरकारसे इसलिए अच्छी चलती है कि या तो उसका इंजिन अपेक्षाकृत अच्छा है, या उसमें अच्छी किस्मका पेट्रोल जल रहा है। करमकल्लेके दो पौधों की भांति दो व्यक्ति एक ही वंशानुक्रमके होते हुए भी भिन्न परिवेशमें पले होनेके कारण भिन्न-भिन्न रूपोंमें विकसित हो सकते हैं; इसी प्रकार दो अलग तरहके बीजोंकी भांति दो व्यक्ति एक ही परिवेशमें पलकर भी भिन्न प्रकारसे विकसित हो सकते हैं, क्योंकि उनके वंशानुक्रम भिन्न हैं। हां, यद्यपि इस तरह का प्रश्न करना कोई माने रखता है किन्तु इसका उत्तर देना आसान नहीं है।

व्यक्ति वंशानुक्रम और परिवेशकी उपज है. वंशानुक्रम और परिवेश सम्बन्ध जोड़के समान न होकर गुणा के समान होता है। व्यक्ति = वंशानुक्रम + परिवेश नहीं है, वरन् व्यक्ति = वंशानुक्रम × परिवेश है। वह इन दोनों तत्वोंका गुणनफल है, कुछ वंशानुक्रमसे प्राप्त हिस्सों और कुछ परिवेशसे प्राप्त हिस्सोंका योगफल नहीं हम एक आयत[1] के आधार[2] को वंशानुक्रम, लम्ब[3] को परिवेश और आयतके क्षेत्रफल (आधार × लम्ब) को व्यक्ति मानकर इस उदाहरणको स्पष्ट कर सकते हैं।

आकृति २५. व्यक्ति वंशानुक्रम और परिवेशका गुणनफल है। परिवेशसे प्राप्त उत्तेजना (आयतकी ऊँचाई) में वृद्धि कर दीजिए, तो क्षेत्रफल बढ़ जायगा, किन्तु वंशानुक्रम तत्व (आयतकी चौड़ाई) पहिले की तरह ही महत्वपूर्ण बना रहेगा।

जैसे कि हम यह नहीं कह सकते कि आयतका क्षेत्रफल आधार[2] पर या लम्ब[3] पर अधिक निर्भर करता है, वैसे ही किसी व्यक्तिका विचार करते समय यह नहीं कहा जासकता कि वह अपने वंशानुक्रम या अपने परिवेशमें से किस की उपज अधिक है। यदि आधार और लम्ब—दोनोंमें से कोई एक न रहे तो क्षेत्रफल होगा ही किसका। इसलिए दोनों ही नितान्त आवश्यक हैं।

किन्तु जब हम दो या दोसे अधिक व्यक्तियोंका विचार कर रहे हों, जिनका प्रतिनिधित्व अलग-अलग आयतों द्वारा किया गया हो, तब हम देखेंगे कि वे अकेले वंशानुक्रमके कारण भी भिन्न हो सकते हैं, अकेले परिवेशके कारण भी, या दोनों ही बातों

[1] rectangle [2] base [3] altitude

आकृति २६. व्यक्तियोंमें, चाहे भिन्न वंशानुक्रम (हेरेडिटी) के कारण, चाहे भिन्न परिवेश के कारण, भिन्नता हो सकती है। इस प्रकार 'क' और 'ख' समान परिमाणमें परिवेशसे उत्तेजना पाते हुए भी अपने भिन्न वंशानुक्रम के कारण भिन्नता (क्षेत्रफलमें) रखते हैं। दूसरी ओर, 'ख' और 'ग' हैं जिन का वंशानुक्रम एक होते हुए भी उनमें इसलिए भिन्नता है कि उनको परि-वेश-सम्बन्धी उत्तेजना भिन्न परिमाणमें प्राप्त हुई है। दो व्यक्तियोंके मध्य «भिन्नता का आकार» सदा दोनों तत्वों पर निर्भर करता है। 'क' और 'ख' को लीजिए और उनके परिवेश-सम्बन्धी तत्व (ऊँचाई) को दुगुना कर दीजिए; इस प्रकार आप उनकी भिन्नताकी मात्रा को दुगुना कर देंगे (८)। मान लीजिए कि 'क' एक हाथी है और 'ख' एक चूहा। यदि भोजनकी न्यूनता है, तो उनके वजनों में कुछ पौंडोंका अन्तर पड़ता है; किन्तु यदि भोजनकी प्रचुरता हो जाती है, तो चूहेका वजन जितने पौंड बढ़ेगा, हाथी का वजन उससे कई गुने पौंड बढ़ जायगा और वजनकी पूर्ण (सापेक्ष नहीं) भिन्न-ता पहिलेकी अपेक्षा बढ़ जायगी।

इसी कारण, हमें यह आशा करनी चाहिए कि एक प्रकृतिसे ही प्रखर-बुद्धि बालक और एक मन्द-बुद्धि बालकमें, बहुत संकुचित परिवेशमें पालित-पोषित होने पर भी, ज्ञानकी दृष्टिसे कुछ न कुछ अन्तर होगा ही। किन्तु यदि परिवेश अधिक समृद्ध और अधिक उत्तेजक हो जाय, तो प्रखर-बुद्धि बालक मन्द-बुद्धि बालककी अपेक्षा अधिक ज्ञान अर्जित करेगा, जिससे उनके ज्ञान-भंडारोंमें पहिलेसे अधिक भिन्नता हो जायगी। साधारणतया यदि परिवेशको सबके लिए समान रूपसे उन्नत बना दिया गया, तो इससे व्यक्तिगत भिन्नताओंके परिमाणमें वृद्धि ही होगी।

में। आकृति २६ में 'क' और 'ख' नामक व्यक्ति एकसे अच्छे (या बुरे) परिवेशमें पल रहे हैं, किन्तु भिन्न इसलिए हैं कि उनके वंशानुक्रम भिन्न हैं; जबकि 'ख' और 'ग' एक ही वंशानु-क्रमके होते हुए भी असमान परिवेशमें पले होनेके कारण भिन्न हैं।

आयतोंका और अध्ययन करने पर पता चलता है कि इस समस्या को इस प्रकार रखना शायद ठीक हो : सभी को एक-सा उन्नत परिवेश दे दिया जाय, तो भी व्यक्तियोंमें समानता नहीं आयेगी। व्यक्तिगत भिन्नताओंमें कमी होनेकी बात तो दूर, इससे भिन्नताएं बढ़ जायेंगी। उदाहरणस्वरूप कुछ बालक अन्य बालकोंकी अपेक्षा स्वभावतः अधिक संगीत-प्रिय होते हैं, किन्तु एक संगीतरहित परिवेशमें इनमें से कोई भी बालक संगीतकी अपनी योग्यतामें विकास नहीं कर पायेगा, जबकि एक संगीतमय परिवेशमें रहकर प्रतिभा-शाली बालक अन्य बालकोंको बहुत पीछे छोड़ जायेगा। बुद्धि या किसी भी विशिष्ट योग्यता के सम्बन्धमें यही बात रहेगी। वंशानुक्रमके अन्तरोंको पूरी तरह प्रकट करनेके लिए प्रचुर रूपसे उत्तेजक परिवेशकी आवश्यकता होती है।

वंशानुक्रम और परिवेशके ऊपर दो मौलिक प्रयोग. जीवशास्त्रियों, नस्लोंके ऊपर प्रयोग करनेवालों और कृषकोंके प्रति हमें कृतज्ञ होना चाहिए कि उन्होंने पौधों और पशुओं पर वंशानुक्रम और परिवेश-सम्बन्धी प्रभावोंकी जानकारीको बहुत बढ़ाया है। आदमीके विषयमें विस्तृत और पूर्ण[1] प्रयोग करने कठिन हैं और इसके कई स्पष्ट कारण हैं; किन्तु पशुओं, पौधों अथवा मनुष्योंके सम्बन्धमें आधारभूत नियम एक-से जान पड़ते हैं। खोजका तरीका साफ़ ही है। वंशानुक्रमकी भिन्नताओं की जानकारी करनेके लिए वंशानुक्रमको अपना प्रायोगिक परिवर्त्य[2] बनाइए और परिवेशको स्थिर रखिए। तात्पर्य यह कि अलग-अलग वंशानुक्रमके कुछ व्यक्तियोंको लेकर उन को एक-समान परिवेशमें रखिए; इस प्रकार व्यक्तियोंमें जो अन्तर दिखायी देगा, वह वंशानुक्रमके कारण होगा। इसी तरह परिवेशके प्रभावकी खोज करनेके लिए एक-समान वंशानुक्रम वाले व्यक्तियोंको लीजिए और उन्हें अलग-अलग परिवेशमें रखकर परखिए। ये दोनों तरहके प्रयोग पशुओं और पौधों पर कई बार तथा कई प्रकारसे किए जा चुके हैं।

«दोगले या प्रसंकर[3] व्यक्तिगत भिन्नताओंको उत्पन्न करने में वंशानुक्रमके महत्वको प्रमाणित करते हैं।» यदि एक जाति[4] के नरका संयोग भिन्न (यद्यपि उसका एक-समान होना आवश्यक है) जातिकी मादासे कराया जाय, तो जो बच्चा पैदा होगा, वह दोगला—प्रसंकर—कहलाता है। यदि केवल परिवेशका महत्व हो, तो गधे और घोड़ीसे उत्पन्न

[1] thorough-going [2] experimental variable [3] hybrids [4] species

बच्चा जन्मसे पूव सामा य घोडेके तुल्य पैतक परिवेश पाने के कारण घोडा ही उत्पन्न होना चाहिए। पर तु बच्चा खच्चर होजाता ह जो ज मके समय तो घोडेसे काफी भिन्न लगता है, पर तु जैसे जैसे वह बडा होता जाता है, उसमे खच्चरके गुण ही अधिकाधिक विकसित होते जाते ह। बहुधा दुहराय जानवाल इस प्रयोगसे हमे नीचे लिखी बाते ज्ञात होती ह

१ घोडे और खच्चरमें जो अ तर दिखायी देता है, वह वशानुक्रमके कारण है, अर्थात् इस तथ्यके कारण कि खच्चर का पिता घोडा नही, गधा था।

२ भिन्न वशानुक्रमवाले ज तुओका एक से परिवेशमें विकसित करके भी एक सा नही बनाया जा सकता।

३ जसे जैसे विकासका क्रम आगे बढता ह, वशानुक्रम सम्ब धी विभेद अधिकाधिक स्पष्ट होन लगते हे।

इससे कुछ कम स्पष्ट रूपसे इ ही तथ्याका मनुष्यके उन बच्चोमे भी देखा जा सकता ह जिनके माता पिता भिन्न होते ह। क्योकि, परिवेशके पूणत मातृक[1] होनेके बावजूद बच्चा अपनी माताके अनुरूप अपने पितासे अधिक नहीं होता। परि वेश उसको इतना नही बदल पाता कि वह अपने वशानुक्रमके स्वभाव गुणोको तिलाजलि दे सके।

व्यक्तिगत भिन्नताओको उत्पन्न करोमें परिवेशका कितना महत्त्व है, इसका पता हमें 'विरूप आकृति वाले ज तुओ[2]' से चल जाता है। यदि हम यह विचार छोड दें कि परिवेश व्यक्तिको रागके एक टुकडकी तरह जसा चाहे ढाल सकता है, (यहा तक कि विकास 'ढालने[3]' की एक प्रक्रिया मात्र रह जाय), तो क्या हम एक दम दूसरे सिरे पर जाकर यह सोचन लगे कि विकास व्यक्तिके स्वाभाविक वशानुक्रम प्राप्त विशेष गुणोको 'व्यक्त करने' की एक प्रक्रिया मात्र ह? यह हमारी समस्याका सही हल नही ह, इसका प्रमाण एक दूसरे प्रकारके प्रयोगसे मिल जाता है। इस प्रयोगमें सामा य वशानुक्रमके व्यक्तिको उसके विकासकी शुरूकी अवस्थाओ में असाधारण[4] परिवेशमें रखा जाता है। इस तरहके प्रयोग दूध पिलाने वाले जानवरोके गभस्थ भ्रूणो[5] पर करने कठिन ह, किन्तु पक्षियोके अडोको असाधारण तापक्रमम रख कर तथा मछली या मेंढक के अडाको जो जलमे वि कसित होते ह, गरमी पहुचाकर, शीत पहुचाकर, रासायनिक द्रव्योका प्रयाग करके या विद्युत्, एक्स रे आदि की सहायतासे परि वेशका प्रभाव जाननके लिए प्रयोगकी सामग्री बनाया जा सकता है। इन प्रयोगोके परिणामस्वरूप विरूपाकृति ज तु[2]—अपनी जातिके औसतसे बहुत भिन्नता रखनेवाला कोई प्राणी—की उत्पत्ति होती ह। एक प्रयोगमें, मछलीके अडाको, जब वे विकासात्मक स्थितिमे थे और जब उनकी आखोका निर्माण हो रहा था, कुछ घटा तक बफके स दूकमें रखा गया। परिणाम यह दिखायी दिया कि उन मत्स्य शिशुओ की आखो का निर्माण समुचित नही हुआ, कुछ शिशुओकी तो केवल एक आख विकसित हो पायी और दूसरी नदारद रही। शीतमें विकसित एक आख वाली मछली और सामा य दशाओमें विकसित दो नत्रा वाली मछलीमे जो अन्तर दिखायी दिया, वह निश्चय ही परिवेशकी भिन्नता के कारण था (३२)।

परिवेश की क्रिया

व्यक्तिके विकास पर परिवेशका प्रभाव कई भिन्न तरीकासे पडता ह। विकासकी प्रक्रियाए आपजन, जल, भोजन और परिवेश सम्बन्धी अनुकूल तापमानोके मिलन पर निभर ह। व्यक्ति की आदतें और कौशल परिवेश द्वारा प्रस्तुत स्थितियो पर, जिनमें अभ्यासकी गुजाइश रहती ह निभर ह। व्यक्ति का ज्ञान उन शिक्षाओ पर निभर ह जिनको उसने प्राप्त किया ह और उसकी सामाजिक अभिवृत्ति इस बात पर निभर है कि सामाजिक परिस्थितियोमें उसने किस प्रकार भाग लिया है।

प्रभावपूर्ण परिवेश[7] परिवेशमें उपस्थित कई बातो का व्यक्ति पर कोई प्रभाव नही पडता, क्योकि व उसका प्रतिक्रिया या चेष्टाके लिए उत्तजित नही कर पाती। उसकी उनमे कोई दिलचस्पी नही होती, उनका उसके लिए कोई उपयोग नही होता। एक हरा भरा घास का मदान जिस प्रकार एक भूख कुत्तके लिए निरथक परिवेश सिद्ध होता ह, उसी प्रकार खरगोशासे भरा दूसरा मदान भूखी गायके लिए व्यथ सिद्ध होगा, क्योकि वह घास खाती ह, खरगोश नही। परिवेश उसी दशामें प्रभावकर सिद्ध होता ह, जब वह व्यक्ति की किसी आवश्यकता या रुचिके अनुकूल पडे और किसी न किसी प्रकार प्रतिक्रियाके लिए उसे उत्तेजना दे। कौन सी चीज प्रभावकर होगी, यह व्यक्ति, उसके वशानुक्रम, उसके पिछले अनुभव, उसकी वास्तविक आयु[8] और उसकी मानसिक आयु पर निभर करता ह। एक कमरा, जिसमें वयस्क लोग बठकर राजनीति पर वाद विवाद करते हो, किसी छोटे बच्चके लिए उत्तजक बौद्धिक परिवश नहीं होगा। केवल घर और परिवारका निरीक्षण करके तथा बच्चे का ख्याल न करके आप यह नही कह सकते कि बच्चे का घरेलू परिवेश अच्छा ह। आपको घरमें बच्चे की

[1] maternal environment [2] monsters [3] moulding [4] abnormal [5] unborn mammals [6] supply [7] effective [8] chronological age

गतिविधियों और वहां की परिस्थितियोंके प्रति उसकी प्रतिक्रियाओं पर भी ध्यान देना होगा। एक ही घरके दो बच्चों को एक-सा प्रभावशाली परिवेश नहीं मिलता, और बच्चों में जितनी ही अधिक भिन्नता होगी, उतने ही भिन्न उनके परिवेश भी होंगे। यह बात बादमें इसी प्रकरणमें अच्छी तरह स्पष्ट हो जायेगी।

परिवेश व्यक्तिगत भिन्नताओं को किस प्रकार मिटा सकता है. पहले की हमारी दलीलके अनुसार भिन्न वंशानुक्रम वाले व्यक्ति एक-से परिवेशमें रहकर भी एक समान नहीं बन पाते। चूंकि एकमें अधिक योग्यता होती है और दूसरेमें कम, इसलिए दोनों की योग्यतामें सादृश्य लानेके लिए कम योग्यता वालेको अधिक उत्तेजना और अधिक प्रशिक्षण देकर उसकी « कमी पूरी » की जाती है। कई स्कूलों में हर कक्षाके लिए यह नियम बना होता है कि उसे कमसे कम अमुक स्तरकी योग्यता प्राप्त करनी ही चाहिए। कुछ लड़के तो आसानीसे उस स्तर तक पहुंच जाते हैं और कुछ लड़कोंको वहां तक पहुंचनेमें कठिनाई होती है। अध्यापक पिछड़े हुए लड़कोंके साथ परिश्रम करके उन्हें निश्चित स्तर तक लानेकी चेष्टा करता है। वह तेज लड़कों को धन्यवाद भी देता है, क्योंकि सौभाग्यसे उन लड़कों पर अध्यापक को अधिक ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। सालके अन्त में अधिकांश लड़के अपने निर्धारित पाठ्यक्रममें प्राय: समान रूपसे निपुणता प्राप्त कर लेते हैं। असमान सामाजिक दबाव डालकर व्यक्तिगत भिन्नताओं को कुछ हद तक मिटानेकी कोशिश की गयी है। ऐसे स्कूलोंमें जो प्रत्येक बच्चेको अपनी शक्ति और गतिके अनुसार आगे बढ़नेके लिए प्रोत्साहित करते हैं, व्यक्तिगत भिन्नताओं को पनपनेका अच्छा क्षेत्र मिलता है और वहां उनका रूप खूब स्पष्ट होता है। स्वतंत्र खुला हुआ अवसर व्यक्तिगत भिन्नताओं को उभारता है और नियंत्रित अवसर योग्यता का नियमीकरण[1] करता है—उसकी प्रगति को रुद्ध करता है। कई दूसरे तरीक़ोंसे समाज आचरणके प्रतिमान—काफ़ी नरम प्रतिमान—निर्धारित करता है और आवश्यकतानुसार दबाव डालकर भी उनका पालन अपने सदस्यों से करवाता है। वंशानुक्रमकी असमानता की क्षतिपूर्ति कुछ हद तक परिवेशके असमान दबावोंके द्वारा हो जाती है।

व्यक्तित्वके लक्षणोंके साथ योग्यताओं का भी नियमीकरण[1] होता है। उदाहरणके लिए, राम अतिक्रियाशील और शरारती है, इसलिए उसके माता-पिता उसे शान्त बनाने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु उसका भाई श्याम अत्यधिक सीधा, शान्त है, इसलिए माता-पिता उसे कुछ तेज़ बनाना चाहते हैं। इस प्रकार, कम से कम घरमें, दोनों बच्चों की क्रियाशीलताको एक समान प्रतिमानके निकट लानेकी कोशिश की जाती है। परन्तु घरके बाहर उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तियां फिर भी अपना रंग दिखाएंगी। खिलाड़ियोंकी एक टोलीमें शीला का मज़ाक इसलिए उड़ाया जाता है कि वह अत्यधिक भीरु है, जबकि मीनाकी निन्दा अनावश्यक ख़तरा उठानेके लिए की जाती है। इस प्रकार समूह अपने सदस्यों को बाहरी व्यवहारके एक सामान्य प्रतिमानकी ओर लानेका प्रयत्न करता है, यद्यपि यह सही है कि स्वाभाविक प्रवृत्तियां इतने पर भी नष्ट नहीं होतीं, अपना अलग अस्तित्व बनाये रखती हैं; फलत: विभिन्न व्यक्तियोंके सामने विभिन्न निजी समस्याएं पैदा होती रहती हैं।

परिवेशके प्रभावों का संक्षेपमें वर्णन. परिवेश व्यक्तिको बलपूर्वक किसी सांचेमें नहीं ढालता, (क्योंकि ऐसा करने का तात्पर्य यह होगा कि व्यक्ति विकासकी प्रक्रियाके समय निष्क्रिय रहा), बल्कि उसे विकासके लिए अवसर और उत्तेजना प्रदान करता है। यदि परिवेशकी किसी वस्तुके प्रति व्यक्तिमें प्रतिक्रिया नहीं उत्पन्न होती, तो यह समझ लेना चाहिए कि वह उसके प्रभावशाली परिवेश का अंग नहीं है। क्या वस्तु प्रभावकर होगी, यह व्यक्तिकी आवश्यकताओं, प्रवृत्तियों और सामर्थ्यों पर निर्भर है। इस प्रकार एक ही बाह्य परिवेशका प्रभाव भिन्न रचना वाले व्यक्तियों पर अलग-अलग ढंगसे पड़ेगा। जब एक ही वंशानुक्रम वाले व्यक्तियों को विभिन्न परिवेशोंमें रखा जाता है, तब व्यक्तियोंकी विभिन्नताके लिए परिवेश उत्तरदायी होता है। किन्तु भिन्न वंशानुक्रम वाले व्यक्ति एक समान परिवेशमें रखे जाने पर भी एक-से नहीं बनाये जा सकते। (कुछ हद तक) वे एक समान बनाये जा सकते हैं, यदि उनके असमान वंशानुक्रम की कमी पूरी करनेके लिए परिवेशगत दबावको असमान कर दिया जाय। निष्कर्ष यह कि व्यक्तियों की भिन्नताओंके लिए वंशानुक्रम और परिवेश संयुक्त रूपसे उत्तरदायी हैं।

वंशानुक्रम

वंशानुक्रमके सम्बन्धमें अस्पष्ट और हवाई विचारोंसे ही हमें सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। अभी तक हमने इस विषयमें जो कुछ कहा है, वह पूर्ण तर्कसंगत होते हुए भी ठोस नहीं है। हमने कहा है कि भिन्न वंशानुक्रमके व्यक्ति एक-से परिवेशमें रहकर भी भिन्न रूपसे विकसित होंगे और उनकी योग्यताएं तथा व्यक्तित्व भी अलग-अलग तरहके होंगे। यह मानते हुए

[1] regimentation

भी, हम प्रश्न करते हैं कि क्या व्यक्ति वंशानुक्रम की दृष्टिसे वस्तुत: भिन्न होते हैं? एक ठोस जैविक तथ्यके रूपमें वंशानुक्रम क्या वस्तु है? इस तरहके प्रश्नोंका उत्तर पानेके लिए हम «जनन-विज्ञान[1]» की ओर देखते हैं। इस विज्ञान ने वर्तमान शताब्दीमें बहुत प्रगति कर ली है (९, १३, २६, ३३)।

शरीर-कोशाओंमें वंशानुक्रमका स्वरूप. प्रत्येक पौधा या प्राणी एक कोशा[2] के रूपमें अपना जीवन प्रारम्भ करता है। मनुष्यका प्रारम्भिक रूप एक बहुत छोटे अंडेके समान होता है, जिसे निषिक्त अंडकोशा[3] कहते हैं। इसका व्यास १ इंचके $\frac{१}{१००}$ के लगभग होता है। माताके अंडाशय[4] से निकली हुई अंडकोशा और पिताके शुक्रकीट[5] का संयोग होने पर इस अकेली कोशा का निर्माण होता है। माता के गर्भ[6] के सुरक्षित परिवेशमें यह निषिक्त अंडकोशा बढ़ती है और २ कोशाओंमें विभक्त हो जाती है, ये दो कोशाएं ४ में, और ये ८, १६, ३२ और इसी प्रकार करोड़ों और अरबों की संख्यामें विभक्त हो जाती हैं। यद्यपि ये सभी कोशाएं निषिक्त अंडकोशासे ही उत्पन्न होती हैं, तो भी ये विभिन्न रूपोंमें विकसित होती हैं, कुछ मांस-पेशी की कोशाएं बन जाती हैं, कुछ ग्रन्थि-कोशाएं, कुछ स्नायु-कोशाएं आदि।

प्रत्येक कोशामें एक छोटी न्यष्टि[7] होती है। यह न्यष्टि रासायनिक और शारीरशास्त्रीय दृष्टिसे शेष कोशा-काय[8] से भिन्न होती है। जबकि शेष कोशा-काय पेशी-कोशाके प्रसंग में संकुचनका, ग्रन्थि-कोशाके प्रसंगमें उत्सर्गका, या स्नायु-कोशाके प्रसंगमें संवाहनका काम करता है, तब न्यष्टि वृद्धि और कोशा-विभाजनमें तथा कोशा को जीवित और शक्ति-सम्पन्न बनाये रखनेमें अग्रणी रहती है। निषिक्त अंडकोशा की न्यष्टि बढ़ती है और बढ़कर दो न्यष्टियोंमें बँट जाती है। एक न्यष्टि निषिक्त अंडकोशाके विभाजनके कारण उत्पन्न दो कोशाओंमें से प्रत्येकके लिए होती है। यही बात प्रत्येक कोशा-विभाजनमें होती है। परिणाम यह होता है कि शरीरकी हरेक कोशामें एक न्यष्टि होती है जिसकी उत्पत्तिका मूल निषिक्त अंडकोशाकी न्यष्टि होती है। और स्पष्ट करें तो व्यक्तिका वंशानुक्रम अरबों कोशा-न्यष्टियोंमें सन्निहित होता है जो निषिक्त अंडकोशाकी न्यष्टिसे उत्पन्न होती हैं। और यह याद दिलानेकी आवश्यकता नहीं कि यह निषिक्त अंडकोशा माता और पिता की एक-एक न्यष्टिके संयोगसे बनी थी।

इस प्रकार हमें वंशानुक्रमके सम्बन्धमें तीन महत्वपूर्ण बातें मालूम हुई—(१) बच्चेका वंशानुक्रम माता और पिता, दोनों से प्राप्त होता है; (२) निषेचन या गर्भधारणके समय ही इस का स्वरूप निश्चित और स्थिर हो जाता है—बादमें कोई अतिरिक्त वंशानुक्रम उसमें प्रविष्ट नहीं होसकता, यहां तक कि मातासे, जो उसे ९ महीने तक गर्भ में पालती है, भी नहीं; (३) प्रत्येक कोशामें उपस्थित रहनेके कारण वंशानुक्रम समस्त शरीरमें व्याप्त रहता है।

पित्र्यसूत्र[9]. न्यष्टि[7] में छोटे-छोटे, डंडेकी तरह आकार वाले कण होते हैं, जिन्हें पित्र्यसूत्र[9] कहते हैं। इनमें से कुछ लम्बे होते हैं, कुछ छोटे, कुछ सीधे, कुछ टेढ़े। किन्तु एक ही जाति[10] के सभी व्यक्तियों और एक व्यक्तिकी सभी कोशाओं में इनकी संख्या समान होती है। प्रत्येक मानव-कोशामें ४८ पित्र्यसूत्र होते हैं; कुछ पशुओं और पौधोंमें इनकी संख्या इससे काफ़ी कम होती है और कुछमें इससे काफ़ी ज्यादा। कोशाविभाजनमें, प्रत्येक पित्र्यसूत्र दो समान भागोंमें बंट जाता है और एक-एक दो विभक्त कोशाओंमें चला जाता है। इस प्रकार मानव-शरीर की प्रत्येक कोशामें ४८ पित्र्यसूत्र होते हैं—इनकी उत्पत्ति निषिक्त अंडकोशाके पित्र्यसूत्रोंसे ही होती है।

४८ मानव-पित्र्यसूत्रोंके स्थान पर यदि यह कहा जाय कि पित्र्यसूत्रोंके २४ जोड़े होते हैं, तो ठीक रहेगा। जोड़ोंके रूपमें इनका होना बहुत महत्त्व रखता है। इस प्रकार निषिक्त अंडकोशा[3] में पित्र्यसूत्रोंके २४ जोड़े होते हैं। इनकी उत्पत्ति के मूलको देखने पर एक उल्लेखनीय तथ्यका पता चलता है। प्रत्येक जोड़ेका एक पित्र्यसूत्र शुक्रकीटसे आता है और दूसरा गर्भाधानके पूर्व अनिषिक्त अंडकोशामें उपस्थित रहता है। बच्चा हर जोड़ेका एक पित्र्यसूत्र तो अपने पितासे प्राप्त करता है और दूसरा अपनी माता से।

पित्र्यैक[11] : वंशानुक्रमके प्रारम्भिक तत्व. यदि बच्चेका पिता नीले नेत्रों और छरहरे शरीर वाला हो और माता स्थूलकाय एवं भूरे नेत्रों वाली हो तो यह सम्भव है कि माता और पिता के एक-एक गुण उत्तराधिकारमें पाकर बच्चा छरहरे शरीर और भूरे नेत्रों वाला निकले। पहिले-पहल उत्पत्तिके प्रारम्भिक तत्वों या पित्र्यैकों[12] की खोज माता-पिता और बच्चोंकी ऐसे मामलोंमें तुलना करनेसे हुई, जब माता-पिता आपसमें कुछ बातोंको लेकर भिन्न थे। (इस अन्वेषण कार्यके लिए अधिकतर पशुओं या पौधोंको ही प्रयोगकी सामग्री बनाया गया है, मनुष्योंको कम।) बादमें यह सम्भव दिखायी दिया कि कुछ विशेष निर्माण-पित्र्यैकों[11] को विशेष पित्र्यसूत्रों, बल्कि पित्र्यसूत्रोंके कुछ विशेष भागोंमें, खोजा जासके। ऊंची शक्ति के अणुवीक्षण यंत्र से देखने पर पित्र्यसूत्र मणिका की लड़ियों के सदृश लगते हैं। यह लड़ी एक निश्चित क्रमसे सजाये हुए पित्र्यैकोंकी होती है। मनुष्यके पित्र्यैक एक हज़ार या उससे

[1] science of genetics [2] cell [3] fertilized ovum [4] ovary [5] spermatozoon [6] womb [7] nucleus
[8] cell body [9] chromosomes [10] species [11] genes [12] elementary genetic factors, or genes

आकृति २७. मानवीय पित्र्यसूत्रों (क्रोमोसोम्स) के दो समूह, जिनमें से ऊपरकी पंक्ति में नर है और नीचेकी पंक्तिमें मादा। यहां पर २४ जोड़े आकारके क्रमानुसार सजाये गये हैं। (किसी कोशाकी न्यष्टि [न्यूक्लिअस] में उनकी सजावट इससे बहुत कम नियमित होती है)। सुविधाके लिए इनका नाम: २ 'क', २ 'ख' इत्यादि रखा जा सकता है, किन्तु अन्तिम जोड़ा 'अ' और 'ब' कहलाता है, 'ब' छोटा वाला होता है। हरेक नरमें 'अ' 'ब' जोड़ा होता है और हरेक मादामें एक दुगुना 'अ' (ईवन्स और स्वेजी, ११)।

निषेचन (फ़र्टिलाइज़ेशन) के पूर्व माताके बीज (ओवम) और पिताके शुक्रकीट (स्परमैटोज़ून) में से प्रत्येकमें, प्रति जोड़ेसे एक-एक के हिसाबसे, केवल २४ पित्र्यसूत्र (क्रोमोसोम्स) होते हैं; इसलिए उनके मिश्रित रूप अर्थात् निषिक्त स्त्री-बीज (फ़र्टिलाइज़्ड ओवम) में, प्रति जोड़ेसे २ के हिसाबसे, पूरे ४८ पित्र्यसूत्र हो जाते हैं।

चूंकि मादामें केवल 'अ' पित्र्यसूत्र होते हैं और 'ब' पित्र्यसूत्र बिल्कुल नहीं, इसलिए वह जितने बीज उत्पन्न करती है, उनमें से प्रत्येकमें 'अ' होता है। नरमें 'अ' 'ब' जोड़ा होता है, और उसके लाखों शुक्रकीटोंकी आधी संख्यामें 'अ' और आधा 'ब' होता है। इसलिए किसी बच्चेका लिंग (सैक्स) इस बात पर निर्भर करता है कि 'अ' और 'ब' शुक्रकीटमें से कौन-सा सबसे पहले बीजमें जाता है और उसके साथ संयुक्त हो जाता है। दोनोंके अवसर लगभग समान हैं, हालांकि ऐसा लगता है कि 'ब' शुक्रकीट कुछ अच्छी स्थितिमें रहते हैं, क्योंकि १०० मादा निषिक्त स्त्री-बीजोंके मुकाबलेमें लगभग १२० नर निषिक्त स्त्री-बीज होते हैं। पुरुषोंमें मृत्यु-संख्या अधिक होती है; जन्मके समय लड़के-लड़कियोंका अनुपात १०५ : १०० होता है; कुछ वर्षोंके बाद दोनोंकी संख्या बराबर हो जाती है और वृद्धावस्थामें पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियां ही अधिक जीवित रहती हैं। सम्भव है, 'ब' 'अ' की अपेक्षा अधिक सक्रिय हो, किन्तु जीवनकी दृष्टिसे वह कम टिकाऊ होता है। चाहे जो हो, स्त्रियों और पुरुषोंमें जो वंशानुक्रम-सम्बन्धी अन्तर होता है, वह 'अ' और 'ब' के बीचके अन्तरके कारण है।

भी अधिक हैं, ये असमान रूपसे ४८ पित्र्यसूत्रोंमें वितरित रहते हैं। पित्र्यसूत्रोंकी तरह पित्र्यैक भी जोड़ेके रूपमें आते हैं—हर जोड़ेमें एक पितासे आता है और दूसरा मातासे।

एकान्तर पित्र्यैक[1]. अधिकांशत: किसी जोड़ेके पित्र्यैक एक-से होते हैं और इस कारणसे माता-पिता तथा बच्चेमें समानताएं उत्पन्न होती हैं, विषमताएं नहीं। समानताओंकी संख्या विषमताओंसे अत्यन्त अधिक होती है। किन्तु कुछ जोड़ों में पित्र्यैकोंकी भिन्नता हो सकती है, जैसे एक भूरी आंखें उत्पन्न करनेवाला हो, तो दूसरा नीली आंखें। यदि बच्चेको माता-पितासे एक-एक भूरी आंखों वाला पित्र्यैक मिला है, तो उसकी आंखें भूरी होंगी; यदि माता-पितामें से प्रत्येकने उसे नीली आंखोंका पित्र्यैक दिया है, तो उसकी आंखें नीली होंगी; किन्तु यदि उसने माता-पितामें से एकसे भूरी आंखोंका पित्र्यैक प्राप्त किया और दूसरेसे नीली आंखोंका, तो उसकी आंखें बहुत कुछ भूरी होंगी, क्योंकि भूरी आंखों वाला तत्व नीली आंखों वाले तत्व पर हावी होजाता है।

मिश्रित जनसंख्याएं. मान लीजिए कि एक एकान्त पहाड़ी घाटीमें भूरी आंखों वाले ही शुद्ध नस्लके लोग रहते हैं। उनके पूर्वजोंकी आंखें भी कई पीढ़ियोंसे भूरी ही रहती आ रही थीं। एक दूसरी एकान्त घाटीमें इसी तरह नीली आंखों वाले लोग निवास करते हैं, उनमें से प्रत्येक व्यक्तिकी आंखें नीलवर्ण हैं। अब दोनों नस्लोंमें विवाह-सम्बन्ध होने दीजिए। एक दर्जन दम्पतियों [जिनमें से हर दम्पति (पहिली पीढ़ी) में एक की आंखें नीली हों तो दूसरेकी भूरी,] को एक तीसरी घाटी में घर बसाने दीजिए। वहां वे नयी जनसंख्या उत्पन्न करेंगे। उनके बच्चों (दूसरी पीढ़ी) में से हरेकको नीली-भूरी आंखों के पित्र्यैकोंका जोड़ा विरासतमें प्राप्त है, इसलिए उनकी आंखें न्यूनाधिक रूपसे भूरी होंगी। जब ये बच्चे आपसमें विवाह करते हैं, तो एक मजेदार बात दिखायी देती है: उनके बच्चों (तीसरी पीढ़ी) में से लगभग एक चौथाई की आंखें नीली होती हैं। इसका कारण स्पष्ट है। इस पीढ़ीके किसी बच्चे को पितासे नीली आंखोंका पित्र्यैक प्राप्त करनेका ५० प्रतिशत और मातासे नीली आंखोंका पित्र्यैक पानेका भी ५० प्रतिशत अवसर है; इस प्रकार नीली आंखोंके दो पित्र्यैकों को प्राप्त करनेका और नीली आंखों वाला होनेका उसका अवसर ४ में एक है। अब इस तीसरी घाटीके लोगोंको स्वतंत्र रूपसे पीढ़ी दर पीढ़ी आपसमें विवाह-सम्बन्ध करने दीजिए। आप देखेंगे कि भूरी आंखों वाले व्यक्तियोंकी संख्या सदा अधिक है, किन्तु बराबर कुछ बच्चोंकी आंखें नीली भी होती हैं। आंखोंके रंग, बालोंके रंग, क़द, शारीरिक गठन, शक्ति

[1] alternative genes

और मानसिक सामर्थ्य आदि अनेक लक्षणोंकी दृष्टिसे राष्ट्र मिली-जुली जनसंख्याके समूह होते हैं। इन लक्षणोंके एकान्तर[१] पित्र्यैक जनसंख्यामें उपस्थित रहते हैं, पित्र्यैकोंके जोड़े हर व्यक्तिमें भिन्न होते हैं, इसीलिए इन लक्षणोंमें भी व्यक्ति एक-दूसरे से भिन्न हुआ करते हैं।

माता-पिता का अध्ययन करके बच्चेके वंशानुक्रमका अनुमान करनेकी चेष्टा करना. 'वंशानुक्रम' शब्द कुछ भ्रामक है, क्योंकि इससे बच्चेके पित्र्यैकोंके प्रकारकी ओर हमारा ध्यान न जाकर उसके माता-पिता की ओर चला जाता है। यदि माता-पिता, दोनों भूरी आंखों वाले हैं, तो हमारी आदत यह मान लेने की होती है कि 'वंशानुक्रमके अनुसार' उनके बच्चेकी आंखें भी भूरी होनी चाहिएं। लेकिन सम्भव है उसने वंशानुक्रमके अनुसार ही अपने माता-पिता से नीली आंखोंके पित्र्यैक प्राप्त किये हों, इसलिए वह नीली आंखों वाला हो। बच्चा अपने सभी पित्र्यैक माता-पितासे ही प्राप्त करता है, किन्तु उसके भीतर उनके संगठनका प्रकार माता या पिता से भिन्न होता है; किसी भाई या बहिनसे भी उसके पित्र्यैकोंकी संगठन-पद्धति मेल नहीं खाती। यहां तक कि संसारमें कहींके किसी व्यक्तिसे भी उसका मेल नहीं बैठता। इसका कारण यह है कि पित्र्यैकोंके संयोग इतने प्रकारके होते हैं कि उनकी कोई गिनती नहीं। बच्चेका वंशानुक्रम उसके पित्र्यैकोंका अपना विलक्षण संयोग[२] होता है।

उदाहरणस्वरूप, आप जानना चाहते हैं कि अमुक दम्पतिका बच्चा कितना लम्बा होगा। आकृतिका यह लक्षण आंशिक रूपसे पोषण, रोग और चोट आदि परिवेशके तत्वों पर निर्भर करता है, और इनके लिए रियायतकी गुंजाइश रखकर ही हमें इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए। क़द पित्र्यैकों पर भी निर्भर करता है, पर उनके किसी एक जोड़े पर नहीं। एक बहुत ठिगने क़दके व्यक्ति और एक बहुत लम्बे क़दके व्यक्तिके बीच जो अन्तर होता है वह पित्र्यैकोंके कई जोड़ोंके कारण होता है। अधिकांश व्यक्तियोंमें कुछ पित्र्यैक लम्बाई के होते हैं और कुछ ठिगनेपनके; इसलिए किसी दम्पतिके बच्चोंमें क़द-सम्बन्धी पित्र्यैकोंका संयोग अलग-अलग प्रकार का होता है। कुल मिलाकर माता-पिता जितने ही लम्बे होंगे, लम्बाईके उतने ही पित्र्यैक वे अपने बच्चोंको विरासत में देंगे और उनके बच्चोंकी औसत लम्बाई उतनी ही अधिक होगी। किन्तु किसी एक बच्चेके बारेमें भविष्यवाणी कभी विश्वसनीय नहीं होती, उसके सम्बन्धमें केवल सम्भावनाएं ही की जासकती हैं।

कई अन्य प्रमुख मानवीय लक्षण, जिनमें शक्ति और बुद्धि भी सम्मिलित हैं, अनेक पित्र्यैकोंके जोड़ों और परिवेशके तत्वों पर निर्भर करते हैं, इसलिए माता-पिता को देखकर उनके बच्चोंके बारेमें कोई भविष्यवाणी करना उतना ही कठिन है, जितना क़दके मामलेमें।

क्या अर्जित स्वभाव-गुण[३] वंशानुक्रमसे उत्तराधिकारमें मिलते हैं? विकासवादके एक प्राचीन सिद्धान्तके अनुसार, व्यक्तिमें उसके परिवेश तथा उसकी चेष्टाओंके कारण जो परिवर्तन होते हैं, वे उसके बच्चोंको उत्तराधिकारके रूपमें मिलते हैं और आगेकी सन्ततियोंमें उत्तरोत्तर इकट्ठे होते जाते हैं। इस सिद्धान्तकी पुष्टिमें जीवशास्त्रियों ने प्रमाणोंकी बहुत खोज की, किन्तु कोई प्रमाण नहीं मिला। अन्तमें हार मानकर उन्हें इस सिद्धान्तको छोड़ देना पड़ा। वंशानुक्रमकी प्रक्रिया के सम्बन्धमें हमने जो आधुनिक ज्ञान प्राप्त किया है, उसके अनुसार यह एक दम असम्भव जान पड़ता है कि अर्जित स्वभाव-गुण उत्तराधिकारमें जासकते हैं। यदि मेहनत-मजदूरी का काम करनेसे किन्हीं पति-पत्नी के हाथ सख्त और रुक्ष होजायें, तो उनकी त्वचा का यह परिवर्तन उनकी प्रजन-ग्रन्थियों[४] के पित्र्यैकों पर किस प्रकार प्रभाव डाल सकता है? वास्तवमें उनके बच्चोंकी त्वचा पर इसका कोई प्रभाव नहीं होता। यदि आपने किसी भाषा को बोलना सीखा है, तो क्या इस भाषा-ज्ञान को आप पित्र्यैकोंके द्वारा अपने बच्चेमें पहुंचा सकते हैं? ऐसे परिणामका कोई चिह्न नहीं मिला है। आप अपना ज्ञान-कौशल अथवा अच्छी या बुरी आदतें अपने बच्चेको सौंप सकते हैं, किन्तु ऐसा आप उसे शिक्षा देकर या उसके सामने अच्छा या बुरा उदाहरण रखकर ही कर सकते हैं, वंशानुक्रम द्वारा नहीं। तपेदिक और उपदंश[५] जैसी खतरनाक बीमारियां भी, जो बहुधा परिवारोंमें जड़ जमाकर बैठ जाती हैं, पित्र्यैकोंके द्वारा सन्तति में नहीं पहुंचतीं। बच्चा घरके वातावरणमें छूत के कारण रोगका शिकार होजाता है।

बुद्धि और व्यक्तित्वके अन्तर

पिछले कुछ वर्षोंमें इस प्रश्न पर बहुत विवाद रहा कि व्यक्तियोंमें जो बुद्धि-सम्बन्धी भिन्नताएं होती हैं, उनका कारण वंशानुक्रम है, या परिवेश (४२)। व्यक्तित्वकी भिन्नताओंसे सम्बन्धित प्रश्न भी इतना ही महत्त्वपूर्ण है, किन्तु उसका समुचित अध्ययन इसीलिए नहीं हो सका है कि व्यक्तित्व को नापने का कोई ठीक पैमाना अभी तक नहीं ढूंढ़ा जा सका। ये प्रश्न वैज्ञानिकों के लिए बहुत आकर्षक हैं और इनका व्यावहारिक उपयोग भी है। यदि व्यक्तियोंकी उत्कृष्टता और हीनताके लिए वंशानुक्रम ही अधिक उत्तरदायी है, तो

[१] alternative [२] combination [३] characteristics [४] gonads [५] syphilis

मानवजाति का भला इसीमें है कि मनुष्यकी नस्लको सुधारा जाय और किसी भी दशामें इसे गिरने न दिया जाय। किन्तु यदि इन भिन्नताओं का कारण अधिकांशमें परिवेश है, तो समाज को चाहिए कि वह लोगों को अच्छा पोषण, स्वास्थ्य, अच्छी शिक्षा, अच्छी कार्य-स्थितियां, मनोरंजन की सुविधाएं और हर तरहके परिवेश-सम्बन्धी अवसर प्रदान करनेकी अपनी कोशिश बढ़ाता चले। जो लोग परिवेशवादी कहे जाते हैं, वे परिवेशको उन्नत करने पर जोर देते हैं। उनका विश्वास है कि उनकी धारणा बहुत आशाप्रद है। चरम कोटि के परिवेशवादी तो यहां तक कह बैठते हैं कि मनुष्यके कार्यों में वंशानुक्रमका बहुत थोड़ा हाथ है। उनका मत है कि किसी भी स्वस्थ शिशुको उपयुक्त शिक्षा और प्रभावके द्वारा उत्कृष्ट व्यक्तित्व और योग्यता प्रदान की जा सकती है। उनकी यह धारणा निश्चय ही अत्यन्त आशाप्रद होती, यदि वे बता सकते कि शिक्षा देने और प्रभाव डालनेके उनके वे विशेष तरीके क्या है, जिनसे वांछित परिणाम उत्पन्न किये जा सकते हैं। किन्तु यदि उनको किसी बच्चेके विकासका उत्तरदायित्व सौंपा जाय और कहा जाय कि इसे एक महान् कलाकार या वैज्ञानिक या राजनीतिज्ञ बना डालें, तो वे शीघ्र ही यह मान लेंगे कि परिवेश-सम्बन्धी तत्वों का उनका ज्ञान कार्य की गुरुता और महत्त्वको देखते हुए बहुत ही थोड़ा है।

वंशानुक्रमवादी उपर्युक्त मत को एक मोठी कल्पना-मात्र मानेगा। जैविक वंशानुक्रमके तथ्यों को देखते हुए उसे कहना पड़ता है कि पित्र्यैकों[१] के महत्त्वको उपेक्षा की दृष्टिसे नहीं देखना चाहिए। चरम कोटि के वंशानुक्रमवादी तो इसमें भी सन्देह करते हैं कि किसी तरह की शिक्षा या प्रभावके द्वारा बच्चेकी बुद्धि-लब्धि[२] काफ़ी ऊंची उठायी जा सकती है या उसके आधारभूत व्यक्तित्वमें परिवर्तन किया जा सकता है।

वास्तवमें, हमारे सामने दो प्रश्न हैं: (१) क्या उपयुक्त परिवेश बुद्धि-लब्धिको ऊंचा उठा सकता है अथवा व्यक्तित्व को उन्नत बना सकता है, और (२) हम व्यक्तियोंमें जो भिन्नताएं वस्तुतः देखते हैं, उनका कारण परिवेश है या वंशानुक्रम, या दोनों ही ?

यदि हम यह मान भी लें कि भिन्नताएं दोनोंके कारण पायी जाती हैं, तो भी यह प्रश्न तो रहता ही है कि वंशानुक्रम और परिवेशमें से कौन अधिक महत्त्व रखता है ? समाजमें हम व्यक्तियों को जिस रूपमें देखते हैं, उनके उस रूपका निरीक्षण करके ही हमें इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिल सकता; क्योंकि वंशानुक्रम और परिवेश-सम्बन्धी तत्व बहुत उलझे हुए हैं। इसके लिए तो हमें किसी न किसी प्रकारके प्रयोगका ही सहारा लेना पड़ेगा।

छानबीन का तरीका वही रहेगा जो जीवशास्त्रीय प्रयोगोंमें रहता है जिनके विषयमें हम इसी प्रकरणमें बता चुके हैं। वंशानुक्रमके कारण होनेवाली भिन्नताओं को स्पष्ट करनेके लिए हमें भिन्न वंशानुक्रम वाले बच्चों का पालन-पोषण एक समान परिवेशमें करना चाहिए; और परिवेशके कारण-उत्पन्न भिन्नताओं को स्पष्ट करनेके लिए हमें एक ही वंशानुक्रमके बच्चोंको भिन्न-भिन्न परिवेशोंमें रखना चाहिए। यह ध्यान रखना चाहिए कि पौधों और पशुओंपर जैसे स्पष्ट प्रयोग किये जाते हैं, वैसे मनुष्यों पर नहीं किये जासकते। हमें सच्चे प्रयोगके निकट पहुंचकर अनुमानके सहारे ही काम निकालना पड़ेगा।

ऐसे बच्चे आसानीसे मिलेंगे जिनके वंशानुक्रम भिन्न हैं, परन्तु कठिनाई यह है कि हम उन्हें एक-सा परिवेश कैसे प्रदान करेंगे? अनाथालयों तथा कुछ सामान्य परिवारोंमें भी समरूप परिवेशका आभास मिलता है।

दूसरी तरहके प्रयोगमें एक ही वंशानुक्रमके बच्चे भिन्न परिवेशोंमें रखे जाते हैं, इसके निकट पहुंचनेके लिए एक स्वरूप वाले यमजों[३] को अलग करके भिन्न-भिन्न परिवारोंमें पाला जाता है तथा अन्य बच्चों को उनके माता-पितासे अलग हटाकर मित्रोंके परिवारमें रखा जाता है।

अनाथालय. ऐसे बच्चे, जो अलग-अलग माता-पितासे उत्पन्न होनेके कारण वंशानुक्रममें निश्चित रूपसे भिन्न होते हैं, एक ही घरमें पाले-पोसे जाते हैं। हम आशा करसकते हैं कि अनाथालयमें पलने वाले बच्चोंकी बुद्धिमें समरूपता[४] होनी चाहिए। परन्तु, वास्तवमें ऐसे बच्चों की परीक्षा लेने पर पता चला है कि उनकी बुद्धि-लब्धियोंमें उतनी ही भिन्नता होती है जितनी भिन्नता प्रायः औसत समाजके बच्चोंकी बुद्धि-लब्धियोंमें मिलती है। अनाथालय न तो उनकी बुद्धिमें समानता ला पाता है, न उनके व्यक्तित्व में। यह परिणाम चरम-परिवेशवादीके इस तर्कका खंडन करता हुआ जान पड़ता है कि सभी व्यक्तियोंकी मौलिक सामर्थ्य एक-सी होती है और उनकी योग्यतामें एक मात्र परिवेशके कारण ही भिन्नताएं उत्पन्न होती हैं। फिर भी प्रयोगकी पद्धतिके सम्बन्धमें वह आक्षेप कर सकता है कि यह पूर्ण और सही नहीं है। वह कह सकता है कि वही अनाथालय सभी बच्चों के लिए आवश्यक रूपसे एक-सा «प्रभावकारी» परिवेश उपस्थित नहीं करता, क्योंकि सभी बच्चोंके साथ बिलकुल एक-सा बर्ताव नहीं किया जाता (३९)।

परिवार. एक ही माता-पिताकी सन्तान या «सहोदर[५]» (जिसमें भाई और बहिन सभी आ जाते हैं) के विषयमें कभी

[१] genes [२] intelligence quotient [३] identical twins [४] uniformity [५] siblings
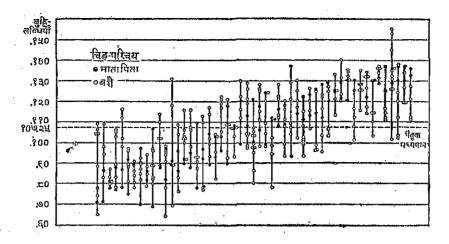
आकृति २८. माता-पिताओं और बच्चोंकी बुद्धि-लब्धियां [आउटिट, २३ से संगृहीत सामग्री]। प्रत्येक पंक्ति और एक परिवारमें, जिसमें माता-पिताके अतिरिक्त कमसे कम चार बच्चे हैं, बुद्धि-लब्धियोंका वितरण प्रदर्शित करती है। मूल पाठ (टैक्स्ट) में जिन तथ्यों का वर्णन हो चुका है, उनके अलावा एक और तथ्य है जिसे इस आकृतिमें देखा जा सकता है : माता और पिताकी बुद्धि-लब्धियां साधारणतः एक दूसरेके काफ़ी निकट होती हैं। इस नमूनेमें पिता और माताकी बुद्धि-लब्धियोंके बीच + ·७४ का अनुबन्ध है। यह 'समविवाह' का, अर्थात् समान व्यक्तियोंके विवाहका उदाहरण है। समविवाहका एक प्रभाव यह होता है कि यह एक ही परिवारके बच्चोंको अधिक समान बनाता है और भिन्न परिवारोंके बच्चोंको अधिक भिन्न बनाता है; इसके न होने पर इतनी समानता या भिन्नता न दिखाई पड़ती। व्यक्तित्वके विशिष्ट लक्षणोंमें भी कुछ समतत्वता (होमोगैमी) होती है, हालांकि इतनी अधिक नहीं जितनी कि बुद्धिमें होती है (३)।

कभी कहा जाता है कि उनका वंशानुक्रम समान है, परन्तु हम देख चुके हैं कि उनके पित्र्यैकों[1] में भिन्नता होती है—यद्यपि यह सही है कि अन्य परिवारोंके बच्चोंकी अपेक्षा इस बातमें उनमें बहुत कुछ समानता होती है। इस प्रकार एक ही घरमें पले हुए सहोदरों[2] में भी वंशानुक्रमकी कुछ भिन्नता पायी जाती है। प्रश्न है, क्या वे सब बच्चे बुद्धिमें समान होंगे?

कोई भी व्यक्ति यह आशा नहीं करेगा कि बुद्धिमें सहोदर परस्पर एक दम समान होंगे, अन्य बातोंमें भी ऐसा शायद ही होता है। लेकिन यह जाननेके लिए सतर्कतापूर्वक अनुसन्धान करनेकी आवश्यकता है कि वे एक-दूसरेसे और अपने माता-पितासे कितने भिन्न होते हैं। एक अनुसन्धानमें पचास से अधिक परिवारोंकी परीक्षा ली गयी। हर परिवारमें माता-पिताके अलावा कमसे कम चार बच्चे थे। उनकी बुद्धि-लब्धियां आकृति २८ में दिखायी गयी हैं। इस आकृतिसे कई तथ्य मालूम किये जा सकते हैं :

१. यह आसानीसे देखा जा सकता है कि प्रायः प्रत्येक परिवारमें बच्चे आपसमें और अपने माता-पितासे काफ़ी भिन्नता रखते हैं।

२. कुल मिलाकर, अधिक बुद्धिमान् माता-पिताओंके बच्चे भी अधिक बुद्धिमान् होते हैं। माता या पिता और उसके बच्चे में + ·५८ का अनुबन्ध पाया गया।

३. इस आकृतिको ध्यानपूर्वक देखने पर पता चलेगा कि सर्वाधिक बुद्धिमान् माता-पिताओंके बच्चे प्रायः अपने माता-पिताओंके स्तरसे नीचे रह गये हैं, जबकि सबसे कम बुद्धिमान् माता-पिताओंके बच्चोंके साथ बिल्कुल विपरीत बात हुई है—अर्थात् वे अपने माता-पिताओंसे प्रायः ऊंचे स्तर पर पहुँचे हैं। जब माता-पिता ११० बुद्धि-लब्धिसे भी ऊंचे पहुँचते हैं, तब केवल उनके ३५ प्रतिशत बच्चे ही उनसे आगे बढ़ते हैं; किन्तु जब माता-पिताकी बुद्धि-लब्धि ९० से भी कम रहती है, तब उनके ८० प्रतिशत बच्चे उनसे आगे बढ़ जाते हैं।

[1] genes [2] siblings

वंशानुक्रमसे जो कुछ उम्मीदकी जा सकती है, ये सभी परिणाम उसकी पुष्टि करते हैं। बुद्धिके उच्चतम और निम्नतम स्तरोंमें जो अन्तर होता है, उसको उत्पन्न करनेमें पित्र्यैकोंके कई जोड़े कार्य करते हैं। प्रश्न यह नहीं है कि व्यक्तिमें बुद्धिके पित्र्यैक[१] हैं या नहीं, प्रश्न यह है कि «कितने» बुद्धि-पित्र्यैक उसमें हैं। एक ही माता-पिताके किसी बच्चेमें उसके अन्य सहोदरों की अपेक्षा ये अधिक संख्यामें हो सकते हैं। माता-पिताओंमें इनकी जितनी अधिकता होती है, उनके बच्चोंको उतने ही अधिक इनके प्राप्त होनेकी सम्भावना रहती है। और जब कभी किसी व्यक्तिमें इनकी बहुत अधिक संख्या मिलती है तब उसके बच्चे, या उसकी माता अथवा पिता या उसके सहोदरों[२] में ये उससे कम संख्यामें पाये जाते हैं; या यदि किसी व्यक्तिमें ये कम संख्यामें हैं, तो यह सम्भावना है कि उसके बच्चे, उसके माता या पिता, या उसके सहोदरोंमें इनकी संख्या अधिक हो।

अभी तक हमको इसी निष्कर्ष पर स्थिर रहना चाहिए कि सहोदरोंमें भिन्न पित्र्यैकों[३] के कारण भिन्नता पायी जाती है, क्योंकि पित्र्यैक तथ्योंका स्पष्टीकरण उस दशामें करते हैं, जबकि एक घरमें सभी बचोंके लिए परिवेश एक-सा प्रतीत होता है। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि क्या सभी बच्चोंके लिए एक ही घर एक समान ही प्रभावकारी परिवेश प्रस्तुत करता है? नहीं। माता-पिताओंका बर्ताव अपने सभी बच्चोंके साथ एक-सा नहीं होता। घरमें एक बच्चेको अपनेसे बड़े भाई-बहिन ही मिलते हैं; जबकि दूसरे बच्चेको अपनेसे छोटे बच्चों का साथ मिलता है—ये बातें बच्चेके लिए यदा-कदा बिल्कुल भिन्न परिवेशकी सृष्टि कर देती हैं। इसके अलावा घरसे बाहर, एक बच्चेके अलग मित्र होते हैं, अलग घरोंमें उसे जाना पड़ता है और अलग अध्यापकोंसे उसका पाला पड़ता है।

इसके अतिरिक्त, यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि प्रत्येक बच्चा काफ़ी हद तक अपने लिए प्रभावकारी परिवेश का चुनाव स्वयं करता है। वंशानुक्रममें भिन्नता रखने वाले सहोदर भिन्न खिलौनों, खेलों, साथियों, पाठ्य-सामग्रियों, रेडिओ-कार्यक्रमों आदिको पसन्द करेंगे। मिलनसार स्वभाव वाला बच्चा अपने मित्रोंकी संख्या बढ़ा लेगा, जबकि झगड़ालू स्वभावका बच्चा अपने शत्रुओंकी संख्या; और इस प्रकार वे अपने लिए भिन्न निजी परिवेशोंकी सृष्टि कर लेंगे। एक बच्चा अच्छी तरह पढ़ सकता है, पढ़नेमें उसे आनन्द आता है, इसलिए वह पुस्तकोंमें प्रस्तुत परिवेशसे परिचित हो जाता है; किन्तु एक दूसरा बच्चा है जिसे पढ़नेमें कठिनाई होती है और वह अपने हाथसे काम करना अधिक पसन्द करता है या अपने पड़ोसकी वस्तुओं और व्यक्तियोंसे जान-पहचान बढ़ाता है।

अब तक हम जो कुछ कह चुके हैं, उसको संक्षेपमें हम यों कह सकते हैं: परिवारोंमें सहोदर वंशानुक्रमकी दृष्टिसे भिन्नता रखते हैं, यद्यपि उनमें दूरके बच्चोंकी अपेक्षा भिन्नता की मात्रा कम होती है। वे घरेलू परिवेश—प्रभावकर घरेलू परिवेश—की दृष्टिसे भी भिन्नता रखते हैं, यद्यपि यहां भी दूरके बच्चोंकी अपेक्षा उनको अधिक समान परिवेश मिलता है। चूंकि वंशानुक्रम और परिवेशकी परस्परक्रिया चलती रहती है, इसलिए इस तथ्यसे कि सहोदर बच्चे बुद्धिमें भिन्न होते हैं, न तो परिवेशवादी[४] के दावेकी पुष्टि होती है और न वंशानुक्रमवादी[५] के।

एकरूप-यमज[६] और भ्रातृ-यमज[७]. यद्यपि सहोदरोंका वंशानुक्रम एक-सा नहीं होता, किन्तु कुछ यमज बच्चे इसके अपवाद होते हैं। कभी-कभी ऐसा होता है कि एक ही निषिक्त स्त्री-बीज[८] से दो बच्चे उत्पन्न होते हैं और वह इस प्रकार: भ्रूण[९]-विकासके बहुत प्रारम्भमें ही दो भागोंमें विभक्त होजाता है और दो बच्चोंकी सृष्टि करता है। चूंकि एक निषिक्त स्त्री-बीजसे उत्पन्न सभी कोशाओंमें बिल्कुल एक ही पित्र्यैक[३] रहते हैं, इसलिए इन दोनों बच्चोंका वंशानुक्रम एक ही होता है। जन्मके समय उनका रूप एक दूसरेके इतना समान होता है कि उनमें पहचान करना कठिन हो जाता है; और जैसे-जैसे उनकी वृद्धि होती जाती है, उनकी शारीरिक एकरूपता अधिक आकर्षक हो उठती है। ऐसे व्यक्तियोंको एक-अंडज या एक-रूप-यमज कहते हैं (२१)।

अधिकांश यमजोंके जोड़े, जो द्विअंडज[१०] या भ्रातृ-यमज कहलाते हैं, इसलिए यमज हुए, क्योंकि दो अलग स्त्री-बीज[११] प्रायः एक ही समयमें, अलग-अलग शुक्र-कीटोंके द्वारा निषिक्त हुए। जहाँ तक वंशानुक्रमका प्रश्न है, अन्य सहोदरोंकी अपेक्षा उनमें कोई अधिक समानता नहीं मिलती। भ्रातृ-यमज बहुधा जितने एकलिंगीय होते हैं, उतने ही भिन्नलिंगीय भी, किन्तु एकरूप-यमज तो अनिवार्य रूपसे एकलिंगीय होते हैं। उनका मादा या नर होना, अ-अ या अ-ब जिस प्रकारका स्त्रीबीज-निषेचन हुआ हो, उसपर निर्भर करता है।

एकरूप-यमजों का परीक्षण करने पर पता चला है कि वे भ्रातृ-यमजों या अन्य सहोदरोंकी अपेक्षा बुद्धिमें एक-दूसरे के काफ़ी समान होते हैं। नीचे एक तालिका दी जा रही है जिसमें एक ही लिंग[१२] के दो व्यक्तियोंकी तुलना करते हुए जो कई परीक्षण किये गये, उनके परिणाम दिये हुए हैं:

[१] intelligence genes [२] siblings [३] genes [४] environmentalist [५] hereditarian
[६] identical twins [७] fraternal twins [८] fertilized ovum [९] embryo [१०] two-egg [११] ova
[१२] sex
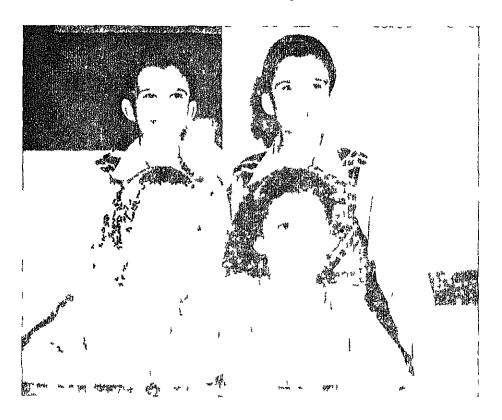
आकृति २६ एकरूप यमजो (आइडेन्टिकल ट्विन्स) के दो जोड़।

बुद्धि लब्धि के अंकोमें औसत अन्तर

एकरूप यमजोके मध्य	भ्रात यमजो के मध्य	भाइयो या बहिनोके मध्य	असम्बन्धित व्यक्तियोके मध्य
५	६	११	१५

हम देखते है कि एकरूप यमज एक दूसरेसे उतना ही अन्तर रखते है जितना «वही व्यक्ति» साधारणतया बार बार की परीक्षाओंमें स्वय अपनेसे अन्तर रखता है। इन औसतोमें इस का कोई भी लक्षण नही कि एकरूप यमज बुद्धिकी दृष्टिसे «जरा भी» अन्तर रखते हो, यद्यपि कुछ अपवादस्वरूप दशाओ—जैसे यदि एक यमजको कोई मस्तिष्क सम्बन्धी चोट पहुच जाय—में उनमें कुछ अन्तर होजाता है। वंशानुक्रमसे जैसी आशा की जासकती है, वैसे ही परिणाम ऊपरकी तालिका में दृष्टिगोचर होते है, केवल इसमें इतना अपवाद है कि भ्रातृ यमज आपसमें अन्य सहोदरोकी अपेक्षा कुछ अधिक समान है। चूकि भ्रातृ यमजोमें अन्य सहोदरोकी अपेक्षा पित्र्यकोकी कोई अधिक समानता नही होती, इसलिए उनमें जो निकट सादृश्य दिखायी देता है, वह परिवेशका प्रभाव होना चाहिए। उनको अन्य सहोदरोकी अपेक्षा समान परिवेशका लाभ उठानेकी अधिक सुविधा रहती है, क्योकि उन पर घर और स्कूलके प्रभाव समान रूपसे पडते है (और साधारणतया उनकी एक ही आयुमें परीक्षा ली जाती है, जैसा कि सामान्यतया सहोदरोके साथ सम्भव नही हो पाता)। हम यह भी समझ कर चलना चाहिए कि भ्रातृ यमजो की अपेक्षा एकरूप यमजो को अधिक समान परिवेश प्राप्त होता है, क्योकि दो समरूप बच्चोके प्रति एक सा व्यवहार किया जायगा और वे एक से परिवेशका चुनाव भी करेंगे। एकरूप यमजो मे भ्रातृ-यमजोकी अपेक्षा अधिक प्रेम भी रहता है और वे एक से शगल, खेल, खिलौने तथा स्कूल विषय चुनना पसन्द करते है (३८)। इसलिए परिवेशवादी यह दलील देंगे कि इन तथ्यो

से इसी सिद्धान्तकी पुष्टि होती है कि : एकरूप-यमजोंके लिए परिवेशमें सबसे कम भिन्नता होती है, उससे अधिक भिन्नता भ्रातृ-यमजोंको मिलती है, उससे भी अधिक सहोदरोंको और सबसे अधिक अलग-अलग परिवारोंके बच्चोंको; इसी क्रमसे बुद्धि-लब्धि-सम्बन्धी भिन्नता भी बढ़ती रहती है। अबतक जितनी सामग्री पर हमने विचार किया है, उससे हम इतने आश्वस्त नहीं हो सके कि दोनों प्रतिपक्षी सिद्धान्तोंमें से किसी एक को अमान्य घोषित कर सकें।

एकरूप-यमजोंका अलग-अलग पालन-पोषण. यदि हम परिवेशके मनोवैज्ञानिक प्रभावके सम्बन्धम कोई प्रयोग करना चाहते हों, तो इसका सबसे सुन्दर उपाय यह है कि एकरूप-यमजों को एक-दूसरेसे शैशवमें ही अलग करके भिन्न परिवारोंमें उनका पालन-पोषण किया जाय। हम इन यमजों पर बराबर दृष्टि रखेंगे और उचित समय पर उनकी परीक्षा लेते रहेंगे। परिवेशके जिन तत्वोंकी हम जांच करना चाहेंगे, उन में बहुत भिन्नता लानेकी कोशिश करेंगे। यदि हम स्कूल की समस्यामें ही रुचि लेते हैं, तो यमजोंमें से एक को तो हम हाईस्कूल और कॉलेजकी शिक्षा दिलाएंगे और दूसरेको केवल तीसरी कक्षा तक की ही शिक्षा। यदि हम एकलौते बच्चे की तरह लालन-पालन का व्यक्तित्व पर पड़नेवाला प्रभाव देखना चाहेंगे, तो एक यमजको किसी ऐसे घरमें रखेंगे जिसमें उसके सिवा दूसरा बच्चा न हो और दूसरे यमजको कई अन्य बच्चोंसे भरे-पूरे परिवारमें रखेंगे।

इस तरहका कोई योजनाबद्ध परीक्षण अभी तक नहीं किया जासका है, किन्तु सम्भवतः एकरूप-यमजोंके कई ऐसे जोड़े मिलेंगे जो प्रारम्भिक बचपनमें ही अलग कर दिये गये हों और जिनका लालन-पालन भिन्न परिवेशोंमें हुआ हो। अन्वेषकोंके सतत प्रयत्नके फलस्वरूप इस तरहके बीससे अधिक जोड़े ढूंढ़े जासके हैं और किशोरावस्था या वयस्कावस्थामें उनकी परीक्षा लेकर उनकी योग्यताओंका निर्धारण भी किया जा चुका है (२२)। कई उदाहरण तो ऐसे भी मिले हैं कि यमज बालक एक-दूसरे के अस्तित्वसे पूर्णतः अनभिज्ञ रहते हुए वयस्क हो गये और एक-दूसरेको उन्होंने तभी पहचाना जब किसी व्यक्ति ने दोनोंके रूप-सादृश्य की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया।

कुछ इस तरहके उदाहरण मिले कि एक यमजको दूसरेकी अपेक्षा अधिक मैत्रीपूर्ण परिवार मिला, या एक यमजको दूर-दूर तक यात्रा करनेका अवसर मिला, जबकि दूसरा यमज उस अवधिमें एक ही क़स्बेमें पड़ा रहा। कुछ मामलोंमें एक यमज को दूसरेकी अपेक्षा स्कूली शिक्षा बहुत अधिक मिली थी। एक लड़की ने कॉलेजकी शिक्षा समाप्त करके अध्यापकका पेशा अपना लिया, जबकि उसकी यमज बहिनका बचपन अधिकतर सीमाके जंगल प्रदेशों[१] में बीता जहां अभी आधुनिक सुविधाएं नहीं पहुंची थीं। वह गांवके प्राइमरी स्कूलमें दूसरी कक्षा तक ही पढ़ पायी, यद्यपि बादमें उसने एक अच्छा व्यवसाय शुरू कर दिया और एक बड़े शहरमें उसे एक दफ्तरमें क्लर्कीका काम भी मिल गया। ३५ वर्षकी आयुमें उसकी बुद्धि-लब्धि ९२ थी, जबकि कॉलेजमें शिक्षिता उसकी बहिनकी बुद्धि-लब्धि ११६ थी। २४ अंकोंका यह अन्तर एकरूप-यमजोंमें अबतक पाये गये अन्तरोंमें सबसे अधिक है। पांच अन्य परीक्षित मामलोंमें से एकमें एक यमजने दूसरेकी अपेक्षा बहुत ऊंची शिक्षा प्राप्त की थी। छै मामलोंका औसत निकालने पर यह देखा गया कि अच्छी शिक्षा प्राप्त यमज ने दूसरे कम शिक्षित यमजकी अपेक्षा बुद्धि-लब्धिमें १३ अंक अधिक पाये थे। इससे यह जान पड़ता है कि शिक्षाका अधिक अन्तर परीक्षित बुद्धिमें भी काफ़ी अन्तर उपस्थित कर सकता है।

परन्तु जब एकरूप-यमजों की स्कूली शिक्षामें बहुत अन्तर न हो, तब भिन्न घरोंमें लालन-पालन होनेके कारण ही उनकी बुद्धि-लब्धिमें कितना अन्तर होजाता है? यह अन्तर १ से १५ अंकों तक और औसतन ५ अंकों तक मिलता है। यह अन्तर उससे अधिक नहीं है जो एक-साथ लालित-पालित एकरूप-यमजोंमें या एक ही व्यक्तिकी दुबारा ली गयी परीक्षामें प्रायः मिलता है। चरम-परिवेशवादियोंके तर्कके विरुद्ध यह एक प्रबल प्रमाण है। यदि एक समाजके बच्चोंमें पाये जाने वाले अन्तरका कारण उनके घरेलू परिवेशकी भिन्नता हो, तो एक ही वंशानुक्रमके, किन्तु विभिन्न घरोंमें पालित बच्चोंके मध्य केवल ५ अंकोंका नहीं, बल्कि १५ अंकोंका औसत अन्तर होना चाहिए।

एक-दूसरे से अलग किये हुए एकरूप-यमजोंसे प्राप्त प्रमाण से कोई अन्तिम निष्कर्ष निकालना इसलिए ठीक न होगा कि इस तरहके जितने जोड़े अभी तक पाये गये हैं और जितनों की परीक्षा ली गयी है, उनकी संख्या बहुत थोड़ी है। फिर भी इससे वंशानुक्रमवादी और परिवेशवादी, दोनोंके एकांगी मतों का खंडन होजाता है। इस साक्ष्यका वर्णन फिरसे करना ठीक होगा। परिवेश-सम्बन्धी एकांगी परिकल्पना[२] यह है कि एक समाजके बच्चे अपने भिन्न परिवेशों, विशेषतया घरेलू परिवेशोंके कारण बुद्धि-लब्धि में भिन्नता रखते हैं और यदि उस समाजके बच्चे वंशानुक्रमकी दृष्टिसे समान हों, तो भी वे अभी की भांति भिन्नता रखेंगे, क्योंकि उनके घरेलू परिवेशोंमें अन्तर है। इस परिकल्पनाकी परीक्षा समान वंशानुक्रमके जोड़ों[३] को विभिन्न घरोंमें रखकर ली गयी है। अलग किये हुए जोड़ोंकी बुद्धि-लब्धि में आगे चलकर औसतन १५ अंकोंका अन्तर होना चाहिए, किन्तु वास्तवमें

[१] backwoods [२] hypothesis [३] pairs

उनमें औसतन ५ अंकोंका ही अन्तर पाया जाता है। इसलिए हम व्यक्तियोंकी बुद्धिकी भिन्नताके सम्बन्धमें परिवेश-सम्बन्धी एकांगी व्याख्या को अमान्य कह सकते हैं।

वंशानुक्रमवादियों की एकांगी धारणा इस सम्बन्धमें यह होगी कि प्रत्येक व्यक्तिकी बुद्धि-लब्धि उसके वंशानुक्रम द्वारा निश्चित कर दी जाती है और शिक्षा या अन्य किसी परिवेश-सम्बन्धी प्रभावसे उसमें वृद्धि नहीं की जा सकती। निस्सन्देह वह ऐसे परिवेश-सम्बन्धी कारणोंसे नीचे गिरायी जा सकती है, जैसे जन्मके समय मस्तिष्क पर आघात पहुँच जाना—प्रत्येक व्यक्तिको यह तो स्वीकार करना ही होगा—किन्तु वह शिक्षाकी कमी या शिथिल, नीरस, अनुत्तेजक परिवेश के कारण, जैसाकि जंगल-प्रदेश या साधारण अनाथालय का होता है, नीचे नहीं गिरायी जासकती। इस मतके विरुद्ध हमारे सामने उस लड़कीका उदाहरण है जो जंगल-प्रदेशमें पली होने और कम शिक्षा पानेके कारण केवल ९२ अंककी बुद्धि-लब्धि पासकी, जबकि उसकी यमज बहिनकी बुद्धि-लब्धि ११६ थी। चूंकि दोनोंका वंशानुक्रम एक ही था, इसलिए पिछड़े प्रदेश की लड़कीमें भी अपनी बहिनकी बुद्धि-लब्धि तक पहुंचनेकी सामर्थ्य थी। एक अन्य एकरूप-यमज बहनोंके जोड़ेके मामले में, एक का पालन-पोषण एक कृषक परिवारमें किया गया और उसे केवल आठवीं कक्षा तक ही शिक्षा मिली, जबकि उसकी बहिन एक छोटेसे नगरमें रहती थी और हाई स्कूल तक शिक्षित भी थी। खेतों पर रहनेवाली लड़कीकी बुद्धि-लब्धि ८९ और नगरमें रहनेवाली लड़की की बुद्धि-लब्धि १०६ थी। यद्यपि बहुत थोड़ेसे उदाहरण इस तरहके मिल सके हैं, तो भी उनकी संख्या यह प्रमाणित करनेके लिए पर्याप्त है कि शिक्षा में काफ़ी अन्तर होनेके कारण बुद्धि-लब्धियों में अत्यधिक अन्तर हो सकता है। यद्यपि यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि क्या हमारे परीक्षणकी पद्धति इतनी अच्छी है कि पिछड़े गांव और खेतों पर रहनेवाली लड़कियोंको अपनी बुद्धि प्रकट करने का सुअवसर इसमें मिल सकता है ; तो भी हम निस्संकोच यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि शिक्षा और परिवेश-सम्बन्धी अवसर बौद्धिक प्रक्रिया को उत्तेजना देकर उन्हें उपयोगी धाराओंमें प्रवाहित कर सकते हैं और इस प्रकार व्यावहारिक रूपसे बुद्धिका स्तर ऊंचा उठा सकते हैं—और ऐसा किसी एक व्यक्तिके साथ ही नहीं, पूरी आबादीके साथ कर सकते हैं। परिवेशको उन्नत बनानेसे आबादीकी बुद्धिका सामान्य स्तर तो ऊंचा उठ सकता है, किन्तु इससे सभी व्यक्ति समान नहीं हो सकते। ऐसा होनेके बजाय उनकी असमानता और बढ़ जायेगी, क्योंकि तब वंशानुक्रमकी भिन्नताओंको अपना स्वरूप निखारनेका अवसर अधिक मिलेगा, जैसाकि हमने पहिले 'आयतों[1]' पर विचार करते समय देखा था।

जहां तक व्यक्तित्व पर परिवेशके पड़नेवाले प्रभावोंका सम्बन्ध है, अलग किये हुए एकरूप-यमजोंका अध्ययन करने से कोई निश्चित बात सिद्ध नहीं हो सकी है। ऐसे यमजोंका अध्ययन करनेवाले अन्वेषकों की सामान्य धारणा है कि उनकी सामाजिक अभिवृत्तियां कभी-कभी एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न होती हैं, जबकि उनके स्वभावों पर विभिन्न सामाजिक परिवेशों का कोई विशेष प्रभाव पड़ता नहीं दिखाई देता। कॉलेजमें शिक्षा पाई हुई और बादमें अध्यापिका का काम करनेवाली लड़कीकी व्यवहार-विधि परिमार्जित थी, अपने पहनावे और चाल-ढालके सम्बन्धमें वह सतर्क रहती थी और इस बातकी जी-तोड़ चेष्टा करती थी कि दूसरों पर उसकी अच्छी छाप पड़े। दूसरी ओर जंगल-प्रदेशमें थोड़ी शिक्षा पायी हुई उसकी बहिन, जो बादमें व्यवसाय और क्लर्कोंके पेशेमें भी पड़ी, 'केवल कामकी रूखी-सूखी बातों तक ही नाता रखती थी, उसके पास कोई सामाजिक आकर्षण न था और न वह दूसरों पर अपनी अच्छी छाप डालनेकी परवाह ही करती थी'। एकरूप-यमजों का एक दूसरा जोड़ा (६) स्वभावतः बहुत क्रियाशील, बातूनी, झक्की, चिड़चिड़ा, मैदानमें खेले जानेवाले खेलोंका शौकीन था, और ये लक्षण दोनोंमें कमसे कम १८ वर्षकी आयु तक अपरिवर्तित रहे। एकरूप-यमज लड़कियोंके इस जोड़ेकी एक लड़की अधिक सामाजिक परिवारमें पाली गयी थी। वह १२ वर्ष की आयुमें ही अत्यधिक सामाजिक हो चुकी थी, जबकि उसकी दूसरी बहिन १८ वर्षकी आयुमें पहुंचकर सामाजिकता में उसके समान हो पायी। इन दोनों लड़कियोंमें बचपनमें अध्यवसाय का अभाव था, किन्तु एक को दूसरी की अपेक्षा अध्यवसाय और उत्तरदायित्व की शिक्षा अधिक मिली, और शिक्षाकी इस भिन्नता ने १८ वर्षकी आयु तक अपना परिणाम दिखाया।

परिवेश को उन्नत करके व्यक्तित्व और बुद्धिको उन्नत बनाना. वंशानुक्रम को स्थिर बनाये रखनेके लिए एक अचूक विधि यह जान पड़ेगी कि एक व्यक्तिको पहले तो प्रतिकूल परिवेशमें रखा जाय और बादमें उसी को अपेक्षाकृत अनुकूल परिवेशमें रखा जाय। यदि हम बच्चोंके एक समूह को नीरस परिवेशसे निकालकर अधिक उत्तेजक परिवेशमें रख सकें, तो उनकी बुद्धि-लब्धि बढ़नी चाहिए। प्रश्न यह रहेगा कि हम इस प्रकार कितने सफल हो सकेंगे। इस तथ्यके कारण कठिनाई उत्पन्न होती है कि बच्चा अपने व्यक्तित्वके सभी जन्मजात लक्षणोंका सदा प्रदर्शन नहीं करता और न बुद्धिकी अपनी सारी सम्पत्ति ही वह किसीके सामने खोलकर रखता है। बड़े बच्चों और वयस्कोंकी बुद्धिमें भाषाके

[1] rectangles

उपयोग पर निर्भर रहनेवाली योग्यताएं बहुत महत्त्वपूर्ण तत्व हैं। जब तक बच्चा बोलने नहीं लगता, हम उसकी इन योग्यताओंका परीक्षण नहीं कर सकते और इसी कारणवश बहुत छोटे बच्चेकी बुद्धि-परीक्षाओं का कोई मूल्य नहीं होता, क्योंकि उसके आधार पर हम भविष्यवाणी नहीं कर सकते कि वह स्कूल या कॉलेज जानेकी अवस्थामें कितना बुद्धिमान् हो जायेगा। यद्यपि वही पित्र्यैक[1] हर आदमीमें जीवन भर विद्यमान रहते हैं, तो भी इसका यह अर्थ नहीं निकलता कि वे सभी पित्र्यैक उसके प्रारम्भिक वर्षोंमें ही क्रियाशील हो जाते हैं। फलतः अनुसन्धानकी यह पद्धति पहली नजरमें जितनी सरल दिखायी देती है, उतनी सरल वह है नहीं।

फिर भी, हमारे पास यह कहनेके लिए प्रमाण हैं कि परिवेशमें उन्नति करनेसे किसी बच्चेके व्यक्तित्व या बुद्धिमें उन्नति की जा सकती है। पिछले प्रकरणमें हमने देखा था कि थोड़ी-सी प्रशिक्षा देनेके बाद ही बच्चोंने किस प्रकार अपने शर्मीलेपन, झिझक, दूसरोंके प्रति अविश्वास और झूठ बोलने तथा चुराने की अपनी प्रवृत्तियों पर विजय पा ली थी। ऐसे सामाजिक लक्षणों पर सामाजिक परिवेशों का बड़ा प्रभाव पड़ा, यद्यपि अधिकतर शारीरिक और स्वाभाविक लक्षण ज्योंके त्यों बने रहे। कभी-कभी स्वभाव-सम्बन्धी लक्षणों को उन्नत बनानेके लिए ग्रन्थि-चिकित्सा भी उपयोगी होती है।

शिकागो नगरके एक उपेक्षित मोहल्लेके लड़के अपने क़ानून-विरुद्ध व्यवहारके लिए बहुत बदनाम थे। उनको एक खेलके मैदान और सभा-स्थल की सुविधा देकर उनकी बहुत-सी शरारतोंसे पिंड छुड़ाया जा सका था (२८)। इसी तरह टेनेसी[2] के पर्वतीय क्षेत्रके बच्चोंके लिए स्कूल-सम्बन्धी अधिक सुविधाएं सुलभ करके उस क्षेत्रके बच्चोंकी बुद्धि-लब्धि का स्तर ऊंचा उठाया जा सकता था (३७)।

इतर परिवारोंमें पोषित बच्चे[3]. बच्चों का प्रबन्ध करने वाले लोगोंके पास जो अनाथ और परावलम्बी बच्चे आते हैं, वे अपेक्षाकृत निम्नस्तरके घरोंसे आते हैं और उन्हें अपेक्षाकृत अच्छे घरोंमें रखा जाता है। प्रबन्धक इस बातका ध्यान रखते हैं कि इन बच्चोंको ऐसी जगहोंमें रखा जाय जहां इनके साथ अच्छा व्यवहार हो सके। प्रबन्धक विशेषतः इस बातका ख्याल रखते हैं कि किसी हीनबुद्धि या असाधारण[4] प्रतीत होनेवाले बालक को किसी व्यक्तिका दत्तक पुत्र न बनने दें। जो दम्पति बच्चा गोद लेना चाहते हैं वे स्वाभाविकरूपसे यह जानने को उतावले होते हैं कि बच्चे का वंश क्या है या क्या वह अपने ऊपर, अपने सुरुचिपूर्ण घरेलू परिवेश पर और सुशिक्षाके प्रबन्ध पर इस बातके लिए कि बच्चा बुद्धिमान्, सच्चरित्र और अच्छे व्यक्तित्व का बन जायेगा, निर्भर कर सकते हैं?

इतर घरोंमें पलने वाले बच्चों का निरीक्षण करने पर पता चला है कि वे कुल मिलाकर अपने माता-पितासे अच्छे ही निकलते हैं। उदाहरणके लिए, यदि बच्चेकी अपनी माता या पिता शराबी होता है तो बच्चा अच्छे घरमें पलनेके बाद शराब पीनेकी प्रवृत्ति नहीं दिखाता (२४)।

इतर घरोंमें पले हुए बच्चोंके कई नमूनों (शिकागोमें १२, कैलीफ़ोर्नियामें ४, मिन्नेसोटामें १८) का परीक्षण करने पर, पता चला कि उनकी औसत बुद्धि-लब्धि लगभग १०५ या ११० है। ये बच्चे शिशुओंके रूपमें गोद लिये गये थे और कई वर्ष तक अच्छे घरोंमें रह चुके थे, उसके बाद उनकी परीक्षा ली गयी थी। उनके अपने माता-पिताओंकी तो परीक्षा नहीं ली गयी, परन्तु उनके विषयमें जो कुछ जानकारी प्राप्त की जा सकी, उसके आधार पर कहा जा सकता है कि उनकी बुद्धि-लब्धि सम्भवतः औसतन १०० के लगभग रही होगी। यदि माता-पिता का औसत १०० था, तो उनके बच्चों का औसत भी १०० ही होना चाहिए था; और ५–१० अंक जो अधिक हुए, वे अच्छे घरेलू वातावरण और धर्म-माता-पिताओं के अच्छे प्रभावके कारण थे। टॉरोन्टो[5] के इसी तरहके बच्चों के कुछ नमूनों का परीक्षण करते समय उनकी अपनी माताओं की परीक्षा ली गयी, तो देखा गया कि उनकी औसत बुद्धि-लब्धि ८४ थी। कई वर्ष तक इतर घरोंमें रहनेके बाद बच्चोंकी बुद्धि-लब्धि औसतन ९८ थी। यहां हमें आशा करनी चाहिए कि बच्चे अपनी माताओं से बढ़कर निकलेंगे, क्योंकि माताओं की बुद्धि-लब्धि इतनी कम निकली, (जैसा कि पहिले स्पष्ट किया जा चुका है) साथ ही हमें यह आशा करनी चाहिए कि उनका औसत ९८ के बजाय ९२ के आस-पास पहुंचता और इस तरह ६ अंकोंकी बुद्धि नये घरों का प्रभाव माना जायगा।

इतर घरोंमें पले हुए बच्चों का अध्ययन शिकागो और आयोवा[6] (२९, ३०) नगरोंमें हुआ। उनकी माताएं बहुत हीनबुद्धि थीं और कई वर्षों तक दूसरे घरोंमें रहनेके बाद उनकी परीक्षा ली गयी थी। इन परीक्षाओंसे पता चला कि ऐसे बच्चोंकी बुद्धि-लब्धि औसत या उससे कुछ ऊपर ही थी। तो क्या हम यह मानलें कि 'हीन वंशानुक्रमके बावजूद' अच्छे परिवेशके कारण इन बच्चोंकी बुद्धिमें उन्नति हुई? ऐसा मान लेनेका प्रलोभन होता तो है, परन्तु यह तर्कसंगत नहीं है, क्योंकि निश्चय ही कोई व्यक्ति उस सीमासे आगे अपना विकास नहीं कर सकता जो उसके वंशानुक्रम

[1] genes [2] Tennessee [3] foster children [4] abnormal [5] Toronto [6] Iowa

ने निर्धारित कर रखी है। यदि कोई बच्चा ११० बुद्धि-लब्धि तक पहुंच जाता है, तो निश्चय ही उसमें इसकी जन्मजात सामर्थ्य थी। हम यह नहीं कह सकते कि हीन वंशानुक्रमके बावजूद किसी बच्चे ने अच्छी प्रगति कर दिखायी, परन्तु हम यह कह सकते हैं कि उसने माता-पिताके पिछड़े होनेके बावजूद प्रगति कर ली। बच्चेके व्यक्तिगत वंशानुक्रम—उसके पित्र्यैकों[१]—की परख उसके माता-पिताके विषयमें प्राप्त जानकारीके आधार पर निश्चित रूपसे क्यों नहीं की जा सकती, इसके लिए हम पहले ही दो प्रमुख कारण बता चुके हैं। पहला कारण तो यह है कि बच्चेके पित्र्यैकों का संयोग उसके माता या पिताके पित्र्यैकोंसे भिन्न प्रकारका होता है। दूसरा कारण यह है कि सम्भव है, माता-पिता स्वयं कतिपय परिवेश-सम्बन्धी बाधाओंके शिकार रह चुके हों, इसलिए वे अपने वंशानुक्रमकी सम्भावनाओंसे घटिया उतरे हों। कुछ मामलोंमें माता किसी मस्तिष्क-सम्बन्धी चोटसे पीड़ित रह चुकी होती है और उसके हीनबुद्धि होनेके कई कारणोंमें से एक कारण यह भी हो सकता है। बहुधा माता प्रतिकूल परिवेशमें रहनेके कारण अपने पित्र्यैकों का पूरा उपयोग नहीं कर पाती।

किन्तु, यदि हम बच्चेके माता-पिता को देखकर भी उसके वंशानुक्रमकी परख निश्चयके साथ नहीं कर सकते, तो हम फिर उसे परख ही कैसे सकते हैं? केवल एक निश्चित रीति है—उसको मौक़ा दो! यथासम्भव हमें प्रयत्न करना चाहिए कि उसे अच्छे घर, अच्छे पड़ोस और अच्छे स्कूलकी सुविधा मिल सके। यदि वह किसी विलक्षण बुद्धि या विशेष योग्यता का प्रदर्शन करे, तो उसका निरीक्षण करते रहिए और उसे बराबर अवसर प्रदान करते जाइए! ऐसा करने पर 'हीन' माता-पिताओंके बच्चोंमें बहुधा वांछित व्यक्तित्व के लक्षणों और अच्छी बुद्धिका विकास स्वतः होगा। परिवेशवादियों ने कमसे कम इतना तो प्रमाणित कर ही दिया है। इससे व्यक्तियोंमें भिन्नता उत्पन्न करनेमें वंशानुक्रमका महत्त्व तो कम नहीं होता, परन्तु इससे परिवेशका महत्त्व अवश्य सिद्ध हो जाता है।

सामूहिक भिन्नताएं

मनुष्य संसारमें केवल व्यक्तिकी हैसियतसे ही नहीं रहते, बल्कि व्यक्तियोंके समूहों, परिवारों, धार्मिक और व्यावसायिक समूहों, जातियों और राष्ट्रोंके रूपमें भी रहते हैं। जिस तरह व्यक्तियोंमें भिन्नता होती है, उसी तरह क्या समूहोंमें भी भिन्नता होती है? इस प्रश्न पर विचार करते समय हमें न केवल समूहके औसतका, बल्कि प्रत्येक समूहमें रहनेवाले व्यक्तियों का भी ध्यान रखना होगा। साधारण नियम तो यह है कि समूहोंकी अपेक्षा व्यक्तियोंमें अधिक भिन्नता होती है। आकृति २८ में आप देख चुके हैं कि विभिन्न कुटुम्ब स्पष्टतया बुद्धि-लब्धिमें अन्तर रखते हैं; कुछ कुटुम्बों का औसत दूसरोंकी अपेक्षा निश्चय ही ऊंचा होता है। किन्तु हर परिवारमें रहनेवाले व्यक्तियोंके वितरण और विभिन्न परिवारोंके अतिछादन[२] को भी देखना चाहिए। निम्न औसत वाले परिवारोंके कुछ सदस्य ऊंचे औसत वाले परिवारोंके कुछ सदस्योंकी भांति ही अपने कार्यमें कुशलता दिखाते हैं। जो बात परिवारोंके विषयमें सत्य है, वह अन्य समूहोंके विषय में भी सत्य है, अर्थात् औसतमें एक समूह दूसरे समूह को पीछे छोड़ सकता है, किन्तु अतिछादन प्रायः अधिक और महत्त्व-पूर्ण होता है।

नागर बुद्धि[३] और ग्रामीण बुद्धि[४]. जब कि नगरोंमें रहने वाले बालकोंकी बुद्धि-लब्धि औसतन १०० या उससे कुछ ऊंची रही है, तब देहातके बालकोंने साधारणतया ९०-९५ का औसत दिखाया है। निस्सन्देह इसमें अतिछादनकी काफ़ी मात्रा रही है। इस तरहके अन्तर का एक कारण तो अंशतः वंशानुक्रम हो सकता है, क्योंकि बहुधा योग्य युवक नगरोंमें आकर बस जाते हैं और अधिक बौद्धिक व्यवसाय अपना लेते हैं; उनके बच्चों को औसत पित्र्यैकों[१] से कुछ अच्छे पित्र्यैक मिलनेकी सम्भावना रहती है। परिवेशके पक्षमें यह बात है कि नगरके बच्चोंको अच्छे स्कूलोंकी सुविधा मिल सकती है जिससे बुद्धि-परीक्षाओंमें उन्हें कुछ सहायता मिलती है। एक ही वंशानुक्रमके बच्चों—अलग किये हुए एकरूप-यमजों—में से एक का लालन-पालन यदि नगरमें हो और दूसरे का लालन-पालन गांवमें, तो पहिले यमजकी बुद्धि-लब्धि ऊंची होती है, विशेषतया तब, जब उसको विस्तृत शिक्षा मिली हो। किन्तु जिन देहातोंमें उच्च स्तरके स्कूलोंकी अच्छी व्यवस्था है, वहांके बच्चोंकी बुद्धि-लब्धि नगरके बच्चोंकी बुद्धि-लब्धि से कम न होगी। स्कॉटलैंडमें किये हुए एक प्रयोगके परिणामों से यह बात मालूम हुई है। इस प्रयोगमें सन् १९२६ की चार निश्चित तारीखोंमें पैदा हुए सभी बच्चोंकी परीक्षा ली गयी थी। जब वे ९-११ वर्षके हो गये थे, तब उनकी परीक्षा हुई थी और इन ८७४ बच्चोंकी औसत बुद्धि-लब्धि १०० थी। इसमें देहाती और नागर बच्चोंकी बुद्धि-लब्धियां लगभग समान ही आयी थीं (१९)।

नगरनिवासी यह मान सकते हैं कि यदि नगरोंमें अच्छे स्कूलों की सुविधाकी बात छोड़ दें, तो भी वहां देहातकी अपेक्षा अधिक उत्तेजक बौद्धिक परिवेश मिलता है जिससे बच्चेके

१ genes २ overlap ३ urban ४ rural
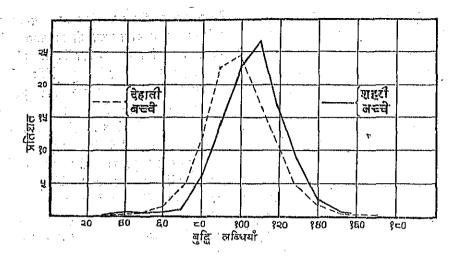
आकृति ३०. नागर और ग्रामीण बच्चोंकी बुद्धि-लब्धियों का वितरण [टरमैन और मेरिल, ३५]।

विकासमें मदद मिलती है, किन्तु परीक्षण करने पर यह बात सत्य नहीं सिद्ध हुई[1]। 'अमेरिकामें कौन-क्या है'[2] शीर्षक पुस्तकमें गिनाये हुए अधिकांश व्यक्ति शहरोंमें पैदा हुए थे, फिर भी उनमें से लगभग २३ प्रतिशत व्यक्ति किसानोंके घर पैदा हुए थे, और कभी-कभी तो देहाती वातावरण उनके लिए, विशेषतया वैज्ञानिक रुझानके बच्चोंके लिए अधिक उत्तेजक पाया गया (३६)। देहाती बच्चेका मस्तिष्क वैसा ही क्रियाशील हो सकता है, जैसा कि शहरी बच्चेका मस्तिष्क; भले ही उसके मस्तिष्कमें उससे भिन्न बातें आती हों, और चूंकि बुद्धि-परीक्षाओं का निर्माण नगरनिवासी मनोवैज्ञानिक करते हैं, इसलिए सम्भव है कि उनके न चाहते हुए भी ये परीक्षाएं नगरके बच्चोंके लिए अधिक अनुकूल पड़ें। नीचे दिये हुए परीक्षा-विषय को देखिए: यह एक अव्यवस्थित वाक्य है जिसे व्यवस्थित करना है:

« लिए के रवाना हम पिकनिक सुबह हुए ही »

इस वाक्यका अर्थ नगरका बालक देहातके बालक को अपेक्षा अधिक अच्छी तरह समझ सकता है। परीक्षाके कुछ ऐसे प्रश्न जो बच्चेके परिवेशसे मेल नहीं खाते, बच्चेकी बुद्धि-लब्धि को ५ या १० अंक तक कम कर सकते हैं। किसी ऐसी परीक्षा का निर्माण करना, जो विभिन्न परिवेशोंमें रहनेवालोंके लिए समानरूपसे न्यायपूर्ण हो, यदि असम्भव नहीं तो कठिन तो अवश्य ही है (१६)। यहां तक कि व्यावसायिक समूहोंमें पाये जानेवाले अन्तर भी «आंशिक रूपसे» अयथार्थ सिद्ध होसकते हैं, क्योंकि अनजानमें ही परीक्षाएं यांत्रिक कार्यों या बाहरी कार्योंमें लगे हुए व्यक्तियोंकी अपेक्षा व्यावसायिक व्यक्तियोंके अनुकूल पड़ सकती हैं।

बुद्धिमें पेशेके कारण होनेवाले अन्तर. चूंकि विभिन्न पेशों में बुद्धिकी आवश्यकता भिन्न-भिन्न रूपसे पड़ती है, इसलिए हमें आशा करनी चाहिए कि पेशे-सम्बन्धी कारणोंसे बुद्धिमें अन्तर हो सकता है। हमें इसके उदाहरण मिलते भी हैं। प्राय: देखा जाता है कि बुद्धि-परीक्षाओंमें व्यावसायिक आदमी[4] सब से ऊंचे अंक प्राप्त करते हैं, पुस्तपाल[5] और आशुलिपिक[6] उन से कुछ कम किन्तु ऊंचे अंक प्राप्त करते हैं, कारीगर लोग सामान्य ऊंचे अंक पाते हैं और ऐसे मजदूर जो सीधे-सादे हाथके कामोंमें लगे हैं सबसे कम अंक प्राप्त करते हैं (देखिए आकृति ३१)। हमें जिस चीजकी आशा नहीं करनी चाहिए, और जो वास्तवमें आश्चर्यजनक है, वह यह है कि प्रत्येक पेशेमें बुद्धिका एक विस्तृत क्षेत्र[7] पाया जाता है। इसके अलावा विभिन्न पेशोंके अत्यधिक अतिछादनकी बात तो है ही। प्रत्येक पेशेमें बुद्धिके प्राप्तांक बहुत फैले हुए होते हैं। व्यावसायिक व्यक्तियोंका एक छोटा प्रतिशत नीचे अंक पाता है और श्रमिकोंका एक छोटा प्रतिशत ऊंचे अंक पाता है। इसमें सन्देह नहीं कि एक बड़े समूह—जैसे, मजदूरोंके समूह—के 'छोटे प्रतिशत' का अर्थ है बहुतसे व्यक्त (२,१४)।

[1] ध्यान रहे कि लेखक पश्चिमी देशोंके नगरों और ग्रामोंकी तुलना कर रहा है जहांके ग्राम भी काफ़ी प्रगतिशील हैं—सम्पादक
[2] Who's Who in America
[3] occupational differences
[4] professional men
[5] book-keepers
[6] stenoraphers
[7] range

अब हम एक चुनौती देनेवाला तथ्य उपस्थित करते हैं: बच्चे न्यूनाधिक रूपसे अपने पिताओंके पेशोंके अनुसार अंक पाते हैं। व्यावसायिक व्यक्तियों[1] और अधिशासकों[2] के बच्चे बुद्धि-परीक्षाओंमें सबसे ऊंचे अंक पाते हैं, जबकि साधारण मजदूरी करने वालोंके बच्चे सबसे नीचे अंक। कई स्थानों और कई देशोंमें ऐसा देखा जाता है। निम्नलिखित तालिका में इन बच्चोंके परीक्षणसे प्राप्त परिणामोंकी एक अच्छी बानगी प्रस्तुत की जा रही है:

विभिन्न व्यावसायिक समूहोंके व्यक्तियोंके बच्चोंकी बुद्धि-लब्धि के औसत

«पिता का पेशा»	«बच्चेकी औसत बुद्धि-लब्धि»
व्यावसायिक	११६
अर्ध-व्यावसायिक और व्यवस्थापकीय	१११
क्लर्की, कौशलपूर्ण व्यवसाय और फुटकर व्यापार	१०७
अर्धकौशलपूर्ण, मामूली क्लर्की और छोटे व्यापार	१०४
मामूली कौशल वाले	९९
दैनिक मजदूरी करनेवाले	९६

टर्मेन और मेरिल ने अमेरिकाके श्वेतांग लोगोंकी एक बड़ी बानगीकी परीक्षा लेकर ये औसत मालूम किये थे। हब्शी बालकोंमें इस प्रकारके पेशे-सम्बन्धी अन्तर देखे गये हैं; जापान तथा कई योरोपीय देशोंमें भी ऐसा पाया गया है।

यद्यपि इस तालिकामें विभिन्न पेशों वाले समूहोंका सच्चा अन्तर दिखाया गया है, तो भी इन आंकड़ोंसे हमें भ्रम होसकता है, यदि हम यह ध्यान न रखें कि ये औसतके आंकड़े हैं और हर समूहमें बच्चोंकी बुद्धि-लब्धियां बहुत बिखरी हुई रहती हैं। प्रत्येक पेशेके समूहमें प्रखर-बुद्धि और मन्द-बुद्धि बालक पाये जाते हैं। आकृति ३१ में पिताओंके वितरणके सम्बन्धमें जो अतिछादन[3] दिखायी दिया है, उससे अधिक अतिछादन[3] बच्चोंके वितरणमें पाया जाता है। कम बौद्धिक पेशेवाले समूहोंसे प्राप्त होनेवाले प्रखर-बुद्धि बालकोंकी कुल संख्या बहुत अधिक है, हालांकि अधिक बौद्धिक पेशेवाले समूह अपने हिस्से से अधिक प्रखर-बुद्धि बालक, विशेषत: सबसे प्रखर-बुद्धि बालक, समाजको प्रदान करते हैं (७, ३४)।

अब प्रश्न यह उठता है कि किसी खास पेशेसे सम्बन्ध रखने वाले बच्चोंकी औसत बुद्धि-लब्धि किन्हीं अन्य पेशोंसे सम्बन्धित बच्चोंकी औसत बुद्धि-लब्धिसे ऊंची क्यों होती है? क्या यह वंशानुक्रमके कारण है—क्या अधिक बुद्धिमान् माता-पिता अपने बच्चोंको अधिक बुद्धि-पित्र्यैक विरासतमें देते हैं? क्या यह इस कारण है कि अधिक बुद्धिमान् माता-पिता अपने बच्चोंको अधिक उत्तेजक बौद्धिक वातावरण प्रदान करते हैं? केवल इस तथ्यसे कि बच्चे बौद्धिक दृष्टिसे अपने माता-पिता के समान होते हैं, न हम वंशानुक्रमको श्रेय दे पायेंगे और न परिवेशको, क्योंकि जो माता-पिता अपने बच्चेको अच्छे वंशानुक्रम की धरोहर सौंपते हैं, वे सामान्यतया अच्छा परिवेश भी प्रस्तुत करते ही हैं। दूसरेके घरोंमें पले हुए बच्चे, जो विभिन्न पेशोंवाले व्यक्तियोंके दत्तक पुत्र हो जाते हैं, इस सम्बन्धमें कुछ जानकारी करा सकते हैं। कुल मिलाकर, कुशल कारीगरों[4] द्वारा गोद लिये गये बच्चोंकी औसत बुद्धि-लब्धि की अपेक्षा व्यावसायिकों[1] द्वारा गोद लिये गये बच्चोंकी औसत बुद्धि-लब्धि ऊंचे दर्जेकी होती है। किन्तु विभिन्न पेशोंके समूहों के अपने बच्चोंके बीच जितना अन्तर होता है, उससे कम अन्तर गोद लिये हुए बच्चोंमें मिलता है। इतर घरोंमें पले हुए बच्चोंके सम्बन्धमें कैलीफ़ोर्निया नगरमें जो अध्ययन हुआ था, उसके परिणामोंको हम नीचे लिखी तालिका में दे रहे हैं। मिनेसोटा में किये गये अध्ययनमें भी ऐसे ही परिणाम दिखायी दिये थे।

पिताओं, अपने बच्चों और गोद लिये गये बच्चोंकी औसत बुद्धि-लब्धियां

«पिताओंका पेशा»	«पिताओं की बुद्धि-लब्धि»	«अपने बच्चों की बुद्धि-लब्धि»	«दत्तक बच्चों की बुद्धि-लब्धि»
व्यावसायिक	१२३	११९	१०९
अर्ध-व्यावसायिक इत्यादि	११९	११९	१०९
छोटे पैमानेका व्यापार	११०	११६	१०८
कुशल श्रम	१०१	१०६	१०५

दत्तक बच्चे और अपने बच्चे एक ही घरोंके रहनेवाले न थे, लेकिन वे ऐसे घरोंके बच्चे थे जो पिता के पेशे और परिवारकी अच्छाई की दृष्टिसे लगभग समान थे (५)।

इस तालिकासे यह प्रकट होता है कि एक समूहसे दूसरे समूहके पिता अपने बच्चोंकी अपेक्षा अधिक भिन्नता रखते हैं तथा दत्तक बच्चोंकी अपेक्षा भिन्नताकी मात्रा तो और भी अधिक होती है। उच्चतमसे निम्नतम समूहमें पिता औसतन २२ अंकोंका अन्तर रखते हैं, अपने बच्चे १३ अंकोंका और पोषित बच्चे केवल ४ अंकोंका। पोषित बच्चोंमें हल्का-सा अन्तर केवल परिवेशके कारण होता है, किन्तु अपने बच्चों

[1] professional men [2] executives [3] overlapping [4] skilled workmen
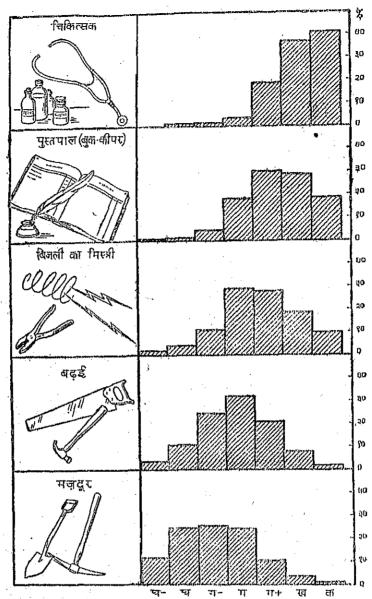
आकृति ३१. १९१७-१८ के सैन्य-परीक्षणोंके अनुसार विभिन्न व्यवसायोंमें पायी जानेवाली बुद्धि। दो तथ्य तो स्पष्ट हैं: अधिक बुद्धि वाले व्यवसायोंमें प्राप्तांक उच्चतर हैं और सभी व्यवसायोंमें बहुत अतिछादन (ओवरलैपिंग) है [यर्की, ४३ से संगृहीत सामग्री]।

में पायी जानेवाली भिन्नता वंशानुक्रम और परिवेशके सम्मिलित प्रभावके कारण होती है। इस और अन्य प्रकारके परिणामोंसे पता चलता है कि बच्चोंकी बुद्धिमें पेशेके कारण होनेवाले अन्तर उत्पन्न करनेके लिए वंशानुक्रम और परिवेश, दोनों ही उत्तरदायी हैं—इसमें वंशानुक्रम कम से कम उतना ही प्रबल तत्व है जितना परिवेश। यदि व्यक्तिगत बुद्धि-लब्धियोंसे, जो ५० से लेकर १५० के ऊपर तक फैली हैं, तुलनाकी जाय, तो 'अपने' बच्चोंकी पेशे के कारण पैदा होने वाली भिन्नता अपेक्षाकृत कम लगती है। राष्ट्रके अधिकांश प्रखर-बुद्धि बालक मध्यम पेशेवाले विशाल समूहसे आते हैं।

जातिगत भिन्नताएं[1]. यह विश्वास कि जातियां और राष्ट्र योग्यता और सामान्य उत्कृष्टतामें असमान हैं, प्रायः सम्पूर्ण विश्वमें व्यापक है। प्रत्येक जाति या राष्ट्रको अपनी ही उच्चताका दृढ़ विश्वास है ! इन विवेकहीन विश्वासोंके कारण राष्ट्रों और प्रत्येक राष्ट्रकी जनसंख्याको बनाने वाली विभिन्न जातियोंमें झगड़े होते रहते हैं। यदि विज्ञान इन प्राचीन भ्रामक विश्वासोंकी पोल खोल सके, तो मानव जातिका बड़ा उपकार होगा।

फिर भी, हम विज्ञान पर इस बातके लिए जोर नहीं डाल सकते कि वह जातियोंकी समानताकी बात प्रमाणित ही करे, जैसे कि असमानताकी बातको प्रमाणित करनेके लिए हम जोर नहीं डाल सकते। विज्ञानको तथ्योंका अनुसंधान करना है। यदि वैज्ञानिक समाजके लिए उपयोगी होना चाहता है, तो उसे मनचाहा विचार छोड़कर वास्तविक तथ्योंको बिना नमक-मिर्च मिलाये प्रकट करना चाहिए और जितने तथ्योंका उसे ज्ञान हो, उनसे अधिक का ज्ञाता दिखानेका ढोंग नहीं रचना चाहिए।

जातीय-श्रेष्ठता[2] का अर्थ यह होना चाहिए कि एक जाति दूसरी जातियोंसे अच्छे वंशानुक्रम वाली है और उसमें अपेक्षाकृत अच्छे पित्र्यैक हैं। किन्तु जनसाधारणकी धारणा इस सम्बन्धमें बहुत स्पष्ट नहीं है। जब लोग जातिगत श्रेष्ठताकी बात करते हैं, तब बहुधा उनका तात्पर्य 'सांस्कृतिक श्रेष्ठता' से, अर्थात् कला, साहित्य, विज्ञान, उद्योग, शासन, धर्म, रीति-रिवाज और रहन-सहनके स्तरकी श्रेष्ठतासे होता है। समूहोंमें लड़ाई-झगड़े सांस्कृतिक श्रेष्ठताकी रूढ़ धारणाके साथ-साथ जातिगत श्रेष्ठताकी रूढ़ धारणाके कारण भी उत्पन्न होते हैं। यह धारणा कि 'हमारी संस्कृति सब तरहसे दूसरोंकी संस्कृतिसे श्रेष्ठ है' उतनी ही विवेकहीन है, जितनी जातीय श्रेष्ठता-सम्बन्धी धारणा। मानवविज्ञान[3] की दृष्टिसे विभिन्न संस्कृतियोंका जो अध्ययन हुआ है, उससे सामान्य मानव जातिके प्रति उदारता और सहनशीलताकी भावनाकी वृद्धि होती है।

निस्सन्देह सांस्कृतिक श्रेष्ठताका कारण जातिगत श्रेष्ठता हो सकती है। जिस जाति[4] में सर्वोत्तम पित्र्यैक होंगे, वही सर्वश्रेष्ठ सभ्यता का उन्नयन करेगी, बशर्ते कि और सभी बातें समान रहें। किन्तु अन्य बातें कभी समान नहीं रहीं। एस्किमो[5] और मेक्सिकन आदि-निवासियों[6] से आशा नहीं की जासकती कि वे एक-सी संस्कृतिका विकास कर सकेंगे। विभिन्न जातियोंके लिए जल-वायु और परिवेश-सम्बन्धी तत्व भिन्न होते हैं और एक समूहका दूसरे समूहसे सम्बन्ध भी बहुत महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि संस्कृति एक समूहसे दूसरे समूहमें फैलती रहती है। श्रेष्ठ सभ्यता इस बातका प्रमाण नहीं है कि उस जातिके पित्र्यैक भी श्रेष्ठ हैं, क्योंकि किसी भी राष्ट्र ने बिना अन्य राष्ट्रोंसे सम्पर्क बढ़ाये अपनी सभ्यता का निर्माण नहीं किया है। सबसे महान् राष्ट्र सबसे अधिक दूसरोंसे गुण बटोरने वाले हैं। प्राचीन यूनानियों ने अपनी वर्णमाला फ़ीनीशनों[7] से और अपनी कला के मूलतत्व मिश्रवासियोंसे पाये थे। इसलिए यद्यपि हम यूनानियोंकी संस्कृतिको अत्यन्त श्रेष्ठ मानते हैं, तो भी हमें यह विश्वास नहीं है कि उनके पास श्रेष्ठ पित्र्यैक[8] भी थे।

संस्कृति-सम्बन्धी तर्कोंको अविश्वसनीय मान लेनेके बाद हम बुद्धि-परीक्षाओं पर अपनी आशा टिकाते हैं और देखना चाहते हैं कि जातिगत समानता या असमानता सिद्ध करने में उनका कुछ उपयोग किया जा सकता है, या नहीं। हमारे सामने तुरन्त दो कठिनाइयां उपस्थित होती हैं: ऐसे परीक्षा-विषयोंका चुनाव, जो विभिन्न संस्कृतिवाली जातियों के लिए समान रूपसे न्यायपूर्ण हो सकें, और परीक्षा लेनेके लिए विभिन्न जातियोंसे अच्छी और समान स्तरकी बानगी छांटनेकी कठिनाई। अमेरिकाके विभिन्न भागोंमें जब कभी रेड इंडियनों या हब्शियोंके स्कूली बच्चोंकी परीक्षा ली गयी है, तब उनकी बुद्धि-लब्धि निम्नकोटि की---९० से अधिक नहीं---पायी गयी है। लेकिन हम जानते हैं कि परीक्षाओंमें उनके साथ पूर्णतः न्याय नहीं हो सका, क्योंकि उनकी स्कूली शिक्षा उतनी अच्छी तरह नहीं हो सकी जितनी श्वेतांग बच्चों की। इसके अलावा उनकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि भी भिन्न रही है। इन कारणोंके लिए कितनी छूट दी जाय, हम नहीं कह सकते। कुछ हब्शी और रेड इंडियन बच्चोंके नमूनोंने श्वेतांग बच्चोंकी ही भांति बुद्धि-लब्धि १०० दिखायी है। ओक्लाहोमा[9] के ओसेज[10] इंडियनोंके बच्चोंके सम्बन्धमें यह बात सही साबित हुई है। यह कबीला बहुत समृद्ध और अंग्रेजी भाषा भाषी है (२५)। परन्तु हम नहीं कह सकते कि ओसेज कबीले वाले रेड इंडियनोंके सही नमूने माने जासकते हैं। सम्भव है, वे श्रेष्ठ नस्लके हों। ऐरिज़ोना[11] के होपी इंडियन मनुष्यकी रेखाकृति खींचने और अन्य कृत परीक्षाओं[12] में श्वेतांग बच्चों से अधिक औसत अंक पा चुके हैं, जबकि दूसरे कबीलों ने बहुत नीचे औसत अंक—८५—पाये हैं (१०, १५)। सम्भव है कि ये परीक्षाएं सभी कबीलोंके लिए समान रूपसे उपयुक्त न रही हों, या विभिन्न कबीले पित्र्यैकोंकी दृष्टिसे एक-दूसरे से भिन्नता रखते हों, जैसा कि आप जानते ही हैं, परिवारोंमें ऐसी भिन्नता प्रायः मिलती है।

[1] race differences [2] race superiority [3] anthropology [4] race [5] Eskimo [6] Mexican Indians [7] Phoenicians (on the coast of Syria) [8] genes [9] Oklahoma [10] Osage [11] Arizona [12] performance test

जिन स्थानोंके हब्शी बच्चोंको पढ़ने-लिखनेकी अच्छी सुविधा मिली हुई है, वे कम सुविधा प्राप्त स्थानोंके हब्शी बच्चोंकी अपेक्षा बुद्धि परीक्षाओंमें अच्छे अंक प्राप्त करते हैं। यह सम्भव है कि हब्शी बालकों और श्वेतांग बालकोंमें साधारणतः जो अन्तर दिखायी देते हैं, वे सभी स्कूल-सम्बन्धी सुविधाओं और परिवेश-सम्बन्धी अन्य तत्वोंके कारण हों। यह सम्भव हो सकता है, किन्तु अभी तक इसे किसी ने प्रमाणित करके नहीं दिखाया। इस सम्बन्धमें एक उत्साह-वर्धक तथ्य यह है कि शिकागो, न्यूयॉर्क और वॉशिंगटनके कुछ सार्वजनिक स्कूलोंमें हब्शी बालकों ने सर्वाधिक बुद्धि-लब्धियां (१४० से २०० तक) प्राप्त की हैं और स्कूल तथा कॉलेजमें प्रशंसनीय स्थान प्राप्त किया है। इन प्रतिभाशाली बच्चोंमें से कुछ तो श्वेतांगों और हब्शियोंके मिश्रणसे उत्पन्न हुए हैं और कुछ विशुद्ध हब्शी हैं। ऐसे व्यक्तियोंके अस्तित्वसे यह बात तो प्रमाणित हो जाती है कि श्रेष्ठ बौद्धिक योग्यताके लिए आवश्यक पित्र्यैक हब्शी जनतामें भी उपस्थित हैं, परन्तु अभी तक हमें जो जानकारी हुई है, उसके आधार पर हम कह सकते हैं कि हब्शियोंमें ये पित्र्यैक श्वेतांगोंकी अपेक्षा बहुत कम मिलते हैं (१७, ४०, ४१)।

हवाई द्वीप[1] की स्थिति अध्ययन करने योग्य है। वहां पर हमें मिली-जुली आबादीका अच्छा नमूना मिल जाता है। मूल निवासियोंके अतिरिक्त वहां श्वेतांग अमेरिकी और यूरोपियन, चीनी, कोरियाई, जापानी, फ़िलिपन, पुर्तगीज आदि जातियां निवास करती हैं। इन सभी जातियोंमें परस्पर विवाह-सम्बन्ध होते हैं और जातिगत भेदभावका सर्वथा अभाव है। सभी जातियोंके बच्चे एक ही स्कूलमें पढ़ते और अंग्रेजी बोलते हैं। विभिन्न जातियोंके बच्चोंकी परीक्षा लेनेके लिए यह अनुकूल स्थिति मानी जानी चाहिए और यदि कम से कम श्वेतांगोंकी बात छोड़ दें, तो ऐसा कोई परिवेश-सम्बन्धी प्रकट कारण नहीं है जिससे एक जाति दूसरी जातिसे बढ़ी-चढ़ी दिखायी दे। फिर भी भाषा-सम्बन्धी और कृति-परीक्षाओंमें चीनी, कोरियाई और जापानी बालक अन्य जातियोंके बच्चोंको अपेक्षा औसतन काफ़ी अच्छा स्थान प्राप्त करते हैं। सभी समूहोंने १९२४ के बजाय १९३८ में अच्छी योग्यता का प्रदर्शन किया। ऐसा शायद पढ़ने-लिखनेकी अच्छी सुविधाओंके कारण सम्भव हो पाया, किन्तु अधिक पिछड़े हुए समूह अधिक आगे बढ़े हुए समूहों पर हावी नहीं हो सके थे (३१)।

जो लोग विभिन्न जातियोंमें अच्छा सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए प्रयत्नशील हैं वे कहते हैं कि मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धिकी दृष्टिसे सभी जातियोंको समान सिद्ध कर दिया है। किन्तु स्वयं मनोवैज्ञानिक ऐसा ज़ोरदार दावा नहीं करते। वे पूर्व-वर्णित कठिनाइयों, परीक्षाओंसे प्रकट हुई उपलब्धिकी वास्तविक भिन्नताओं और परिवेश-सम्बन्धी तत्वोंके लिए दी जानेवाली अनिश्चित रियायतोंके सम्बन्धमें पूर्णतया परिचित हैं। इसके अतिरिक्त यह बात भी है कि कई कबीले और जातियां ऐसी हैं जिनकी परीक्षा अभी तक नहीं ली गयी है। किन्तु, मनोवैज्ञानिक कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्योंको सामने लाने में समर्थ अवश्य हुए हैं। उन्होंने दो महत्त्वपूर्ण बातें तो साबित कर दी हैं :

१. यदि जातियोंमें जन्मजात बुद्धि सम्बन्धी भिन्नता पायी जाती है, तो पहले जितनी समझी जाती थी, उससे यह भिन्नता कम है।

२. भले ही एक जातिसे दूसरी जातिमें औसत बुद्धि-सम्बन्धी भिन्नता हो, तो भी उनके वितरणमें काफ़ी अतिछादन पाया जाता है। कई हब्शी तथा रेडइंडियन श्वेतांग लोगोंके औसत प्राप्तांकोंसे आगे बढ़ जाते हैं। कई हवाई और फ़िलिपन चीनियोंके औसतका अतिक्रमण कर जाते हैं। जाति-गत भिन्नताओंसे भी बढ़कर व्यक्तिगत भिन्नताएं हैं।

लिंगीय-भिन्नताएं. अन्वेषणसे पता चला है कि जातिगत भिन्नताओंकी भांति लिंगीय-भिन्नताएं भी बहुत मामूली हैं, हालांकि पहले लोग इनको बहुत बढ़ा-चढ़ाकर दिखाते थे। प्राचीन युगमें भी, जबकि स्त्रियोंके विषयमें यह सामान्य धारणा थी कि वे कोई बड़ा बौद्धिक कार्य नहीं कर सकतीं, कई ऐसी स्त्रियां हुई हैं जिन्होंने साहित्यिक क्षेत्रमें उत्कृष्ट योग्यताका प्रदर्शन किया है। व्यवस्था और शासनके मामले में भी उन स्त्रियोंने अद्भुत क्षमताका परिचय दिया है जिन्हें अधिकारारूढ़ होनेका अवसर मिला है। रानी एलिज़बेथ (इंगलैंड) और रानी कैथरीन (रूस) का नाम ऐसी स्त्रियोंमें लिया जा सकता है। कतिपय महिलाओं ने गृह और व्यापारके प्रबन्धमें भी पटुता का प्रमाण दिया है।

जब कि बहुत समय पहलेसे ही स्त्रियोंकी साहित्यिक उपलब्धि—विशेषतः आख्यायिका और कवितामें—उल्लेख-नीय रही है, तब इस शताब्दीसे पहिले बहुत कम स्त्रियोंका नाम वैज्ञानिक अन्वेषणोंके क्षेत्रमें सुनाई पड़ता है। आजकल महिला वैज्ञानिकोंकी संख्या बहुत अधिक तो नहीं है, परन्तु एक अच्छी संख्या अवश्य है और उनमें से कुछ ने तो अपने अनु-सन्धानोंके लिए दूर-दूर तक ख्याति प्राप्त की है। जितनी स्त्रियां उपन्यासकार मिलती हैं, उतनी वैज्ञानिक नहीं; इससे यह समझा जा सकता है कि स्त्रियोंकी स्वाभाविक प्रवृत्ति

[1] Hawaii

विज्ञानसे अधिक साहित्यकी ओर होती है।

जैसा कि हमारे परीक्षणोंसे सिद्ध हो चुका है, साधारण बुद्धिमें स्त्रियां पुरुषोंसे कम नहीं होतीं, बल्कि दोनों लिंगोंमें इस विषयमें कोई अन्तर नहीं प्रतीत होता। बालकोंकी भांति, बालिकाओंके लिए भी औसत बुद्धि-लब्धि १०० है और उसके फैलावकी अवधि दोनोंके लिए समान है। इसका यह अर्थ नहीं है कि बुद्धि-परीक्षाओंमें लिंगीय-भिन्नताएं नहीं प्रकट होतीं। परीक्षाके कुछ भागोंको लड़के अच्छी तरह कर पाते हैं और कुछ भागोंमें लड़कियां अच्छी सिद्ध होती हैं, पर अधिकांश प्रश्नोंमें दोनोंमें कोई अन्तर नहीं होता। लड़कियां सौन्दर्य या आयुको परख करनेके लिए लोगोंके चेहरोंके चित्रों की तुलना अच्छी तरह कर सकती हैं, जबकि लड़के दूरी इत्यादिसे सम्बन्धित परीक्षाओंमें अच्छे प्रमाणित होते हैं। मनोवैज्ञानिकोंके लिए ऐसी परीक्षाओंकी रचना करना आसान होगा जिनमें किसी एक लिंगको सुविधा मिलेगी, क्योंकि लड़कियां साधारणतया भाषामें विशेष योग्यता दिखाती हैं, तो लड़के यांत्रिक कार्यों में। जैसा कि बीने-परीक्षाओं[1] में होता है, जब नाना प्रकारके कार्य परीक्षा-विषयमें सम्मिलित कर लिये जाते हैं, तो कुल प्राप्तांकमें कोई लिंगीय-भिन्नता नहीं दिखायी देती (२०)।

प्रारम्भिक पाठशालाओंमें लड़कियां लड़कोंकी अपेक्षा अधिक ध्यान देकर अध्यापककी बातें सुनती हैं और पाठशाला के कार्योंको पूरा करनेमें परिश्रम करती हैं, इसलिए वे लड़कों से अधिक अंक पाती हैं। इस तरहका अन्तर उपलब्धि-परीक्षाओं[2] में बहुत-कुछ मिट जाता है, फिर भी लड़कियां यदि पढ़नेमें आगे निकल जाती हैं, तो लड़के उनको अंकगणित में पीछे छोड़ देते हैं। माध्यमिक विद्यालयोंमें भी लड़कियां भाषा-परीक्षाओंमें लड़कोंसे आगे रहती हैं और लड़के रेखा-गणित और विज्ञानमें उनसे आगे रहते हैं। कॉलेज-प्रवेश-परीक्षाओंमें भी लड़कियां भाषासे सम्बन्धित प्रश्नोंको अच्छा करती हैं, जब कि लड़के गणित-सम्बन्धी प्रश्नों को। ये भिन्नताएं यद्यपि छोटी हैं, फिर भी ये वर्ष प्रति-वर्ष और स्थान प्रति-स्थान किसी न किसी रूपमें बनी रहती हैं।

उद्योग और व्यापारमें कुछ कार्य तो स्त्रियोंको करनेके लिए दिये जाते हैं और शेष कार्य पुरुषों को। क्लर्की या लिखा-पढ़ीके कामोंमें स्त्रियां पुरुषोंकी अपेक्षा अधिक शीघ्रता से, अधिक सही-सही और अधिक सन्तोषजनक काम करती हैं, जब कि ठीक यही बात पुरुषोंके साथ यांत्रिक-कार्यों में देखी जाती है (१, २७)। क्या ये अन्तर केवल रीति-रवाज और सामाजिक कारणोंसे उत्पन्न होते हैं? इस सम्बन्धमें निश्चयपूर्वक कुछ भी कहना ठीक नहीं परन्तु हम देखते हैं कि कार्य करनेकी आयुसे नीचेके लड़के और लड़कियोंकी प्रवणता-परीक्षाओंमें जब क्लर्की और यांत्रिक सूझ-बूझ की परख की जाती है, तब भी ये अन्तर पाये जाते हैं। इसी प्रकार, जिन परीक्षाओंमें नामों या संख्याओंको जल्दी-जल्दी और सही-सही पढ़नेकी जांच की जाती है, उनमें केवल २०-२५ प्रतिशत लड़के ही औसत लड़की के समान उतरते हैं, जब कि गराड़ियों, कल-पुर्जों, नौकाओं, रेलगाड़ियों, हवाई जहाज़ों आदि के चित्रों सम्बन्धी परीक्षाओंमें केवल २-४ प्रतिशत लड़कियां ही औसत लड़कोंके समान कृतकार्य हो पाती हैं। इस अन्तिम परीक्षामें अधिकांश लिंगीय भिन्नताएं सम्भवतः लड़कों और लड़कियोंको भिन्न खेल-सम्बन्धी आदतों तथा भिन्न रुचियोंके कारण दिखायी देती हैं। परन्तु यह प्रश्न तो रह ही जाता है कि दफ़्तर (क्लर्की) के कामोंमें लड़कियां लड़कोंसे अच्छी क्यों साबित होती हैं?

लड़कियां और स्त्रियां कई तरहके भाषा-सम्बन्धी परीक्षणों में, जैसे पढ़ना, शब्द-ज्ञान, विलोम शब्दोंका ज्ञान, वाक्य-पूर्ति, रंगोंका नाम बताना और उपर्युक्त क्लर्कीके कामोंमें, अपने पुरुष प्रतियोगियोंको पीछे छोड़ जाती हैं। छोटी बच्चियां बच्चोंसे एक महीना पहले ही बोलना प्रारम्भ कर देती हैं; वे जल्दी-जल्दी शब्द सीख जाती हैं और शैशवके प्रारम्भिक वर्षोंमें ही लम्बे-लम्बे वाक्य बोलने लगती हैं। वे बच्चोंसे कम तुतलाती और अटकती हैं और स्कूलमें भाषा-सम्बन्धी कार्योंमें वे लड़कोंसे अच्छी प्रमाणित होती हैं। क्या भाषा-सम्बन्धी उनकी इस श्रेष्ठता का कारण परिवेशकी भिन्नता को माना जाय, या लड़के-लड़कियों की शिक्षण-पद्धतिके अन्तरको इसका कारण समझा जाय? किसी ने भी अभी तक परिवेशकी दृष्टिसे इसका सन्तोषजनक उत्तर देनेकी चेष्टा नहीं की है।

बालकों और बालिकाओंको उनके माता-पिता और बड़ी आयुके लड़के लड़कियां अलग-अलग दिशाओंमें खींच ले जाते हैं। हो सकता है कि योग्यताओं और रुचियोंसे सम्बन्धित लिंगीय-भिन्नताएं इस परिवेश-विषयक तत्वके कारण उत्पन्न होती हों, नर और मादा पित्र्यैकों[3] की भिन्नताओंके कारण नहीं। आपको याद होगा, पित्र्यसूत्रों[4] के २४ जोड़ोंमें से २३ जोड़े तो दोनों जातियोंमें एक-से होते हैं, केवल २४वां जोड़ा भिन्न होता है, क्योंकि यह मादामें 'अ अ' और नर में 'अ ब' होता है। इसलिए २३ पित्र्यसूत्रोंमें व्याप्त सैकड़ों पित्र्यैक[3] व्यक्ति-व्यक्तिमें भिन्न होते हुए भी स्त्री-पुरुषमें भिन्न-भिन्न न होंगे, केवल 'अ' और 'ब' पित्र्यसूत्रोंके

[1] Binet tests [2] achievement-tests [3] genes [4] chromosomes

कुछ थोड़े-से पित्र्यैक स्त्री-पुरुष में भिन्नता उपस्थित करेंगे। ये कुछ लिंगीय पित्र्यैक[1] नर और मादाके मौलिक जैविक लक्षणोंको उत्पन्न करते हैं। शेष सभी लिंगीय-भिन्नताएं परिवेशके कारण, सम्भवतः वंशानुक्रम और परिवेशकी परस्पर क्रियाके कारण, पैदा होती हैं। आइए देखें, यह परस्परक्रिया कैसे सम्पन्न होती है।

विकासके प्रारम्भमें, जन्म होनेसे पहले पित्र्यैक[2] नर या मादाकी लिंगीय-ग्रन्थियोंके आकारके विकासको निर्धारित कर देते हैं। *आगे चलकर नर और मादा प्रजन-ग्रन्थियों*[3] से जो न्यासर्ग[4] उत्पन्न होते हैं, वे आपसमें भिन्न होते हैं और वही लड़के और लड़की को अलग-अलग ढंगसे विकसित कराते हैं। शारीरिक आकार और स्वरूप, बालोंकी अधिकता या कमी, त्वचाके नीचे रहनेवाली वसा (चर्बी) का परिमाण और वयस्कके स्वरकी गम्भीरता आदि भिन्नताएं लिंगीय न्यासर्गोंके कारण ही उत्पन्न होती हैं।

स्त्री और पुरुषमें दो प्रमुख अन्तर हैं, परन्तु वे उतने स्पष्ट नहीं हैं, क्योंकि वे शरीरके अंगोंकी बनावट[5] से सम्बन्धित न हो कर अंगोंकी क्रिया[6] से सम्बन्धित हैं। एक अन्तर है, पेशियों की शक्ति और उत्साहका और दूसरा अन्तर है वृद्धि और परिपक्वता प्राप्त करनेकी गति का। शारीरिक सहनशक्ति में पुरुष स्त्रीसे बढ़कर नहीं होता, *किन्तु मांस-पेशियों की* क्रियाशीलताके आधिक्यमें वह स्त्रीसे आगे बढ़ जाता है। वह अपेक्षाकृत तेज दौड़ सकता है और सख्त घूंसा मार सकता है। उसकी मांश-पेशियां ईंधन (भोजन) और ओषजन का उपयोग अधिक तेजीसे कर सकती हैं और उसके लाल रक्ताणु[7] जो फुफ्फुसोंसे ओषजनको मांस-पेशियों तक ले जाते हैं, स्त्रियों के रक्ताणुओंकी अपेक्षा संख्यामें १० प्रतिशत अधिक होते हैं। वह स्वभावतः शारीरिक शक्तिके काम अधिक कर सकता है। इसलिए बालकके रूपमें भी वह अपनी बहिनकी तरह चुपचाप बैठना और गुड़ियोंसे खेलना ज़रा कम पसन्द करता है। वह इधर-उधर दौड़ना-भागना चाहता है जिसमें उसकी मांस-पेशियों का खूब उपयोग होसके। अंगोंकी क्रिया सम्बन्धी *यह भिन्नता लड़के और लड़की को विभिन्न प्रभाव*-शाली परिवेशका चुनाव और विभिन्न रुचियोंका विकास करनेके लिए बाध्य करती है।

बालिकाएं बालकोंकी अपेक्षा शीघ्र परिपक्व हो जाती हैं। वे पूरी तरह विकसित आकार और लिंगीय-प्रौढ़ता लड़कोंकी अपेक्षा दो वर्ष पहले ही प्राप्त कर लेती हैं। १३-१४ वर्ष की अवस्थामें ही उनकी रुचियां इतनी प्रौढ़ हो चुकती हैं जितनी उसी आयुके बालकोंकी नहीं होतीं। लोगोंमें उनकी रुचि बढ़ जाती है। इसका सम्बन्ध हम उनकी शीघ्र वयस्कताकी ओर बढ़ने की प्रवृत्ति और मातृत्व भावनासे, जिसकी ओर जैविक कारणों से वे बढ़ रही होती हैं, जोड़ सकते हैं। यदि हम स्वीकार कर लेते हैं कि लड़कियां लोगोंमें अधिक रुचि प्रदर्शित करती हैं, *तथा वे चुपचाप बैठकर कोई ऐसा काम करना पसन्द करती* हैं जिसमें उनकी बड़ी मांस-पेशियोंके बजाय छोटी मांस-पेशियों का उपयोग हो, तो हमें यह समझनेमें भी कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि वे लड़कोंकी अपेक्षा बात करने और पढ़नेमें
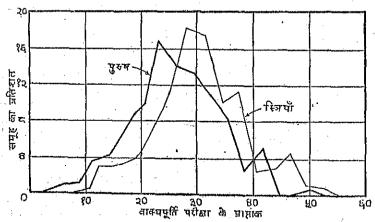
आकृति ३२. एक वाक्य-पूर्ति परीक्षामें पुरुष और स्त्री विद्यार्थियोंका अतिछादक वितरण (ओवरलैपिंग डिस्ट्रिब्यूशन)। पुरुषोंका औसत प्राप्तांक २६ अंक था और स्त्रियोंका ३० अंक। ७० प्रतिशत स्त्रियां औसत पुरुषसे बढ़कर रहीं। स्त्रियों और पुरुषोंकी परीक्षा करनेमें अब तक जितने अन्तर पाये गये हैं, उनमें प्रायः यह अन्तर अधिक है।

[1] sex-genes [2] genes [3] gonads [4] hormones [5] anatomy [6] physiology [7] red blood corpuscles

क्यों अधिक प्रवृत्त होती हैं और क्यों वे अपने भाषा-सम्बन्धी व्यापारों का अधिक पूर्ण विकास कर पाती हैं।

यह याद रखना आवश्यक है कि रुचियों और योग्यताओं-सम्बन्धी लिंगीय-भिन्नताएं केवल « औसत » भिन्नताएं हैं और स्त्रियों तथा पुरुषोंके वितरणमें अतिछादन होता है। क़द को ही लें। यद्यपि औसतन पुरुष स्त्रीसे दो या तीन इंच अधिक ऊंचा होता है, तो भी कई स्त्रियां औसत पुरुषोंसे ऊंचे क़दकी होती हैं और कई पुरुष औसत स्त्रियोंसे ठिगने होते हैं। इसी प्रकारका अतिछादन पेशियोंकी शक्तिके प्रसंगमें भी पाया जाता है। स्त्री-वर्ग और पुरुष-वर्गके बीच मानसिक योग्यताओंकी भिन्नता किसी एक वर्गकी आन्तरिक भिन्नताओं की तुलनामें कम होती है।

वंशानुक्रम और परिवेशके सम्बन्धमें अन्तिम शब्द. ऊपर जितने प्रमाण हमने दिये हैं, उनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मनुष्यकी योग्यता और व्यक्तित्वमें भिन्नता उत्पन्न करनेमें वंशानुक्रम और परिवेश—दोनों ही तत्वोंका बड़ा हाथ है। इन दोनोंमें कौन-सा तत्व अधिक शक्तिशाली है, इसके लिए अभी उपयुक्त प्रमाण नहीं मिलसके हैं। परन्तु यह प्रश्न शायद बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है। हमारा कर्तव्य है कि यथासम्भव आने वाली पीढ़ियोंके लिए हम अच्छे घर, अच्छे पड़ोस, अच्छी शिक्षा और व्यावसायिक अवसरों तथा अच्छी सरकारकी सुविधा जुटावें। परन्तु इसके साथ ही हमें उनको अच्छा वंशानुक्रम भी देना चाहिए। कुछ लोग कहेंगे—'यह व्यर्थ की बकवास है, तुम वंशानुक्रमके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं कर सकते'। यह सच है कि वर्तमान मनुष्योंके वंशानुक्रमको हम बदलनेके लिए कुछ नहीं करसकते, परन्तु हम उन लोगोंके वंशानुक्रमको उन्नत करनेके लिए बहुत कुछ करसकते हैं जो आगे पैदा होनेवाले हैं। जब एक युवा पुरुष या युवती स्त्री अपना जोड़ा पसन्द करने लगती है, तब वह आगामी पीढ़ीके अनुकूल या प्रतिकूल कुछ कार्य अवश्य करती है। समाज भी इस दिशामें कुछ कर सकता है। समाज अच्छी शारीरिक गठन, योग्यता और व्यक्तित्व वाले नौजवानों, जो भले ही न्यून आर्थिक साधनों वाले हों, के लिए सुविधा उत्पन्न कर सकता है ताकि वे अपने बच्चोंको अच्छी शिक्षा-दीक्षा तथा पोषण देसकें। मोटे तौर पर ये बच्चे अच्छा वंशानुक्रम और अच्छा घरेलू परिवेश प्राप्त करेंगे। बुद्धिमान् और सुसमायोजित माता-पिता के बच्चोंका जीवन-पथ सबसे सुन्दर ढंगसे आरम्भ होता है और ऐसे बच्चोंकी संख्या समाजमें बढ़नी चाहिए—घटनी तो चाहिए ही नहीं। आगामी पीढ़ी का वर्तमान पीढ़ी पर यह तकाजा है कि वह उन्हें सर्वोत्तम माता-पिता मुहय्या करे।

यह तो है ही कि हम कभी पसन्द न करेंगे कि सभी लोग एक-समान होजायें, जैसी कि सांचेमें ढली गोलियां होती हैं। लोगोंके भिन्न व्यक्तित्व जीवनको दिलचस्प और सरस बनाते हैं और उनकी भिन्न योग्यताओंसे संसारके नाना प्रकारके कार्य सम्पन्न होते हैं। लोकतंत्र यह नहीं चाहता कि सभी लोग एक-समान होजायें, बल्कि उसकी मांग है कि हर आदमीको अपने विकासके लिए समान अवसर मिलने चाहिएं और सभी आदमियोंको सभीकी भलाई चेतनी चाहिए।

सारांश

१. व्यक्तिगत भिन्नताओंको प्रभावित करने वाले अनेक शारीरिक तथा सामाजिक तत्वोंका मूल वंशानुक्रम और परिवेशमें ढूंढ़ा जा सकता है।

२. वंशानुक्रम और परिवेश, दोनों विकासके लिए आवश्यक हैं। व्यक्तिका कोई भी स्वभाव-गुण[1] वंशानुक्रम और परिवेशकी « उपज » होता है।

(क) यदि दूसरे कारणमें कोई भिन्नता नहीं है, तो व्यक्तियोंकी आपसी «भिन्नताओं» के लिए वंशानुक्रम और परिवेशमें से एक को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

(ख) यदि वंशानुक्रमके प्रभावका पता लगानेके लिए प्रयोग किया जा रहा हो, तो परिवेशको यथावत्[2] रखना चाहिए और यदि परिवेशके प्रभावके सम्बन्धमें प्रयोग करना हो, तो वंशानुक्रमको यथावत् रखा जाना चाहिए।

(१) व्यक्तिगत भिन्नताओंमें वंशानुक्रमका महत्त्व प्रसंकरों[3] के अध्ययनसे प्रमाणित होता है।

(२) विरूपाकृति जन्तु[4] व्यक्तिगत भिन्नताओंके लिए परिवेशकी महत्ता को सिद्ध करते हैं।

३. «प्रभावशाली परिवेश» का निर्धारण यह देखकर ही किया जा सकता है कि व्यक्ति पर किन चीजोंकी प्रतिक्रिया होती है।

(क) जिस परिवेशमें स्वतंत्र तथा अनियंत्रित अवसर सुलभ हों, उसमें व्यक्तिगत भिन्नताएं खूब उभरती हैं।

[1] characteristic [2] constant [3] hybrids [4] monsters

(ख) व्यक्तिगत भिन्नताओंकी क्षतिपूर्ति असमान परिवेश-सम्बन्धी प्रभावोंसे की जा सकती है और इस प्रकार प्रत्येक व्यक्तिको समरूप प्रतिमान तक लाया जासकता है।

४. शरीरकी प्रत्येक कोशाकी न्यष्टि[1] में वंशानुक्रमके तत्व सन्निहित रहते हैं। प्रत्येक न्यष्टिमें पित्र्य-सूत्रों[2] के २४ जोड़े रहते हैं जो निषिक्त स्त्री-बीज[3] की न्यष्टिसे प्राप्त होते हैं। प्रारम्भिक इकाइयोंको पित्र्यैक[4] कहते हैं।

(क) प्रजनन-कोशाओं (स्त्री-बीज और शुक्रकीट) में केवल २४ पित्र्यसूत्र होते हैं। इस प्रकार निषिक्त अंडकोशामें २४ पित्र्यसूत्र मातासे प्राप्त होते हैं और २४ पिता से।

(ख) किसी भी लक्षण, जैसे आंखके रंगके लिए, « एकान्तर पित्र्यैक[5] » होते हैं। प्रत्येक व्यक्तिमें पित्र्यैकों के जोड़े अलग-अलग होते हैं, फलतः व्यक्तियोंके लक्षण भी भिन्न-भिन्न हो जाते हैं।

(ग) माता या पिता अपने बच्चेको उन लक्षणोंके पित्र्यैक भी प्रदान कर सकते हैं, जिनका प्रदर्शन उसने स्वयं कभी नहीं किया। इसलिए माता-पिताओं के स्वभाव-गुणों से बच्चोंके स्वभाव-गुणों के बारेमें पहिले से कोई कल्पना कर लेना कभी भी ठीक नहीं होता।

(घ) अपने परिवेश और अपनी चेष्टाओं द्वारा कोई व्यक्ति जिन स्वभाव-गुणोंको अर्जित करता है, उनको वंशानुक्रमके द्वारा अपने बच्चोंको प्रदान नहीं कर सकता।

५. व्यक्तित्व और बुद्धिको उन्नत बनानेके व्यावहारिक सामाजिक कार्यक्रमोंके सम्बन्धमें इस प्रश्नका उत्तर महत्त्व रखता है कि वंशानुक्रम और परिवेशमें किसका अधिक महत्त्व है।

(क) अनाथालयके बच्चों, माता-पिता व बच्चोंके सम्बन्धों, और यमजोंके सादृश्यके अध्ययनसे कोई निश्चित नतीजा नहीं निकल पाया; इसके परिणामोंको चाहें तो वंशानुक्रमके प्रभावोंसे सम्बन्धित कर सकते हैं, या परिवेशके प्रभावोंसे।

(ख) एकरूप-यमजों[6] के वंशानुक्रम भी एकरूप होते हैं। उनमें यदि कोई अन्तर दिखायी देता है, तो उसका कारण परिवेशको समझना चाहिए। साधारणतया ऐसे यमज बुद्धिमें उससे अधिक भिन्नता नहीं रखते, जितनी भिन्नता कोई भी व्यक्ति कई बार ली गयी परीक्षाओंमें अपने प्राप्तांकोंमें प्रकट करता है। अत्यन्त भिन्न शिक्षा-सुविधाओं के बीच पाले गये एकरूप यमजोंकी बुद्धि-लब्धि में औसतन १३ अंकों का अन्तर होता है।

(ग) जब बच्चे पहिलेसे अच्छे, उन्नत परिवेशमें रख दिये जाते हैं, तो उनके सामाजिक लक्षणों और बुद्धि-लब्धियोंमें उन्नति होती है। इतर श्रेष्ठ घरोंमें पाले गये बच्चोंकी बुद्धि-लब्धियाँ अपने माता-पिताओं से ५ से १० अंकों तक ऊंची होती हैं।

६. सामूहिक भिन्नताओं को प्रकट करनेका तरीक़ा आम तौर पर यह होता है कि एक समूहके औसत प्राप्तांक की तुलना दूसरे समूहके औसत प्राप्तांकसे की जाती है, समूहोंमें व्यक्तियोंके वितरणके अतिछादनको ध्यानमें रखना आवश्यक है।

(क) नगरवासी बालकोंकी बुद्धिमें देहाती बालकोंकी बुद्धिकी अपेक्षा जो थोड़ी-सी उत्कृष्टता दिखायी देती है, वह उन देहातोंमें मिट जाती है, जहां अच्छे ढंगके स्कूल हैं। यह भी सम्भव है कि कतिपय परीक्षा-प्रश्न देहाती बालकोंके साथ उतना न्याय न कर पावें जितना शहरी बालकोंके साथ वे कर सकते हैं।

(ख) वयस्कोंकी साधारण बुद्धिमें उनके पेशोंके अनुसार अन्तर होते हैं। पिताओंके पेशोंके अनुसार बच्चों की बुद्धिमें भी अन्तर होता है। पोषित बच्चों[7] का अध्ययन करके यह मालूम किया गया है कि यह अन्तर वंशानुक्रम और परिवेश, दोनोंके कारण उत्पन्न होता है।

(ग) एक जातिकी दूसरी जातिसे श्रेष्ठता के बारे में प्रचलित साधारण धारणा दुराग्रह और पक्षपातकी भावना पर अधिक आधारित है, वैज्ञानिक तथ्यों पर कम।

(घ) स्त्रियों और पुरुषोंकी सामान्य बुद्धिमें कोई भिन्नता नहीं होती, किन्तु भाषा-सम्बन्धी कुछ परीक्षाओंमें स्त्रियां अपेक्षाकृत अच्छी साबित होती हैं और पुरुष यांत्रिक तथा गणित-सम्बन्धी परीक्षाओंमें उनसे कुछ आगे बढ़ जाते हैं।

[1] nucleus [2] chromosomes [3] fertilized ovum [4] genes [5] alternative genes [6] identical twins [7] foster children

७

व्यक्ति और परिवेश के मध्य परस्परक्रिया

मनोविज्ञान के अपने अध्ययनकी इस सीढ़ी तक आकर हमें रुककर पिछली सीढ़ियों पर एक दृष्टि डाल लेनी है, क्योंकि आगे दूसरा मोड़ शुरू होनेवाला है। अब तक हम इसी बात पर जोर देते आये हैं कि व्यक्ति किन बातोंमें एक-दूसरेसे भिन्न हैं और उनकी भिन्नताके कारण क्या हैं; परन्तु अब हम उन तरीकों पर विचार करेंगे जिनसे व्यक्तियोंकी परस्पर समानता प्रकट होती है। पहले प्रकरणको छोड़कर, शेष पिछले प्रकरणोंमें हमने जो कुछ अध्ययन किया है, वह «*विभेदात्मक मनोविज्ञान*[1]» कहलाता है, और अब हम «सामान्य मनोविज्ञान[2]» का अध्ययन करेंगे।

हमने पहिले ही प्रसंगवश कुछ उन बातों पर दृष्टिपात कर लिया है, जिनमें लोगोंमें समानता होती है। वितरण वक्र-रेखा[3] उनको अलग-अलग श्रेणियोंमें विभाजित नहीं करती। व्यक्ति प्रकार[4] में नहीं, मात्रा[5] में भिन्न होते हैं। कुछ व्यक्ति दूसरोंसे अधिक बुद्धिमान् होते हैं, परन्तु सभीमें कुछ न कुछ बुद्धि अवश्य होती है। सभी लोग भाषा, गणित और देश-सम्बन्धी तथा अन्य योग्यताएं थोड़ी-बहुत मात्रामें रखते हैं; किसी भी नयी परिस्थितिका सामना करनेमें सभी लोग अपने पिछले अनुभवका थोड़ा-बहुत उपयोग करते हैं, और सभीमें वस्तुओंके सम्बन्धोंको समझनेकी थोड़ी-बहुत योग्यता होती है। जैसा कि बहुधा मान लिया जाता है, व्यक्तित्वके लक्षणोंमें भी उनमें कोई बहुत ज्यादा अन्तर नहीं होता। कोई भी व्यक्ति शत प्रतिशत अच्छा या बुरा नहीं होता। परीक्षा लेने पर प्रत्येक व्यक्तिमें कुछ अन्तर्मुखी और कुछ बहिर्मुखी प्रवृत्तियां दिखायी देती हैं। प्रत्येक व्यक्तिके व्यक्तित्व पर सामाजिक और शारीरिक तत्वोंका प्रभाव पड़ता है, और वंशानुक्रम तथा परिवेश मिलजुलकर उसे ढालते हैं। मनोविज्ञानके कई सिद्धान्त ऐसे हैं जो सभी व्यक्तियोंकी क्रियाओं पर लागू होते हैं।

आगेके प्रकरणोंमें व्यक्तिगत भिन्नताओंको न भूलते हुए भी, क्योंकि ये सब तरहकी मानवीय क्रियाओंमें उपस्थित रहती हैं, हम सीखने, सोचने, इच्छा करने और अन्य महत्वपूर्ण प्रक्रियाओंके सामान्य नियमों पर ही जोर देंगे।

सामान्य मनोविज्ञानके मौलिक प्रश्न. चूंकि मनोविज्ञान की परिभाषाके अनुसार हम व्यक्तिकी क्रियाओंमें रुचि रखते हैं, इसलिए हमें सोचना है कि हम उनके बारेमें क्या जानना चाहते हैं, इन क्रियाओंके विषयमें मनोवैज्ञानिक अपने अनुसन्धानोंमें क्या जानना चाहते हैं? सरलसे सरल शब्दों में हम कह सकते हैं कि मनोवैज्ञानिक और मनोविज्ञानके विद्यार्थी तीन प्रश्नोंका उत्तर खोजना चाहते हैं:

व्यक्ति क्या करता है?
वह उसे क्यों करता है?
वह उसे कैसे करता है?

वह क्या करता है?—अर्थात् किन व्यापारोंमें वह लगा हुआ है और क्या परिणाम वह प्राप्त करता है? वह उसे क्यों करता है?—अर्थात् किन कारणोंसे वह किन्हीं व्यापारोंमें जुटता है और किन्हीं परिणामोंके लिए प्रयत्न करता है? वह उसे कैसे करता है?—अर्थात् किसी परिणाम तक पहुंचनेके लिए वह किन साधनों तथा प्रक्रियाओंका उपयोग करता है?

एक बहुत सरल उदाहरणके रूपमें निम्नलिखित बातचीत पर ध्यान दीजिए:

'आज सुबह ही सुबह तुम क्या कर रहे हो?'
'मैं शहर जा रहा हूं।'
'तुम क्यों जा रहे हो?'
'मैं एक हैट खरीदना चाहता हूं।'
'तुम कैसे जा रहे हो?'
'मैं सोचता हूं, पार्कमें से होते हुए पैदल ही चला जाऊं।'

शायद आपको इस वार्तालापमें मनोविज्ञानकी अधिक झलक न मिले, किन्तु यह एक प्रकारसे मनोविज्ञानकी समस्याओंका रेखाचित्र उपस्थित कर देता है। दूसरे शब्दोंमें लक्ष्य[6], प्रयोजन[7], लक्ष्य तक पहुंचनेका मार्ग[8]—ये तीन समस्याएं हैं। लक्ष्य वह है जहां व्यक्ति पहुंचना चाहता है, प्रयोजन वह है जिससे व्यक्तिको लक्ष्य तक पहुंचनेकी प्रेरणा मिलती है और मार्ग वह साधन या विधि है जिसके सहारे चलकर वह लक्ष्य तक पहुंचता है। पहिले-पीछे होनेकी दृष्टिसे यदि हम इन समस्याओंको रखें तो क्रम यह होगा: प्रयोजन, साधन, लक्ष्य या क्यों, कैसे, क्या। परन्तु किसी दूसरे

[1] differential psychology [2] general psychology [3] distribution curve [4] kind [5] degree [6] goal [7] motive [8] route

व्यक्तिका निरीक्षण करते समय हम साधारणतया पहिले यही देखते हैं कि वह क्या कर रहा है। वह क्यों कर रहा है और ठीक किस रूपमें कर रहा है, ये बातें तो हम बादमें जान पाते हैं। उसके प्रयोजन और मानसिक प्रक्रियाएं बाहरसे नहीं दिखायी देतीं। यहां तक कि व्यक्ति स्वयं अच्छी तरह नहीं जान सकता कि वह क्या चाहता है। वह क्यों चाहता और कैसे उसे प्राप्त करेगा, इसका चित्र उसके सामने स्पष्ट नहीं होता, क्योंकि वह स्वयं अपने प्रयोजनों और मानसिक प्रक्रियाओंसे अनभिज्ञ रहता है। बिना यह जाने हुए कि वह अमुक लड़कीसे प्रेम करने लगा है और बिना उन छोटी चालोंके प्रति जागरूक रहे जिन्हें वह इस्तेमाल कर रहा है, वह उस लड़कीको प्रसन्न करने और उसको अपनी ओर आकृष्ट करनेका प्रयत्न करता है। हम खुशीसे उसको इन बातोंसे अनभिज्ञ रहने दे सकते हैं, किन्तु मनोवैज्ञानिककी हैसियतसे यथासम्भव इन प्रयोजनों और प्रक्रियाओंको प्रकाशमें लाना चाहते हैं।

'क्यों' के प्रश्न पर हम अभी विचार न करके प्रयोजनों वाले प्रकरणमें विचार करेंगे। 'क्या' और 'कैसे' के प्रश्नों पर पुस्तकके शेष भागोंमें सर्वत्र विचार किया गया है, किन्तु यहां हम बहुत साधारण ढंगसे ही उनपर विचार करेंगे, यद्यपि कुछ विशिष्ट उदाहरणोंका आवश्यकतानुसार उपयोग भी करेंगे।

व्यक्ति क्या करता है—
परिवेश के साथ व्यवहार

'क्या' प्रश्नके उत्तरमें हम सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें भिन्न-भिन्न प्रकारके व्यापारोंकी एक सूची पेश कर सकते हैं। यदि मानसिक प्रक्रियाओं, जैसे—सीखना, निरीक्षण करना और सोचना की सूची तैयार करें, तो वह अधिक मनोवैज्ञानिक होगी और पुस्तकके शेष भागको अनुक्रमणिका का काम भी दे देगी। किन्तु इस 'क्या' प्रश्नका एक व्यापक, साधारण उत्तर भी है जिसमें यदि पूरा विषय नहीं तो उसका अधिकांश तो आ ही जाता है। वह उत्तर है: व्यक्ति अपने परिवेशके साथ व्यवहार करता है। 'व्यवहार करने' से हमारा तात्पर्य सक्रिय लेन-देनके सम्बन्धसे है जैसा कि एक ग्राहक और एक दूकानदारके बीच उस समय होता है जब ग्राहक उससे कुछ सामान खरीदता है और बदलेमें कुछ दाम देता है। इसी बात को एक दूसरी तरहसे भी कहा जा सकता है—व्यक्ति अपने परिवेशके साथ क्रिया-प्रतिक्रिया करता है। निस्सन्देह वह केवल 'प्रभावकर परिवेश' से ही व्यवहार करता है। किन्तु प्रभावकर परिवेशमें कई तरह की कई वस्तुएं सम्मिलित हैं और कई भौतिक शक्तियां और स्थितियां भी, जैसे गुरुत्वाकर्षण[1], उष्णता, शीत, प्रकाश और अंधेरा, देश और काल आदि। वह इन सभीसे व्यवहार करता है और सामाजिक परिवेशके साथ लगातार क्रिया-प्रतिक्रिया करता रहता है।

ऐसा प्रतीत होगा कि 'वातावरणके साथ व्यवहार करने' के वाक्यांशमें केवल व्यक्तिकी बाह्य चेष्टाएं ही आती हैं, विचार[2] और अनुभूति[3] आदि उसकी अन्तर्चेष्टाएं उनमें नहीं आतीं। फिर भी, जब आप विचारोंमें डूबे हुए होते हैं और अपने तत्कालीन परिवेशके प्रति उदासीनसे रहते हैं, तो क्या प्रायः आप स्मरण नहीं रखते कि क्या हो गया है; या क्या आप योजना नहीं बनाते कि आप वास्तवमें क्या करना चाहते हैं? जब किसी बातकी गहरी अनुभूति आपको होती है, तब क्या आप वास्तविक जगत्‌के किसी व्यक्ति या वस्तुके प्रति प्रसन्न या अप्रसन्न नहीं हो रहे होते? उपन्यासकार जब अपने कल्पित कथानक और पात्रोंकी तलाश करने लगता है, तब वह वास्तविक व्यक्तियों और घटनाओंके सम्बन्धमें हुए अपने अनुभवोंको आधार बनाकर चलता है और उनसे बहुत कुछ ग्रहण कर लेता है। पागल व्यक्ति, जो वास्तविक जगत्‌से सम्बन्ध तोड़कर कल्पनाके जगत्‌में विचरण करता है, के मामलेमें भी यह बात सत्य है। हमारे कहनेका यह मतलब नहीं कि व्यक्ति हमेशा पूर्णतया यथार्थवादी ही होता है। हमारा तात्पर्य यह है कि उसमें किसी वस्तुके साथ व्यवहार करनेकी मौलिक प्रवृत्ति होती है, और वह सामान्यतया परिवेशकी किसी वस्तुके साथ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपमें व्यवहार करता है।

चूंकि परिवेशके साथ व्यक्तिके सक्रिय सम्बन्ध इतने महत्व-पूर्ण हैं, इसलिए इस पुस्तकके प्रारम्भमें मनोविज्ञानकी परि-भाषामें हमने इस तथ्यका समावेश 'परिवेशमें होनेवाले व्यक्तिके व्यापारोंका विज्ञान' कहकर किया था। आइए अब हम इस सम्बन्ध पर और गहराईसे विचार करें और देखें कि व्यक्ति परिवेशके साथ क्या व्यवहार करता है।

व्यक्ति परिवेशका प्रतिरोध करता है. 'व्यक्ति क्या करता है' इस प्रश्नका पूरा सामान्य उत्तर तो यह होता कि 'वह पूरे अर्थमें जीवित रहता है'। यदि वह कुछ भी करना चाहता है तो इसके लिए वह जीवित रहता है; अपनी रक्षा करनेकी चेष्टा करता है। जीवित रहनेके लिए वह परिवेश का कई प्रकारसे प्रतिरोध करता है, क्योंकि परिवेश कई तरहसे जीवनके प्रतिकूल होता है। कभी खूब गरमी पड़ती है और कभी खूब जाड़ा, किन्तु उष्ण रक्त वाला प्राणी इन चरम दशाओंका सामना करता है और अपने

[1] gravitation [2] thought [3] feeling
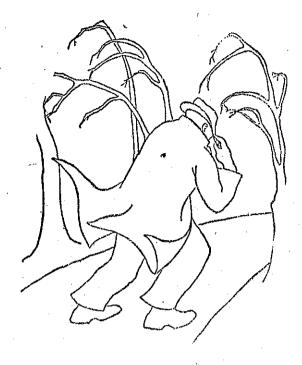
आकृति ३३. परिवेशका प्रतिरोध करना।

शरीरके तापमानको स्थिर बनाय रखता है। कभी-कभी उसे चोट या खरोंच लग जाती है, किन्तु रक्तको अधिक नष्ट न होने देने और आहत अंगोंकी मरम्मत करनेके लिए उसके पास कुछ प्राकृतिक साधन होते हैं, जिनका वह उपयोग करता है। इसके अतिरिक्त कई तरहके रोगके कीटाणुओंका प्रतिरोध करनेकी भी उसमें प्राकृतिक शक्ति होती है। जब वह खड़ा रहता है या चलता रहता है, तब वह गुरुत्वाकर्षण का किस प्रकार प्रतिरोध करता और अपना सन्तुलन बनाये रखता है; तथा हवाके झोंकों तथा अन्य शक्तियोंका जो उसे पीछे ढकेल देना चाहती हैं, वह किस प्रकार सामना करता है, आदि बातें परिवेशके साथ उसके व्यवहारको सूचित करती हैं।

८. सामाजिक परिवेश और भौतिक परिवेश व्यक्ति पर दबाव डालते हैं, उससे कुछ मांग करते हैं, कुछ बातें करवाना चाहते हैं और कुछ बातोंके लिए मना करते हैं, कभी उसे आज्ञा देते हैं, कभी उसे फुसलाते हैं—और व्यक्ति है जो इन दबावोंका यथाशक्ति प्रतिरोध करता रहता है। यदि आप छोटे बच्चों या किशोरोंके व्यवहारोंका निरीक्षण करेंगे, तो यह बात आपके सामने स्पष्ट हो जायगी।

बहुधा व्यक्ति परिवेशकी किसी वस्तुसे भागता है, उसका प्रतिरोध करनेके बजाय उससे कतराता है; किन्तु भागना और प्रतिरोध परिवेशकी कुछ प्रतिकूल वस्तुओंसे लड़नेकी दो विधियां मात्र हैं।

व्यक्ति परिवेशका उपयोग करता है. हममें से अधिकांश व्यक्तियोंकी सहानुभूति ऐसे अभागे लोगोंके साथ नहीं होगी, जो परिवेशको ज्यादातर शत्रुतापूर्ण और खतरनाक समझते हैं, तथा जो उसका प्रतिरोध करने या उसके भाग जाने में ही अपनी जिन्दगी बिता देते हैं। परिवेशके कई लाभ हैं। जीव भोजन और ओषजन ग्रहण करता है और इस प्रकार अपनी चेष्टाओंके लिए शक्ति-संग्रह करता है। प्राणी परिवेश की बहुत-सी चीजोंको अपने अनुकूल बनाकर उनका उपयोग करता है। मनुष्यके लिए तो ऐसी चीजोंकी संख्या बहुत ही बड़ी है। साधारणतया व्यक्तिको जाग्रत् और क्रियाशील रखनेके लिए परिवेशसे «उत्तेजना[1]» मिलनेकी आवश्यकता रहती है और परिवेश यह वस्तु उसे प्रदान भी करता है। उत्तेजना के अभावमें व्यक्ति सुप्तावस्थामें पहुंच जाता है, शायद जीवित तो वह रह जाता है, पर उससे अधिक नहीं। व्यक्तिको अपनी चेष्टाओंके लिए «निकास[2]»या «अवसर[3]» की भी आवश्यकता होती है। वह कोई ऐसी वस्तु चाहता है जिसके आधार पर वह चेष्टारत हो सके, जैसे गिलहरी को चढ़नेके लिए एक पेड़की आवश्यकता होती है। बातचीत करनेकी योग्यता रखनेवाला प्राणी कोई वस्तु चाहता है जिसके बारेमें वह बात कर सके (उत्तेजना) और कोई व्यक्ति चाहता है जिससे वह बात कर सके (निकास या अवसर)।

परिवेशमें जो कुछ हो रहा होता है, व्यक्ति उसमें भाग लेता है. यदि हम प्रतिरोध करनेकी निषेधात्मक प्रतिक्रिया और परिवेशका उपयोग करनेकी विधानात्मक प्रतिक्रिया का विचार संयुक्त रूपसे करें, तो भी परस्परक्रिया[4] की पूरी कहानी नहीं बन पाती। एक कुशल पनडुब्बा कूदने के तख्ते पर सीधा खड़ा रहता है और ठीक समय आने तक गुरुत्वाकर्षण की शक्तिका प्रतिरोध करता रहता है; इसके बाद वह आगेको झुकता, उछलता है और गुरुत्वाकर्षणके हाथमें अपनेको पानीमें ले जानेके लिए छोड़ देता है। डूबनेकी क्रिया कौन करता है—धरतीका खिचाव या उस व्यक्तिकी मांस-पेशियां? वास्तवमें दोनों ही इस कार्यमें भाग लेते हैं। पनडुब्बा प्रकृतिकी एक प्रक्रियामें भाग ले रहा होता है। वह उस प्रक्रियामें भाग लेकर उसको अपने अनुकूल बनाता है। झूले पर बैठा हुआ बच्चा भी यही करता है। गेंद फेंकते समय भी उसमें यही प्रतिक्रिया होती है। कोई भी व्यक्ति

[1] stimulation [2] outlet [3] opportunity [4] interaction
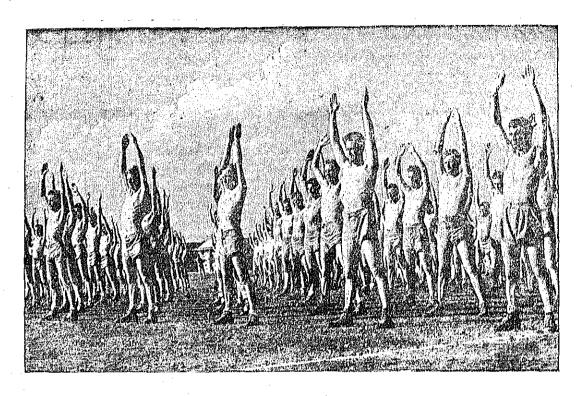
आकृति ३४. भाग लेना।

जो किसी औज़ारका उपयोग करता है या कोई मशीन चलाता है, वह एक प्राकृतिक प्रक्रियामें भाग लेता है जो उसके शरीर तक ही सीमित नहीं होती। इस प्रकार व्यक्तिकी चेष्टा परिवेशमें चल रही प्रक्रियाओंके साथ अपना मेल बैठाती है। जब हम सामाजिक परिवेश, जैसे वार्तालाप, खेल-कूद, सामूहिक गान, तथा किसी भी तरहके एकसे अधिक व्यक्तियों द्वारा किये जानेवाले कामके सम्बन्धमें विचार करते हैं, तब तुरन्त आश्वस्त हो जाते हैं कि व्यक्ति सामूहिक चेष्टाओंमें भाग ले रहा है, और वास्तवमें इस तरहकी सामूहिक क्रियाओंमें भाग लेनेका नाम ही सामाजिक जीवन है।

«परिवेशको जाननेका» प्रयत्न करना भी परस्परक्रिया का एक प्रमुख प्रकार है। व्यक्ति परिवेशको तभी जान सकता है जब परिवेश उस पर क्रिया करे और व्यक्ति भी प्रतिक्रियाके लिए तैयार रहे। उसे जाग्रत् रहना चाहिए, अपनी इन्द्रियोंका उपयोग करना चाहिए और यह समझना चाहिए कि वह क्या देखता या सुनता है। बहुधा परिवेशको जाननेका उसका तरीका बहुत स्पष्ट होता है। वह चारों ओरसे उसकी छानबीन करता है, वस्तुओंको हाथ में लेकर या स्पर्श करके उनके विषयमें कुछ अधिक जानने का प्रयत्न करता है, और दूसरे लोगोंसे भी उनके सम्बन्धमें जानकारी एकत्र करनेकी चेष्टा करता है।

समायोजन[1]. यदि हम एक वाक्यमें उस सारी प्रक्रियाको व्यक्त करना चाहें जो व्यक्ति परिवेशके प्रति या परिवेशके साथ करता है, तो हम यों कह सकते हैं: व्यक्ति परिवेशके साथ अपने सम्बन्धोंका समायोजन करता है। 'समायोजन' से हमारा तात्पर्य है (यथासम्भव) अच्छेके लिए परिवर्तन। कभी-कभी व्यक्ति परिवेशके अनुसार अपनेमें परिवर्तन कर लेता है। ऐसा उस समय होता है जब वह एक स्थानको छोड़ कर दूसरे अनुकूल स्थान पर चला जाता है या जब वह अपने शरीरके अन्दर किसी छूतके रोगसे लड़नेकी शक्ति पैदा कर लेता है। कभी-कभी वह परिवेशको अपने अनुसार बदल डालता है। ऐसा तब होता है जब वह किसी वस्तुको अपनी ओर खींचता है या उसे दूर फेंक देता है, या जब वह संक्रामक कीटाणुओंको नष्ट करनेके लिए अपने कमरेकी सफ़ाई-रंगाई

[1] adjustment

करा डालता है। चाहे वह स्वयंमें परिवर्तन करे या परिवेश ही परिवर्तन कर डाले—प्रत्येक दशामें वह अपने और परिवेशके बीचके सम्बन्धमें परिवर्तलन करता है।

हम कह सकते हैं कि कभी-कभी व्यक्ति परिवेशके साथ अपना समायोजन कर लेता है और कभी-कभी परिवेशको अपने साथ समायुक्त कर लेता है। एक दशामें वह झुकने वाला अधिक[1] होता है तथा दूसरी दशामें न झुकने वाला। यदि उसके रास्तेमें कोई चट्टान रुकावटके रूपमें आती है, तो या तो वह उससे कतरा कर उससे अपना समायोजन कर लेता है या उसे अपने रास्तेसे हटाकर रास्तेको अपनेसे समायुक्त कर डालता है। यदि दो मित्र किसी कार्यको करनेके विषयमें दो मत रखते हैं तो उनमें से जो नरम होगा, वह अपनी योजनाको त्यागकर अपने मित्रकी इच्छाके अनुसार अपनी सम्मति बदल डालेगा, परन्तु जो दबंग और न झुकने वाला होगा वह दूसरेसे अपनी योजना स्वीकृत करा लेगा। दोनों ही समायोजनकी प्रक्रियामें संलग्न होते हैं। हम 'समायोजन' शब्दका इस्तेमाल इन दोनों क्रियाओंके लिए कर सकते हैं।

परस्परक्रियाका एक सूत्र[2]. यह मौलिक तथ्य कि व्यक्ति परिवेशके साथ व्यवहार करता है, इस सूत्र द्वारा प्रकट किया जा सकता है :

सं—व्य—सं

इसमें 'सं' संसार या परिवेशके लिए और 'व्य' व्यक्ति या प्राणी[3] के लिए प्रयुक्त हुआ है। इस सूत्रका अर्थ यह है कि 'सं' 'व्य' पर क्रिया करता है और 'व्य' 'सं' पर प्रतिक्रिया करता है। यह परस्परक्रिया लगातार होती रहती है, कभी 'व्य' 'सं' पर और कभी 'सं' 'व्य' पर प्रतिक्रिया करता है और इस प्रकार इस सूत्रको 'व्य' और 'सं' की अनन्त शृंखलामें विस्तृत किया जा सकता है।

परस्परक्रिया का 'कैसे' :

उत्तेजना[4] और प्रतिक्रिया[5]

'सं—व्य—सं' का सूत्र इस प्रश्नका कि 'व्यक्ति क्या करता है', एक व्यापक, साधारण उत्तर दे देता है और तुरन्त ही यह प्रश्न उठाता है कि 'वह कैसे उसे करता है'। व्यक्ति परिवेशके साथ कैसे व्यवहार करता है?—परिवेश व्यक्ति पर कैसे क्रिया करता है ('सं—व्य' का प्रश्न)? और व्यक्ति परिवेश पर कैसे क्रिया करता है ('व्य—सं' का प्रश्न)? आइये, पहिले दूसरे प्रश्न पर विचार कर लें। हम जानना चाहेंगे कि व्यक्ति परिवेशके प्रति कैसी क्रिया करता है और उसमें किस प्रकार परिवर्तन कर डालता है।

कार्यकारी अंग[6]. हम किसी को एक साधारण काम करते हुए देखते हैं जैसे—कुर्सी उठाते हुए। पहिले हम यह कहकर सन्तुष्ट होजाते हैं कि वह कुर्सीको उठाता है। इस 'व्य–सं' प्रक्रिया का थोड़ा और विश्लेषण करनेके बाद हम कहते हैं, वह अपने «हाथोंसे» कुर्सी उठाता है। किन्तु शरीर शास्त्रके अनुसार हाथ तब तक निष्क्रिय रहते हैं जब तक «मांस-पेशियां» उन्हें हिलाती नहीं। मांस-पेशियां भी अपने स्नायुओं द्वारा उत्तेजना पाये बिना निष्क्रिय ही रहती हैं और ये «कर्म-स्नायु[7]» तब तक निष्क्रिय रहते हैं जब तक «स्नायु-केन्द्रों[8]», विशेषत: «मस्तिष्क» से उन्हें उत्तेजना नहीं प्राप्त होती। साधारण जीवनमें हम व्यक्तिके मस्तिष्क, स्नायुओं (नाड़ियों) और मांस-पेशियोंको प्रकट रूपमें कार्य करते हुए नहीं देखते, किन्तु यह मान लेना ठीक रहेगा कि व्यक्तिके भीतर ये सारी बातें होती हैं। कुर्सी उठानेकी क्रिया करते समय वह व्यक्ति इन सारी बातोंसे अनभिज्ञ रह सकता है, क्योंकि उसका ध्यान परिवेश की उस वस्तु पर और उस परिवर्तन पर, जो अपने कार्य द्वारा वह परिवेशमें ला रहा है, लगा हुआ है।

मांस-पेशियोंको कार्यकारी अंग[6] इसलिए कहते हैं, क्योंकि वे परिवेशके साथ व्यक्तिके सम्बन्धोंमें परिवर्तन करके परिणाम (कार्य) उत्पन्न करती हैं। मानव-शरीरमें कतिपय ग्रन्थियां भी कार्यकारी अंग हैं, यथा लार-ग्रन्थियां[9] जो मुंहमें भोजनको गीला करती हैं। (भोजन मुंह, आमाशय, या आंतों के परिवेशमें ही रहता है, और ग्रन्थियों द्वारा निकले हुए पाचक रसोंसे जब उसमें रासायनिक परिवर्तन हो जाता है, तब वह शरीरमें विलीन हो पाता है।) जुगनूका प्रकाशोत्पादक अंग और कतिपय मछलियोंका बिजलीका सा धक्का देनेवाला अंग 'कार्यकारी' ही कहा जायेगा।

आदातृ-अंग[10]. अब 'सं—व्य' के प्रश्नको लीजिए। परिवेश व्यक्ति पर किस प्रकार क्रिया करके उसका व्यवहार बदल देता है? यह किस प्रकार व्यक्तिके सामने अपना प्रकाशन करता है जिससे व्यक्ति समझ जाता है कि क्या हो रहा है? परिवेश पहिले व्यक्तिकी ज्ञानेन्द्रियों[11] पर क्रिया करता है।

[1] yielding [2] formula [3] organism [4] stimulus [5] response [6] effectors [7] motor nerves [8] nerve centres [9] salivary glands [10] receptors [11] sense organs

किसी वस्तुका प्रकाश व्यक्तिकी आंखोंसे टकराता है और वह उस वस्तुको देख लेता है; या किसी वस्तुकी ध्वनि[१] व्यक्तिके कानोंसे टकराती है और वह उस वस्तुको सुन लेता है। दबाव और उष्णता उसकी त्वचा पर क्रिया करते हैं, गन्ध और स्वाद उसकी नासिका और जिह्वा पर क्रिया करते हैं। संक्षेपमें, परिवेशकी शक्तियां उसकी ज्ञानेन्द्रियों या «आदातृ-अंगों» (ऐसा उन्हें इसलिए कहते हैं, क्योंकि वे परिवेशसे उत्तेजना *ग्रहण करती हैं*) पर *क्रिया करती हैं*। *किन्तु यह प्रक्रिया* केवल आदातृ-अंगों पर ही नहीं रुक जाती। जब ज्ञानेन्द्रियां परिवेश की शक्तियों द्वारा क्रियाशील बना दी जाती हैं, तब वे अपने बोध-स्नायुओं को उत्तेजित करती हैं और ये स्नायु मस्तिष्कको उत्तेजित करते हैं। मस्तिष्कके जरिए आदातृ-अंग कर्म-स्नायुओं[२] से सम्बन्धित रहते हैं और इस प्रकार 'कार्य-कारी-अंगों[३]' से भी। 'व्य' कुर्सीको देखने और उसे हटा देनेका मामूली-सा काम करता है, परन्तु इतने कामको पूरा करनेमें आन्तरिक प्रक्रियाओंकी एक बड़ी संख्या शामिल रहती है।

उत्तेजनाएं[४]. जो शक्ति आदातृ-अंगों[५] पर क्रिया करती है और उसे क्रियाशील बनाती है, उसे «उत्तेजना[६]» कहा जाता है। मनोविज्ञानमें हम आदातृ-अंगको उत्तेजना देनेकी बात कहते हैं; जैसे जब प्रकाश आंखको उत्तेजना देता है या ध्वनि कानको उत्तेजना देती है। या हम समस्त शरीरको भी उत्तेजना देनेकी बात कहते हैं, क्योंकि आदातृ-अंग, बोध-स्नायु और मस्तिष्कके जरिए प्रकाश या ध्वनि सारे शरीरको क्रियाशील बना देती है। शरीरके भीतर एक अंग बहुधा दूसरे अंग को कार्य करनेके लिए उत्तेजित करता है। बोध-स्नायु मस्तिष्कको उत्तेजित करते हैं, मस्तिष्क कर्म-स्नायुओंको, और वे मांस-पेशियोंको उत्तेजित करती हैं।

प्रतिक्रियाएं. उत्तेजनाके कारण उत्पन्न कोई चेष्टा उस उत्तेजना की प्रतिक्रिया होती है। उत्तेजना उसे कहते हैं जो प्रतिक्रिया उत्पन्न करे, और प्रतिक्रिया वह है जो उत्तेजना के द्वारा उत्पन्न की जाती है। दोनों शब्द एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं। यह ध्यानमें रखना चाहिए कि प्रतिक्रिया शरीरकी चेष्टा का नाम है, वह केवल निष्क्रिय गति नहीं है। अंकुश[७] बैलको आगे नहीं ढकेलता, बल्कि तेज चलनेके लिए उसे उत्तेजित करता है। यदि कोई तेज लहर मुझे किनारे पर फेंक देती है, तो इसमें उत्तेजना—प्रतिक्रिया का कोई सम्बन्ध नहीं है, किन्तु यदि मैं किसी प्रकार प्रतिक्रिया करता हूं, जैसे कूदकर या मजबूती से अपने पैर जमाये रखकर, तो लहरको उत्तेजना और मेरे कार्यको प्रतिक्रियाकी संज्ञा दी जायेगी।

कभी-कभी केवल पेशीके कार्योंको प्रतिक्रिया कहा जाता है, किन्तु इस तरहका बन्धन अनावश्यक है। उत्तेजना के कारण उकसायी गयी कोई भी चेष्टा प्रतिक्रिया कही जा सकती है। मैं एक शोर सुनता हूं—यह «सुनने» की क्रिया शोर द्वारा उकसायी गयी है—इस प्रकार यह शोरके प्रति संवेदनात्मक[८] प्रतिक्रिया हुई। मैं इस शोरको पहिचान जाता हूं कि स्टीमर की सीटी है और इसपर से मुझे समुद्र-तट पर बिताया गया अपना पिछला ग्रीष्मावकाश याद आ जाता है—«स्मरण» की यह क्रिया शोर द्वारा उकसायी गयी दूसरी क्रिया हुई, यह शोरके प्रति एक दूरस्थ[९] प्रतिक्रिया हुई। गत ग्रीष्मावकाशकी स्मृति करके मैं अगले ग्रीष्मावकाशके लिए तत्काल योजना बनाने लग सकता हूं और इसकी पैशिक प्रतिक्रिया[१०] यह होगी कि मैं टाइम-टेबुल की पुस्तक लानेके लिए उठूंगा। ये सभी क्रियाएं उसी शोरकी प्रतिक्रियाएं हैं, परन्तु ये क्रमशः अधिकाधिक दूरस्थ होती चली गई हैं। या हम यों कह सकते हैं, इस शृंखलाकी प्रत्येक क्रिया अपनी पूर्वगामी क्रियाकी प्रतिक्रिया है। इसमें ध्यान देने योग्य बात यही है कि एक क्रिया दूसरी को उकसाती है और इस शृंखला को जारी रखनेमें बहुधा एक बाह्य उत्तजना[११] का हाथ रहता है।

निर्बल या नीरस उत्तेजना आदातृ-अंगों[५] में कुछ क्रिया तो उत्पन्न कर देती है, परन्तु बहुधा व्यवहार पर इसका बहुत कम प्रभाव पड़ता है। या तो आप ऐसी उत्तेजनाओंका ख्याल नहीं करते, या उनके उकसाने पर कोई काम नहीं करते। उत्तेजना ने व्यवहार पर प्रभाव डाला है, यह हम तभी मानेंगे जब उस प्रभावसे क्रिया प्रारम्भ होजाय, क्रियामें परिवर्तन होजाय, या वह क्रिया रुक जाय। यदि आप गहरी नींदमें सोये हैं, तो घड़ीका 'अलार्म' आपको कार्य करनेके लिए उकसायेगा। यदि आप पहिलेसे ही क्रियाशील हैं, तो कोई उत्तेजनाएं तो आपको अपने काममें सुधार करनेके लिए प्रेरित करेंगी या उस कामको छोड़कर किसी दूसरे काममें प्रवृत्त होनेके लिए। कभी-कभी किसी आकस्मिक उत्तेजनासे आप अपनी क्रिया रोक देते हैं और आगे आनेवाली घटनाकी प्रतीक्षा करने लगते हैं। क्रियाको इस तरह रोक देनेको «निरोध[१२]» कहते हैं। जब कभी आप किसी उत्तेजना के कारण अचानक एक क्रिया को छोड़कर दूसरी क्रिया प्रारम्भ कर देते हैं, तब जिस कार्यको आप छोड़ते हैं, वह निरुद्ध हो जाता है, और चूंकि ऐसा प्रायः हुआ करता है, इसलिए स्पष्ट है कि निरोध उत्तेजना की एक प्रमुख प्रतिक्रिया है।

एक सीधा-सा उदाहरण लीजिए। मान लीजिए कि आप धीरे-धीरे एक रास्ते पर चले जारहे हैं और सामने आपको एक

[१] sound [२] motor nerves [३] effectors [४] stimuli [५] receptors [६] stimulus [७] goad [८] sensory [९] indirect [१०] muscular response [११] external stimulus [१२] inhibition

जगह फिसलन दिखायी देती है। आप पर यह प्रतिक्रिया होती है कि आप अपने क़दम सँभाल-सँभाल कर उठाने लगते हैं और अधिक सावधानीसे चलते हैं। इसके बाद ही आप अपने से कुछ आगे एक मित्रको जाते हुए देखते हैं, और आप चलनेके बजाय दौड़ने लगते हैं। तभी विस्फोटकी आवाज़ होती है और ये सभी क्रियाएं निरुद्ध होजाती हैं, इसके कारण आप अपने रास्तेमें जहांके तहां खड़े रह जाते हैं (या यदि आपको बमबारी का अनुभव है, तो आप धरती पर सपाट लेट जाते हैं)। जब कभी कोई उत्तेजना इसप्रकार अकस्मात् आपको अपनी क्रियामें परिवर्तन करनेके लिए प्रेरित करती है, तब जो कार्य आप करने ही वाले थे, वह रुक जाता है या निरुद्ध होजाता है। जैसा कि कोई शरीरशास्त्री कहेगा, किसी भी प्रतिक्रियामें प्रोद्दीपन[1] और निरोध[2], दोनों बातें समाविष्ट होती हैं।

उत्तेजना-प्रतिक्रिया का सूत्र[3]. क्रिया उत्तेजना पर निर्भर करती है, इस मौलिक जीवशास्त्रीय तथ्यको प्रकट करनेके लिए बहुधा एक सरल सूत्रका उपयोग किया जाता है :

उ—प्र या उ→प्र

इसमें 'उ' उत्तेजना के और 'प्र' प्रतिक्रियाके लिए है। इस प्रकार इस सूत्रका मतलब हुआ—'उत्तेजना क्रिया को उकसाती है', या 'उत्तेजनाके द्वारा प्रतिक्रिया उकसायी जाती है'। इसको दूसरी तरह यों भी प्रकट करसकते हैं कि परिवेशकी उत्तेजना के कारण व्यक्तिको क्रिया के लिए प्रस्तुत होना पड़ता है। इस सूत्रसे इस तरहके प्रश्न सामने आते हैं, जैसे—'अमुक-अमुक उत्तेजनासे व्यक्तिमें क्या प्रतिक्रिया होगी?' और 'व्यक्ति एक निश्चित प्रतिक्रिया करे, इसके लिए उसे कैसी उत्तेजनाकी आवश्यकता होगी'। मनोवैज्ञानिक अन्वेषणके लिए उ—प्र का सूत्र ऐसे प्रयोगोंके लिए प्रेरित करता है जिनमें उत्तेजनामें यह देखनेके लिए कुछ परिवर्तन कर दिये जाते हैं कि उनसे प्रतिक्रियामें क्या परिवर्तन उपस्थित होंगे। उदाहरणके लिए, भौतिक शक्तिमें वृद्धि करते हुए किसी निर्बल ध्वनिको क्रमशः काफ़ी सबल कर दीजिए। संवेदनात्मक प्रतिक्रिया पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा? निस्सन्देह आप इसका उत्तर जानते हैं : ध्वनिकी संवेदना[4] क्रमशः अधिक विपुल[5] होती जाती है। इसी तरहके कई प्रश्न पूछे जासकते हैं, जिनके उत्तर उचित प्रयोग किये बिना नहीं जाने जासकते। अन्य प्रश्न किसी ज्ञात प्रतिक्रियासे सम्बन्धित होते हैं और वे उत्तेजना के विषयमें जानना चाहते हैं। क्रोध एक ज्ञात या प्रकट प्रतिक्रिया है, किन्तु कौन-सी उत्तेजनाओंके कारण क्रोध उत्पन्न हुआ, और इस उत्पन्न हुए क्रोधको कौन-सी उत्तेजना निरुद्ध[6] कर सकेगी? मनोविज्ञान-सम्बन्धी बहुत-सी समस्याओं को उ—प्र सूत्रसे संलग्न किया जासकता है।

व्यक्तिकी प्रतिक्रिया को प्रभावित करनेवाले उसके कुछ भीतरी तत्व. उ—प्र सूत्रका तात्पर्य है कि प्रतिक्रिया उत्तेजना पर निर्भर करती है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं निकालना चाहिए कि वह «पूर्णतया» उत्तेजना पर ही निर्भर करती है और प्रतिक्रिया पर किन्हीं अन्य तत्वों[7] का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। हम जानते हैं कि एक ही उत्तेजनाकी प्रतिक्रिया विभिन्न व्यक्तियों पर विभिन्न प्रकारसे होगी और वही व्यक्ति सदा एक-सी प्रतिक्रिया भी नहीं दिखायगा। किसी चीज़की प्रतिक्रिया एक बच्चे पर जिस रूपमें होती है, उसी रूपमें उसके वयस्क होजाने पर नहीं होती। यदि हम पहिलेसे ही यह जानना चाहते हैं कि अमुक उत्तेजनाकी क्या प्रतिक्रिया व्यक्ति पर होगी, तो हमें व्यक्ति और उत्तेजना, दोनों पर विचार करना पड़ेगा। हमको 'उ' के साथ-साथ 'व्य' का भी ध्यान रखना पड़ेगा। इसलिए पहिलेसे भी अधिक उपयुक्त यह दूसरा सूत्र है :

उ—व्य—प्र

इसका तात्पर्य यह हुआ कि उत्तेजना व्यक्ति पर क्रिया करती है और उसको प्रतिक्रिया के लिए प्रेरित करती है तथा प्रतिक्रिया उत्तेजना के साथ-साथ व्यक्ति पर भी निर्भर करती है। एक निश्चित क्षणमें व्यक्ति क्या करता है, इसी बात पर अपना ध्यान केन्द्रित करके हम जानना चाहते हैं कि उसकी चेष्टाओंका निर्धारण किन तत्वों द्वारा होता है। जब वह कोई उत्तेजना प्राप्त करता है, तब उसकी प्रतिक्रिया अंशतः तो उत्तेजना के तत्वों (उ–तत्वों), जैसे कि उत्तेजनाकी शक्ति, पर निर्भर करती है और अंशतः व्यक्तिके तत्वों (व्य–तत्वों) पर। विभिन्न व्य–तत्वोंको तीन शीर्षकोंके अन्तर्गत श्रेणीबद्ध किया जासकता है—रचना[8], स्थिति या दशा[9] और तात्कालिक व्यापार[10]।

«रचना—स्थायी लक्षण». किसी व्यक्तिकी रचनासे हमारा तात्पर्य उसकी शारीरिक रचनासे है। हम प्रायः कहते हैं कि व्यक्तिके समस्त स्थायी लक्षणोंका मूल उसकी रचना है। पित्र्यैक[11] रचना के ही अंश हैं। ये अंश छोटे हैं, पर हैं महत्त्वपूर्ण। भुजाएं और टांगें, मांसपेशियां तथा ग्रन्थियां, ज्ञानेन्द्रियां, नाड़ियां और मस्तिष्क—शरीर-रचना के ये सारे अंग परिवेशके साथ पित्र्यैकोंकी परस्परक्रिया के कारण विकसित हुए हैं। इस प्रकार शारीरिक रचनामें

[1] excitation [2] inhibition [3] The stimulus-response formula [4] sensation [5] loud [6] inhibit [7] factors [8] structure [9] state [10] activity in progress [11] genes

वंशानुक्रमके तत्व और व्यक्तिके अतीत परिवेशोंके सभी स्थायी प्रभाव सन्निहित रहते हैं। उसने जो कुछ सीखा है, उसका सारा ज्ञान, आदतें और कौशल उसकी रचनामें निहित रहते हैं। मान लीजिए किसी व्यक्ति ने पिछली गर्मियोंमें तैरना सीखा था, परन्तु इस जाड़ेमें वह बिल्कुल न तैरा, फिर भी बिना दुबारा सीखे हुए वह अगली गर्मियोंमें तैर सकेगा। अपनी इस योग्यता को उसने जाड़ेकी ऋतुमें नष्ट नहीं होने दिया। इस योग्यता को उसने कहां छिपाये रखा? सम्भवतः अपने मस्तिष्ककी रचनामें उसने इस योग्यता को बीज रूप में छिपा रखा, क्योंकि तैरनेके उसके अभ्यासके कारण उसके मस्तिष्ककी रचना कुछ बदल गई थी। इसी प्रकार व्यक्ति की सारी योग्यताएं और व्यक्तित्वके लक्षण उसकी रचनामें छिपे रहते हैं। फिर भी यह सही है कि हम व्यक्तिकी बहुत-सी भीतरी बनावटका निरीक्षण नहीं करसकते और हमें उसके व्यवहारसे उसके स्थायी लक्षणोंकी परख करनी पड़ती है। व्यवहारमें शारीरिक रचनासे हमारा तात्पर्य व्यक्तिके स्थायी लक्षणोंसे ही रहता है। इन लक्षणोंको स्थायी कहने में शर्त यह है कि उत्तेजना के प्रति प्रतिक्रिया करते समय व्यक्ति इन लक्षणोंको, जिन्हें वह भूतकालसे ढोता आरहा है, वर्तमान परिस्थितिका सामना करनेमें भी अपने पास रखे। इस तरहके स्थायी लक्षणोंका अध्ययन करनेसे हमें भावी क्रियाओंका पूर्वाभास पानेका एक आधार प्राप्त होता है।

«अस्थायी दशा». किसी निर्दिष्ट क्षणमें कोई व्यक्ति, चाहे वह कितना ही जिन्दादिल क्यों न हो, तन्द्राकी स्थिति में हो सकता है और उस समय किसी प्रश्न या उत्तेजना के प्रति उसमें शिथिल प्रतिक्रिया होसकती है। शैथिल्य या ऊंघने की स्थिति उन अनेक अस्थायी दशाओंमें से एक है जो व्यक्ति की प्रतिक्रिया पर विभिन्न प्रभाव डालती हैं। जब उसको भूख लगी होगी तो भोजनके प्रति उसकी प्रतिक्रिया भिन्न होगी और जब पेट भरा होगा तो भिन्न। एक आरामकुर्सीके सम्बन्धमें उसकी प्रतिक्रिया थकानकी स्थितिमें कुछ और होगी और आराम कर चुकनेकी स्थितिमें कुछ और। नशा और ज्वर इसके अन्य उदाहरण हैं। जोश[1] या निरुत्साह[2] चिन्ता या उल्लासकी संवेगात्मक दशाएं भी इसीके उदाहरण हैं। प्राणीकी ऐसी किसी दशा का उसके व्यवहार पर बड़ा प्रभाव पड़ता है, इसलिए यह जाननेके लिए कि 'व्य' किसी 'उ' के प्रति कैसी प्रतिक्रिया करेगा, आपको उस क्षणमें 'व्य' की दशा को ध्यानमें रखना होगा।

«चालू क्रिया[3]». किसी निर्दिष्ट क्षणमें 'व्य' सामान्यतया किसी ऐसे कार्यमें लगा रहता है जिसका उद्देश्य किसी लक्ष्यतक पहुंचना होता है। वह कुछ कर रहा है, इसलिए किसी उत्तेजना के प्रति उसकी प्रतिक्रिया इस बात पर निर्भर करेगी कि वह उस क्षणमें क्या कर रहा है। यदि उत्तेजना का उस क्रियासे कोई सम्बन्ध नहीं है जो इस समय वह कर रहा है, तो जहांतक सम्भव होगा, वह उसकी उपेक्षा करेगा; यदि वह उसकी प्रगतिको रोकनेका भय उपस्थित करती है, तो या तो वह उसका प्रतिरोध करेगा, या उससे बचकर निकल जानेकी कोशिश करेगा; यदि वह उत्तेजना उसके कार्यमें सहायता पहुंचाने वाली होगी तो उसकी प्रतिक्रिया विधानात्मक[4] होगी।

हमने देखा कि प्रतिक्रिया उत्पन्न करनेमें चार तत्व सम्मिलित रूपसे कार्य करते हैं: व्यक्तिके स्थायी लक्षण, उसकी आन्तरिक दशा, उसका लक्ष्य या चालू क्रिया और उस क्षण उसे प्राप्त होने वाली उत्तेजना। प्रतिक्रिया इन चारों तत्वों पर निर्भर करती है, कभी अधिक स्पष्ट रूपसे एक पर और कभी दूसरे पर। किसी युवककी प्रेमपूर्ण चेष्टाओंके प्रति किसी युवतीकी क्या प्रतिक्रिया होगी, यह उस युवती स्त्री पर, उसके स्वभाव और चरित्र पर, उसकी आदतों और पिछले अनुभवों पर निर्भर करता है। उसकी तत्कालीन शारीरिक और संवेगात्मक दशा पर भी यह बहुत-कुछ निर्भर करता है। यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि उस समय वह क्या कर रही है। यह उस युवक और उसकी 'विनती' पर भी निर्भर करता है। स्पष्ट है कि इस प्रश्नका कि इन चारों तत्वोंमें से कौन-सा तत्व सर्वाधिक शक्तिशाली और प्रेरक है, कोई नपा-तुला उत्तर देना असम्भव है। कभी एक तत्व हावी रहता है, कभी दूसरा। कुछ बहुत जोरदार उत्तेजनाएं ऐसी होती हैं, जैसे पीड़ाकी चुभन, जो व्यक्तिको हाथका काम बन्द करके उनकी ओर ध्यान देनेके लिए विवश करती हैं। बेहोशीकी हालत[5] में व्यक्ति चाकू के प्रति भी कोई प्रतिक्रिया नहीं करता, क्योंकि उसकी अचेतावस्था उस समय प्रबल तत्व होता है। लड़ाईकी तेजीमें घाव लग भी जाय, तो आदमीको उसका कुछ ध्यान नहीं रहता क्योंकि तीव्र चालू क्रिया ही उस समय जोर पर रहती है। इसके अलावा यह बात भी है कि कुछ व्यक्ति स्वभावतः दूसरोंकी अपेक्षा अधिक सहिष्णु और तगड़े होते हैं।

परिवेशसे कुशलतापूर्वक व्यवहार करनेके नियम

इस प्रश्नका कि 'व्यक्ति क्या कार्य करता है?' हमारा उत्तर

[1] excitement [2] depression [3] activity in progress [4] positive [5] anaesthesia

'सं—व्य—सं' के सूत्रमें आ गया था, जिसका तात्पर्य यह है कि व्यक्ति अपने परिवेशके साथ व्यवहार करता है; और इस प्रश्नका हमारा उत्तर कि 'वह कैसे इसे करता है?' 'उ—व्य—प्र' सूत्रमें छिपा हुआ था, जिसका तात्पर्य यह हुआ कि वह अपनी शारीरिक रचना, दशा और तात्कालिक व्यापारके अनुसार उत्तेजनाकी प्रतिक्रिया करता है। चूंकि उत्तेजना प्रधानतया परिवेशसे प्राप्त होती है और प्रतिक्रियाएं परिवेश पर होती हैं, इसलिए इन दोनों सूत्रों को एक सूत्रमें मिलाया जासकता है—

सं—उ—व्य—प्र—सं

यह सूत्र भली प्रकार समझा जासकता है। ऐसा लगेगा कि इस संयुक्त सूत्रमें हमारे 'क्या और कैसे' प्रश्नोंका उत्तर मिल जाता है। मोटे तौर पर तो इससे उत्तर मिल जाता है, परन्तु इसको पूर्ण बनानेके लिए इसमें अभी कुछ और भरना आवश्यक है। इस स्थूल उत्तरसे यह नहीं पता चलता कि प्रतिक्रियाको परिवेशके अनुकूल कैसे बनाया जाता है, जैसा कि प्रायः होता है। केवल इस तथ्यसे कि 'व्य' परिवेशकी उत्तेजनाकी प्रतिक्रिया करता है और इस प्रकार परिवेश पर प्रभाव डालता है, यह सिद्ध नहीं होता कि वे प्रभाव अच्छे हैं। यदि आप 'व्य' के आदातृ-अंगों[1] के पास किसी भी क्षण पहुंचने वाली बहुत-सी उत्तेजनाओंका ख्याल करें और उनके प्रतिक्रियास्वरूप वह जो तरह-तरह की चेष्टाएं कर सकता है, उनका विचार करें, तो आपको आश्चर्य होगा कि उसका व्यवहार इतना सुव्यवस्थित और सुसमायोजित कैसे रह पाता है, जितना कि वास्तवमें है।

परिवेशके साथ अच्छी तरह व्यवहार करनेमें दो प्रमुख बातें हैं जिन्हें «चुनाव[2]» और «तैयारी[3]» कह सकते हैं। दोनों ही चालू क्रिया के अन्तर्गत आ जाते हैं। 'चुनाव' से यहां यह तात्पर्य है कि किसी क्षणकी चेष्टा सभी सम्भव प्रतिक्रियाओं और वर्तमान उत्तेजनाओं पर केन्द्रित न होकर किन्हीं खास प्रतिक्रियाओं और किसी खास उत्तेजना पर ही «केन्द्रीभूत» रहती है। 'तैयारी' से यहां यह मतलब है कि सामान्यतया प्राणी[4] आनेवाली उत्तेजना और होनेवाली प्रतिक्रिया के लिए किसी क्षण «प्रस्तुत» रहता है।

उत्तेजनाओंको चुनावपूर्वक ग्रहण करना[5]. रेडिओ ने हमें 'चुनाव' से परिचित करा दिया है। रेडिओकी कई प्रकारकी तरंगोंसे जिन पर उस समय कार्य-क्रम प्रसारित हो रहे होते हैं, किसी को हम सुई घुमाते ही सुन सकते हैं। प्राणी उत्तेजना का चुनाव कुछ दूसरी तरहसे करता है। देखना और सुनना, इसके दो सर्वोत्तम उदाहरण हैं। जब आप किसी वस्तुकी ओर देखते हैं, तब वस्तुका प्रकाश दृष्टिपटल[6] के केन्द्र स्थानसे टकराता है, जहां सबसे अच्छी ग्रहणशीलता[7] होती है। किसी क्षणमें दृश्य क्षेत्र बहुत विस्तृत होता है, किन्तु उसका केवल केन्द्र ही स्पष्ट और साफ़ दिखायी देता है। जिन पशुओंके कान घूमने वाले होते हैं, उनकी सुननेकी क्रियाको हम देख सकते हैं, और मनुष्य भी किसी ध्वनिको अच्छी तरह ग्रहण करनेके लिए अपना सिर उचित रूपसे घुमा देता है।

उत्तेजनाको ग्रहण[7] करने में एक दूसरे प्रकारका चुनाव भी होता है जिसमें सिर घुमाये बिना ही किसी ध्वनि पर और दृष्टि घुमाये बिना ही किसी वस्तु पर 'ध्यान केन्द्रित होजाता है'। जहां खूब जोरसे हल्ला हो रहा हो या भिन्न-भिन्न आवाजों की भनभनाहट हो रही हो, वहां भी आप उस आवाजको किसी प्रकार सुन ही लेते हैं जिससे आपको दिलचस्पी होती है। किसी वस्तु पर दृष्टि टिकाए बिना उसपर ठीक ढंगसे ध्यान देना आसान नहीं है, किन्तु ऐसा किया जा सकता है, हालांकि उस समय उत्तेजना इतनी अच्छी तरहसे ग्रहण नहीं की जा सकती जितनी तब जब आंखें और ध्यान उस वस्तु पर केन्द्रित होजाते हैं। इसी प्रकार आप एक समय एक ही अंग पर ध्यान देकर अपनी गर्दन, पीठ और पैरकी संवेदना का स्पष्ट अनुभव कर सकते हैं। जब आप एक वस्तुको देखते हैं, तब बाकी सब वस्तुएं पृष्ठभूमि में चली जाती हैं और आप उन सबको एक साथ साफ़-साफ़ देख नहीं सकते।

चुनावपूर्वक प्रतिक्रिया[8]. जिन अनेक कार्योंको करनेकी सामर्थ्य व्यक्तिमें है, उनमें से केवल एक, मुख्यतः केवल एक कामको वह किसी एक समयमें करता है। कुछ गतियां परस्पर विरोधी होती हैं, जैसे—कुहनी को झुकाना और सीधा करना, या किसी वस्तुके पास जाना या उसको बचाकर निकल जाना—और इनमें से कोई एक-ही एक समयमें की जा सकती है। यदि व्यक्ति ने एक समयमें दो परस्पर-विरोधी गतियां कीं, तो परिवेशके साथ सुचारु रूपेण व्यवहार नहीं किया जासकता। बहुधा दो उत्तेजनाएं प्रस्तुत रहती हैं जो विरोधी प्रतिक्रियाएं चाहती हैं, परन्तु ऐसी स्थितिमें प्रतिक्रिया चुनावपूर्वक होती है। मानलीजिए दो आकर्षक वस्तुएं एक ही समय दिखायी देती हैं—एक दूर पर दाहिनी ओर है और दूसरी बायीं ओर। यदि आप दोनोंको एक साथ देखनेका प्रयत्न करेंगे, तो दोनोंके बीचमें ही घूरते रह जायेंगे और किसी का स्पष्ट चित्र न प्राप्त कर सकेंगे। ऐसे मामलेमें आंखें यही करती हैं कि «या तो» वे दाहिनी ओर देखती हैं, या बायीं ओर; और यह 'यह या वह' प्रकारकी प्रतिक्रिया ही

[1] receptors [2] selectivity [3] set [4] organism [5] selective reception [6] retina [7] reception
[8] selective response

प्राणी स्वभावतः करता है, विशेषतया अपेक्षाकृत सरल कार्यों में तो ऐसा ही होता है।

चुनाव[1] के नियमके साथ-साथ दो अन्य नियमोंका भी उल्लेख होना चाहिए, ताकि व्यवहारका केवल एकांगी पक्ष उपस्थित न हो। ये हैं विवर्तन[2] और संयोजन[3] के नियम।

प्रतिक्रिया का विवर्तन. केवल चुनाव[1] के नियम के अनुसार हम आशा करेंगे कि दो आकर्षक वस्तुओंमें से किसी एक की ओर आंखें घूम जायेंगी और वहीं रहेंगी। परन्तु वस्तुतः वे पहिली चीजको अच्छी तरह देख लेनेके बाद दूसरी चीजकी ओर विवर्तित होजाती हैं। इसके बाद वे फिर पहिली चीजकी ओर या अन्य चीजोंकी ओर उन्मुख हो जायेंगी, और इस तरह वे दृष्टिपथमें आनेवाली प्रत्येक आकर्षक वस्तुकी परीक्षा करलेंगी। इस प्रकारका व्यवहार तथा चुनाव करने की प्रवृत्ति प्राणीके स्वभावका एक अंग है। हम सीखना, निरीक्षण करना और सोचना आदि विषयों पर विचार करते समय इस प्रसंग पर फिर ध्यान देंगे।

संयोजन[3]. जब व्यक्तिको कई उत्तेजनाएं मिल रही हों, तो हम यह आशा कर सकते हैं कि प्रत्येक उत्तेजना अपनी अलग प्रतिक्रिया पैदा करेगी। या चुनाव के नियमके अनुसार हम आशा कर सकते हैं कि एक निश्चित समयमें केवल एक उत्तेजना अपना प्रभाव डाल सकेगी, और फलतः एक समयमें प्रतिक्रिया एक ही मांस-पेशी तक सीमित रहेगी। परन्तु होती बहुत भिन्न चीज है। किसी भी साधारण दृष्टि-क्षेत्रमें हजारों प्रारम्भिक उत्तेजनाएं होती हैं, प्रकाश, छाया और रंगके हजारों बिन्दु होते हैं, किन्तु आप इन बिन्दुओंको अलग-अलग नहीं देखते और न आप सबकी समष्टिको एक रंग-बिरंगे रूपमें देख पाते हैं। आप कुछ बड़ी और कुछ छोटी वस्तुओंको देखते हैं, उनमें से अधिकांश प्रकाशके एक छोटे बिन्दुसे तो अवश्य ही बड़ी होती हैं। उदाहरणार्थ, आपने किसी का चेहरा देखा। केवल नाक या चेहरे परके किसी छोटे दाग पर ध्यान केन्द्रित करनेके बजाय समूचे चेहरे पर ध्यान लगाना कहीं अधिक सरल है। स्पष्ट है कि चेहरे को देखता एक ऐसी प्रतिक्रिया है जो एक इकाईमें संयुक्त कई उत्तेजनाओं
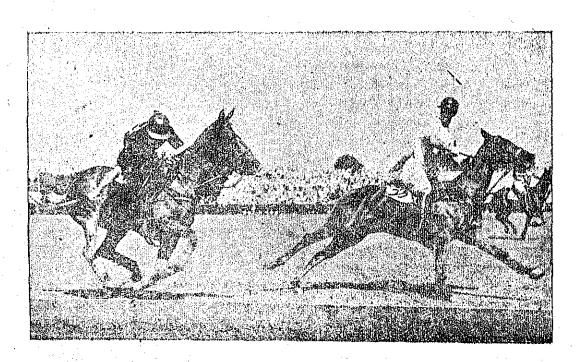
आकृति ३५. सक्रिय गतिकी स्थितिमें घोड़ोंकी शीघ्रतासे खींची हुई फ़ोटो। फ़ोटोमें घोड़े जिन स्थितियोंमें दिखायी दे रहे हैं, वे कुछ विचित्र मालूम होती हैं, क्योंकि हम साधारणतया गतिको समग्र रूपमें ही देखते हैं, उन क्षणिक स्थितियोंको नहीं देखते, जिनसे होकर गति गुज़रती है। दौड़नेकी गतिकी घोर जटिलता पर भी दृष्टिपात कीजिए। यह इतनी जटिल दिखायी देती है, किन्तु वास्तवमें यह अकेली, ऐकिक प्रतिक्रिया (रिस्पौन्स) है।

[1] selectivity [2] shifting [3] combination

आकृति ३६. प्रारम्भिक तत्परता

के मेलके प्रति होती है परन्तु साथ ही साथ यह चुनावपूर्वक प्रतिक्रिया[1] भी है, क्योंकि चेहरा समस्त दृष्टि-क्षेत्र का एक भाग मात्र है।

नेत्रों, हाथों या पैरोंकी कोई गति[2] कई मांस-पेशियोंके एक साथ दलबद्ध होकर काम करनेके परिणामस्वरूप होती है। परन्तु साथ ही साथ यह गति चुनावके साथ होती है, क्योंकि इस क्रियामें कुछ ही मांस-पेशियां भाग लेती हैं, सभी मांस-पेशियां नहीं। यह क्रिया एक सुसम्बद्ध इकाई होती है और इससे कुछ निश्चित परिणाम निकलते हैं। भारी बोझको उठाना जैसी हरकत भी, जिसमें हाथों, टांगों और धड़ की सम्मिलित क्रिया होती है, एक इकाई या अकेली प्रतिक्रिया है। इसी प्रकार घोड़ेकी छलांग भी है। क्रियाके रूपमें यह एक इकाई है, और जब आप एक दौड़ते हुए घोड़ेकी गति देखते हैं, तब आप उसका समग्र रूप ही देखते हैं, विभिन्न स्थितियोंकी श्रृंखलाके रूपमें उसे नहीं देखते।

हम देखते हैं कि व्यक्ति किसी एक उत्तेजनाके बजाय उत्तेजनाओंके संयोगके प्रति प्रतिक्रिया करता है और हर प्रतिक्रियामें एक ही मांस-पेशीके बजाय कई मांस-पेशियोंका समूह काम करता है।

प्रारम्भिक तैयारी[3]. किसी एक क्षणमें क्रियाको संगठित और सफल बनानेके लिए उसे एक ही वस्तु पर केन्द्रित करना होता है, और इसी प्रकार एक लम्बे समय तक चलने वाली क्रियाको संगठित और सफल बनानेके लिए उस समयका एक हिस्सा उस नाजुक घड़ीके लिए तैयार होनेमें लगाना होता है जिसमें कोई महत्त्वपूर्ण कार्य होना है। यदि हम कुछ आवश्यक कामों की, जैसे परीक्षा, नाटक, या युद्धकी बात सोचें, तो हम तुरन्त तैयारी की जरूरत महसूस करेंगे। किन्तु सम्भवतः हमने नहीं देखा है कि तैयारी करनेकी प्रवृत्ति हमारे शरीरमें कितनी गहरी जड़ जमाये हुए है और सरल व्यवहारमें भी इसकी कितनी आवश्यकता है। बहुधा हम जिसे एक क्रिया समझते हैं, उसके दो भाग होते हैं, एक प्रारम्भिक प्रतिक्रिया और दूसरी अन्तिम प्रतिक्रिया। खांसना या छींकना निश्चय ही अपेक्षाकृत सरल कार्य है, परन्तु इसके भी दो भाग हैं: अन्तःश्वसन[4] और बहिःश्वसन[5]। अन्तिम प्रतिक्रिया अधिक परिमाणमें वायुको बलात् बाहर निकाल देती है और प्रारम्भिक प्रतिक्रिया इस अधिक परिमाणकी वायुको भीतर खींचती है। यही दोनों भाग गाने, चिल्लाने और साधारण बोलचालमें भी पाये जा सकते हैं। मुक्का मारनेके पहिले तैयारीके रूपमें भी हाथको ऊपर उठाकर तानना पड़ता है। हथौड़ा चलानेमें भी जोर की चोट करनेके लिए भुजाको ऊपर उठाकर अन्तिम चेष्टाकी तैयारी करनी पड़ती है।

प्रारम्भिक तैयारी[3] उस तैयारीको कहते हैं जिसे किसी

[1] selective response [2] movement [3] preparatory set [4] inspiration [5] expiration
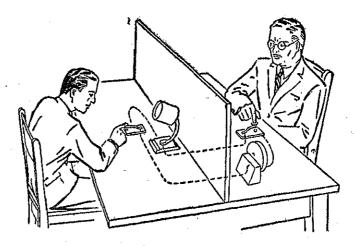
आकृति ३७. प्रतिक्रिया-काल। जब दाहिनी ओर बैठा हुआ 'प्र' (प्रयोगकर्ता) अपना बटन दबाता है, तब निओन लैम्प 'व्य' (व्यक्ति या परीक्षार्थी) की आंखों में चमकता है और वह अपने बटनको जितनी तत्परतासे सम्भव होसकता है, उतनी तत्परतासे दबाकर उस प्रकाशके प्रति अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करता है। 'प्र' के बगलमें रखी हुई घड़ी प्रतिक्रिया कालको एक सैकेंडके सौवें भाग तक नाप लेती है।

कार्यको करनेके पहिले शरीर करता है। दौड़नेकी प्रतियोगितामें जो व्यक्ति निशान पर पैर जमाकर सीटीकी प्रतीक्षा कर रहा है वह तैयारीका अच्छा चित्र उपस्थित करता है। ज़रा उसके खड़े होनेके ढंगको तो देखिए, वह शरीरको झुकाये हुए इस तरह खड़ा है कि जल्दीसे जल्दी भाग निकले। वह आगे बढ़नेके लिए पूरी तरह तैयार है। यदि वह तैयार न रहे, तो प्रारम्भमें ही पिछड़ जायगा। परन्तु उसे इतना उत्सुक या जल्दबाज़ भी नहीं हो जाना चाहिए कि सीटी बजनेके पहिले ही वह निशानसे आगे क़दम बढ़ा दे। उसे सीटीकी आवाज सुननी चाहिए। प्रतिक्रियाकी तैयारीके साथ-साथ उत्तेजना ग्रहण करनेके लिए भी उसे हर समय प्रस्तुत रहना होता है। उसकी तैयारी सांवेदनिक[१] और चेष्टा-सम्बन्धी[२] दोनों है। यह तैयारी अत्यधिक चुनावपूर्ण[३] है, क्योंकि एक निश्चित उत्तेजना के प्रति एक निश्चित प्रतिक्रिया करनेके लिए यह व्यक्तिको तैयार रखती है। इस स्थितिमें अन्य आकस्मिक ध्वनियोंकी अपेक्षा की जाती है और सीटीकी ध्वनिके प्रति साधारणतया जो अन्य प्रतिक्रियाएं की जाती हैं—जैसे ध्वनि कहांसे आयी है, इसके लिए मुड़कर पीछे देखना—वे भी निरुद्ध[४] हो जाती हैं।
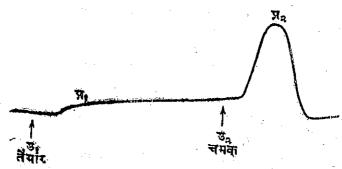
आकृति ३८. प्रतिक्रिया-काल-सम्बन्धी प्रयोगमें प्रारम्भिक तत्परता। 'व्य' जैसे ही उत्तेजना, $उ_2$, को ग्रहण करनेकी तैयारी करता है और प्रतिक्रिया-गति $प्र_2$, करता है, वैसे ही उसकी भुजामें मांस-पेशीका तनाव होता है। यहां पर $प्र_1$ उस तनावका प्रतिनिधित्व कर रहा है।

[१] sensory [२] motor [३] selective [४] inhibited

«प्रतिक्रिया का समय». सौ गज दौड़नेमें किसी खिलाड़ी को कितना समय लगता है, यह नापनेके बजाय यदि यह नापा जाय कि वह शुरू करनेमें कितना समय लेता है, तो पता चलेगा कि एक सैकेंडके भीतर ही यह कार्य हो जाता है। एक प्रसिद्ध प्रयोगमें यह परिणाम इस प्रकार मालूम किया गया: 'व्य' को एक निश्चित उत्तेजना प्राप्त करते ही तार(टेलीग्राफ़) का बटन दबाना था। वह पहिलेसे ही जानता था कि क्या उत्तेजना होगी और क्या प्रतिक्रिया उसे करनी होगी। असली उत्तेजना देनेके दो सैकेंड पहिले 'तैयार' रहनेका संकेत किया जाता है। इस संकेत पर वह तैयार हो जाता है, ध्वनिके लिए कान लगाये रहता है, या प्रकाशकी चमक के लिए देखता है और अपनी अंगुलीको बटन पर रखे रहता है। उत्तेजना के प्राप्त होते ही, यदि उसे थोड़ा अभ्यास है या वह उस क्षण पूर्णतया तैयार है, तो उसे बटन दबानेमें $\frac{1}{5}$ सैकेंड या इससे भी कम समय लगता है। उत्तेजना और प्रतिक्रिया के बीचका यह समय ही प्रतिक्रिया का समय कहलाता है।

इस थोड़े से समयमें शरीरके भीतर कई प्रतिक्रियाएँ हो चुकती हैं: पहिले तो ज्ञानेन्द्रिय को उत्तेजना मिलती है; यह उत्तेजना बोध-स्नायु द्वारा मस्तिष्कमें पहुंचती है; मस्तिष्कमें प्रतिक्रिया होती है; यह प्रतिक्रिया कर्म-स्नायु द्वारा मांस-पेशी में पहुंचायी जाती है; मांस-पेशी सक्रिय होती है और वह हाथको हिलाती है। कुछ व्यक्तियोंमें यह प्रतिक्रिया $\frac{1}{10}$ सैकेंड में ही हो जाती है, जो मनुष्य-शक्ति की सीमा के लगभग लगती है। (सर्वांगीण शीघ्रता की जाँचके लिए यह परीक्षा प्रामाणिक या सन्तोषप्रद नहीं है। अन्य कामोंमें विशेष रूपसे जल्दी किये बिना भी कोई व्यक्ति इस प्रतिक्रिया के लिए कम समय ले सकता है, या अन्य जटिल चेष्टाओंमें जल्द चाल होते हुए भी वह इस परीक्षामें प्रतिक्रिया के लिए अधिक समय ले सकता है।) आंख द्वारा प्रकाशको ग्रहण करनेकी 'भा-रासायनिक'[1] प्रक्रियाओंके कारण एक मजेदार तथ्य सामने आता है। वह यह कि ध्वनि या त्वचा पर स्पर्शकी प्रतिक्रिया से प्रकाशकी प्रतिक्रियामें अधिक समय लगते हैं—ध्वनि या त्वचा-स्पर्शकी प्रतिक्रियामें यदि ·१४ सैकेंड लगते हैं तो प्रकाशकी प्रतिक्रियामें लगभग ·१८ सैकेंड लगते हैं। प्रतिक्रिया-काल के विषयमें और भी कई दिलचस्प बातें हैं, परन्तु नीचे हम केवल उन्हीं तथ्योंका उल्लेख कर रहे हैं जिनका सम्बन्ध तैयारी[2] के नियमसे है (६, १०)।

१. 'तैयार रहो' का संकेत आवश्यक है। यदि कोई संकेत न दिया जाय, तो 'व्य' यह नहीं जान सकता कि उसे कब तैयार रहना है और तब उसकी प्रतिक्रिया धीमी रहेगी। प्रतिक्रिया एकसी हो और जल्दी-से-जल्दी हो, इसके लिए आवश्यक है कि आप 'तैयार रहो' संकेत और उत्तेजना के बीच लगभग दो सैकेंड का समय दें। एक सैकेंडसे कम समय तो किसी भी हालतमें तैयार होनेके लिए पर्याप्त समय नहीं कहा जा सकता। पांच सैकेंडसे अधिक समय भी बहुत ज्यादा माना जायगा; इतने समयमें उसकी तत्परता मन्द पड़ जाती है, वह अपनी कुछ कार्यकुशलता खो देता है।

२. अभी तक हमने केवल 'सरल प्रतिक्रिया' पर ही विचार किया है जिसमें व्यक्तिको सीधा काम करनेको दिया जा सकता है और वह शीघ्र से शीघ्र प्रतिक्रिया कर सकता है (केवल कुछ प्रतिक्षेप क्रियाओं[3] को छोड़कर)। अन्य कार्यों में उसको अधिक समय लगाना पड़ता है। 'वैकल्पिक प्रतिक्रिया,[4] में उसको विभिन्न उत्तेजनाओंके लिए विभिन्न प्रतिक्रियाएं करनी पड़ती हैं। उदाहरणार्थ, लाल रोशनी दिखाते ही उसको अपना दायां हाथ और हरी रोशनी दिखाते ही अपना बायां हाथ उठाना चाहिए। चूंकि उसको यह नहीं मालूम कि आगे कौन-सी रोशनी आनेवाली है, इसलिए वह किसी भी हाथ पर अपनी पूरी तैयारी केन्द्रित नहीं कर सकता, क्योंकि इसमें ग़लत प्रतिक्रिया कर जानेका भय बना रहेगा। प्रतिक्रिया के लिए उसकी तत्परता इतनी तीव्र नहीं की जा सकती, जितनी सरल प्रतिक्रियामें की गयी थी। फलतः 'वैकल्पिक प्रतिक्रिया' में 'सरल प्रतिक्रिया' की अपेक्षा कुछ अधिक समय (लगभग $\frac{1}{10}$ सैकेंड अधिक) लगता है।

३. «साम्बन्धिक प्रतिक्रिया[5]» इससे भी धीमी होती है। यहां पर 'व्य' को जो भी रंग दिखाया जाय, उसका नाम बताना पड़ता है या किसी संख्या को देखनेके बाद उसकी अगली बड़ी संख्या बतानी पड़ती है, या किसी शब्दको सुनकर उसका ठीक विलोम शब्द बताना होता है, इत्यादि। वह «किसी प्रकार» की प्रतिक्रिया के लिए तैयारी कर सकता है, परन्तु किसी निश्चित प्रतिक्रियाके लिए तैयारी नहीं कर सकता। उसकी तत्परता को विशिष्ट रहनेके बजाय सामान्य रहना होगा और साधारणतया उसका प्रतिक्रिया-काल आधे सैकेंडसे अधिक और बहुधा एक सैकेंड या उससे भी अधिक हो सकता है।

प्रतिक्रिया-काल सम्बन्धी प्रयोगोंके समान कई उदाहरण हमारे दैनिक जीवनमें मिल जाते हैं। चौराहे पर पुलिस वाले के हाथ दिखाते ही मोटर-चालक यदि मोटर छोड़ देता है, तो वह सरल प्रतिक्रिया कर रहा है। किसी संकट-काल में 'ब्रेक' लगानेका उसका कार्य भी ऐसा ही है। किन्तु दुर्भाग्यवश उस समय उसकी प्रतिक्रिया उतनी शीघ्र नहीं होती, क्योंकि

[1] photo-chemical [2] set [3] reflexes [4] choice reaction [5] associative reaction

अंशतः तो उत्तेजनाके द्वारा और अंशतः व्यक्तिकी तत्कालीन तत्परताके द्वारा निर्धारित होती है। तत्परता[1] कुछ प्रतिक्रियाओंके तो अनुकूल रहती है और कुछ को होने ही नहीं देती। तत्परतासे शीघ्रता, यथार्थता और कुशलता आती है। अंकगणित-सम्बन्धी कार्योंमें इसका व्यावहारिक महत्त्व दिखाया जा सकता है। जब आप संख्याओंकी एक तालिका का जोड़ लगा रहे होते हैं, तब तत्परता आपको केवल योग तक ही सीमित रखती है, अन्य सुझावोंकी ओर आपका ध्यान नहीं जाने देती। आपकी पिछली प्रशिक्षासे, संख्याओंका एक जोड़ा अपना योग, अन्तर, गुणनफल या लब्धि निकालने का सुझाव आपके सामने रख सकता है, परन्तु यदि आप जोड़के लिए तत्पर होते हैं तो आपको योगफल ही मिलता है और यदि अन्तरके लिए तत्पर होते हैं तो अन्तरफल ही प्राप्त होता है, इत्यादि।

१२	१०	६	९	२०	८	३०
६	५	२	३	४	२	३
—	—	—	—	—	—	—

अंकगणित और गणितकी अन्य शाखाओंमें एक प्रकारके प्रश्नोंको हल करनेके कई नियमोंका ध्यान रखना पड़ता है और कई निश्चित प्रक्रियाएं करनी पड़ती हैं। जब यह मालूम हो जाता है कि प्रश्न किस प्रकारका है, तब आप एक निश्चित प्रक्रिया द्वारा उसे हल करनेकी तैयारी करते हैं। यदि आपके पास उसी प्रकारके कई प्रश्न हों, तो तत्परतामें अधिक कुशलता आ जाती है और आप सरलतासे निश्चित प्रक्रियाको करते चलते हैं। इससे कुछ कम प्रमाणीकृत समस्याओंको हल करते समय आपकी तत्परता बहुत कुछ लकीरकी फ़क़ीर बन जाती है, बहुत नपी-तुली हो जाती है, इसलिए आप उससे अधिक मौलिक सुलझावोंकी ओरसे आंख मूंद लेते हैं। अगर आपकी तत्परता अधिक लचीली[2] होती, तो मौलिक सुलझावोंकी ओरसे आप इतने विमुख न हो पाते।

तत्परता या तो ऐच्छिक[3] होती है या अनैच्छिक[4]। कभी-कभी आप स्वयं बतला देते हैं कि आप क्या करने जा रहे हैं, किन्तु कभी-कभी कोई दूसरा व्यक्ति आपको सुझाता है और आप उसका सुझाव स्वीकार कर लेते हैं। दूसरे मामलोंमें परिस्थितिवश आप एक ऐसी तत्परता अपना लेते हैं, जिसका आपको स्पष्ट ज्ञान नहीं होता। यह स्वाभाविक ही है कि पहिले आपको अपने लक्ष्यका ज्ञान हो; ठीक किस रास्तेसे चलकर आप उस लक्ष्य तक पहुंचेंगे, इसकी जानकारी आप को बादमें भी हो सकती है, और न भी हो, तो कोई हर्ज नहीं, क्योंकि आप क्रियाकी एक नियमित पद्धतिको पूरी तरह न जानते हुए भी उसको करनेमें तत्पर हो सकते हैं (५, ८)।

सरल शब्द-निर्माण[5]

नीचे हम ५-५ अक्षरोंकी एक तालिका प्रस्तुत कर रहे हैं। अक्षरोंके प्रत्येक समूहको फिरसे सजाने पर एक शब्द बन जायगा। यदि पाठक समूची तालिकाके अक्षर-समूहोंसे शब्द-निर्माण कर लेगा, तो उसे रोचक परिणाम दृष्टिगोचर होंगे। अन्यत्र इस शब्द निर्माणकी कुंजी दी हुई है :

(१)	न	रि	प	व	र्त	(१४)	स	भा	सु	ष	बो
(२)	य	ज्ञा	अ	न	म	(१५)	ण	नु	अ	क	र
(३)	ता	र्व	स	मा	न्य	(१६)	ना	मा	स	लो	च
(४)	र	य	आ	ता	का	(१७)	सा	र	का	त्य	हि
(५)	ता	ल	वि	क्ष	ण	(१८)	ष	शे	भ	ग्ना	व
(६)	य	चि	स	वा	ल	(१९)	गौ	व	पू	र्ण	र
(७)	म	चो	प्रा	न	त	(२०)	ण	ता	वा	व	र
(८)	र्ध	र	भा	त	व	(२१)	न	वि	नो	म	ज्ञा
(९)	क	नो	म	रं	ज	(२२)	व	वा	र	ता	ण
(१०)	त्व	ति	प्र	नि	धि	(२३)	अ	त	य	स	लि
(११)	य	ह	र	स्य	म	(२४)	अ	त्म	ध्या	वा	द
(१२)	र	व	दे	सं	दि	(२५)	त्र	रा	रि	च	म
(१३)	ण	दा	उ	ह	र						

परिस्थितिके प्रति तत्परता[6]. हम अब तक तत्परताको किसी लक्ष्य तक पहुंचनेके लिए कार्य करनेकी तैयारीके रूपमें देखते आ रहे थे। यह स्पष्ट है कि 'अ' जबतक अपने परिवेशको नहीं जान लेता, तबतक वह प्रभावपूर्ण ढंगसे उससे व्यवहार नहीं कर सकता। उसे लक्ष्यके साथ-साथ परिस्थितिके लिए भी तैयारी रखनी चाहिए। 'परिस्थिति[7]' से हमारा तात्पर्य वर्तमान परिवेशसे है, जिसमें स्थान, वस्तुएं और उसमें रहनेवाले व्यक्ति आ जाते हैं; साथ ही जो हो रहा है वह भी उसमें शामिल है। परिस्थितिके प्रति तत्परता का मतलब है परिस्थितिको पूरी तरह हृदयंगम कर लेना। शय्या पर पड़े हुए बच्चेके लिए वर्तमान परिस्थिति एक छोटी-सी बात है जिसमें समय और स्थानका विस्तार बहुत थोड़ा होता है। ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता जायगा, उसका दायरा बढ़ता जायगा। उदाहरणके लिए, वह जान जायगा कि कार

[1] set [2] flexible [3] intentional [4] unintentional [5] easy anagrams [6] situation set [7] situation

में बैठकर जो लोग जा रहे हैं, वेउसके परिवारके लोग हैं, और वे कहीं समुद्री किनारे पर छुट्टी बिताने जारहे हैं। यदि वह कभी भारतीय संसदका सदस्य बन जाय, तो संसदमें शान्ति-सन्धि या अन्तर्राष्ट्रीय संगठनकी किसी योजना पर भाषण करते समय उसके लिए 'वर्तमान परिस्थिति' स्थानकी दृष्टि से जगत्व्यापी और समयकी दृष्टिसे ऐतिहासिक होजायगी।

अभी हमने 'परिस्थितिको हृदयंगम करना' जैसे शब्दोंका प्रयोग किया, जिससे यह संकेत-सा मिलता है कि यह काम बहुत बौद्धिक है, किन्तु साधारण मामलोंमें परिस्थितिके प्रति व्यक्तिकी तत्परता बहुत बौद्धिक नहीं होती। आप प्रातः काल उठते ही खिड़की से झाँक कर देखते हैं कि मौसम ठंढा, नम और हवादार है, इसलिए आप उस तरहके वातावरणसे व्यवहार करनेके लिए तैयार हो जाते हैं। कोई गायक जब अपना सुन्दर, एकाकी संगीत समाप्त करे, तब आपकी प्रति-क्रिया उस स्थान और काल के अनुसार होगी जहां संगीत हुआ। मन्दिरमें होनेवाले संगीतकी प्रशंसामें आपको ताली नहीं बजानी चाहिए और न आपको यही आशा करनी चाहिए कि गायक आपके साधुवाद को स्वीकार करनेके लिए झुककर अपनी कृतज्ञता प्रकट करेगा। उस अवसरके लिए तत्पर[1] रहनेके कारण आप वहां होनेवाली घटना और वैसे अवसरके अनुकूल अपना व्यवहार बनानेके लिए तैयार रहते हैं। यदि कोई ऐसी विपरीत बात होजाती है जिसके लिए आप तैयार न थे, तो आपको आश्चर्यका धक्का लगता है।

परिस्थितिके प्रति तत्परता[2] के सम्बन्धमें कुछ बातें याद रखनी आवश्यक हैं: (१) परिस्थितिका निरीक्षण करनेसे यह बात आती है; (२) आपके निरीक्षण समाप्त कर चुकने के बाद भी यह बनी रहती है और तब तक बनी रहती है जब तक आप उसी परिस्थितिमें रहते हैं। यह उसी दशामें नष्ट होती है जब आप अपने ही विचारोंमें खो जायें और भूल बैठें कि आप उस समय हैं कहां; और (३) इसका सम्बन्ध वस्तुओं से होता है। इस अन्तिम बातका अर्थ यह है कि किसी परिस्थिति का निरीक्षण करनेके बाद आपके मनमें उसकी जो छाप बनी रहती है वह प्राप्त उत्तेजनाओंकी स्मृति नहीं होती, बल्कि इन उत्तेजनाओंका उपयोग करके आपने जिन वस्तु-सम्बन्धी तथ्योंकी खोज की, उनकी स्मृति होती है। इसका अच्छा उदाहरण देखना हो, तो आंखें बन्द करके अपने कमरे में घूमिये। इधर-उधर अपना रास्ता ढूंढ़ते हुए और कभी किसी चीजको, कभी किसी चीजको छूते हुए आपको अनेक स्पर्श-उत्तेजनाएं मिलती हैं, किन्तु आपको इन स्पर्शोंकी स्मृति नहीं रहती, बजाय इसके कि आप निरीक्षण करते हैं और आप को यह याद रहता है कि दरवाजेके पास एक मेज रखी है और कमरेके बीचमें एक चारपाई रखी है; तथा अन्य वस्तुएं भी अपने अनुमानित स्थान पर रखी हुई आपको याद आ जाती हैं। इस प्रकार वस्तुओंकी आपेक्षिक स्थितिका एक ढांचा आपके मनमें बन जाता है और आप विभिन्न चाही हुई वस्तुओंके पास जा सकते हैं, हालांकि इसमें सन्देह नहीं कि आपका अन्दाज उतना सही नहीं होता, जितना आंखें खुली रहने पर होता। आप उत्तेजना के सहारे ही वस्तुओंको जान पाते हैं, परन्तु सामान्यता आपकी रुचि वस्तुओं पर केन्द्रित होती है, उत्तेजनाओं पर नहीं।

लक्ष्य-तत्परता[3] भी वस्तुओं के प्रति होती है, क्योंकि इसका उद्देश्य होता है किसी निर्दिष्ट स्थान पर पहुंचना, किसी निर्दिष्ट वस्तुको प्राप्त करना या परिवेशमें कोई परिवर्तन पैदा करना। लक्ष्य-तत्परता परिस्थिति-तत्परता से सम्बन्धित होती है, क्योंकि परिस्थितिमें ही लक्ष्यका स्थान होता है।

चूंकि यह संयुक्त लक्ष्य-परिस्थिति-तत्परता[4] परिवेशसे सफलतापूर्वक व्यवहार करनेकी दृष्टिसे बहुत महत्त्वपूर्ण है, इसलिए हमारे सूत्रमें इस तत्परता का भी कोई प्रतीक अवश्य होना चाहिए। 'व्य' के साथ हम एक छोटा 'सं' रखकर यह प्रकट करना चाहेंगे कि व्यक्तिमें इस प्रकारकी (लक्ष्य-परिस्थिति की) तत्परता है। अब हमारे सूत्रका यह अन्तिम स्वरूप हो गया :

$$\text{सं—उ—व्य}_{\text{सं}}\text{—प्र—सं}$$

इसका खुलासा यह हुआ: जब व्यक्ति किसी परिस्थितिमें किसी निर्दिष्ट लक्ष्य तक पहुंचनेके लिए तत्पर होता है, तब वह उत्तेजनाएं प्राप्त करता है और प्रतिक्रियाएं करता है। इन उत्तेजनाओं और प्रतिक्रियाओंका एक वस्तु-सम्बन्धी अर्थ होता है, क्योंकि व्यक्तिकी तत्परता भी वस्तु-सम्बन्धी होती है—अर्थात् उत्तेजनाएं परिस्थितिमें वस्तुओंकी आपेक्षिक स्थितिको प्रकट करती हैं और जिस परिणामकी प्राप्तिके लिए प्रतिक्रियाएं होती हैं, उसका भी सम्बन्ध वस्तुओंसे होता है। व्यक्तिका व्यवहार परिवेशसे समायोजित होता है।

परिस्थिति-और-लक्ष्य तत्परता[5] का व्यवहारमें बहुत महत्त्व होनेके बावजूद इसमें कभी-कभी जो अपूर्णता रह जाती है, उससे बड़े विचित्र और असफल कार्य उत्पन्न होते हैं। यह उसी दशामें अपूर्ण रहती है, जब 'व्य' परिस्थितिका अच्छी तरह निरीक्षण नहीं किये रहता और न उसे पूर्णतया समझे रहता है। अपनी कुछ भ्रान्त धारणा के कारण वह तथ्योंका भलीभांति सामना नहीं करता और एक ऐसी परिस्थितिके

[1] set [2] situation set [3] goal set [4] combined goal-situation set [5] situation-and-goal set

लिए तत्पर हो जाता है जो कुछ कुछ काल्पनिक होती है, और इस प्रकारकी तत्परतासे होनेवाले उसके कार्य भी गलत होते हैं। अथवा वह बदली हुई परिस्थितिके साथ कदमसे कदम मिलाकर, चलनेमें असफल रहता है, क्योंकि उसकी तत्परतामें लचीलेपनका प्रभाव रहता है जिससे उसके काम समयकी मांगके अनुसार नहीं होते। इस प्रकारके कुछ अन्य विषमायोजना[1] पर बारहवें प्रकरणमें विचार किया जायगा।

नित्यप्रति के जीवन से इन नियमों के उदाहरण

पढ़ने की प्रक्रिया यह स्पष्ट है कि पढ़ना उत्तेजना प्रतिक्रिया की एक जटिल प्रक्रिया है। छपे हुए पृष्ठसे पाठक की आंखोंमें जो प्रकाश प्रवेश करता है, वह उत्तेजना है। बोलकर पढ़नेमें जीभ इत्यादिकी हरकतें और छपी हुई पंक्तियोंके सहारे आंखोंकी हरकतें (मौन पठनमें भी) पेशियोंकी प्रतिक्रिया[2] के अन्तर्गत आयेंगी। पूर्ण प्रतिक्रियामें पठित वस्तुको समझना तथा उससे आनन्द (या उससे विपरीत) लाभ करना भी सम्मिलित रहता है।

चूंकि समझना[3] मुख्य प्रतिक्रिया है, इसलिए हमें जानना चाहिए कि किसी शब्द या वाक्यका अर्थ समझनेमें कौन कौन से तत्त्व काम करते हैं। मान लीजिए कि पाठक ने 'घड़ी' शब्द पढ़ा और अपने कमरेमें रखी हुई घड़ीका ख्याल करना उसकी प्रतिक्रिया हुई। इस शब्दको समझते समय उसका ध्यान पढ़ने तथा इसी शब्दको सीखनेके अपने पिछले अनुभवकी ओर चला जाता है। यह तत्त्व शरीरकी रचना[4] शीर्षकके अन्तर्गत आता है। दूसरा तत्त्व है जागनेकी उसकी 'अस्थायी दशा[5]' क्योंकि यदि वह बहुत ऊंघता सा रहे, तो वह बिना अर्थ समझे ही शब्दों को पढ़ जायेगा। उसकी 'तात्कालिक क्रिया[6]—किसी कहानीको पढ़ना—एक जबरदस्त चुनाव करने वाला[7] तत्त्व है, क्योंकि 'घड़ी' शब्दके एकसे अधिक अर्थ हैं और उसने इस शब्दका जो अर्थ समझा है, वह प्रसंग पर निर्भर करता है, अर्थात् कहानीकी परिस्थितिके प्रति उसकी तत्परता[8] पर निर्भर करता है।

पढ़नेकी प्रक्रियामें संयोजन[9] और विवर्तन[10] के कुछ अच्छे उदाहरण मिलते हैं। पहिले यह माना जाता था कि छपी हुई पंक्तिके सहारे आंखें निश्चित गतिसे बढ़ती हैं, बारी बारी से प्रत्येक अक्षर को साफ साफ देखती हैं और पाठक जल्दी जल्दी हरेक शब्दका विन्यास समझनेकी चेष्टा करता चलता है। किन्तु यदि आप किसी पाठक की आंखोंकी गतिका निरीक्षण करें, तो पायेंगे कि आंखें एक समान गतिसे नहीं हरकत कर रही हैं बल्कि वे कूदती हुई बढ़ती हैं (अपनी पाठ्य सामग्री की बगलमें मेज पर एक शीशा रखकर आप इस बातकी सचाईका सरलतासे अनुभव कर सकते हैं)। वे एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु पर टिकती हुई आगे चलती हैं।

आकृति ४० पठनमें ठहराव (स्थिरता) के बिन्दु (फिक्सेशन पाइंटस)। एक बालक जब इन तीन पंक्तियोंको पढ़ रहा था, तब उसकी आंखोंकी गतियोंका फोटो ले लिया गया। फोटोके अभिलेखसे यह सम्भव हो सका कि पढ़ते समय क्रमशः जिन बिन्दुओं पर उसने आंखें केन्द्रित की थीं, उनका स्थान निर्धारित किया जा सके। स्पष्ट ही, प्रथम पंक्तिमें उसे कुछ कठिनाई हुई, उसे प्रथम ठहराव बिन्दु से पीछे लौटना पड़ता था ताकि पहिले शब्दों को स्पष्ट रूपसे देख सके, nearly शब्द पर भी उसे कुछ कठिनाई सी लगी। इस पाठकके लिए दूसरी और तीसरी पंक्तियां अपेक्षाकृत सरल सिद्ध हुई [बुसवेल (२) से]।

[1] maladjustments [2] motor response [3] understanding [4] structure [5] temporary state [6] activity in progress [7] selective [8] set [9] combination [10] shifting

समाचार-पत्र की एक पंक्तिको पढ़नेमें एक अच्छे पाठककी आंखें ३ से ६ स्थानों पर रुकेंगी। इस तेजीकी कुदानमें अक्षर स्पष्ट रूपसे उसकी आंखोंमें नहीं उतरते, परन्तु प्रत्येक ठहराव में वह दो शब्दोंका स्पष्ट प्रतिबिम्ब ग्रहण कर लेता है। वह पंक्तिके पहिले एक या दो शब्दोंकी झांकी ले लेता है, फिर दो शब्द आगे बढ़कर दृष्टि जमाता है, वहां से भी आंखें हटा कर कुछ शब्दोंके बाद रुकता है, और इसी प्रकार पंक्तिके अन्त तक पहुंच जाता है। वहां से उसकी आंखें पीछेकी ओर एक लम्बी कुदान लेती हैं और दूसरी पंक्तिके शुरू के शब्दों पर जा टिकती हैं। पाठक की आंखोंके इस व्यवहारकी परीक्षा फ़ोटोग्राफ़ी की सहायतासे अच्छी तरह की जा सकी है। अब आपको स्पष्ट हो गया होगा कि आंखें कुछ अकेले अक्षरोंके बजाय अक्षरोंके समूहों[1] के प्रति प्रतिक्रिया करती हैं (१०)।

प्रतिक्रिया-कालकी विधिसे यह पता चलता है कि एक छोटा, परिचित शब्द समग्र रूपसे पढ़ा जा सकता है। अकेले अक्षर यथासम्भव शीघ्र पढ़े जाते हैं और उनकी प्रतिक्रियाका समय लगभग १ सैकेंडका $\frac{1}{10}$ होता है। छोटे शब्द भी $\frac{1}{10}$ सैकेंडमें पढ़ लिये जाते हैं। चूंकि एक छोटे शब्दको पढ़नेमें एक अक्षर को पढ़नेसे अधिक समय नहीं लगता, इसलिए विन्यास[2] समझते हुए शब्दका पठन कदापि नहीं होता। वह समग्र रूपमें ही देखा व पढ़ा जाता है। यहां तक कि लम्बा शब्द भी, यदि वह परिचित हुआ, तो समग्र रूपमें पढ़ा जाता है। अच्छी तरह अक्षर-ज्ञान किये बिना भी कोई बच्चा शब्दोंको पढ़ सकता है।

मौन-पठन-क्रियाकी गति इतनी तीव्र होती है कि शब्दोंका विन्यास समझते हुए उन्हें पढ़ने या अलग-अलग शब्दोंका उच्चारण करनेका समय ही नहीं मिलता। धीमी गतिसे पढ़ने वाला कोई प्रौढ़ व्यक्ति प्रति सैकेंड २.५ शब्दोंकी गतिसे मजे-मजेमें पढ़ सकता है और तेज पढ़नेवाला व्यक्ति प्रति सैकेंड १० शब्दोंकी गतिसे पढ़ता है। कठिन पाठ्य-सामग्रीको धीमी गतिसे ही पढ़ना पड़ता है, क्योंकि उसे समझनेमें अधिक समय लगाना पड़ता है।

पढ़ने की गति किन बातोंके कारण सीमित होती है और एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिकी अपेक्षा इतनी धीमी गतिसे क्यों पढ़ता है? सम्भवतः समझने की शक्ति[3] इस सिलसिलेमें सबसे महत्त्वपूर्ण कारण है। कठिन पाठ्य-सामग्री आपको शीघ्रता से आगे नहीं बढ़ने देती, जबकि सरल और रुचिकर सामग्री के पृष्ठ पर पृष्ठ आप तेजीसे पलटते जाते हैं। समझनेकी शक्ति पाठककी बुद्धिकी तीव्रता और विषय-सम्बन्धी उसके ज्ञान पर निर्भर करती है। किन्तु क्या धीमी गतिसे पढ़ने वाला व्यक्ति समझनेकी भी कम शक्ति रखता है और क्या वह सदा इसी गतिसे पढ़नेवाला बना रहेगा? बिल्कुल नहीं। सम्भव है, वह व्यक्ति महसूस न करता हो कि उसके पढ़नेकी गति धीमी है, अथवा वह धीरे-धीरे इसलिए पढ़ता हो कि प्रत्येक वाक्यांशका पूरा-पूरा स्वाद लेता चले। फिर भी यदि उसने शीघ्रतासे पढ़नेकी कुशलता का विकास नहीं किया है, तो उसने अपने भीतर एक बड़ी कमी रख ली है। कुछ पाठ्य-सामग्री ऐसी होती है जिसमें बहुत समय लगाना व्यर्थ होता है। उसको खाली मनोरंजनके लिए जल्दी-जल्दी पढ़ डालना चाहिए या जहां-तहां से कुछ मतलबकी बातें ढूंढ़ लेनी चाहिएं। किसी भावपूर्ण कहानीको घंटे, दो घंटेमें खत्म कर देना एक बात है, और सारी रात उसीको पढ़नेके लिए जागते रहना बिल्कुल दूसरी बात है।

सभी धीमी गतिसे पढ़नेवालोंके लिए कोई एक नुस्खा नहीं बताया जा सकता। किसी की पठन-विधिमें कोई एक बुरी लत होती है, किसी की में कोई दूसरी बुरी लतें। कुछ लोग बच्चोंकी तरह गुनगुनाकर पढ़ने या होठ हिलानेकी आदत बड़े होने पर भी नहीं छोड़ पाते। बोलकर पढ़नेकी यह विधि उनकी गति बढ़ने नहीं देती, क्योंकि यह तो स्पष्ट ही है कि मौन रहकर अधिक तेजीसे पढ़ा जा सकता है। कुछ वयस्कोंमें प्रारम्भिक कक्षाके बालकोंकी तरह एक-एक शब्दको अच्छी तरह जांचते हुए पढ़नेकी आदत होती है और कुछ लोगोंमें शब्दों पर पूरा ध्यान दिये बिना ही जल्दी-जल्दी ग़लत-सलत पढ़ते जानेकी बुरी आदत होती है। इससे उन्हें शब्दोंको समझनेके लिए बार-बार पीछे लौटना पड़ता है। कुछ वयस्क व्यक्तियों का शब्द-ज्ञान बहुत मामूली होता है, फलतः प्रौढ़ पाठ्य सामग्री की अधिकांश बातें उनकी समझके परे होती हैं। इसीलिए उनकी पठन-गति भी नहीं बढ़ पाती। कुछ लोग शीघ्र पठनके लिए आवश्यक आंखोंके लघु-क्षिप्र स्पन्दनका अभ्यास नहीं किये होते। ऐसे लोगोंको विशेष प्रकारके व्यायाम कराके उनकी गतिको नियमित किया जा सकता है और अनावश्यक ठहराव[4] को रोका जा सकता है। सामान्यतः इस सम्बन्धमें सबसे प्रमुख बात यह है कि पाठकको यह विश्वास दिलाया जाये कि उसे एक नयी बात सीखनी है और इस आशासे वह उसपर ध्यान दे कि उसे अन्ततः सफलता अवश्य मिलेगी। इतना करनेके बाद भी कुछ लोग तो ऐसे रहेंगे ही जो दूसरोंकी अपेक्षा जल्दी पढ़ा करेंगे (२, ३, ९)।

एक साथ दो काम करना. चुनाव[5] के नियम पर जोर देते हुए, हमने कुछ पृष्ठों पहिले, यह बात लगभग दृढ़तापूर्वक कही थी कि व्यक्ति एक समयमें केवल एक काम करता है। हमने बिल्कुल यही बात नहीं कही थी, किन्तु यह अवश्य कहा था कि व्यक्ति एक समयमें केवल एक 'मुख्य काम' करता है। वस्तुतः व्यक्ति एक समयमें कम-से-कम दो काम करता

[1] combinations [2] spelling [3] comprehension [4] fixation [5] selectivity

है, इनमें से एक काम सांस लेनेका है। जब वह चल रहा होता है तब सांस लेनेमें उसे कोई परेशानी नहीं होती और जब वह सांस ले रहा और चल रहा होता है, तो विचार करनेमें भी उसे कठिनाई नहीं होती। किन्तु सांस लेने और चलनेकी क्रियाएं स्वयमेव होती रहती हैं, अर्थात् हमारा ध्यान यदि किसी दूसरी वस्तु पर भी रहे, तो ये क्रियाएं अबाधित रूपसे जारी रह सकती हैं। कई अन्य शारीरिक प्रक्रियाएं, जैसे पाचनक्रिया तथा हृदयकी धड़कन, भी स्वतःचालित[1] होती हैं। इसी प्रकार कई अन्य कार्य भी होते हैं जिनको व्यक्ति अच्छी तरह सीख चुका होता है। कुशल टाइपिस्ट किसी अन्य विषय पर सोचते हुए भी साधारण सामग्रीको टाइप कर ले जाता है। इसी तरह पियानो बजानेवाला व्यक्ति किसी की बात-चीत सुनते हुए भी अपनी कोई प्रिय रागिनी बजा सकता है। फिर भी, टाइपिस्ट जब रफ्तार बढ़ानेके लिए टाइप कर रहा होता है, या पियानो बजानेवाला जब कोई अच्छा राग निकालता होता है, तब उनको अपने अपने कार्य पर दत्तचित्त होना ही पड़ता है। कई तरहके दैनिक कार्य भी बिना उनपर ध्यान दिये, हो सकते हैं। निस्सन्देह यह प्रश्न किया जासकता है कि ऐसी दशाओंमें कौन-सा कार्य 'मुख्य' होता है। इस सम्बन्धमें यह कहना अधिक ठीक होगा कि व्यक्ति जब जिस वस्तु पर अपना ध्यान दे रहा होता है, उस समय वही वस्तु उसके लिए मुख्य होती है। इस अर्थमें क्या एक व्यक्ति एक ही समयमें दो मुख्य कार्य कर सकता है?

कहा जाता है कि जूलियस सीजर 'एक ही समयमें' कई पत्र लिखवाया करता था, प्रत्येक पत्र अलग-अलग नक़लनवीस से। वह यदि पहिले नक़लनवीसको किसी पत्रका प्रारम्भिक वाक्य लिखाता, तो दूसरे नक़लनवीसको दूसरा पत्र बोलना शुरू कर देता था। इसी प्रकार वह कइयोंको एक साथ कार्य में व्यस्त रखता था और स्वयं भी कभी उलझन[2] में न पड़ता था। वास्तवमें यह एक सुन्दर बौद्धिक चमत्कार था! परंतु ऐसा चमत्कार नहीं था जिसमें विभिन्न कार्यों पर बिल्कुल एक साथ ध्यान देना पड़ता हो या दो मुख्य कार्योंको बिल्कुल एक ही साथ करना पड़ता हो।

यदि आप दो बौद्धिक कार्योंको एक संग करना चाहें, तो आप देखेंगे कि आपको बराबर एकसे दूसरे पर ध्यान हटाना पड़ रहा है। आप कुछ संख्याओंको जोड़ते समय किसी गीतको पंक्तियां भी गुनगुना सकते हैं। आप गीतको शुरू करके एक-दो कड़ी तक स्वयं चलने देते हैं और इसी बीचमें कुछ अंकोंका जोड़ लगा लेते हैं; इसके बाद आप फिर अपने गीतकी अगली पंक्तियोंका स्मरण करते हैं और तत्पश्चात् जोड़नेकी क्रियामें जुट जाते हैं। इस तरहका कार्य करनेकी योग्यता सभी व्यक्तियोंमें समान रूपसे नहीं पायी जाती। अधिकांश व्यक्ति तो एक साथ एक ही कार्यको कुशलतापूर्वक कर सकते हैं।

विवर्तनकी इस प्रक्रिया[3] के अतिरिक्त कभी-कभी एकदूसरे ढंगसे दो कामोंका एक साथ करना सम्भव हो जाता है। कभी-कभी दो कार्योंको एक साथ «संयुक्त करके» एक संश्लिष्ट कार्यके रूपमें किया जा सकता है। नवसिखुआ पियानोवादक केवल दाहिने हाथसे ही बजाना पसन्द करता है, क्योंकि बांये हाथसे यदि वह मन्द स्वर[4] बजाता है, तो इससे दाहिने हाथ द्वारा मुख्य सरगम[5] बजानेमें बाधा पड़ती है। कुछ अभ्यास के बाद वह दोनों हाथोंमें मेल बैठा लेता है और सन्तोषप्रद संगीत निकालने लगता है। गतियोंके संयोजन[6] के अन्य उदाहरण मोटर कार और वायुयानके चालनमें तथा अनेक कुशल कार्योंमें देखे जा सकते हैं।

ध्यान बंटानेवाली बाधाओंका प्रतिरोध करना[7]. बहुधा जब आप एक काम कर रहे होते हैं, तब दूसरे काम आपका ध्यान बँटानेके लिए होड़ लगाये रहते हैं। किन्तु जो काम आप कर रहे हैं, उसमें यदि आपकी पर्याप्त रुचि है और आप उसमें तन्मय हो जाते हैं, तो आपकी पूरी शक्ति उस कार्यमें लग जाती है और ध्यान बँटानेवाली बाधाओं पर आप विजय पा जाते हैं।

शोरगुल और अन्य तरहकी बाधाओंके सम्बन्धमें कई प्रयोग किये जा चुके हैं। एक प्रयोग (४) में कॉलेजकी एक बड़ी कक्षा की लिखित बुद्धि-परीक्षा[8] ली गयी और उसे दो बराबर जोड़-तोड़के समूहों[9] में बांट दिया गया। क्रम यह रखा गया कि एक समूहके प्रत्येक लड़केके समान ही अंक पानेवाला दूसरा लड़का दूसरे समूहमें उपस्थित था। हर समूहमें ६० छात्र थे। कुछ सप्ताह बाद इन समूहोंकी दुबारा पहिले जैसी परीक्षा ली गयी, किन्तु इस बार एक समूह (प्रायोगिक समूह) को ध्यान बँटाने वाली स्थितियोंके बीच काम करना पड़ा और दूसरा समूह (नियमनकारी समूह[10]) सामान्य शान्त वातावरण में काम करता रहा। ध्यान बँटानेवाली उत्तेजनाओंमें घंटियां भोंपू, मुंहसे बजानेवाले बाजे, सीटियां, शोरगुल करनेवाले अन्य साधन, बीच-बीचमें संगीत, दीवारों पर रह-रहकर प्रकाश की चमक डालना—जैसे दर्पण आदिसे, लोगोंका बेढंगेपनसे इधर-उधर घूमते रहना, बातें करना और विचित्र औज़ारोंको लिये फिरना आदि बातें थीं। ये बातें क्रोधको भड़काने वाली थीं, लेकिन जान-बूझकर प्रयोगकी दृष्टिसे की जा रही थीं। दोनों समूहके छात्रोंके औसत प्राप्तांक इस प्रकार आये :

[1] automatic [2] confusion [3] shifting process [4] bass note [5] main tune [6] combination [7] resisting distractions [8] paper and pencil intelligence test [9] matched groups [10] control group

शान्त वातावरणमें कार्य करनेवाला		प्राप्तांक
नियमनकारी समूह	...	१३७·६
प्रायोगिक समूह जो बाधाओंके बीच कार्य कर रहा था	...	१३३·९
बाधा के कारण हुई हानि	...	३·७

बाधाओंका प्रभाव औसत छात्रों पर बहुत हल्का पड़ा। इतनी तीव्र बाधाओंके बावजूद १९ मिनटकी इस परीक्षामें किसी छात्र ने अपना काम न छोड़ा, हालांकि कुछ छात्रों ने इस बातकी शिकायत अवश्य की कि उनको ऐसी परिस्थितिमें कार्य करनेमें बहुत जोर पड़ रहा है।

एक दूसरा प्रयोग भी किया गया था। उस प्रयोग (१)में बराबरीके समूह[1] नहीं रखे गये थे। उसमें उन्हीं व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न परिस्तिथियोंमें काम करना पड़ा था—कभी शान्त वातावरणमें और कभी बाधायुक्त वातावरणमें। इस उदाहरणमें भी देखा गया कि बाधाओंका प्रभाव बहुत कम पड़ा था और निर्देश[2] (यह सुझाव देकर कि बाधाओं से काम की कुशलता बढ़ जाती है या घट जाती है) के द्वारा उसको भी घटाया-बढ़ाया जा सकता था। यदि परीक्षार्थियोंके मनमें यह बात जमा दी जाती थी कि संगीतसे उनके अंकगणित-सम्बन्धी कार्योंमें बाधा पड़ेगी, तो उनके प्राप्तांक निश्चय ही कम आते थे; परन्तु यदि उन्हें इस बातका विश्वाश दिलाया जाता था कि संगीतसे उनके कार्यमें सहायता मिलेगी, तो उनके प्राप्तांक अधिक आते थे। बिना किसी निर्देशके उनके प्राप्तांक न घटते थे, न बढ़ते थे। कुछ छात्र कहते हैं कि रेडिओके हल्के, मधुर गीतोंसे अध्ययनमें सहायता मिलती है। वे ऐसा अनुभव या तो निर्देशके कारण करते हैं या अपनी आदतके कारण। कारखानेके कुछ कार्योंके विषयमें—छात्रके कार्यसे कारखाने का काम बिल्कुल भिन्न है—यह देखा गया है कि संगीतसे श्रमिकोंकी कार्यशक्ति बढ़ानेमें, फलत: उत्पादन बढ़ानेमें मदद मिलती है (७)।

आजकल शोरगुलके वातावरणमें लोगोंको इतना बौद्धिक काम करना पड़ता है कि यह विचारणीय हो गया है कि क्या ऐसी परिस्थितियोंका मनुष्यके शरीर पर बुरा प्रभाव पड़ता है? इस प्रश्नका उत्तर देनेके पूर्व इस सम्बन्धमें थोड़ी और छान-बीन की आवश्यकता है। बहुत कुछ तो व्यक्तिकी *सांवेगिक प्रतिक्रिया पर निर्भर करता है।* यदि वह शोरगुल की परिस्थितिसे चिढ़कर यहां तक सोचने लगता है कि ऐसी परिस्थितिमें आदमी काम कर ही नहीं सकता, तो निश्चय ही उसके कार्य और स्वास्थ्य पर इसका कुप्रभाव पड़ेगा। मनुष्य के शरीर पर बाह्य बाधाओंका उतना बुरा प्रभाव नहीं पड़ता जितना भय, क्रोध और थकावट, जैसी आन्तरिक बाधाओंका पड़ता है।

शब्द-निर्माण[3] के उदाहरणकी कुंजी (देखिए पृष्ठ १३४). (१) परिवर्तन, (२) अज्ञानमय, (३) सर्वमान्यता, (४) आयताकार, (५) विलक्षणता, (६) सचिवालय, (७) प्राचीनतम, (८) भारतवर्ष, (९) मनोरंजक, (१०) प्रतिनिधित्व, (११) रहस्यमय, (१२) देवमन्दिर, (१३) उदाहरण, (१४) सुभाषबोस, (१५) अनुकरण, (१६) समालोचना, (१७) साहित्यकार, (१८) भग्नावशेष, (१९) गौरवपूर्ण, (२०) वातावरण, (२१) मनोविज्ञान, (२२) वातावरण, (२३) असलियत, (२४) अध्यात्मवाद, (२५) रामचरित्र।

इस उदाहरणमें प्रयोगकी बात यह है कि प्रथम १६ अक्षर-समूहों को एक निश्चित क्रमके अनुसार सजाना है और द्वितीय ९ अक्षर-समूहोंको भिन्न क्रमोंसे। यदि परीक्षार्थी प्रथम १६ के क्रमके प्रति अज्ञात रूपसे तत्पर[4] हो जाता है, तो वह १७-२५ के अक्षर-समूहों के स्पष्ट शब्दोंको भी ओझल कर जाता है, क्योंकि ये अक्षर-*समूह प्रथम १६ की अपेक्षा भिन्न प्रकारसे सजाये जाने* चाहिएं।

सारांश

१. «सामान्य मनोविज्ञान» ऐसे नियमों और तरीकोंकी खोज करता है जो सभी लोगोंके व्यवहारोंमें पाये जाते हैं। «विभेदात्मक मनोविज्ञान» का सम्बन्ध उन विधियोंसे है जिनमें लोगोंमें भिन्नता पायी जाती है।

२. व्यक्तिकी चेष्टाएं परिवेशसे व्यवहार करनेकी उसकी विधियां हैं।

(क) व्यक्ति परिवेशकी कुछ शक्तियोंका «प्रतिरोध» या उससे «पलायन» इसलिए करता है कि वह जीवित रह सके और उसकी चेष्टा निरन्तर जारी रह सके।

(ख) भोजन इत्यादिके उपभोगसे शक्तिसंग्रह करके व्यक्ति परिवेशका «उपयोग» करता है और अपनी चेष्टा के लिए उत्तेजना[5] और निकास[6] प्राप्त करता है।

(ग) व्यक्ति परिवेशमें चल रही प्रतिक्रियाओंमें «भाग

[1] matched groups [2] suggestion [3] anagrams [4] set [5] stimulation [6] outlet

लेता है»।

(घ) परिवेशसे «समायोजन स्थापित करनेमें» या तो परिवेशमें परिवर्तन किया जाता है, या परिवेशके अनुसार व्यक्ति अपनेमें परिवर्तन कर डालता है।

(ङ) 'सं—व्य—सं' का सूत्र व्यक्ति और परिवेशकी निरन्तर परस्परक्रिया को अभिव्यक्त करता है।

३. व्यक्ति और परिवेशकी परस्परक्रिया उत्तेजनाओं और प्रतिक्रियाओंके माध्यमसे होती हैं।

(क) प्रतिक्रिया करनेवाले व्यक्तिके अंगोंको—जैसे उस की मांस-पेशियां और कुछ ग्रन्थियां—«कार्यकारी अंग[१]» कहते हैं।

(ख) व्यक्तिकी ज्ञानेन्द्रियां «आदातृ-अंग[२]» कहलाती हैं। ये ज्ञानेन्द्रियां परिवेशसे उत्पन्न उत्तेजना को ग्रहण करती हैं।

(ग) «उत्तेजनाएं» वे शक्तियां (आन्तरिक या बाह्य) हैं जो किसी आदातृ-अंग[३] पर क्रिया करती हैं और व्यक्तिकी चेष्टाओंको प्रभावित करती हैं।

(घ) उत्तेजनाओं द्वारा उकसाये जाने पर व्यक्तिकी चेष्टा में जो परिवर्तन होते हैं, उन्हें «प्रतिक्रिया» कहते हैं। जब प्रतिक्रिया किसी चेष्टा को अकस्मात् रोक देनेके रूपमें हो, तब उसे «निरोध[४]» कहा जाता है।

(ङ) 'उ—प्र' का सूत्र यह नियम प्रकट करता है कि परिवेशकी शक्तियां प्रतिक्रियाएं उत्पन्न करनेके लिए उत्तेजनाओंके रूपमें कार्य करती हैं।

४. उत्तेजना के प्रति क्या प्रतिक्रियाएँ होती हैं, यह आंशिक रूपसे तो उत्तेजना के स्वरूप पर निर्भर करता है और आंशिक रूपसे व्यक्तिमें स्थित तत्वों पर। यह नियम 'उ—व्य—प्र' के सूत्रसे प्रकट किया जाता है।

(क) प्रतिक्रियाएं[५] व्यक्तिकी रचना[६] पर निर्भर करती हैं। 'रचना' से तात्पर्य व्यक्तिकी उन स्थायी योग्यताओं और स्वभाव-गुणों से है जिनका विकास वंशानुक्रम और उसके पिछले अनुभवोंकी परस्पर-क्रिया के फलस्वरूप हुआ करता है।

(ख) प्रतिक्रियाएं व्यक्तिकी «अस्थायी दशा» पर भी निर्भर करती हैं।

(ग) प्रतिक्रियाएं इस बात पर भी निर्भर करती हैं कि उत्तेजना के समय व्यक्ति «कौन-सी क्रिया कर रहा है»।

(घ) दोनों पिछले सूत्रोंको मिला कर अब उन्हें इस रूपमें रखा जा सकता है:

सं—उ—व्य—प्र—सं

५. चुनाव[७] और «प्रारम्भिक तत्परता[८]» इन दो तत्वोंके द्वारा व्यक्ति और परिवेशकी परस्परक्रियामें समायोजन स्थापित किया जा सकता है और उसे प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

(क) «चुनावपूर्वक ग्रहण करने[९]» से तात्पर्य यह है कि ज्ञानेन्द्रियोंमें समायोजन स्थापित करना और उस समय उपस्थित अनेक उत्तेजनाओंमें से केवल कुछ की ओर उनको उन्मुख करना।

(ख) «जब उत्तेजना दो परस्पर विरुद्ध प्रतिक्रियाएं उत्पन्न करती हैं, तब «चुनावपूर्वक प्रतिक्रिया[१०]» की आवश्यकता पड़ती है।

(ग) परिस्थितिके अपरिवर्तित रहते हुए भी व्यक्ति स्वभावतः अपनी चेष्टा का केन्द्र एक उत्तेजनासे दूसरी उत्तेजना की ओर और एक प्रतिक्रिया से दूसरी प्रतिक्रिया की ओर «हटाता रहता है»।

(घ) प्रतिक्रिया किसी एक पृथक् उत्तेजनाके प्रति नहीं होती, बल्कि एक इकाईके रूपमें संगठित कई «उत्तेजनाओंके समूह[११]» के प्रति होती है। प्रतिक्रिया का एक यह भी नियम है कि उसके लिए मांस-पेशियोंमें सहयोग होना चाहिए।

(ङ) अधिकतर क्रियाओंको यदि प्रभावशाली और सम्मिलित होना है, तो उनके लिए तैयारी या तत्परता आवश्यक है। «प्रारम्भिक तत्परता» सांवेदनिक[१२] भी होती है और गति[१३]-सम्बन्धी भी। किसी विशेष उत्तेजना और विशेष प्रतिक्रियाके सम्बन्धमें यह चुनावपूर्वक होती है। प्रतिक्रिया-काल» समय की वह लघुतम अवधि है जिसमें व्यक्ति उत्तेजना के प्रति प्रतिक्रिया कर सकता है। प्रारम्भिक तत्परता जितनी अच्छी होगी, प्रतिक्रियामें उतना ही कम समय लगेगा।

(च) तत्परता[१४] किसी अकेले कार्यकी प्रारम्भिक तैयारी हो सकती है, या यह «निरन्तर नियंत्रण» के रूपमें किसी एक लक्ष्यकी ओर अनेक क्रियायोंको नियोजित कर सकती है।

(छ) मानसिक तत्परता[१५] किसी मानसिक कार्यके लिए तैयारी होती है। कार्यसे सीधा सम्बन्ध न रखनेवाली

[१] effectors [२] receptors [३] receptor [४] inhibition [५] responses [६] structure [७] selectivity [८] preparatory set [९] selective reception [१०] selective response [११] combination of stimuli [१२] sensory [१३] motor [१४] set [१५] mental set

अन्य प्रतिक्रियाओंकी उपेक्षा करके यह क्रियाकी गति और यथार्थता[1] में वृद्धि करती है।

(ज) «परिस्थिति-सम्बन्धी तत्परता[2]» किसी काममें लगने से पहिले परिस्थितिको समझ लेनेसे सम्बन्ध रखती है। परिस्थिति-सम्बन्धी तत्परता निरीक्षण पर आधारित होती है, यह लगातार बनी रहती है और वस्तुओं और उनकी आपेक्षिक स्थितियोंके प्रति होती है।

(झ) 'सं---उ---व्य सं---प्र---सं' के सूत्रसे लक्षित होता है कि व्यक्ति और उसके परिवेशकी परस्पर क्रिया उसकी तत्परता[3] पर निर्भर करती है।

[1] accuracy [2] situation set [3] set

८

स्नायु-संस्थान (नाड़ो-मंडल)

गत प्रकरणमें यह स्पष्ट कर दिया गया था कि परिवेश व्यक्ति पर उसके आदाताओं[1] को उत्तेजित करके क्रिया करता है, और व्यक्ति कई प्रकारसे परिवेशके प्रति प्रतिक्रिया करता है। हमने यह भी मालूम किया था कि व्यवहार भी व्यक्तिकी शारीरिक रचना, अस्थायी दशा और उसकी चालू चेष्टा पर निर्भर करता है। इस प्रकरणमें हम यह देखनेका प्रयत्न करेंगे कि उत्तेजना और प्रतिक्रिया के बीच शरीरके भीतर क्या होता है।

स्नायु संस्थान (नाड़ी मंडल) ही वह साधन है जो व्यक्तिके व्यवहारको चलाता और नियममें बांधे रखता है। जब व्यक्ति देखता है, सीखता है, सोचता है या इच्छा करता है, तब वह अपने आदाताओं और पेशियोंके साथ साथ अपने स्नायु संस्थान का भी उपयोग करता है। स्नायु संस्थानकी रचना और कार्य के सम्बन्धमें बहुत विस्तृत जानकारी की जा चुकी है। लगभग एक शताब्दी या उससे भी पहिलेसे कई शरीर व्यापार वेत्ताओं[2], अवयव रचनाविदों[3] और डाक्टरोंने इस आशासे इस समस्या पर ध्यान दिया है कि व्यवहार[4] पर कुछ प्रकाश डाला जा सके। इस सम्बन्धका बहुत सा ज्ञान हमारे साधारण विचार क्षेत्रसे परे है। मनोविज्ञानमें मुख्यतः हमारा सम्बन्ध केवल उन तत्वोंसे होता है जो व्यवहारको प्रभावित करते हैं। जैसा कि आप जानते हैं, व्यवहारमें परिवर्तन और सुधार किये जा सकते हैं। किन्तु, मनुष्य प्रत्यक्ष रूपमें अपने स्नायु संस्थान में किसी तरहका परिवर्तन नहीं कर सकता। फिर भी मानवीय व्यवहारकी गहराईमें उतरनेके लिए कुछ आधारभूत तथ्योंकी सहायता ली जा सकती है (१०)।

हम शरीर व्यापारविदोंसे इस प्रकारके प्रश्नोंकी जानकारी करना चाहते हैं: अंगोंकी विविधताके रहते हुए शरीर किस प्रकार एक इकाईके रूपमें कार्य कर पाता है, एक इकाई होते हुए भी किस प्रकार यह भिन्न भिन्न प्रकारसे कार्य कर सकता है, उत्तेजनाकी प्रतिक्रिया इसमें किस प्रकार होती है, किस प्रकार यह चुनाव और संयोजन करता है—क्योंकि हम देख चुके हैं कि उत्तेजनाओंको ग्रहण करने और गतियों (हरकतों) के संचालनमें चुनाव और संयोजन[5] के नियमका काम अवश्य मेव पड़ता है—अनेक चेष्टाएं करते हुए भी वह लक्ष्यके प्रति अपनी तत्परताको कैसे बनाये रखता है, और किस प्रकार वह 'परिस्थिति तत्परता'[6] को अपने अन्दर पैदा करता तथा उसे कायम रखता है? आगे आनेवाले प्रकरणोंसे हमें आशा करनी चाहिए कि शरीर व्यापार विज्ञान सीखने और (सीखी हुई चीजको मनमें) धारण करने[7] की प्रक्रिया तथा सांवेदनिक प्रक्रियाओं पर वे कुछ प्रकाश डालेंगे। भले ही हमें हमारे प्रश्नों का पूरा उत्तर न मिले, फिर भी हम उन्हें एक नये दृष्टिकोण से देखेंगे (६)।

नाड़ियाँ किस प्रकार कार्य करती हैं?

व्यवहारके मूलभूत नियमोंकी ओर देखने पर हमें पता चलता है कि सभी व्यक्ति एक सामान्य समस्याको सुलझानेमें सादृश्य रखते हैं। वह समस्या है परिवेशके साथ प्रभावपूर्ण रीति से व्यवहार करना। यह व्यवहार आदाताओं[1] और कार्यकारी अंगों[8] पर निर्भर करता है, आदाता परिवेशसे उत्तेजना ग्रहण करते हैं और कार्यकारी अंग (विशेषतः मांस पेशियां) परिवेशमें परिवर्तन करते हैं। आदातृ-कोशाओंकी संख्या बहुत है (केवल आंखोंमें ही वे लाखोंकी संख्यामें हैं) और मांस पेशियां असंख्य पेशिक तन्तुओं[9] से निर्मित होती हैं। परिवेश के साथ यह सारा सम्बन्ध तब तक शरीरके किसी उपयोगमें न आयेगा जब तक आदाताओं और कार्यकारी अंगोंके बीच कोई सम्बन्ध न हो। मांस पेशियोंको आदाताओं द्वारा प्राप्त उत्तेजनाओंके प्रति प्रतिक्रिया करनी चाहिए। किसी संकट कालमें तो यह प्रतिक्रिया और भी जल्दी होनी चाहिए। आदाताओंसे कार्य कारियों तक संदेश भेजने[10] का कार्य «स्नायु» करते हैं। संदेश भेजनेकी गति इतनी तीव्र होती है (१ सैकेंडमें लगभग ७५ गज) कि साधारण प्रतिक्रियामें इसमें एक सकेंड का बहुत छोटा अंश ही लगता है (देखिए पृष्ठ १३०)।

किस प्रकार शरीर एक इकाईके रूपमें कार्य कर पानेमें समर्थ होता है: स्नायु संस्थानका जो चित्र दिया हुआ है (आकृति ४१), उसमें आप देखेंगे कि समस्त शरीरमें स्नायुओं का जाल सा बिछा हुआ है। चित्रमें जितना दिखाया गया है उससे कहीं अधिक सूक्ष्म और जटिल यह होता है। स्नायु प्रत्येक मांस पेशी और प्रत्येक आदातामें पहुंचे

[1] receptors [2] physiologists [3] anatomists [4] behaviour [5] combination [6] situation set [7] retention [8] effectors [9] muscle fibres [10] communication

हुए हैं। परन्तु एक क्षण तक देखने पर ही आपको पता चल जायगा कि पेशी और आदाता आपसमें सीधे-सीधे नहीं जुड़े हुए हैं। खोपड़ीके अन्दर स्थित मस्तिष्क और रीढ़की हड्डीके अन्दर स्थित सुषुम्ना पेशियों और आदाताओंकी मध्यस्थता करते हैं। मस्तिष्क और सुषुम्ना नाड़ी-मंडल के केन्द्र हैं। सभी नाड़ियां इसी नाड़ी-केन्द्रसे जाती और उसमें आती हैं। आदाताओंमें पहुंची हुई बोध-नाड़ियां केन्द्रकी ओर संदेश वहन करती हैं और मांस-पेशियों तक समाचार ले जानेवाली कर्म-नाड़ियां[1] केन्द्रसे बाहर संदेश-वहन करती हैं। ज्ञान-नाड़ियां केन्द्रको सूचना पहुंचाती हैं और कर्म-नाड़ियां केन्द्रसे आज्ञा ले जाती तथा मांस-पेशियोंमें गति उत्पन्न करती हैं।
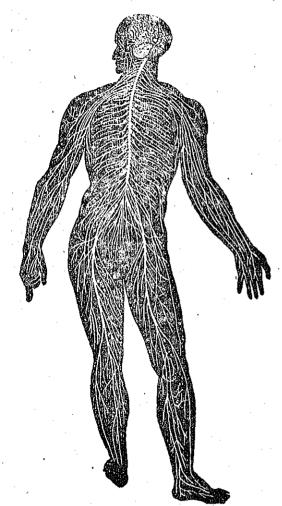
आकृति ४१. स्नायु-तंत्रका सामान्य दृश्य, जिसमें मस्तिष्क, सुषुम्ना और स्नायु दिखाये गये हैं (मार्टिन, ९)।
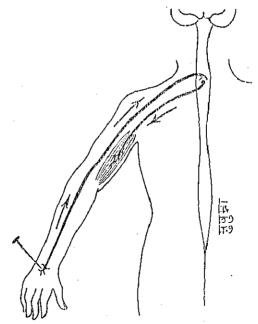
आकृति ४२. हथेलीके पृष्ठ-भाग से, जो उत्तेजना प्राप्त कर रहा होता है, भुजा की मांस-पेशी तक, जो प्रतिक्रिया को क्रियान्वित करती है, स्नायुओंका सम्बन्ध। स्नायु-मार्ग सुषुम्ना में जाता है और फिर वहांसे बाहर निकलता है।

इस प्रकार शरीर एक केन्द्रके द्वारा संचालित और संगठित कार्य करनेमें समर्थ हो जाता है।

विभिन्न क्रियाएं किस प्रकार सम्भव होती हैं. शरीरके लिए एक इकाईके रूपमें कार्य करना जितना आवश्यक है, उतना ही भिन्न दशाओंमें भिन्न कार्य करना भी उसके लिए महत्वपूर्ण है। यदि स्नायु-केन्द्र केवल एक बड़े तालाबके समान होता, जो बोध-स्नायुओं से उत्तेजना ग्रहण करके कर्म-स्नायुओंमें उसे उंडेल देनेका काम करता, तो प्रत्येक क्रिया मांस-पेशियों का अनियंत्रित संकोच मात्र होती। किन्तु अणुवीक्षण यंत्रसे देखे जाने पर पता चलता है कि स्नायु-केन्द्र चाहे जो हो, पर वह तालाबकी तरह नहीं है। इसकी रचना बहुत जटिल है। एक-एक स्नायुमें कई सूक्ष्म तन्तु[2] होते हैं। शरीरके सबसे बड़े स्नायु—दृष्टि-स्नायु[3] में, जो आंखसे मस्तिष्क तक जाता है, लगभग ४,००,००० तन्तु पाये जाते हैं। स्नायु-तन्तु अत्यन्त पतले होते हैं, किन्तु उनमें से कुछ एक गज तक लम्बे होते हैं। प्रत्येक की लम्बाई इतनी होती है कि वह किसी आदाता से स्नायु-केन्द्र तक या केन्द्रसे किसी मांस-पेशी तक पहुंच सके। टेलीफ़ोनके तारोंके भीतर रहनेवाले महीन तारोंकी भांति ये तन्तु भी संदेशोंके लाने व लेजानेकी

[1] motor nerves [2] fibres [3] optic nerve
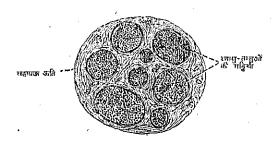
आकृति ४३. एक लघु स्नायुकी व्यत्यस्त[1] काट। इसमें कई *गड्डियां (बंडल) सम्मिलित हैं जो सहारा देनेवाली ऊति[2] के* द्वारा एक साथ बंधी हुई हैं। हरेक गड्डीमें कई स्नायु-सूत्र होते हैं, जो इस चित्रमें छोटे वृत्तोंके रूपमें व्यत्यस्त काटमें दिखायें गये हैं।

इकाइयां हैं। प्रत्येक बोध-स्नायु-तन्तु[3] किसी आदातासे स्नायु-केन्द्र के एक निश्चित भाग तक जाता है और प्रत्येक कर्म-स्नायु-तन्तु[4] स्नायु-केन्द्रके किसी भागसे एक निश्चित मांस-पेशी तक जाता है। किसी भी बोध-स्नायु या कर्म-स्नायु द्वारा जो संदेश ले जाया जाता है वह पूरे स्नायुमें फैला हुआ नहीं होता, बल्कि उसके एक विशेष सूक्ष्म तन्तुमें ही सीमित होता है। स्नायु-संस्थान की रचना बहुत-कुछ आपके नगरके टेलीफ़ोन-सिस्टम से मिलती-जुलती है। जैसे टेलीफ़ोनका एक तार कई महीन तारोंकी गड्डी होता है उसी तरह एक स्नायु संवाहक-तन्तुओं की गड्डी होता है; प्रत्येक संवाहक तन्तु केन्द्र से बाहर किसी पृथक् बिन्दु तक जाता है, लेकिन उनका केन्द्र, जहां उनमें सम्बन्ध जोड़े जाते हैं, एक ही होता है। परन्तु स्नायुकेन्द्र में किये जानेवाले सम्बन्ध टेलीफ़ोन-केन्द्र में किये जाने वाले सम्बन्धोंसे भिन्न होते हैं। किसी अन्तर्गामी संदेशको किसी चुने हुए बहिर्गामी तन्तुके द्वारा भेज दिया जाता है और कई अन्तर्गामी संदेशोंको एक ही बहिर्गामी तन्तुके द्वारा भेज दिया जा सकता है। इस प्रकार शरीर सहस्रों विभिन्न रीतियों से कार्य करते हुए भी एक इकाईके रूपमें कार्य करना नहीं छोड़ता।

यदि किसी मांस-पेशी तक जाने वाला स्नायु टूट जाय या किसी दुर्घटनामें कट जाय, तो मांस-पेशी बेकार हो जाती है। चूंकि स्नायुके द्वारा उसे कोई उत्तेजना नहीं मिलती, इसलिए वह निष्क्रिय और स्तम्भिक[5] हो जाती है। इसी प्रकार यदि एक दृष्टि-स्नायु कट जाय तो व्यक्तिकी एक आंख अन्धी हो जाती है। तब मस्तिष्क तक कोई उत्तेजना या सन्देश नहीं पहुंच पाता, क्योंकि स्नायुके कट जानेसे नेत्रसे मस्तिष्क तक सन्देशवहन का कोई साधन नहीं रहता।

स्नायु-कोशाएं[6]. यदि हम यह जानना चाहते हों कि स्नायु किस प्रकार कार्य करते हैं, तो केवल मस्तिष्क सुषुम्ना[7] और स्नायुओंकी स्थूल आकृति देख लेनेसे यह बात समझमें नहीं आयेगी, ठीक उसी तरह जैसे सड़क पर लगे हुए टेलीफ़ोनके तारोंको या केन्द्रीय एक्सचेंजके भवनको देखकर हम टेलीफ़ोन-व्यवस्था की प्रक्रियाके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जान पाते। हमें उस व्यवस्थाकी सारी भीतरी रचना को समझना पड़ेगा। स्नायु-संस्थानके सिलसिलेमें तो यह रचना बहुत ही सूक्ष्म होती है और केवल अणुवीक्षण यंत्रसे ही उसे देखा जा सकता है।
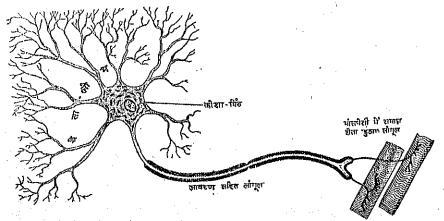
आकृति ४४. सुषुम्नासे निकली हुई एक कर्म-स्नायु-कोशा, जो यहाँ बहुत विशद करके दिखायी गयी है। इसमें कई चेतालाम हैं, और एक लांगूल है जो मांस-पेशी तक जाता है और वहां विभाजित होकर कुछ मांस-तन्तुओंके साथ निकट सम्पर्क स्थापित करता है। यह लांगूल चित्रमें जितना लम्बा दिखाया गया है, असलमें उससे अधिक लम्बा होता है।

[1] cross section [2] tissue [3] nerve fibre [4] motor nerve fibre [5] paralysed [6] nerve cells [7] cord

«स्नायु-कोशा[१]» में उसकी शाखाएं भी सम्मिलित रहती हैं। सम्पूर्ण स्नायु-संस्थान ऊतियों[२] और आवश्यक रक्त-वाहिनियों[३] के सहारे-सहारे फैली हुई स्नायु-कोशाओंसे ही बना हुआ है। अधिकांश स्नायु-कोशाओंकी शाखाएं दो प्रकार की होती हैं: एक अकेला «लांगूल[४]» और अनेक «चेता-लोम[५]»। चेता-लोम वृक्षकी छोटी-छोटी शाखाओंकी तरह होते हैं और लांगूल कई फुट लम्बे हो सकते हैं (देखिए आकृति ४४)।

प्रत्येक स्नायु-तन्तुमें एक लांगूल होता है जो एक संवाह-रोधक[६] (स्नायविक शक्तिके रूपमें जानेवाले संदेशको फैलनेसे रोकनेवाले) आवरणसे घिरा रहता है। कर्म-स्नायुओंके लांगूल उन स्नायु-कोशाओंकी शाखा होते हैं जो मस्तिष्क या सुषुम्ना में स्थित रहते हैं। इन चेष्टा-लांगूलोंमें से प्रत्येक लांगूल, मस्तिष्क या सुषुम्नाके किसी भागसे लेकर किसी मांस-पेशी (या ग्रन्थि) तक फैला रहता है। स्नायु-केन्द्रमें यह चेष्टा-लांगूल उत्तेजना प्राप्त करता है और उस उत्तेजनाको वह अपनी मांस-पेशी तक ले जाता है (देखिए आकृति ४५)।

बोध-स्नायुओंके लांगूल स्नायु-केन्द्रसे बाहर स्थित स्नायु-कोशाओंकी शाखाएं हैं। इस प्रकार दृष्टि-स्नायुके लांगूल दृष्टिपटल[७] (आंखके प्रकाश-हर्षी[८] भाग) में स्थित कोशाओं से आते हैं और मस्तिष्क तक फैले रहते हैं। घ्राणेन्द्रिय[९] से

आकृति ४५. सांवेदनिक और चेष्टा-लांगूल और उनकी स्नायु-कोशाएं। शर-चिह्न उन दिशाओंको सूचित करते हैं जिनमें अनेक लांगूल जाते हैं।

सम्बन्धित लांगूल, नासिका-स्थित कोशाओंकी शाखा होते हैं। अन्य बोध-स्नायुओंके लांगूल उन स्नायु-कोशाओंकी शाखाएं हैं जो मस्तिष्क या सुषुम्नाके सन्निकट छोटे-छोटे गुच्छोंके रूप में स्थित होती हैं और जिनमें चेता-लोम[५] नहीं होते। इनमें से प्रत्येक लांगूल विभक्त होकर बाहरकी ओर त्वचा या अन्यत्र स्थित किसी आदाता[१०] तक और भीतरकी ओर सुषुम्ना या मस्तिष्क तक फैला रहता है। इस प्रकार उस आदाता और स्नायु-केन्द्रके बीच वह सम्पर्कका मार्ग स्थापित करता है।

स्नायु-सन्धि[११]. स्नायु-कोशाओंके मध्य सम्बन्धकी विचित्र रीतिके कारण ही प्रतिक्रियाओंमें विविधता सम्भव हो पाती है। जन्मके बहुत पहिले ही स्नायु-कोशाएं अलग-अलग गोलाकार कोशाओंके रूपमें अपना जीवन प्रारम्भ कर देती हैं। कुछ बादमें लांगूल और चेता-लोम उत्पन्न करके वे स्नायु-कोशाओंके रूपमें आ जाती हैं। यद्यपि इन शाखाओंके द्वारा उनमें निकट सम्पर्क स्थापित हो जाता है, तो भी वे कभी एक साथ नहीं जुड़तीं, बल्कि हरेक स्नायु-कोशा सदा एक स्वतंत्र कोशाके रूपमें ही रहती है। केवल सम्पर्कके द्वारा ही यह जो सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, उसे «स्नायु-सन्धि» कहते हैं।

आसानीके लिए, आइए हम पहिले दो स्नायु-कोशाओं और उनकी सन्धि पर विचार करें। एक स्नायु-कोशाका लांगूल
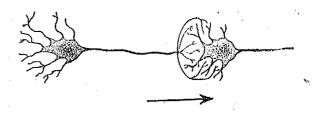
आकृति ४६. दो स्नायु-कोशाओंके बीच स्थित स्नायु-सन्धि शर-चिह्नसे ऊपरको ओर है। शर-चिह्न सन्धिके पार सन्देश जानेकी दिशा सूचित करता है।

सूक्ष्म शाखाओंके रूपमें समाप्त हो जाता है। ये शाखाएं अन्य स्नायु-कोशाके चेतालोमोंके साथ गुंथ जाती हैं या उसके कोशा-पिंडसे अपनेको सम्बन्धित कर लेती हैं। दोनों स्नायु-कोशाओं के बीचका सम्पर्क इतना सन्निकट होता है कि एक से दूसरीको उत्तेजना प्राप्त हो सकती है। किसी सन्धिके आर-पार संवाद-प्रेषण की क्रिया केवल एक ही दिशामें हो पाती है। वह दिशा है: पहिली कोशाके लांगूलसे दूसरी कोशाके चेतालोमों या

[१] neuron [२] tissues [३] blood vessels [४] axon [५] dendrites [६] insulating [७] retina [८] light-sensitive [९] sense of smell [१०] receptor [११] synapse

कोशा-पिंड[1] की ओर। लांगूल संवाहक[2] और उत्तेजक[3] तथा चेता-लोम आदाता होता है (देखिए आकृति ४६)।

हमारे इस सीधे-सादे वर्णनसे एक भ्रान्त धारणा बन सकती है और उसे तुरन्त ठीक कर लेना उचित होगा। स्नायु-कोशाएं किसी एक शृंखलामें सम्बद्ध नहीं होतीं। प्रत्येक लांगूल अपने सिरे पर कई अन्य स्नायु-कोशाओंसे सन्धि स्थापित करता है। वह सन्धिप्राप्त किसी कोशा को या सभी कोशाओंको उत्तेजना प्रदान कर सकता है। प्रत्येक कोशा कई कोशाओंके लांगूलोंसे भी उत्तेजना प्राप्त करती है। हम देखते हैं कि यहां भी संयोगका नियम[4] दो रूपोंमें लागू हो रहा है: किसी एक कोशाके ऊपर उत्तेजनाओंका संयोग और किसी लांगूलके द्वारा, जो शाखाओंमें विभक्त होकर कई कोशाओंको उत्तेजित करता है, प्रारम्भिक प्रतिक्रियाओंका संयोग। आगे चलकर हम संयोगके इन दो रूपोंके सम्बन्धमें अधिक बातें बतायेंगे।

यहां पर चुनाव[5] का नियम भी आ जाता है, क्योंकि लांगूल अनियमित रूपसे नहीं फैले रहते और न वे जिस किसी कोशा से सन्धि ही स्थापित करते हैं। बोध-लांगूल त्वचाके किसी निश्चित भागसे शुरू होकर सुषुम्नाके एक निश्चित भाग तक जाता है और कतिपय कोशाओंके समूहसे अपना सम्बन्ध स्थापित करता है। चेष्टा-लांगूल, सुषुम्नाके किसी निश्चित भागसे शुरू होकर किसी मांस-पेशीके तन्तुओंके एक समूह तक जाता है और उनको उत्तेजना प्रदान करता है। कोशाओं के पारस्परिक सम्बन्ध अत्यन्त जटिल हैं, परन्तु उत्कृष्ट रूपमें संगठित भी हैं।

स्नायु-आवेग[6]. जब कोई बोध-स्नायु तन्तु उत्तेजित होता है, मान लीजिए त्वचामें कहीं पर, तब वह बड़ी तेजीसे सुषुम्ना या मस्तिष्कको सन्देश भेजता है। जब कोई कर्म-कोशा[7], मस्तिष्क या सुषुम्नामें उत्तेजित होती है, तब वह पेशी-तन्तुओं के एक समूहको शीघ्रतासे सन्देश प्रेषित करती है और फलतः वे संकुचित हो जाते हैं। ये 'सन्देश' क्या होते हैं? स्नायु कौन-सी वस्तु वहन करती या प्रेषित करती है? हम इसको स्नायु-आवेग कहते हैं, और जहां तक ज्ञात है, यह स्नायु-तन्तुमें पायी जानेवाली एक विद्युत्-रासायनिक तरंग[8] है जो बहुत सूक्ष्म होती है तथा बहुत थोड़ी शक्ति व्यय करती है, किन्तु फिर भी यह इतनी समर्थ होती है कि किसी मांस-पेशी या स्नायु-केन्द्रको क्रिया-शील बना सकती है।

स्नायु और मांस-पेशीके प्रसंगमें 'सम्पूर्ण या बिल्कुल नहीं' का नियम. 'सम्पूर्ण या बिल्कुल नहीं' का तात्पर्य अभिस्फोट (डायनामाइट) के एक प्रभार[9] का उदाहरण देकर स्पष्ट किया जा सकता है। यदि विस्फोट होता ही है, तो वह पूर्ण रूपसे होगा। जिस चिनगारीसे आप उसमें आग लगाते हैं, उसकी कम या अधिक शक्तिके कारण आप विस्फोटकी शक्तिको धीमी या उग्र नहीं बना सकते। प्रभारमें परिमाणकी दृष्टिसे अन्तर हो सकता है, किन्तु जो कुछ परिमाण उपस्थित रहता है, वह एक बारगी ही विस्फोट कर बैठता है। 'सम्पूर्ण या बिल्कुल नहीं' का यह नियम किसी अकेले पेशी-तन्तु और किसी अकेले स्नायु-तन्तुके लिए भी उतना ही सत्य है। किसी भी क्षण, एक पेशी-तन्तुके पास प्राप्य शक्तिका एक निश्चित प्रभार रहता है और कोई उत्तेजना, जो इस शक्तिके उन्मोचन[10] के लिए तन्तु को प्रेरित करती है, सारी शक्तिका उपयोग कर डालती है। एक सैकेंडके कुछ अंशमें ही पेशी-तन्तु पुनः पूर्ववत् प्रभार-युक्त हो जाता है। इसी प्रकार यदि कोई स्नायु-तन्तु उन्मोचन करता ही है, तो वह सारी संगृहीत शक्तिको उन्मुक्त कर देता है। कोई उत्तेजना इतनी निर्बल हो सकती है कि वह तन्तुको उकसानेमें असमर्थ रहे; किन्तु यदि वह कैसी भी प्रतिक्रियाके लिए उकसानेमें कुछ भी समर्थ है, तो उस विशेष क्षणमें तन्तु में जितनी भी सामर्थ्य होती है, उसके अनुसार वह पूरी प्रतिक्रिया उत्पन्न कराती है (१)।

प्रतिक्रिया का न्यूनाधिक बल. सामान्यतया शरीर तीव्रतर उत्तेजना प्राप्त करने पर उतनी ही तीव्रताके साथ प्रतिक्रिया भी करता है। अधिक तीव्र प्रकाश, प्रकाशकी अधिक तीव्र संवेदना उत्पन्न करता है, और अधिक प्रयत्न मांस-पेशियोंमें अधिक संकुचन[11]। पहिली दृष्टिमें आपको ऐसा प्रतीत होगा कि प्रतिक्रियाका यह तारतम्य[12] 'सम्पूर्ण या बिल्कुल नहीं' के नियमसे मेल नहीं खाता।

'सम्पूर्ण या बिल्कुल नहीं' के नियमके बावजूद दो अन्य ऐसे तरीके हैं जिनके द्वारा तीव्रतर उत्तेजना तीव्रतर प्रतिक्रिया उत्पन्न कर सकती है। पहिले एक तीव्रतर उत्तेजना स्नायु-तन्तुओं या पेशी-तन्तुओंको अधिक संख्याको प्रेरित करती है। त्वचा पर यदि आप सुईकी नोक भी चुभायें, तो कई ज्ञान-स्नायु-तन्तुओंके सिरे उससे दब जाते हैं; जितनी ही तीव्रता से सुईकी नोक चुभायेंगे, उतने ही अधिक स्नायु-तन्तु उत्तेजित होंगे।

दूसरी बात यह है कि एक तीव्रतर उत्तेजना भले ही किसी एक आवेग[13] के बलको न बढ़ा सके, किन्तु वह प्रति सैकेंड अधिक आवेगोंको उत्पन्न कर सकती है। स्नायु-तन्तु इतने स्फूर्तिमय होते हैं कि क्रियाकी एक लहर एक सैकेंडके छोटेसे हिस्सेमें ही समाप्त हो जाती है। यदि किसी स्नायु-तन्तुको लगातार उत्तेजना प्रदान की जाये, तो वह आवेगोंकी एक

[1] cell body [2] conductor [3] stimulator [4] principle of combination [5] selectivity [6] nerve impulse [7] motor neuron [8] electro-chemical wave [9] charge [10] discharge [11] contraction [12] gradation [13] impulse

श्रृंखला शुरू कर देती है। उत्तेजना जितनी ही तीव्र होगी, आवेगोंका क्रम भी उतना ही क्षिप्र हो जायगा। किसी एक स्नायु-तन्तुमें कम से कम प्रति सैकेंड ५ आवेग और अधिक से अधिक २०० आवेग उठ सकते हैं। इनकी संख्याकी न्यूनाधिकता उत्तेजनाके बल पर निर्भर करती है। पेशी-तन्तु भी प्राप्त उत्तेजनाके बलके अनुसार प्रति सैकेंड कम या अधिक बार अपनी शक्तिको उन्मुक्त करते हैं।

इन दो तथ्योंको मिलाकर देखने पर हमें पता चलता है कि प्रतिक्रिया का बल प्रति सैकेंड उत्पन्न होनेवाले स्नायु-आवेगों[1] की कुल संख्या पर निर्भर है। यह संख्या कुछ तो प्रत्येक तन्तुकी आवेग-संख्या पर और कुछ सक्रिय तन्तुओंकी संख्या पर निर्भर है। इस प्रकार न्यूनाधिक संवेदना और मांसपेशियों की न्यूनाधिक क्रिया प्राप्त होती है।

उत्तेजना प्रतिक्रिया की यांत्रिक-प्रक्रिया[2]

जब एक स्नायु-कोशाका लांगूल दूसरी स्नायु-कोशाको क्रियाशील बननेके लिए उत्तेजित करता है, या जब एक चेष्टा-लांगूल पेशी-तन्तुओंके किसी समूहको उत्तेजित करता है, तब हमें उत्तेजना और प्रतिक्रिया का अत्यन्त प्रारम्भिक एवं अविकसित स्वरूप देखनेको मिलता है। एक कोशा दूसरी कोशाको उत्तेजना देती है। ऐसी अविकसित प्रतिक्रियाएं व्यवहारके भीतरी तत्वोंका निर्माण करती हैं। शरीरको उसके समग्र रूपमें लीजिए। आप देखेंगे कि एक आदाता[3] को उत्तेजना प्रदान की जाती है और उसकी प्रतिक्रिया किसी एक मांस-पेशी द्वारा या मांस-पेशियोंके एक समूह द्वारा होती है। इन वृहत् उत्तेजना-प्रतिक्रिया-इकाइयोंका क्या स्वरूप है ?

प्रतिक्षेप क्रिया[4]. एक सरल प्रतिक्रियामें (जो प्रतिक्षेप क्रिया नहीं होती), परीक्षार्थीको तैयार रहनेके लिए कहा जाता है और उसके कानमें उत्तेजना दी जाती है। फलतः स्नायु-आवेग मस्तिष्ककी ओर दौड़ने लगते हैं। मस्तिष्क जिस रूपमें तत्पर[5] रहता है, उसके अनुसार अन्तर्गामी आवेग सुषुम्नाके सहारे नीचेकी ओर उतरनेवाले और मांस-पेशियों तक जानेवाले बहिर्गामी आवेगोंको उत्पन्न करते हैं। मांसपेशियां इन आवेगोंको प्राप्त करके भुजामें स्पन्दन उत्पन्न करती हैं। इस सारी प्रतिक्रियामें लगभग ·१५ सैकेंडका समय लगता है। यह प्रतिक्रिया काफ़ी क्षिप्र समझी जानी चाहिए। किन्तु आंखोंको छूने पर पलकें प्रतिक्रियास्वरूप इससे भी तीव्र गतिसे झपकती हैं—उनकी प्रतिक्रियामें लगभग ·०५ सैकेंड ही लगता है। जब आप टाँगके निचले भागको स्वतंत्र रूपसे लटकाकर बैठे हों, तब झुके हुए घुटनेके ठीक नीचेवाली कंडरा[6] को दबाने पर उसके प्रतिक्रिया स्वरूप जो जानु-क्षेप[7] होगा, उसकी गति और भी तेज होगी। यहां पर केवल ·०३ सैकेंडमें ही प्रतिक्षेप-क्रिया हुई। फिर भी प्रत्येक प्रतिक्षेप-क्रिया विशेषतः तेज नहीं होती। कुछ तो सरल प्रतिक्रियासे भी धीमी होती हैं। तारा-प्रतिक्षेप[8] अर्थात् अचानक तेज रोशनीके आंखोंमें पड़नेसे तारेके संकुचित होनेमें एक या दो सैकेंड लगते हैं।

शरीरमें कई अन्य प्रतिक्षेप क्रियाएं भी होती हैं, जैसे—जलने पर हाथ खींच लेना, खांसना, छींकना और कई अन्य आन्तरिक प्रतिक्रियाएं, जैसे—आमाशय और आंतोंके स्पन्दन तथा धमनियोंका फैलना अथवा संकुचित होना जिससे त्वचा लाल या पीली होती है। ये तो हुईं मांस-पेशियोंकी प्रतिक्रियाएं, किन्तु कुछ ग्रन्थियों-सम्बन्धी प्रतिक्षेप-क्रियाएं भी होती हैं, जैसे—मुंहमें किसी स्वादिष्ट वस्तुके आ जाने पर लार (थूक) का आना तथा आंखमें तिनका पड़ जाने पर आंसू निकलना आदि।

प्रतिक्षेप-क्रिया किसी सांवेदनिक उत्तेजनाके प्रति मांसपेशियों या ग्रन्थियोंकी तत्काल होने वाली[9] अनैच्छिक[10] और जन्मजात[11] (बग़ैर सीखी हुई) प्रतिक्रिया है। सरल प्रतिक्रियाके विपरीत यह व्यक्तिकी तैयारी या तत्परता पर निर्भर नहीं है। प्रतिक्षेप-क्रियाको 'तैयार रहो' संकेतकी आवश्यकता नहीं पड़ती।

प्रतिक्षेप-चाप[12]. स्नायु-केन्द्रोंके विकासके समय अन्तर्गामी ज्ञान-तन्तुओं और बहिर्गामी चेष्टा-तन्तुओंके बीच जो निश्चित सम्बन्ध हो जाते हैं, उन्हीं पर प्रतिक्षेप क्रिया निर्भर होती है। किसी ज्ञानेन्द्रियसे स्नायु-केन्द्रमें होते हुए मांस-पेशी तक जो मार्ग जाता है, उसे प्रतिक्षेप-चाप कहते हैं। शरीरशास्त्रियों ने इनमें से कुछ पथोंके सम्बन्धमें विस्तृत अन्वेषण किया है।

आकृति ४७में प्रतिक्षेप-चापका जो छोटा-सा चित्र दिया गया है, उससे आपको पता चलेगा कि बोध-लांगूल एक आदातासे चलकर स्नायु-केन्द्र में जाता है और वहां चेष्टा-कोशाके साथ, जिसका लांगूल मांस-पेशियों तक फैला हुआ है, सन्धि स्थापित करता है। बोध-कोशा और कर्म-कोशाके संयोगसे एक द्विकोशीय प्रतिक्षेप-चापकी सृष्टि होती है। अधिकांश प्रतिक्षेप-चापोंमें कम से कम तीन कोशाएं होती हैं, और कुछमें तो इससे भी अधिक होती हैं।

ये सरल रेखाकृतियां इस मानेमें अच्छी हैं कि इनसे स्नायु-केन्द्रोंके कुछ कम जटिल भीतरी सम्बन्धोंका परिचय मिल जाता है जिससे हम अनुमान कर सकते हैं कि मस्तिष्कमें किस

[1] nerve impulses [2] The stimulus-response mechanism [3] receptor [4] reflex action [5] set [6] tendon [7] tendon knee jerk [8] pupillary reflex [9] direct [10] involuntary [11] unlearned [12] reflex arc

तरहकी क्रिया होती होगी। यदि हम इन रेखाकृतियोंको बिल्कुल सही समझ लें, तो ग़लतफ़हमीमें पड़ेंगे, इनको समझानेके लिए स्नायु-केन्द्रोंकी क्रियाओंके सम्बन्धमें कुछ आधारभूत बातें बताना आवश्यक है।

१. «बहुसंख्यक स्नायु-पथ[1]». रेखाकृतिमें प्रत्येक तन्तु साथ-साथ काम करनेवाले समस्त तन्तुओंके एक समूहका प्रतनिधित्व करता है।

आकृति ४७. दो कोशाओं वाला एक प्रतिक्षेप-क्रिया-चाप।
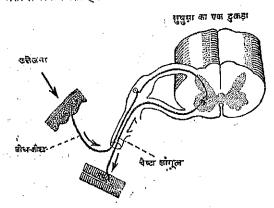
२. «अभिसारी पथ[2]». अकेला प्रतिक्षेप-चाप साधारणतः शेष स्नायु संस्थानसे अलग रहकर कार्य नहीं करता। प्रत्येक स्नायु-केन्द्रमें स्नायु-संस्थानके कई भागोंसे आनेवाले लांगूल मिलते हैं, इसलिए वह किसी एक उत्तेजनाके अधीन न रहकर कई प्रभावोंके समूहके वशीभूत रहता है। उदाहरणार्थ, श्वास-केन्द्र केवल फुफ्फुसों (फेफड़ों) के बोध-स्नायु-आवेगों को ही नहीं ग्रहण करता, बल्कि कई अन्य बोध-स्नायु-आवेगोंको भी ग्रहण करता है। यही कारण है कि किसी पीड़ाप्रद उत्तेजना, शोरगुल या त्वचा पर शीतल जलके छींटे पड़नेसे श्वास-क्रियाकी गतिमें भी परिवर्तन हो जाता है। श्वास-केन्द्र में मस्तिष्कसे भी स्नायु-तन्तु आते हैं। इसका प्रमाण यह तथ्य है कि श्वासकी गति स्वेच्छा से तेज या धीमी की जा सकती है। श्वासकी गति और उसकी गहराई पर इस चीज़ का भी प्रभाव पड़ता है कि स्वयं श्वास-केन्द्रसे होकर प्रवाहित होनेवाले रक्तमें 'कार्बन डाइऑक्साइड' की मात्रा कितनी है। इसलिए आकृति ४८ में जो त्रिकोशीय चाप दिखाया गया है, वह श्वास-प्रश्वासकी यांत्रिक प्रक्रियाका पूरा चित्र नहीं उपस्थित करता।

३. «शाखाओंमें विभक्त होने वाले पथ[3]». पूरा चित्र उपस्थित करनेके लिए यह आवश्यक है कि उसमें न केवल
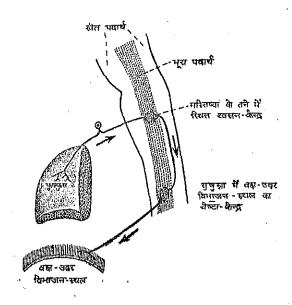
आकृति ४८. सांस लेनेकी क्रियासे सम्बन्धित एक तीन-कोशा चाप। प्रश्वासके समय फुफ्फुस (फेफड़े) के ज्ञानवाही स्नायु उत्तेजित होते हैं और मस्तिष्कके तनेमें स्थित श्वसन-केन्द्र को उकसाते हैं। बदलेमें यह (सुषुम्नामें स्थित) उरःप्राचीर[6] के चेष्टा-केन्द्रको उकसाता है और इस प्रकार अन्तःश्वास की गति प्रारम्भ होती है।

अभिसारी लांगूल ही दिखाये जायें, वरन् विभक्त होनेवाले लांगूल भी दिखाये जायें, जिनके द्वारा कोई भी अकेली कोशा कई अन्य कोशाओं पर प्रभाव डाला करती है। एक भागसे आते हुए स्नायु-आवेग कई भागोंमें वितरित होते हैं। किसी एक मांस-पेशीके अनेक तन्तु एक साथ मिलकर काम करते हैं, और किसी संगठित गति[4] के लिए कई मांस-पेशियां एक ही समय कार्यरत की जा सकती हैं (देखिए आकृति ५०)।

४. «अविच्छिन्न क्रिया[5]». प्रतिक्षेप-चापकी रेखाकृतिसे आपको यह प्रतीत हो सकता है कि स्नायु-केन्द्र किसी उत्तेजना के आने तक चुपचाप विश्राम करता रहता है, हालांकि बात ऐसी नहीं है। स्नायु-संस्थानका निर्माण ही इस प्रकार हुआ है कि उसमें निरन्तर क्रिया होती रहती है, क्रिया सदा जारी रहती है। मस्तिष्क और सुषुम्नामें जो क्रिया हो रही होती है, उसमें अन्तर्गामी स्नायु-आवेगोंके द्वारा परिवर्तन हो जाता है। हमें स्नायु-संस्थानको सतत सक्रिय संस्थानके रूपमें देखना चाहिए, जिसमें निरन्तर उत्तेजनाएं प्राप्त होती रहती हैं और इसकी क्रियामें फेर-बदल करती रहती हैं।

[1] multiple nerve paths [2] converging paths [3] branching paths [4] coordinated movement [5] continued activity [6] diaphragm
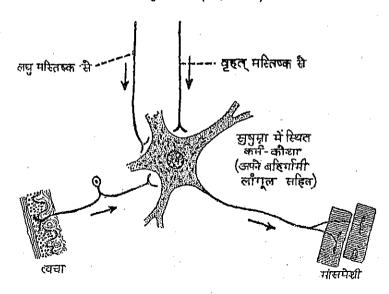
आकृति ४६. केन्द्राभिसारी स्नायु-पथ। सुषुम्ना की कर्म-कोशा, जो एक मांस-पेशी के भागको सीधे नियंत्रित करती है, कई स्रोतोंसे स्नायु-आवेगोंके द्वारा उत्तेजित की जाती है। (इस रेखाकृतिमें कर्म-कोशा बहुत बड़ी दिखायी गयी है।)
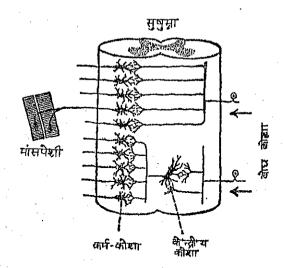
आकृति ५०. कोशाओंमें शाखा-प्रस्फुटन। इसका परिणाम यह होता है कि उत्तेजन एक के बाद दूसरे कई मांस-तन्तुओं के पास तक पहुंचाया जाता है। यहां पर केवल दो मांस-तन्तुओं को दिखाया गया है।

मस्तिष्क¹

मस्तिष्कके कई भाग हैं जो विभिन्न नामोंसे अभिहित किये जाते हैं, परन्तु प्रमुख भाग ये हैं: «मस्तिष्क का तना²» जो वस्तुतः सुषुम्ना का ही कुछ मोटा ऊर्ध्वभाग है तथा जो «अन्तर्मस्तिष्क³» में जाकर समाप्त हो जाता है। मस्तिष्क के तनेसे निकले हुए दो अन्य भाग भी हैं जिन्हें «बृहत् मस्तिष्क⁴» और «लघु मस्तिष्क⁵» कहा जाता है। मस्तिष्क का तना और सुषुम्ना⁶ समस्त स्नायु-संस्थान की धुरी हैं।

भुजाओं और पैरोंके सारे स्नायु और धड़ के अधिकांश स्नायु सुषुम्नासे जुड़े रहते हैं। सुषुम्नामें शरीरके इन भागोंके लिए 'निचले केन्द्र' रहते हैं। हृदय, फुफ्फुस, आमाशय, सिर और चेहरेके स्नायु मस्तिष्कके तनेसे संयुक्त रहते हैं। इन भागोंके 'निचले केन्द्र' मस्तिष्कके तनेमें रहते हैं। बृहत् मस्तिष्क और लघु मस्तिष्कमें जो 'ऊंचे केन्द्र' होते हैं, वे सीधे इन निचले केन्द्रोंसे जुड़े रहते हैं, और वास्तविकता तो यह है कि इन निचले केन्द्रोंके माध्यमसे ही ऊंचे केन्द्र मांस-पेशियों, ज्ञानेन्द्रियों या परिवेशके साथ किसी तरहका सम्पर्क रख पाते हैं। निचले केन्द्र मांस-पेशियोंको अपेक्षाकृत सरल समूहोंमें संगठित

¹ brain ² brain stem ³ interbrain ⁴ cerebrum ⁵ cerebellum ⁶ spinal cord

करते हैं और ऊंचे केन्द्र निचले केन्द्रों का संगठन करते हैं। इस प्रकार ऊंचे केन्द्र मांस-पेशियों से बड़े पैमाने पर संगठित रूपसे काम ले पाते हैं।

लघु मस्तिष्क सिरके पीछेकी ओर स्थित होता है और वृहत् मस्तिष्क के नीचे लगभग दबा रहता है। मस्तिष्कके तनेसे स्नायु-तन्तुओं की बड़ी-बड़ी गड्डियां लघु मस्तिष्कमें जाती हैं। लघु मस्तिष्क ही शरीरकी मांस-पेशियों से सांवेदनिक सन्देश प्राप्त करता है और कर्म-कोशाओंको जानेवाले सन्देशोंको इस प्रकार संगठित करता है जिससे किसी जटिल चेष्टामें संलग्न मांस-पेशियां एक साथ मिल कर सुचारु रूपसे कार्य कर सकें। यदि मानव-शरीरके शेष स्नायु-संस्थानको मिला दिया जाय, तो उसका वृहत् मस्तिष्क उनसे भी बड़ा निकलेगा। खोपड़ी के अधिकांशको यही घेरे रहता है। इसके दाहिने और बायें अर्धभागोंको दक्षिण और वाम गोलार्ध कहते हैं। दक्षिण गोलार्धका अधिकांश शरीरके बायें भागसे जुड़ा रहता है और वाम गोलार्ध शरीरके दायें भागसे। इस व्यत्यस्त सम्बन्ध[1] से शरीरको क्या लाभ पहुंचता है, इसकी खोज अभी तक कोई नहीं कर पाया है।

आकृति ५२ में आप वृहत् मस्तिष्क की सतहको देखेंगे तो उसमें प्रसिद्ध «छोटी-छोटी सिकुड़नें[2]» सी दिखायी देंगी जिनको दरारें[3] अलग करती हैं। ये दरारें (विवर) वृहत् मस्तिष्कके द्रव्यमें भी भीतरकी ओर कुछ घुस जाती हैं, किन्तु वास्तवमें वृहत् मस्तिष्क को कई भागोंमें विभाजित नहीं करतीं। यहां तक कि वृहत् मस्तिष्कके बड़े भाग[4], जिन्हें खंड[5] कहते हैं, अलग अंगोंके रूपमें नहीं हैं, क्योंकि मस्तिष्कके नीचे वे मिले रहते हैं। ललाट[6] के भीतरका «अग्रखंड या ललाट-खंड[7]» पीछे की ओर «माध्यमिक दरार[8]» तक फैला रहता है। माध्यमिक दरारके पीछे «पार्श्वकपाल-खंड[9]» होता है; उसके पीछे मस्तिष्कके पृष्ठ भागमें «पश्चकपाल-खंड[10]» होता है। प्रत्येक गोलार्धके पार्श्व में «'सिल्वियस' की स्पष्ट दरार» होती है जो नीचेके «शंख खंड[11]» को ऊपरके अग्रखंडसे अलग करती है।

चेष्टाधिष्ठान[12]» माध्यमिक दरारसे कुछ आगे अग्रखंडमें स्थित होता है; त्वक्-पेशी-संवेदनाधिष्ठान[13], जहां त्वचा और पेशियोंसे संवेदनाएं प्राप्त होती हैं, पार्श्वकपाल-खंड में माध्यमिक दरारके ठीक पीछे स्थित रहता है। शंख खंड[11] के ऊपरी सिरेमें «श्रवणाधिष्ठान[14]» रहता है। «दृष्टि-अधिष्ठान[15]» मस्तिष्कके पृष्ठ भागमें—पश्चकपाल-खंड में—स्थित होता है। इन नामों की सार्थकताके विषयमें हम अभी चर्चा करेंगे।

मस्तिष्क की भीतरी रचना. मस्तिष्क के बाह्य रूपको देखकर आपको उसकी *कार्य-पद्धतिके सम्बन्धमें* कुछ भी ज्ञान नहीं हो सकता। यह एक बड़े लोथड़े के समान
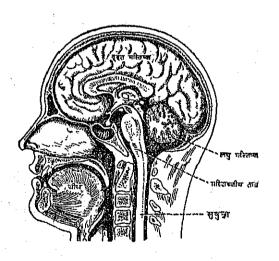
आकृति ५१. सुषुम्ना, मस्तिष्क के तने, वृहत् मस्तिष्क और लघु मस्तिष्क का स्थान।
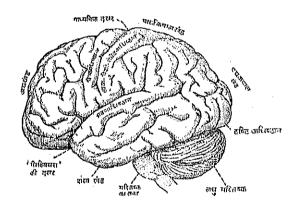
आकृति ५२. वृहत् मस्तिष्क के बायें गोलार्धका पार्श्व-दृश्य जिसमें मस्तिष्क के खंड और चेष्टाधिष्ठान तथा संवेदनाधिष्ठान दिखाये गये हैं। घ्राणक्षेत्र इनसे बिलकुल अलग स्थित है। उसके लिए आकृति ५४ देखिए।

[1] crossed relation　[2] convolutions or gyri　[3] fissures　[4] major　[5] lobes　[6] forehead　[7] frontal lobe　[8] central fissure　[9] parietal lobe　[10] occipital lobe　[11] temporal lobe　[12] motor area　[13] somaesthetic area　[14] auditory area　[15] visual area

लगता है और सम्भवतः यह एक प्रकारकी विकसित ग्रन्थि है। मस्तिष्कके किसी छेद[१] को देखनेसे, चाहे वह क्षैतिज[२] हो, या अनुप्रस्थ[३], बहुत भिन्न धारणा बनती है (देखिए आकृतियां ५३ और ५४)। खाली आंखोंसे देखने पर भी इसके श्वेत और भूरे पदार्थमें अन्तर प्रकट हो जाता है। भूरे पदार्थका एक बड़ा अंश सतह पर स्थित रहता है और उसे बृहत् मस्तिष्क का «त्वक्ष[४]» (छाल) कहा जाता है। त्वक्ष दरारोंके पेंदेके चारों ओर फैला रहता है। भूरे पदार्थके और भी बड़े-बड़े लोथड़े मस्तिष्कके भीतर मिलते हैं।

ऊति[५] पर उपयुक्त रंग लगानेके बाद यदि अणुवीक्षण यंत्र से देखा जाय, तो आप देखेंगे कि श्वेत पदार्थमें असंख्य स्नायु-तन्तु होते हैं जो विभिन्न दिशाओंमें फैले रहते हैं। भूरे पदार्थ में चेतालोमों सहित स्नायु-कोशाएं और प्रविष्ट होते एवं समाप्त होते लांगूल सम्मिलित रहते हैं। निचले केन्द्र, जो सुषुम्ना और मस्तिष्कके तनेमें पाये जाते हैं, भूरे पदार्थके लोथड़े होते हैं और ऊंचे केन्द्र अधिकतर त्वक्षमें रहते हैं। मस्तिष्क और सुषुम्ना का लगभग ५० प्रतिशत भाग श्वेत पदार्थसे और ५० प्रतिशत भूरे पदार्थसे युक्त होता है। जिस प्रकार बाह्य स्नायुओंमें ऐसे तन्तु होते हैं जो निचले केन्द्रोंको मांस-पेशियों और ज्ञानेन्द्रियोंसे संयुक्त करते हैं, उसी प्रकार श्वेत पदार्थमें भी स्नायु-तन्तु होते हैं, जो भूरे पदार्थके सभी भागोंको संयुक्त करते हैं।

यदि भूरे पदार्थको किसी यंत्र द्वारा खूब बढ़ाकर देखा जाय, तो उसमें स्नायु-कोशाओं, लोमों और लांगूलोंकी बहुत जटिल आन्तरिक रचना का पता चलेगा। आकृति ५५ से आपको उसकी इस जटिल रचना का कुछ आभास मिल सकेगा। त्वक्षका यह विशेष टुकड़ा चेष्टाधिष्ठान[६] का है और इसमें कतिपय बृहत् स्तूपाकार कोशाएं[७] होती हैं, जिनमें से एक आकृति ५६ में दिखायी गयी है। अधिकांश त्वक्ष चेष्टाधिष्ठानकी अपेक्षा कम विकसित लगता है। वास्तवमें, त्वक्षके सभी भाग अपनी आन्तरिक सूक्ष्म रचनाकी दृष्टिसे आपसमें बहुत भिन्नता रखते हैं।
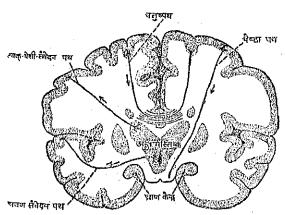
आकृति ५४. मस्तिष्कके भीतर व्यत्यस्त काट। (पिछली आकृतिकी अपेक्षा इस आकृतिका पैमाना बड़ा है)। अकेले सूत्र जिनमें से हरेक कई हजार सूत्रोंका प्रतिनिधित्व करता है, कुछ मुख्य मार्गोंको सूचित करते हैं: चेष्टाधिष्ठानसे नीचेकी ओर निचले केन्द्रों तक, अन्तर्मस्तिष्कसे बृहत् मस्तिष्कीय वल्क के श्रवणाधिष्ठान और त्वक्संवेदनाधिष्ठान तक, और एक गोलार्धसे दूसरे गोलार्धमें जाने वाले मार्ग।

आकृति ५३. मस्तिष्कके भीतर समस्थ काट। श्वेत पदार्थ सफ़ेदमें, भूरा पदार्थ बिन्दुओंमें और तरल स्थान कालेमें दिखाये गये हैं।

बृहत् मस्तिष्कीय त्वक्ष[८] में स्नायु-कोशाओंकी कुल संख्या लगभग १४,०००,०००,००० मानी जाती है। इनमें से कई बहुत छोटे हैं और अविकसित प्रतीत होते हैं। ऐसा लगता है, मानो वे एक सुरक्षित कोषके रूपमें हैं, जिनका उपयोग व्यक्ति की मस्तिष्कीय चेष्टाओंमें अभी तक नहीं हो सका है।

व्यक्तिगत भिन्नताओंके सम्बन्धमें यह प्रश्न पूछे जानेकी

[१] section [२] horizontal [३] transverse [४] cortex [५] tissue [६] motor area [७] giant pyramid cells [८] cerebral cortex

बहुत सम्भावना है कि मस्तिष्कके आकारका बुद्धिसे क्या सम्बन्ध है? शव-परीक्षासे पता चला है कि कुछ प्रख्यात योग्यता वाले व्यक्तियोंके मस्तिष्कका आकार बहुत बड़ा था और कुछ मूर्खोंके मस्तिष्कका आकार बहुत ही छोटा। परन्तु मस्तिष्कके आकार और बुद्धिका सम्बन्ध घनिष्ठ नहीं है। मस्तिष्कके आकार (जैसा कि जीवित व्यक्तियोंके सिरको मापनेसे पता चलता है) और बुद्धि (बुद्धि-परीक्षाओंसे जैसा प्रमाणित होता है) में केवल +·१० या +·१५ का अनुबन्ध है। इससे यह लक्षित होता है कि केवल मस्तिष्कके स्थूल आकारके आधार पर व्यक्तियोंकी बुद्धि-सम्बन्धी भिन्नताओं को एक छोटी सीमा तक ही समझा जा सकता है। सम्भवतः कुछ अन्य बातें, जैसे मस्तिष्ककी आन्तरिक रचनाकी सूक्ष्मता और मस्तिष्क-ऊतिका रसायन[1], इस सम्बन्धमें अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।
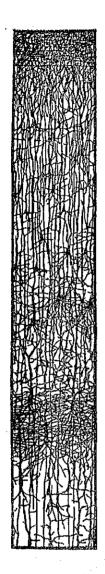
आकृति ५५. मनुष्यके वृहत् मस्तिष्कीय वल्क के एक छोटे-से अंशको इस प्रकार बढ़ाकर दिखाया गया है, ताकि उसकी आन्तरिक रचना का कुछ परिचय मिल सके। एक चित्रमें स्नायु-कोशा और कुछ लांगूलों सहित लोम दिखाये गये हैं, जब कि दूसरे चित्रमें, जिसके धब्बे भिन्न प्रकारके हैं, लांगूलों और उनकी शाखाओंकी झलक मिलती है। कल्पना कीजिए कि एक चित्रको दूसरे चित्रके ऊपर स्थापित कर दिया गया है। उस समय आपको वल्क में लांगूलों और लोमोंकी जटिल बुनावटका कुछ अन्दाज हो सकेगा। यहां पथोंका एक-दूसरेके सन्निकट आना अपनी चरम सीमा पर है (रैमनी काजल)।
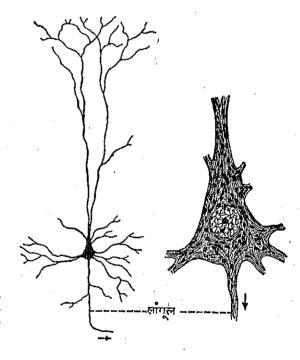
आकृति ५६. चेष्टाधिष्ठानसे निकली हुई एक वृहत् सूची-कोशा। दूसरे चित्रमें इसका कोशा-पिंड और भी अधिक बढ़ा कर दिखाया गया है। लांगूल चेष्टा-पथमें होकर जाता है, जो कि ५४ और ५७ आकृतियोंमें प्रदर्शित है।

[1] chemistry of brain tissues

त्वक्ष के चेष्टा-क्षेत्र और ज्ञान-क्षेत्र

इस प्रश्नकी कि क्या मस्तिष्कके विभिन्न भागोंकी कार्य-पद्धति भी भिन्न है, एक दिलचस्प कहानी है। सन् १८०० के आस-पाससे, जब गॉल[1] ने अपने प्रसिद्ध मस्तिष्क सामुद्रिक*[2] सिद्धान्तका प्रचार किया था, यह प्रश्न विज्ञान-जगत् का एक विवादास्पद प्रश्न बना रहा है। (गॉल[1] के मस्तिष्क-सामुद्रिक सिद्धान्तको बहुत लोकप्रियता प्राप्त हुई, किन्तु उसे वैज्ञानिक समर्थन नहीं प्राप्त हो सका।) स्वयं गॉल एक ख्यातिप्राप्त शरीररचनाविद्[3] था, परन्तु उसकी अध्ययन-विधि बहुत प्राचीन थी। जब कभी वह विचित्र आकारकी खोपड़ी वाले किसी व्यक्तिको देखता, तब उसकी मानसिक विचित्रताओं का पता लगानेकी चेष्टा करता, ताकि खोपड़ीकी सतहके बाह्य उत्सेधों[4] से वह मानसिक विशेषताओंका सम्बन्ध बैठा सके। उसका विश्वास था कि खोपड़ीके ये उत्सेध यह प्रकट करते हैं कि वहां पर मस्तिष्क विशेषतया विकसित हुआ है। उसकी आस्था थी कि ललाटके भीतर मस्तिष्कके अग्र भागमें बौद्धिक शक्तियोंका, नैतिक स्वभाव-गुणोंका मध्य मस्तिष्कमें (जैसे 'श्रद्धा' का शीर्ष-स्थान[5] में), पाशविक प्रवृत्तियोंका मस्तिष्क के पृष्ठ भागमें निवास रहता है। काम-भावना का निवास वह लघु मस्तिष्कमें मानता था।

गॉल की पद्धति बहुत ही उलझी हुई और इतनी अपरिष्कृत थी कि उससे कोई वास्तविक प्रमाण नहीं मिल सकता था। कुछ समय बाद इन्द्रिय-व्यापार-शास्त्री एक दूसरी विधिसे प्रयोग करने लगे, जिसे 'उच्छेदन विधि[6]' कहा जाता है। किसी पशुके मस्तिष्कका कोई अंश निकालकर, वे देखते थे कि उसके व्यवहारमें इससे क्या परिवर्तन हुए। सन् १८२५ के लगभग फ़्लूरां[7] ने दिखाया कि लघु मस्तिष्कके नष्ट होने पर पशुकी शारीरिक संस्थिति[8] और गतिकी सम्बद्धता अव्यवस्थित हो जाती है; और मस्तिष्कके तनेके किसी भाग पर चोट पहुंचनेसे श्वसनक्रिया, हृदय-गति और अन्य आन्तरिक क्रियाएं अव्यवस्थित हो जाती हैं; वृहत् मस्तिष्कके नष्ट हो जाने पर ऐच्छिक क्रियाओं, स्मृति और समझका विनाश हो जाता है, परन्तु वह इसी निर्णय पर पहुंचा कि वृहत् मस्तिष्क एक इकाईके रूपमें कार्य करता है। मस्तिष्क-सामुद्रिक सिद्धान्तके विरोधमें उसने अपना यह सिद्धान्त स्थिर किया कि वृहत् मस्तिष्क समग्र रूपमें कार्य करता है। सन् १८६० के आस-पास तक फ़्लूरां का यह सिद्धान्त मान्य रहा, किन्तु उसके बाद इस बातके लिए प्रमाण मिलने लगे कि वृहत् मस्तिष्कके विभिन्न भागोंमें चोट पहुँचने पर व्यक्तिके व्यवहार पर उनका अलग-अलग प्रभाव पड़ता है। मस्तिष्क की सूजनों, गोलीके घावों और मस्तिष्कके भागों पर अन्य प्रकारकी चोटों को देखकर मानव-मस्तिष्कके सम्बन्धमें भी प्रमाण एकत्र किये गये हैं। इनका यह परिणाम देखा गया कि जीवितावस्था में व्यक्तिकी मानसिक क्रियाओंकी क्षतिको ठीक-ठीक देखा गया और मृत्युके बाद शव-परीक्षा करने पर मस्तिष्ककी चोटें मालूम हुईं। उन्नीसवीं शताब्दीके अन्त तक प्रमुख संवेदना-क्षेत्रों और चेष्टा-क्षेत्रोंके स्थानके सम्बन्धमें साधारणतया समझौता हो गया था; आगे चलकर पद्धतिमें परिष्कार और परीक्षा-विषयोंमें वृद्धि हुई और इससे इन क्षेत्रोंका निश्चित रूपसे निर्धारण हो चुका है।

मस्तिष्कके विभिन्न क्षेत्रोंका अध्ययन करनेमें उपयुक्त विधियां :

१. «उच्छेदन» की विधि[6]: पशुके मस्तिष्कका कोई भाग निकाल लिया जाता है और उसके फलस्वरूप उसकी क्रियाओंका जो ह्रास होता है, उसे लिख लिया जाता है।

२. «रोग-विज्ञान» की विधि[9]: किसी रोगी मनुष्यकी अव्यवस्थित मानसिक क्रियाओंका निरीक्षण किया जाता है। कभी-कभी शव-परीक्षासे न्यूनाधिक रूपसे स्पष्ट मस्तिष्का-घातके स्थानका पता चल जाता है।

३. «उत्तेजन[10]»: त्वक्ष[11] के खुले हुए भागको बिजली की क्षीण धाराओं द्वारा यह देखनेके लिए उत्तेजित किया जाता है कि वह मनुष्य या पशु क्या हरकतें करता है।

४. «तन्तुओंकी खोज[12]»: त्वक्षको निचले केन्द्रोंसे जोड़ने वाले तन्तुओंकी खोज करके त्वक्षके किसी भागका आंखोंसे, अन्य भागका कानोंसे, किसी अन्य भागका मांस-पेशियोंसे सम्बन्ध निर्धारित किया जाता है।

तन्तुओंकी खोज वाली विधि विशेषतया सन्तोषजनक है। जब हम देखते हैं कि भुजाकी मांस-पेशियोंको सन्देश पहुंचाने वाले कर्म-स्नायु-तन्तु कन्धेके पासकी सुषुम्नाकी स्नायु-कोशाओं से निकलते हैं, तब हमको यह विश्वास हो जाता है कि सुषुम्ना का यह भाग भुजाका निचला गति-केन्द्र[13] है। जब हम पाते हैं कि वृहत् मस्तिष्कीय त्वक्षके किसी भागकी वृहत् स्तूपाकार कोशाएं[14] नीचेकी ओर कन्धेके निकटवर्ती सुषुम्नाके इस भाग तक, अपने लांगूलोंको भेजती हैं और भुजाके निचले गति-केन्द्रसे सम्बन्ध जोड़ती हैं, तब हम सन्देह नहीं कर सकते

*खोपड़ीके बाह्य आकार-प्रकारको देखकर मानसिक और चारित्रिक विशेषताओंका ज्ञान करना।

[1] Gall [2] phrenology [3] scientific anatomist [4] elevations [5] crown [6] method of extirpation [7] Flourens [8] posture [9] pathological method [10] stimulation [11] cortex [12] fibre tracing [13] lower motor centre

कि यह त्वक्षीय क्षेत्र[1] भुजाका ऊपरी गति-केन्द्र है (आकृति ५७)।

यह नहीं समझना चाहिए कि तन्तुओंकी खोजका यह कार्य सरल है। तन्तु मोटी रज्जुओं[2] के सदृश नहीं होते जिन्हें दूर तक खोज निकाला जा सके। स्नायु-तन्तुओंकी गड्डियां श्वेत पदार्थके भीतरसे होकर हरेक दिशामें जाती हैं; केवल बहुत ख़ास तरीकोंसे ही किसी एक गड्डीको काफ़ी दूर तक खोजना सम्भव होता है। इसकी एक विशेष विधि है जिसे 'ह्रास[3]' की विधि कहते हैं। किसी लांगूलकी जीवन-शक्ति अपनी स्नायु-कोशासे सम्बन्ध टूट जाने पर नष्ट हो जाती है और उसका ह्रास होने लगता है। उस समय एक सामान्य लांगूल की तुलनामें उसका रंग भिन्न प्रकारका हो जाता है और कई अनुप्रस्थ छेदों[4] की शृंखलामें उसे खोजना सम्भव हो पाता है।

इन विभिन्न विधियोंसे जो परस्पर संगति रखनेवाले परिणाम मिले हैं उनके आधार पर निम्नलिखित कार्यकारी क्षेत्र[5] निर्धारित किये गये हैं।

चेष्टाधिष्ठान[6]. यदि हम जानना चाहें कि गोलार्धोंकी विस्तृत सतहका कौन-सा भाग शारीरिक गतियोंसे सबसे
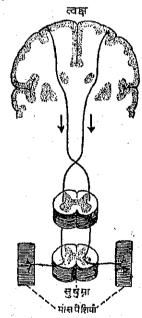
आकृति ५७. प्रमुख-चेष्टा-पथ। चेष्टाधिष्ठानमें स्थित वृहत् सूचियोंसे निकलकर लांगूल मस्तिष्कके तनेमें से गुजरते हुए सुषुम्नाके किसी भाग तक जाते हैं। वहां उनका सम्बन्ध चेष्टा-कोशाओं और मांस-पेशियोंसे हो जाता है। दायें बायें की व्यत्यस्त काट पर ज़रा ध्यान दीजिए।

सीधे रूपमें सम्बन्धित है, तो हमें स्नायु-तन्तुओंकी खोज-विधि से मालूम होगा कि वह भाग माध्यमिक दरारके ठीक सामने स्थित त्वक्षकी एक पट्टी है जिसे « पूर्वमाध्यमिक सिकुड़न[7] » कहते हैं। यहीं पर « वृहत् कोशाएं » पाई जाती हैं जो सुषुम्ना और मस्तिष्कके तनेमें स्थित निचले गति-केन्द्रों तक अपने लांगूलोंको भेजती हैं। त्वक्षके इस भागको जब क्षीण विद्युत् धाराओंसे उत्तेजित किया जाता है, तब मस्तिष्कके उत्तेजित भागोंके अनुसार शरीरके विभिन्न भागोंमें गति पैदा होती है। मस्तिष्कके एक दम ऊपर वाले भाग (शीर्ष या चोटीके स्थान पर जहां गॉलने श्रद्धा[8] का केन्द्र बताया था) में उत्तेजना पहुंचाने पर पैरों और टांगोंमें गति होती है। उससे कुछ नीचे हटकर उत्तेजना पहुंचाने पर धड़में हरकत होती है; उससे भी नीचेके भागकी उत्तेजनासे भुजाओंमें गति पैदा होती है। इस पूर्वमाध्यमिक सिकुड़नकी तलहटीमें उत्तेजना पहुंचाने पर सिर, चेहरे और मुखमें गति उत्पन्न होती है। इस सिकुड़नके किसी भागमें चोट लगने पर उससे सम्बन्धित अंगमें स्थायी या अस्थायी स्तम्भ[9] हो जाता है। इन समस्त कारणोंसे त्वक्षकी इस सँकरी पट्टीको चेष्टाधिष्ठान कहना उचित ही है।

परन्तु, सम्पूर्ण गति-क्षेत्रमें इससे भी कुछ अधिक सम्मिलित है। इसमें चेष्टाधिष्ठानके ठीक सामने वाला त्वक्ष भी सम्मिलित है जिसे बहुधा « पूर्वचेष्टाधिष्ठान » कहते हैं। इसका चेष्टाधिष्ठानसे सम्बन्ध रहता है। इसके अतिरिक्त सुषुम्ना और मस्तिष्कके तनेमें स्थित निचले गति-केन्द्रोंसे भी इसका अपना अलग सम्बन्ध होता है। पूर्वचेष्टाधिष्ठानको उत्तेजना देनेसे जो गतियां पैदा होती हैं, वे चेष्टाधिष्ठानकी उत्तेजनासे उत्पन्न होनेवाली गतियोंसे भी अधिक जटिल होती हैं। ऐसा लगता है कि चेष्टाधिष्ठान अकेली गतियों पर ही नियंत्रण रखता है, जब कि पूर्वचेष्टाधिष्ठान गतियोंके समूहों पर (६)।

चेष्टाधिष्ठान और पूर्वचेष्टाधिष्ठान—दोनोंमें भी त्वक्षके सभी गति-कार्योंका समावेश नहीं हो पाता। नेत्र और सिर की गतियां पश्चकपाल खंड[10] से (जब हम किसी दृश्य वस्तुकी ओर देखते हैं), शंख खंड[11] से (जब हम किसी ध्वनिकी प्रतिक्रिया करते हैं), और अग्रखंड[12] से (जब हम किसी व्यक्तिके मार्गका छिपकर पता लगाते हैं) प्राप्त की जा सकती हैं।

बहिर्गामी तन्तु त्वक्षके सभी भागोंसे निकलकर मस्तिष्कके तने तक जाते हैं। उनमें से अधिकांश तन्तु मस्तिष्कके तनेमें से होते हुए वृहत् मस्तिष्कको « लघु मस्तिष्क » से जोड़ते हैं। यह बड़ा अवयव [लघु मस्तिष्क] संस्थिति[13], सन्तुलन[14] और

[1] cortical region [2] cord [3] degenerateon [4] cross-section [5] functional [6] motor area [7] pre-central gyrus [8] veneration [9] paralysis [10] occipital lobe [11] temporal lobe [12] frontal lobe [13] posture [14] equilibrium

मांस-पेशियोंकी सहनशक्तिको बनाये रखनेमें बहुत काम करता है। वृहत् मस्तिष्क और लघु मस्तिष्क मिल-जुलकर कार्य करते हैं। वृहत् मस्तिष्क नेतृत्व करता है और कार्यमें निपुणता लाता है, जैसे फ़ुटबाल को ठीक समय और ठीक दिशामें पैरसे मारना। लघु मस्तिष्क संस्थितिका ऐसा समायोजन करता है कि खिलाड़ी गेंदको पैरसे मारते हुए भी अपना सन्तुलन बनाये रखता है।

त्वक्षके संवेदनाधिष्ठान[1]. त्वक्ष सीधे किसी भी ज्ञानेन्द्रिय से सम्बन्धित नहीं है, बल्कि यह इन ज्ञानेन्द्रियोंके निचले केन्द्रोंसे सम्बन्धित है जो «अन्तर्मस्तिष्क» में एक दूसरेके निकट स्थित हैं। अन्तर्मस्तिष्क वृहत् मस्तिष्कके नीचे रहता है। इसको आप मस्तिष्कके तनेका ऊपरी सिरा भी कह सकते हैं (देखिए आकृतियां ५३, ५४)। नेत्र, कान और अन्य ज्ञानेन्द्रियोंके स्नायु-तन्तु अन्तर्मस्तिष्क तक जाते हैं और वहां से सन्देश-प्रसारक तन्तु[2] त्वक्षके विभिन्न भागों तक जाते हैं। इस प्रकार अन्तर्मस्तिष्क इन आने-जाने वाले स्नायु-तन्तुओं का बीचका सन्धिस्थल है। सम्भवतः यह सांवेदनिक अनुभव में कुछ महत्वपूर्ण योग देता है। ऐसा जान पड़ता है कि यह
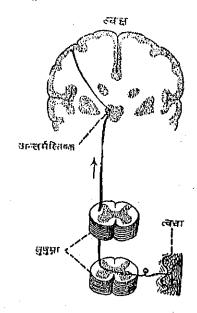
आकृति ५८. धड़ या अंगोंके किसी भागकी त्वचासे निकला हुआ ज्ञान-पथ। यह पथ त्वचासे सुषुम्ना तक, सुषुम्नासे अन्तर्मस्तिष्क तक, और वहां से मस्तिष्कीय वल्कके त्वक्-संवेदनाधिष्ठान तक फैला रहता है। आकृति संख्या ४५ और ५४ को भी देखिए।

संवेदनाका एक अस्पष्ट आधार प्रदान करता है; और वस्तुओं, आकारों, रंगों, स्वरों तथा शोर-गुलके अधिक निश्चित प्रत्यक्षीकरणका भार त्वक्ष पर छोड़ देता है। परन्तु यह अभी एक कल्पना है। जो बात हम निश्चित रूपसे जानते हैं, वह यह है कि प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय केवल अन्तर्मस्तिष्कके माध्यम से त्वक्ष तक अपने सन्देश पहुंचाती है। प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय अन्तर्मस्तिष्कके एक अलग भागसे सम्बन्धित है। इनके स्थान वहां बहुत सूक्ष्म होते हैं।

त्वक्-पेशी-संवेदनाधिष्ठान[3]. चेष्टाधिष्ठानके ठीक पीछे एक संकरी पट्टी है जिसे «पश्चमाध्यमिक सिकुड़न[4]» कहते हैं। यह पट्टी शरीरकी संवेदनाओं अर्थात् त्वचा और मांस-पेशियोंकी संवेदनाओंके लिए मुख्य त्वक्षीय केन्द्र[5] है। यहां पर चोट पहुंचनेसे त्वचा या अंगोंकी संवेदना नष्ट हो जाती है। इसमें भी अंगोंके प्रतिनिधित्वका क्रम चेष्टाधिष्ठानके समान ही होता है—टांगका सम्बन्ध चोटीसे है और चेहरेका सम्बन्ध नीचेसे।

श्रवणाधिष्ठान[6]. बोध-तन्तु श्रवणेन्द्रियोंसे अन्तर्मस्तिष्क की ओर जाते हैं, जहांसे सन्देश-प्रसारक तन्तु त्वक्षके श्रवणाधिष्ठान—*शंख खंड[7] के एक छोटे-से भाग*—तक पहुंचते हैं। यदि दोनों गोलार्धोंका यह छोटा-सा क्षेत्र नष्ट कर दिया जाय, तो व्यक्ति बहरा हो जाता है। किन्तु ऐसे आघात बहुत कम पहुंचते हैं।

दृष्टि-अधिष्ठान. आंखके दृष्टि-पटल[8] से बोध-स्नायु-तन्तु अन्तर्मस्तिष्कके किसी भाग तक जाते हैं और वहांसे सन्देश-प्रसारक तन्तु «पश्चकपाल-खंड» के एक सीमित क्षेत्र तक जाते हैं। यह सीमित क्षेत्र ही दृश्य-आदातृ-केन्द्र—त्वक्षका प्रमुख दृष्टि-केन्द्र है।

मस्तिष्कके साथ नेत्रोंका सम्बन्ध इतना दिलचस्प है कि इसका वर्णन अधिक विस्तारसे करना आवश्यक है (देखिए आकृति ५९)। प्रत्येक आंखसे निकलकर बोध-तन्तु बड़े दृष्टि स्नायु[9] में जा मिलते हैं। दोनों दृष्टि-स्नायु एक-दूसरेके निकट आते हैं और लगता है कि वे एक-दूसरेको पार करते हुए जाते हैं; परन्तु तन्तुओंकी खोज-विधिसे पता चलता है कि वे एक-दूसरेको पूर्णतया काटते हुए नहीं जाते। प्रत्येक आंखके भीतरी आधे भागके तन्तु एक-दूसरेको काटते हैं, जब कि बाहरी आधे भागके तन्तु अपनी ही ओर रहते हैं। इसलिए दोनों दृष्टि-पटलोंके दक्षिण अर्धभागोंके तन्तु अन्तर्मस्तिष्क के दायें भागमें जाते हैं और सन्देश-प्रसारक तन्तु इस मार्गको आगे बढ़ाते हुए दायें गोलार्ध तक ले जाते हैं। दायें गोलार्ध का दृष्टि-अधिष्ठान दोनों दृष्टि-पटलोंके दक्षिण अर्धभागोंसे

[1] sensory areas of the cortex [2] relay fibres [3] somaesthetic area [4] post central gyrus [5] cortical centre
[6] auditory area [7] *temporal lobe* [8] *retina* [9] *optic nerve*

संयुक्त सन्देश प्राप्त करता है। यही बात बायें भागके विषयमें भी है(१२)।

आइए, अब इस बात पर जरा विचार करें कि सिरमें आंखों की स्थिति क्या है। मनुष्यमें वे सामनेकी ओर देखती हुई होती हैं, इसलिए वे लगभग एक-सा दृश्य प्राप्त करती हैं। (इसकी आजमाइश करके देखिए!) अक्षिगोलकके भीतर प्रकाशकी किरणोंके एक-दूसरेको पार करनेके कारण दृश्य-क्षेत्रका दाहिना पक्ष प्रत्येक दृष्टि-पटलके वाम अर्धभाग द्वारा देखा जाता है; और इसीलिए तन्तुओंके सम्बन्धोंके अनुसार वाम गोलार्ध द्वारा। जिस प्रकार गोलार्धोंमें और शरीरके दायें तथा बायें अर्धभागोंमें व्यत्यस्त सम्बन्ध[१] है, उसी प्रकार गोलार्धोंमें और दृश्य-क्षेत्र[२] के दायें तथा बायें अर्धभागमें व्यत्यस्त सम्बन्ध है। वाम गोलार्धका सम्बन्ध मुख्यतः दायीं ओरकी सभी चीजोंसे होता है और दक्षिण गोलार्धका सम्बन्ध बायीं ओरकी सभी चीजोंसे।

इसलिए प्रश्न उठता है कि त्वक्षके दायें दृष्टि-अधिष्ठानके नष्ट हो जानेके फलस्वरूप किस तरहका अन्धापन होगा? यह अन्धापन एक आंखका न होगा, बल्कि प्रत्येक दृष्टि-पटलके दायें अर्धभागका अन्धापन होगा, अर्थात् दृश्य-क्षेत्रका बायां अर्धभाग नहीं दिखायी देगा। इस प्रकारके अन्धेपनको «अर्ध-अन्धत्व[३]» कहते हैं। प्रमुख दृष्टि-अधिष्ठानको हल्की चोटें पहुंचनेसे, जैसे युद्धमें गोलीके घावोंसे चोट पहुंच जाती है, दृश्य-क्षेत्रके छोटे-छोटे भाग नहीं दिखायी देते। इस प्रकारकी, चोटोंका अध्ययन करनेसे तथा तन्तुओंकी खोजकी विधिसे हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि दृष्टि-पटलका प्रत्येक भाग दृष्टि-अधिष्ठानके एक भिन्न भागसे सम्बन्धित है। दृष्टि-पटलका केन्द्रीय भाग जहां दृष्टि सर्वाधिक स्पष्ट होती है, दृष्टि-अधिष्ठानके अधिकांशसे सम्बन्धित होता है।

इस प्रकार प्रारम्भिक दृष्टि-अधिष्ठानमें दो भाग होते हैं; एक भाग प्रत्येक पश्चकपाल खंडमें होता है। यह कुतूहलजनक लगेगा कि इस विभाजनके कारण दृश्य-क्षेत्रकी अविच्छिन्नता में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती— क्षेत्रके दायें और बायें अर्धभागमें कोई रेखा या विच्छेद नहीं दिखायी देता। दृश्य-क्षेत्रकी यह सम्बद्धता बहुसंख्यक तन्तुओंके कारण ही सम्भव हो पाती है जो दायें और बायें दृष्टि-अधिष्ठानोंको सम्बन्धित करते हैं।

दृष्टि-अधिष्ठानका अध्ययन करनेकी एक और विधि है जिस के परिणाम उल्लेखनीय और विश्वसनीय हैं। जब खोपड़ीको खोल दिया जाता है और पश्चकपाल-खंडकी सूजन[४] हटानेके लिए उसे देखा जाता है, तब त्वक्षके कुछ स्थानों पर निर्भीक-तया क्षीण विद्युत् धाराका प्रयोग किया जा सकता है। रोगी
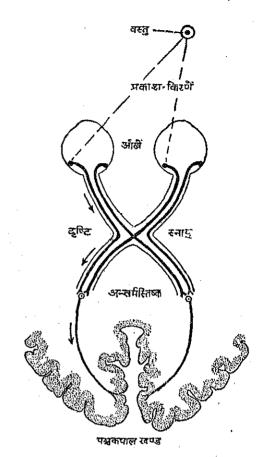
आकृति ५९. किसी दृष्टिगत वस्तुसे मस्तिष्कके दृष्टि-क्षेत्र तक जानेवाला प्रकाश और स्नायु-आवेगोंका पथ। आंखें ठीक सामनेकी ओर देखती हैं। दायीं ओर पड़ी हुई कोई वस्तु प्रत्येक दृष्टिपटलके वाम-अर्धांश, अन्तर्मस्तिष्कके वामपक्ष और बायें पश्च-खंडको प्रभावित करती है।

(जो स्थानीय अचेतनता[५] की अवस्थामें रखा जाता है) अपने अनुभवका वर्णन कर सकता है। हम इस धारणाके आधार पर कि मस्तिष्कको बहुत 'संवेदनाशील' होना चाहिए, शीघ्रतासे यह मान सकते हैं कि वह पीड़ाकी सूचना देगा। किन्तु नहीं, दृष्टि-अधिष्ठानको उत्तेजना मिलने पर दृष्टि-संवेदना ही प्राप्त होनी चाहिए। इन विषयोंके एक अग्रणी विद्यार्थीने (३) एक विशेषतः स्पष्ट मामलेमें निम्नलिखित सूचना दी है: दृष्टि-अधिष्ठानके पिछले भागको उत्तेजना पहुंचाने पर व्यक्तिने अपने ठीक सामने एक तेज रोशनी देखी; दृष्टि-अधिष्ठानके ऊपरी भागमें उत्तेजना पहुंचाने पर व्यक्तिको नीचे कोई चीज जलती-बुझती-सी दिखायी दी;

[१] crossed relation [२] field of view [३] hemianopsia [४] tumour [५] local anaesthetic

निचले भागमें उत्तेजना पहुंचाने पर व्यक्तिको दृश्य-क्षेत्र के ऊपरी भागमें वही चीज दिखायी दी। स्थानोंका यह निर्धारण अन्य विधियों द्वारा प्राप्त परिणामोंसे सामंजस्य रखता है।

जब प्रारम्भिक दृष्टि-अधिष्ठान से बाहरकी ओर, किन्तु पश्चकपाल-खंड के निकटवर्ती भागों पर विद्युत्-उत्तेजना दी गयी, तब व्यक्ति ने अपेक्षाकृत अधिक सार्थक दृश्योंको देखने की सूचना दी। इन दृश्योंमें से कुछ थे——लपटें, तारे, चमकदार गोले, तितलियां और विविध वस्तुएं तथा व्यक्ति भी। पश्चकपाल-खंड का अधिकांश किसी न किसी रूपमें दृष्टिसे सम्बन्धित है। प्रारम्भिक दृष्टि-अधिष्ठान, जो दृष्टि-पटल से *स्नायु-आवेग*[१] प्राप्त करता है, छोटे-छोटे *संयोजक तन्तुओं*के द्वारा उत्तेजनको पड़ोसके क्षेत्रोंमें भेज देता है और ये पड़ोसी क्षत्र देखी गयी वस्तुको समझनेमें सहायता करते हैं। यदि पश्चकपाल-खंड को क्षति पहुंचाई जाय, किन्तु प्रारम्भिक दृष्टि-अधिष्ठान उससे किसी भांति अछूता रह जाय, तो अन्धापन नहीं आयेगा, परन्तु इससे वस्तुओंको पहचानने, पढ़ने, रंगोंका भेद समझने या आंखोंके द्वारा मार्ग ढूंढ़नेकी योग्यता में व्यक्तिको अवश्य हानि होगी।

संयोजनकारी[२] अथवा संगठनकारी क्षेत्र

प्रारम्भिक संवेदनाधिष्ठान[३] अपेक्षाकृत छोटे होते हैं और मनुष्यके समस्त त्वक्षके आकारकी तुलनामें चेष्टाधिष्ठान भी बड़ा नहीं होता। ये प्रारम्भिक क्षेत्र सांवेदनिक सामग्रीको ग्रहण करते हैं और गति-सम्बन्धी प्रतिक्रिओंको बाहर भेजते हैं। किन्तु, यदि व्यक्ति बाह्य परिवेशके साथ प्रभावपूर्ण रीतिसे व्यवहार करना चाहता है, तो इन सांवेदनिक तथ्यों और गति-सम्बन्धी प्रतिक्रियाओंका संगठित होना आवश्यक है। अधिकांश त्वक्ष संगठन करनेका यह प्रमुख कार्य ही सँभालता है।
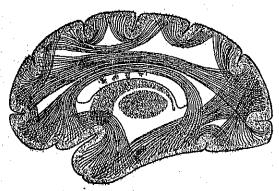
आकृति ६०. वृहत् मस्तिष्कीय वल्क के एक भागको दूसरे भागसे जोड़नेवाले लांगूलोंका एक नमूना। इस तरहके संयोजक तन्तु लाखोंकी संख्यामें होते हैं। ये या तो उसी गोलार्धके निकटवर्ती और दूरवर्ती भागोंको सम्बद्ध करते हैं या महासंयोजक (कैलोसुम) के जरिये एक गोलार्धको दूसरेसे जोड़ते हैं।

हम स्मृति, तर्क, अनुभूति और संकल्प आदि 'शक्तियों'[४] के स्थान त्वक्षके विभिन्न भागोंमें पानेकी आशा कर सकते हैं। परन्तु इन शक्तियोंके कोई निश्चित स्थान हैं, इसका प्रमाण अभी तक नहीं मिल सका है। त्वक्षके विभिन्न भागोंके लिए जो कार्य निर्धारित रहते हैं, वे एक दूसरे ही नियमके अनुसार होते हैं, जैसाकि अभी हमने पश्चकपाल-खंड में देखा है। प्रारम्भिक दृष्टि-अधिष्ठानके निकट त्वक्षका जो भाग पड़ता है, वह आंखोंके सामने प्रस्तुत तथ्योंको *समझनेकी* चेष्टा करता है; और श्रवणाधिष्ठानका निकटवर्ती त्वक्षका भाग श्रवणेन्द्रियकी सामग्रीको समझनेका प्रयत्न करता है। चेष्टाधिष्ठान के आस-पास का त्वक्ष गतियोंका संयोजन करता है, ताकि किन्हीं लक्ष्यों तक पहुंचना और कुछ परिणाम उत्पन्न करना सम्भव हो सके। प्रारम्भिक अधिष्ठानोंके निकटस्थ त्वक्ष के विषयमें इतनी बातें बता देनेके बाद भी कुछ भाग ऐसे रह जाते हैं जिनके विषयमें बताना आवश्यक है। ऐसे भागोंमें दो बड़े 'संयोजक-क्षेत्र' हैं, जिनमें से एक कई संवेदनाधिष्ठानों के *मध्य पार्श्वकपाल-खंड, शंख खंड और पश्चकपाल-खंड* में अवस्थित है। दूसरा भाग अग्र-खंड में चेष्टाधिष्ठान और चेष्टाधिष्ठानसे आगेकी ओर स्थित है। आदमीके मस्तिष्क में चोट पहुंचनेके मामलोंसे इन क्षेत्रोंके कार्यके सम्बन्धमें कुछ जानकारी प्राप्त हो सकी है। इन आघातोंके परिणामोंका वर्णन कई शीर्षकोंके अन्तर्गत किया जाता है (११)।

वाक्भ्रंश[५]. यह वाणी और भाषा के उपयोगकी त्रुटियों या हानिसे सम्बन्धित रोग है। इसका कारण न तो सांवेदनिक क्षति है, और न चेष्टा-स्तम्भ[६]। मस्तिष्कमें चोट पहुंच जानेके कारण सार्थक सम्बद्ध वाक्य बोलने या बोली हुई भाषाको समझनेमें बड़ी कठिनाई उपस्थित हो सकती है। वाणी का एक केन्द्र *श्रवणाधिष्ठानसे थोड़ी ही दूर पर शंख-खंड*[७] और पार्श्वकपाल-खंड में पाया जाता है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि वाणी मुख्यतः श्रवणेन्द्रियसे सम्बन्धित क्रिया है। शिशु सार्थक शब्दोच्चारणकी क्षमता प्राप्त करने के पूर्व ही लोगोंके शब्द समझने लगता है। इसके अतिरिक्त सामान्य भाषा-सम्बन्धी प्रक्रियामें श्रवण-क्रिया का कितना महत्त्व है, यह इस तथ्यसे जाना जा सकता है कि बहरे बालक बिना किसी विशेष प्रशिक्षणके कभी बोलना नहीं सीख

[१] nerve impulses [२] combining [३] primary sensory areas [४] faculties [५] aphasia [६] paralysis [७] temporal lobe

पाते। श्रवणाधिष्ठानके आस-पास चोट पहुंच जानेसे कोई व्यक्ति बोली हुई भाषाको समझनेमें या अपना मन्तव्य प्रकट करनेके लिए उपयुक्त शब्दोंको प्राप्त करनेमें असमर्थ रह सकता है, भले ही वह काफ़ी धाराप्रवाह बोलनेकी क्षमता रखता हो। एक वृद्ध सज्जन ने यह कहकर अपने मित्रोंको घपलेमें डाल दिया कि 'मुझे जाकर अपना छाता धो डालना चाहिए'। लोगोंकी परेशानी तब दूर हुई जब उन्हें मालूम हुआ कि वास्तवमें महाशय अपने सिरके बाल छंटवाना चाहते थे।

इस बोधसम्बन्धी वाक्-भ्रंश[१] के अतिरिक्त एक चेष्टा-सम्बन्धी वाक्-भ्रंश भी होता है, जिसमें शब्दोंको मुंहसे बाहर निकालनेमें बड़ी कठिनाई होती है। कुछ रोगी आम बोल-चालके एक या दो शब्दों (जैसे 'हां' और 'नहीं' और सौजन्यके शब्दों) को ही बोल सकते हैं; कुछ रोगी अलग-अलग शब्दोंका उच्चारण तो करसकते हैं, परन्तु वाक्योंके रूपमें उन्हें मिला कर नहीं बोल सकते। ऐसे मामलोंमें देखा गया है कि पूर्व-चेष्टाधिष्ठानके निचले भागमें चोट पहुंचनेके कारण ऐसा हुआ है। सामान्यतया मस्तिष्क का आघात एक ही स्थान पर केन्द्रित न रहकर व्यापक होता है, इसलिए आघातके कारण व्यक्तिकी बौद्धिक प्रक्रियाएं कई प्रकारसे अस्तव्यस्त हो जाती हैं।

वाक्-भ्रंशके बारेमें एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि त्वक्ष में भाषाका स्थान एक ही ओर होता है। यद्यपि आधारभूत सांवेदनिक और चेष्टा-सम्बन्धी कार्योंका प्रतिनिधित्व दोनों गोलार्धोंमें होता है, तो भी भाषा-सम्बन्धी क्रियाओंका नियंत्रण केवल एक गोलार्धमें ही होता है। वह गोलार्ध दायें हाथसे काम करनेवाले लोगोंमें बायीं ओर का होता है। इस प्रकार बायें गोलार्ध पर चोट पहुंचने पर ही वाक्-भ्रंश नामक रोग उत्पन्न होता है। दूसरे गोलार्धमें यदि वैसी ही चोट वैसे ही स्थान पर लगे, तो वह व्यक्तिकी भाषा पर कोई प्रभाव न डालेगी (१३)।

चेष्टारोध[२] का मतलब है 'करने' की योग्यताका विनष्ट हो जाना। यह रोग वाक्-भ्रंशके समान ही होता है। इस रोगसे पीड़ित व्यक्तिको एक सिगार और एक दियासलाई पकड़ा दीजिए, तो वह समझ नहीं पायेगा कि इन चीज़ोंका वह क्या उपयोग करे, हालांकि वह सभी आवश्यक अकेली हरकतों (गतियों) को करनेमें समर्थ होता है। मस्तिष्कमें कहीं भी चोट पहुंच सकती है, परन्तु सामान्यतया क्षतिग्रस्त भाग चेष्टाधिष्ठानसे बहुत दूर नहीं होता।

प्रज्ञारोध[३]. जानने या प्रत्यक्षीकरणकी योग्यताके ह्रास को प्रज्ञारोध कहते हैं। दृष्टि-सम्बन्धी प्रज्ञारोधम देखी हुई वस्तुओंको पहचानने, पढ़ने, आकार और रंग पहचाननेकी असमर्थताका समावेश होता है। पश्चकपाल-खंडमें आघात पहुंचनेके कारण यह रोग होता है। श्रवण-सम्बन्धी प्रज्ञारोध में ध्वनियोंकी पहचान नहीं हो पाती और पहिले की भांति संगीतका भाव समझने या उसकी आलोचना करनेमें कठिनाई होती है। यहां पर चोट श्रवणाधिष्ठानके आस-पास होती है। जब चोट त्वक्-पेशी-संवेदनाधिष्ठान[४] के ठीक पीछे लगी होती है, तब व्यक्ति अपने हाथमें रखी हुई वस्तुओंको नहीं पहचान पाता या उनको उठाकर उनके वजनका अन्दाज़ नहीं कर सकता। प्रज्ञारोधके किसी भी रूपमें व्यक्ति देखता, सुनता या अनुभव करता है, परन्तु सांवेदनिक सामग्री[५] का उपयोग चीज़ोंको समझनेमें नहीं करता।

जैसा कि हम कुछ क्षण पहिले ही कह चुके हैं, भाषा मुख्यतः सुननेसे सम्बन्धित है और गौण रूपसे चेष्टा से। स्पष्ट है कि कुछ ध्वनियोंका उच्चारण कर देने मात्रका नाम भाषा नहीं है। भाषा सन्देश पहुंचानेका एक साधन है और उसकी ध्वनियां सार्थक होती हैं। भाषा प्रतीकोंसे बनी होती है और मस्तिष्कमें आघात पहुंच जानेसे, जिससे वाक्भ्रंश हो सकता है, रोगी प्रतीकोंको समझनेकी योग्यता खो बैठता है। इसी प्रकार प्रज्ञारोधके विषयमें यह कहा जासकता है कि यह चिह्नों और प्रतीकोंका अर्थ समझ पानेकी अयोग्यता का नाम है। चेष्टारोध[२] के विषयमें यह कह सकते हैं कि यह व्यक्तिके मन्तव्यों और अभिप्रायोंका सम्बन्ध ठोस कार्योंके साथ जोड़ पानेकी असमर्थताका नाम है। स्मरण रहे, इनको पूरा करने के लिए ठोस कार्योंकी बड़ी आवश्यकता होती है। प्रतीक और कुशल चेष्टाएं बुद्धिमत्तापूर्ण व्यवहारके साधन हैं। प्रत्यक्षतः ये साधन त्वक्ष[६] के निश्चित भागों पर निर्भर करते हैं, बुद्धिमत्तापूर्ण व्यवहारमें उनका उपयोग किस प्रकार होता है, यह इस बात पर निर्भर है कि सम्पूर्ण त्वक्षकी क्रियाओंमें कितनी सम्बद्धता है।

अग्रखंड या ललाट खंड[७]. जब गॉलने अपने मस्तिष्क-सामुद्रिक-सिद्धान्तमें ललाटके भीतर बुद्धिका स्थान निर्धारित किया, तब उसने जनसाधारणमें प्रचलित धारणाका अनुसरण करते हुए ही ऐसा किया। हम प्रायः उन्नत ललाट वाले व्यक्तियोंको प्रज्ञायुक्त समझते हैं, और अपनी बातकी पुष्टि में अवनत ललाट वाले पशुओंका उदाहरण पेश करते हैं। वस्तुतः मानव-मस्तिष्क का अग्रखंड पशु-मस्तिष्क के अग्रखंडसे बहुत बड़ा है। फिर भी हमें अपने-आपसे पूछना चाहिए कि क्या मनुष्य इसीलिए बड़ा है कि उसकी बुद्धि श्रेष्ठ है?

[१] aphasia [२] apraxia [३] agnosia [४] somaesthetic area [५] sensory data [६] cortex
[७] frontal lobes

क्या यह बात महत्त्वकी नहीं है कि वह किस प्रकार अपने कार्योंकी व्यवस्था करता है, दूरस्थ लक्ष्योंको प्राप्त करनेकी चेष्टा करता है और अपनी चेष्टाओंको योजनाबद्ध करता है? अग्रखंडोंका सम्बन्ध ज्ञान[1] की अपेक्षा व्यवस्था[2] से अधिक हो सकता है। सम्पूर्ण अग्रखंड चेष्टाधिष्ठानका सहायक हो सकता है; वह उच्च चेष्टाधिष्ठानके रूपमें चेष्टाओंको बड़ी इकाइयोंमें संगठित कर सकता है।

कभी-कभी अग्रखंडमें चोट पहुंचनेसे मनुष्यके व्यवहार या उसकी बौद्धिक प्रक्रियाओंमें बहुत मामूली परिवर्तन ही होता है। कभी-कभी तो आश्चर्य होने लगता है कि मस्तिष्क के इस भागका विशाल ललाटको भरनेके अतिरिक्त भी कोई महत्त्वपूर्ण कार्य है क्या? इसमें चोट पहुंचने पर जो परिवर्तन देखे गये हैं, वे व्यवस्था और चरित्रके अन्तर्गत हैं, प्रज्ञा और ज्ञानके अन्तर्गत नहीं।

अग्रखंडोंको निकाल देनेके बाद व्यवहारमें क्या परिवर्तन होता है? (२). न्यूयॉर्क स्टॉक एक्सचेंजका एक सफल दलाल (ब्रोकर) चालीस वर्षकी अवस्थामें सिरकी तीव्र पीड़ा से पीड़ित रहने लगा। वह खोया-खोया-सा रहता, और उसकी स्मरण शक्ति भी बहुत क्षीण हो गयी। रोग इतना बढ़ा कि उसकी चेतना काफ़ी दिनोंके लिए लुप्त हो गयी। ऍक्स-रे परीक्षासे पता चला कि उसके दोनों अग्रखंडोंमें सूजन[3] आ गयी है। उसके मस्तिष्ककी चीर-फाड़की गई। यद्यपि यह कार्य बहुत साहसका लगेगा, परन्तु पिछली कुछ दशाब्दियों में ऐसी कई चीर-फाड़ सफलतापूर्वक हो चुकी हैं। उस दलालकी खोपड़ी खोल दी गयी और पूर्वचेष्टाधिष्ठानसे आगे अग्रखंडोंको निकाल दिया गया (५)। इस बातकी सावधानी बरती गयी कि चेष्टाधिष्ठान, पूर्वचेष्टाधिष्ठान तथा भाषा बोलनेके केन्द्र[4] को न छेड़ा जाय।

चीर-फाड़के बाद रोगी बहुत कुछ स्वस्थ हो गया और सिर दर्द एवं अन्य असह्य लक्षण भी तत्काल दूर हो गये। उसने अपना पुराना पेशा अपनानेका कोई इरादा नहीं प्रकट किया। कई अन्य बातोंमें वह पहिलेसे काफ़ी भिन्न हो गया था। उसे अपने मित्रोंकी भावनाओंकी कोई परवाह न थी और गम्भीर तथा लगातार प्रयत्न करनेमें भी वह असमर्थ था। फिर से पहिलेके ढर्रे पर लानेके लिए उसको घरमें और अन्यत्र भी चिकित्सकोंकी देख-रेखमें रखा गया। उसके व्यवहारमें कुछ उन्नति दिखायी पड़ी, परन्तु इतनी नहीं कि वह व्यापारमें पुनः जुट सके। इस रोगीके मामलेमें हम इसलिए दिलचस्पी ले रहे हैं कि यह मालूम किया जा सके कि मस्तिष्कके पूर्व अग्रखंडको हटा देनेसे रोगीको क्या बौद्धिक या व्यवहार-सम्बन्धी क्षतियां हुईं।

व्यापारमें अब उसे कोई उत्साह न था। फिर भी यह नहीं कह सकते कि वह निष्क्रिय हो गया था। वह मामूली बातोंमें अतिक्रियाशील दिखायी देता था; चुपचाप बैठना उसे पसन्द न था; कमरेमें टहलना या नाचना उसे अधिक पसन्द था; हर समय गाना, सीटी बजाना और शोर मचाना उसकी ख़ास आदत हो गयी थी।

काम-प्रवृत्ति[5] और आत्मोन्नयन[6] के स्वाभाविक आवेगों पर वह अब पहिलेकी भांति नियंत्रण और संयम नहीं रख पाता था। काम-चर्चामें उसे रस आने लगा और तत्सम्बन्धी हँसी-मज़ाक़में वह खुलकर भाग लेने लगा। किन्तु दाम्पत्य व्यवहारकी गम्भीरता लुप्त हो गयी थी और परायी स्त्रियोंसे छेड़छाड़से आगे जानेकी प्रवृत्ति भी नहीं रही थी। खेल-कूद, नृत्य और व्यापारमें अपनी सफलताकी डींग हांक कर वह आत्मोन्नयनकी इच्छाकी तुष्टि कर लेता था। जिस किसी कामका ज़िक्र उसके सामने किया जाता, उसी को कर सकने की योग्यता वह अपनेमें बताता था। वह बहुधा लोगोंको धमकियां देता, पर कार्यान्वित एक बार भी न करता था।

मनोवैज्ञानिकके परीक्षा-कक्षमें वह अतिक्रियाशील[7], मज़ाक़पसन्द[8] और चंचल चित्त[9] दिखायी देता था। परीक्षाओं को पूरा करनेके लिए उसे बार-बार समझाना, पुचकारना पड़ता था। इन बाधा उत्पन्न करनेवाली बातोंके लिए गुंजाइश रखकर देखा गया कि उसकी बुद्धि सामान्य[10] थी। वह विशेषतः वाक्य-पूर्ति, चित्र-पूर्ति और इसी तरहकी अन्य परीक्षाओंमें फिसड्डी साबित होता था, जिनमें सार्थकता लानेके लिए वस्तुओं को एक साथ मिलाकर रखनेकी आवश्यकता होती है। किसी कार्यको करनेमें वह जितनी बुद्धिका उपयोग करता था, ऐसा लगता था कि उसके पास उससे अधिक बौद्धिक योग्यता है।

वास्तवमें उस रोगी ने खोया क्या था? उसने किसी भी शक्ति[11], जैसे—निरीक्षण, अवधान, स्मृति या तर्कको चीर-फाड़के बाद नहीं खोया। किन्तु इनमें से कोई भी उस सीमा तक व्यक्त नहीं हो सकी जिस सीमा तक शायद चीर-फाड़के पहिले होती थी। अन्वेषक ने यह निष्कर्ष निकाला कि रोगी में विभिन्न मानसिक प्रक्रियाओंका एक साथ संयोजन करनेकी शक्ति कम हो गयी है। उसकी संश्लेषणात्मक[12] या संयोजनात्मक[13] योग्यताका ह्रास हो गया था। चीर-फाड़के बाद वह दलाल अपने संवेगोंका जो मक्त प्रकाशन करने लगा था, वह संवेगोंकी अधिकताके कारण न था, बल्कि संयमके अभाव के कारण था, और संयमका यह अभाव संश्लेषणात्मक योग्यताके ह्रासके कारण उत्पन्न हुआ था। इस योग्यताके

[1] knowledge [2] management [3] tumour [4] motor speech center [5] sex [6] self-aggrandizement [7] over-active [8] facetious [9] distractible [10] normal [11] faculty [12] gsynthesizin [13] combining

बिना व्यक्ति अपनी चेष्टाओंको योजनाबद्ध नहीं कर सकता और न अपने आवेगों[1] को संयत कर सकता है। फल यह होता है कि उसकी अव्यवस्थित क्रियाएं और अनियंत्रित आवेग उसको अवांछित परिणामोंकी ओर ले जाते हैं। संश्लेषणात्मक योग्यताके अभावमें वह आवेगशील और चंचलचित्त हो जाता है और अपने व्यवहारको सामंजस्यपूर्वक एक दूरस्थ लक्ष्यकी ओर नहीं मोड़ पाता। अग्रखंड-सम्बन्धी आघातोंके दूसरे मामलोंमें लक्षण कुछ-कुछ भिन्न होते हैं, परन्तु उनको उपर्युक्त नियमके अन्तर्गत किया जा सकता है। यों इस विषयके अलग-अलग विद्यार्थी अलग-अलग ढंगसे अपनी व्याख्या प्रस्तुत करते हैं।

हाल ही में मस्तिष्क-शल्य चिकित्सकों[2] ने पता लगाया है कि अग्रखंडकी कुछ मस्तिष्क-ऊतिको काटकर या अलग करके कतिपय मानसिक रोगोंके लक्षणोंको किसी हद तक दूर किया जासकता है (५)। कुछ रोगियोंकी मानसिक प्रक्रियाएं इतनी अस्त-व्यस्त हो चुकी होती हैं कि वे सदा अति चिन्ता, औदासीन्य या विषादके शिकार रहते हैं। यदि ऐसे रोगियों के मस्तिष्कके अग्रखंडका शल्य-कर्म किया जा सके, तो उनके ये लक्षण दूर हो जायेंगे और साधारण परिस्थितियोंका सामना करनेकी उनकी योग्यताओंमें भी कोई विशेष कमी न होगी।

दो प्रकार के संश्लेषण[3] या संयोजन. मस्तिष्क को दो प्रकारके संश्लेषण या संयोजन करने पड़ते हैं। एक को हम *अन्तर्गामी* और दूसरेको *बहिर्गामी* कह सकते हैं। जब आप किसी व्यक्तिको पहचानते हैं, तो उत्तेजनाका स्वरूप बहुत जटिल होता है। आपके दृष्टिपटल पर प्रतिबिम्बित चित्रके कई भाग होते हैं। उसको एक व्यक्तिके रूपमें देखते समय आप कई भागोंको एक में मिला देते हैं, अनेक उत्तेजनाओंके प्रति आप *संयुक्त प्रतिक्रिया*[4] करते हैं। जब आप कोई चलचित्र (फ़िल्म) देख रहे होते हैं, तब आपके दृष्टि-पटल पर विभिन्न उत्तेजनाएं एक अविच्छिन्न क्रम[5] में पड़ती हैं, परन्तु आप केवल एक अविच्छिन्न संयुक्त गति या क्रिया 'देखते' हैं। कोई संगीत सुनते समय आपका कान एक के बाद दूसरी ध्वनि ग्रहण करता है, किन्तु आप एक राग 'सुनते' हैं जिसका स्वरूप इकाईका होता है। ये सभी उदाहरण अन्तर्गामी संश्लेषणके हैं। इसमें उत्तेजनाकी अनेकता और प्रतिक्रियाकी एकता दिखायी देती है।

बहिर्गामी संश्लेषणका उदाहरण प्रत्येक सम्बद्ध या संगठित गतिमें मिलता है, क्योंकि कई मांस-पेशियोंको इसमें क्रियाशील रहना पड़ता है। मांस-पेशियोंकी यह क्रियाशीलता या तो किसी एक उत्तेजनाकी प्रतिक्रियास्वरूप होती है, जैसाकि प्रतिक्षेप क्रिया[6] में होता है, या किसी एक इरादेको कार्यान्वित[7] करनेके लिए। गेंदको पकड़नेका इरादा करते ही आपके दोनों हाथ एक साथ उचित स्थितिमें आ जाते हैं। दरवाजा खोलने का आपका अभिप्राय आपसे कई गतियां (हरकतें) कराता है और अन्तमें वांछित फलकी प्राप्ति होती है। बहिर्गामी संश्लेषणमें एक हेतु[8] से बहुत-से फल उत्पन्न होते हैं; एक कइयोंको पैदा करता है।

स्पष्ट है कि दोनों प्रकारके संश्लेषणोंमें भिन्न तरहके स्नायविक व्यापारों[9] की आवश्यकता होती है। अन्तर्गामी संश्लेषणके लिए एक संग्रहकारी यंत्रकी आवश्यकता है और बहिर्गामी संश्लेषणके लिए एक वितरणकारी यंत्रकी। ऐसे व्यापारोंके प्रारम्भिक नियमोंका वर्णन पहिले ही किया जा चुका है। जब कई स्नायु-तन्तु किसी एक कोशा पर आकर मिलते हैं, जैसा कि प्रत्येक स्नायु-केन्द्र पर होता है, तब संग्रहकारी यंत्रका स्वरूप देखनेको मिलता है। जब एक लांगूल शाखाओंमें बंटता है और कई स्नायु-कोशाओंको उत्तेजित करता है, तब हमें वितरणकारी यंत्रका स्वरूप दिखाई देता है।

मस्तिष्कके दो विशाल संयोजक क्षेत्रोंमें से एक, अर्थात् विभिन्न संवेदनाधिष्ठानोंके बीचमें स्थित पृष्ठभागका संयोजक क्षेत्र, सम्भवतः संग्रहकारी प्रकारकी संश्लेषण-क्रिया सम्पन्न करता है। इस प्रकार इसका सम्बन्ध जानने और समझनेसे होगा। सम्भवतः अग्रभागका संयोजक क्षेत्र संयोजनकी वितरणकारी पद्धतिसे सम्बन्धित हो सकता है। इस प्रकार यह योजना, संगठन और व्यवस्था-क्रिया से सम्बन्ध रखेगा। इन दो प्रकारके संश्लेषणोंका सम्बन्ध दो विशाल संयोजक क्षेत्रोंसे होना बड़ा आकर्षक जान पड़ता है, परन्तु इसका पूरा प्रमाण अभी किसी भी तरह नहीं मिल सका है।

सम्पूर्ण त्वक्ष के साधारण कार्य[10]

मस्तिष्कके छोटे क्षेत्रोंके दो विशेष कार्य हैं—देखना और सुनना। सम्भवतः दोनों प्रकारके संश्लेषण मस्तिष्कके किन्हीं बड़े क्षेत्रोंके कार्य हैं। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण त्वक्षके भी कुछ साधारण कार्य हैं। शायद एक साधारण कार्य है: सीखना और याद करना। यद्यपि इसमें से कुछ निचले केन्द्रोंमें भी हो सकता है, तो भी वृहत् मस्तिष्कीय त्वक्ष 'सीखने' से मुख्यतः सम्बन्धित स्नायु-संस्थानका एक अंग है। सन् १९०० के बादसे पशुओंके सीखनेका अध्ययन बहुत मनोयोगपूर्वक हो रहा है और सामान्य मनोविज्ञानको उससे बहुत महत्वपूर्ण

[1] impulses　[2] brain surgeons　[3] synthesis　[4] unitary response　[5] rapid　[6] reflex action　[7] unitary intention　[8] unitary antecedent　[9] neural mechanisms　[10] general functions of the whole cortex

सामग्री भी प्राप्त हुई है। इसमें से कुछ का उल्लेख आगेके किसी प्रकरणमें किया जायगा। इसने त्वक्ष-सम्बन्धी हमारे ज्ञानमें भी महत्त्वपूर्ण वृद्धि की है। इस अध्ययनकी प्रयोगकी पद्धतिमें ये दोनों बातें आ जाती हैं—पशुको सिखाना और उसके मस्तिष्कके किसी स्थान पर आघात पहुंचाना (४)। एक पशुको कोई कार्य करनेकी शिक्षा दी जाती है। इसके बाद उसके मस्तिष्कका कोई भाग अलग कर दिया जाता है और पशुकी परीक्षा यह देखनेके लिए की जाती है कि वह क्या अब भी सीखे हुए कार्यको कर सकता है।

यह पद्धति तो अच्छी जान पड़ती है, परन्तु इसके परिणाम विस्मयमें डाल देने वाले हैं। उदाहरणके लिए, एक बन्दरके मस्तिष्कके अग्रखंडको निकालनेके पहिले उसे किसी लक्ष्य तक जाना या किसी दरवाज़ेकी सांकल निकालना आदि कार्य सिखाये गये। शल्य-कर्मके बाद वह इन सीखे हुए कार्योंको «भूल गया», किन्तु यदि उसे बादमें फिर शिक्षा दी जाय, तो वह उनको «पुनः सीख सकता है»। इससे एक ही सम्भव निष्कर्ष निकलता है कि वृहत् मस्तिष्कके विभिन्न भाग एक ही क्रिया को सीखनेमें कार्य कर सकते हैं।

सीखनेकी योग्यता की क्षति इस बात पर निर्भर करती है कि त्वक्षका कितना भाग हटाया गया है. जब एक सफ़ेद चूहेको एक भूलभुलैया के टेढ़े-मेढ़े रास्तों और अन्धी गलियोंमें से होकर अपना मार्ग ढूंढ़ निकालनेकी शिक्षा दी जाती है और बादमें उसके त्वक्षको चोट पहुंचायी जाती है, तब इसी प्रकारका परिणाम दृष्टिगोचर होता है। उसके त्वक्षके किसी भाग पर आघात पहुंचाने पर वह इस सीखे हुए कार्यको या तो बिल्कुल भुला बैठता है, या अंशतः। परन्तु बादमें वह पुनः इस कार्यको सीख सकता है। त्वक्षके किसी भागकी क्षतिसे चूहेकी सीखनेकी योग्यता में कमी होती है, और त्वक्षका जितना बड़ा भाग निकाल लिया जाता है, इस कमीकी मात्रा उतनी ही अधिक होती है। नीचे एक तालिका दी जा रही है, जिसमें आपको इस हानिके दर्शन होंगे। इसमें बताया गया है कि भूलभुलैयामें आने-जाने की निपुणता प्राप्त करनेसे पहिले कितनी अधिक ग़लतियां होती थीं।

शल्य-कर्म के बाद चूहों द्वारा भुलभुलैया को सीखना (८)

« निकाले गये त्वक्ष का परिमाण »	« की हुई ग़लतियोंकी संख्या »
कुछ नहीं	३३
१–९ %	५३
१०–१९ ,,	१४३
२०–२९ ,,	२९३
३०–३९ ,,	४४९
४०–४९ ,,	९६४
५०–५९ ,,	९५०

इन परिणामोंसे यह पता चलता है कि किसी सीखे हुए कार्य का नियंत्रण अनिवार्य रूपसे किसी खास त्वक्षीय केन्द्रसे नहीं होता। हम त्वक्षका मानचित्र इस रूपमें नहीं खींच सकते कि उसमें कई छोटे-छोटे स्पष्ट केन्द्र हैं, जिनमें से प्रत्येक एक विशिष्ट मानसिक या गति-क्रिया का संचालन करता है।

इन परिणामोंसे यह संकेत मिलता है कि एक तरहसे उचित है कि हम फ्लोरांके सिद्धान्तकी ओर लौटें और मान लें कि वृहत् मस्तिष्क 'समग्र रूपसे'[1] कार्य करता है। किन्तु इन शब्दोंका शाब्दिक अर्थ लेकर कहीं आप यह न समझ लें कि मस्तिष्क की प्रत्येक कोशा और तन्तु एक साथ हर समय क्रियाशील रहते हैं; क्योंकि तब इसका यह तात्पर्य होगा कि मस्तिष्क केवल एक ही कार्य करता है। व्यक्तिके विभिन्न प्रकारके व्यवहारोंको देखकर हम कह सकते हैं कि यह अर्थ ठीक नहीं है और मस्तिष्क हज़ारों तरहकी विभिन्न क्रियाएं करता है। सबसे उत्तम निष्कर्ष यह है कि « मस्तिष्क व्यापक भागोंमें क्रिया करता है » और इन भागोंमें कई त्वक्षीय क्षेत्र और उनसे सम्बन्धित संयोजक-तन्तु शामिल होते हैं। मस्तिष्क के सक्रिय भागको क्षण-क्षण पर « बदलना » पड़ता है; व्यवहारका कोई अंश, जिसमें केवल एक मिनट लगता है, इस एक मिनटमें ही त्वक्षके अधिकांशको कार्यरत कर देता है। त्वक्षकी अधिक परिमाणमें क्षति होने पर उसके भागोंकी परस्परक्रिया अस्त-व्यस्त हो जायगी; फलतः उसका सामान्य रूप नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा।

परिस्थिति-सम्बन्धी तत्परता[2] त्वक्षकी साधारण क्रिया है. जिन चूहोंके त्वक्षका बहुत-सा भाग निकाल लिया गया हो, वे एक अनजाने स्थानमें घूमने-फिरने और बन्द सन्दूकमें से रोटीका टुकड़ा निकालने जैसी समस्या को सुलझानेमें अशक्त हो जाते हैं (७)। उनमें लगन और चेष्टाकी विविधता का अभाव रहता है। वे निरुद्देश्य इधरसे उधर घूमते रहते हैं और परिस्थितिके प्रति केवल अर्धचेतन रहते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि त्वक्षका काफ़ी भाग क्षतिग्रस्त हो जाने पर चूहा परिस्थिति और लक्ष्य-तत्परता[3] को ग्रहण करनेकी योग्यता खो बैठता है। शायद ऐसा समायोजन तभी हो सकता है, जब मस्तिष्क समग्र रूपमें कार्य करे। उसके किसी एक केन्द्रके बूतेकी यह बात नहीं। अग्रखंडों[4] का कार्य यह हो सकता है कि वे लक्ष्यकी ओर क्रिया को संचालित कर दें, जब

[1] as a whole [2] situation set [3] situation-and-goal set [4] frontallobes

कि त्वक्षका पिछला अर्धभाग परिस्थितिको समझने से सम्बन्धित होता है। फिर भी चूंकि परिस्थिति और लक्ष्य-तत्परता एक ही समायोजन है, दो तरहका नहीं, इसलिए जब व्यक्ति परिवेशके साथ प्रभावपूर्ण ढंगसे व्यवहार कर रहा हो, तब अग्रखंडों और पिछले भागोंको एक साथ मिलकर कार्य करना पड़ता है।

सारांश

१. स्नायु-संस्थान ऐसे स्नायुओंका समूह है जो सभी आदातृ-अंगों[1] और सभी कार्यकारी अंगों[2] से सम्बन्धित हैं।

(क) शरीर एक इकाईके रूपमें विभिन्न प्रकारके कार्य करने में इसलिए समर्थ हो पाता है कि सभी स्नायु एक संगठनकारी केन्द्र[3] से निकलते हैं और उस तक आते हैं। इस केन्द्रमें मस्तिष्क और सुषुम्ना सम्मिलित हैं।

(ख) शरीर विभिन्न प्रकारके कार्य इसलिए भी कर पाता है कि स्नायु-संस्थान[4] में लाखों स्नायु-तन्तु[5] होते हैं, जिनमें से प्रत्येक एक बिन्दुको दूसरे बिन्दुसे जोड़ता है।

(ग) «स्नायु-कोशा[6]» में एक «लांगूल[7]» और कई «चेता-लोम[8]» सम्मिलित हैं।

(घ) दो स्नायुकोशाओंके सम्पर्क-बिन्दु को «स्नायु-सन्धि[9]» कहते हैं।

(ङ) «स्नायु-आवेग[10]» एक विद्युत्-रासायनिक लहर[11] है जो स्नायु-तन्तु में प्रवाहित होती है। स्नायु-आवेगकी शक्ति आवेगको पैदा करने वाली उत्तेजनाकी तीव्रता पर निर्भर नहीं करती। इसी को «सम्पूर्ण या बिल्कुल नहीं» का नियम कहते हैं।

(च) स्नायु या मांस-पेशी में प्रतिक्रियाकी शक्ति प्रति सैकेंड आवेगोंकी संख्या पर निर्भर करती है। यह संख्या अंशत: तो प्रत्येक तन्तुमें आवेगोंकी संख्या पर और अंशत: सक्रिय तन्तुओंकी संख्या पर निर्भर है।

२. «प्रतिक्षेप-क्रिया-चाप[12]» एक स्नायु-मार्ग है जो किसी ज्ञानेन्द्रियसे चलकर स्नायुकेन्द्रसे होते हुए किसी मांस-पेशी तक जाता है। इसमें दो या तीन या इससे भी अधिक स्नायु-कोशाओं की शृंखला होती है और कई अन्य कोशाएँ भी काम करती हैं।

३. मस्तिष्क स्नायु-संस्थान को संयोजित और सम्बद्ध करने वाला प्रमुख केन्द्र है।

(क) «मस्तिष्कका तना[13]» सिरमें सुषुम्ना का ही एक बढ़ा हुआ भाग है। मस्तिष्कके तने और सुषुम्ना में स्थित निचले केन्द्र प्रतिक्षेप-क्रियाओं और सरल संयोजनों को संचालित करते हैं।

(ख) «अन्तर्मस्तिष्क[14]» मस्तिष्कके तने और वृहत् मस्तिष्क के मध्यमें स्थित है। इसमें त्वक्षकी ओर जाते हुए प्रत्येक सांवेदनिक मार्गका एक अलग केन्द्र होता है।

(ग) «लघु मस्तिष्क[15]», जो तन्तुओंके द्वारा मस्तिष्कके तने से जुड़ा रहता है, गति-मार्गों[16]का संयोजक केन्द्र है।

(घ) «वृहत् मस्तिष्क[17]» दो गोलार्धोंमें विभक्त रहता है, जो खोपड़ीको भरे रखते हैं। यह सभी भागोंको संयुक्त करनेवाले तन्तुओं (श्वेत पदार्थ), और स्नायु-कोशाओं के जटिल समूहों (भूरे पदार्थ) से मिलकर बना हुआ है।

(ङ) वृहत् मस्तिष्ककी सिकुड़नों वाले सम्पूर्ण भागको ढकने वाली हरे पदार्थकी पतली तहको त्वक्ष[18] कहते हैं।

४. त्वक्षके विभिन्न भाग विभिन्न कार्योंके लिए नियोजित होते हैं।

(क) «चेष्टाधिष्ठान[19]» में ऐसी कोशाएं होती हैं, जिनके लांगूल[7] मस्तिष्क के तने, लघु मस्तिष्क और सुषुम्ना में स्थित निचले केन्द्रों तक जाते हैं। क्षीण विद्युत्-उत्तेजना से शरीरके विशिष्ट भागोंमें गति उत्पन्न होती है और चेष्टाधिष्ठानमें चोट पहुंच जानेसे स्तम्भ रोग[20] होजाता है।

(ख) «त्वक्-पेशी-संवेदनाधिष्ठान[21]» त्वचा और मांस-पेशियों की संवेदनाओंके लिए एक त्वक्षीय केन्द्र है। शरीर के जिन हिस्सों से स्नायु यहां पहुंचते हैं उनकी गतियों के लिए चेष्टाधिष्ठानमें जो क्षेत्र होते हैं उनसे इसका घनिष्ठ सम्पर्क रहता है।

(ग) «श्रवणाधिष्ठान[22]» शंख-खंड[23] में पाया-जाता है। इस के क्षतिग्रस्त होने पर व्यक्ति बहरा हो जाता है।

[1] receptors [2] effectors [3] coordinating centre [4] neruous system [5] fibres [6] neuron [7] axon [8] dendrites [9] synapse [10] nerve impulse [11] electro-chemical wave [12] reflex arc [13] brain stem [14] interbrain [15] cerebellum [16] motor pathways [17] cerebrum [18] cortex [19] motor area [20] paralysis [21] somaesthetic area [22] auditory area [23] temporal lobe

(घ) प्रत्येक गोलार्धके «दृष्टि-अधिष्ठान[1]» में दोनों आंखों के एक ही अर्धभागसे तन्तु आते हैं। एक दृष्टि-अधिष्ठानका नाश हो जाने पर अर्ध अन्धत्व[2] या दृश्य-क्षेत्र[3] के विपरीत अर्धांगका अन्धापन उपस्थित हो जाता है।

५. प्रमुख गति और संवेदना-सबन्धी क्षेत्रोंके मध्य तथा चारों ओर का त्वक्ष सांवेदनिक सामग्री और चेष्टा-सम्बन्धी प्रतिक्रियाओंको संयोजित और संगठित करनेका कार्य करता है।

(क) «वाक्-भ्रंश[4]» भाषा-सम्बन्धी प्रक्रियाओंकी हानिको कहते हैं। इसका कारण सांवेदनिक क्षति या गति-सम्बन्धी स्तम्भ नहीं है। वाणीका त्वक्षीय नियंत्रण वृहत् मस्तिष्कके केवल एक गोलार्धमें स्थित केन्द्रका ही काम है—दाहिने हाथसे काम करनेवाले लोगों में यह केन्द्र वाम गोलार्धमें होता है।

(ख) चेष्टाधिष्ठानके निकट मष्तिष्कमें चोट पहुँच जाने पर कौशलपूर्ण गति-संगठन[5] की हानि हो जाती है। इसे चेष्टा-रोध[6] कहते हैं।

(ग) पहिचानने और देखनेकी योग्यताके नष्ट हो जानेको 'प्रज्ञारोध[7]' कहते हैं। इसम मौलिक सांवेदनिक प्रक्रियाएं अस्त-व्यस्त नहीं होतीं।

(घ) अग्रखंडों[8] में व्यापक आघात पहुँच जाने पर संश्लेषणात्मक[9] और संगठनात्मक[10] योग्यताओंको क्षति पहुँचती है। व्यवहारकी योजना बनाने और उसे प्रभावपूर्ण ढंगसे व्यवस्थित करनेके लिए इन योग्यताओंकी आवश्यकता पड़ती है।

६. सीखना और स्मरण करना समस्त त्वक्षके कार्य हैं।

(क) त्वक्षके किसी भागमें आघात पहुंचने पर सीखनेकी क्रियामें क्षति पहुंचती है।

(ख) त्वक्षकी जितनी मात्रा हटायी जायेगी, सीखनेकी क्रिया में उतनी ही अधिक मात्रामें क्षति होगी।

[1] visual area [2] hemianopsia [3] field of view [4] aphasia [5] skilled co-ordination [6] apraxia [7] agnosia [8] frontal lobes [9] synthesizing [10] combining

व्यक्ति का विकास कैसे होता है

इस प्रकरणके शीर्षकको पढ़ने पर, मनोविज्ञानके साधारण पाठ्यक्रममें व्यक्तिके विकासके अध्ययनको सम्मिलित करनेके सवाल पर, विद्यार्थियोंकी दो राय हो सकती हैं। कुछ लोग कहेंगे, 'हम वयस्क व्यक्तिके व्यवहार पर तुरन्त विचार करना प्रारम्भ कर दें। निश्चय ही बच्चे बहुत ही रोचक जीव होते हैं और हम जानते हैं कि मनोवैज्ञानिक लोग उनके व्यवहार की छान-बीन बहुत विस्तृत रूपसे कर रहे हैं तथा उनपर पुस्तक पर पुस्तक लिखी जा रही है (६, २३)। किन्तु, इसी कारण, जो लोग बच्चोंमें विशेष रुचि रखते हैं, उनके लिए विशेष पाठ्यक्रम निर्धारित कर देना चाहिए और शेष लोगोंको इस झंझटमें नहीं फँसाना चाहिए।' दूसरे लोग कहेंगे कि आज के युवकोंको कुछ ही वर्षोंमें कुछ बच्चोंमें व्यावहारिक रुचि लेनी पड़ सकती है, इसलिए अच्छा है कि वे इसके लिए अभी से अच्छी तरह तैयार हो लें। इसके अलावा एक बात यह भी है कि विद्यार्थी हमउम्र लोगोंमें रुचि रखते हुए भी वयस्क व्यक्तियोंके विषयमें विकासात्मक दृष्टिकोणसे जानकारी प्राप्त करना उपयोगी पायेगा। 'वह (स्त्री या पुरुष) इस दशामें कैसे पहुंचा?' यह प्रश्न हम बहुधा उस समय पूछते हैं जब किसी व्यक्तिका व्यवहार हमें विचित्र लगता है। यदि हम उस व्यक्तिके पिछले जीवनके विषयमें कुछ जानते हों, यह जानते हों कि बचपनमें उसके साथ कैसा व्यवहार हुआ था, विकसित होनेके दौरानमें उसे किन-किन समस्याओंका सामना करना पड़ा और कैसे उसने उनका सामना किया, तो हम उसको अधिक अच्छी तरह समझ सकेंगे, बजाय इसके कि हम केवल उसके वर्तमान व्यवहारके आधार पर उसके विषयमें कोई धारणा बना लें। जो बात एक विचित्र व्यक्ति के लिए सही है, वह जन-साधारणके लिए भी सही है: यदि हम उनके पिछले इतिहासके विषयमें कुछ जानकारी प्राप्त कर लें, तो उन्हें हम अधिक अच्छी तरह समझ सकेंगे।

अपने परिवेशसे व्यवहार करते समय बच्चा कुछ ऐसे रुख और तरीके अपना लेता है, जो उसके आगेके जीवनमें भी बने रहते हैं और उसके व्यक्तिगत लक्षण बन जाते हैं। वह क्या रुख अपनायेगा, यह उसके स्वभाव और उसके विशेष परिवेश पर निर्भर करता है। एक बच्चा परिवेशको शत्रुतापूर्ण और अपने ऊपर हावी समझता है; उसकी प्रतिक्रिया यह होती है कि किसी तरह उससे बच निकला जाय और यथासम्भव अलग छँटकर रहा जाय। दूसरा बच्चा स्वभावतः पहिले बच्चेसे अधिक शक्तिमान् और आक्रामक प्रवृत्ति वाला होता है और वह परिवेशके प्रति संघर्ष और विरोधका रुख अपना लेता है। एक तीसरा बच्चा है, जो उसी परिवेशके प्रति मैत्री और सहयोगका रुख अपना लेगा। ये रुख बचपनमें इतनी जड़ जमा लेते हैं कि बादमें उनमें परिवर्तन करना टेढ़ी खीर होती है, और कई व्यक्तियोंमें तो ये कभी बदलते ही नहीं। यह कहना तो अत्युक्ति होगा कि ये रुख परिवर्तित ही नहीं हो सकते, क्योंकि हमको इसके विपरीत प्रमाण मिलते हैं; किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि बचपनमें जो अभिवृत्तियां बन जाती हैं, वे बहुधा आगे भी बनी रहती हैं और युवकको जीवनमें अपना मार्ग ढूंढ़नेमें या तो उनसे सहायता मिलती है, या बाधा।

यदि आप किसी नवजात शिशुकी ओर आलोचनात्मक दृष्टिसे देखें, तो आप अपने-आपसे पूछ सकते हैं: 'यह निरीह, निस्सहाय जीव एक योग्य वयस्क कैसे बन पावेगा? शरीरको देखते हुए उसका सिर बहुत बड़ा है; उसकी टांगें और पैर बहुत ही छोटे हैं; वह खड़ा नहीं हो सकता, न अपना सिर सँभाल सकता है; उसके हाथ इस प्रकारके नहीं, जिनसे कोई कुशल कार्य किया जा सके; उसके मुंहमें दांत भी नहीं हैं; उसकी आवाज तेज हो सकती है, पर मनुष्यकी बोली बोलने के लिए बिल्कुल नीरस है; उसके आंख-कान भी हैं, पर उन का कोई वास्तविक उपयोग करना उसे नहीं मालूम; वह अधिकतर सोता ही रहता है, और सिर बड़ा होते हुए भी वह बहुत बोदा है।' इन सारी बातोंका एक ही उत्तर दिया जा सकता है कि आपका कहना बिल्कुल ठीक है, किन्तु यह भी ठीक है कि यह शिशु अपना विकास करनेमें समर्थ है। उसमें बढ़नेकी शक्ति है और यदि उचित परिवेश मिल जाय तो वह निश्चय ही अपना विकास कर लेगा। उसकी टांगें इतनी बड़ी हो जायेंगी, जितनी मनुष्योंकी होनी चाहिए और उनकी मांस-पेशियां भी ऐसे आकार और शक्तिको प्राप्त कर लेंगे जिससे शरीरका बोझ सँभालना और चलना-फिरना-दौड़ना सम्भव हो सके। उसके हाथ इस योग्य हो जायेंगे कि वे किसी वस्तुको अच्छी तरह पकड़ सकें और उसे थाम सकें। उसके दांत, जो अभी प्रारम्भिक, अविकसित स्थितिमें छिपे पड़े हैं, बढ़ेंगे, कठोर होंगे और समय आने पर मसूड़ोंको फोड़कर

बाहर निकल आवेंगे। उसका मुँह और कंठ[1] भी विकसित होगा और लचीली वाक् इन्द्रियका रूप ले लेगा। उसका मस्तिष्क न केवल आकारमें बढ़ेगा, बल्कि उसकी सूक्ष्म रचना में भी विकास होगा और वह इस योग्य हो जायगा कि मानवीय कार्योंमें वह अपना भाग ले सके। किसी भी प्राणीके इस कच्ची अवस्थासे परिपक्वावस्थाको प्राप्त होनेको «प्रौढ़न या परिपचन[2]» कहते हैं।

किन्तु, आप उत्तर देते हैं—'यह ठीक है, लेकिन...मुझे लगता है कि वृद्धिकी यह शक्ति पर्याप्त नहीं है, क्योंकि यदि मैं इस योग्य होता कि किसी तरह बच्चेके विकास-क्रमको तेज करके एक सप्ताहके भीतर ही उसे पूर्ण विकासावस्थाको पहुंचा सकता, तो क्या एक सप्ताहका युवक व्यक्ति सही माने में वयस्क, एक योग्य वयस्क हो सकेगा? एक सप्ताहकी अल्पावधिमें वह संसारके विषयमें अधिक कुछ नहीं जान पायेगा, न भाषा पर उसका अधिकार होगा और न उन हजारों कौशलपूर्ण कार्योंको वह कर पायेगा, जिनको सामान्यतया वयस्क व्यक्ति किया करते हैं'। दूसरे शब्दोंमें, आप जोर दे रहे हैं कि हम वृद्धिकी शक्तिके साथ एक अन्य महत्वपूर्ण सामर्थ्यको भी जोड़ लें, और वह है «सीखनेकी शक्ति»। यह एक अच्छी बात सामने आयी। विकासमें बढ़ना और सीखना—ये दोनों बातें आ जाती हैं। मानवके विकासमें विशेषतया सीखनेका सबसे अधिक महत्व है। जबकि कई पशु पैदा होनेके कुछ ही सप्ताहोंके भीतर प्रौढ़ता प्राप्त कर लेते हैं, तब मनुष्यको प्रौढ़ता प्राप्त करनेमें लगभग १८ वर्ष लगते हैं और इन सारे वर्षोंमें वह कुछ न कुछ सीखता रहता है। वयस्क व्यक्तिके रूपमें वह क्या और कैसा है, यह इस बात पर निर्भर है कि उसकी वृद्धि कितनी अच्छी तरह हुई है और उसने क्या क्या सीखा है।

परिपचन के द्वारा विकास

विकसित होते हुए व्यक्तिमें परिपचन और सीखनेकी प्रक्रियाएं साथ-साथ चलती हैं। शरीरकी रचनामें विकास होनेके कारण अनेक प्रकारके नवीन कार्योंको शुरू करना सम्भव हो जाता है और इन नयी क्रियाओंसे नयी बातें सीखना सम्भव हो जाता है। इसलिए हम कह सकते हैं कि वयस्क व्यक्तिकी अधिकांश योग्यताएं परिपचन और सीखना—दोनों पर निर्भर करती हैं। किन्तु कुछ योग्यताएं ऐसी होती हैं, जो मुख्यतः परिपचन के फलस्वरूप प्राप्त होती हैं और वे सीखने पर निर्भर नहीं हैं।

नैसर्गिक या मूल-प्रवृत्ति[3]. नैसर्गिक प्रवृत्ति बिना सीखी हुई क्रिया है। यह वह चेष्टा है, जो पशु या मनुष्यको बिना किसी पूर्व अनुभव और अभ्यासके, परिवेशकी किसी वस्तुसे योग्यतापूर्वक व्यवहार करनेमें समर्थ बनाती है। आप अर्जित या सीखी हुई कार्य-शैली (टेकनीक) के विरुद्ध इस प्रवृत्तिको प्राकृतिक शैली कह सकते हैं। प्रत्येक व्यक्तिके लिए मनुष्य की सामान्य कार्य-शैलियोंको सीखना आवश्यक है। उसको बोली सीखनी पड़ती है, शिष्टाचारकी विधि सीखनी पड़ती है और किसी भी औजारका इस्तेमाल सीखना पड़ता है। लेकिन दूसरी ओर पक्षीको घोंसला बनाना या मधुमक्खीको छत्ता बनाना नहीं सीखना पड़ता। ये नैसर्गिक शैलियां हैं। आगे हमने सीखनेकी प्रक्रिया पर एक पूरा प्रकरण दिया है, उसमें आप देखेंगे कि पशु भी बहुत कुछ सीखते हैं। किन्तु परिवेश से व्यवहार करनेकी उनकी अधिकांश योग्यता—कुछ पशुओं में यह योग्यता औरोंसे अधिक होती है—नैसर्गिक प्रवृत्तिसे प्राप्त होती है, सीखनेसे नहीं आती। जटिल नैसर्गिक प्रवृत्तियों[4] के कुछ सर्वोत्तम उदाहरण हमें विभिन्न प्रकारके कीड़ों में मिलते हैं। मादा बर्र[5] अंडा देनेके लिए बहुत सुन्दर घोंसला बनाती है। उस जातिके सभी बर्रोंमें घोंसला बनानेकी पद्धति एक सी होती है। शैली सीखनेकी मानवीय पद्धतिके अनुसार आप यह अनुमान कर बैठेंगे कि बर्रोंकी हर पीढ़ी अपनी पूर्व पीढ़ीसे घोंसला बनानेकी यह सुन्दर कला सीख लेती होगी। किन्तु यह असम्भव है, क्योंकि बर्रोंकी पुरानी पीढ़ी नयी पीढ़ीके सामने टिकती ही नहीं। अंडा देनेके बाद मादा बर्र चली जाती है और अंडे से बच्चा निकलनेके पहिले ही मर जाती है। यहां आपको नैसर्गिक प्रवृत्तियोंके अस्तित्वका पूरा प्रमाण मिलता है।

मनुष्योंमें पुरानी पीढ़ी नयी पीढ़ीके सामने उपस्थित रहती है, व्यक्तियोंके विकासकी अवधि भी लम्बी होती है, और बच्चा अपनेसे बड़े लोगोंसे बहुत कुछ सीखता है। इतने पर भी, बच्चेको कुछ शैलियां जन्मसे ही प्राप्त होती हैं। वह सांस लेता है, खांसता है, छींकता है, निगलता है। इनको भी आप नैसर्गिक प्रवृत्ति कह सकते हैं, हालांकि मादा बर्र द्वारा घोंसला बनानेकी तुलनामें ये बहुत सरल होती हैं। सांवेदनिक उत्तेजनाओं[6] के प्रति तात्कालिक चेष्टा-प्रतिक्रियाएं[7] होनेके कारण इनको लोग साधारणतया प्रतिक्षेप क्रियाएं[8] कह लेते हैं। इनसे भी सरल प्रतिक्षेप क्रियाएं होती हैं। जैसे आंखको छूने या उसे फूंकने पर पलकोंका झपकना। यह मान लेना ठीक रहेगा कि प्रतिक्षेप क्रियाएं सीखी नहीं जातीं, क्योंकि नवजात शिशुमें ये जन्मसे पायी जाती हैं।

[1] larynx [2] maturation [3] instinct [4] complex instincts [5] wasp [6] sensory stimuli [7] motor responses [8] reflexes
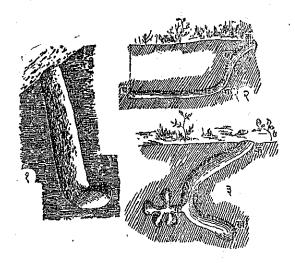
आकृति ६१. तीन भिन्न प्रकारकी बर्रोंकी छत्ता बनानेकी विशेषता। कुछ इक्की-दुक्की बर्रें जमीनके ऊपर या दीवारों पर मिट्टीका छत्ता बनाती हैं। आपके अधिक परिचित 'कागजी' छत्ते सामाजिक बर्रों द्वारा बनाये जाते हैं। पहले छत्तेमें सुरंग ८ इंच लम्बी होती है; दूसरे छत्तेमें 'क ख ग घ' २२ इंच लम्बी है; तीसरे छत्तेमें 'क' से लेकर 'ख' तक सुरंगकी लम्बाई ४ इंचसे भी कम है और 'ग' के पास जो कोशाएं हैं, वे खाद्य-संग्रहके लिए इस्तेमालकी जाती हैं। [पिकहम]।

क्या यह मानलेना बिल्कुल ठीक रहेगा कि बच्चा जन्मसे पहिले कुछ भी नहीं सीखता? इसमें सन्देह नहीं कि व्यक्तिके जीवनमें जन्म एक महत्वपूर्ण मोड़ है, किन्तु इसे जीवनका आरम्भ समझना भूल होगी। कुछ जीवोंका जन्म पहिले हो जाता है, कुछका विलम्ब करके। आपने देखा होगा कि कई अपरिपक्व शिशु गर्भावस्थाके नवें महीने में पैदा होनेके बजाय छठे या सातवें महीनेमें ही पैदा हो जाते हैं। इसी प्रकार कुछ जातिके पशु या पक्षी भी दूसरोंकी अपेक्षा अधिक अपरिपक्वा-वस्था में ही जन्म ले लेते हैं। बिल्लीका एक नवजात बच्चा सुअरके नवजात छौनेसे अधिक अपरिपक्व और असहाय होता है। इसी प्रकार गौरैयाका नवजात बच्चा मुर्गीके नवजात बच्चे से अपरिपक्व और असहाय होता है। इससे यह सिद्ध होता है। कि जन्मका समय दो प्रकारके विकासोंके बीच कोई स्पष्ट विभाजन-रेखा नहीं खींचता। सम्भव है कि जन्मके पूर्व भी व्यक्ति कुछ सीखता हो, और जन्मके बाद तो उसमें निश्चित रूपसे कुछ परिपचन होता ही है।

जन्मके पूर्व होनेवाला विकास. एक शिशु और एक वयस्कमें जब हम तुलना करते हैं, तब हमें आश्चर्य होता है कि छोटा-सा शिशु इतने बड़े वयस्कके रूपमें कैसे परिवर्तित हो गया। परन्तु एक निषिक्त स्त्रीबीज[1] और नवजात शिशुकी तुलना करते समय आप क्या कहेंगे? किस प्रकार यह अतिसूक्ष्म कोशा[2] छै पौंडके शिशुके रूपमें परिवर्तित हो गई, जिसके दो हाथ, दो पैर, दो आंखें, दो कान, हृदय, फेफड़े, मस्तिष्क और अन्य सभी अंग हैं? जहां तक केवल आकारका प्रश्न है, एक-कोशीय व्यक्तिको माता द्वारा पोषण प्राप्त होता है, वह पोषण को प्राप्त करके विकसित होने लगता है। पहिले दो कोशाओंमें वह विभक्त होता है, फिर चारमें, आठमें और इसी प्रकार असंख्य कोशाओंमें। किन्तु इसमें उल्लेखनीय बात इन कोशाओं की संख्या नहीं, बल्कि इनकी विविधता है। इनमेंसे कुछ कोशाएं मांस-पेशीकी होती हैं, कुछ स्नायुकी, कुछ त्वचाकी और कुछ अस्थिकी। फिर भी इन सबका मूल वही एक निषिक्त स्त्रीबीज होता है और सभीमें पित्र्यसूत्रों[3] और पित्र्यैकों[4] की एक-सी संख्या और क्रम[5] उपस्थित रहते हैं। चूंकि इन सभी कोशाओंमें एक ही वंशानुक्रम होता है, इसलिए उनमें अपने-अपने परिवेशोंसे प्राप्त भिन्न-भिन्न उत्तेजनाओंके कारण ही भिन्नता होनी चाहिए। व्यक्तियोंकी भिन्नताओं पर विचार करते समय हमने ऐसा ही तर्क दिया था और जब हम उसी व्यक्तिकी कोशाओंकी परस्पर भिन्नताकी चर्चा कर
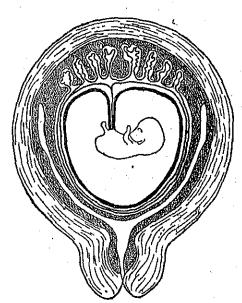
आकृति ६२. माताके गर्भमें पड़े हुए छोटे-से भ्रूणकी रेखा-कृति। यह बाह्य परिवेशसे चारों ओरके तरल पदार्थ और झिल्लियोंके द्वारा रक्षित रहता है, किन्तु साथ ही साथ पोषण भी इसे मिलता रहता है।

[1] furtilized ovum [2] cell [3] chromosomes [4] genes [5] assortment

रहे हैं, तब भी यह तर्क उतना ही लागू होता है। चूंकि कोशाओं का वंशानक्रम एक है, इसलिए उनकी भिन्नता का कारण जाननेके लिए हमें उनके परिवेशों पर विचार करना होगा। भ्रूण को माताकी बच्चादानी या गर्भमें जो परिवेश मिलता है, वह निश्चय ही बहुत सुरक्षित होता है। उसमें गर्मी, सर्दी, धक्कों, प्रकाशों, गन्धों और बाह्य संसारकी अन्य शक्तियोंका कोई प्रभाव नहीं पहुंचता। यह परिवेश कोमल और समरूप तथा विकसित होते हुए प्राणीकी सभी कोशाओं के लिए एक समान होता है। हम इस परिवेशके भरोसे रहकर कोशाओंकी भिन्नताकी बातको नहीं समझा सकते। हम यह नहीं कह सकते कि कुछ कोशाएं मांस-ऊति[1] के रूपमें और कुछ स्नायु-ऊति[2] के रूपमें इसलिए विकसित हो गईं कि बाहरी परिवेशसे उनपर अलग-अलग तरहका प्रभाव पड़ता था। हम यह भी नहीं कह सकते कि शरीर एक भुजा का विकास एक जगह करता है और एक टांगका विकास दूसरी जगह, क्योंकि इन दोनों स्थानोंमें बाहरी परिवेश भिन्न है।

भिन्नीकरण[3] से तात्पर्य है एक प्रारम्भिक कोशा से भिन्न-भिन्न प्रकारकी कोशाओंका विकसित होना। प्रौढ़नमें भिन्नीकरण का बहुत समावेश है। चूंकि एक ही शरीरकी सभी कोशाओंमें एक-से पित्र्यैक[4] होते हैं और जन्मके पूर्व वे सभी एक-से परिवेशसे प्रभावित होते हैं, इसलिए सवाल यह उठता है कि भिन्नीकरणका स्पष्टीकरण कैसे सम्भव है?

संभवतः आपको इसका उत्तर पहिले ही मिल चुका है। शरीरके भीतरकी किसी कोशा का परिवेश वही नहीं होता, जो सम्पूर्ण शरीरका होता है। जन्मसे पूर्व, शरीरके लिए गर्भ[5] का परिवेश ही प्रभावशाली होता है, जहां पर विकासके निमित्त उसकी सभी आवश्यकताएं (जैसे भोजन और उष्णता की) पूरी हो जाती हैं। फिर भी, शरीरके भीतरकी किसी कोशाके लिए प्रभावपूर्ण परिवेश उसको चारों ओरसे घेरनेवाली दूसरी कोशाएं हैं। ज्यों ही कुछ भिन्नीकरण हो जाता है, शरीरके विभिन्न भागोंमें स्थित कोशाओंका चारों ओरका परिवेश बदल जाता है और वे अपने चारों ओरकी कोशाओं से भिन्न-भिन्न प्रकारकी उत्तेजना प्राप्त करने लगती हैं। कुछ पित्र्यैक[4] एक प्रकारकी उत्तेजना के प्रति प्रतिक्रिया करते हैं और कुछ दूसरे प्रकारकी उत्तेजनाके प्रति। इस प्रकार एक ही शरीरके विभिन्न भागोंमें रहनेवाली कोशाएं भिन्न-भिन्न प्रकारसे विकसित होती हैं। प्रारम्भमें भिन्नीकरण निषिक्त स्त्रीबीज[6] में थोड़ा-सा शुरू होता है, और धीरे-धीरे वह बढ़ता जाता है। बहुत प्रारम्भमें, कोशाओंके तीन परतें[7],
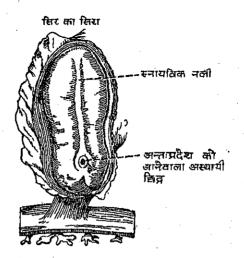
आकृति ६३. दो सप्ताहकी आयुके मानव-भ्रूणके पृष्ठ-भाग का दृश्य। इसका व्यास २० गुना बढ़ाकर दिखाया गया है। [वॉन स्पी]।

होती हैं; बाह्य परतसे त्वचा का विकास होता है, भीतरी परत से भीतरी अंगोंका और मध्य परतसे मांस-पेशियों तथा अस्थियोंका। ये तीनों परतें[7] परस्पर-क्रिया करती हैं, एक-दूसरी को उत्तेजना प्रदान करती हैं तथा शरीरके विभिन्न भागोंको उत्पन्न करनेके लिए तरह-तरह से अपना सम्बन्ध जोड़ती हैं। यह सारी प्रक्रिया अत्यन्त जटिल है और भ्रूण-विज्ञानवेत्ता[8] भी इसको पूर्णतया समझनेका दिखावा नहीं करते। किन्तु इतना तो हम निस्संकोच कह सकते हैं कि भिन्नीकरणमें «शरीरके भीतरी भागोंकी परस्पर क्रिया» मुख्य कारण[9] है।

मस्तिष्क और स्नायु-संस्थान का विकास. कोई यह अनुमान कर सकता है कि अस्थियोंकी भांति मस्तिष्क भी भ्रूण-शरीरकी बीचकी परतसे विकसित होगा। किन्तु नहीं, यह बाह्य परतसे विकसित होता है। भीतरकी परतोंसे प्राप्त उत्तेजना के कारण बाह्य परत झुक जाती है और अल्पायु भ्रूण के पृष्ठ भागके ऊपर-नीचे एक खोखली नली[10] का रूप ले लेती है (आकृति ६३)। शीघ्र ही इस नलीका मुंह बन्द हो जाता है। सिरकी ओर यह स्नायविक नली[11] बड़ी तेजीके साथ विकसित होती है; यहां तक कि गर्भाधानसे चार सप्ताहके अल्पकालमें ही मस्तिष्क के प्रमुख भागोंको पहचाना जा सकता है (देखिए आकृति ६४)। मस्तिष्क, वृद्धिमें सबसे आगे रहता है। शुरू-शुरूमें यह सम्पूर्ण शरीरका $\frac{1}{2}$ होता है; जन्मके समय लगभग

[1] muscle tissue　[2] nerve tissue　[3] differentiation　[4] genes　[5] uterus　[6] fertilized ovum　[7] layers　[8] embryologists　[9] decisive factor　[10] groove　[11] neural tube

१/१०, किन्तु प्रौढ़ता प्राप्त होने पर कुल शरीरके वजनका लगभग केवल १/५० भाग ही वह होता है।

अपने अपेक्षाकृत वृहत् आकारके बावजूद भ्रूणका मस्तिष्क क्रियाशील नहीं होता, क्योंकि जिन कोशाओंसे यह निर्मित हुआ रहता है, वे स्नायु-कोशाएं नहीं होतीं। वे प्रारम्भिक, *अविकसित भ्रूण-कोशाएं*[1] होती हैं, किन्तु शीघ्र ही वे विभक्त होकर एसी कोशाएं उत्पन्न करती हैं जो लांगूल[2] और लोमों[3] सहित स्नायु-कोशाओं के लक्षण ग्रहण कर लेती हैं तथा स्नायु-आवेगों का संचालन करनेमें समर्थ होती हैं। इन स्नायु-कोशाओं में से कुछ के लांगूल मांस-पेशियों और ज्ञानेन्द्रियों तक पहुंच जाते हैं और जन्मके बहुत पहिले ही आवेगोंका संचालन करना प्रारम्भ कर देते हैं। मस्तिष्क के तने और सुषुम्नामें स्थित निचले केन्द्र या तो जन्मसे पहिले ही कार्य करना शुरू कर देते हैं, या बच्चेके पैदा होते ही कार्य शुरू कर देनेको तैयार रहते हैं। जन्मके समय तक वृहत् मस्तिष्कीय त्वक्ष[4] बहुत बड़ा हो चुका होता है, किन्तु इसकी भीतरी रचना में बहुत विकास नहीं हुआ रहता, इसलिए जन्मके कई सप्ताह बाद तक वह शायद क्रियाशील नहीं हो पाता। सम्भवतः नवजात शिशुके व्यवहार पर त्वक्षका प्रभाव नहीं के बराबर रहता है।
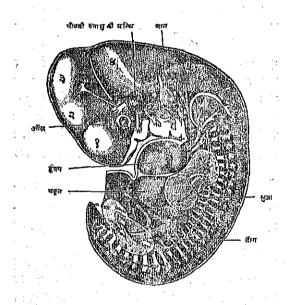
आकृति ६४. मानव-भ्रूण जिसकी आयु ४ सप्ताह है। इसका व्यास लगभग १० गुना बढ़ाकर दिखाया गया है। संख्यांकित भाग मस्तिष्कके मुख्य विभाजन हैं, जैसे १ वृहत् मस्तिष्क है, २ अन्तर्मस्तिष्क और इसी तरह अन्य संख्याएं भी। ५ से लगातार संयुक्त भाग सुषुम्ना है। ५ संख्यांकित भाग मस्तिष्कीय तनेका पृष्ठांश है। एक भुजा और एक टांग पारदर्शी कलियों के रूपमें दिखायी देती हैं। [स्ट्रीटर]।

जन्मसे पूर्वकी क्रिया. हम कह सकते हैं कि जन्मके समय तक व्यक्तिका मुख्य कार्य आत्म-निर्माण का होता है। उसे अपने हृदय और रक्त-वाहिनियोंका, अपनी भुजाओं और टांगों का, अपने मस्तिष्क और स्नायुओंका तथा अपने सभी आधार-भूत अंगोंका निर्माण करना होता है। उसका क्रियात्मक कार्य, अर्थात् उसका व्यवहार बादके दिनोंके लिए स्थगित रह सकता है। फिर भी यह समझना भूल होगी कि अजात शिशु पूर्णतः चेष्टाहीन रहता है। भ्रूण-जीवन के लगभग तीसरे सप्ताहसे ही उसका हृदय स्पन्दित होने लगता है और रक्त-संचार करने लगता है। तीसरे महीनेमें उसकी मांस-पेशियां क्रियाशील हो जाती हैं, धड़का झुकाना, भुजाओं और टांगोंका हरकत करना शुरू हो जाता है। बादके महीनोंमें ये हरकतें और भी बढ़ जाती हैं और उनमें रूपान्तर भी दिखायी देने लगता है (५)।

ज्ञानेन्द्रियां और उनके स्नायुओंका विकास शीघ्र हो जाता है और जन्मसे कुछ पहिले वे कार्य करना प्रारम्भ कर देते हैं (जैसाकि अपरिपक्वावस्था में पैदा हुए शिशुओंकी प्रतिक्रिया से पता चलता है), किन्तु दृष्टि, स्वाद और घ्राण (गन्ध) की ज्ञानेन्द्रियां जन्मसे पहिले शायद ही कोई प्रभावशाली उत्तेजना प्राप्त करती हों। अजात शिशुके कानों तक ध्वनियां प्रविष्ट हो सकती हैं। जब कभी वह हिलता-डुलता है, उसको स्पर्श और गतिकी संवेदनाएं होती होंगी।

अजात शिशुकी हरकतें (गतियां) यह सिद्ध करती हैं कि मस्तिष्क के तने और सुषुम्नामें स्थित कुछ निचले स्नायु-केन्द्र तथा स्नायु और मांस-पेशियां जन्मसे पूर्व ही क्रियाशील हो जाती हैं। इसलिए यह प्रश्न उठता है कि जन्मसे पूर्वकी इस चेष्टासे क्या शिशु कुछ «सीखता» है? मांस-पेशियोंकी क्रियाशीलता के कारण उनकी शक्ति बढ़ सकती है; इसके अतिरिक्त स्नायु-केन्द्रों की शक्ति भी उनकी अपनी क्रियाशीलता से बढ़ सकती है। इतना तो तर्कसंगत प्रतीत होता है। जन्म के बाद व्यवहारके विकासकी प्रक्रिया को समझनेके पहिले हम यदि विकासके ऊपर अभ्यासके कारण पड़नेवाले प्रभावको समझ लें, तो अधिक ठीक रहेगा।

अभ्यास और सीखने के द्वारा विकास

विकासकी पहिली सीढ़ी परिपचन-मात्र[5] की होनी चाहिए। भला इससे कौन इन्कार कर सकता है कि कार्य करनेके पहिले किसी अंगका एक खास हद तक विकास होजाना चाहिए। हृदय तब तक धमनियोंमें रक्त नहीं फेंक सकता, जब तक वह इतना

[1] embryonic cells [2] axons [3] dendrites [4] cerebral cortex [5] maturation

विकसित न हो गया हो कि एक कामचलाऊ पम्पका काम दे सके। फेफड़ोंका उदाहरण अच्छा रहेगा : जन्मसे पहले बच्चे के फेफड़ोंमें कुछ भी हवा नहीं जा सकती, ताकि वे फैल सकें और उनका व्यायाम होसके, फिर भी जन्मके समय उनका विकास इतना हो चुका होता है कि वे श्वसन क्रियामें अच्छी तरह भाग ले सकते हैं। जन्मके बाद उनको खूब व्यायाम करना पड़ता है, इसलिए शायद इस व्यायाम और निरन्तर परिपचन के कारण उनका और अधिक विकास हो जाता है। संकुचनकी शक्ति आनेके पहिले मांस-पेशीको भी एक हद तक प्रौढ़ता प्राप्त कर लेनी चाहिए। जन्मसे बहुत पहिले, प्रत्येक मांस-पेशी एक छोटी नलीके रूपमें दिखायी देती है, जिसमें भ्रूण-कोशाएं होती हैं। इन भ्रूण-कोशाओंमें संकुचन-शक्ति नहीं होती। ये कोशाएं बहुसंख्यक हो जाती हैं और पेशी-तन्तुओं[1] के रूपमें संगठित होती हैं जिसमें संकुचनकी शक्ति होती है। इसी बीच, स्नायु-केन्द्रसे मांस-पेशी तक जानेके लिए एक स्नायुकी उत्पत्ति होती है। जब विकासकी यह प्रक्रिया काफ़ी आगे बढ़ चुकती है, तब मांस-पेशी स्नायु-आवेगोंको ग्रहण करने लगती है और संकुचनके द्वारा अपनी प्रतिक्रिया भी प्रकट करती है। यह निरंतर प्रौढ़ता तो प्राप्त करती ही रहती है, पर सम्भवत: व्यायामसे भी अपनी शक्ति बढ़ाती रहती है।

अभ्यास (व्यायाम) या कार्य करते रहनेका विकासकी प्रक्रियामें स्थान. एक बार जब प्रौढ़ताके कारण कोई अंग इस योग्य हो जाता है कि वह कार्य कर सके, तब क्या उस अंग की क्रिया उसका अधिक विकास करनेमें सहायक होती है? क्या कोई ऐसा नियम है जिसके अनुसार उपयोग करने पर किसी अंगका विकास होता है और उपयोग न करने पर उस का ह्रास होजाता है? यह तो प्राय: सभी जानते हैं कि व्यायाम से मांस-पेशीकी वृद्धि होती है, किन्तु मनोविज्ञानमें हमें 'जनश्रुति' पर निर्भर न रहकर अपने 'नियमों' की पुष्टिके लिए निश्चित तथ्यों पर ज़ोर देना चाहिए। यह एक तथ्य है कि बार-बारके व्यायामसे किसी मांस-पेशीकी शक्ति बढ़ जाती है, परन्तु मांस-पेशीके आकारमें (मोटाईमें) जो वृद्धि होती है उसके अनुपातमें शक्तिकी यह वृद्धि अधिक होती है। मांस-पेशीकी शक्ति बढ़नेके कई कारण हैं। इसका एक कारण तो समुचित रक्त-संचार और प्राणवायु (ओषजन) की पर्याप्त प्राप्ति है। दूसरा कारण है, मांस-पेशीमें संगृहीत ईंधनके परिमाण में वृद्धि होना। तीसरा कारण है, अधिकाधिक प्रयत्न करना, अर्थात् मस्तिष्कसे शक्तिशाली उत्तेजनाका मिलना। बराबर उपयोगमें लानेसे मांस-पेशियोंमें कैसे वृद्धि होती है और उपयोगमें न लाने पर उनका ह्रास कैसे हो जाता है, इस का एक सुन्दर प्रमाण आपको खपच्चियों[2] में बंधे हुए हाथसे मिलेगा। जिन दिनों हाथ खपच्चीके भीतर कसा रहता है, उन दिनों मांस-पेशीका ह्रास होता रहता है, परन्तु खपच्ची हटा देने पर वह धीरे-धीरे अपनी पूर्व स्थितिमें आ जाती है। यदि इस सम्बन्धमें कोई सुनियंत्रित प्रयोग किया जा सके, तो उसका निष्कर्ष अधिक विश्वसनीय होगा।

एक बार सन् १८९७ में एक प्रयोग किया गया था और वह प्रयोग इतना ठीक उतरा था कि शरीर-शास्त्रियोंने दुबारा प्रयोग करनेकी आवश्यकता ही नहीं अनुभव की (२२)। एक बड़े, पूर्णविकसित कुत्तेको पहिले एक महीने तक निश्चेष्ट रखा गया। इसके बाद उसकी पिछली टांगकी जांघकी एक मांस-पेशी[3] को निकाल लिया गया और बादमें अणुवीक्षण यंत्रसे उसकी परीक्षा करनेके निमित्त उसे सुरक्षित रख लिया गया। इस शल्यकर्मके बाद जब कुत्ता स्वस्थ हुआ, तब उसे एक मैदानमें दौड़नेकी ट्रेनिंग दी जाने लगी। शुरू-शुरूमें तो उससे बहुत थोड़ा दौड़ा गया, किन्तु २० दिनके अभ्यासके बाद वह प्रतिदिन ४०-५० मील तक दौड़ने लगा। उसने यह अभ्यास ४० दिन तक जारी रखा और इस बीच उसने मैदानमें २,००० मीलके बराबर दौड़ लगायी। अब दूसरी पिछली टांगकी उसी मांस-पेशीको निकाल लिया गया और दोनों मांस-पेशियोंकी, जिनमें से एक व्यायाम कर चुकी थी और दूसरी बिना व्यायाम किये थी, तुलना की गयी। व्यायाम-प्राप्त मांस-पेशी दूसरी मांस-पेशी की अपेक्षा गोलाईमें ५० प्रतिशत बड़ी थी। इससे प्रमाणित हो गया कि व्यायामके कारण मांस-पेशीके परिमाणमें निश्चित वृद्धि हुई थी।

अणुवीक्षण यंत्रसे परीक्षा करने पर पता चला कि दोनों मांस-पेशियोंमें मांस-तन्तुओंकी संख्या एक समान थी। व्यायाम (अभ्यास) से तन्तुओंकी संख्यामें वृद्धि नहीं हुई थी; जैसाकि परिपचनमें होता है, कोशाओं की संख्यामें ऐसी कोई वृद्धि नहीं हुई थी। बहुत से तन्तु जो व्यायामसे पहिले पतले थे, अब मोटे हो गये थे। ये पतले तन्तु एक सुरक्षित भंडारके रूपमें थे, जिन्हें व्यायाम के द्वारा बढ़ाया जा सका था। एक दूसरे कुत्ते पर भी यही प्रयोग किया गया और उससे भी यही निष्कर्ष निकला।

क्या मांस-पेशियोंकी तरह मस्तिष्क भी आंशिक रूपसे अपनी क्रियाओंके द्वारा विकसित होता है? इसके लिए कोई प्रमाण ढूंढ़ निकालना ज़रा कठिन है, क्योंकि हम मस्तिष्कके केवल आकारमें बहुत वृद्धिकी आशा नहीं कर सकते। अधिक से अधिक हम यही आशा कर सकते हैं कि जिन लोगोंने अपने मस्तिष्कका अधिक उपयोग किया है, उनके वल्क[4] की सूक्ष्म रचना अत्यन्त जटिलत हो जाती होगी। विभिन्न आयुओंमें

[1] muscle fibres [2] splint [3] the slender sartorius muscle [4] cortex

मरनेवाले बच्चोंके मस्तिष्कोंकी तुलना करनेसे पता चला है कि जन्मके बाद किसी नई स्नायु-कोशा का निर्माण नहीं हुआ, किन्तु कोशाओंके आकारमें विकास हुआ है, उनके लांगूल और लोम लम्बे हुए हैं और कोशाओंके बीचका सम्पर्क बढ़ा है। यह विकास बचपनमें तेजीसे होता है और *वयस्क जीवनमें इसकी गति धीमी पड़ जाती है। सम्भवतः* इसका एक कारण मस्तिष्ककी क्रियाशीलता है। एक सर्वोत्तम प्रमाण यह रहेगा: अल्पायुमें अन्धे हुए व्यक्तियोंके त्वक्षके प्रारम्भिक दृष्टि-अधिष्ठान[१] की तुलना उन व्यक्तियोंके उसी अधिष्ठानसे कीजिए, जो जीवन भर देखनेमें उसका उपयोग करते रहे हैं। आप देखेंगे कि अन्धे व्यक्तिके दृष्टि-अधिष्ठान की स्नायु-कोशाएं अपेक्षाकृत कम विकसित हैं (८, ९, १४)। निष्कर्ष स्पष्टतः यह निकला कि दृष्टिसे सम्बन्धित त्वक्षका उपयोग करनेसे उसकी आन्तरिक जटिल रचनामें विकास होता है।

सीखना : विकासकी एक प्रक्रियाके रूपमें. इस प्रकरणके प्रारम्भमें हमने कहा था कि विकासमें परिपचन[२] और सीखना —दोनों सम्मिलित रहते हैं। तबसे हमने «सीखना» शब्द का उपयोग नहीं किया है, बल्कि व्यायाम (अभ्यास) के ऊपर विकासके एक कारणके रूपमें विचार करते रहे हैं। अभ्यास[३] उस क्रियाको शक्तिशाली बनाता है, जिसका अभ्यास किया जाता है, किन्तु यह स्वतः व्यक्तिके भंडारमें किसी तरहकी नयी क्रियाको नहीं जोड़ता। फिर उसने जो ज्ञान और कौशल प्राप्त किये हैं, *उनका विकास अपने भीतर वह कैसे कर पाया है?* नवीन ज्ञान[४] और नवीन प्रतिक्रियाओं[५] को प्राप्त करनेकी प्रक्रियाका नाम ही सीखना है।

मनोवैज्ञानिक इस समस्त विज्ञानमें 'सीखने' को सर्वाधिक आधारभूत और महत्त्वपूर्ण विषयोंमें से एक विषय मानते हैं। चाहे जो विषय वे लें, बुद्धि, व्यक्तित्व, ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष[६], सोचने या संवेगको ही वे क्यों न लें, उनको सदा यह अनुभव होता है कि इन सबमें 'सीखने' का एक प्रमुख भाग है। सीखनेमें स्कूलकी पढ़ाई और अन्य किसी प्रकारके अध्ययनके अतिरिक्त भी बहुत-सी बातें आ जाती हैं। हो सकता है कि आपने किसी रागको कई बार सुना है, लेकिन उसे सीखनेकी कभी कोई इच्छा आपको नहीं रही; फिर भी यदि आप उस रागको कभी-कभी गुनगुना लेते हैं अथवा वह राग यदि केवल अन्य रागोंकी अपेक्षा आपको कुछ अधिक परिचित लगता है, तो भी यह कहा जायगा कि आपने उस रागको सीख लिया है। सभी तरहका ज्ञान और कौशल, सभी अच्छी और बुरी आदतें, लोगों और वस्तुओंसे सब तरहकी जान-पहचान, लोगों और वस्तुओंसे व्यवहार करते समय आपके द्वारा अपनाये गये सभी रुख—*ये सभी बातें सीखनेसे ही आती हैं।*

कभी-कभी किसी सीखे हुए कार्यमें नवीनता इस बातमें होती है कि पहिले जो दो कार्य अलग-अलग होते थे, उन्हें आप कुशलतापूर्वक एक में संयुक्त कर डालते हैं। उदाहरणके लिए कोई नौसिखिया पिआनो बजानेवाला दोनों हाथोंसे «एक साथ» *पिआनो बजाना सीखता है।* कभी-कभी नवीनता, जो पहिले केवल एक साथ किया जाता था उसे अलग-अलग करनेसे आती है, जैसा कि पिआनोवादक प्रत्येक अलग उंगलीसे स्वरोंको दबानेमें करता है, जबकि पहिले ऐसा करनेमें उसकी अन्तिम तीन उंगलियां एक साथ हिलती थीं। बहुधा कई बार नवीनता इस बातमें रहती है कि हम किसी नयी परिस्थिति, किसी नये व्यक्ति या किसी नयी वस्तुसे परिचित हो लें और उस परिस्थिति, व्यक्ति या वस्तुके साथ व्यवहार करनेका कोई प्रभावशाली मार्ग ढूंढ़ निकालें।

जब कोई बच्चा एक नया खिलौना पाता है, तो वह उसे ध्यानपूर्वक उलट-पुलट कर देखता है और उसके साथ प्रयोग करके यह जाननेकी चेष्टा करता है कि यह खिलौना क्या कर सकता है और वह उस खिलौनेका क्या उपयोग कर सकता है। अब तक खिलौनोंसे खेलनेके जो ढंग उसे मालूम होते हैं, उनके अनुसार वह उस खिलौनेसे भी खेलता है, किन्तु उसको पता चलता है कि यह खिलौना कुछ नये ढंगका है, इसलिए उसे उससे अपना समायोजन करना होगा। यदि वह डगरौना[७] *है, तो वह गेंदकी तरह व्यवहार नहीं करेगा।* वह अपनी छड़ी से डगरौनेको कई तरहसे मारता है, उसे फेंक देता है या किसी झाड़ी या दीवारसे उसे टकरा देता है, किन्तु जब वह उसे ठीकसे घुमाता है और ठीक तरीक़ा इस्तेमाल करता है, तब डगरौनेके साथ खेलनेमें उसे प्रसन्नता होती है। कुछ समय बाद वह अपने डगरौनेसे भलीभांति परिचित हो जाता है और उसे लुढ़कानेके लिए वह ठीक गतियां करता है।

सीखनेका एक तत्व : प्रबलीकरण[८]. सीखनेके लिए अभ्यास या चेष्टा एक आवश्यक वस्तु है। चाहे वह पिआनो बजानेकी गत्यात्मक क्रिया हो, या संगीत सुननेकी सांवेदनिक क्रिया, किन्तु हर काममें किसी न किसी रूपमें क्रिया अवश्य करनी पड़ती है। एक पुरानी मनोवैज्ञानिक कहावत है कि 'हम करनेसे सीखते हैं'। यह ठीक तो है, परन्तु इसमें सारी बातोंका समावेश नहीं होता। इसमें एक और तत्व भी है जो इसी कहावतमें कुछ शब्द जोड़ देनेसे स्पष्ट हो जाता है: 'हम "करने" और उसका परिणाम देखकर सीखते हैं'। जब नौसिखिया पिआनोवादक दोनों हाथोंसे ठीक राग *निकाल पानेमें सफल हो जाता है, तब इसका अच्छा परिणाम*

[१] primary visual area [२] maturation [३] exercise [४] knowledge [५] responses [६] sense perception [७] hope [८] reinforcement

उसे यही काम फिर से करनेके लिए प्रोत्साहित करता है। जब श्रोता यह समझने लगता है कि वह रागके स्वर-क्रमको अच्छी तरह जानने लगा, तब वह अपने सुननेका परिणाम जान लेता है और उस रागको सीखने लगता है।

प्रबलीकरण[१] व्यक्तिकी अपनी ही चेष्टाके परिणामोंके प्रति उसकी प्रतिक्रिया होता है। एक प्रकारसे वह परिणामोंकी जांच करता है। उसके लिए यह जानना आवश्यक है कि परिवेशके साथ उसने जो व्यवहार किये, उनके क्या परिणाम निकले। वह इन परिणामोंकी जांच थोड़ा बहुत जानबूझकर और सावधानीके साथ करता है। जब केवल दो विकल्प[२] रहते हैं, तो जांच करना सरल होता है। किसी *कार्यालयमें प्रवेश करनेके लिए दो दरवाज़ोंमें से कोई एक यदि आपको चुनना हो, तो आप एक ही बारमें एक ही* जांच और प्रबलीकरणके पश्चात् ठीक दरवाज़ेको चुनना सीख जाते हैं। इस मामलेमें एक बारकी 'सब ठीक है' प्रतिक्रिया या प्रबलीकरणकी प्रतिक्रिया ही भविष्यकी सही प्रतिक्रिया को निश्चित कर देती है (३०)। जब बच्चा अपने डगरौने[३] पर ठीक तरहसे आघात करता है और उसके अच्छे परिणाम को देखता है, तब वह सफल आघातको पक्का और प्रबल कर देता है। किन्तु इस मामलेमें प्रबलीकरण उतना निश्चित नहीं होता जितना दो दरवाज़ोंके मामलेमें था, क्योंकि इसमें स्थिति उतनी स्पष्ट नहीं होती। उसे यथासम्भव बार-बार प्रयत्न करना पड़ता है और डगरौनेको चलानेका ठीक तरीक़ा मालूम करना पड़ता है। इसके बाद धीरे-धीरे वह अपने डगरौनेको सफलतापूर्वक चलानेकी विधि सीख जाता है। अन्य कई कार्य भी हैं, जिनको डगरौना घुमानेकी भांति ही काफ़ी अभ्यास और कई बारके प्रबलीकरण[१] के बाद सीखना पड़ता है।

यह आवश्यक नहीं कि प्रबलीकरणसे सन्तोष और प्रसन्नता हो ही। बिजली चमकनेके बाद ज़ोरकी जो कड़कड़ाहट होती है, वह कई लोगोंको नहीं सुहाती, फिर भी वे इस क्रमको ख़ूब सीख जाते हैं। इसमें प्रबलीकरणका यह स्वरूप होता है: जब बिजलीकी चमकके बाद कड़कड़ाहटकी घटना कई बार हो चुकती है, तब कोई बच्चा बिजलीकी हर चमकके बाद कड़ककी आशा करने लगता है। वह कड़क का 'सामना' *करनेके लिए अपनेको तत्पर कर लेता है और यह तत्परता* उस समय पक्की होती है, जिस समय चमकके तुरन्त बाद कड़क सुनाई देती है। परिवेशसे व्यवहार करनेकी कला सीखनेमें व्यक्तिको जानना पड़ेगा कि वह किस चीज़की आशा करे और क्या काम करे। प्रबलीकरण तथा सामान्य सीखने की यह बात अगले किसी प्रकरणमें पूरी तरह विचारी जायगी।

व्यवहार का विकास

अब हम देखना चाहते हैं कि विकासके ऊपर दिये तीन कारणोंका शिशुके व्यवहारको वयस्कके व्यवहारमें रूपान्तरित करनेमें *क्या आपेक्षिक महत्व है? जन्मके समय तक परिपचनका* कार्य-भाग प्रमुख रहना चाहिए। साथ ही उस समय तक शिशुकी मांस-पेशियों और निचले स्नायु-केन्द्रोंमें अभ्यास (व्यायाम) के द्वारा कुछ शक्ति आ जानी चाहिए। परन्तु जहां तक हम समझ पाते हैं, परिवेशके साथ सफलतापूर्वक व्यवहार करना सीखने या प्रबलीकरणकी बात उस समय तक उठती ही नहीं। जन्मके बाद अभ्यास और सीखनेका उपयोग *अधिक बढ़ जाता है, परन्तु यह समझनेका कोई कारण नहीं* कि परिपचनकी क्रिया समाप्त हो जाती है। दांतों, अस्थियों और वृहत् मस्तिष्कीय त्वक्ष[४] के विकासमें परिपचनका नियम निश्चित रूपसे लागू होता है। यह तो हम देख ही चुके हैं कि जन्मके समय शिशुका वृहत् मस्तिष्कीय त्वक्ष इतना अपरिपक्व होता है कि वह शायद कोई कार्य कर ही नहीं सकता। हम विशेष रूपसे जानना यह चाहेंगे कि बच्चेकी शक्ति और कुशलतामें जो वृद्धि होती है, उसका एकमात्र कारण क्रिया और सीखना है, या उसका एक कारण निरन्तर परिपचन भी है?

मुर्गीके छोटे-छोटे बच्चोंके चुगनेकी क्रिया परिपचन और सीखनेके सम्बन्धको स्पष्ट कर देती है। अंडेसे बाहर निकलते ही बहुत शीघ्र मुर्गीका बच्चा धरती पर बिखरे हुए अन्नके दानों को चुगनेकी चेष्टा करता है। वह दानेको लक्ष्य करके अपनी चोंच मारता है, परन्तु उसका लक्ष्य बहुत निश्चित नहीं बैठता और वह अनाजके दानोंको चुगने और उन्हें उठाने और *निगलने की क्रियामें केवल २०% बार ही सफलता प्राप्त* कर पाता है। दिन-प्रति-दिन उसकी सफलताका प्राप्तांक बढ़ने लगता है। प्रयोगोंसे पता चलता है कि इस विकासका एक कारण जहां अंडेमें से निकलनेके बाद उसका क्रमशः प्रौढ़ता प्राप्त करना है, वहां मुख्य कारण हैं—उसका अभ्यास और सीखना। इतना तो स्पष्ट है ही कि चुगनेकी क्रिया नैसर्गिक है और परिपचनसे प्राप्त होती है, किन्तु ठीक *तरहसे चुगना तो तभी आ सकता है जब मुर्गीका बच्चा बार-* बार प्रयत्न करे और ग़लती करे तथा ठीक गतिका प्रबलीकरण हो (४)।

परिपचनकी प्रक्रियाके साथ-साथ अभ्यास और प्रबलीकरण की भी आवश्यकता होती है; प्रौढ़न सीखनेके लिए मार्ग प्रशस्त करता है। परिपक्वतामें जैसे-जैसे वृद्धि होती है, बच्चा नये-नये कार्य करना प्रारम्भ करता है, जिनमें सीखना सम्भव

[१] reinforcement [२] alternatives [३] hoop [४] cerebral cortex

होता है। जब प्रौढ़नके कारण बच्चेके दांत निकलते हैं, तो वह चबाने और काटनेकी कला सीखने लगता है। जब किशोर बच्चेका कंठ प्रौढ़ता प्राप्त करता है और उसकी आवाज बदल जाती है, तब उसे उच्च अथवा गम्भीर स्वरोंमें गाना सीखने का अवसर मिलता है।

नवजात शिशुकी चेष्टा. यद्यपि पैदा होनेके बाद शिशु कुछ दिनों तक अधिकांश समयमें सोता ही रहता है, तो भी यदि सावधानीसे देखा जाय और परीक्षा की जाय, तो पता चलेगा कि वह कई तरहकी गतियां[1] करता है। उसको प्रारम्भसे ही सांस लेने, छींकने, खांसने, जम्हाई लेने, दूध चूसने, निगलने, मल-मूत्रकरनेकी क्रियाएं आती हैं। भूखा होने पर वह चिल्लाता है, रोता है और अपनी भुजाओं तथा पैरोंको इधर-उधर फेंकता है, और तब तक ऐसा करता रहता है, जबतक कोई उसकी सहायताके लिए आ नहीं जाता, यद्यपि यह सही है कि वह शुरूमें यह नहीं जानता कि इससे कोई लाभप्रद परिणाम निकलेगा। वह झुकता है, अपनी भुजाओं और टांगोंको फैलाता है, हाथोंको खोलता है और बन्द करता है, यहां तक कि पालनेके डंडेको इतनी दृढ़तासे पकड़ लेता है कि उसका पूरा वजन उससे झूल जाता है। वह अपने अंगूठे मोड़ता है, अपने मुंह और आंखोंको खोलता बन्द करता है। संक्षेपमें, वह अपनी समस्त मांस-पेशियों का उपयोग करता है। कुछ कार्य, जैसे छींकना और निगलना बहुत ही सुव्यवस्थित कार्य होते हैं और कौशलपूर्ण नैसर्गिक शैलीका उनमें अच्छा परिचय मिलता है। एक वयस्क व्यक्तिको किसी बच्चेका हाथ-पैर फेंकना अनियमित और लक्ष्यहीन लगेगा, परन्तु बात ऐसी नहीं है। यदि इन क्रियाओं को अलग-अलग करके देखा जाय, तो मालूम पड़ेगा कि विभिन्न जोड़ोंको हिलाते समय मांस-पेशियोंके मिल-जुलकर कार्य करनेका अच्छा उदाहरण दिखायी देता है। मांस-पेशियों का यह संयुक्त कार्य मस्तिष्कके तने और सुषुम्नामें स्थित निचले केन्द्रों द्वारा नियंत्रित होता है।

यद्यपि शिशुकी गतियोंमें प्रशंसनीय सहयोग दिखाई देता है और यह प्रारम्भिक शारीरिक स्तर पर ठीक भी है, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि ये 'परिवेशसे व्यवहार' करती हैं, और यदि कहा जा सकता है तो एक संकीर्ण अर्थमें ही। जन्मके एक या दो महीने बाद शिशु परिवेश के साथ व्यवहार करना शुरू करता है। वह प्रारम्भमें लोगोंको ध्यानसे देखने लगता है, और उसकी हरकतें व्यक्तियों और वस्तुओंसे कुछ-कुछ सम्बन्धित होने लगती हैं। उसके व्यवहारमें यह जो महत्त्वपूर्ण विकास होता है, उसका कारण सम्भवतः त्वक्षका इतना प्रौढ़ हो जाना है कि वह कुछ क्रिया आरम्भ कर सके। परिवेश के प्रति रुचि और परिवेशकी वस्तुओंके प्रति प्रतिक्रिया निश्चित रूपसे त्वक्षका कार्य है। त्वक्ष जैसे-जैसे विकसित होता जाता है, वह शारीरिक गतियोंका उत्तरदायित्व ग्रहण करता जाता है। वह निचले केन्द्रोंके द्वारा नियंत्रित संगठित गतियोंका उपयोग परिवेशकी वस्तुओं से व्यवहार करनेमें करता है। वह ज्ञानेन्द्रियोंका उपयोग करके इन वस्तुओंको जानने लगता है। वस्तुओंका निरीक्षण करनेकी ज्ञान-क्रिया और उनके प्रति चेष्टा करनेकी गति-क्रिया साथ-साथ होती हैं। शिशु वस्तुओं का निरीक्षण कुछ-कुछ करने लगता है और उन्हें दुबारा देखने पर पहचान लेता है। जो व्यक्ति उसको प्यार करता है, उसको देखने पर वह मुस्करा कर, बोलकर, अपने हाथ-पैरोंको हिलाकर प्रकट करता है कि वह उसको पहचानता है। इस प्रकारका व्यवहार जन्मके प्रारम्भिक दिनों या सप्ताहोंमें ही नहीं दिखायी देने लगता, बल्कि दूसरे या तीसरे महीनेमें दिखायी देता है, जबकि त्वक्ष इतना प्रौढ़ हो चुका होता है कि सीखनेके सरल रूपोंमें वह भाग ले सके।

नेत्र और हाथ. परिवेशके साथ व्यवहार करनेमें नेत्र और हाथ सबसे प्रमुख साधन सिद्ध होते हैं; नेत्र वस्तुओंके विषयमें जानकारी प्राप्त करनेमें और हाथ वस्तुओंके साथ काम करनेमें। दोनों सहयोगसे कार्य करते हैं, किन्तु « नेत्र और हाथकी सम्बद्धता » का यह उदाहरण नवजात शिशुमें देखने को नहीं मिलता। उसके नेत्र किसी चमकीली वस्तु पर टिक सकते हैं, परन्तु वह उस वस्तु तक पहुँचनेका कोई प्रयत्न नहीं करता। उसके हाथ किसी वस्तुको दृढ़तापूर्वक पकड़ सकते हैं, पर उसके नेत्र उस वस्तुकी ओर नहीं देखते। वह कोई ऐसा चिह्न नहीं प्रकट करता, जिससे पता चल सके कि वह वस्तुओंको जानता है और उनका कुछ उपयोग करना चाहता है। फिर भी, प्रथम दो महीनोंके भीतर उसके नेत्र किसी चलती हुई वस्तु या व्यक्तिका अनुसरण करने लगते हैं और उस वस्तुकी दूरी पर ध्यान केन्द्रित करने लगते हैं। इससे लगता है कि वह इन महीनोंमें कुछ वस्तुओंसे परिचय प्राप्त कर लेता है। उसके हाथ उन वस्तुओंको पकड़नेके लिए कुछ प्रयत्न करें, इसके पूर्व कुछ सप्ताहों तक वह अधिकाधिक निश्चितताके साथ उन वस्तुओंको देखता रहता है। इसके बाद किसी रुचिकर वस्तुके दीख जाने पर हाथ जोरसे हिलने लगते हैं, जिससे लगता है कि शिशु उस वस्तुके साथ कुछ करना अवश्य चाहता है, पर यह नहीं जानता कि उससे कैसे व्यवहार किया जाय। कुछ सप्ताहों बाद दोनों हाथोंको आगे फेंककर वह उस वस्तुको पकड़नेकी निश्चित चेष्टा करने लगता है, परन्तु उँगलियां इस क्रियामें उसका साथ नहीं देतीं

[1] movemer

आकृति ६५. किसी वस्तुके पास पहुँचने और उसे पकड़नेके बीचकी स्थितियां। शिशुओंकी आयु भिन्न-भिन्न है, किन्तु अनुक्रममें स्थिरता है: पहले वस्तुको पकड़नेकी चेष्टा किये बिना हाथ वहां तक पहुँचता है, उसके बाद उसे अपनी ओर सरकानेकी कोशिश होती है, तत्पश्चात् पूरे हाथसे वस्तुको पकड़ लिया जाता है, फिर अंगूठा और उँगलियां एक-दूसरेके सामने होकर वस्तुको जकड़ लेती हैं, अन्ततः केवल अंगूठे और दो उँगलियोंसे ही वस्तु पकड़नेका काम चल जाता है। [हालवर्सन, ११]।

और न वह वस्तुतः उस वस्तु तक पहुंचकर उसे पकड़ ही पाता है। सात महीनेकी अवस्था हो जाने पर शिशुको उस वस्तुको पकड़नेमें क़ाफ़ी सफलता मिलने लगती है, वह अपनी हथेलीके सहारे सभी उँगलियोंसे वस्तुको पकड़ने लगता है। वस्तु तक पहुंचनेकी उसकी चेष्टा अधिक सीधी और स्पष्ट होनेलगती है। वर्षके अन्तिम तीन महीनोंमें हम देखते हैं कि वह वस्तुको अंगूठे और प्रथम दो उँगलियोंके सहारे पकड़ लेता है और उसको उलट-पलट कर देखने लगता है। कुल मिला कर, हमें शिशुको इस बातके लिए श्रेय देना चाहिए कि वह अपने नेत्रों और हाथोंका संयुक्त उपयोग करके अपने प्रथम वर्षमें ही वस्तुओंके साथ व्यवहार करनेमें पर्याप्त प्रगति कर लेता है। यह प्रगति कुछ तो हाथों और मस्तिष्क की परिपक्वता के कारण हो पाती है और कुछ अभ्यास और सीखनेकी प्रक्रिया के कारण। जब बच्चा किसी वस्तुके निकट पहुंचने की चेष्टा करता है, तब उसकी क्रिया सफल होने पर प्रबलीकृत हो जायगी। इस प्रकार प्रयत्न और भूलसे तथा प्रबलीकरण से पहुंचने और पकड़नेकी सर्वोत्तम गतियां चुन ली जाती हैं (११, १८)।

चलना सीखना. जन-साधारणके विश्वासके बावजूद यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि मानव-शिशु चलना सीखता है। यह तो निश्चित है कि माता-पिता बच्चेको चलने की «शिक्षा नहीं देते», क्योंकि बहुत कम लोग चलने की क्रिया को इतनी अच्छी तरह समझते हैं कि उसे दूसरोंको सिखा सकें। बड़ा आदमी बच्चेको केवल उत्तेजना और प्रोत्साहन दे सकता है और उसे बुरी तरहसे गिरनेसे बचा सकता है, किन्तु बच्चा चलना तो अपनेही प्रयत्नोंसे सीखता है। कई पशुओंके बच्चे पैदा होते ही चलने लगते हैं। उनके लिए परिपचन प्रारम्भिक कार्य पूरा करचुका होता है। केवल इस बातसे कि मनुष्यके बच्चेका विकास धीमी गतिसे होता है, यह नहीं मान लेना चाहिए कि उसके मामलेमें परिपचन किसी भी रूपमें कम सहायता करता है। यह स्पष्ट है कि नवजात शिशुकी टांगें और पैर इतने परिपक्व नहीं होते कि वह भली प्रकार चल सके; यदि मान भी लें कि वह चल सकता है, तो उसके शेष शरीरकी तुलनामें उसका सिर इतना भारी होता है कि वह बहुत धीमे चलनेवाला ही हो सकता है। इसके अतिरिक्त चलने जैसी जटिल क्रिया को सीखनेके पहिले यह आवश्यक है कि शिशुका मस्तिष्क काफ़ी परिपक्व हो जाय।

यह सब मान लेनेके बाद भी हमें अपने प्रश्नका कोई निश्चित उत्तर नहीं मिल सका। दो सम्भावनाएं बनी रहती हैं: (१) चलना एक प्राकृतिक गति हो सकती है, जो एक स्नायु-केन्द्र से नियंत्रित होती है। यह स्नायु-केन्द्र परिपचनके द्वारा विकसित होता है और जन्मके एक वर्ष या कुछ अधिक दिनोंके बाद क्रियाशील होनेके लिए प्रस्तुत हो जाता है। (२) चलना गतियोंका सीखा हुआ मेल हो सकता है। नाना प्रकारकी गतियोंके साथ प्रयोग करने और उनमें से सर्वाधिक सफल गतियोंको अपनानेके बाद इन गतियोंका निर्माण होता है। अपनी समस्या पर कुछ प्रकाश पानेके लिए हमें शिशुके जन्म से लेकर उसका चलना प्रारम्भ करने तक उसका निरीक्षण करना चाहिए।

पहिले सालमें बच्चा क्रिया की दो दिशाओंमें विकास करता है और ये दोनों ही चलनेकी क्रिया में संयुक्त होती हैं। एक है «सरकने (स्थानान्तरण[1])» की क्रिया और दूसरी है «सन्तुलन[2]» की क्रिया। प्रथम कुछ महीनों तक तो वह एक स्थानसे दूसरे स्थान तक हिलने-डुलनेका कोई प्रयास नहीं करता। ६–७ महीनेकी अवस्था हो जाने पर वह फ़र्शके सहारे पेटके बल रेंगनेका प्रयास करता है और आठवां महीना पूरा होते-होते रेंगनेकी क्रियामें सफलता पा लेता है। कुछ

[1] locomotion [2] balancing
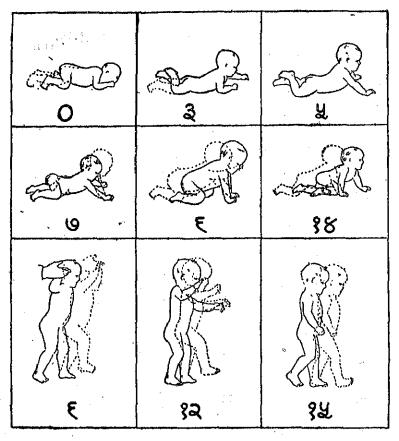
आकृति ६६. चलकर एक जगह से दूसरी जगह जाने की प्रक्रिया (लोकोमोशन) के विकासकी स्थितियां। संख्याएं स्थितियों (स्टेजेज) के प्रारम्भ होनेके समयकी आयुको महीनोंमें सूचित कर रही हैं। बादमें रेंगनेकी स्थितियां चलनेकी प्रारम्भिक स्थितियों में विकसित हो जाती हैं। [मैक्ग्रॉ १८]।

दिनों बाद वह अपने हाथों और घूटनोंके सहारे उठने लगता है और ६ महीनेकी आयु तक बहुधा घुटनोंके बल चलने में अच्छी प्रगति कर लेता है। इसके पश्चात् वह अपने पैरों का अधिक उपयोग करता है। रेंगते समय वह उनमेंसे एक या दोनोंको फ़र्श पर टिकाकर चलता है। कुछ बच्चे सीधे खड़े होकर चलने के पहिले कुछ समय तक हाथों और पैरोंके सहारे चलते हैं। यद्यपि बच्चोंके विकासकी गतिमें भिन्नता पायी जाती है, तथापि लगभग सभी बच्चे पेटके बल सरकने, घुटनोंके बल रेंगने और खड़े होकर चलनेके क्रमसे होकर अवश्य गुज़रते हैं (२)।

सन्तुलनकी प्रक्रिया भी सिर-धड़-टांगके क्रमसे गुज़रती है। ३–४ महीने बाद ही बच्चा अपना सिर सँभालने लगता है, ७–८ महीनेका होने पर वह स्थिर बैठने लगता है, १० वें महीनेके आस-पास वह सहारा लेकर खड़ा होने लगता है, और १२ वें महीने तक बिना किसी सहारेके खड़ा हो जाता है। वह १०–११ महीनेके बाद किसीका सहारा लेकर चलने लगता है और १४ महीनेका होने पर बहुधा अकेले चलने लगता है। पहले-पहल चलते समय वह अपने पैरोंको चौड़ा रखता है और उसकी भुजाएं फैली हुई रहती हैं, किन्तु जैसे ही उसका सन्तुलन ठीक होने लगता है, उसके पैरोंकी चौड़ाई कम होने लगती है और उसके हाथ अन्य उपयोगोंके लिए स्वतंत्र हो जाते हैं (३, १०, १८, २७)।

ये नियमित क्रम (विशेषकर सन्तुलनका क्रम) परिपचनके द्वारा अच्छी तरह समझाये जा सकते हैं। बच्चेको ठीकसे बैठनेकी शक्ति पानेसे पूर्व अपना सिर क्यों सँभालना पड़ता है? इस तथ्यमें सार जान पड़ता है कि ग्रीवा (गर्दन) की

गतियोंका नियंत्रण करने वाले स्नायु-केन्द्र पहिले प्रौढ़ता प्राप्त कर लेते हैं और कटि-प्रदेश तथा टांगोंसे सम्बन्धित स्नायु-केन्द्र कुछ देरमें परिपक्व होते हैं। एक सम्भावना यह भी है—हालांकि हम अभी तक निश्चयात्मक रूपसे इस सम्बन्धमें कुछ नहीं कह सकते—कि मनुष्यका सीधा खड़ा होना और एक स्थानसे दूसरे स्थानको चलना-फिरना एक जटिल स्नायु-यंत्र[1] के अधीन है, जो परिपचनके द्वारा विकसित होता है और बच्चेके चलना शुरू करने तक क्रियाशील होनेकी स्थितिमें पहुंच पाता है। ऐसा होने पर भी सीखनेका अपना महत्त्व है। ठीक सन्तुलन और चलने-फिरनेके लिए अभ्यास और प्रबलीकरणकी आवश्यकता हो सकती है। बढ़ने वाले शिशुका यह विशेष स्वभाव होता है कि वह अपनी बढ़ती हुई शक्तियोंका उपयोग करनेके लिए हर समय उत्सुक रहता है। वह उनका काफ़ी अभ्यास करके उन्हें मजबूत करता रहता है। प्रबलीकरण उस समय होता है, जब कोई बच्चा किसी प्राप्य वस्तु तक पेटके बल रेंग कर पहुंचने में सफल हो जाता है, जब वह घुटनोंके बल चलकर पहिलेसे भी तेज़ीसे उस वस्तु तक पहुंच जाता है और जब वह चलकर उस आकर्षक वस्तु तक पहुंचने में समर्थ हो जाता है। दृष्टि वाले बच्चोंकी अपेक्षा दृष्टिहीन बच्चे बहुत शान्त दिखायी देते हैं। सन्तुलन और चलने-फिरनेके लिए उन्हें दृष्टि वाले बच्चोंकी अपेक्षा कम उत्तेजना और प्रबलीकरण मिल पाता है। खड़े होने और चलनेमें ही वे बहुधा ९--१० महीने पिछड़ जाते हैं। सम्भवतः चलनेकी क्रियासे सम्बन्धित स्नायु-यंत्र अन्धे और दृष्टि वाले बच्चेमें एक-सी शीघ्रतासे प्रौढ़ता प्राप्त करता है, इसलिए यह अन्तर अभ्यास तथा सीखनेके कारण ही होना चाहिए। संक्षेपमें, हम कह सकते हैं कि परिपचन और सीखना—दोनों ही चलनेकी क्रियाके विकासमें हाथ बंटाते हैं (७,१७)।

बोलना सीखना. यह तो निर्विवाद ही है कि बच्चा बोलना सीखता है। ऐसी कोई प्राकृतिक भाषा नहीं है जिसे सभी बच्चे एक निश्चित आयुके होने पर स्वतः बोलने लगते हों। प्रत्येक बच्चा अपने विशेष सामाजिक परिवेशकी भाषा सीखता है। परन्तु यहां भी परिपचन आवश्यक भाग लेता है। कई कारणोंसे नवजात शिशु कोई भाषा सीखनेके लिए परिपक्व नहीं होता। उसकी वाक्-इन्द्रियां बोल-चालकी भाषाकी सूक्ष्म गतियोंको उत्पन्न करनेमें असमर्थ रहती हैं। वह लोगोंकी बोलीको ध्यानपूर्वक सुननेके योग्य नहीं होता और जो कुछ वह सुनता है, उसके एक शब्दको दूसरे शब्दसे अलग करके समझनेकी शक्ति भी उसमें नहीं होती। शब्दोंको उनके अर्थके साथ मिलाकर समझनेकी योग्यता तो उसमें और भी अविकसित रहती है।

भाषा[2] को बोलनेमें बच्चेकी प्रगतिका अनुमान विभिन्न आयुमें उसके द्वारा की जानेवाली ध्वनियोंसे किया जा सकता है। पहिलेपहिल वह चिल्लानेमें अपनी वाक्-इन्द्रियों[3] का उपयोग करता है। प्रथम कुछ सप्ताहोंमें वह हुँकारनेकी ध्वनि निकालने लगता है, दो महीनेकी आयुमें वह 'अग्गू-अग्गू' जैसे शब्द-खंडोंका उच्चारण करने लगता है और बादमें 'बा-बा' 'दा-दा', 'म-म्मा' जैसे शब्दोंका। लगभग छै महीनेका हो जाने पर बच्चा दूसरे व्यक्तिकी बातोंके प्रत्युत्तरमें ध्वनियां करने लगता है। क़रीब ९ महीनेका हो जाने पर वह अपने आशयको अभिव्यक्त करनेवाली ध्वनियोंका उच्चारण करनेमें सफल हो पाता है। दूसरे लोगोंके शब्दोंका अनुकरण करके बच्चा लगभग १४ महीनेकी आयुमें पहिलेपहिल स्पष्ट शब्दका उच्चारण करता है। दूसरे वर्षमें उच्चारित सार्थक शब्दोंकी संख्या धीरे-धीरे और बादमें तेज़ीसे बढ़ने लगती है और इस वर्षकी समाप्तिके लगभग वह वाक्यांश और छोटे-छोटे वाक्य बोलने लगता है। कुछ बच्चे इन सीढ़ियोंसे अन्य बच्चोंकी अपेक्षा शीघ्रतासे गुज़र जाते हैं, किन्तु इन सीढ़ियोंसे गुज़रने का क्रम सभी बच्चोंके लिए लगभग समान होता है। चलने की क्रियाकी भांति यहां भी नियमित क्रम होनेसे यह प्रतीत होता है कि भाषाको सीखनेमें भी परिपचनकी प्रक्रिया लागू होती है (२७)।

बच्चा वाक्-शक्ति प्राप्त करनेके साथ-साथ तेज़ीसे उस का उपयोग करता है। जब कभी वह दूसरे लोगोंके शब्दोंको समझता है, तो प्रबलीकरण होता है। (उन शब्दोंका स्वयं उच्चारण करनेकी सामर्थ्य आनेके पहिलेही वह उनको समझने लगता है।) जब कभी वह दूसरे लोगोंको अपनी बात समझाने की चेष्टा करता है, तब इसमें सफल होने पर भी प्रबलीकरण होता है।

सामाजिक विकास. यह उचित ही कहा गया है कि बच्चे के विकासका मतलब उसका एक सामाजिक प्राणी बन जाना से है। एक नवजात शिशु दूसरोंका आश्रित अवश्य रहता है, परन्तु उसे आप सामाजिक प्राणी नहीं कह सकते। प्रथम वर्षके अन्त तक वह अपने सामाजिक परिवेशसे सक्रिय लेन-देनका व्यवहार करने लगता है और अगले वर्षोंमें यह परस्परक्रिया बढ़ती ही जाती है। उसे उपदेश तथा उदाहरणसे, पुरस्कार तथा दंडसे, क्या करना चाहिए और क्या नहीं, यह शिक्षा दी जाती है। संक्षेपमें, सामाजिक परिवेश, समूहमें आने वाले प्रत्येक नये सदस्यका सामाजिकीकरण करनेमें सक्रिय भाग लेता है। कोई सोच सकता है कि बच्चेको बलात् सामाजिक प्राणी बनाया जाता है। किन्तु नहीं, बच्चा स्वयं आगे बढ़कर

[1] complex nerve mechanism [2] motor speech [3] vocal organs

सामाजिक परिवेशका स्वागत करता है। जैसे ही वह ध्यान देनेमें सक्षम होता है, वह पहिले लोगोंको देखता है। जिस वस्तु को वह निश्चित रूपसे पहिले देखता है, वह है किसी व्यक्तिका चेहरा। दो महीनेकी आयुमें ही शिशु किसी व्यक्तिको देखकर मुस्कराने लगता है। दस महीनेकी आयुमें वह वयस्क व्यक्तिके साथ छोटे-छोटे खेल खेलनेमें आनन्द लेने लगता है। १२ महीनेका होते-होते वह अनुकरण कर सकनेकी स्थितिमें आने लगता है। इस समय वह जैसा दूसरोंको करते देखता है, वैसा ही यथाशक्ति करनेकी चेष्टा करता है।

जन्मके पहिले वर्ष या उससे कुछ आगे भी बच्चेके सामाजिक परिवेशमें मुख्यतः उन्हीं लोगोंका समावेश होता है, जो शक्ति और योग्यतामें उससे श्रेष्ठ हैं। इस अनुभवके द्वारा वह अपने बराबर आयुके बच्चोंसे व्यवहार करना नहीं सीख पाता। जब १८ महीनेकी अवस्थामें वह अपनी आयुके दूसरे बच्चोंके साथ किसी शिशु-शाला (नर्सरी स्कूल) में रखा जाता है, तब प्रारम्भमें दूसरे बच्चों पर बहुत कम ध्यान देता है और अधिकतर अपने-आप खेला करता है। कुछ महीनोंमें वह उनके प्रति अधिक ध्यान देने लगता है और छूकर, ढकेलकर और खींचकर उनके साथ प्रारम्भिक सामाजिक सम्पर्क स्थापित करनेकी चेष्टा करता है। तीन वर्षकी आयु होते-होते बच्चे साथ-साथ मिलकर एक ही तरहकी वस्तुओंसे खेलना पसन्द करते हैं। हरेक बच्चा अपनी चीज बनानेमें व्यस्त दिखायी देता है। ४ वर्षकी अवस्थामें वे बड़ी-बड़ी चीजें (जैसे, मकान बनानेके खेलमें) बनाने लगते हैं। वर्ष-प्रति-वर्ष हम उनके खेलोंमें सहयोग और श्रम-विभाजन की प्रवृत्तिको अधिकाधिक बढ़ते देखते हैं। यह सामाजिक विकास बहुत कुछ बुद्धि और ज्ञानकी बुद्धि पर निर्भर होता है (२५, २६)।

प्रारम्भिक वर्षोंमें भी सहानुभूति-सूचक व्यवहारकी शुरुआत देखी जा सकती है, किन्तु अपने साथीको उसकी आवश्यकताके समय वास्तविक सहायता पहुंचाना तब तक नहीं आता, जब तक उसके बौद्धिक विकासमें कुछ प्रगति नहीं हो जाती। कुछ कर सकनेके पहिले, परिस्थितिको समझने की योग्यता उसमें आनी चाहिए। न जाने क्यों, एक ही आयुके कुछ बच्चे दूसरे बच्चोंकी तुलनामें अधिक सहानुभूतिशील होते हैं। एक ही बच्चा बहुत मददगार और साथ ही बहुत स्वार्थी भी हो सकता है। शायद इसका कारण यह हो कि वह बहुत सक्रिय और स्वच्छन्द[१] होता है (२४)।

व्यक्तित्वका विकास. जैसे-जैसे बच्चेकी आयु बढ़ती जाती है, विशेषकर किशोरावस्थामें, व्यक्तित्व-सम्बन्धी जैविक और सामाजिक तत्व कुछ हद तक बदलते जाते हैं। सामाजिक पक्षमें हम समायु बच्चोंके साथ बच्चेकी लोकप्रिय बननेकी रुचिको गिना सकते हैं। यह रुचि किशोरावस्थामें विशेष रूपसे प्रबल प्रतीत होती है। जिस व्यवहारसे लोकप्रियता प्राप्त होती है, उसका प्रबलीकरण होता है। किशोर-वयके बालक शीघ्र ही वयस्कोंमें अपनी गिनती करानेके लिए उनकी तरह लम्बे-तगड़े होनेके लिए और उनके समान व्यवहार करनेके लिए उत्सुक रहते हैं। किशोरावस्थाका प्रारम्भ होते ही बालोचितसे हटकर वयस्कोचित रुचियों और आकांक्षाओं में दिलचस्पी हो जानेका श्रेय कभी कभी 'सीखनेकी क्रिया'[२] को अर्थात् पूर्णरूपसे सामाजिक तत्वको दे दिया जाता है। किन्तु रुचियोंका यह परिवर्तन[३] लड़कोंकी अपेक्षा लड़कियोंमें दो वर्ष पहिले कैसे हो जाता है? क्या इसका सम्बन्ध जैविक प्रौढ़तासे नहीं है, जो लड़कियोंमें लड़कोंकी अपेक्षा दो वर्ष पहिले आ जाती है? जैसाकि आकृति ६७ में दिखाया गया है, लैंगिक-प्रौढ़ता[४] के ठीक पहिले शारीरिक विकासमें एकाएक तेजी आ जाती है। इसके तुरन्त बाद लड़की को ऋतु-स्राव होने लगता है और उसकी आकृति स्त्रीकी तरह हो जाती है; लड़केकी आवाज भी पुरुषकी सी हो जाती है और उसके दाढ़ी उगने लगती है। ये शारीरिक परिवर्तन अधिकतर प्रजननग्रन्थियों[५] और पोष-ग्रन्थि[६] के न्यासर्गों[७] के कारण होते हैं और इनका सम्बन्ध प्रौढ़नकी प्रक्रिया से है।

किशोरावस्थामें बालक या बालिकाके व्यक्तित्वमें जो उल्लेखनीय परिवर्तन होते हैं, वे हैं: अपने से भिन्न लिंग[८] के व्यक्तियोंमें रुचिकी वृद्धि, और स्वतंत्रताकी एक नूतन भावना। ये दोनों परिवर्तन जैविक प्रौढ़तासे सम्बन्ध रखते हैं, हालांकि किशोरोंके समूहका प्रभाव भी इन वृत्तियोंकी वृद्धि पर पड़ता है। लैंगिक-रुचि निश्चित रूपसे बहुत-कुछ न्यासर्गों[७] पर और स्वतंत्रताकी भावना वयस्क आकार और शक्ति पाने पर निर्भर होती हैं। बच्चा भी अपने वयस्क अभिभावकोंके प्रति कभी-कभी निष्फल विद्रोह करता है, किन्तु किशोरके रूपमें वह अपनेको इतना बड़ा और शक्तिशाली समझने लगता है कि अपनी स्वतंत्रताको दावेके साथ पेश कर सके। इस अवस्थामें वह एक नये जीवनमें प्रवेश करता है, क्योंकि वह पहिलेसे अधिक लम्बा और मजबूत हो चुका होता है और दूसरे लिंगमें उसकी दिलचस्पी हो चुकी होती है। फिर भी उसे यह सीखना होता है कि वह अपने से भिन्न लिंग[८] के व्यक्तियोंसे सफलतापूर्वक कैसे व्यवहार करे और किस प्रकार अपनी खिल्ली न उड़वाते हुए स्वतंत्र भी हो जाय।

बौद्धिक योग्यताका विकास. आपको याद होगा, बीने ने अपनी बुद्धि-परीक्षा-विधिका आधार इस तथ्यको बनाया

[१] uninhibited [२] learning [३] shift [४] puberty [५] gonads [६] pituitary [७] hormones [८] opposite sex
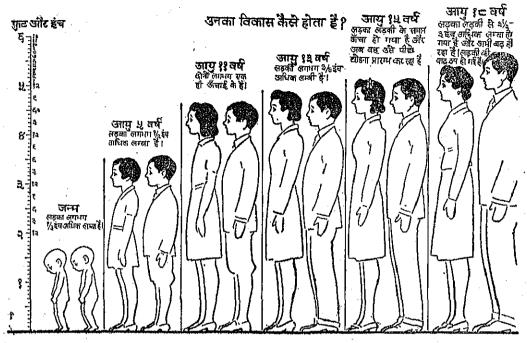
आकृति ६७. लड़कों और लड़कियोंमें प्रौढ़ता प्राप्त करनेके विभिन्न दौर। [शीनफ़ेल्ड २६]।

था कि आयुकी वृद्धिके साथ-साथ बच्चे बुद्धिकी दृष्टिसे अधिकाधिक योग्य होते जाते हैं। आपको यह भी स्मरण होगा कि इस प्रगतिकी उच्चतर सीमा उसने किशोरावस्थाको बताया था। यह निश्चित नहीं हो पाया है कि यह सीमा किशोरावस्थाके प्रारम्भमें ही समाप्त हो जाती है या उसके अन्तमें। १५ या १६ वर्षकी अवस्थाके बाद बुद्धि-परीक्षाके प्राप्तांक यदि बढ़ते भी हैं तो बहुत धीमी गतिसे; हालांकि अभी तक जो सबसे अच्छा प्रमाण हमें मिला है, उससे १८ या २० वर्षकी अवस्था तक भी प्राप्तांकोंमें बहुत ही धीमी प्रगति होती पायी गयी है (१३)। कॉलेजके छात्रोंकी प्रारम्भमें और कुछ समय तक कॉलेजके वातावरणमें रह लेनेपर परीक्षाएं ली गयी हैं, उनसे पता चला कि प्रारम्भिक प्राप्तांकोंसे बादके प्राप्तांक काफ़ी ऊंचे हैं। भाषा-सम्बन्धी परीक्षाओं, यथा शब्द-कोश और पढ़कर समझनेकी परीक्षाओंमें उनकी प्रगति सर्वाधिक दिखायी दी है और केवल उन छात्रोंको छोड़कर जिन्होंने अंकगणितका उपयोग गणित और विज्ञानमें किया, शेष छात्रों ने अंकगणितके प्राप्तांकोंमें उन्नतिके बजाय अवनति ही दिखायी। अन्य छात्र अभ्यास छूट जानेके कारण अंकगणित को कुछ भूल बैठे। भाषा-सम्बन्धी परीक्षाओं[1] में उनकी अधिक सफलता का कारण जितना भाषा-सम्बन्धी उनका प्रचुर अभ्यास है, उतना कॉलेजके जीवनमें आयी मस्तिष्ककी प्रौढ़ता नहीं है (१२)।

सही बुद्धि-विकास-वक्ररेखाका आकार ठीक वैसा ही नहीं हो सकता, जैसा कि आकृति ६८ में क़दके विकासकी वक्ररेखा का आकार है। जन्मसे पहिले अधिक मानसिक विकास नहीं हो सकता। किन्तु जन्मके प्रथम दो वर्षोंमें इस दिशामें तेज़ीसे प्रगति होती है। अपनी वयस्कताके अभिमानमें हम छोटे बच्चोंकी बौद्धिक उपलब्धियोंको नगण्य मान बैठते हैं और यह समझ लेते हैं कि किशोरावस्थामें ही सर्वोच्च मानसिक विकास होता है। लेकिन ज़रा दो वर्षके बच्चेकी उपलब्धियों[2] पर तो विचार कीजिए। वह अपने सामाजिक और भौतिक परिवेश के साथ सम्पर्क स्थापित कर चुका होता है। वह वस्तुओंको कुछ कुशलताके साथ हिला-डुला सकता है और लोगोंको अपने मनका भाव समझा सकता है। जन्मसे लेकर दो वर्ष की आयु तक उसकी जो मानसिक प्रगति होती है, वह वास्तव में उल्लेखनीय है। क्या हम किशोरावस्थाके किन्हीं दो वर्षों की अवधिमें ऐसी महत्त्वपूर्ण प्रगति देख सकते हैं? लैंगिक-प्रौढ़ता[3] के समय शारीरिक विकास भी उल्लेखनीय होता है, क्योंकि उस समय लड़के या लड़कीका क़द तेज़ीसे बढ़ता है। सम्भव है कि मानसिक विकासमें भी ऐसी तीव्र प्रगति होती

[1] verbal tests [2] achievements [3] puberty

हो, किन्तु इसका खंडन या मंडन करना कठिन है। कुछ व्यक्तियोंमें लैंगिक-प्रौढ़ताके पहिले या बादमें प्रगतिकी तेजी दिखायी देती है, परन्तु कुछ लोगोंमें इसके कोई लक्षण नहीं मिलते। यदि किशोरावस्थामें बालककी बौद्धिक योग्यतामें कोई तेज प्रगति होती भी हो, तो वह उसी आयुमें शारीरिक बाढ़की तेजी या जन्मके प्रथम दो वर्षोंमें बच्चेकी प्रगतिके समान उल्लेखनीय नहीं होती (१)।

«वयस्क जीवनमें प्रगति और अवगति». जनसाधारण में यह धारणा प्रचलित है कि बौद्धिक योग्यता मध्य आयु तक बढ़ती है और इसके बाद घटने लगती है। बुद्धि-परीक्षाओं के प्राप्तांकोंसे पता चलता है कि २५ या ३० वर्षकी अवस्था से बौद्धिक योग्यताका ह्रास प्रारम्भ हो जाता है, हालांकि यह ह्रासप्रारम्भमें बहुत धीमा रहता है। कई अन्वेषकों ने विभिन्न आयुके व्यक्तियोंकी परीक्षा लेकर यही निष्कर्ष निकाला है (१३, १९, २०, ३२)। विभिन्न आयुवाले समूहों के लोगोंकी तुलना योग्य बानगी प्राप्त करनेके लिए बड़ी सावधानी बरती गयी है, क्योंकि शिक्षित युवकोंकी तुलना अशिक्षित वृद्धोंसे करना या अशिक्षित युवकोंकी तुलना शिक्षित वृद्धोंसे करना न्यायपूर्ण नहीं कहा जायगा। कैलीफ़ोर्निया में इस तरहका अध्ययन किया गया था और उसमें समान शिक्षा-प्राप्त और एक ही सामाजिक स्तरके लोगोंकी परीक्षा ली गयी थी। जो परिणाम प्राप्त हुए थे, वे आकृति ६९ में दिखाये गये हैं। न्यूइंगलैंडमें किये गये एक अध्ययनमें कुछ छोटे कस्बों और देहाती जिलोंकी लगभग समस्त जनसंख्याकी परीक्षा ली गयी थी। इस अध्ययनका निष्कर्ष आकृति ७० के नीचे दर्शाया गया है। मुख्यतया ज्ञान पर आधारित परीक्षाओंके निष्कर्ष मुख्यतया जागरूकता[१] पर आधारित परीक्षाओंके निष्कर्षसे बिल्कुल भिन्न दिखायी दिये। सामान्य जानकारी सम्बन्धी वक्ररेखा २० वर्षसे ६० वर्षकी आयु तक लगभग एक ही सतह पर रहती है, परन्तु जागरूकता[१] की वक्ररेखा ७० वर्षकी आयुके बाद ही अपने ऊंचे बिन्दुसे नीचे गिरने लगती है। एक दूसरी विस्तृत जांचमें सीखनेकी योग्यता भी अपने उच्च बिन्दुसे २० वर्षकी अवस्थाके बाद सामान्य गतिसे ह्रासोन्मुख होती दिखायी दी है (३१)। कुछ अन्य अध्ययनोंमें, वृद्ध व्यक्ति शब्द-भंडार-सम्बन्धी अपने ज्ञानमें तो काफ़ी अच्छे सिद्ध हुए हैं, परन्तु नई चीज़ सीखने और शीघ्र देख लेने[२] तथा नयी

आकृति ६८. जन्मके पहिलेसे लेकर प्रौढ़ता तक क़द का बढ़ाव। लैंगिक प्रौढ़तासे ठीक पहिले प्रत्येक व्यक्ति बढ़ावका दूसरा बड़ा प्रयत्न करता है। वार्षिक बढ़ोतरीकी बिन्दु-वक्ररेखामें, जैसा कि दिखाया गया है, बढ़ावका पहला बड़ा प्रयत्न जन्मके पूर्व अपने चरम शिखर पर होता है। दूसरा बड़ा प्रयत्न अलग-अलग आयुमें होता है, जैसे लड़कियोंमें १० से १५ वर्षकी और लड़कोंमें १२ से १७ वर्षकी आयुमें। चूंकि लैंगिक प्रौढ़तासे पूर्ण होने वाला बड़ा प्रयत्न विभिन्न आयुओंमें होता है, इसलिए यह सभी लड़कों या या लड़कियोंके औसतमें नहीं दिखायी देगा। यह वक्ररेखा उन लड़कोंकी औसतके आधार पर तैयार की गयी है, जिन्होंने एक ही आयुमें ऊंचाईमें सबसे अधिक बढ़ोतरी दिखायी। बढ़ावका सही चित्र प्राप्त करनेके लिए उन्हीं व्यक्तियोंकी बार-बार नाप लेना आवश्यक है। [शट्ल्वर्थसे संगृहीत सामग्री, २८]।

आकृति ६९. बुद्धि-परीक्षाप्राप्तांकोंके लिए आयु-वक्ररेखाएं। हर आयुके लगभग ४०-५० व्यक्तियोंकी परीक्षा ली गयी। कुछ लोग कॉलेजकी शिक्षा प्राप्त कर चुके थे; कुछ लोग केवल हाई स्कूल पास कर सके थे और कुछ लोग ऐसे भी थे जो केवल प्रारम्भिक शिक्षा ही पाये हुए थे। हर आयुमें, अच्छी शिक्षा प्राप्त किये हुए समूहने अच्छे औसत अंक पाये। उनसे ऐसी ही आशा की जाती थी। किन्तु यहां महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्रत्येक शैक्षिक समूहमें अधिक आयुके व्यक्तियों के प्राप्तांकोंका औसत कम आयुके व्यक्तियोंसे नीचा रहा। [माइल्स और माइल्स, १९]।

[१] alertness [२] quick perception

परिस्थितियोंसे समायोजन[1] करनेमें वे युवक वयस्कोंकी बराबरी नहीं कर सके हैं।

किसी तरहकी ग़लतफ़हमी न पैदा हो, इसलिए हम यहां कह देना चाहते हैं कि प्रत्येक आयुमें व्यक्तियोंमें बहुत भिन्नता मिलती है। किसी भी आयु वाले समूहके व्यक्ति आपसमें इतनी भिन्नता रखते हैं, जितनी भिन्नता ७० वर्षका औसत व्यक्ति २० वर्षके औसत व्यक्तिसे भी नहीं रखता; और ७० वर्ष वाले वृद्धोंकी काफ़ी संख्या २० वर्षीय औसत युवक की अपेक्षा परीक्षाओंमें अच्छी प्रमाणित होती है।

आपको याद होगा, दूसरे प्रकरणमें हमने उपलब्धि[2] और
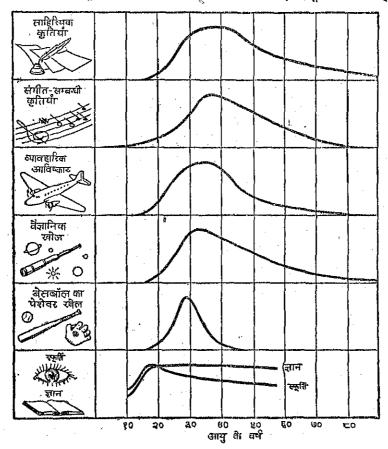
आकृति ७०. बुद्धि और श्रेष्ठ उपलब्धिका आयुसे सम्बन्ध। [लेहमान, १५, १६ और जोन्स व कोनरेड, १३ से संगृहीत सामग्री]।

सबसे नीचेकी दो वक्र रेखाएं 'आर्मी अलफ़ा[3]' बुद्धि-परीक्षामें सम्मिलित हुए तुलनात्मक आयु-समूहोंके व्यक्तियोंके औसत प्राप्तांकोंको दिखाती हैं। ज्ञानकी वक्ररेखा अधिकतर ज्ञान पर निर्भर रहनेवाले उप-परीक्षणोंमें प्राप्तांकोंकी अवस्थाको सूचित करती है, जबकि जागरूकताकी वक्ररेखा[4] अधिकतर सूक्ष्म ध्यान और मानसिक लचीलेपन[5] पर निर्भर रहनेवाले उप-परीक्षणोंमें प्राप्तांकोंकी स्थितिको। ज्ञानकी वक्ररेखा तो ऊपरको ठहरी रहती है, किन्तु जागरूकताकी वक्ररेखा उससे पहिले ही नीचेकी ओर गिरने लगती है।

अन्य वक्ररेखाएं प्रमुख रचनात्मक कार्यकर्ताओंके जीवनके दौरानमें महान् उपलब्धियोंके उत्थान और पतनको चित्रित करती हैं। सबसे ऊपरवाली वक्ररेखा आधुनिक समयके (अब मृत) लेखकों द्वारा विभिन्न आयुओंमें रचित महान् कृतियोंकी सापेक्ष संख्याको प्रकट करती है; बिना किसी स्पष्ट चरम सीमाके, उन्होंने ३० से ४५ वर्षकी आयुके बीच अधिक पुस्तकें लिखीं। 'बेस बॉल' की वक्ररेखा २५-३० वर्षकी आयुमें ही चरम शिखर पर पहुंच गयी है। बड़ी-बड़ी वैज्ञानिक, आविष्कारात्मक या संगीतात्मक उपलब्धियां अपनी चरम सीमा पर ३० वर्षकी आयुमें पहुंच गयी हैं; और संसारके महत्तम चित्रोंसे सम्बन्धित इसी तरहकी वक्ररेखा ३५ वर्षकी आयुमें अपने सर्वोच्च शिखर पर जा पहुंची है।

[1] adjustment [2] achievement [3] Army Alpha [4] alertness curve [5] mental flexibility

सामर्थ्य[1] के बीचका अन्तर स्पष्ट किया था। उपलब्धिसे यह पता चलता है कि आप «क्या कर सकते हैं» और सामर्थ्यसे यह प्रकट होता है कि आप «क्या करना सीख सकते हैं»। जब किशोरावस्थाके आस-पास व्यक्ति अपनी परिपक्वताको प्राप्त कर चुकता है, तब वह अपनी सामर्थ्यकी पूर्णता तक भी पहुंच चुकता है। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह उस समय तक अपनी पूर्ण उपलब्धि तक भी पहुंच ही गया हो। वह कई वर्षों तक सीख सकता है, अपने मन-चाहे कार्यमें कुशलता प्राप्त कर सकता है, लोगोंके साथ व्यवहार करनेके अपने तरीकोंमें सुधार कर सकता है और अपने ज्ञान, सन्तुलन तथा विवेककी पृष्ठभूमिको सुदृढ़ कर सकता है।

प्रौढ़न या परिपचनका काम समाप्त होनेके बाद भी सीखनेकी क्रिया उस समय तक जारी रहती है, जिस समय तक व्यक्ति अपनी योग्यता और उपलब्धिके सर्वोच्च शिखर तक न जा पहुंचे। फिर भी बहुत वर्षों तक ऐसा नहीं होता। आकृति ७० में संक्षेपमें दिये गये तथ्योंके अनुसार, कला, विज्ञान और आविष्कारके क्षेत्रमें सबसे मौलिक कार्य २० से ३० वर्षकी अवस्थामें ही सम्पन्न होजाते हैं, यद्यपि कुल मिलाकर ३० से ४० वर्षकी अवस्था वाले व्यक्तियोंने ही अधिक उपलब्धियां दिखायी हैं, इसके पश्चात् अवगति शुरू हो जाती है। यदि हम पूछें कि प्रौढ़ता[2] प्राप्त करनेके १०-१५ वर्ष बाद तक भी उपलब्धियोंमें वृद्धि क्यों होनी चाहिए, तो इसका उत्तर पहिले ही दिया जा चुका है। कला और विज्ञानका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। अपने विषयकी पृष्ठ-भूमिको दृढ़ बनानेके लिए और अपनी ही सर्वोत्तम सूझ-बूझों तथा विचारोंको पहचाननेके लिए बहुत-कुछ सीखनेकी आवश्यकता होती है। किन्तु, यदि हम यह पूछें कि एक बार अपने सर्वोच्च बिन्दु पर पहुंच कर उपलब्धि वहीं क्यों नहीं रहती, तो इसका कोई स्पष्ट उत्तर नहीं मिलता। कभी-कभी ऐसा होता है कि निर्माणात्मक कार्यके लिए आवश्यक कठोर प्रयासको निरन्तर बनाये रखनेके लिए जिस प्रेरणाकी ज़रूरत होती है, उसका अभाव होजाने पर मनुष्य रुक जाता है। कभी-कभी 'विचारोंके दिवालियेपन' की स्थिति भी उत्पन्न हो जाती है, क्योंकि आप किसी भी व्यक्तिसे यह आशा नहीं कर सकते कि वह सदा असीमित रूपसे ऐसी मौलिक सूझों व विचारोंका प्रणयन करता रहेगा जो उपादेय होनेके साथ-साथ महत्त्वपूर्ण भी हों। 'वृद्ध होने' की स्थिति भी मनुष्यके जीवन में सामने आती ही है। वृद्ध होनेकी जैविक प्रक्रिया जीवनमें बहुत पहिले ही प्रारम्भ हो जाती है, किसी एक ही दिन बुढ़ापा नहीं आ धमकता। तीस वर्षकी आयुके बाद ही मांस-पेशियोंकी शक्ति कम होने लगती है और ज्ञानेन्द्रियों पर भी अवस्थाका प्रभाव बहुत पहिलेसे दिखायी देने लगता है। १३-१९ वर्षकी आयुमें ही श्रवणेन्द्रिय अपनी तीव्रतम ध्वनियों को सुननेकी शक्ति खो बैठती है। दृष्टिमें कुछ समय बाद ह्रास शुरू होता है, किन्तु ह्रास होता अवश्य है, और इसका कारण व्यायाम या उपयोगका अभाव क़तई नहीं होता। आगे-पीछे काम-क्रियाओंका भी ह्रास हो ही जाता है, त्वचा पतली हो जाती है, बालोंका रंग बदल जाता है तथा आयु बढ़नेके साथ-साथ अन्य कई तरहके शरीर-व्यापार-सम्बन्धी परिवर्तन होने लगते हैं। ज्ञानेन्द्रियों और चेष्टा-इन्द्रियों-सम्बन्धी योग्यताओंकी अपेक्षा बौद्धिक योग्यताओंका ह्रास अधिक धीमी गतिसे होता है, और कुछ वृद्ध व्यक्तियोंमें इनके ह्रास की गति अन्य वृद्धोंकी अपेक्षा और भी धीमी होती है। वृद्धा-वस्थाकी एक विशेषता यह अवश्य है कि अनुभवकी अधिकता के कारण वृद्ध व्यक्ति समझ-बूझकर निर्णय करनेमें कुशल होते हैं। हमारे कहनेका तात्पर्य यह है कि वृद्ध व्यक्ति जब तक समाजके कल्याणके लिए, कुछ कार्य करनेके योग्य हों, तब तक उन्हें 'पेंशन' नहीं देनी चाहिए, परन्तु युवकोंको भी अपनी उपलब्धिके लिए सर्वोत्तम प्रयासोंको मध्य आयु तक के लिए स्थगित नहीं रखना चाहिए। यदि वे समझते हैं कि उनमें कुछ मौलिकता है, तो यह उस समय तक बाहर आ जानी चाहिए, जिस समय तक वे संसारकी समस्याओंको युवककी स्पष्ट एवं प्रखर दृष्टिसे देख सकते हैं और जब तक उनमें यौवनकी आग जलती होती है (२०, २१)।

सारांश

१. शैशवसे लेकर प्रौढ़ावस्था[2] तक व्यक्तिका विकास एक अविच्छिन्न प्रक्रिया[3] है और वयस्कावस्थामें उसके स्वभाव-गुण[4] उसके पूर्व विकास और अनुभव पर निर्भर होते हैं।

२. «परिपचन[5]» कोशाओं, ऊतियों[6] और शरीरके अंगों की वृद्धि और भिन्नीकरण[7] को कहते हैं।

(क) «नैसर्गिक प्रवृत्ति[8]» वह व्यापार है जो बिना पूर्व अनुभव और अभ्यासके, व्यक्तिको अपने परिवेशसे योग्यतापूर्वक व्यवहार करनेमें समर्थ बनाता है।

[1] capacity　[2] maturity　[3] cotininuous process　[4] characteristics　[5] maturation　[6] tissues　[7] differ-entiation　[8] instinct

इसके लिए कई विधियोंकी परीक्षा की गई, पर किसीमें विशेष सफलता नहीं मिली, किन्तु निम्नलिखित प्रयोग सफल हो पाया था : न मालूम क्यों, शिब्बू जिसकी आयु तीन वर्ष थी, खरगोशोंसे बहुत भय मानता था। प्रयोगकर्ता ने सुखद साहचर्योंकी सहायतासे उसके इस भयको दूर करनेका बीड़ा उठाया। इस मामलेमें जो प्रक्रिया उसने अपनायी, वह विजयके मामलेमें अपनायी गयी प्रक्रियासे विपरीत थी, लेकिन इसे सफलतापूर्वक पूरा कर ले जाना अधिक कठिन था। योजना यह थी कि शिब्बू जब भोजन करता रहे, तभी खरगोशको सामने उपस्थित किया जाय। यदि प्रयोगकर्ता ने कौशलसे काम न लिया होता, तो प्रक्रिया गलत दिशा ले लेती और खरगोश ने बच्चेका खाना हराम कर दिया होता, भोजन खरगोशको बर्दाश्तके क़ाबिल तो बना ही क्या पाता (जैसे कि सन्तरेके रसमें यदि मछलीका तेल मिला कर बच्चेको दिया जाय, तो मछलीके तेलके प्रति उसकी रुचि बढ़नेके बजाय सन्तरेके रससे उसे अरुचि हो जायगी)। पहले, प्रयोगकर्ता ने खरगोशको पिंजरेमें बन्द करके शिब्बूके सामने इतनी दूर पर रखा, जहां उसे देखकर शिब्बू अपना खाना न छोड़ बैठे। दिन प्रतिदिन खरगोश निकटतर लाया जाने लगा और शिब्बू ने उसकी उपस्थितिको बरदाश्त करना शुरू किया। अन्ततः स्थिति यहां तक पहुंची कि शिब्बूकी थालीके बिल्कुल निकट खरगोशको पिंजरेसे निकालकर रखा जाने लगा और बादमें भोजनकी सहायताके बिना ही शिब्बू खरगोशसे खेलने लगा। यहां हुआ यह कि बच्चे ने खरगोशको अनुकूल रूपमें देखा, क्योंकि उसके सामने सारी परिस्थिति रुचिकर रूपमें उपस्थित की गयी (१०)।

(ख) «लड़नेका प्रेरक[१]». एक या दो वर्षके बच्चोंके क्रोधपूर्ण व्यवहारको देखकर सचमुच आश्चर्य होता है। जो काम बच्चा करना चाहता है, उसे करनेसे रोकने पर, या जो काम वह नहीं करना चाहता, उसे करनेकी आज्ञा देने पर, सम्भव है कि बच्चा असम्बद्ध चेष्टाएं कर बैठे, उछले-कूदे, हाथ-पैर पटके या चिल्लावे ; या बाधा पहुंचानेवाले व्यक्ति अथवा वस्तुसे झगड़ने लगे ; या उस व्यक्ति अथवा वस्तु पर आक्रमण कर बैठे। उसका यह क्रोध कभी कम देर टिकता है, कभी ज्यादा देर, लेकिन साधारणतः १ से ५ मिनटमें उसका क्रोध शान्त हो जाता है। वयस्क व्यक्ति ऐसा व्यवहार पसन्द नहीं करते, इसलिए वे इसका प्रबलीकरण नहीं करते। फलतः सामान्य परिस्थितियोंमें विकसित होने पर बच्चा ज्यों-ज्यों बड़ा होता जाता है, ऐसी हरकतें कम करता जाता है (५)। भयकी भांति क्रोधमें भी आन्तरिक, शारीरिक, संवेगात्मक उथल-पुथल उत्पन्न होती है, और सम्भवतः यह आन्तरिक क्रिया उसमें उस समय भी बनी रहती है, जिस समय वह अपने इस बाह्य लड़ाकू व्यवहार पर नियंत्रण करना सीख जाता है ; या जब वह पहलेकी तरह झगड़ना, हाथ-पैर पटकना और चिल्लाना छोड़ कर उसका स्थान गाली-गलौज भरी क्रोधपूर्ण बात-चीत को दे देता है।

कोई व्यक्ति झगड़ता तब है जब उसकी चेष्टा के मार्गमें रोक, नियंत्रण या हस्तक्षेपसे बाधा उपस्थित की जाती है। इसका अन्त तब होता है जब बाधा पहुँचाने वाली वस्तु या (अधिकतर) व्यक्ति पूरी तरहसे हरा दिया जाता है, जिससे क्रुद्ध व्यक्ति अपनी इच्छाके अनुसार कार्य करनेके लिए स्वतंत्र हो सके। संघर्ष करके और लड़-झगड़ कर ही लक्ष्य तक पहुँचा जाता है, और यह निस्सन्देह व्यवहारका स्वाभाविक तरीक़ा तथा बिना सीखा हुआ प्रेरक जान पड़ता है। किन्तु सीखकर इस प्रकारके व्यवहारमें कई तरहसे परिवर्तन किये जाते हैं। हस्तक्षेपका जो स्वरूप बच्चेको बुरा न लगेगा, वही वयस्क व्यक्तिमें शत्रुता के भाव उत्पन्न कर देगा। छोटे और बड़े व्यक्तिके लड़नेकी पद्धतिमें भी परिवर्तन हो जाता है। वयस्क व्यक्ति अपने विरोधी व्यक्तिकी त्वचा को खँरोच लेना सम्भवतः न चाहे, किन्तु वह उसके सम्मानको धक्का पहुँचा कर और उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा को गिराकर अपना बदला निकालना चाहेगा (१७)।

(ग) «किसी अवरोध पर विजय पानेके लिए किया हुआ प्रयास». व्यक्तिको कोई भी कार्य करने दीजिए, किसी लक्ष्यकी ओर बढ़ने दीजिए और अपने मार्ग में पड़ी हुई रुकावटोंका सामना उसे करने दीजिए। उसकी प्रतिक्रिया इसपर क्या होगी? कई प्रतिक्रियाएं सम्भव हैं। एक सम्भावना तो यह है कि वह हिम्मत हार बैठे और अवरोधके सामने घुटने टेक दे। दूसरी सम्भावना यत है कि वह अवरोध से बच निकलने की कोई राह पा जाय। यह भी सम्भव है, जैसा कि हम पहिले ही कह चुके हैं कि अवरोध पर क्रुद्ध होकर आक्रमण कर दे। इस क्रोधपूर्ण प्रतिक्रिया से अधिक सरल और अधिक प्रचलित प्रयासकी प्रतिक्रिया है, जिसका मतलब है अपने लक्ष्यकी ओर अधिक शक्तिके साथ बढ़ते जाना। क्रिया की दिशा अवरुद्ध स्थितिसे रुकावट पर विजय प्राप्त करनेकी ओर हुआ करती है।

अवरोध पर अधिकार पानेका प्रेरक निश्चय ही बिना सीखा हुआ होता है। किसी छोटे बच्चेकी गतिमें रुकावट डालिये, तो आप देखेंगे कि वह अपनी गतिमें अधिक पैशिक शक्ति लगाना शुरू कर देगा। इसी प्रकारकी, किन्तु इससे कुछ अधिक जटिल एक और प्रतिक्षेप क्रिया है जिसे जोर लगाने (हुमकने) की गति[२] कहते हैं। इस गतिमें पूरी सांस लेकर

[१] combat motive [२] movement of straining

टेंटुएको बन्द करके सांसको फेफड़ोंमें ही रोक लेनेकी चेष्टा की जाती है और इसके पश्चात् प्रश्वासकी एक तीव्र गतिकी जाती है। इस विचित्र क्रिया का स्पष्ट परिणाम यह दिखायी देता है कि उदर पर दबाव पड़ता है और बृहत् अन्त्रके अन्तिम भाग[1] को मलसे या मूत्राशयको मूत्रसे रिक्त करनेमें जो भी रुकावटें होती हैं, वे दूर हो जाती हैं। बच्चा सबसे पहिले जोर लगाने या हुमकनेकी क्रिया का इसी प्रकार उपयोग करता है। किन्तु भारी बोझ उठानेके लिए या किसी जबर्दस्त पैशिक कार्यके समय वह सीनेको भी इसी प्रकार तान लेता है। ऐसे किसी भी कार्यके सहायक रूपमें जोर लगानेकी क्रिया होती है। शारीरिक या मानसिक—किसी भी कार्यमें अधिक प्रयास करने पर यह बात हो सकती है।

प्रयासकी अभिव्यक्ति अन्य कई तरहसे भी होती है, जैसे दांत पर दांत जमाकर किचकिचाना, मुट्ठियां कस लेना, गर्दन को सख्त कर लेना, किसी दृश्यको ठीकसे देखनेके लिए प्रयास करते समय भौंह चढ़ाना, इसी उद्देश्य से आगेको झुकना (ऐसा प्रायः फ़ुटबॉल मैचों, खेल-तमाशों या थिएटरोंमें होता है, जब आदमी आगे झुककर एक या दो फ़ुटकी निकटता पा जाना चाहता है, हालांकि धड़को इतना आगे झुका लेने पर भी दृश्य पहिलेसे बहुत साफ़ नजर नहीं आता)। अभी-अभी लिखना सीखने वाले बच्चेसे पूछिए कि वह पेंसिलको इतनी सख्तीसे क्यों पकड़े हुए है, मेज पर वह इतना नीचे क्यों झुका है, अपने ओठोंको वह क्यों भींचे हुए है, भौंहोंमें बल क्यों डाले है और कुर्सीके पायोंमें अपने पैरोंको क्यों उलझाये हुए है? बहुत सम्भव है कि वह उत्तर देगा कि वह ऐसा इसलिए कर रहा है, कि वह «बहुत प्रयत्न कर रहा है»। मांस-पेशियोंके इस सारे प्रयासके कारण वह कोई अच्छा लिख पाता हो, सो बात नहीं, किन्तु इससे मनुष्यकी उस स्वाभाविक प्रवृत्तिका पता चलता है जिसका उपयोग वह किसी कठिनाई का सामना करते समय करता है।

ध्यान बटानेवाले प्रयोगमें मानसिक कार्य-सम्बन्धी प्रयास का एक अच्छा उदाहरण मिलता है। जब कोई व्यक्ति मानसिक कार्य कर रहा होता है, तब यदि जोरसे शोर-गुल किया जाने लगे और अन्य ध्यान बटानेवाली उत्तेजनाओंका प्रयोग हो, तो वह अधिक शक्ति लगाकर और ध्यानको बलपूर्वक केन्द्रित करके ध्यान बटाने वाली बाधा पर विजय प्राप्त करने की ओर प्रवृत्त होता है।

प्रयास अपने-आपमें सुखद नहीं होता; वह सुखद तभी लगता है, जब उससे यह अनुभव हो कि वह किसी कठिनाई पर विजय पानेके लिए किया जा रहा है। इस प्रेरकको आप «प्रभुत्व का प्रेरक[2]» कह सकते हैं। लोग बुझौवलों और 'क्रॉसवर्ड्स्' को सुलझाना क्यों चाहते हैं? खेल-कूद और अन्य प्रतियोगिताएं इस प्रकार कठिन क्यों तैयार की जाती हैं कि उनमें सफल होनेके लिए व्यक्तिको शक्ति और कौशलका उपयोग करना पड़े? उपलब्धिमें तब तक कोई आनन्द नहीं आता, जब तक उसपर कठिनाईके साथ विजय न पायी गयी हो। प्रभुत्वका प्रेरक या उपलब्धिके लिए उत्साह, अवरोध पर अधिकार करनेके मौलिक प्रेरक पर आधारित तो होता ही है, परन्तु वह अनुभव और सीखनेके द्वारा भी कई प्रकारसे परिवर्तित किया जाता है।

प्रेरकोंके मनोविज्ञान का एक सर्वाधिक सामान्य नियम यह है कि किसी कार्यको करनेमें जब बाधा का सामना करना पड़ता है, तो उससे व्यक्तिको वह कार्य अधिक शक्तिके साथ करने की उत्तेजना मिलती है और उससे कार्य सुन्दर बन पड़ता है।

(घ) «पीछा करने का प्रेरक—क्षणिक अवसरका उपयोग कर लेना». जीवनकी आदिकालीन परिस्थितियोंका विचार करने पर हम पाते हैं कि शिकारकी उपस्थिति एक सद्यस्कृत्यता ला देती है, क्योंकि यदि उसका शीघ्रता से पीछा न किया जाय और उसे पकड़ न लिया जाय, तो शिकार हाथसे निकल सकता है। छोटे बच्चेमें इस तरहका व्यवहार खूब देखनेमें आता है। यदि आप उसके सामने कोई आकर्षक खिलौना, विशेषतः कोई नया खिलौना रख दीजिए, तो वह उसे तुरन्त पकड़ लेगा। कुछ परिवर्तित रूपमें यही चीज खेल-कूदोंमें देखनेको मिलती है। गेंदको मौक़ा पातेही पकड़ लेना चाहिए, अन्यथा मौक़ा चूक जायगा। जो खिलाड़ी कभी 'चूक' नहीं करता, वह अपने अवसरोंका अच्छा उपयोग करनेवाला होता है।

शिकारकी उपस्थिति सद्यस्कृत्य परिस्थिति क्यों पैदा करती है? इसके दो कारण हैं: या तो शिकार ही भाग जायगा, या कोई दूसरा प्रतिद्वन्द्वी शिकारी उसपर कब्जा जमा लेगा। जैसा कि पशु-जीवन और बाल-जीवन में बहुधा देखा जाता है, जब एक ही कार्यको दो व्यक्ति करना चाहते हैं, तब उनमें «प्रतियोगिता» की भावना उत्पन्न हो जाती है। सभी समाजों में तो नहीं, परन्तु कुछ समाजोंमें प्रतियोगिताकी भावना को बढ़ावा दिया जाता है। निस्सन्देह इसका मूल प्रारम्भिक सद्यस्कृत्य व्यवहार[3] में है, परन्तु समूहसे सीखकर इसका विकास और परिवर्तन किया जाता है।

३. **वस्तु-सम्बन्धी प्रेरक और रुचियां.** बहुधा यह कहा जाता है कि सभी प्राणियोंमें 'जीने की इच्छा' एक प्रमुख व्यापक प्रेरक होती है, किन्तु मनुष्योंमें केवल जीनेकी इच्छा प्रमुख नहीं है, बल्कि परिवेशके साथ सक्रिय सम्बन्ध बनाये रखते हुए जीनेकी इच्छा प्रमुख है। चूंकि मनुष्यके पास ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां तथा एक सुविकसित

[1] rectum [2] mastery motive [3] emergency behaviour

मस्तिष्क होता है, इसलिए उसमें परिवेशसे व्यवहार करनेका मौलिक प्रेरक होता है। यह प्रेरक मुख्यतः शारीरिक आवश्यकताओं और जीवनकी सचास्कृत्यताओंका सामना करनेके लिए प्रवृत्त नहीं होता, बल्कि वस्तुओं तथा लोगोंको जानने और परिवेशकी क्रियाओंमें भाग लेनेमें इसका उपयोग किया जाता है। चूंकि मानवीय चेष्टाकी वस्तून्मुखी प्रवृत्ति[1] इतनी व्यापक[2] है, इसलिए लोग आधारभूत प्रेरकों[3] की गिनती करते समय इसको गिनना भूल जाते हैं या जान-बूझ कर इसकी उपेक्षा कर देते हैं। परन्तु यह निश्चित है कि इस का समावेश मौलिक प्रेरकोंमें है। परिवेशकी छान-बीन करने और उससे व्यवहार करनेकी सामान्य प्रवृत्तियोंमें इसकी झलक मिलती है और कई तरहकी विशिष्ट रुचियोंमें भी इसका परिचय मिलता है।

(क) «अनुसन्धान» अनुसन्धानका प्रेरक स्पष्टतः पशुओं और मनुष्यों दोनोंमें उपस्थित रहता है। बच्चा घूमने-फिरने के योग्य नहीं होता, तभी यह प्रेरक उसमें दिखायी देने लगता है। वह अपने नेत्रों, कानों, हाथों और मुंहसे अनुसन्धान (तलाश) करता है। किसी वस्तुकी ओर देखना अनुसन्धानका एक साधारण स्वरूप है। एक ओर दूरी पर रखी हुई वस्तु भी बच्चेकी आंखोंको आकर्षित करती है। बच्चा अपनी आंखें उधर घुमाता है और उस वस्तु पर उन्हें केन्द्रित करता है। इस प्रकार वह उस वस्तुका जो स्पष्ट दर्शन पाता है, वही उस के इस छोटे-से अनुसन्धानका लक्ष्य हुआ। वह एक क्षण तक उस वस्तुकी जांच करता है और उसका सक्रिय मस्तिष्क वस्तुका कुछ ज्ञान प्राप्त कर लेता है। प्रबलीकरण[4] पहिले-पहल तब होता है जब वह उस वस्तुको साफ़-साफ़ देख लेता है और फिर जब उसके बारेमें कुछ जानकारी कर लेता है। जब बच्चा कुछ बड़ा होजाता है, तब वह घूम-फिर कर अपनी ज्ञानेन्द्रियों का उपयोग करते हुए अनुसन्धान करता है। वह कई प्रश्न भी पूछता है और जब वह अपनी क्षणिक जिज्ञासाको सन्तुष्ट करनेवाला उत्तर पा जाता है, तब अपने अनुसन्धानके एक अंशके लक्ष्यको प्राप्त कर लेता है। कभी-कभी वह प्राप्त हुई सूचनाओंका व्यावहारिक उपयोग भी करता है, किन्तु बहुधा उसका तात्कालिक लक्ष्य परिवेशसे परिचय प्राप्त करना होता है।

(ख) «कुशलतापूर्वक व्यवहार करना या प्रहस्तन[5]» बिल्ली का बच्चा या कुत्तेका पिल्ला कुछ वस्तुओंका प्रहस्तन (उलटना-पलटना) करनेमें कितना तमाशा दिखाता है, यह देखना हो तो उनको क्रमशः गेंद और छड़ी दे दीजिए। किन्तु इन्हीं वस्तुओंको मनुष्यका बच्चा और अधिक क्रीड़ापूर्वक इस्तेमाल करेगा, क्योंकि उसके हाथ सधे हुए हैं और वस्तुओंको समझने तथा सजानेके लिए उसका मस्तिष्क अधिक साधन-सम्पन्न है। बच्चा किसी वस्तुकी ओर केवल देखकर सन्तोष नहीं कर लेता। वह उसे पकड़ना चाहता है, उलट-पलट कर देखना चाहता है, गिराना या फेंकना चाहता है और इन क्रियाओं का परिणाम देखनेको उत्सुक रहता है। इन क्रियाओंका तात्कालिक लक्ष्य होता है कतिपय परिणामोंको पैदा करना। अनुसन्धान और प्रहस्तनके द्वारा बच्चा संसारके बारेमें परिचय प्राप्त करता है। इस प्रकार वह भावी जीवनकी गम्भीर क्रियाओंके लिए अपनेको तैयार कर रहा होता है। किन्तु उसका अपना प्रेरक भविष्यकी तैयारी करना नहीं होता, बल्कि वर्तमान परिवेशसे सक्रियता के साथ व्यवहार करना होता है। उसके प्रेरकको जाननेके लिए हमें यह देखना चाहिए कि वह किन वस्तुओंसे अधिक मन लगाकर खेलता है। उनमें से अधिकांश निम्नलिखित श्रेणियोंमें आ जाती हैं:

हिलाई-डुलाई जा सकनेवाली वस्तुएं: पुस्तक, दरवाजे, खोलने और बन्द करनेके लिए दराज, खोलने और बन्द करने (विशेषतः खोलने) के लिए पानीका नल, खोलने और बांधने या बन्द करनेके लिए कोई थैला या सन्दूक़। प्रायः कोई भी वस्तु जिसे बच्चा हिला सकता है, उसके खेलनेकी सामग्री बन सकती है।

ऐसी चीजें जिनसे कुछ बन सकता हो: भीगी बालू, कीचड़, बर्फ़ तथा अन्य वस्तुएँ, जिनसे कुछ बनाया जा सकता है। जैसे तह करने या फाड़नेके निमित्त कागज़, ढेर या दीवार बनाने के लिए लकड़ीके चौकोर टुकड़े, उड़ेलनेके लिए पानी इत्यादि।

शोर-गुल मचानेवाली वस्तुएं: लोहेका पहिया, ढोल, घंटी, भोंपू, बिगुल, आतशबाजी (पटाखे आदि)।

गाड़ियां: बैलगाड़ी, साइकिल, स्लेज, स्केट्स्, कूदनेके निमित्त डोरी।

दूर तक जानेवाली वस्तुएं, जो बच्चेको विस्तृत परिवेशमें कार्य करने योग्य बनाती हैं: फेंकनेवाला गेंद, धनुष और बाण, गुलेल, दूरस्थ किसी व्यक्तिकी आंखों पर चमक फेंकनेके लिए दर्पण।

ऐसी वस्तुएं जो उतराकर, नीचे गिरनेके बजाय स्थिर रह कर या ऊपर उठकर गुरुत्वाकर्षणका प्रतिरोध करती हैं: गुब्बारा (बैलून), पतंग, लट्टू, डगरौना, झूला, नौका आदि।

वयस्कों की नक़ल करनेवाले खिलौने: छोटे औज़ार, तश्तरियां, फ़र्नीचर, गुड़ियां, खिलौनेके पशु, खिलौनेकी गाड़ी और मोटर-कार आदि।

इन खिलौनोंसे खेलनेमें यह बात सम्मिलित है कि उनका प्रहस्तन इस प्रकार किया जाये कि कोई रुचिकर परिणाम

[1] objective tendency [2] all pervasive [3] fundamental motives [4] reinforcement [5] manipulation

निकले। 'डगरौने' को लुढ़काया जाता है, पतंगको उड़ाया जाता है, बाणसे किसी वस्तुको निशाना बनाया जाता है, लकड़ीके चौकोर टुकड़ोंसे मीनार या दीवार बनायी जाती है और एक धक्केमें उसे ढा दिया जाता है, गीली मिट्टीके लोंदेसे कटोरियां बनायी जाती हैं और भोंपू बजाया जाता है। बच्चे का प्रेरक केवल कुछ गतियां करते रहना[1] नहीं होता, बल्कि वह कुछ दिलचस्प नतीजे पैदा करना चाहता है। इसको वस्तु-सम्बन्धी प्रेरक कहते हैं। बच्चेका बोलना भी बाह्य परिणाम पैदा करता है। पहिले सुनने योग्य ध्वनियां उत्पन्न की जाती हैं, जो इस क्रिया का मूल लक्ष्य जान पड़ता है। इसके अतिरिक्त इन ध्वनियोंकी प्रतिक्रिया दूसरे व्यक्तियों पर भी होती है, और इससे बच्चा दूसरे लोगोंके साथ कुछ व्यवहार करनेमें समर्थ हो पाता है। बच्चेको पशु और मनुष्य बहुत दिलचस्प प्राणी लगते हैं; इसलिए वह इनके साथ व्यवहार करना तथा इनका अनुसन्धान करना चाहता है। सामूहिक खेलमें कई प्रकारके अन्य प्रेरक भी भाग लेते हैं, खास तौरसे सद्यस्कृत्यकालीन प्रेरक; क्योंकि सक्रिय खेलमें एक के बाद दूसरी नाजुक परिस्थिति आती रहती है। उसमें रुकावट पर अधिकार पानेके लिए प्रयासकी और क्षणिक अवसरका उपयोग करनेके लिए शीघ्रताकी आवश्यकता होती है। कई खेल प्रतियोगिता और सहयोगके लिए उकसाते हैं तथा इस प्रकार प्रभुत्वके प्रेरक को सक्रिय बनाते हैं।

(ग) «रुचियां[2]». अनुसन्धान, जिसमें चीज़ोंकी जानकारी के लिए उनको उलटना-पलटना भी सम्मिलित है, परिवेशके साथ बर्ताव करनेमें आवश्यक सीढ़ी है; किन्तु वह पहिली ही सीढ़ी है। कुछ वस्तुएं, जिनका अनुसन्धान बच्चा कर लेता है, उसके लिए रुचिकर नहीं रह जातीं, किन्तु कुछ वस्तुओंसे परिचय प्राप्त करके वह उन्हें अपनी प्रिय खेल की सामग्री बना लेता है। यदि कोई व्यक्ति किसी वस्तुमें रुचि का अनुभव करता है, तो उसकी यह रुचि ही उसका प्रेरक है जो उस वस्तुके साथ उसका व्यवहार कराता है। रुचिकर और अरुचिकर वस्तुओंमें क्या अन्तर है? कुछ लोग आपसे किसी वस्तुके रुचिकर होनेकी परिभाषा बताते हुए कह सकते हैं कि अमुक वस्तु रुचिकर इसलिए है कि वह खानेमें अच्छी लगती है, या वह अमुक शारीरिक आवश्यकता[3] से सम्बन्धित है, या उससे खतरेसे बचाव करनेमें मदद मिलती है। उदाहरण के लिए, वे आपसे कहेंगे कि खरगोशके प्रति शिब्बूकी रुचि भोजनके प्रति उसकी रुचिसे साहचर्य रखने या सम्बद्ध होनेके कारण उत्पन्न हुई थी। किन्तु शिब्बूके मामले पर जरा और गौरसे विचार कीजिए। शिब्बू पर प्रयोग तब प्रारम्भ किया गया, जब वह खरगोशोंसे डरता था। खरगोश वास्तव में कितने दिलचस्प प्राणी हैं, इस तथ्यका शिब्बू अनुभव करे, इसके पहिले उसके दिलसे खरगोशोंके प्रति पैठे हुए डरको निकालना आवश्यक था। खरगोशोंमें कुछ गुण ऐसे होते हैं जो भोजनके साहचर्यके बिना ही बहुत से बच्चोंको प्रिय लगते हैं। शिब्बू जबतक खरगोशोंसे दूर भागता रहा, उसे उनका अनुसन्धान करनेका कभी मौका ही न मिला और इसीलिए वह उनके मोहक गुणोंको जाननेसे वंचित रहा। भोजनके साहचर्यसे खरगोशोंके प्रति अपने भय पर तो उसने विजय पा ली, किन्तु उनके रुचिकर गुणोंकी सृष्टि भोजनने नहीं की।

बहुधा किसी वस्तुमें कुछ बातें ऐसी होती हैं, जो व्यक्तिको अरुचिकर और घृणास्पद लगती हैं। परन्तु इसके साथ-साथ उसमें कुछ बातें ऐसी भी होती हैं, जो बहुत दिलचस्प होती हैं। किसी व्यक्तिका चेहरा इतने भद्दे दागोंवाला और अनाकर्षक हो सकता है कि उसकी ओर देखनेको तबियत न चाहे। किन्तु यदि आप अपनी प्रथम प्रतिकूल प्रतिक्रिया पर विजय पा सकें तो देखेंगे कि उस भद्दे चेहरेके पीछे एक सुन्दर व्यक्तित्व छिपा पड़ा है। इसी प्रकार किसी पुस्तक या पाठ्य-विषय के प्रति आपकी पहिली धारणा प्रतिकूल हो सकती है और सम्भव है कि उसकी रुचिकर बातोंका अनुसन्धान करने के लिए आपको कुछ धैर्य तथा संकल्पका सहारा लेना पड़े।

तो रुचिकर और अरुचिकर वस्तुमें किस कारणसे अन्तर होता है? इसका सामान्य उत्तर यह होगा: व्यक्तिमें परिवेश के साथ व्यवहार करनेकी एक आधारभूत प्रवृत्ति होती है और वह उसके साथ कुछ तरीकोंसे व्यवहार करनेमें समर्थ होता है। जब वह कोई ऐसी वस्तु पाता है जिसके साथ वह व्यवहार कर सकता है, तब वह उस वस्तुमें रुचि लेने लगता है। जब तक वह उस वस्तुसे किसी प्रकार व्यवहार न कर पाये, तब तक उस वस्तुमें उसे कुछ सार नहीं दिखायी देता। किन्तु यह समझ लेना चाहिए कि व्यवहारका तात्पर्य यहां बहुत विस्तृत है। इसमें प्रशंसा करना, समझना और उस वस्तुका प्रहस्तन करना तथा उसको ठीक ढंगसे सजाना भी आ जाता है। कोमल कास्वर इसलिए रुचिकर लगते हैं कि आप उनको सुनकर आनन्द अनुभव करते हैं। यदि आप संगीतके ताल और स्वरसाम्य को अच्छी तरह समझ सकते हैं, तो वह आपको और भी रुचिकर प्रतीत होगा, और यदि आप स्वयं गा सकें तो फिर पूछना ही क्या। तेज (शोख) रंग इसलिए रुचिकर लगते हैं कि आप उनकी ओर टकटकी बांधकर देखनेमें उल्लास का अनुभव करते हैं; रंगीन आकृतियोंको आप यदि समझ सकते हों, तो उनमें आपकी और भी रुचि आयेगी, और अपने हाथसे आकृतियां बनाना तो उससे भी अधिक रुचिकर लगेगा। किसी स्थानके प्रति आपको तभी दिलचस्पी होगी, जब आप वहां की भूमि

[1] motor activity [2] interests [3] organic need

की स्थितिको समझ सकें और इधर-उधर जानेका रास्ता ढूंढ़ सकें। अधिक अनुसन्धानके द्वारा आप स्थानीय भूगोल और शायद नक़्शों और भूगोलके विस्तृत विज्ञानमें भी अपनी रुचि बना सकते हैं। बच्चा गिननेमें बहुत रुचि ले सकता है और उसके बाद संख्याओंकी विशेषताओंके विषयमें अधिक रुचि ले सकता है।

लोगोंमें आपकी रुचि कुछ तो इस कारणसे होती है कि आप उन्हें देख सकते हैं और जो कुछ वे कर रहे हैं, उसको समझने की चेष्टा करते हैं तथा कुछ हद तक समझते भी हैं; और कुछ इसलिए होती है कि आप अपने लिए उनसे काम करा सकते हैं या उनके साथ काम कर सकते हैं। इस तथ्यके कारण कि वे कई बातोंमें भिन्न हैं, आपको लोगोंको समझने और उनसे व्यवहार करनेकी अपनी शक्तियोंका अभ्यास करने और उनको विकसित करनेका अवसर भी मिलता है।

लोगोंका समूह इसलिए दिलचस्प जान पड़ता है कि वे कई चीजें साथ मिलकर करते हैं, जैसे बात-चीत, खेल-कूद और कार्य। बच्चा बड़ा होने पर यह देखता है कि वह समूहके कामों को समझ सकता है और उनमें भाग भी ले सकता है। व्यक्ति के अस्तित्वका एक प्रमुख लक्ष्य यह भी है कि वह समूहकी चेष्टाओंमें भाग ले। यह व्यक्तिगत समृद्धि और सुरक्षाका साधन-मात्र न होकर स्वतः आनन्दायक भी होता है।

प्रत्येक व्यक्तिकी अपने-आपमें रुचि हो जाती है। प्रारम्भमें बच्चा अपने व्यक्तित्वके प्रति अनजान रहता है, और अपने ऊपर ध्यान देनेसे पहिले वह वस्तुओं तथा दूसरे लोगोंका ही अनुसन्धान करता है। उससे बड़ी आयुके व्यक्ति उसके कुछ कार्योंके लिए उसकी प्रशंसा करके, कुछ कार्योंके लिए उसे दोषी ठहराकर, दूसरे बच्चोंके साथ उसकी तुलना करके, और शक्ति भर अपना जौहर दिखानेके लिए उसे उकसाकर उसको अपने प्रति ध्यान देनेके लिए विवश करते हैं। कुछ हद तक वह अपनेको वैसा ही देखने लगता है, जैसा दूसरे लोग उसे देखते हैं, अर्थात् अपने भीतर वह कुछ विशेष लक्षणोंका दर्शन करने लगता है। वह अपनी सफलताओंकी डींग मारता है और अपनी असफलताओंके लिए लज्जित होता है। अपने में उसकी रुचि जितनी बढ़ती जायगी, वस्तुओंसे उसकी रुचि उतनी ही घटती जायगी और सामाजिक तथा सामूहिक कार्योंमें उसका भाग लेना कम होता जायगा। कोई व्यक्ति स्वयं चमकने और प्रशंसित होनेके लिए इतना आतुर हो उठता है कि वह अपने ही लिए खेलता है, अपनी टोलीकी सफलताके लिए नहीं। 'आत्म-स्थापन'[1] का यह प्रेरक कभी-कभी उसे उपलब्धिकी ओर आगे बढ़ानेमें बहुत शक्तिशाली होता है। कभी इससे हानि हो जाती है और कभी लाभ। जो वस्तु उसकी इससे रक्षा करती है, वह है अपने समूहके साथ अपना तादात्म्य कर देनेकी शक्ति, जिसके कारण वह अपने समूहकी उपलब्धियों पर गर्वका अनुभव करता है।

प्रयोजन या हेतु[2]. यद्यपि 'प्रयोजन' शब्दका कभी-कभी इतने विशद अर्थमें उपयोग किया जाता है कि उसमें किसी लक्ष्यके प्रति संचालित कोई भी क्रिया आ जाती है, तथापि इसका उचित उपयोग वहीं होता है, जहां व्यक्ति अपनी साध्य वस्तुके प्रति काम करनेमें कुछ सूझ-बूझ और दूरदर्शितासे काम ले और जहां कार्य करनेके लिए उसने निश्चितरूपसे अपने ऊपर «उत्तरदायित्व ले लिया हो»। यदि वह बिना यह जाने कि उसे कहां जाना है, यों ही अस्पष्ट प्रवृत्तियोंके वश होकर इधर-उधर घूमता रहे, तो उसका व्यवहार शायद ही सप्रयोजन या सहेतुक[3] कहा जा सके। यदि वह किसी वांछनीय वस्तुके विषयमें सोच रहा हो कि वह उसे मिल जाती तो अच्छा रहता, तो उस समय भी उसमें किसी निश्चित हेतु या प्रयोजनका अभाव रहता है। यदि वह कहता है: 'मैं यह कार्य करना चाहता हूं या यह वस्तु चाहता हूं', तो यह इच्छा अभी प्रयोजन नहीं है, किन्तु यदि वह कहता है: 'मैं इसे अवश्य करूंगा', 'मैं इसे प्राप्त करूंगा', तो उसने अपनी इच्छाको प्रयोजनका रूप दे दिया है। कार्यका संकल्प कर लेनेके बाद वह अपने लक्ष्य तक पहुंचनेके लिए क़दम उठायेगा, अपनी मनोवांछित वस्तु प्राप्त करनेके लिए उपाय सोचेगा। बहुत समयमें पूरे होने वाले सहेतुक कार्यकी योजना बनाने और उसे कार्यान्वित करनेके लिए कल्पना और बुद्धिके साथ-साथ शक्ति और अध्यवसायकी भी आवश्यकता होती है।

बहुत निश्चित और शक्तिशाली प्रेरकको प्रयोजन या हेतु कहा जा सकता है। आपका लक्ष्य जितना ही निश्चित होगा, उसको प्राप्त करनेके लिए आप उतना ही अधिक प्रयास करेंगे, और उतनी ही दृढ़तासे उसके मार्गमें आनेवाले अवरोधोंका सामना करेंगे।

यद्यपि प्रयोजनमें इतनी निश्चितता होती है, तो भी बहुधा यह एकाधिक प्रेरकों पर आधारित रहता है, और कोई व्यक्ति यह नहीं समझ सकता कि वह एक ख़ास लक्ष्यकी ओर ही इतनी लगनसे क्यों उन्मुख हो रहा है। प्रत्येक कार्यके एकसे अधिक परिणाम हुआ करते हैं। आप 'क' से चलकर 'ज्ञ' तक पहुंचते हैं। आपका प्रेरक क्या है, 'ज्ञ' तक पहुंचना, या 'क' से दूर भागना, या 'द' से होकर गुजरना—जहां सम्भव है, आपके लिए कोई आकर्षण हो? और 'ज्ञ' स्वयं एकसे अधिक प्रेरकोंको तृप्त कर सकता है, जैसा कि अच्छे वातावरण और भले मित्रोंके बीच भोजन करनेके प्रसंगमें होता है। कभी-कभी व्यक्तिके लिए अपने प्रेरकोंका विश्लेषण करना बहुत कठिन

[1] self-assertion [2] purposes [3] purposive

हो जाता है, कोई दूसरा व्यक्ति भी यदि उनका विश्लेषण करना चाहे, तो उसे भी कठिनाई होगी। अपने मित्रके प्रति सहायक होकर वह एक प्रकारसे उस पर हावी भी हो रहा है। वह स्वयं तो यही कहेगा कि 'मैं तुम्हारी सहायता करनेकी चेष्टा-मात्र कर रहा हूं', जब कि उसका मित्र कह सकता है, 'परन्तु तुम मुझ पर रौब गांठनेकी और यह दिखानेकी कोशिश कर रहे हो कि तुम मुझसे श्रेष्ठ हो'। प्रत्येक व्यक्ति अपनेको अच्छा ही देखना चाहता है और अपने प्रेरकोंका अनुकूल अर्थ लगानेकी प्रवृत्ति रखता है, किन्तु दूसरे व्यक्ति उससे बिल्कुल विपरीत दिशामें पक्षपातपूर्ण ढंगसे सोच सकते हैं। दोनों तरह के पक्षपात खराब हैं, क्योंकि उनसे सही चित्र नहीं मिल पाता। तथ्य यह है कि व्यक्तिके प्रेरक मिले-जुले होते हैं। वे विभिन्न कारणोंसे उत्पन्न होते हैं, कुछ सीखे हुए होते हैं, कुछ बिना सीखे हुए; कुछ विस्तृत अनुभवों और बचपनके सम्पर्कोंसे सम्बन्धित होते हैं, और कुछ हाल ही में व्यक्तियों तथा वस्तुओं में उत्पन्न रुचियोंसे सम्बन्ध रखते हैं। ऐसे प्रेरकोंको जिनका मूल बचपनमें होता है, जो विश्लेषणके द्वारा स्पष्ट नहीं हो पाते, कभी-कभी 'अचेतन'[1] प्रेरक भी कहते हैं। किन्तु यह बातको साफ़ करनेके बजाय उसे और रहस्यमय बना देता है।

प्रेरकों की शक्ति

यदि हमें सभी मानवीय प्रेरकोंकी एक सूची दे दी जाय, तो हमारे सामने प्रश्न उठेगा कि कौन प्रेरक अधिक शक्तिशाली है और कौन-सा अधिक निर्बल? कोई प्रेरक इतना बलवान् हो सकता है कि वह अन्य सभी प्रेरकों पर हावी हो जाय और व्यक्तिके व्यवहारको, कम से कम कुछ समयके लिए, अकेले संचालित करे; या वह इतना निर्बल हो सकता है कि व्यवहार पर उसका कुछ भी प्रभाव न पड़े। हम बहुधा किसी प्रेरककी शक्तिका अनुमान करनेकी चेष्टा किया करते हैं। उदाहरणके लिए, हम एक व्यक्तिसे पूछते हैं कि वह अमुक सुखके लिए कितना धन देनेके लिए प्रस्तुत है, या कितने समय तक वह इसके लिए काम करनेको तैयार है, या इस खास सुखको प्राप्त करनेके लिए वह किन अन्य सुखोंको छोड़ सकता है? इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकारके प्रश्नका उत्तर व्यक्ति पर और उससे भी अधिक उसकी परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। पैट्रिक हेनरी ने चिल्लाकर कहा था: 'मुझे आज़ादी दो या मौत दो!' वास्तवमें वह यह घोषित करना चाहता था कि पराधीनता और नियंत्रणके विरुद्ध संघर्ष करनेका प्रेरक[2] सभी प्रेरकोंसे अधिक शक्तिशाली है; तथा उसके कथनकी पुष्टि इस बातमें भी दिखायी देती है कि एक विदेशी निरंकुश सत्ताकी अधीनतासे आशंकित राष्ट्र अपनी सारी शक्ति रक्षात्मक युद्धमें लगा देगा। किन्तु एक सैनिककी, चाहे वह कितना भी वफ़ादार तथा साहसी क्यों न हो, लड़नेकी इच्छा, थकानको मिटानेके लिए आराम करनेकी इच्छाके सामने निर्बल पड़ जाती है। अधिक सामान्य परिस्थितियोंमें किसी देशकी जनसंख्याके विभिन्न प्रेरकोंकी सापेक्ष शक्तिका पता इस बातसे लग सकता है कि उसने किन चीजों पर अपना धन कितना किसप्रकार व्यय किया है। १९२९ में संयुक्त राज्य अमेरिकाके लोगोंने हर प्रकारके मनोरंजनके साधनों पर शिक्षा की अपेक्षा लगभग दुगुना धन व्यय किया। इन आंकड़ोंसे यही अनुमान निकलता मालूम पड़ेगा कि उस वर्ष अमेरिकाके लोगोंमें मनोरंजनके प्रेरक शिक्षाके प्रेरकोंकी अपेक्षा औसतन अधिक शक्तिशाली थे। यह निश्चित है कि बहुत-से छात्र मनोरंजनकी अपेक्षा शिक्षामें धन, समय और प्रयास कहीं अधिक मात्रामें लगाते हैं। मनोरंजनके प्रेरक अधिकतर सामाजिक प्रेरक होते हैं, क्योंकि मनोरंजनके अधिकांश स्वरूप ऐसे होते हैं, जिनमें व्यक्ति समूहकी रंगरेलियों और चेष्टाओं में भाग लेता है (१६)।

पशुओंके प्रेरकोंकी माप. अधिकांश प्राचीन[3] प्रेरकोंकी सापेक्ष शक्तिके विषयमें हमें आधारभूत जानकारी पशुओं पर किये गये प्रयोगोंसे मिल सकती है। इसका कारण यह है कि पशुओंकी प्रयोगशालामें परिस्थितियां बहुत कुछ नियंत्रित होती हैं, जिनका दर्शन मनुष्यके जटिल सामाजिक जीवनमें दुर्लभ होता है। इसका एक कारण यह भी है कि पशु सरल और आत्म-चेतनासे मुक्त होते हैं। पशुओंके व्यवहारमें जिन आधारभूत प्रेरकोंके दर्शन होते हैं, उनको साधारणतः 'चालक' (चलने या करनेके लिए बाध्य करनेवाला) कहते हैं।

एक तरहके प्रयोगमें, एक «दौड़के पिंजरे[4]» के द्वारा पशु की मांसपेशियोंकी शक्तिकी माप की जाती है। यह गिलहरी के पिंजरेके समान बना होता है। इस पिंजरेमें एक खड़ा पहिया होता है, जिसके भीतर पशु जितना चाहे, दौड़ सकता है। एक गणक यह बतला देता है कि पशुके दौड़नेके कारण पहिये ने कितने चक्कर लगाये हैं। एक स्वस्थ चूहा चुपचाप बैठे रहनेके बजाय दौड़ते हुए अपना समय बिताना अधिक पसन्द करता है, और गणकसे पता चलता है कि उसने २४ घंटेमें ५, १० या कभी-कभी तो २० मीलकी दौड़की (१४)! भूखा होने पर पशु बहुत दौड़ता है, किन्तु जैसी हम आशा करेंगे, भोजन कर चुकनेके बाद बहुत कम दौड़ता है। कोई पशु जिसकी कुछ अन्तःस्रावी ग्रन्थियां[5]—जैसे पोषग्रन्थि, गलग्रन्थि, प्रजनग्रन्थियां, या उपवृक्कय त्वक्ष—नष्ट कर दी गयी हों, बहुत निष्क्रिय होता है।

«रुकावट डालनेकी विधि» म पशुको कोई पुरस्कार या

[1] unconscious [2] combat motive [3] primitive [4] activity cage [5] endocrine glands
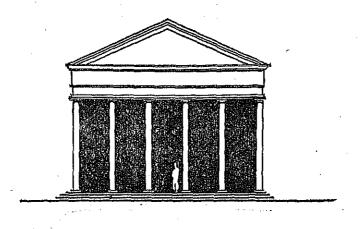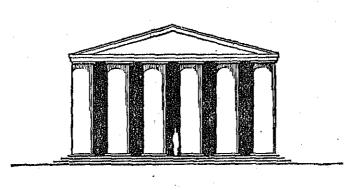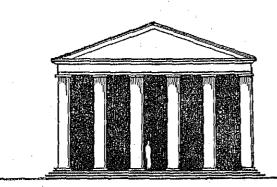
आकृति ७८. भवन-निर्माण विद्यामें उपयुक्त और अनुपयुक्त अनुपातोंसे जो सौन्दर्यात्मक प्रभाव उत्पन्न होता है, उसका कारण भी समानुभूतिसे स्पष्ट किया जासकता है।

के नियमके अनुसार वह स्तम्भ आपकी अधिकार-वृत्ति[1] को उकसाकर और उसे सन्तुष्ट करके आपको प्रसन्न कर देता है। स्थापत्यकला-सम्बन्धी कई अन्य प्रभावोंको भी इसी प्रकार समझाया जा सकता है।

सौन्दर्योपभोगका आनन्द. सुखका एक प्रमुख उद्गम है प्रकृति और कलाका सौन्दर्य, किन्तु इस सुखकी व्याख्या करना मनोविज्ञानकी एक कठिन समस्या है। कुछ वस्तुएं हमें इसलिए सुन्दर लगती हैं, कि उनका साहचर्य सुखद

[1] mastery impulse

वस्तुओंसे होता है। दूधकी बोतलको देखते ही बच्चा खुश हो जाता है, सम्भवतः उसकी आकृति उसको सुन्दर लगती है। किन्तु इस सिद्धान्तको स्वीकार करना कठिन है कि सुन्दर वस्तुओंसे मिलनेवाला यह सारा आनन्द इस प्रकारके साहचर्यों से ही उत्पन्न होता है।

साधारणसे साधारण वस्तुओंमें भी सुन्दरता और कुरूपता देखी जा सकती है। शायद ही आप इसकी कल्पना कर सकें कि कोई आयत[1] भी सौन्दर्यात्मक प्रभाव उत्पन्न कर सकता है। फिर भी, देखा जाता है कि कुछ आयतोंको लोग अन्य आयतों की अपेक्षा अधिक पसन्द करते हैं। इसका कारण उनमें उस अनुपातका रहना है, जिसे कलाविद् 'सुनहरी काट'[2] कहते हैं। 'सुनहरी काट' का तात्पर्य यह है कि चौड़ाई लम्बाईका लगभग ६१ प्रतिशत होनी चाहिए। सम्मिति[3] में एक सौन्दर्य होता है। प्रायः लोग इसका कारण नहीं बता पाते कि किसी क्षैतिज[4] रेखाको एक व्यत्यस्त[5] रेखासे कहीं पर काट देनेसे क्या अन्तर पड़ता है। किन्तु परीक्षा लेने पर अधिकांश लोगों ने उसका ठीक बीचमें काटा जाना ही पसन्द किया है। यद्यपि इन पसन्दगियोंके ठीक कारणोंको नहीं जाना जा सका है, तो भी हम अनुमान कर सकते हैं कि वे दो मामलोंमें मूलतः भिन्न हैं। सम्मिति[3] शायद हमें इसलिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे अच्छी लगती है, क्योंकि हम स्वयं सम्मित हैं। हम दायेंसे बायें सम्मित हैं, इसलिए हम चाहते हैं कि कोई गिरजाघर या मकान भी उसी प्रकार दायेंसे बायें सम्मित हो, हम इस पर जोर नहीं देते कि उसमें सामनेसे पीछे सम्मित हो। दूसरी ओर, हम 'सुनहरी काट' की अपेक्षा कहीं अधिक पतले हैं, इसलिए यहां हमारी पसन्दका आधार सम्भवतः व्यक्तिगत कम और वस्तुगत अधिक होगा। सम्भवतः 'सुनहरी काट' का आयत आयतोंकी चर्चामें जंचता हुआ प्रतीत होता है, जो सफल आयत होनेके लिए पर्याप्त पतला होता है और बहुत ज्यादे पतला भी नहीं लगता। यहां हमें वस्तुओंको देखनेका एक सुझाव मिलता है जिसकी दो पद्धतियां हैं: या तो हम वस्तुओं को अपनेसे सम्बन्धित करके देखें या दूसरी वस्तुओंसे—या तो आत्मकेन्द्रित होकर या वस्तुकेन्द्रित होकर। यह माननेका कोई कारण नहीं कि समस्त सौन्दर्यात्मक रुचि शरीरकी आन्तरिक आवश्यकताओंसे उत्पन्न होती है। यह व्यक्तिकी भौतिक संसारमें रुचिसे भी प्रस्फुटित हो सकती है।

संवेग[6]

संवेग व्यक्तिकी क्षुब्ध या विचलित होनेकी स्थिति है। यह अनुभूतिकी क्षुब्ध स्थिति है—इसी रूपमें व्यक्तिको इसका अनुभव भी होता है। यह पेशियों और ग्रन्थियों[7] की अस्त-व्यस्त क्रिया है—बाहरसे देखने वाले दूसरे व्यक्तिको ऐसा ही मालूम पड़ता है, जो बँधी हुई मुट्ठियों और गुस्सेसे लाल चेहरे को तथा शोकके आँसुओंको देखता है, या जो उल्लासकी ठहाकेकी हँसी और प्यारकी मनुहार भरी बोलीको सुनता है।

प्रत्येक संवेगका अनुभूतिकी त्रिविमात्मक योजनामें स्थान निर्धारित किया जा सकता है, परन्तु इस तरहके विश्लेषणसे संवेगके साथ पूरा न्याय नहीं हो पाता। भय अशान्ति, दुःख और तनावकी एक दशा है और हँसी-खुशी अशान्ति, सुख और शैथिल्यकी, किन्तु दोनों ही इससे भी अधिक कुछ हैं।

प्रत्येक संवेग एक अनुभूति है और साथ ही साथ वह किसी चेष्टाकी तैयारी[8] भी। भय भागनेकी तैयारी है और क्रोध आक्रमणकी। उल्लास हँसनेकी और शोक रो पड़ने की तैयारी है। केवल सुख और दुःखकी स्वीकारात्मक तथा अस्वीकारात्मक चेष्टा-प्रवृत्तियोंकी अपेक्षा ये तैयारियां (तत्परताएं) अधिक निश्चित होती हैं। संवेग एक शारीरिक दशा भी होता है। संवेगकी स्थितिमें हृदय, आमाशय और शरीरके अन्य भीतरी अंगोंकी क्रिया अस्त-व्यस्त हो जाती है। पसीना आ जाना या चेहरा पीला पड़ जाना, शरीरमें होने वाले ऐसे परिवर्तनोंका लक्षण होता है।

यद्यपि हम अपने व्यक्तिगत अनुभवसे संवेगोंसे परिचित हैं, तो भी हममेंसे कोई इतना समर्थ नहीं जान पड़ता, जो संवेग की आन्तरिक अनुभूतियों[9] का या पैशिक और ग्रन्थीय क्रियाओं का पर्याप्त वर्णन कर सके। फिर हम अलग-अलग संवेगोंके विषयमें कैसे बतला सकेंगे? हम किस प्रकार विभिन्न संवेगों की इतनी बड़ी नामावलि जानते हैं? व्यवहारमें, कई संवेगों की पहचान उस «बाह्य परिस्थिति» का वर्णन करनेसे हो जाती है जिसमें प्रत्येक संवेग उत्पन्न होता है और इस बातसे भी कि उस समय किस तरहकी «बाह्य प्रतिक्रिया» की अपेक्षा होती है। कोई भी निर्दिष्ट संवेग किसी परिस्थिति और बाह्य प्रतिक्रियाके अनुकूल शरीर और मनकी क्षुब्ध दशा है।

यह सही है कि संवेगके बिना भी कोई परिस्थिति और बाह्य प्रतिक्रिया उत्पन्न हो सकती है। आप क्रोध किये बिना भी किसी आक्रमणका मुकाबला कर सकते हैं या भयरहित होकर किसी चलती हुई मोटर कारके सामनेसे गुजर सकते हैं। यदि बाह्य प्रतिक्रिया तत्काल होती है और सफल हो जाती है, तो संवेग नहीं भी उठ सकते हैं। यदि परिवेशसे व्यवहार करनेकी बौद्धिक क्रियाका उस समय प्राधान्य रहता है,

[1] rectangle [2] golden section [3] symmetry [4] horizontal [5] cross [6] emotion [7] glandular [8] motor set [9] subjective feelings

तो संवेग बहुत निर्बल हो जाता है। किन्तु, यदि परिस्थिति काबूके बाहर हो जाती है, तो उस परिस्थितिके अनुकूल संवेग भड़क उठता है। इसलिए परिस्थिति और बाह्य प्रतिक्रिया को देखकर आप निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि व्यक्ति संवेग की स्थितिसे गुजर रहा है; किन्तु आपको इस बातका पक्का विश्वास होता है कि यदि उसमें कोई संवेग उत्पन्न हुआ है, तो वह संवेग उस परिस्थिति और उस प्रतिक्रियामें सामान्यतः जो होता है वही होगा।

संवेगोंके अनेक प्रकार. यद्यपि भय या क्रोधको साधारणतः लोग संवेगके प्रकृष्ट[1] उदाहरणके रूपमें पेश करते हैं, तो भी अन्य क्षुब्ध दशाएं[2] भी हैं, जो इनसे बिल्कुल भिन्न होती हैं। उदाहरणके लिए, जी खोलकर हंसते हुए व्यक्तिकी दशा और कोई शुभ समाचार पाने पर किसी व्यक्तिके हार्दिक प्रसन्न होनेकी दशाको प्रस्तुत किया जा सकता है। किस कारणसे कोई व्यक्ति प्रसन्न, हर्षित, क्रुद्ध या भयाकुल होता है? इस प्रश्नका सामान्य शब्दावलीमें उत्तर देना, ताकि हर प्रकारके संवेगकी उत्तेजना पहचानी जा सके, बहुत कठिन है, किन्तु यह एक ऐसा प्रश्न है जो सामान्य संवेगोंकी सूची पर विचार करते समय स्वभावतः विद्यार्थीके मनमें उठेगा।

«भय». गत प्रकरणमें क्रोध, संकल्प और उत्सुकताके साथ-साथ भयको सचस्कृत्यताकालीन संवेग बताया गया था। एक खतरनाक परिस्थिति एक ओर तो भयकी आन्तरिक दशा उत्पन्न करती है और दूसरी ओर पलायन या बचावके लिए बाह्य चेष्टाएं उत्पन्न करती हैं। वर्तमान समयमें, हममेंसे बहुतसे नौजवान ऐसे मिलेंगे, जिन्होंने अत्यन्त संकटपूर्ण परिस्थितियोंका व्यक्तिगत अनुभव किया है। ये बहादुर लोग यह कहनेमें नहीं लज्जित होते कि उन्होंने युद्धके दौरानमें और विशेषतया युद्धके ठीक पहिले भयका अनुभव किया था उनका कहना है कि यह क्षुब्ध स्थिति यदि अच्छी तरह नियंत्रण में रखी गई तो युद्धकी भीषण कठिनाइयोंमें यह कुछ महत्व की सिद्ध हुई। उदासीनतासे तो भय ही अच्छा है, हालांकि उतना अच्छा नहीं, जितना शत्रुके प्रति क्रोध अच्छा होता है। भयसे तब परेशानी होती है, जब बिना कुछ किये हुए किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थितिमें पड़े रहना पड़ता है। किन्तु वास्तविक संघर्षकी स्थितिमें भयका स्थान समग्र शरीरकी सक्रियता ले लेती है, जो किंकर्तव्यविमूढ़ताकी स्थितिकी अपेक्षा कम दुःखद होती है और कभी-कभी तो वह हर्षोत्पादक भी होती है। भय पर उस समय काबू पाया जा सकता है, जिस समय आप पूरी तरह तैयार हों, जब आप अपने शस्त्रों को जानते हों, उस स्थानके विषयमें जानते हों जहां आपको लड़ना है तथा लड़ाईकी योजनाके बारेमें आपको कुछ मालूम हो, और जब आपको अपने साथियों और अफ़सरों पर भरोसा हो (२,११)।

आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि लोगोंके कई प्रिय खेल और मनोरंजन भय पर अवलम्बित होते हैं। 'रोलर' पर पेट के बल सरकना, मेलेमें चर्खीके कठघोड़े पर बैठना आदि खेल ऐसे हैं कि यदि इनमें रोमांचकता न होती, तो लोगोंको कोई आकर्षण ही न मालूम होता; और रोमांचकता भयका ही एक रूप है। यह जानते हुए कि खतरा बहुत वास्तविक नहीं है, आप उससे खतरेका कुछ रोमांच अनुभव करते हैं। सम्भवतः भयकी अनुभूति स्वयं इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना उसके तुरन्त बाद बचनेसे उत्पन्न हुआ हर्ष। यही बात किसी भी साहसपूर्ण खेलके विषयमें कही जा सकती है। कई लोगोंके लिए जुआ खेलकर खतरा उठानेका विचार शायद इसीलिए मोहक होता है कि उसमें भय रहता है और उससे बच निकलनेमें उल्लास होता है।

«आश्चर्य». जब आप किसी खास परिस्थिति और किसी खास कार्यके लिए तैयार हों, और इसी बीच कोई बात हो जाय, जिसके लिए आप पहिलेसे तैयार न थे, तब कुछ क्षणके लिए संवेगात्मक अस्त-व्यस्तता उत्पन्न हो जाती है। यद्यपि क्षणिक अस्त-व्यस्तताके पश्चात् आप अपना मानसिक सन्तुलन पुनः प्राप्त कर लेते हैं और वह आश्चर्य आपमें दुःख उत्पन्न करनेके बजाय सुख ही उत्पन्न करता है, तो भी वह भयके हल्के झोंके समान होता है (१५)। आप अपनी कुर्सी पर बैठे हैं, उसके पक्के होनेका आपको पूरा भरोसा होता है। किन्तु मान लीजिए, यदि वह अचानक टूट जाय तो आपको आश्चर्य हुए बिना न रहेगा। कोई चौंका देने वाली उत्तेजना—जैसे पिस्तौलके छूटनेकी आवाज़—आपको एकाएक चौंका देती है। चौंकने या उछलनेकी यह क्रिया कभी-कभी पलकों के तेज़ीसे झपकने तक ही सीमित रहती है और कभी-कभी सारे शरीरमें कँपकँपीकी रक्षात्मक प्रतिक्षेप क्रियाके रूपमें दिखायी देती है (देखिए आकृति ७९)।

«क्रोध». इसमें एकाएक खतरा नहीं होता, बल्कि यह किसी व्यक्तिके हस्तक्षेप या अपनी विफलतासे उत्पन्न होता है। जब व्यक्ति अपनी इच्छाओंकी पूर्तिमें असफल रहता है, और विशेषकर जब वह दोष किसी व्यक्ति या वस्तुके मत्थे मढ़ सकता है, तब वह क्रोधित होता है। 'नाच न आवे आंगन टेढ़ा' की कहावत आपने सुनी होगी। व्यक्ति अपनी ग़लतियोंको न देखकर अपनी परिस्थितियों या अपने सहयोगियोंकी कमियोंको ही अधिक देखता है। लेकिन कभी-कभी वह अपने ऊपर भी क्रोधित हो जाता है। भयकी तुलनामें क्रोध अधिक शक्तिशाली और बाह्योन्मुख संवेग है और उससे कम

[1] standard [2] stirred up states
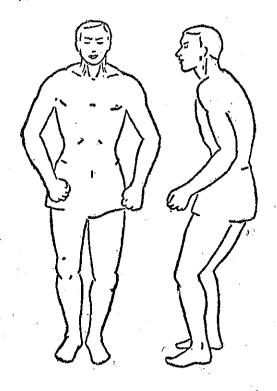
आकृति ७९. चौंकनेका नमूना। जब किसी व्यक्तिके पास जाकर पिस्तौल छोड़ी जाती है, तब वह सदा अपनी आंखें झपका देता है और साधारणत: उसके शरीरके कई अंग न्यूनाधिक रूपसे पूर्णत: संकुचनकी प्रतिक्रिया दिखाते हैं। सारी प्रतिक्रिया आधे सैकेंडसे कममें ही समाप्त हो जाती है। किन्तु चल-चित्रोंके जरिये उसका विश्लेषण किया जा सकता है। ये चल-चित्र किसी अत्यन्त तीव्र गति वाले कैमरेसे लिये जा सकते हैं, जो एक सैकेंडमें ६४ या १,५०० तक भाव-परिवर्तनोंकी फ़ोटो ले सकता है। बादमें यह फ़िल्म बहुत धीमी गतिसे दिखायी जाती है, ताकि जो गति अत्यन्त त्वरित थी, वह धीमी गतिके रूपमें दिखायी दे और उसका विस्तार से अध्ययन किया जा सके है। चौंकनेका यह नमूना या इस के कुछ अंश सभी सामान्य बच्चों और वयस्कोंमें पाये जाते हैं, यहां तक कि अनुभवी निशानेबाजोंमें भी, जो पिस्तौलके धड़ाके सुननेके अभ्यस्त हो गये रहते हैं। कई पशुओंमें भी सिकुड़नेकी ऐसी ही प्रतिक्रिया देखी जाती है। अन्य आकस्मिक उत्तेजनाएं, जैसे प्रकाशकी तेज चमक या त्वचा पर ठंढे जलका छींटा, भी बहुधा चौंकनेका नमूना प्रस्तुत करती हैं, हालांकि वे उतनी विश्वसनीय नहीं होतीं, जितनी पिस्तौलकी जोरकी आवाज़ होती है। [लैंडिस और हंट, २०]।

दु:खकर है। कुछ लोगोंको तो क्रोध करनेमें ही मजा आता है और वे जिस-किसीसे झगड़ा करनेका अवसर देखते रहते हैं।

«विनोद या मनोरंजन». मुस्कराने और हँसनेके समय जो संवेगात्मक स्थिति रहती है, उसकी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। जी खोलकर हँसनेके समान कोई भी प्रतिक्रिया स्पष्ट नहीं होती और यह संवेग निश्चय ही भय एवं क्रोधसे बहुत भिन्न होता है। किन्तु साधारण शब्दावलीमें, कौन-सी उत्तेजना मनोरंजन और हँसीको जन्म देती है? विभिन्न मनोरंजक परिस्थितियोंमें कौन-सी वस्तु समान होती है? अनेक सिद्धान्तवादियोंने इस कठिन प्रश्नका उत्तर देनेका प्रयत्न किया है। बच्चा गुदगुदाये जाने पर खिलखिलाकर हँस पड़ता है और खाटके नीचे खिलौना फेंककर फ़र्श पर उसके गिरनेकी आवाजसे वह खुश हो उठता है। बालक व्यावहारिक मजाक़ोंसे ज्यादा खुश होता है। किसीको कुर्सी पर गिराये जानेकी अपेक्षा जमीन पर लंगड़ी मार कर गिराये जाते देखकर वह अधिक प्रसन्न होता है। वयस्क व्यक्ति (कभी-कभी) श्लेषयुक्त कथन पर, दूसरोंकी बेवकूफ़ियों पर और अप्रत्याशित अन्त वाली कहानियों पर हँस पड़ते हैं। मजाक़में आमतौरसे आश्चर्यका एक तत्व रहता है (१२)।

«हर्ष[१]». हर्ष विनोद[२] के समान ही सुखकर होता है। फिर भी यह एक अलग संवेग है। विजयसे हर्ष होता है, लेकिन उससे विनोद नहीं होता। हर्ष अपने प्रकृष्ट रूपमें तब दिखाई देता है, जब बहुत संघर्षके पश्चात् सफलता प्राप्त हुई हो, जब बहुत तीव्र प्रयासके बाद लक्ष्यकी उपलब्धि हुई हो।

«शोक[३]». शोकका लक्षण है रोना या चिल्लाना। जब कोई व्यक्ति किसी क्षतिसे या कठिनाईके सामने अपनेको निस्सहाय अनुभव करता है, तब यह संवेग पैदा होता है।

«कामोद्दीपन». अन्य प्रकारके उद्दीपनोंसे भिन्न होता है, क्योंकि इसमें परिस्थिति भिन्न होती है, व्यवहार भी उसके अनुरूप ही होता है और उसके साथ रहनेवाला बलवान् संवेग भी अपनी कुछ ख़ास विशेषताएं रखता है।

संवेगोंके कई अन्य प्रकारोंका भी उल्लेख किया जा सकता है। दु:खद पक्षमें लज्जा (शर्म) और ईर्षाके नाम तथा सुखकर पक्षमें उत्साह और मधुर प्रेमके नाम गिनाये जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त भी संवेगोंके कई मेल और परिष्कृत रूप देखनेमें आते हैं। संवेगका प्रिय या अप्रिय संवेदनाओं और विचारोंसे भी संयोग रहता है।

संवेगों की अभिव्यक्ति

कोई व्यक्ति, जो अपनी अनुभूतियोंको अभिव्यक्त करता

[१] joy [२] mirth [३] grief

चाहता है, या तो भाषाका सहारा ले सकता है, या अभिव्यंजक संकेतोंका। इस प्रकारकी ऐच्छिक अभिव्यक्तिके अतिरिक्त भी व्यवहारके कई अनैच्छिक रूप हैं, जो संवेगात्मक स्थितिका परिचय न्यूनाधिक रूपसे सचाई और स्पष्टताके साथ दे देते हैं।

संवेग कैसे प्रकट होते हैं—अभिव्यंजक गतियां. मुस्कराने, हँसने, क्रोधमें भुनभुनाने, मुंह बिचकाने, भींकने, सुबकियां लेने, चिल्लाने, डपटने और खुशीके मारे नाचने आदिसे कोई महत्वपूर्ण बाह्य परिणाम नहीं उत्पन्न होता; केवल दूसरे लोगों पर उनका प्रभाव पड़ता है। इन गतियोंका क्या मतलब है? पहिली नजरमें तो यह प्रश्न बेतुका-सा लगता है, क्योंकि ये गतियां बहुत सामान्य और सहज होती हैं; किन्तु तनिक विचार करने पर ये निश्चय ही विचित्र लगती हैं। क्रुद्ध होने पर ओठ लटका लेने या घृणाके मारे मुँहके कोनोंको खींच लेने तथा मुँहके कुक्कुरदन्तों[1] को दिखानेसे क्या मतलब निकलता है? मनुष्यों और पशुओंकी इन गतियोंका अध्ययन करनेके बाद डार्विनने यह निष्कर्ष निकाला कि जो कार्य किसी समय व्यक्ति या जातिके जीवनमें व्यावहारिक उपयोग के थे, ये चेष्टाएं उन्हीं कार्योंके अवशेष-मात्र हैं (१०)।

अनिच्छा या 'नाहीं' प्रकट करनेके लिए इधरसे उधर सिर हिलानेकी जो प्रथा है, उसका प्रारम्भ व्यक्तिके शैशव कालसे मानना चाहिए, जबकि अवांछित भोजनको अस्वीकार करनेके लिए यह गति की जाती थी। अत्यन्त अरुचि[2] की दशामें नाक की अभिव्यक्ति प्रारम्भमें दुर्गन्धके विरुद्ध एक प्रतिरक्षात्मक क्रिया थी। दृढ़ निश्चयको प्रकट करनेके लिए ओठोंको मजबूतीसे एक पर एक जमा लेनेकी क्रिया पहिले दृढ़तासे जमे हुए टेंटुए[3] और सख्त सीनेके साथ शुरू हुई, क्योंकि इनसे मांस-पेशियोंके प्रयत्नमें लाभ होता है। ऐसी चेष्टाएं, जो प्रत्यक्ष रूपमें कतिपय सरल परिस्थितियोंके लिए उपयोगी हो सकती हैं, व्यक्तिके अनुभवके दौरानमें ऐसी ही, किन्तु इनसे जटिल परिस्थितियोंसे सम्बन्धित हो जाती हैं।

डार्विनके मतानुसार, घृणाके मारे दांत दिखानेकी चेष्टाका प्रारम्भ मनुष्यकी उत्पत्तिसे पहिलेकी विकासकी अवस्थासे समझना चाहिए। यह क्रिया कुत्तों और वनमानुषों जैसे पशुओं के लिए उपयोगी हो सकती है, जिनके कुकुरदांत लम्बे-लम्बे होते हैं। ये पशु इन दांतोंको तभी निकालते हैं, जब इनका उपयोग करनेकी तैयारी होती है। दांत निकालनेसे पशुओंके शत्रु बहुधा डर जाते हैं और उनपर आक्रमण करना अनावश्यक हो जाता है। डार्विन कहता है कि दांतोंसे लड़नेकी प्रथा प्रायः मिट जानेके बाद भी मानव जातिमें यह चेष्टा अभी तक अवशिष्ट है। कई अन्य अभिव्यंजक गतियोंका प्रारम्भ इसी प्रकार जाना जा सकता है। किन्तु यह स्वीकार करना चाहिए कि व्यक्ति के शैशवसे सम्बन्धित व्याख्याएं जातिगत अवशेषोंसे सम्बन्धित व्याख्याओंकी अपेक्षा अधिक तर्कसंगत मालूम पड़ती हैं।

संवेगात्मक अभिव्यक्तिको नियंत्रित करना सीखना. कुछ अभिव्यंजक गतियां, जैसे मुस्कराना, हंसना, चिल्लाना, सुबकियां लेना और रोना आदि निश्चित रूपसे बिना सीखी हुई होती हैं; अन्य गतियां अनुकरणके द्वारा अपनायी गयी होती हैं। बच्चा जैसे-जैसे बड़ा होता जाता है, वह प्रसन्नता और क्रोधकी अपनी अभिव्यक्तियोंको «नरम» करना सीखता जाता है। वह «अपने संवेगोंको छिपाना» तक सीख जाता है। चिल्लाने या डरने पर उसका मज़ाक उड़ाया जाता है; उसका क्रोध दिखाना और घमंडमें दुतकारना या रोबीली चालसे चलना नाराजी पैदा करता है। जब वह क्रोधसे भुनभुनाना चाहता है, तब शालीनताके तक़ाजेके अनुसार उसे अनेक बार मुस्कराना पड़ता है; और बिल्कुल घिसी-घिसायी सूचनाको सुनकर कभी-कभी उसे आश्चर्यके मारे चिल्लाना तक पड़ जाता है! मन कुछ चाहता है और सामाजिक व्यवहारोंका तक़ाजा कुछ और ही होता है। इस प्रकार सामाजिक दबाव उसे अपनी अनुभूतियोंको अपने तक ही सीमित रखनेकी शिक्षा देता है। साथ ही साथ, दूसरे लोग सदा यह जाननेकी चेष्टा करते रहते हैं कि वह क्या अनुभव करता है, और वह स्वयं «दूसरोंके संवेगों» को पढ़नेके लिए उनके चेहरोंको देखा करता है। जिस प्रकार लड़ाईके अस्त्र-शस्त्रों और उनको बेकार कर देने वाली योजनाओंमें हमेशा होड़ लगी रहती है, उसी प्रकार एक ओर संवेगोंको छिपानेकी दौड़ जारी रहती है, तो दूसरी ओर उनका भेद पानेकी दौड़।

सब बातोंकी एक बात यह है कि व्यक्ति जैसे-जैसे अधिक आयुका होता जाता है, उसकी अभिव्यंजक गतियां कम पड़ती जाती हैं। किन्तु अनुकरणात्मक खेलों और रंगमंच पर इससे विपरीत दिशामें, «संवेगोंको प्रकट करनेकी दिशामें» प्रगति हो रही है। संवेगोंकी अपनी एक भाषा होती है, जो संकेतों, शारीरिक संस्थितियों[4], विस्मयके उद्गारों, बदली हुई आवाज़ों, बोलीके स्वरों और चेहरेकी अभिव्यक्तियोंसे निर्मित होती है। इसमें सन्देह नहीं कि यह भाषा बिना सीखी हुई अभिव्यंजक गतियों पर आधारित होती है, किन्तु कालान्तर में इसका एक स्वरूप निर्धारित हो चुका है और अब यह एक सामाजिक प्रचलन और रीति-रिवाजकी चीज हो चुकी है। बच्चा इस भाषाको प्रचलित देखता है और कुछ हद तक इसे अपना लेता है। अभिनेता इस भाषाको काफ़ी हद तक अपनाते हैं और इसमें अपने ढंगसे सुधार भी कर लेते हैं। परिणाम यह होता है कि संवेगोंकी यह भाषा संवेगके समय होनेवाली

[1] canine teeth [2] disgust [3] glottis [4] postures

आकृति ८०. दो विशिष्ट मुद्राएं, जिनमेंसे 'क' का उद्देश्य आश्चर्य प्रकट करना है और 'ख' का उद्देश्य घृणा प्रकट करना। ये मुद्राएं जब १०० व्यक्तियोंको दिखायी गयीं, तब वे अलग-अलग निर्णय पर पहुंचे, जैसा कि निम्नलिखित संख्याओंसे मालूम पड़ेगा; फिर भी एक ही विशिष्ट आकृतिसे सम्बन्धित अधिकांश निर्णय प्रायः समान हैं। [फ्रेलेकी, १४]।

विशिष्ट आकृति 'क'	संख्या	विशिष्ट आकृति 'ख'	संख्या	विशिष्ट आकृति 'ख'	संख्या
आश्चर्य	५२	कुरूपता	१३	वृथा बकवाद सुनकर ऊबना	१
विस्मय	१२	अरुचि	११	तीव्र कोप	१
अचम्भा	११	घृणा	८	उद्विग्नता	१
चकित होना	६	तिरस्कार	८	ओठ फड़काना	१
प्रशंसा	३	धिक्कार	७	तुच्छता	१
भय मिश्रित आदर	२	आज्ञाका उल्लंघन	६	अरुचिकर (अप्रिय)	१
त्रास	२	अतिघृणा	५	शंका	१
हंसी-मजाककी रुचि	१	अनिच्छा	५	आत्मश्लाघा	१
तत्परता	१	तीखापन	३	अपनी योग्यता पर पूर्ण विश्वास	१
उत्साह	१	अपमान	३	रुष्टता	१
अत्युल्लास	१	अत्यन्त अरुचि	३	व्यग्रता	१
आशा	१	चिड़चिड़ापन	२	रोना	१
रोमांचक प्रेम	१	कठोरता	२	भीरुता	१
मित्रता	१	उपहास करना	२	पीड़ा	१
परोपकारिताका गर्व	१	नापसन्दगी	२	मानसिक पीड़ा	१
अनिच्छा	१	शत्रुता	१	घृणित भय	१
		अक्षमाशील क्रोध	१	शोकान्वित दया	१
		उपेक्षा (निरादर)	१		

सामान्य वयस्कके चेहरे और स्वरकी अभिव्यक्तियोंसे कहीं अधिक अभिव्यंजक होती है। जब कोई अभिनेता किसी संवेग की मुद्रा बनाता है, तब वह अपने चेहरेका पूरा उपयोग करता है, किन्तु जब एक साधारण नागरिक किसी संवेगात्मक स्थिति में होता है, तब उसका चेहरा वास्तविक स्वरूपको छिपानेका यत्न करता है।

संवेगोंमें मुख-मुद्रा कितनी अभिव्यंजक होती है? यह सामाजिक मनोविज्ञानका एक प्रमुख प्रश्न है। इस प्रश्नसे सम्बन्धित प्रमाण जुटानेके लिए प्रयोगकर्ता अनेक तरहकी मुख-मुद्राओंके फ़ोटो आपके सामने उपस्थित करता है और

आपको प्रत्येकसे व्यक्त होनेवाले संवेगका नामकरण करनेको कहता है। विभिन्न निरीक्षकों ने इन मुद्राओंको देखकर जो विचार प्रकट किये हैं, उनकी शब्दावली कुछ भिन्न अवश्य है, किन्तु प्राय: उनमें कोई मौलिक मतभेद नहीं दिखायी देता। कुछ मुद्राएं बहुत स्पष्ट होती हैं और उनको पढ़नेमें किसी भी निरीक्षकको कठिनाई या धोका नहीं होता, किन्तु कुछ भिन्नार्थक होती हैं। प्यार प्रकट करनेवाली मुद्राको आप 'प्रसन्नता' की मुद्रा कह सकते हैं—इसपे कोई बड़ा अन्तर नहीं पड़ता—किन्तु उसे 'क्रोध' या 'अरुचि' की मुद्रा तो आप हरगिज़ नहीं कहसकते। कई संवेगोंको (या मुख-मुद्राओंको) एक क्रमसे सजाया जा सकता है—प्यार और प्रसन्नतासे प्रारम्भ करके घृणा पर उसका अन्त किया जा सकता है और भय तथा क्रोध को मध्यमें रखा जा सकता है (आकृति ८१)। इसी क्रममें कई मुद्राओंका स्थान ठीक-ठीक निर्धारित किया जा सकता है। कुछ भिन्नार्थक मुद्राओंसे यह विचित्र निष्कर्ष निकलता है: आधे निरीक्षक कहते हैं कि उस मुद्रासे घृणा प्रकट होती है और आधे यह कहते हैं कि नहीं, उससे प्यार, प्रसन्नता और विनोद झलकते हैं (देखिए आकृति ८२)। प्यार और घृणाके संवेग एक-दूसरेसे बहुत भिन्न होते हैं। आप ही बताइए, यह कितना दुर्भाग्यपूर्ण होगा यदि आपका मित्र आपके चेहरेको देखकर यह न पहचान सके कि यह प्यार है या घृणा! किन्तु प्रसन्नता और विनोद सदा घृणाके भावसे बहुत भिन्न नहीं लगते—क्या आपने नहीं देखा है कि कितने ही घृणालु मनुष्य कितने शानदार ढंगसे मुस्करा उठते हैं? प्रसन्नता कई तरह की होती है। एक होती है प्रशंसात्मक प्रसन्नता और दूसरी होती है घृणामय प्रसन्नता। एक ही श्रेणीमें सभी संवेगोंको रखना एक तरहकी विवशता ही है, किन्तु इससे यह महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकट होता है कि चेहरेकी अभिव्यक्तियां बहुधा भली-भांति समझ ली जाती हैं (२३)।

आकृति ८१. अभिनेत्रीने अभिव्यक्तियोंके लिए चेहरेकी जो विशिष्ट मुद्राएं बनायीं, उनके निर्णय, जो उसके इरादोंसे मेल खाते हैं। अभिनेत्रीने ६ संवेग या संवेगोंकी ६ श्रेणियां अभिव्यक्तकीं; उनको परखनेवाले १०० निर्णायक थे। सबसे नीचेकी पंक्तिको पढ़नेसे हमें पता चला है कि प्रेम-प्रसन्नता और हंसी-खुशीके लिए बनायी गयी विशिष्ट मुद्राओंको लगभग ९० प्रतिशत निर्णायकोंने इसी वर्गके संवेगोंका प्रतिनिधित्व करनेवाला बताया, शेष निर्णायकोंने उसे 'आश्चर्य' समझा। भय और पीड़ाकी आकृतियों वाली पंक्तिकी दूसरी ओर पढ़ने से हमें पता चलता है कि उसमें अधिक बिखराव है, किन्तु साथ ही भय और पीड़ा-सम्बन्धी निर्णयोंकी बड़ी प्रबलता दिखायी देती है। पूरी रेखाकृतिमें जो तिरछा ढलाव दिखायी देता है, उससे मालूम पड़ता है कि अभिनेत्रीके इरादे और निरीक्षकके निर्णयमें काफ़ी उच्च विधानात्मक अनुबन्ध है। [फ़ेलेकी से संगृहीत सामग्री, १४]।

हाथके संकेत और बोलीके द्वारा संवेगोंकी अभिव्यक्ति. संवेगोंकी अभिव्यक्ति हाथोंके द्वारा भी हो सकती है और कुछ संकेत तो इतने प्रचलित हो चुके हैं कि उनको समझनेमें कोई कठिनाई नहीं होती। हर आदमी यह जानता है कि लड़ने, स्वीकार करने, अस्वीकार करने या दयाके लिए प्रार्थना करने की इच्छा प्रकट करनेके लिए हाथोंका उपयोग कैसे किया जाय। प्रयोगसे पता चलता है कि हाथों द्वारा कई तरहके संवेगोंका प्रदर्शन करते हुए अभिनेताओंकी फ़ोटोको देखकर कॉलेजके छात्र उनके असली संवेगोंको समझ पानेमें काफ़ी हद तक एकमत रहे हैं। उनके मत उस समय अधिक मेल खाते हैं, जिस समय फ़ोटोके बजाय उनकी मुद्राओंके चलचित्र प्रदर्शित किये जाते हैं। चेहरेकी अभिव्यक्तियोंका तात्पर्य समझनेवाले निर्णायकोंकी भांति इस प्रयोगके निरीक्षक भी यह बतलाते हैं कि वे संवेगोंको समझनेमें दो बातोंसे सहायता लेते हैं। वे उसी मुद्राका अनुकरण करके देखनेकी चेष्टा करते हैं कि उस समय उनको क्या अनुभूति होती है; या वे एक ऐसी परिस्थितिकी कल्पना करते हैं जिसमें उस तरहकी मुद्रा उपयुक्त कही जा सकती है (७)।

चेहरेसे भी अधिक अभिव्यक्ति आवाज़ द्वारा हो सकती है और गानेकी आवाज़से बात-चीतकी आवाज़ अधिक अभिव्यंजक होती है, क्योंकि जैसे संवेगोंको प्रकट करना होता है, वैसी ही कोमल या कठोर अथवा चढ़ती-उतरती, धीमी या बुलन्द आवाज़ बनाई जा सकती है। श्रोता प्रश्न करनेवाली उठती हुई आवाजको, निश्चय प्रकट करनेवाली धीमी आवाजको और व्यंग्य करनेवाले दीर्घ उच्चारणके भेद को अच्छी तरह समझ लेता है। छोटे-से शब्द 'नहीं' को ही ले लीजिए। बोलनेके ढंगके अनुसार इसके कई भिन्न अर्थ निकाले

mouth picture
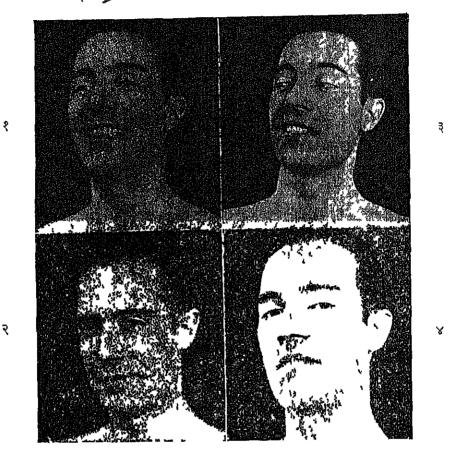
आकृति ८२ चेहरेकी स्पष्ट और अस्पष्ट अभिव्यक्तियां। इन चारों अभिव्यक्तियों में से एकके बारेमें तो लोगोंने लगातार यह निर्णय दिया कि वह प्रेम प्रसन्नता हंसी खुशीका प्रतिनिधित्व करती है, दूसरी अभिव्यक्ति अपमानका प्रतिनिधित्व करती है। शेष दो अभिव्यक्तियोंके विषयमें लोगोंने यह निर्णय दिया कि वे लगभग समान रूपसे बहुधा दोनों वर्गोंसे सम्बन्ध रखती है।

जा सकते हैं। निम्नलिखित गद्यांशको बहुत भिन्न तरीकोंसे बोला जा सकता है

'इसका कोई दूसरा उत्तर नहीं है। तुमने मुझसे यह प्रश्न हजारों बार पूछा है और मैंने सदा तुम्हें वही उत्तर दिया है। मेरा उत्तर सदा वही होगा।'

एक योग्य अभिनेताने श्रोताओंकी एक भीडके सामने इस गद्यांशको पांच बार पढ़ा और कई बारके पढ़नेमें इन संवेगों की अभिव्यक्ति करनेकी चेष्टा की घृणा, क्रोध, भय, शोक और औदासीन्य। श्रोताओंने जांचनेकी कोशिश की कि हर बार कौन से संवेगकी अभिव्यक्ति हो रही है और उनके ७८—

९४ प्रतिशत निर्णय अभिनेताके मन्तव्योंसे मिलान कर गये। अन्य अभिनेताओंने यद्यपि इतना अच्छा अभिनय नहीं किया, तथापि वे अधिकांश श्रोताओंको अपना मन्तव्य समझा सके। अभिनेताकी आवाज अन्य संवेगोंकी अपेक्षा क्रोध और भयकी अभिव्यक्ति करते समय एक सप्तक ऊंची हो गयी थी (१३)। सम्भवतः किसी भी आवेशकी अवस्थामें आवाजको तीव्र कर लेना और उसे सघन बना लेना मनुष्यकी नैसर्गिक प्रवृत्ति है, परन्तु उच्चारणके अन्य परिवर्तन सामाजिक रीति रिवाजों से सम्बन्ध रखते हैं और वे एक समूहसे दूसरे समूहमें भिन्न होते हैं।

उद्देश्य हैं : (क) संवेगात्मक और असंवेगात्मक व्यवहारका अन्तर मालूम करना, और (ख) एक संवेग और दूसरे संवेग के बीचका अन्तर मालूम करना ।

जिन मुख्य तथ्यों पर हमें विचार करना है, वे ये हैं :

१. वह परिस्थिति जिसमें व्यक्ति पड़ा हुआ है, और उस परिस्थितिका उसको ज्ञान और समझ ।

२. किसी बाह्य क्रिया या किसी परिणामके लिए, जैसे खतरे से भागनेके लिए, उसकी तैयारी ।

३. कुछ संवेगोंमें उपस्थित आंगिक दशा । सम्भवतः सभी संवेगोंमें यह आंगिक दशा उपस्थित नहीं रहती, न सभी संवेगों में यह दशा एक समान रहती है, और न हर अलग संवेगके लिए अलग आंगिक दशा ही होती है । यह क्रोध, भय और अन्य आवेशमय स्थितियोंमें एक-सी जान पड़ती है, किन्तु कामावेग या शोक या हर्षमें यह उससे भिन्न मालूम पड़ती है । आंगिक दशा अधिकतर स्वतंत्र स्नायुमंडल और अन्तर्मस्तिष्कमें स्थित उसके केन्द्र पर निर्भर होती है ।

४. आन्तरिक आंगिक क्रिया, अभिव्यंजक गतियों और बाह्य क्रिया द्वारा उत्पन्न संवेदनाएं । ये संवेदनाएं सामूहिक रूपमें अनुभव की जाती हैं ।

५. तीव्र अनुभूति और संवेग के समय होनेवाली अव्यवस्थित और अनिर्देशित क्रिया के विपरीत व्यावहारिक या बौद्धिक क्रिया का शरीर पर कम या अधिक हावी होना ।

जेम्स-लांगे[1] का संवेग-सम्बन्धी सिद्धान्त. जेम्स नामक अमेरिकन मनोविज्ञानिक और लांगे नामक एक डेन्मार्क-निवासी शरीर-शास्त्रीने एक-दूसरे से बिलकुल स्वतंत्र रूपसे सन् १८८० के आस-पास इस सिद्धान्तको विद्वानोंके सामने रखा । तबसे यह बराबर चर्चाका विषय बना रहा है । इसने विद्यार्थियोंको बहुत घपलेमें डाला है । किन्तु यदि उन्होंने यह देखनेकी चेष्टा की होती कि इस सिद्धान्तके प्रतिपादक वास्तवमें क्या समझाना चाहते थे, तो वे इतनी उलझनमें न पड़ते । इस सिद्धान्तके दोनों प्रतिपादक आवेशमय अनुभूतिके चेतन पहलू पर विचार कर रहे थे और जानना चाहते थे कि वह अनुभूति कैसे उत्पन्न होती है । जब आप अपनेको एक खतरनाक परिस्थितिमें पाते हैं, तब आप बिना भयभीत हुए, केवल अपने बचावका उपाय क्यों नहीं करते ? पुराना साधारण मत इस सम्बन्धमें कुछ अस्पष्ट था, लेकिन वह मानता था कि खतरेका ज्ञान सीधे भयकी अनुभूतिको उत्पन्न करता है और वह अनुभूति शरीरके अभ्यन्तरको क्षुब्ध कर देती है तथा पलायन या बचावकी चेष्टा भी वही उत्पन्न करती है । परन्तु इसके विपरीत, जेम्स-लांगे[1] सिद्धान्तके अनुसार, भयकी अनुभूति क्षुब्ध शारीरिक दशाका कारण नहीं, बल्कि उसका प्रभाव है । यह सारे शरीरसे, विशेषतः भीतरी अंगोंसे एकत्र हुई संवेदनाओं का एक पुंज-मात्र है । इस सिद्धान्तके अनुसार, अस्त-व्यस्त आंगिक दशा होने पर और संवेगके अनुरूप विभिन्न गतियोंका हर समय व्यक्ति जैसा अनुभव करता है, उसको संवेग कहना चाहिए ।

इस सिद्धान्तकी परीक्षा के लिए जेम्सने एक तरहका प्रयोग सुझाया । बढ़ी हुई हृदय-गति, उथली श्वसन-क्रिया, कांपते हुए ओंठ, निर्बल अंग, रोमांच और आन्तरिक अंगोंकी गड़बड़ी आदि की संवेदनाओंको आप भयके संवेगसे अलग हटाकर तनिक विचार कीजिए और फिर बताइए, अब आपके पास शेष क्या रहा ? केवल खतरेका ज्ञान और उससे बचनेका शान्त निश्चय ही तो ? जेम्सका कथन था कि 'शारीरिक दशाओं के बिना हम रीछको देखकर भाग जाना ही ठीक समझेंगे, अपमानित होने पर अपमान करनेवाले पर टूट पड़ना ही उचित समझेंगे, किन्तु वस्तुतः हम अपने को भयभीत या क्रोधित नहीं «अनुभव» करेंगे' (१९) ।

जेम्स-लांगे का सिद्धान्त 'त्वक्'-सिद्धान्त है, 'केन्द्रीय[2]' सिद्धान्त नहीं । अर्थात् इसके अनुसार शरीरकी त्वचा (अर्थात् पेशियों) से मिलने वाली संवेदनाओंके फलस्वरूप ही संवेगात्मक दशा पैदा होती है, मस्तिष्कके किसी केन्द्रमें शुरू होनेवाली किसी एक क्रिया के फलस्वरूप नहीं । इस लिए शरीर-विज्ञानके प्रयोगोंके द्वारा इसकी जांच की जा सकती है ।

जेम्स-लांगे के सिद्धान्तके विरुद्ध प्रमाण. शेरिंगटन[3] ने इस प्रश्नकी एक शरीरशास्त्रीय परीक्षा ली (२४) । अपनी प्रयोगशाला में उसने एक ऐसा कुत्ता मंगाया, जिसका स्वभाव उल्लेखनीय रूपसे संवेगात्मक दिखायी देता था; कुछ व्यक्तियों को वह प्यार करता था और कुछ व्यक्तियोंको देखकर भूकने लगता था । शेरिंगटनने उसके कुछ स्नायुओंको काट डाला, जिसके कारण वह कुत्ता धड़के भीतरकी लगभग सभी संवेदनाओंसे वंचित हो गया । संवेदनाओंकी इस क्षतिका कुत्तेके संवेगात्मक व्यवहार पर कोई प्रकट प्रभाव नहीं दिखायी पड़ा । 'उसका क्रोध, उसका हर्ष, उसकी अरुचि और उसका भय पहिलेकी भांति ही स्पष्ट रहा ।' एक आगन्तुकने, जिसने पहिले उसको क्रुद्ध कर दिया था, अब भी उससे वही स्वागत पाया : आंखें खूब खुली हुई, पुतलियां फैली हुई और वही पहलेकी गुर्राहट । लेकिन उसी समय उस नौकरको देखकर, जो उसे रोज खाना खिलाया करता था, उसने हर्षके लक्षण प्रकट किये ।

इस प्रयोगसे यह निश्चित रूपसे सिद्ध हो गया है कि संवेगमें बाह्य व्यवहार और अभिव्यंजक गतियां धड़के अन्दरके अंगों की संवेदनाओं पर निर्भर नहीं होतीं । निस्सन्देह यह कहना

[1] James-Lange [2] centoral [3] Sherrington

तो असम्भव है कि कुत्तेने क्या «अनुभव किया»। यह दलील दी जा सकती है कि कुत्तेने बिना किसी सवेगात्मक अनुभूतिके ही बाहरी चेष्टाएं की। किन्तु कुत्तके व्यवहारकी इतनी खींच तान की व्याख्या को तभी ठीक माना जा सकता है जब जेम्स लागे सिद्धान्तकी सचाईको प्रकट करनेवाला कोई बहुत सबल प्रमाण मौजूद हो।

कननने[1] भी एक प्रयोग किया था जिससे हमें कुछ नयी बातें ज्ञात होती हैं। उसने एक बिल्लीकी सहभावी नाडियां[2] को काट डाला और इन नाडियों पर जहां तक क्रोधकी आंगिक दशा निर्भर है वहां तक उसे असम्भव कर दिया। किन्तु इतने पर भी निर्लीन क्रोधके बाह्य व्यवहार और अभिव्यंजक गतियोंको—जैसे गर्राना, सिसकारना, दान्त दिखाना, कानों का पीछेकी ओर खींचना और चाट करनेके लिए अगले पंजे को उठाना आदि, जारी रखा। जहां तक हम किसी पशुके व्यवहारसे समझ सकते हैं, आंगिक दशा क्रोधके संवेगका कोई आवश्यक अंग या तत्व नहीं है (४)।

संवेगोंकी आन्तरिक[3] अनुभूतिके सम्बन्धमें निश्चित प्रमाण हमें मनुष्योंसे ही मिल सकता है। इस समस्या पर प्रकाश डालने वाला एक चालीस वर्षकी बुद्धिमती स्त्रीका मामला है। घोडे परसे गिर जानेके कारण इस स्त्रीकी गर्दन टूट गयी थी। गर्दनमें सुषुम्ना के टूट जानेसे मस्तिष्क, धड और अंगों के बीचके सभी ज्ञानवाही और गतिवाही स्नायु मार्ग अवरुद्ध हो गये, केवल स्वतन्त्र स्नायु मंडलके ऊर्ध्वभागसे कुछ भीतरी अंगोंके बीच सम्बन्ध बने रहे। मध्य भाग या सहभावी नाडियोंका सम्बन्ध मस्तिष्कसे बिल्कुल टूट गया और धड तथा अंगोंमें उत्पन्न होनेवाली सारी संवेदनाएं समाप्त हो गयीं। जेम्स लागे[4] सिद्धान्तके अनुसार तो व्यवहारतः सभी प्रकारका संवेगात्मक अनुभव समाप्त हो जाना चाहिए था, किन्तु जिस साल वह स्त्री दुर्घटनाके बाद जीवित रही, उसी साल एक विशेषज्ञ स्नायु-रोग चिकित्सकने, जो उसको देखने जाया करता था, यह सूचना दी कि 'वह शोक, हर्ष दुःख और स्नेहके संवेगोंका प्रदर्शन कर सकती है। उसके व्यक्तित्व या चरित्रमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ'। हम अन्य मामलोंके उदाहरण भी ले सकते हैं, किन्तु इस एक उदाहरण से यह निश्चित रूपसे पता चल जाता है कि शरीर और अंगोंसे उत्पन्न संवेदनाओंकी सहायता बिना भी मस्तिष्कमें संवेगात्मक अनुभव हो सकते हैं। प्रश्न उठता है, कि यदि संवेगात्मक अनुभव संवेदनाओंका समूह नहीं है, तो और हो क्या सकता है? सम्भवतः यह एक खास तरहसे व्यवहार करनेका अनुभव मात्र है, अर्थात् यह व्यक्तिको किसी आवेग[5] या अभिवृत्ति[6] की दिशामें बहने देनेका नाम है (६)।

यदि क्रोध और भयके समय होनेवाली आंगिक दशा को किसी प्रकार कृत्रिमरूपसे उत्पन्न किया जा सके, तो क्या होगा? स्मरण रहे, उस समय क्रोध या भयका कोई बाह्य कारण उपस्थित न होना चाहिए। डाक्टरोंकी सलाहसे मनुष्यको उपवृक्की[7] देकर यह प्रयोग किया गया है, क्योंकि उपवृक्की की अधिक मात्रा व्यक्ति पर बुरा प्रभाव डालती है। इसके फलस्वरूप निश्चित शारीरिक लक्षण, जैसे तेज नब्ज, हाथों और पैरोंका ठंडा पड जाना, हाथों, टांगों और आवाजका कांपना आदि पैदा हो जाते हैं। परीक्षार्थी प्रायः बताया करते हैं कि उन्हें इस स्थितिमें घबराहट, अशान्त, तनाव और आवेशमें होने या खेल अथवा दौडमें सक्रिय भाग लेनेके पहिलेके 'जूझ पडने' जैसा अनुभव होता है। कुछ परीक्षार्थी इससे भी जरा आगे बढकर कहते हैं कि वे ऐसा अनुभव करते हैं मानो किसी प्रकारकी अप्रत्याशित घटना घटनेवाली हो', या 'मानो वे कोई बडा हर्षोत्पादक समाचार सुननेवाले हों' या 'मानो वे अकारण ही रो पडनेवाले हों'। ये परीक्षार्थी 'मानो' प्रकारके संवेगका अनुभव करते हैं, किसी सच्चे संवेगका नहीं। वे बतलाते हैं कि उन्हें भयकी भी कुछ अनुभूति होती है किन्तु वास्तविक भय की नहीं, क्योंकि भयका कोई कारण उपस्थित नहीं होता। कुछ उदाहरणोंमें एक 'अस्पष्ट अज्ञात भय' की शिकायत की गई है, और बहुत कम विशुद्ध भयकी, हालांकि वह भी अकारण भय होता है। अधिकांश मामलोंमें यह देखा गया है कि परीक्षार्थी इस प्रयोगमें अपने मस्तिष्कका सन्तुलन नहीं खो देता, और वास्तवमें भयभीत नहीं होता, क्योंकि वह जानता है कि भयका कोई कारण नहीं है। किन्तु उपवृक्की[7] के प्रभाव के कारण वह इस अवस्थामें (यदि भयका कोई वास्तविक कारण हो तो) सामान्य[8] अवस्थाकी अपेक्षा अधिक सरलता से भयभीत हो जाता है (५, ६)।

प्रयोगोंसे जो प्रमाण मिला है, वह संवेगोंके त्वक सिद्धान्त के विरुद्ध पडता है और किसी केन्द्रीय सिद्धान्तके पक्षमें है। साधारणतः संवेगमें जो आंगिक दशा उपस्थित रहती है, वह स्वतन्त्र स्नायु मंडल[9] और अन्तमस्तिष्कमें स्थित उसके केन्द्रके सीधे नियन्त्रणमें रहती है। इस केन्द्रका त्वक्ष[1] से दो प्रकारका सम्बन्ध होता है, यह त्वक्षको प्रभावित कर सकता है और त्वक्षसे प्रभावित भी हो सकता है। कुछ ऐसी बात सत्य हो सकती है जब त्वक्ष हावी रहता है, तब व्यवहार अपेक्षाकृत शान्त, व्यावहारिक और लक्ष्योन्मुख रहता है, किन्तु जब अन्तमस्तिष्क हावी रहता है तब व्यवहार अस्त व्यस्त, असम्बद्ध और संवेगात्मक होता है। जब व्यक्ति

[1] Cannon [2] sympathetic nerves [3] subjective [4] James Lange [5] impulse [6] attitude [7] adrenin [8] normal [9] autonomic nerves [1] cortex

अपने मस्तिष्कका संतुलन गँवा देता है, तब अ तमस्तिष्क नियन्त्रणकी बागडोर सभाल लेता है, किन्तु जब तक वह होश में रहता है, अधिकार त्वक्ष[1] के हाथमें रहता है (१, २१)।

किन परिस्थितियोमें व्यक्तिके अपने मस्तिष्क का संतुलन खो बैठने की सम्भावना होती है? जब परिस्थिति इतनी उलझ जाती है और कठिन हो जाती है कि वह उस पर से अपना नियन्त्रण खो बैठता है, तब मस्तिष्कका संतुलन नष्ट होनेकी सम्भावना रहती है। संतुलन उस समय भी नष्ट हो जाता है, जब लक्ष्य तक पहुचा नही जा सकता या काफी जल्दी नही पहुचा जा सकता। यह स्थिति उस समय भी उपस्थित होती है, जब लक्ष्यकी प्राप्ति हो चुकी हो और हर्ष प्रकट करनेके अलावा और कुछ काम न हो, जब आंगिक दशा उस घोडेकी तरह प्रबल और स्फूर्तिमय हो, जिस पर काबू पाना मुश्किल हो गया हो। नशेकी हालतमें जब वहत् मस्तिष्कीय त्वक्ष[2] आंशिक रूपसे निष्क्रिय हो जाता है, तब मस्तिष्कके निचले भाग उसके नियन्त्रण से बाहर हो जाते है और अ तमस्तिष्क को ऐसे समयमें मनमानी करनेका अवसर मिलता है। वह संवेग की दूर की सूझ बूझ से रहित और आवेगमय अवस्था पैदा कर देता है।

अभी तक हम 'या तो ऐसा या वैसा' की शब्दावलीमें ही बात करते रहे है मानो व्यक्ति किसी क्षणमें या तो संवेगके तूफानमें होगा, या पूर्ण शान्त स्थितिमें। वास्तवमें संवेगकी मात्राएं सभी तरहकी होती है, संवेगकी सामान्य मात्रा व्यक्तिको अपने मस्तिष्कसे काम लेनेसे नही रोकती। एक ऐसी पूर्ण शान्त बौद्धिक क्रिया, जिसमें संवेगका लेशमात्र न हो, शायद कभी नही होती। यदि आप किसी ऐसे काय मे लगे हुए है, जो आपमें उकताहट या ऊब पैदा कर रहा है, तो वह उकताहट भी एक तरहकी संवेगात्मक स्थिति है, और यदि वह काम आपको बहुत अच्छा लग रहा है, तो वह रुचि संवेगका ही अंश है। यदि कोई क्रिया न आपको उकताती है, न आपमें अभिरुचि उत्पन्न करती है, तो वह सम्भवत स्वयमेव होती जा रही है और आपको उसने छुट्टी दे रखी है कि आप उस समय किसी अन्य वस्तुके विषयमें सोच सके, जिस में आपकी रुचि हो। साधारणत बौद्धिक और संवेगात्मक क्रियाएं एक समग्र क्रियाके रूपमें सामंजस्यके साथ संयुक्त होती है। त्वक्ष[1] और निचले मस्तिष्कके केन्द्र आपसमें मिल जुलकर साथ साथ काय करते है, त्वक्ष निचले मस्तिष्क केन्द्रो पर हावी अवश्य रहता है, परन्तु उनकी क्रियाको दबाता नही।

साराश

१ «अनुभूति और संवेग» व्यक्तिकी अस्थायी मनोदशाएं है। ये प्रेरकोसे सम्बद्ध होती है और साथ साथ «इच्छाओ» से भी।

२ «अनुभूतियां» विभिन्न प्रकारकी और विभिन्न शक्तियो की चेतन दशाएं है।

(क) वुन्ट[3] ने अनुभूतियोका तीन विमाओमें एक वर्गीकरण सुझाया था एक विमा 'सुखकरता–दुखकरता' थी, दूसरी 'आवेश–जडता' और तीसरी 'तनाव–शैथिल्य' थी।

(ख) अनुभूति पेशियो की क्रिया से भिन्न वस्तु है, हालांकि वह बहुधा क्रिया के साथ साथ चलती है।

(ग) अनुभूतिको सावेदनिक क्रिया से भिन्न इसलिए बताया जाता है कि यह परिवेशगत या भीतरी घटनाओ और वस्तुओके विषयमें कोई ज्ञान नही कराती।

(घ) स्वयं सावेदनिक क्रिया से और किसी प्रेरक की तृप्ति या अतृप्तिसे सुख या दुखकी प्राप्तिकी जा सकती है।

(ङ) «सहानुभूति» वैसा ही अनुभव करनेकी प्रवृत्ति है जैसा दूसरा व्यक्ति अनुभव कर रहा होता है। «समानुभूति» ऐसा अनुभव करनेकी प्रवृत्ति है, जैसा आप तब अनुभव करते, जब आप दूसरे की स्थिति में होते। दोनो प्रवृत्तियां बहुधा बाह्य व्यवहारमें व्यक्त हुआ करती है।

(च) प्रकृति और कला की सुन्दरता का सौदर्यात्मक आनन्द[4] कभी कभी साहचर्यो[5] पर आधारित होता है, किन्तु सम्मिति[6], अनुपात और संतुलनके लिए सौदर्यात्मक अभिरुचि अधिक सामान्य और अधिक आधारभूत मालूम होती है।

३ «संवेग» व्यक्तिकी क्षुब्ध दशाएं है। प्रत्येक संवेगका वर्णन अनुभूति, प्रतिक्रिया के लिए तैयारी आंगिक दशा और संवेगको उकसानेवाली बाह्य परिस्थितिकी दृष्टिसे किया जा सकता है।

(क) «भय» खतरेकी परिस्थितियो द्वारा उत्पन्न होता है। अर्थात व्यक्तिकी परिचित उत्तेजनाओ द्वारा, जो आनेवाली दुखद परिस्थितिका चिह्न होती है, भय उत्पन्न किया जाता है। इसी तरह आकस्मिक,

[1] cortex [2] cerebral cortex [3] Wundt [4] æsthetic enjoyment [5] associations [6] symmetry

विच्छिन्न या अप्रत्याशित उत्तेजनाए भय (या आश्चय) की उत्पत्ति करती ह, क्योकि वे बहुधा भयका सकेत हुआ करती ह।

(ख) «क्रोध» एसी परिस्थितियोमें उत्पन्न होता ह, जब कोई चालू क्रिया या काम की तैयारी किसी बाधा के द्वारा बीच में ही रोक दी जाय।

(ग) «विनोद» कई तरहकी परिस्थितियो द्वारा पदा होता ह, जिनमें कोई एक स्पष्ट बात समान नही होती। हास्यका एक सिद्धा त किसी तनावकी स्थितिसे अचानक मुक्ति पा जान पर बल देता है।

(घ) किसी पूव कल्पित या प्रत्याशित लक्ष्य अथवा सुखकी उपलब्धि हो जान पर «हप» की उत्पत्ति होती ह।

(ङ) तृप्तिके किसी प्रत्याशित या अभ्यस्त उदगमसे जब व्यक्ति इस तरह वचिन कर दिया जाय कि उसके फिर मिलनकी कोई सम्भावना न रहे, तो उस स्थिति में «शोक» पदा होता है।

४ जिन प्रतिक्रियाओं[1] का उपयोग हमारे आदिकालीन पूवज करते थे, उ ही प्रतिक्रियाओसे सवेगो की अभिव्यक्तिया[2] की जाती ह, या व व्यक्तिगत विकासके दौरानमें सीखी जाती ह।

(क) बच्चा अपने परिवेश के सामाजिक दबावके अनुसार धीरे धीरे अपनी सवगात्मक अभिव्यक्तियो पर नियत्रण करना सीखता ह। वह कई सवगोकी अभिव्यक्तिको छिपाने लगता ह और सामाजिक रीति रिवाज के अनुसार अभिव्यक्तियोको अपनाता ह।

(ख) व्यक्तिकी सवेगात्मक दशा का निणय उसके चेहरेकी अभिव्यक्तिसे काफी सही सही किया जा सकता है, और कुछ हद तक उसके सकेतो और स्वरके उतार चढाव से भी उसका निणय किया जा सकता ह।

५ कोई «आगिक दशा», जिसमें आ तरिक अगो में परिवर्तन होते ह, भय या क्रोधके आवशमय सवेगसे सम्बद्ध होती ह।

(क) अधिकतर सहभावी नाडियो—स्वतत्र स्नायु मडल का मध्यवर्ती भाग—की क्रिया के कारण आगिक परिवतन उपस्थित होते ह।

(ख) धोखाधडी या झूठका पता लगाने के लिए श्वसन क्रिया और रक्त चापमें होनवाले परिवतनोका अकन किया जा सकता ह।

(ग) क्रोधकी दशा में आमाशय अपनी सामान्य पाचन क्रियाए स्थगित कर देता है।

(घ) सवेगके समय सहभावी नाडियोकी क्रियाके अन्य चिह्न रोमाच, पुतलियोका फलना और स्वद आदि ह।

(ङ) सवेगके समयकी आगिक दशा किसी स्फूर्तिमय शक्तिशाली क्रिया के लिए लाभप्रद तयारी ह।

६ «सवगोका सिद्धा त» उत्तेजनात्मक परिस्थिति, काम की तयारी, आगिक दशा और शारीरिक सवेदनाओको सम्बन्धित करनेकी चेष्टा करता है।

(क) जेम्स लागे[3] सिद्धान्तके अनुसार सवेगात्मक अनुभूति शरीरसे, विशषकर भीतरी अगोसे आनेवाली सवेदनाओका समूह मात्र ह।

(ख) प्रयोगोसे पता चला ह कि शरीरके ज्ञानवाही स्नायुओ को काट देने पर भी सवेगोकी समाप्ति नही हो जाती और न मनुष्यको उपवृक्की[4] खिलाने पर, जिसके कारण एक खास तरहकी आगिक दशा उत्पन्न हो जाती ह, स्पष्ट सवेग पैदा होता है।

(ग) सम्भवत स्वक्षक नियत्रण के हट जाने पर होने वाली अ तमस्तिष्ककी क्रिया के फलस्वरूप सवेग उत्पन्न होते ह।

[1] responses [2] emotional expressions [3] James Lange [4] adrenin

१२

चुनाव, संघर्ष, विफलता

यदि प्रत्येक उत्तेजनाकी अनिवार्यतः एक निश्चित प्रतिक्रिया होती—यदि वंशानुक्रम और पिछले परिवेशके कारण व्यक्ति एक निर्दिष्ट परिस्थितिमें केवल एक तरीकेसे ही कार्य कर पाता—यदि हर आनेवाली घड़ीमें उसके सामने यह बिल्कुल स्पष्ट होता कि केवल एक ही चीज वह कर सकता है, या केवल एक चीज वह करना चाहता है, जिससे इस मामलेमें उसे 'चुनाव'[1] की कोई गुंजाइश न होती', तो हमारा जीवन आजकी अपेक्षा सरल होता। नित्य-प्रतिकी दिनचर्या बहुधा इसी तरह की होती है। हर चीज अपने ढर्रे पर होती जाती है और कोई विकल्प नहीं सूझते। फिर भी, आप यदि अपने व्यवहारको तनिक निकटसे परखें, तो आप पायेंगे कि एक ही साधारण दिन के अन्दर आपने कई चुनाव किये और हर सम्भव विकल्प[2] पर कुछ विचार करनेके बाद आपने मामूली प्रश्नों पर कई फ़ैसले किये। और जीवनकी पूरी अवधिमें तो न जानें चुनाव और निर्णयके कितने महत्त्वपूर्ण क्षण आते हैं। कई विकल्पोंमें से कुछको चुन लेनेकी स्वतंत्रता और उनके सम्बन्धमें दृढ़ निर्णय कर लेनेका बन्धन आपके लिए सुविधाजनक होता है, या असुविधाजनक? अपने अनुभव याद करनेके पश्चात् कुछ व्यक्ति इस प्रश्नका एक तरहसे उत्तर देंगे और कुछ व्यक्ति दूसरी तरहसे।

संकल्प[3]. मनोविज्ञानमें प्रयुक्त अन्य संज्ञाओंकी तरह की यह संज्ञा भी क्रियाके रूपमें ही समझी जाती है। 'संकल्प करने' का अर्थ है चुनाव करना, या इरादा करना, या रुकावटों पर विजय प्राप्त करना। आप दो लक्ष्योंमें से अपनी पसन्दका एक लक्ष्य «चुन» लेते हैं कि लक्ष्यका चुनाव कर लेनेके पश्चात् आप लक्ष्य तक जानेवाली किसी एक राहका, साध्यके लिए एक साधनका चुनाव करते हैं और चुनाव करनेमें बराबर यह ध्यान रखते हैं कि दो या कई विकल्पोंमेंसे सबसे अच्छा विकल्प ही आप स्वीकार करें।

जब आपकी आंखोंके निकट तक कोई वस्तु अकस्मात् ही आ जाती है, तब आप अपनी पलकोंको झपकानेका «इरादा[4]» नहीं करते, क्योंकि पलक झपकनेकी क्रिया तो अनैच्छिक, बिना सीखा हुआ प्रतिक्षेप है। कुछ सीखी हुई गतियां भी इतनी स्वतः चालित हो जाती हैं कि वे अनैच्छिक[5] बन जाती हैं। खास तौरसे किसी बड़े कार्यकी अंशभूत गतियां तो अनैच्छिक (बिना प्रयास) हो ही जाती हैं। आप अपने हस्ताक्षर इरादेसे करते हैं, किन्तु प्रत्येक अक्षरकी लिखावटको ऐच्छिक या प्रयास-साध्य क्रिया नहीं बना देते, क्योंकि ज्यों ही आप अपने हस्ताक्षर करना प्रारम्भ करते हैं, अंगुलियोंकी गतियां स्वयमेव हो जाती हैं। प्रयोजन[6] के अन्तर्गत हमने जान-बूझकर किये गये कार्यों पर पहिले ही विचार कर लिया है। जैसा कि साभिप्राय व्यवहारके उदाहरणसे पता चलता है, संकल्पमें दो तत्व सम्मिलित हैं: प्रेरक और पूर्वदृष्टि। सहेतुक कार्य करते समय आप कुछ परिणामोंकी इच्छा करते हैं और पहिले ही देख लेते हैं कि आप उन परिणामोंको प्राप्त कर सकेंगे, किन्तु इसमें शर्त यह रहती है कि आप एक निर्दिष्ट विधिसे कार्य करें। आप अपनी पूर्वदृष्टिसे कुछ ऐसे आनुषंगिक परिणामों को भी देख सकते हैं, जिनकी विशेषतः आप इच्छा नहीं करते और जिन्हें आप नापसन्द तक कर सकते हैं, किन्तु वांछित परिणामोंकी प्राप्तिके लिए वे अनिवार्य हो जाते हैं। आप पहिलेसे यह भी देख लेते हैं कि आपके लक्ष्य तक पहुंचनेमें कई कठिनाइयां, परेशानियां हैं और आपको तथा आपके साथियोंको अन्य कई असुविधाएं भी हो सकती हैं, किन्तु आप इन चीजोंका सामना करनेके लिए तैयार हो जाते हैं। कारण, आप अपने लक्ष्यके लिए कटिबद्ध हैं। ऐसे किसी निर्णय पर पहुंचना और उससे चिपके रहना वास्तवमें बड़ा कठिन काम है।

संकल्पके एक और स्वरूप, अर्थात् प्रयत्न बढ़ाकर «अवरोधों पर विजय प्राप्त करने», पर भी हम पहिले विचार कर चुके हैं। अवरोध कई तरहके होते हैं, और जिस प्रयाससे उनपर विजय पायी जाती है, वह सदा मांस-पेशियोंसे ही सम्बन्धित नहीं होता। जब हम किसी बच्चेके विषयमें कहते हैं कि 'वह अपने मनकी करता है', तब हमारा तात्पर्य यह होता है कि वह अपने हठ पर अड़ा रहता है, अवरोध उसे अपने मार्गसे हटा नहीं पाते, और दूसरे लोगोंके आदेशों और समझानेके बावजूद वह अपनी तबियतकी बात करनेका हठ करता है। वह यह कहनेके लिए स्वतंत्र है कि 'मैं करूंगा' और 'नहीं, मैं नहीं करूंगा'। निस्सन्देह, उसका संकल्प ऐसा नहीं है कि उसे बिल्कुल टाला ही न जा सके। वह समझाने-बुझानेसे या सजाके डरसे या थकानसे अपनी जिदको छोड़ सकता है।

[1] choice [2] alternative [3] will [4] intention [5] involuntary [6] purposes

या वह आलस्य, शिथिलता और कठिन श्रममय जीवनकी अपेक्षा सुख-सुविधामय जीवनके आकर्षणके फेरमें पड़कर अपने लक्ष्यसे विमुख हो सकता है। हमेशा कई विकल्प होते हैं। जब कोई व्यक्ति यह कहता है कि उसके सामने दूसरा विकल्प नहीं, तब वास्तवमें वह कहना चाहता है कि केवल एक ही चीज उसके लिए आकर्षक है। कठिनाइयोंके रहते हुए, हमेशा यह विकल्प रहता है कि आप अपने लक्ष्य को छोड़ दें। कभी-कभी तो परिस्थितियोंको देखते हुए लक्ष्यको तिलांजलि दे देना ही सर्वाधिक तर्कसंगत चुनाव हुआ करता है।

आदर्श तो यही है कि आपका चुनाव[1] तर्कसंगत विचारों पर आधारित हो। इसमें सन्देह नहीं कि हम प्रेरकों, दूरदर्शिता और 'अपने स्वयंके संकल्प' वाले प्राणी हैं। किन्तु हम संवेग-शील प्राणी भी हैं। बहुधा हम शान्त चित्तसे यह विचार नहीं करते कि हमारी विभिन्न कार्य-पद्धतियोंके क्या वांछित या अवांछित परिणाम होंगे, बल्कि क्षुब्ध आन्तरिक दशाके वशीभूत होकर हम कार्य कर बैठते हैं। हमारे विवेकका स्थान अज्ञातका अन्ध भय ले लेता है, रुकावटों पर विजय प्राप्त करनेके बजाय हम क्रोधमें पागल हो जाते हैं, निरर्थक कार्यके लिए हमारी सामान्य अरुचि 'इसको करनेसे लाभ ही क्या?' की निराशावादी वृत्तिका रूप ले लेती है। संघर्ष-शील प्रेरकों और निष्फल प्रयासों पर विचार करते समय हमें मानवीय व्यवहारके संवेगात्मक और बुद्धिमूलक[2] तत्वोंको ध्यानमें रखना चाहिए।

संघर्षशील प्रेरक

जब प्रेरकोंमें संघर्ष होता है, तब लक्ष्य और कार्य-पद्धति वैकल्पिक होती हैं। अपनी बातको सरल ढंगसे रखनेके लिए हम यों कहें तो ठीक रहेगा कि दो विकल्प, 'दो वस्तुएं' होती हैं, जिनके बीच आपको चुनाव करना है। कोई वस्तु या तो आकर्षक हो सकती है या विकर्षक। इनमेंसे एकको प्राप्त करनेके लिए आप उसके पास जाना चाहेंगे, उसका उपयोग करेंगे, उससे आनन्द उठायेंगे अथवा उनमेंसे एकको आप दूर ही रखना चाहेंगे, और स्वयं उसके पाससे भाग जायेंगे, क्योंकि उसके गुण आपको अवांछनीय लगते हैं। आइए, हम आकर्षक वस्तुके पहिले + चिह्न और विकर्षक वस्तुके आगे — चिह्न लगाकर विभिन्न परिस्थितियोंके अनुसार उनकी रेखाकृति तैयार करें।

चुनाव, समझौता और दुविधापूर्ण प्रतिक्रियाएं. 'चुनाव' में दो या कई वस्तुओंके बीचसे अपने मनकी वस्तुको चुनना होता है; एक स्पष्ट चुनावमें एक वस्तुको ग्रहण कर लिया जाता है और दूसरी वस्तुको अस्वीकार कर दिया जाता है। दोनोंमें से किसी एक वस्तुके प्रति प्रतिक्रिया की जाती है। समझौते[3] में, प्रतिक्रिया या तो दोनों वांछित वस्तुओंके पास जानेकी चेष्टा करती है, या दोनों अवांछित वस्तुओंसे अलग रहती है, या एक वांछित वस्तुके पास जाती है और दूसरी अवांछित वस्तुसे दूर रहती है। वस्तुओंकी ओर जाने या उनसे दूर रहनेकी प्रवृत्तियां शर-चिह्नोंके द्वारा दिखायी जा सकती हैं, जैसाकि आकृति ८५ में किया गया है।

विकल्पोंमें से यदि एक + वस्तु हो और दूसरी — वस्तु, तो स्पष्ट चुनाव करते समय व्यक्ति या तो + वस्तुके पास जायेगा, या — वस्तुसे अलग हट जायगा; तात्पर्य यह कि दोनों दशाओं में दूसरी वस्तुकी उपेक्षा कर देगा। साधारणतः इनमें से एक चुनाव तो करना ही पड़ता है, किन्तु यदि — वस्तुसे व्यक्तिको अधिक भय लगता है और + वस्तुके प्रति उसे अधिक खिंचाव जान पड़ता है, तो एक समझौतेकी प्रतिक्रिया हो सकती है। ऐसी स्थितिमें दोनों शर-चिह्नोंके बीचसे चल कर 'व्य' (व्यक्ति) + वस्तुके पीछे आ जायगा, जहांसे भयभीत करनेवाली — वस्तुके बहुत दूर होनेके कारण वह अपना मार्ग बदल सकता है और सीधे + वस्तुको प्राप्त करनेके लिए जा सकता है (यहां शिशु और उसे भयभीत करनेवाले खरगोश के मामलेकी तुलना कीजिए।

यदि दोनों वस्तुएं विकर्षक हैं, तो किसी तरहका संघर्ष उपस्थित न होगा, किसी चुनावकी आवश्यकता न होगी और न कोई सच्चा समझौता ही होगा, हालांकि तुरन्त दोनोंसे दूर भागनेके लिए 'व्य' कर्ण[4] का अनुसरण कर सकता है। यदि दोनों ही वस्तुएं आकर्षक हैं और बिल्कुल समान रूपसे वैसी हैं, तो समझौता कर्णको पकड़ेगा और उनमें से किसी भी वस्तुके पास नहीं पहुंचेगा, किन्तु इतनी निरर्थक प्रतिक्रिया निश्चय ही बहुत देर तक नहीं टिकेगी और चूंकि संघर्ष बहुत मामूली है, इसलिए चुनाव आसानीसे हो सकेगा। यदि आप एक छोटे बच्चे हों और आपको 'रोटी' के दो बराबर टुकड़ों में से चुनाव करनेको कहा जाय, तो शायद आप गौरसे देखें कि दोनोंमें से कोई बड़ा तो नहीं है, किन्तु आप अधिक देर तक दुविधाकी स्थितिमें न रहेंगे।

'ख' और 'ग' रेखाकृतियोंके बावजूद जब दो अच्छी वस्तुओं में से या दो बुरी वस्तुओंमें से चुनाव करना पड़ता है, तब बहुधा दुविधा अवश्य पैदा होती है। आप घड़ीके 'पेंडुलम' की तरह कभी एक ओर, कभी दूसरी ओर झूलते रहते हैं; एक चीजका चुनाव कर लेनेके बाद भी आप दूसरी वस्तु की ओर अन्तिम दृष्टि डालते हैं और पाते हैं कि वह इतनी

[1] choice [2] rational [3] compromise [4] diagonal

आकृति ८५. ऐच्छिक चुनाव, समझौता, अस्थिरता। योगका चिह्न (+) किसी आकर्षक वस्तु या विकल्पको सूचित करता है और ऋणका चिह्न (—) किसी प्रतिकारक या रुकावट डालनेवाली वस्तुको। शर-चिह्न वस्तुओंकी ओर बढ़ने या उनसे दूर हटनेकी प्रवृत्तिको सूचित करते हैं। बिन्दु वाली कर्णरेखाएं सम्भावित समझौता प्रतिक्रियाओंको सूचित करती हैं।

अच्छी है कि उसे सहज ही छोड़ा नहीं जा सकता—या आप दो बुरी वस्तुओंमें से एक को लगभग चुन ही लेते हैं, किन्तु फिर आश्चर्य करते हैं कि क्या दूसरी वस्तु पहिलीकी अपेक्षा अधिक सह्य न होगी? जब ऐसी दुविधा उपस्थित होती है, तब इसका कारण यह होता है कि प्रत्येक वस्तुके दो चिह्न होते हैं (+ और—)। दूसरी वस्तुकी तुलनामें इसमें अपनी कुछ अच्छाइयां होती हैं, तो अपनी कुछ बुराइयां भी होती हैं (रेखाकृति 'घ')। यद्यपि दो वस्तुएं एक-सी अच्छी या एक-सी बुरी हो सकती हैं, तो भी उनके प्रकारमें कुछ भिन्नता होती है और आपको निश्चय करना रहता है कि अच्छी वस्तुओंमें से कौन-सी अच्छी वस्तु आपको पसन्द है, या बुरी वस्तुओंमें से कौन-सी बुरी वस्तुको आप अधिक अच्छी तरह सहन कर सकते हैं। सम्भवतः सभी कठिन चुनावोंमें दोनों तरहके चिह्नों (+ और—) वाले विकल्पोंसे व्यक्तिका पाला पड़ता है (६, ६, १२)।

कुछ उदाहरण. एक बच्चा मुरब्बेका बर्तन आलमारीमें रखा हुआ देखता है। वह मुरब्बा खाना चाहता है, किन्तु जानता है कि मां से बिना मांगे मुरब्बा खा लेने पर उसे सजा मिलेगी। जिन दो बातोंमें से उसे चुनाव करना है, उनमें से प्रत्येकके साथ + और—का चिह्न लगा हुआ है। यदि वह खाता है, तो मुरब्बेका आनन्द उसे मिलता है, किन्तु साथ ही सजा भी मिलती है; यदि वह नहीं खाता तो मुरब्बेसे वंचित रहता है, किन्तु सजासे बच जाता है और ईमानदार होनेकी अनुभूति उसे होती है। इसलिए वह दुविधामें पड़ जाता है। यदि खानेका समझौता करे, यानी जरा-सा मुरब्बा खा ले, तो भी दंड तो मिलेगा ही, मुरब्बेका पूरा आनन्द न उठा पानेका मलाल भी रह जायगा। इस परिस्थितिमें उसे खाने और न खानेमें से किसी एक का स्पष्ट चुनाव करना आवश्यक है।

एक नौजवान आदमी कॉलेजमें पढ़ना चाहता है और यह भी चाहता है कि वह अपना व्यय स्वयं सँभाल सके और अपने परिवार पर अधिक समय तक बोझ बनकर न रहे। स्पष्ट है कि दोनोंमें से प्रत्येक विकल्पके साथ दोहरे चिह्न लगे हुए हैं। वह इन दोनोंके बीचका एक सन्तोषजनक मार्ग निकाल सकता है; या तो वह अपने परिवारसे कुछ रुपये उधार ले और अध्ययन समाप्त करनेके बाद उसे लौटा देनेका निश्चित विचार रखे, या वह परिवारसे कॉलेज-व्ययमें आंशिक सहायता ले और शेषके लिए कहीं थोड़े समयकी नौकरी कर ले और इस प्रकार अपना अध्ययन जारी रखे।

एक आदमी गाड़ी पकड़नेके लिए दौड़ रहा है, या कोई खिलाड़ी प्रतियोगितामें दौड़ लगा रहा है, और उसका दम इतना फूल जाता है कि उसे लगता है कि वह दौड़ना बन्द कर दे, तो ठीक रहे। प्रत्येक विकल्पके साथ (धन और ऋणका) दोहरा चिह्न है और कोई समझौता सम्भव नहीं जान पड़ता। यदि वह साहस बटोर कर दौड़नेमें जुटा रहता है (और ऐसा करनेकी कुछ भी स्थिति में वह है), तो वह शीघ्र ही अपना दूसरा चक्कर पूरा कर लेता है और अब उसे अपना कार्य पहिलेकी अपेक्षा अधिक सरल मालूम पड़ता है। खेलसे असम्बन्धित अन्य कार्योंमें भी, जिनमें लम्बे प्रयासकी आवश्यकता रहती है, दूसरे चक्करकी सी स्थिति उत्पन्न होती है। आप अनुभव करते हैं कि आप अब और अधिक काम नहीं कर सकते, किन्तु आपको देर तक काम करना ही है, अन्यथा···इसलिए आप कुछ देर तक और काम करते रहते हैं और आपको यह देखकर आश्चर्य होता है कि थकानकी अनुभूति दूर होती जा रही है।

निश्चय. अनिश्चयकी दशा बहुत बुरी मालूम होती है और कभी-कभी तो बड़े उलझे हुए संवेग उत्पन्न होने लगते हैं, हालांकि अन्य अवसरों पर, जब विकल्पों पर उनके गुण-दोषको शान्तिपूर्वक देखते हुए विचार किया जाता है, तो हम किसी न किसी निश्चय पर पहुंच जाते हैं। कभी-कभी तो आदमी प्रत्येक विकल्पके लाभों और हानियोंको एक कागज पर अलग-अलग लिख लेता है और उनका तुलनात्मक अध्ययन करनेके बाद कोई निश्चय करता है। कभी-कभी दलीलोंके

बलाबलका ज्ञान होने पर मनुष्य निश्चय पर भी धीरे-धीरे पहुंच जाता है। कभी-कभी अनिश्चयकी स्थिति इतनी लम्बी, चिढ़ पैदा करनेवाली और प्राय: अपमानपूर्ण हो जाती है कि आप कह उठते हैं: 'कोई निश्चय न करनेसे कुछ निश्चय कर लेना ही बेहतर है, इसलिए जो हो सो हो, मैं तो «यही» काम करूंगा'। इस प्रकार आप गतिरोधको समाप्त करते हैं, मानों पैसा उछालकर कोई फ़ैसला कर रहे हों। जब काफ़ी देर माथापच्ची करने और वाद-विवादके पश्चात् भी आप दो विकल्पोंमें से एक को चुननेके बारेमें दुविधाकी दशा नहीं छोड़ पाते, तब यही अच्छा होता है कि आप कुछ समय तक उस प्रश्न पर विचार करना स्थगित कर दें। कुछ समय तक विश्राम करनेके बाद, या रात भर सो लेनेके बाद जब ताज़े होकर आप उस मामले पर पुन: विचार करते हैं, तब आपको लगता है कि एक विकल्प दूसरे से निश्चय ही श्रेष्ठ है।

किसी भी तरहसे मनुष्य आखिरकार एक निश्चय पर पहुंचता है और साधारणत: उसको निभाता है। एक छात्र प्रारम्भमें दो कॉलेजोंमें से किसी एक अच्छे कॉलेजमें भरती होनेके विषयमें काफ़ी दुविधामें रहता है, किन्तु अन्तमें जब वह किसी एक को चुन लेता है और उसमें प्रवेश पा जाता है, तब दूसरा कॉलेज अपने आप अपना आकर्षण छोड़ देता है। अब वह पूर्णतया एक के पक्षमें है, दूसरे के पक्षमें बिल्कुल नहीं। कुछ लोगोंमें दुविधामें पड़ने की इतनी असाधारण प्रवृत्ति होती है कि वे अपने किसी निश्चयको अन्तिम रूपसे कभी स्वीकार नहीं करते। परन्तु साधारणत: किसी भी तरह जब एक निश्चय कर लिया जाता है, तब एक निश्चित लक्ष्य पा जानेके कारण जो सन्तोष मिलता है, उससे निश्चय पुष्ट हो जाता है। निश्चयकी पुष्टि आत्म-गौरवकी भावनासे भी हो जाया करती है, क्योंकि जब कोई छात्र एक कॉलेजको चुन लेता है, तब वह उसे «अपना» कॉलेज बना लेता है। वह कॉलेजके साथ अपना तादात्म्य कर लेता है। यदि कोई उसके कॉलेजकी प्रशंसा करता है, तो उसे गर्व का अनुभव होता है, मानो वह उसी की प्रशंसा हो रही है; किन्तु यदि कोई उसके कॉलेज पर कीचड़ उछालनेकी चेष्टा करता है, तो वह स्वयंको अपमानित अनुभव करता है।

क्या प्रबलतम प्रेरकसे ही चुनावका निर्धारण होता है? 'संकल्प-स्वातंत्र्य'[1] बनाम नियतिवाद[2]' के प्रश्न पर बहुत पुराना वाद-विवाद चलता रहा है और उसके कई अमनोवैज्ञानिक पहलू हैं, जिनसे यहां हमारा कोई सम्बन्ध नहीं। मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे, कोई व्यक्ति, जो किसी बाहरी दबावसे स्वतंत्र है, वह क्या चाहता है और क्या नहीं चाहता, तथा किस वस्तुको वह अधिक चाहता है और किस वस्तुको कम, इसके अनुसार कार्य करनेमें स्वतंत्रताका अनुभव करता है। उसके दृष्टिकोणसे यह कहना तर्कसंगत जान पड़ता है कि चुनाव प्रेरकका अनुसरण करता है और जब प्रेरकोंमें संघर्ष होता है, तब चुनाव सबसे तगड़े प्रेरकका अनुसरण करता है। 'सबसे तगड़े' से उसका मतलब यह रहता है कि एक निर्दिष्ट समयमें जब निश्चय किया जाता है, तब जो प्रेरक सबसे सबल हो। ऐसे वक्तव्यसे यह भ्रान्ति हो सकती है कि व्यक्ति निष्क्रिय है, और वह संघर्षशील शक्तियोंके द्वारा इधर या उधर खींच लिया जाता है। ये संघर्षशील शक्तियां यद्यपि बाह्य नहीं, आन्तरिक हैं, तो भी इनपर उस व्यक्तिका कोई नियंत्रण नहीं होता। वास्तव में, शरीरके एक पूर्ण इकाई या समष्टि होनेके कारण उसका इन आन्तरिक शक्तियों पर नियंत्रण होता है, जैसाकि किसी पूर्ण समष्टिका नियंत्रण अपने अंगों पर होता है। कोई भी प्रेरक जब तक व्यक्तिको रुचिकर न लगे, उसकी कोई शक्ति नहीं होती, और यदि कोई प्रेरक व्यक्तिकी समग्र रुचि और सर्वोत्तम निर्णयके बावजूद उसको अच्छा लगता है, तो वह अन्य प्रेरकोंको जाग्रत् और संगठित करके उनकी ऐसी तगड़ी टोली बना लेता है जो उस अकेले प्रेरकसे शक्तिशाली सिद्ध होती है। यह तथाकथित 'संकल्प-शक्ति'[3] वास्तवमें सम्पूर्ण व्यक्ति है, जो अपने मनोवांछित कार्यको पूरा करनेके लिए अपनी सारी शक्तियोंको संगठित कर रहा होता है। एक बहुत साधारण-सा उदाहरण लीजिए: मैं एक दिलचस्प उपन्यास पढ़नेमें तल्लीन हूं, इतनेमें भोजनकी घंटी बजती है और मेरा क्षुधा-प्रेरक जाग्रत् हो जाता है। मैं अपनी पुस्तकको एक तरफ़ रखने लगता हूं, किन्तु रखते-रखते मैं उसपर एक अन्तिम दृष्टि डाल लेता हूं और फिर उसे पढ़नेमें खो जाता हूं। तभी मुझे याद आता है कि मेरे घरमें ठीक समय पर भोजनके लिए पहुँच जाना अच्छा समझा जाता है और इस तत्परताके लिए मैं बराबर प्रशंसित होता रहा हूं। अब अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखनेकी इच्छाका मुझमें उदय होता है और मैं पुस्तकको अलग रखकर शीघ्र भोजन-गृहकी ओर चल देता हूं। यहां उपन्यासमें मेरी रुचि पर विजय पानेके लिए क्षुधा ही पर्याप्त न थी, किन्तु मैंने उससे भी प्रबल प्रेरकोंको सक्रिय बनाया और कहानीकी रुचि पर विजय पायी। जब आप किसी अत्यधिक प्रलोभनकी ओर खिंच रहे होते हैं, तब उससे पिंड छुड़ानेके लिए कुछ ऐसी ही बात करनी पड़ती है। अलग आवेगों द्वारा आपके बहा लिये जाने पर जो इच्छा आप पर हावी हो जाती है, वह, यदि आप कुछ देर रुककर उसके परिणामों पर विचार करें, तो अपना प्रभाव खो बैठती है; क्योंकि वह आपके आत्म-सम्मान और आपके आदर्शों तथा

[1] freewill [2] determinism [3] will power

मित्रों के प्रति आपकी वफ़ादारीके सामने नहीं टिक सकती।

स्वाभवतः युवकोंमें काम-रुचि बलवती होती है और बहुधा व्यक्तिको उस पर नियंत्रण करना पड़ता है। यदि सामाजिक कार्योंमें वह स्त्री-पुरुष दोनोंके साथ भाग लेने लगे, तो वह अपने काम-प्रेरक को अन्य रुचियोंके साथ सम्बद्ध कर देता है और इस तरह पतन से बचा रहता है। या वह अपना आवेग खेल-कूदों में भाग लेकर निकाल सकता है। खेल-कूद काम-आवेग को तो निश्चय ही तृप्त नहीं करते, किन्तु वे व्यक्तिके लिए दूसरे प्रकारके सन्तोष प्रदान करते हैं—और किसी एक प्रेरककी सन्तुष्टिकी अपेक्षा व्यक्तिका सन्तुष्ट होना अधिक आवश्यक है। यदि वह किसी अयोग्य साथी (स्त्री या पुरुष) के साथ सम्बन्धित हो जाय, तो उसका काम-प्रेरक सदा उसके आत्म-सम्मान से टक्कर खाता रहेगा और उस साथीके निकृष्ट व्यक्तित्वके प्रति उसके मनमें हमेशा अरुचि बनी रहेगी। किन्तु यदि उसे कोई योग्य साथी मिल जाता है, तो वह अपने काम-प्रेरक को आत्म-सम्मान, प्रशंसा और अन्य रुचियोंसे सम्बद्ध करके उनको प्रेरकोंके एक सबल समूहका रूप दे सकता है, जिसे हम प्रेम कहते हैं।

विफलता[1]

छोटी-छोटी कठिनाइयों और अवरोधों का सामना तो व्यक्ति दिनमें प्रायः हर घंटे करता रहता है। उनमें अधिकांश ऐसी होती हैं, जिनपर आसानीसे अधिकार किया जा सकता है; और जो कुछ अधिक गम्भीर कठिनाइयां होती हैं, वे भी एसी नहीं हैं कि यदा-कदा ही आवें। कोई भी वस्तु, जो एक चुने हुए लक्ष्य की ओर आपकी प्रगतिमें रुकावट डालती हैं, कोई भी वस्तु, जो एक प्रेरककी सन्तुष्टि में हस्तक्षेप करती है, अवरोध कहलाती है। जैसाकि पहले ही कहा जा चुका है, किसी अवरोधके प्रति व्यक्तिकी जो सबसे स्वाभाविक प्रतिक्रिया होती है, वह है लक्ष्यकी ओर पहुंचनेके प्रयासमें और वृद्धि कर देना। यदि इससे अवरोध नहीं हटता या उस पर विजय नहीं मिलती, तो दूसरी स्वाभाविक प्रतिक्रिया यह होगी कि आप अपने मार्ग को बदल देंगे और उस अवरोधसे बचकर निकलनेका रास्ता ढूंढ़ने के लिए आप सारी परिस्थितिकी छान-बीन करेंगे। समस्या सुलझानेके इस व्यवहारमें यह बात हो सकती है कि आप समस्या के चारों तरफ़ घूमेंगे, उसके हर पहलू पर विचार करेंगे और सोचेंगे कि इस कठिनाईका सामना करनेका सबसे अच्छा तरीक़ा क्या है। 'सीखने' और 'सोचने' से सम्बन्धित बादके प्रकरणोंमें समस्याको सुलझानेके प्रश्न पर मुख्यरूपसे विचार किया जायगा। लेकिन यदि प्रयास, छान-बीन और सोचनेके बाद भी विफलता ही मिली, तो क्या होगा? उस विफलता के प्रति क्या प्रतिक्रिया होगी? यही हमारी प्रस्तुत समस्या है।

जो व्यक्ति विफल होता है, वह या तो वह व्यक्ति होता है, जिसके समस्या को सुलझानेके सभी प्रयत्नों में रुकावट डाल दी गयी हो, अथवा वह होता है जिसने अपनी असफलता के प्रति क्रोध, चिन्ता और परेशानीके रूपमें प्रतिक्रिया की हो। कुछ व्यक्ति संवेगात्मक रूपसे विफल होनेके पहिले समस्या को सुलझाने के अपने प्रयासको काफ़ी दूर तक जारी रखते हैं। उनके विषयमें कहा जाता है कि उनमें 'विफलता को सहने[2]' की बहुत शक्ति है। प्रसन्न, आत्म-विश्वासी और सुरक्षित व्यक्ति असफल होने पर उतने निराश नहीं होते, जितने असुरक्षित और सदा रक्षात्मक रुख रखने वाले व्यक्ति होते हैं।

वस्तुस्थितिकी दृष्टिसे विचार करने पर पता चलता है कि असफलता का केवल यही अर्थ है कि रुकावट के विरुद्ध किये गये प्रयासोंसे रुकावट अधिक बलवती सिद्ध हुई है। यदि आप किसी छड़ीको तोड़नेकी चेष्टा करें, किन्तु उसमें असफल रहें, तो आप कहेंगे कि या तो छड़ी ही बहुत कड़ी है, या मैं ही बहुत निर्बल हूं; और जब तक आप यथार्थवादी दृष्टिकोण बनाये रखते हैं, तब तक दोनों ही बातें एक ही अर्थकी द्योतक हैं। किन्तु यदि आप अपनी असफलता पर संवेगयुक्त हो उठें, तो या तो आप बहुत सख्त होने के लिए छड़ी पर नाराज़ होंगे, या अपनी निर्बलता पर स्वयं लज्जित और क्षुब्ध होंगे। यदि आप छड़ी पर क्रोधित होंगे, तो उसे गाली देकर फेंक देंगे, किन्तु यदि अपने ऊपर आप लज्जित हुए होंगे तो आपको अपना आत्म-सम्मान पुनः प्राप्त करनेके लिए कुछ करना होगा। असफलता के प्रति संवेगात्मक प्रतिक्रिया कई स्वरूप ग्रहण करती है; इनमें से कुछ की परीक्षा हम विभिन्न प्रकारकी असफलताओं पर विचार करनेके बाद करेंगे।

संवेगात्मक विफलता के उद्गम. कभी-कभी बहुत महत्त्वहीन समझे जानेवाले कामोंमें असफलता मिलने पर संवेगात्मक अस्त-व्यस्तता उत्पन्न हो जाती है। जिन परिस्थितियोंको एक वयस्क व्यक्ति बहुत मामूली समझता है, उन्हीं में एक छोटा बच्चा काफ़ी क्षुब्ध हो सकता है, क्योंकि बच्चेके सीमित दृष्टिकोण से वही चीज़ बहुत महत्त्वपूर्ण हो सकती है। साधारणतः हम कह सकते हैं कि बहुत समय तक टिकनेवाली, गम्भीर संवेगात्मक विफलता तभी होती है, जब हमारे भरपूर प्रयत्नों के बावजूद कोई शक्तिशाली और हठी प्रेरक सफल होनेसे रह जाता है। बहुधा घटित होनेवाली विफल करने वाली परिस्थितियां चार प्रमुख श्रेणियोंमें रखी जा सकती हैं।

१. * किसी बेजान चीज से, किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए काम करनेवाले व्यक्तिके मार्गमें रुकावट *. कोई

[1] frustration [2] tolerance

आदमी किसी जरूरी कामसे रेलगाड़ी पकड़ने के लिए या किसी आवश्यक कार्यक्रम को पूरा करनेके लिए कारसे जा रहा है, तभी उसकी कार रुक जाती है। मिनट पर मिनट बीतते जाते हैं और वह समझ नहीं पाता कि कारमें क्या खराबी आ गयी। ऐसी स्थितिमें यह सम्भव है कि वह क्षुब्ध और क्रोधित होजाय। नीरस और थका देनेवाले कार्य भी कुछ व्यक्तियोंको जो कोई रचनात्मक कार्य करना चाहते हैं, निराश बना देते हैं। बेकारीके समय बहुत दिनों तक बेरोजगार रहने पर कई आदमी निराश दिखाई देने लगते हैं। कई युद्ध-बन्दियोंमें भी निराशा की यह भावना देखी गयी है।

२. « किसी अन्य व्यक्ति द्वारा मार्ग में रुकावट ». यह परिस्थिति पूर्ववर्णित परिस्थितियोंकी अपेक्षा अधिक परेशानी पैदा करनेवाली है, क्योंकि व्यक्तिसे आशा की जाती है कि वह जड़ वस्तुओंकी अपेक्षा अधिक तर्कयुक्त औरसहानुभूतिपूर्ण होगा। लेकिन लोग बहुत हठी हो सकते हैं; उनके अपने प्रेरक और प्रयोजन होते हैं, जिनका आपके प्रयोजनोंसे मेल नहीं हो सकता। यही नहीं, जिनके उद्देश्य आपके उद्देश्यों से टकराते हैं। एक नवविवाहित दम्पति एक मामूली-सी महत्वहीन बातको लेकर एक-दूसरे से झगड़ पड़ते हैं। 'यदि तुम मुझे प्यार करते, तो तुम ऐसा काम करनेको कभी बाध्य न करते, जिसे करना मैं नहीं चाहती।' 'यदि तुम मुझे प्यार करती होतीं, तो जो काम मैं तुम्हें करनेको कहता हूँ, उसके लिए तुम कभी इन्कार न करतीं।' एकबार इस मनोदशामें आ जाने पर उन दोनोंको एक-दूसरे के विरुद्ध कई शिकायत-शिकवे हो सकते हैं, और धीरे-धीरे वह स्थिति आ सकती है जिसमें दोनोंके प्यार और साहचर्यके टूटनेकी ही नौबत आजाय, और चूंकि यह चीज दोनोंके लिए मूल्यवान् होती है, इसलिए वे निराशा और नीरसताका अनुभव करने लगते हैं। उन दोनोंको यह जानना चाहिए था कि कोई किसी पर शासन नहीं कर सकता। मित्रों की किसी मंडलीमें शासनकी प्रवृत्ति और प्रशासित होनेका प्रतिरोध करनेकी प्रवृत्तिके कारण प्रायः गड़बड़ियां हुआ करती हैं। प्रेरकोंके मनोविज्ञानका ज्ञान हो जाने पर उस मंडलीका हर सदस्य अपने भीतरकी स्वामित्व-प्रवृत्ति को समझनेके साथ-साथ अपने मित्रोंकी आत्म-गौरव की भावना को भी सहन करेगा। किन्तु इस तरहके झगड़ोंका सबसे सुन्दर सुलझाव सामूहिक कार्यों में दिखाई देता है, जहां समूहके सदस्य एक ही लक्ष्यकी ओर बढ़नेके लिए अपने प्रयासोंका संगठन करते हैं। सामूहिक लक्ष्यकी ओर बढ़नेके निमित्त जो भी नेतृत्व या व्यवस्था करे, उसे तो वे स्वीकार कर सकते हैं, किन्तु छोटी-छोटी बातों में उसकी धौंस और मनमानी करवाने की आदत को वे सहन नहीं कर सकते।

३. « एक ही व्यक्तिमें धनात्मक प्रेरकोंका संघर्ष ». इस प्रकारका संघर्ष, जिसका विश्लेषण हम इसी प्रकरणमें कर चुके हैं, संवेगपूर्ण विफलता को जन्म दे सकता है। एक छोटी लड़की, जो एक नाच-पार्टीमें शरीक होना चाहती है, अपनी मा को भी प्रसन्न रखना चाहती है जो नाचकी तारीखों को अस्वीकार करती है। यदि ये दोनों प्रेरक लड़कीमें प्रबल और सन्तुलित हैं, तो वह इस स्थितिसे बहुत परेशान हो सकती है। एक कार्यको चुननेका मतलब होता है अनिवार्यतः दूसरे प्रेरक का बाधित हो जाना। माता भी अन्य माताओं की तरह दुविधा में है। वह अपनी लड़कीको प्रसन्न भी रखना चाहती है, साथ ही उसके आचरण और पालन-पोषण का उत्तरदायित्व भी उस पर है।

४. « एक धनात्मक और एक ऋणात्मक प्रेरकका संघर्ष ». इस तरहके संघर्ष का उदाहरण भी हम पहले ही दे चुके हैं। एक वांछित लक्ष्य आपको आगेकी ओर खींचता है, किन्तु आपके भीतर कोई चीज आपको पीछेकी ओर धकेलती है।

(क) शैथिल्य, सुस्ती या थकान ऋणात्मक प्रेरक होसकते हैं। एक आलसी मनुष्य अपने स्वभाव पर बहुत प्रफुल्लित भी रह सकता है और बहुत परेशान भी, क्योंकि उसमें कोई शक्ति या महत्वाकांक्षा नहीं है। कुछ अन्य लोग आलस्यके कारण नहीं, बल्कि निर्बलता या योग्यता के अभावमें, या 'मैं कुछ नहीं कर सकता' के सदृश किसी भावना के कारण अपने वांछित लक्ष्यकी ओर मुक्त होकर नहीं बढ़ सकते। एक नौजवान किसी सामाजिक कार्यमें भाग लेना चाहता है, परन्तु अनुभवकी कमीसे उस समूहमें अपनेको अनमेल-सा पाता है, इसलिए वह एक ओर कतराकर खड़ा हो जाता है, किन्तु उस समय भी उसका मन कार्यमें भाग न ले सकनेकी अपनी असमर्थता पर विद्रोही और क्षुब्ध बना रहता है।

(ख) बहुधा ऋणात्मक प्रेरक किसी प्रकारका भय—उदाहरणके लिए दंडका भय—होता है। एक विश्वासपात्र बैंकका खजान्ची, जो जुआ खेलनेके कारण ऋणग्रस्त हो गया है, दिन भर यही सोचता रहता है कि क्यों न मैं बैंक के रुपयोंको चुपचाप लेकर अपना ऋण पटा दूं। फिर भी सम्भवतः वह कटु आन्तरिक द्वन्द्व से बच जाता है, क्योंकि सजा का भय उसमें प्रबल रहता है, इसलिए वह रुपया नहीं लेता। या यदि वह पक्का अपराधी होता, तो सजा का भय उसमें इतना कम होता कि उस दशामें भी किसी मानसिक संघर्ष की सम्भावना नहीं होती (क्योंकि वह रुपया ले लेता)। किन्तु यदि धनात्मक और ऋणात्मक प्रेरक समान रूपसे प्रबल हैं, तो वह अनिश्चितता की अनवरत पीड़ा सहता है। दूसरे मामलोंमें दंडका भय ऋणात्मक प्रेरक नहीं भी होसकता, कुछ मामलोंमें सामाजिक असहमति या असफलता के बाद तिरस्कृत होनेका भय ऋणात्मक प्रेरक होता है। कभी-कभी

असफलता के भयके कारण ही असफलता मिलती है, जैसे कि रंगमंच पर भयभीत होनेसे अभिनेता असफल होजाता है।

(ग) दूसरे लोगोंकी आलोचना के डरके बजाय सम्भव है, व्यक्तिका अपना नैतिक आदर्श या नैतिक-विवेक[1] ही किसी इच्छा की पूर्तिके मार्गमें बाधक बनकर आ खड़ा हो। यदि नैतिक विवेक बहुत प्रबल है, तो वह बिना अधिक संघर्षके उस इच्छा का दमन कर देगा। यदि नैतिक विवेक और इच्छा दोनों ही समान रूपसे बलवान् हों, तो कुछ समय तक पीड़ाजनक दुविधाकी स्थिति रह सकती है। 'मैं इसे करना चाहता—मुझे इसे नहीं करना चाहिए—लेकिन मेरी इच्छा है कि इसे इतना तो कर ही लूं—लेकिन मुझे यह काम नहीं करना चाहिए, नहीं करना चाहिए।' यदि इच्छा की जीत हो जाती है, तो बादमें पश्चात्ताप होगा। पश्चात्ताप भी एक निराशाजनक विफलता है, क्योंकि जो चीज़ हो चुकी, उसे पुनः पहिले की स्थितिमें नहीं पहुंचाया जा सकता।

यद्यपि जीवनकी किसी भी परिस्थितिमें विफलता उत्पन्न हो सकती है, तो भी परिवारके अनुशासित जीवनमें और विधि-निषेधों का पालन करने-करवाने वाले सामाजिक समूह के बीच यह अनिवार्य है। हमारे समाजमें भूख, प्यास और नींद इत्यादि के प्रेरक अधिक समय तक शायद ही कभी रोके जाते हों, किन्तु जब कभी युद्धकी असामान्य परिस्थितियों या रेगिस्तानी यात्राके कारण इनकी पूर्ति नहीं हो पाती, तब गम्भीर विफलता पैदा होती है। जीवनकी सभ्य दशाओंमें बच्चे के स्वार्थपरक आवेग, किशोरोंकी काम-प्रवृत्तियां और वयस्कोंकी सामाजिक प्रतिष्ठा की अभिलाषाएं निरन्तर और लगातार अपूर्ण रह जाती हैं, जो विफलता को जन्म देती हैं।

संवेगपूर्ण विफलता में व्यक्तिका व्यवहार. जब कोई व्यक्ति अपनी समस्या को सुलझानेके सभी प्रयासोंमें असफल हो चुकता है, किन्तु फिर भी उसकी इच्छा इतनी प्रबल और हठी है कि वह उसे छोड़ भी नहीं सकता, तब उसकी दशा निश्चय ही दुःखमय हो जाती है। उसका व्यवहार बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं प्रतीत होता। समस्या की ओर ध्यान देनेके बजाय वह विफलता की क्षुब्ध संवेगात्मक दशासे छुटकारा पाना चाहता है। विफलताकी स्थितिमें जो प्रतिक्रिया होती है, वह बुद्धिकी मात्रा के अनुसार तीन श्रेणियोंमें बांटी जा सकती हैं :

१. «अविचारपूर्ण संवेगात्मक प्रतिक्रियाएं». विफलता भय और क्रोधकी असंस्कृत प्रतिक्रियाओंको जन्म देती है। इन में कभी कोई अधिक होती है, कभी कोई।

(क) क्रुद्ध 'आक्रमण'. बच्चेका मिजाज बिगड़नेकी दशामें इस प्रतिक्रियाका उदाहरण मिलता है। वह क्रोधमें पागल-सा हो जाता है। परिवेशके साथ तो वह शायद ही व्यवहार करता है, केवल अपने संवेगका प्रदर्शन वह करता है। जब वह अपने मार्गमें रुकावट डालनेवाली वस्तु या व्यक्ति पर आक्रमण करता है, तब कुछ अधिक समझदारीका परिचय देता है। किन्तु, सम्भव है, वह व्यक्ति उसे डपट दे, या थप्पड़ जमा दे, तो उसकी विफलता और बढ़ जायगी तथा देर तक बनी रहेगी। बड़ी उम्रके बच्चों और वयस्कोंको भी विफलताकी परिस्थितियों में किसी प्रकार का क्रोध आ ही जाता है (३, १७)।

(ख) निराशा और दुश्चिन्ता. क्रोधके बजाय बच्चेको करुण-रुदन और सुबकनेका दौरा हो सकता है। इस स्थिति में भी वह परिवेशके साथ व्यवहार नहीं करता। वह निस्सहाय अरक्षित लगता है और आराम तथा सहायता का इच्छुक जान पड़ता है। प्रौढ़ व्यक्तियोंमें भी विफलता के समयकी संवेगात्मक दशा बहुधा चिन्ता और निराशा की होती है। उस समय वह परिस्थितिका त्याग कर देता है और उससे पलायन कर जाता है।

(ग) अवसर्पण[2] (पीछे लौटना). इससे तात्पर्य यह है कि ६ वर्षका बच्चा अपने आयु-स्तर के योग्य कार्य करनेमें असफल होकर ६ वर्षके बच्चेके स्तरका कार्य करने लगता है। गम्भीर रूपसे विफल-मनोरथ होनेवाले आठ-दस वर्षके लड़के भी अंगूठा चूसते, शिशुओंकी तरह तुतलाते तथा बिछौने पर पेशाब करते देखे गये हैं। प्रयोगसे पता चला है कि जिन बच्चोंको अपने मामूली खिलौनोंसे खेलने तक सीमित कर दिया गया था, जबकि सामने तारोंकी जालीके पीछे रखे हुए आकर्षक खिलौने साफ़ दिखाई दे रहे थे, वे अपेक्षाकृत शैशवोचित कोटिके खेल में अवसर्पण कर गये (२)।

(घ) स्थिरीकरण[3]. अपने बार-बार के प्रयासोंमें असफल होनेके पश्चात् व्यक्ति कभी-कभी एक ही तरहके व्यवहार को बार-बार यंत्रवत् दोहराने लगता है, जिससे समस्या के सुलझावमें कोई मदद नहीं मिलती। ऐसी प्रतिक्रियाएं पशुओं के ऊपर किये गये प्रयोगों में (११) तथा विषमायोजित व्यक्तियों के बाध्यतामूलक[4] कार्यों में (ऐसे कार्य जिनको व्यर्थ या अनुचित समझते हुए भी आदमी करने से स्वयं को नहीं रोक सकता) देखने में आती हैं।

विफलता की स्थितिमें जो असंस्कृत प्रतिक्रियाएं होती हैं, वे अनुभवके द्वारा सीखी हुई नहीं होतीं, बल्कि विफलता की स्थितिके प्रति व्यक्तिकी प्राकृतिक प्रतिक्रियाएं होती हैं। निस्सन्देह यदि मनोरथकी विफलताके समय होनेवाले व्यवहार की किसी रूपमें पुनः पुष्टि[5] होती हो, तो सीखनेसे उसमें कुछ परिवर्तन हो सकता है। माता-पिता जब बच्चेको चाकू से खेलने से मना करते हैं, तब बच्चा जिद करके रोने लगता

[1] conscience [2] regression [3] fixation [4] compulsive [5] reinforcement

है। यदि उसके क्रोधसे घबराकर माता-पिता उसे चाकूसे खेलनेकी अनुमति दे दें, और फिर कभी यदि उसे रोका जाय तो बच्चा पहिलेकी भांति अपने क्रोधका प्रदर्शन करने लगता है। वह अपने हठ या क्रोधको किसी साध्यका एक साधन बनाना सीख लेता है। इसी प्रकार दूसरा बच्चा अपने मां-बाप पर दबाव डालनेके लिए करुण रुदन करना सीख सकता है।

(ङ) दमन[1]. बच्चेमें असहायता के कारण जो परेशानी पैदा होती है, वह होती तो असह्य है, किन्तु काफ़ी देर तक जारी रह सकती है, जब तक कि बच्चा रोकर सो नहीं जाता। व्यक्तिके दृष्टिकोणसे क्रोधपूर्ण संवेग बुरा नहीं होता, परन्तु क्रोधमें जिस व्यक्ति पर उसने हमला किया, उस व्यक्ति ने यदि उसे दंड दे दिया, तो उस संवेगमें जटिलता उत्पन्न हो जाती है। सब बातोंकी एक बात यह है कि इस विफल संवेगात्मक दशा से जैसे भी हो बचना चाहिए। व्यक्ति यदि समझता है कि वही स्थिति पुनः आ रही है, तो वह यथा-शक्ति उससे बचता है। यदि एक बार विफलता और निराशा लाने-वाली इच्छा फिर उठती है, तो वह खतरेका अनुभव करके उस आवेगको रोक लेता है। इस प्रकार वह अपनी इच्छा और विफलता की स्मृतिका दमन करता है। जब-जब इच्छा जाग्रत् हो, तब-तब ऐसा करते रहने पर ऐसा हो सकता है कि वह अपने उस अनुभवको भूल जाय और वह इच्छा, जिसके कारण उसे बार-बार विफल होना पड़ा, बिल्कुल मर जाय। लेकिन इस पर भी किसी मौलिक प्रेरकका बिल्कुल लोप नहीं हो जाता। मनोविश्लेषक लोग मानते हैं कि दमन की हुई इच्छाएं और अनुभव 'अचेतन' मनमें जीवित रहते हैं। वे कुछ तो सामान्य जाग्रत् क्रियाओं में उभर पड़ते हैं और स्वप्नोंमें अपनेको प्रकाशित करते हैं (४)। यह सिद्धान्त काफ़ी दिलचस्प है, किन्तु इन तथ्योंकी व्याख्या करनेके और भी दूसरे तरीक़े हैं।

२. «दोषको स्थानान्तरित करना». यदि संवेगात्मक दशा में मनुष्य कुछ विचार कर सके, और अपनेसे पूछे कि वह असफल क्यों हुआ, तो शायद वह सारा दोष परिवेश पर डालेगा। वह कहेगा कि काम बहुत कठिन अथवा अन्यायपूर्ण था। यदि अपनी इस व्याख्या से भी उसे सन्तोष नहीं हुआ, तो वह अपनेको छोड़कर किसी अन्य व्यक्ति पर दोष थोपनेका प्रयत्न करेगा। इस चीज़से तर्क-वितर्क बढ़ सकता है और शत्रुता पैदा हो सकती है तथा व्यक्तिके अन्दर क्रोध या अपराधकी भावना आ सकती है। साधारणतः वह स्वयंको बचाता है और किसी स्पष्टीकरण या युक्त्याभास[2] द्वारा अपने अहं की रक्षा करता है, जो उसको सन्तोष देता और शायद उचित भी होता है। उदाहरण के लिए:

(क) मुझ जैसे अल्पायु और अनुभवहीन युवकके लिए यह कार्य बहुत कठिन है।

(ख) काम तो कुछ बुरा नहीं है, परन्तु यह मेरे पेशे और मनोवृत्तिके अनुकूल नहीं है, इसलिए मेरे लिए महत्वहीन है। मैं अपनी असफलता पर हँस सकता हूं।

(ग) अंगूरों तक न पहुंच पाने पर जैसे लोमड़ी ने कहा था कि 'अंगूर खट्टे हैं', वैसे ही काम न कर पाने पर कामको ही बुरा बताना।

(घ) मैं स्वयं बुरा और घृणित नहीं हूं, मैं इन लोगों पर क्रुद्ध भी नहीं हूं, फिर भी ये मुझसे घृणा करते हैं। यह प्रति-क्रिया अभिक्षेप[3] कहलाती है। इसका तात्पर्य यह है कि जिन अवांछित प्रवृत्तियोंको व्यक्ति अपने भीतर स्वीकार करनेका अनिच्छुक होता है, उनका वह दूसरे व्यक्तियोंमें आरोप करता है। यह प्रतिक्रिया अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें इस रूपमें देखने में आती है कि एक राष्ट्र अपने पड़ोसी देश पर उसे चारों ओरसे घेरनेका आरोप लगाता है, जब कि तथ्य यह होता है कि वह स्वयं पड़ोसी देश पर घेरा डालनेकी योजना बना रहा होता है। किन्तु व्यक्तिकी अभिक्षेपकी प्रतिक्रिया 'अचेतन' कही जाती है, क्योंकि यह आवेगयुक्त होती है; स्वयंको या दूसरोंको धोखा देनेके लिए यह जान-बूझकर किया गया योज-नाबद्ध कुटिल प्रयत्न नहीं होती।

३. *«किसी स्थानापन्न[4] लक्ष्यकी तलाश».* अभी तक विफलता की जितनी प्रतिक्रियाओंका वर्णन हमने किया है, उन सबसे बुद्धिसंगत और निश्चित रूपसे साहसपूर्ण प्रति-क्रिया वह प्रयास है, जिसमें व्यक्ति एक कार्यकी असफलतासे पलायन करके किसी दूसरे कार्यमें अच्छी सफलता प्राप्त कर दिखाता है। व्यक्ति या तो एक नये मार्गसे चलकर अपने पूर्व लक्ष्यको ही प्राप्त करनेकी चेष्टा करता है, या वह उसी तरहके दूसरे लक्ष्यके लिए प्रयत्न करता है, या वह बिल्कुल भिन्न किसी दूसरे लक्ष्यकी तलाश करता है, जिसका सम्बन्ध उसके पूर्व प्रेरकसे न होकर किसी अन्य रुचिसे होता है। कभी-कभी असफलता इसलिए प्राप्त होती है कि आपने अपना लक्ष्य बहुत ऊँचा बना रखा होता है। ऐसी स्थितिमें आत्म-विश्वास बनाये रखनेके लिए आपको, कम से कम अस्थायी रूपसे ही सही, अपनी दृष्टिको कुछ नीचे उतारना पड़ता है, अपनी महत्त्वाकांक्षा के स्तरको नीचा करना पड़ता है। फिर भी कुछ लोग असफलता से इतने डरते हैं कि वे कभी ऊंचा लक्ष्य ही नहीं बनाते (१०)।

(क) उदात्तीकरण[5]. कोई युवक एक लड़कीसे अत्यधिक प्रेम करता है, परन्तु उसका प्रेम उसे अपनी ओर मोड़नेमें असमर्थ होने पर वह उसके सम्मानमें दर्दीले गीत लिखना शुरू कर देता है और कभी-कभी कुछ अच्छी पंक्तियां भी लिख जाता है।

[1] repression [2] rationalisation [3] projection [4] substitute [5] sublimation

शुरूमें मनोविश्लेषक यह विश्वास करते थे कि कला और विज्ञान व्यक्ति की विफल काम-वासनाके प्रकट होनेके उदात्तीकृत रास्ते हैं। किन्तु अब यह स्पष्ट हो गया है कि कलाकार और वैज्ञानिक में भी वही काम-वासना होती है जो अन्य लोगोंमें होती है और उनकी काम-तृप्तिकी शारीरिक आवश्यकता इन उच्च कार्योंमें अपना विलयन नहीं कर पाती। पहिलेकी अपेक्षा अब उदात्तीकरण पर कम जोर दिया जाने लगा है। इसके अतिरिक्त यह बात भी है कि दर्दीले गीत लिखने वाला युवक अपनी प्रेमिकाके साथ-साथ अपनी कवितामें भी रुचि रखता है। कला और विज्ञान, भले ही कभी-कभी विफल प्रेमके लिए निष्क्रम (निकलनेका रास्ता) का काम दे दें, किन्तु अपने गुणोंके कारण भी वे लोगोंको अपनी ओर खींचते हैं। जो निराश प्रेमी अपना ध्यान खेल-कूद या अन्य किसी अच्छे कार्यमें केन्द्रित कर देता है, वह अपने पुराने लक्ष्यके लिए कोई नयी राह न ढूंढ़कर एक नये लक्ष्यकी ही तलाश करता है।

(ख) *क्षतिपूर्ति.* *विस्तृत अर्थमें यदि कोई स्थानापन्न*[1] सफल क्रिया उस व्यक्तिको सन्तुष्ट कर सकी, तो वह प्रारम्भिक कार्यमें उसकी असफलताकी क्षतिपूर्ति कर देती है। खासतौरसे, *क्षतिपूर्ति*[2] *का सिद्धान्त उन व्यक्तियों पर लागू होता है*, जो शारीरिक या अन्य कमियोंके कारण हीनताकी अनुभूति से पीड़ित होते हैं तथा जो किसी अन्य दिशामें, बहुधा उसी से सम्बन्धित दिशामें जिसमें वे अभावग्रस्त होते हैं, 'उत्कृष्ट योग्यता प्राप्त करके अपने आत्म-सम्मान और प्रतिष्ठाको पुन: प्राप्त करना चाहते हैं। थियोडोर रूज़वेल्ट बचपनमें बहुत रुग्ण रहता था और वह अपनी दशासे तंग आ गया था। बादमें उसने अपनी शारीरिक शक्ति खूब बढ़ा ली और एक नामी घुड़सवार, अनुसन्धानकर्ता और परिश्रमपूर्ण जीवन का घोर पक्षपाती हो गया'। 'भारतके प्रो० राममूर्तिका उदाहरण भी कुछ इसी तरहका है। पहिले वे भी रोगी बालक थे, किन्तु बादमें उन्होंने अपनी शक्ति इतनी बढ़ा ली कि सीने पर हाथी तक चढ़ा लेते थे और हंसते-हंसते ताक़तवर मोटरों को रोक लेते थे*।' कुछ क्षतिपूर्तिकारक कार्य इतने प्रशंसनीय नहीं होते। एक स्कूली लड़का, जो अपनी कक्षामें सबसे गया-गुज़रा समझा जाता है, किसी ऐसी शरारत, जैसे मार-पीट, गुंडई, शोर-गुल आदिमें निपुणता पा लेगा, ताकि अपने इन्हीं गुणोंके कारण वह लोगोंका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर सके।

(ग) कल्पना-सृष्टि या दिवास्वप्न देखना[3]. किसी कठोर वातावरणमें होनेवाले कार्यमें असफल होनेके बाद व्यक्ति यह कल्पना करके कुछ सन्तोष प्राप्त कर सकता है कि वह उसी तरहके या दूसरी तरहके एक श्रेष्ठ कार्यमें सफलता पा रहा है। वह 'अपनी हार्दिक इच्छाके अनुसार (कल्पनामें) संसारका रूपान्तर करता है'। या अपनी आविष्कारक कल्पनाके बजाय वह कोई कहानी पढ़ता है और अपना उस कहानीके नायकसे तादात्म्य कर बैठता है, जिसे अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा, परन्तु अन्तमें वह विजयी होकर ही रहा।

अपने अहं को विफलतासे बचानेके लिए इस तरहकी कलाबाजियां स्नायु-विकार[4] के रोगियों और मनो-व्याधि[5] वाले व्यक्तियोंमें अतिरंजित रूपमें दिखाई देती हैं (१४)। यह कलाबाज़ी कुछ साधारण रूपमें बच्चों और वयस्कोंके दैनिक जीवनमें भी दिखायी देती है (३, ११, १७, १८, १६, २१)। इन कलाबाजियोंको प्रयोगोंके द्वारा भी दिखाया जा सकता है (१२, १८, २२)।

समायोजन[6] और विषमायोजन[7]

सामान्य स्वास्थ्यके महत्त्वपूर्ण विषयके अतिरिक्त, अधिकांश *व्यक्तिगत समस्याएं इस बातसे सम्बन्धित हैं कि व्यक्तिका* अपने सहयोगियोंके साथ—जो उसके माता-पिता, भाई, बहनें, खेलके साथी, अध्यापक, मित्र, सहचर, पति या पत्नी और बच्चे लगते हैं—*कैसा सम्बन्ध है। 'अपने सहयोगियोंके साथ* कैसे निभाया जाय', यह एक आधारभूत समस्या है। समस्या यह है कि किस तरह एक सामाजिक मनुष्यका जीवन बिताया *जाय, और उसका आनन्द लिया जाय।* शिशुको शीघ्र ही इस समस्याका सामना करना पड़ता है। यदि उसे अच्छा सुलझाव मिल गया, तो वह एक अच्छी ज़िन्दगीकी राह पर चल पड़ता है। *सदा अपने मनकी बात करने और अपने सुखके* लिए दूसरे व्यक्तियोंका केवल साधनके रूपमें उपयोग करनेकी शुद्ध स्वार्थवृत्तिसे उसकी रक्षा करनेके लिए बड़ोंकी सहायता की आवश्यकता होती है। जब तक वह इस स्वार्थवृत्तिसे विलग नहीं होता, तब तक वह एक सामाजिक प्राणी होनेके बजाय एक सामाजिक समस्या बना रहता है। यदि हम किसी बच्चेसे या किसीसे भी यह आशा करें कि वह नितान्त नि:स्वार्थ और परोपकारकी प्रवृत्ति अपनायेगा और केवल दूसरोंकी सेवा को ही अपना धर्म-कर्म समझेगा, तो यह उससे बहुत अधिक आशा करना होगा। ऐसी प्रवृत्ति सामाजिक दृष्टिसे भी वांछित नहीं है। बच्चेकी मा में भी यह प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिए। अन्यथा वह बच्चेको बिगाड़ देगी। सामाजिक जीवन का सच्चा सिद्धान्त है: लेन-देन, सामाजिक चेष्टाओंमें भाग लेना और समूहके साथ मिलकर दलबद्ध कार्य करना।

बच्चेको बाधाओंका सामना करना पड़ता है। उसे सीखना पड़ता है कि उनपर कैसे अधिकार पावे या उनसे कैसे बचकर

[1] substitute [2] compensation [3] phantasy or day-dreaming [4] neurosis [5] psychosis [6] adjustment [7] maladjustment * सम्पादककी टिप्पणी

निकले। कभी-कभी उसकी इच्छाओंमें संघर्ष होता है, अतः उसे संघर्षोंसे कैसे निपटा जाय, यह भी सीखना चाहिए। उसे जानना चाहिए कि विफल करनेवाली परिस्थितियोंको कैसे दूर रखा जा सकता है और सिर पर आ पड़ने पर उन्हें कैसे सहन किया जा सकता है। जब वयस्क व्यक्ति उसके मल-मूत्रोत्सर्गकी आदतों पर नियंत्रण करना चाहते हैं, और जब दूसरे बच्चे खेलकी चीजोंके लिए उसके साथ प्रतियोगिता करते हैं और उसके माता-पिताका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना चाहते हैं, तब भी उसके सामने समस्याएं उपस्थित होती हैं। आगे चलकर बढ़ने वाले बच्चे, किशोर और वयस्क को जिन समस्याओंका सामना करना पड़ता है, ये समस्याएं उनकी केवल भूमिका होती हैं। समायोजन[1] समस्याजनक परिस्थितिमें व्यवहार करने और इच्छित परिणामोंको प्राप्त करनेकी एक विधि है। समायोजन अवांछित परिणामोंको पैदा किये बिना ही वांछित परिणामोंको प्राप्त करा देता है। बदतर समस्याओंको उत्पन्न किये बिना ही यह समस्याको सुलझा देता है। समायोजनके तरीक़ोंको सीखना और बार-बार इस्तेमाल करना पड़ता है, ताकि उनकी आदत पड़ जाय और वे आसान हो जायं। विषमायोजनके[2] तरीक़े भी सीखे जाते हैं, उनकी भी आदत पड़ जाती है और वे भी स्वतः चालित बन सकते हैं। तात्कालिक समस्याओंको सुलझानेमें वे नयी-नयी और कठिन समस्याएं उत्पन्न कर देते हैं; कतिपय वांछित परिणामोंको प्राप्त करनेमें वे अनुषंगतः बहुत-से दुर्भाग्यपूर्ण परिणामोंको जन्म देते हैं। इसी प्रकार दिवास्वप्न व्यक्तिको अपनी वर्तमान कठिताइयोंसे पलायन करनेकी सुविधा प्रदान करता है, किन्तु इसमें अत्यधिक तल्लीन रहने पर व्यक्ति किसी कामका नहीं रहता, यथार्थ जगत्से व्यवहार करनेमें वह अपने को निष्फल और निस्सहाय अनुभव करने लगता है। अपनी *असफलताओं के लिए आप दूसरे लोगों पर दोषारोपण करके* अपनी वर्तमान लज्जाजनक स्थितिसे तो मुक्ति पा जायेंगे, किन्तु आपकी यह आदत आपको सन्तोषप्रद साथी नहीं बनने देगी और आपके सहयोगियोंसे आपको अलग कर देगी।

गम्भीर विषमायोजन. सामान्य[3] व्यक्ति असामान्य[4] व्यक्तियोंसे इस बातमें भिन्न नहीं हैं कि वे विषमायोजनसे रहित हैं, बल्कि वे भिन्न इस बातमें हैं कि उनके विषमायोजन उतने तीव्र और हठी नहीं हैं। सामान्य व्यक्तियोंका सामाजिक जीवन उनके विषमायोजनके कारण बिगड़ नहीं जाता। विषमायोजन क्या है, यह स्पष्ट रूपमें देखना हो तो अत्यधिक असामान्य (जैसे, पागल) व्यक्तियोंमें देखिए। अतएव असामान्य मनोविज्ञान[5] के अध्ययनसे जहां असामान्य व्यक्तियोंकी चिकित्सामें सहायता मिलती है, वहां सामान्य मनोविज्ञान पर भी काफ़ी प्रकाश पड़ता है।

यदि स्नायु-रोगों और मानसिक रोगों, तथा उनके विविध स्वरूपोंके विस्तृत विषय पर विचार करनेकी यहां चेष्टा की जाय, तो कुछ पृष्ठ ही उसके लिए पर्याप्त न होंगे। यह तो असाधारण मनोविज्ञानके एक विशेष पाठ्यक्रमका विषय है। *कुछ लोग ऐसे भयों तथा चिन्ताओंसे पीड़ित रहते हैं, जिनको* स्वयं वे भी मूर्खतापूर्ण मानते हैं, परन्तु जिन पर वे क़ाबू नहीं पा सकते। कुछ व्यक्ति अजीब-अजीब विचारोंसे परेशान रहते हैं और कोशिश करके भी अपने मस्तिष्कसे उन विचारोंको नहीं भगा पाते। कुछ लोगोंमें शक्ति और आत्मविश्वासकी अकारण बेहद कमी होती है। कुछ लोगोंमें भूख न लगना, मांस-पेशियोंकी शक्ति या संवेदना[6] का स्पष्ट ह्रास आदि शारीरिक लक्षण दिखायी देते हैं। ये «स्नायु-विकारके रोगों[7]» के लक्षण हैं। «मानसिक रोगों[8]» या उन्मादके रोगोंके लक्षण इनसे भी गम्भीर और चिन्ताजनक होते हैं। इन रोगोंमें अत्यधिक आवेश या शैथिल्य दिखायी देता है; या परिवेशसे इतना पलायन दिखायी देता है कि लोगोंके साथ ऐसे व्यक्ति प्रभावपूर्ण सम्पर्क ही नहीं रख सकते; या आत्मश्रेष्ठताकी अत्यधिक भावनाके साथ-साथ भयंकर सन्देहशीलता दिखायी देती है (८)।

इन असामान्य स्थितियोंके कारण स्पष्ट नहीं हैं। बहुत सम्भव है कि ये शरीरकी रासायनिक क्रियाओंके परिणाम हों। कई मनोव्याधि-विशेषज्ञोंका विश्वास है कि कमसे कम स्नायु-विकार-सम्बन्धी रोग तो विषमायोजनके ही रूप हैं। ये विषमायोजन छोटे विषमायोजनोंसे प्रकारकी अपेक्षा परिमाण में भिन्न होते हैं—छोटे विषमायोजन थोड़ी मात्रामें हरएक व्यक्तिमें पाये जाते हैं, जो अधिकांश विफलता और प्रेरकोंके संघर्षके कारण उत्पन्न होते हैं।

मानसिक रोग-विशेषज्ञोंने इस समस्या पर बहुत विचार किया है कि स्नायु-विकार-सम्बन्धी ये रोग कैसे पैदा होते हैं। इस सम्बन्धमें उन्होंने जो सिद्धान्त निश्चित किये हैं, वे एक बात को छोड़कर शेष सभी बातोंमें परस्पर-विरोधी हैं। समानता की बात केवल यह है कि स्नायु-विकार-सम्बन्धी रोग प्रेरकोंके संघर्ष या इच्छाओंकी विफलताके कारण उत्पन्न होते हैं। इन सिद्धान्तोंकी यहां आलोचना करनेसे हमारा काम निश्चय ही बढ़ जायगा। इनके विषयमें हम थोड़ी-सी चर्चा ही कर सकते हैं। फ़्रायड[9] के मतानुसार इन विषमायोजनोंकी उत्पत्ति प्रेम और सुखके लिए बच्चेकी मांग और इस मांगको विफल करने वाले व्यक्तिके प्रति उसकी शत्रुतासे है। यदि हस्तक्षेप करने वाले व्यक्तियोंसे छुटकारा पानेकी उसकी इस इच्छामें भी

[1] adjustment [2] maladjustments [3] normal [4] abnormal [5] abnormal psychology [6] sensation
[7] neurosis [8] psychosis [9] Freud

बाधा पहुंचती है, तो बच्चेके सामने एक कठिन समस्या आ जाती है। यदि इस समस्याको वह ठीक तरहसे न सुलझा पाया, तो उसमें एक आधारभूत विषमायोजन पैदा हो जाता है, जो वयस्क जीवनमें स्नायु-विकारके रूपमें प्रकट होता है (४)।

ऐडलर[1] का सिद्धान्त इससे कुछ भिन्न था। बच्चेकी बुनियादी इच्छामें श्रेष्ठता-सम्बन्धी उसकी मांग और छोटा बच्चा होनेके कारण अपनी स्थितिमें सन्निहित हीनता पर विजय प्राप्त करनेकी उसकी अभिलाषा सम्मिलित रहती है। श्रेष्ठता-सम्बन्धी उसकी मांग लगातार विफल होती रहती है, फलतः एक सामाजिक प्राणीके रूपमें वह लेन-देनका व्यवहार करनेमें कठिनाई का अनुभव करता है। यदि माता-पिताने कौशलसे सामाजिकीकरणकी प्रक्रियाको व्यवस्थित न किया, तो बच्चा अपनी एक विचित्र 'जीवन-शैली' का निर्माण कर लेता है। वह जीवन-शैली उसको श्रेष्ठताका कुछ आभास तो अवश्य करा देती है, किन्तु वास्तविक उपलब्धिके लिए अनुपयुक्त होती है। इस प्रकार ऐडलरके अनुसार, उपलब्धिके लिए व्यक्तिकी मांग जब पूरी नहीं होती, तब उससे विषमायोजन की उत्पत्ति होती है (१)।

अन्य साधारण मनोविश्लेषक बच्चेकी रक्षा-सम्बन्धी मांग पर बहुत अधिक जोर देते हैं। बच्चेमें अरक्षाकी अनुभूति कई प्रकारसे होती है। यदि उसकी सहायता न की जाय, तो अपनी निर्बलताके कारण वह अपनेको अरक्षित अनुभव करेगा। लोग उसको जीवनके सर्वसामान्य खतरोंके बारेमें अत्यधिक चेतावनी देते रहते हैं। यदि उसकी मा कुछ दिनों तक गृह-कार्यसे छुट्टी ले लेती है, तो वह अपनेको अनाथ-सा समझने लगता है। यदि उसको कोई डांटे-फटकारे, तो वह समझता है कि मुझे कोई प्यार नहीं करता और कुछ क्षणके लिए ही सही, वह अपनेको शत्रुतापूर्ण संसारमें फेंका हुआ महसूस करता है। बड़े होने पर बच्चेमें सदैव अरक्षाकी यह अनुभूति दूर नहीं होती; और यह जिन्दा रहनेके लिए वयस्क व्यक्तिके संघर्ष और सामाजिक सम्मानके लिए उसके प्रयत्न में प्रकट हो सकती है (५)।

स्नायु-विकारोंकी व्याख्याके रूपमें इन सिद्धान्तोंका सत्यासत्य निर्णय करनेका निराशापूर्ण कार्य किये बिना ही, हम कम से कम यह स्वीकार कर सकते हैं कि इसमेंसे प्रत्येकने जीवनकी स्थितियोंमें सरल समायोजन स्थापित करनेके मार्गमें कुछ न कुछ कठिनाइयोंकी ओर संकेत अवश्य किया है। हम शैशवसे प्रौढ़ताकी ओर ज्यों-ज्यों बढ़ते जाते हैं, बहुतसे शैशवोचित सुखोंको छोड़ देना पड़ता है, उत्तरदायित्वोंकी वृद्धि और रक्षाकी न्यूनताको तथ्य-रूपमें स्वीकार कर लेना पड़ता है और उपलब्धिके उत्तरोत्तर ऊंचे प्रतिमानोंको प्राप्त करनेके लिए सचेष्ट रहना पड़ता है। ऐसा हरएक परिवर्तन प्रयास-साध्य होता है, उसमें पुराने तरीक़ेको बदल कर नये तरीक़े के समायोजन[2] की आवश्यकता होती है और वह विषमायोजन का द्वार खोल देता है।

विषमायोजित व्यक्तियोंकी सहायता करनेके तरीक़े. बच्चेके विषमायोजनोंका सीधा इलाज है, लेकिन इसमें सदा सफलता की आशा भी नहीं रहती। घर (या कक्षा) के बाहरका कोई परामर्शदाता पहिले बच्चेका विश्वास प्राप्त करता है और उसकी कठिनाइयोंको समझनेमें उसका सहयोग प्राप्त करता है। वह देखनेकी चेष्टा करता है कि उसकी कौन-सी कठिन मांगें हैं, जिनका उचित समायोजन नहीं हो पाया है। यदि समस्या घरसे उत्पन्न होती है या उसका सम्बन्ध किसी प्रकार घरसे जुड़ता है, जैसा कि बच्चोंकी अधिकांश समस्याओंके विषयमें होता है, तो माता-पिताका सहयोग भी अवश्य प्राप्त करना चाहिए। बहुधा बच्चेके साथ माता-पिताके व्यवहारमें परिवर्तन करनेकी आवश्यकता होती है। योजनाका साधारण रूप यह होता है कि दोनों पक्ष परिस्थितिको साफ़-साफ़ समझ सकें और तथ्योंके प्रकाशमें उसका कोई हल ढूंढ़ सकें। 'तथ्यों का सामना करना' मुख्य सिद्धान्त है।

वयस्कोंके विषमायोजनोंको हम इतने सीधे रूपमें ठीक नहीं कर सकते, क्योंकि उनकी जड़ व्यक्तिके पिछले अनुभवोंमें बहुत गहराईमें दबी हो सकती है, और पिछले अनुभव विस्मृत भी हो गये होते हैं। कोई अकारण भय बहुधा बचपनसे व्यक्तिमें जड़ जमाये बैठा रहता है। यदि किसी प्रकार पुरानी स्मृतियोंको जगाया जा सकता, जिससे इस समय समस्त तथ्यों का ठीक सामना किया जा सके, तो व्यक्ति अपने बचपनके भयको दूर भगा सकता और पुनः आत्म-विश्वास प्राप्त कर सकता। परन्तु सभी व्यक्तियोंके विषयमें कोई रामबाण औषधि नहीं ढूंढ़ी जा सकती। आपको यह आश्चर्यजनक लग सकता है कि व्यक्ति असुविधाके बावजूद अपने भय या अन्य विषमायोजनसे चिपका रह सकता है, क्योंकि वह उसके व्यक्तित्वके लिए सार्थक बन जाता है और उसके अभावमें वह अपनेको खोया-खोया-सा अनुभव करता है।

जो कोई व्यक्ति अपने जीवनकी परिस्थितियोंसे भली प्रकार मेल नहीं बैठा सका है, उसके सम्बन्धमें 'एक से भले दो' की कहावत उपयोगी सिद्ध हो सकती है। उसको केवल परामर्श की ही आवश्यकता नहीं होती। अपनी बातोंको सहानुभूति-पूर्वक सुनने और समझने वाले किसी मित्रके सामने अपनी समस्याको खोलकर रखनेके लिए उसे अपनी बुद्धिका पूरा उपयोग करनेका अवसर चाहिए। यदि वह मित्र तत्काल उसकी कठिनाईको नहीं समझ पाता है, तो यह व्यक्तिके हक़

[1] Adler [2] readjustment

में अच्छा ही होता है। कठिनाईमें पड़ा हुआ व्यक्ति अपनी परेशानीको अपने मित्रके सामने स्पष्ट कर देनेके पश्चात् स्वयं उसे अच्छी तरह समझ जाता है। किसी व्यक्तिगत समस्या पर चुपचाप अकेले विचार-मन्थन करते रहनेसे उसका सही चित्र व्यक्तिके सामने स्पष्ट नहीं हो पाता, उसका विकृत रूप ही सामने आता है। छोटे-मोटे विषमायोजन तो बहुधा पेशेवर परामर्शदाताकी सहायता लिये बिना ही अपने मित्रसे गोपनीय बात-चीत कर लेने मात्रसे स्पष्ट हो जाते हैं। किन्तु, अधिक कठिन समस्याओं पर विशेषज्ञकी सहायता लेनी आवश्यक होती है। परामर्शदाता व्यक्तिको केवल परामर्श देनेका काम नहीं करता। वह सतर्कतापूर्वक व्यक्तिको अपनी समस्याएं बहुत-कुछ स्वयं ही सुलझानेमें और अपने भावी कार्यक्रमकी योजना स्वयं बना लेनेमें सहायता देता है। परामर्शदाता इसी प्रकारकी अन्य समस्याओंके विषयमें अपने अनुभवके कारण प्रस्तुत समस्याकी पेचीदगियोंको अच्छी तरह देख सकता है। कोई भी व्यक्ति, जिसके सामने ऐसी कठिनाई पहिले-पहल ही आयी हो, उसकी-सी निपुणता नहीं दिखा सकता। परामर्शदाता उस परिस्थिति पर निरपेक्ष दृष्टिसे विचार करता है, जबकि निजी रूपसे उससे सम्बन्धित व्यक्तिके विचार पक्षपातपूर्ण और संवेगात्मक हो सकते हैं। जब संवेगात्मक अस्त-व्यस्तता व्यक्तित्वको बहुत गहराईसे प्रभावित कर लेती है और अनेक अज्ञात भयों और स्थिर विचारोंसे व्यक्ति के जीवनको असन्तुलित कर देती है, तब मानसिक रोग-चिकित्सकके अनुभवोंका लाभ उठाना आवश्यक हो जाता है।

स्नायु-विकारोंकी चिकित्सा करनेवाली विभिन्न विधियोंकी परीक्षा हम एक विनम्र अभिप्रायसे कर सकते हैं। हम यह निर्णय करनेका प्रयत्न तो नहीं कर सकते कि विभिन्न प्रतिद्वन्द्वी विधियोंमें कौन-सी विधि सर्वोत्तम और सच्ची है, किन्तु उन विधियोंके सम्बन्धमें कुछ जानकारी अवश्य प्राप्त कर सकते हैं, जिनके द्वारा विषमायोजन पर विजय पायी जा सकती है।

मनस्चिकित्सा[१]—विषमयोजनकी चिकित्साको इसी नाम से अभिहित करते हैं—के दो मुख्य चरण हैं। पहिले चरणमें, व्यक्तिकी परेशानीका मूल कारण मालूम किया जाता है और व्यक्तिके सामने सारे तथ्य रख दिये जाते हैं। दूसरे चरणमें, उसको प्रेरित किया जाता है कि वह आशावादी होकर पूर्ण मानसिक स्वास्थ्य और समायोजित जीवन-चर्याकी ओर अग्रसर हो। मनस्चिकित्साकी कई विधियां हैं।

«निर्देश[२] और मोहनिद्रा[३]». यहां 'निर्देश' शब्दका इस्तेमाल जिस अर्थमें किया है, उसका तात्पर्य उस विचार या कार्य-योजनासे है, जिस पर छान-बीन किये बिना ही व्यक्ति अमल करना शुरू कर देता है।

एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिकी अपेक्षा निर्देश ग्रहण करनेमें अधिक समर्थ हो सकता है, और वही व्यक्ति किसी खास समय में या किन्हीं खास दशाओंमें अन्य समय और दशाओंकी अपेक्षा अधिक निर्देशनीय[४] हो सकता है। निर्देश ग्रहण करनेकी सब से अच्छी दशा मोहनिद्राकी होती है। मोहनिद्राकी दशा निष्क्रिय और नींदकी-सी दशा होती है, किन्तु उसमें ध्यान और एकाग्रता होती है। ऐसा लगता है कि सम्मोहित व्यक्ति केवल सम्मोहक व्यक्ति[५] के निर्देशोंके प्रति ही जागरूक होता है, अन्य उत्तेजनाओंका प्रभाव उस पर उस दशामें नहीं पड़ता। उसकी चेष्टाका क्षेत्र एक बिन्दु तक सीमित हो जाता है (७)।

मोहनिद्रा गहरी या उथली हो सकती है। तुलनात्मक दृष्टिसे, कुछ ही व्यक्ति गहराईसे सम्मोहित किये जा सकते हैं, किन्तु बहुत-से व्यक्ति निर्देशनीयताकी हल्की दशामें पहुंचाये जा सकते हैं। जबकि जागता हुआ व्यक्ति सावधान, सशंक और अपनी बात पर अड़ने वाला होता है, तब सम्मोहित व्यक्ति निष्क्रिय और आज्ञानुवर्ती होता है। मोहनिद्राकी दशा लानेके लिए व्यक्तिका सहयोग हमेशा आवश्यक होता है। मोहनिद्राकी दशा उत्पन्न करनेके कई साधन हैं और वे परस्पर भिन्न हैं, किन्तु सबमें यह बात तो मिलती ही है कि व्यक्तिके सभी बाह्य विचारों और रुचियोंको उस समय बहुत धीरेसे दूर कर दिया जाता है और व्यक्तिको शान्त, ग्रहणशील[६] दशामें पहुँचा दिया जाता है। उस समय उसका सारा ध्यान सम्मोहक व्यक्ति पर केन्द्रित रहता है।

व्यक्ति जब इस दशामें रहता है, तब वह सम्मोहक व्यक्ति के निर्देशोंको जाग्रत् अवस्थाकी अपेक्षा कम प्रतिरोधके साथ स्वीकार कर लेता है। गहरी मोहनिद्रामें भ्रम[७] और विभ्रम[८] पैदा किये जा सकते हैं। सम्मोहक सम्मोहित व्यक्तिके हाथ में अमोनिया (नौसादर + चूना) की बोतल रखता है और उसे विश्वास दिलाता है कि यह गुलाबका इत्र है। सम्मोहित व्यक्ति उसको ठीक वैसा ही समझकर खूब जोरसे सूंघता है और आनन्दके सभी चिह्न प्रकट करता है।

हल्की मोहनिद्रामें इस तरहकी उल्लेखनीय बातें दृष्टि-गोचर नहीं होतीं, किन्तु आरोग्य-प्राप्तिके निर्देश इसमें ग्रहण किये जा सकते हैं और उनके परिणाम उपयोगी हो सकते हैं। मानसिक-चिकित्साके दोनों चरणोंमें सम्मोहनका उपयोग होता है: सम्मोहनके द्वारा विस्मृत स्मृतिको पुनर्जाग्रत् किया जाता है जिससे मानसिक परेशानीके मूलका पता चलता है; इसके बाद रुग्ण व्यक्तिके मनमें यह बात कूट-कूटकर बिठा दी जाती है कि उसकी पुरानी परेशानी निरर्थक थी और अब वह उसे नहीं

[१] psychotherapy [२] suggestion [३] hypnosis [४] suggestible [५] *hypnotizer* [६] *receptive* [७] *illusion* [८] hallucination

सतायेगी तथा अब वह पूर्ण स्वस्थ होने जा रहा है। सम्मोहन का उपयोग केवल गम्भीर चिकित्साओंमें ही करना चाहिए।

एक युवती, जिसे अपतंत्रक[1] के तेज दौरे आते थे, सम्मोहनकी स्थितिमें यह याद कर सकी थी कि प्रारम्भमें यह रोग उसे क्यों पैदा हुआ। एक घरमें आग लगने पर उसने देखा था कि बच्चे खिड़की की राहसे कूद रहे हैं। इस दृश्य ने उसे बहुत भयभीत कर दिया था। उसको यह याद करनेके लिए प्रेरित किया गया कि इन बच्चोंको आग बुझाने वालों ने बचा लिया था और उनका बाल भी बांका न होने पाया था। इस प्रकार स्मृतिकी भयंकरता बहुत कुछ दूरकी जा सकी। इसके बाद यह निर्देश दिया गया कि यह अनुभव उसे फिर नहीं सतायेगा। इस चिकित्सा के कारण उस युवतीको अपतंत्रकके दौरे आने बन्द हो गये। परेशानी पैदा करनेवाले किसी लक्षणको दूर करनेके बाद भी सम्भव है कि निर्देशका किसी गहराई में छिपे विषमायोजन पर प्रभाव न पड़े; अतएव कई मानस-रोग चिकित्सकों की धारणा है कि सम्मोहनका महत्त्व बहुत कम है। उनका विश्वास है कि व्यक्तिको निर्देश ग्रहण करनेके अलावा भी बहुत कुछ करना चाहिए और अपनी जीवन-समस्याओं के लिए एक अच्छा समायोजन प्राप्त करनेमें उसे सक्रिय भाग लेना चाहिए।

« मनोविश्लेषण ». ठीक कहें तो मनोविश्लेषणके सिद्धान्त का जनक और प्रयोगकर्ता फ़ायड[2] ही था। उसके उत्तराधिकारियोंने इसी तरहके जिन अन्य सिद्धान्तों और विधियों का विकास किया, वे इसमें सम्मिलित नहीं हैं। फ़ायडके मतानुसार किसी स्नायु-विकार के रोगीकी चिकित्सा करने का एक ही तरीक़ा है। वह यह कि उसके बचपनमें इसका श्रीगणेश कब और कैसे हुआ था, इसका पता लगाया जाय। रोगीको सम्मोहित करनेके बजाय फ़ायड उसे विश्राम और शैथिल्यकी स्थितिमें लाता था और यथासम्भव आलोचनात्मक दृष्टिकोण छोड़नेके लिए कहता था। साथ ही, उसका आदेश रहता था कि 'स्वतंत्र साहचर्य[3]' के द्वारा मनमें जितने विचार और स्मृतियां आवें, आने दो। साहचर्य या स्मरण प्रक्रिया पर केवल इतना ही नियंत्रण रहता था कि रोगी मामूली बातों पर अपना दिमाग़ न दौड़ावे, बल्कि ऐसी स्मृतियोंकी खोज करे, जिनका कुछ व्यक्तिगत महत्त्व हो। साधारणतः फ़ायड रोगियोंसे पिछली रात्रिमें देखे गये स्वप्नोंका वर्णन करनेको कहता था, इसके बाद स्वतंत्र साहचर्यके द्वारा वह उन स्वप्नों का विश्लेषण करता था। स्वप्नकी प्रत्येक बातसे प्रारम्भ करके रोगी अपने मनको उस बातके विषयमें स्वतंत्र रूपसे सोचने देता था, ताकि यह मालूम किया जा सके कि व्यक्तिगत महत्त्व की किसी वस्तुकी ओर वह स्वप्न क्या संकेत करता है। इस प्रकार बहुधा कई बार चिकित्सालयमें आनेके बाद पुरुष रोगी को बचपनकी स्मृतियां याद आ जाती थीं, जिनसे पता चलता था कि वह बचपनमें माता को प्यार करता था और अपने पिता से शत्रु-भाव रखता था। स्मृतिके इन छोटे-छोटे अंशों पर काफ़ी विचार करनेके पश्चात् रोगी बचपनकी कुछ संवेगात्मक अभिवृत्तियोंको पुनर्जाग्रत् कर पाता था। पिता के प्रति बच्चेके रुख—ऐसा रुख जिसमें कुछ प्यार और कुछ अधीनता थी, तो उसके अधिकार के विरुद्ध कुछ विरोध और विद्रोह भी था—के पुनर्जीवित हो जानेके बाद मनोविश्लेषकके रूपमें उसके पिता के स्थान पर एक सुलभ प्रस्तुत पूरक[4] उपलब्ध हो जाता था। जब स्थानान्तरण[5] की यह प्रक्रिया सम्पन्न हो जाती थी, तब चिकित्सा की दूसरी मंज़िल होती थी रोगीका पुनः शिक्षण। मनोविश्लेषक की देख-रेख में रोगी कई सप्ताहों तक अपने वर्तमान जीवनकी कठिनाइयोंका सामना करनेका अभ्यास करता था। धीरे-धीरे वह मनोविश्लेषक पर निर्भर रहनेकी आदत छोड़ता जाता था और अपनी समस्याओं का इलाज स्वयं करनेके लिए अधिकाधिक समर्थ होता जाता था (४)।

फ़ायडकी मनोविश्लेषण पद्धतिमें बहुत समय लग जाता है। अतः उसे तब तक प्रारम्भ नहीं करना चाहिए, जब तक रोगी उसको अन्त तक निभानेके लिए तैयार न हो, क्योंकि यदि इसे बीचमें ही छोड़ दिया जाय, तो रोगी पहिलेसे भी बदतर हालतमें पड़ जाता है। जिस व्यक्तिके जीवनकी कठिनाइयां बहुत गम्भीर हों, उसी पर इस पद्धतिका प्रयोग करना चाहिए। मनोविश्लेषक भी इस पद्धतिको चिकित्सा-विज्ञान की शब्दावली में 'आरोग्य' प्रदान करनेवाली नहीं मानते, किन्तु इसके कारण कई विषमायोजित रोगी पहिले की अपेक्षा अच्छी तरह से व्यवहार करते देखे गये।

मनोविश्लेषणके सिद्धान्तमें हमें यहां एक बात रुचिकर लगती है, वह है कठिनाईके मूलका पता लगानेसे होनेवाला लाभ। कोई रुख, जो व्यक्तिके जीवनमें गड़बड़ी फैलाता है, बचपन की किसी ऐसी परिस्थितिमें उत्पन्न हुआ होता है जिसका वयस्कके दृष्टिकोणसे कोई महत्त्व नहीं होता। जब वयस्क व्यक्ति यह अच्छी तरह अनुभव कर लेता है कि उसका यह रुख केवल बचपनमें पड़ी हुई किसी गुत्थीका अवशेष है, तब उसको वह आसानीसे सुलझा सकता है। एक वयस्क व्यक्तिको बहते हुए पानीसे बहुत डर लगता था, किन्तु जब उसे मालूम हो गया कि इस भयका मूल बचपनका एक अपराधमिश्रित आतंकपूर्ण अनुभव है, तब बहते पानीसे उसका भय भी जाता रहा। अपने सभी अकारण भयों और द्वेषोंका सम्बन्ध हम भले ही विशिष्ट घटनाओंसे न जोड़ सकें, फिर भी हमें इस बातका तो विश्वास हो ही सकता है कि वे किसी प्रकारके

[1] hysteria [2] Freud [3] free association [4] substitute [5] transference

'सम्बद्धीकरण'[1] से ही उत्पन्न हुए हैं, और हमारे वयस्क जीवनमें उनका कोई वास्तविक महत्त्व नहीं है।

कई लोग फ्रायडके केवल आंशिक अनुयायी हैं। स्नायु-विकारकी समस्याओंको मनोवैज्ञानिक ढंगसे समझनेकी उसने जो विधि बतायी और प्रेरकोंके संघर्ष, 'अचेतन' या कई प्रेरकोंके अविश्लिष्ट स्वरूप पर उसने जो जोर दिया, इसके लिए उसके ये आंशिक अनुयायी उसका आभार मानते हैं। किन्तु वे उसके जटिल सिद्धान्तको पूर्णरूपेण स्वीकार नहीं करते और न विस्तार में उसकी विधिका अनुसरण ही करते हैं। ऐडलर ने फ्रायड की विधियोंसे अधिक संक्षिप्त और सरल विधियोंका मामूली विषमायोजनोंसे पीड़ित युवकोंपर प्रयोग करके काफ़ी सफलता प्राप्त की। कुछ मुलाक़ातों[2] में ही वह व्यक्तिकी उस 'जीवन-शैली' का परिचय पा लेता था, जिसे उसने अपने प्रारम्भिक बचपनमें अपनाया था और जिसे जीवन भर अपनाये रहा। वह व्यक्तिको उसकी 'शैली' का दर्शन कराता था और उसे प्रेरित करता था कि वह बचपनमें अपनाये गये निकम्मे और परेशानी पैदा करनेवाले तरीक़ोंको छोड़कर अपने लक्ष्य तक पहुंचनेके लिए उपयोगी तरीक़ोंको अपनावे (१)।

अन्य स्वतंत्र मनोविश्लेषकोंका विश्वास है कि बचपनमें विषमायोजनका मूल ढूंढ़ना कोई कारगर तरीक़ा नहीं है, उसपर बहुत कम निर्भर रहना चाहिए। उससे अधिक अच्छा तो यह होगा कि वयस्क-व्यक्ति इस समय अपनी समस्याओंको जिस ढंगसे सुलझाता है, उसमें विषमायोजनके प्रभावोंको ढूंढ़ा जाय। स्नायु-विकार का रोगी अपने विषमायोजनसे पीड़ित ही नहीं रहता, बल्कि वह उसका उपयोग भी करता है। अपनी मनोवांछित वस्तुओंको प्राप्त करनेका उसका यही तरीक़ा है। एक सरल उदाहरण लीजिए: कोई व्यक्ति, जिसे किसी भी सामूहिक क्रिया का प्रारम्भ होनेकी सम्भावना देख कर सिर-दर्द होने लगता है, अपने साथ-साथ अन्य व्यक्तियोंको भी उस क्रिया से अलग रख लेता है और इस प्रकार कुछ हद तक उनके ऊपर हावी हो जाता है—या उसके भीतर सामाजिक अरक्षा की भावना हो सकती है, जो एक बड़े समूहसे उसे भयभीत रखती है। इन प्रेरकोंकी शाखा-प्रशाखाओं को देखकर बहुधा बड़ा आश्चर्य होता है (१ क, ५, २०)।

«निर्देशहीन-परामर्श» शब्दको सुनकर ऐसा लगता है कि इसमें विरोधाभास है, क्योंकि कोई भी परामर्शदाता अपने पास सहायता की इच्छा से आये हुए विषमायोजित व्यक्तिको परामर्श और निर्देश देनेके अतिरिक्त कर ही क्या सकता है? कोई भी चिकित्सक रोगीके रोगका निदान करने और परेशानी पैदा करनेवाले बुरे प्रेरकको दूर करनेमें उस रोगी की सहायता करनेके अलावा और कर ही क्या सकता है? कोई भी चिकित्सक रोगका सामना करनेके लिए अपने रोगी को सिखाता है कि वह अपने अच्छे प्रेरकोंको प्रकाशमें लावे, अपने भीतरकी रचनात्मक शक्तियोंको जाग्रत् करे और 'प्रकृति की आरोग्यदायिनी शक्ति' का आश्रय ले, जिस पर रोगसे लड़ने के लिए प्रत्येक चिकित्सकको विश्वास रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त वह रोगीकी सहायता और किस तरह कर सकता है? निर्देशहीन, या रोगी पर ध्यान केन्द्रित करनेवाले, परामर्श-दाता मानते हैं कि रोगी में इतनी इच्छा और शक्ति रहती है कि वह अपनी परेशानीसे छुटकारा पानेका रास्ता स्वयं खोज निकाले। किन्तु इसके लिए वे यह शर्त लगाते हैं कि रोगीको स्नेह और सहानुभूतिका मनोवैज्ञानिक वातावरण मिले; ऐसा वातावरण मिले, जिसमें वह अपने विचारों और अनुभूतियों को स्वतंत्रतापूर्वक अभिव्यक्त कर सके। पहिले तो रोगी अपने विषयमें कुछ ऊपरी बातें बताता है, किन्तु परामर्शदाता प्रशंसा और दोषारोपसे बचकर रोगीको यह बताता है कि उसके रोगी ने अपने प्रेरकोंके विषयमें क्या बातें प्रकटकी हैं; और इस प्रकार वह रोगीको और आगे बढ़कर, अधिक गहराईमें जाकर अपना अनुसन्धान करनेके लिए उत्तेजित करता है। धीरे-धीरे रचनात्मक प्रेरक सामने आते जाते हैं और वे अपनी शक्तिसे व्यक्तिको इतना प्रभावित करते हैं कि वह स्वतंत्र होकर पहिलेसे अच्छे मार्गको अपना लेता है और अब तक जिस मार्ग पर आंख मूंदकर चलता आया था, उसे छोड़ देता है। इस तरहकी बहुत-सी मुलाक़ातोंमें परामर्शदाता का कार्य किसी भी तरह सरल नहीं होता, क्योंकि पेशेवर विशेषज्ञ होने की बड़प्पनकी भावना को छोड़कर उसे रोगीकी सतह पर उतर कर उसके साथ व्यवहार करना पड़ता है। रोगी कभी-कभी यह अनुभव कर सकता है कि परामर्शदाता उस पर उचित नियंत्रण नहीं रख रहा है, फिर भी वह आगेकी मुलाक़ातोंके लिए उसके पास आना नहीं छोड़ता, क्योंकि वह देखता है कि विफलता का दुःखद भार प्रति सप्ताह हल्का होता जा रहा है (१५, १६)।

सारांश

१. «चुनाव» उन अनेक परिस्थितियोंमें होता है जिनमें कोई भी प्रतिक्षेप या स्वतः चालित अनैच्छिक प्रतिक्रिया उपस्थित नहीं रहती और जिनमें व्यक्तिके सामने वैकल्पिक कार्य-विधियां प्रस्तुत रहती हैं। «संकल्प करने» का तात्पर्य है अपनी

[1] conditioning [2] interviews

कार्य-विधि का चुनाव करना, सम्भावित परिणामोंकी पूर्व-कल्पना कर लेना और रुकावटों पर विजय पानेके लिए दृढ़ प्रयास करना।

२. «संघर्षमय परिस्थिति» उस परिस्थिति को कहते हैं जिसमें विकल्पोंके प्रेरक *लगभग समसन्तुलित* होते हैं। प्रतिक्रिया चाहे स्पष्ट चुनाव के रूपमें हो सकती है, या समझौते के रूपमें, या दुविधा और अनिश्चय की दशा के रूपमें।

(क) «अनिश्चय» की स्थिति अप्रिय होती है। कभी-कभी विकल्पोंकी अधिक जाँच-पड़ताल करनेके बाद व्यक्ति किसी निश्चय पर पहुंच जाता है, कभी-कभी कुछ समय तक विश्राम कर लेने के बाद भी चुनावके सम्बन्ध में किसी निश्चय पर पहुंचा जा सकता है, या कभी-कभी व्यक्ति याद‍ृच्छिक[1] निश्चय पर पहुंचता है।

(ख) «चुनाव की स्वतंत्रता» से यह व्यक्त होता है कि व्यक्ति एक कार्य-विधि का समर्थन करनेके लिए अतिरिक्त प्रेरकों का संगठन करने की कितनी योग्यता रखता है।

३. जब किसी प्रेरक की तृप्ति संघर्ष या *अन्य* रुकावटों के कारण नहीं हो पाती, तब समस्या को सुलझानेकी प्रतिक्रिया की जा सकती है। यदि यह असफल रहती है तो, व्यक्ति संवेगात्मक रूपसे प्रतिक्रिया कर सकता है। «विफलता[2]» से तात्पर्य है: असफलता की परिस्थिति और उसके कारण उत्पन्न होनेवाली प्रतिक्रियाएं।

(क) विफलता ऐसी परिस्थितियोंमें उत्पन्न हो सकती है, जिसमें किसी प्रेरित व्यक्ति के मार्ग में (१) निर्जीव वस्तु[3] द्वारा; (२) *अन्य व्यक्ति* द्वारा; (३) अपने भीतर के किसी अन्य धनात्मक प्रेरक द्वारा या (४) किसी ऋणात्मक प्रेरक—जैसे आलस्य, दंड का भय, या अपराधी अन्तःकरण—द्वारा रुकावट डाली जाती है।

(ख) विफलता में व्यवहार स्वाभाविक रूपसे संवेगात्मक, अबुद्धिमत्तापूर्ण और विषमायोजक हो जाता है।

१. «क्रुद्ध आक्रमण[4], निस्सहाय चिन्ता, अवसर्पण[5], स्थिरीकरण और दमन» की प्रतिक्रियाएं सब से कम विचारपूर्ण होती हैं।

२. युक्त्याभास[6] और अभिक्षेप[7] के द्वारा व्यक्ति दूसरोंपर दोषारोपण करके अपनी असफलता को स्वीकार करनेसे बच जाता है।

३. अधिक बौद्धिक प्रतिक्रियाएं कभी-कभी बाधित लक्ष्यके स्थान पर व्यक्तिके सामने एक दूसरा स्थानापन्न लक्ष्य रख देती हैं। इनके उदाहरण हैं: «उदात्तीकरण[8]», «क्षतिपूर्ति» और «कल्पना-सृष्टि[9]»।

४. सामाजिक परिवेशमें विकसित होनेकी प्रक्रिया में व्यक्ति को अनेक और निरन्तर विफलताओं का सामना करना पड़ता है। «समायोजन» किसी समस्याजनक परिस्थिति से व्यवहार करने का तरीका है, जो बदतर समस्याएं पैदा नहीं करता।

(क) सभी व्यक्तियोंमें «विषमायोजन[1]» पाये जाते हैं, किन्तु कुछ व्यक्तियोंमें उनका स्वरूप इतना गम्भीर और हठी होता है कि प्रभावपूर्ण जीवनचर्या का निभना कठिन हो जाता है। ऐसी आत्यन्तिक श्रेणी के व्यक्तियों का अध्ययन «असाधारण मनोविज्ञान» के अन्तर्गत किया जाता है।

१. «स्नायु-विकार» सम्बन्धी लक्षण विषमायोजन के गम्भीर रूप हैं। विभिन्न सिद्धान्त बच्चे की प्रेम और सुख-सम्बन्धी मांग की विफलता (फ़्रायड), या श्रेष्ठता और उपलब्धि-सम्बन्धी मांगकी विफलता (एडलर), या रक्षाकी मांगकी विफलता (हॉर्नी[10]) के महत्त्व पर जोर देते हैं।

२. «मानसिक रोग[11]» या उन्माद भयंकर गड़बड़ी के सूचक हैं और ये व्यक्तिकी अधिकांश चेष्टाओं पर प्रभाव डालते हैं। साधारणतः इनकी देख-रेख किसी मानस-रोग-चिकित्सालय में ही होती है।

(ख) «मनश्चिकित्सा[12]» परेशानीके वास्तविक कारण को खोजती है। इन परेशानियों का मूल कभी-कभी बचपन की विस्मृत परिस्थितियोंमें मिलता है। यह चिकित्सा व्यक्ति का सामना सभी तथ्यों से स्पष्टता और विवेकपूर्वक करवाती है। इसके अतिरिक्त वह परिवेशमें भी परिवर्तन करती है और पुनः शिक्षण की सुविधा प्रदान करके स्वस्थ समायोजन के लिए उसे प्रेरित करती है।

१. «मोहनिद्रा[13]» निर्देशनीयता[14] की वह अतिरंजित दशा है जिसमें दबी हुई स्मृतियों को पुनर्जाग्रत् किया जा सकता है और सहायता देने वाले विधानात्मक विचारोंको व्यक्ति स्वीकार

[1] *arbitrary* [2] *frustration* [3] *impersonal obstacle* [4] *angry aggression* [5] *regression* [6] *rationalization* [7] projection [8] sublimation [9] fantasy [10] Horney [11] psychoses [12] psychotherapy [13] hypnosis [14] *suggestibility*

कर लेता है।

२. «मनोविश्लेषण» की प्रक्रिया बहुत लम्बी होती है। इसमें स्मृति, स्वतंत्र साहचर्य और स्वप्न-विश्लेषण के द्वारा मानसिक गुत्थियों का मूल बचपन की घटनाओं में ढूंढ़ने का प्रयत्न किया जाता है और उनका अर्थ निकाला जाता है। इसमें व्यक्ति को पुनः शिक्षण के द्वारा आरोग्य-लाभ कराने की चेष्टा की जाती है।

३. «निर्देशहीन परामर्श» व्यक्ति के लिए एक स्नेह और सहानुभूति पूर्ण वातावरण उपस्थित करता है, जिसमें व्यक्ति अपने विचारों और अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने के लिए स्वतंत्र रहता है तथा वह अपनी समस्या को समझने लगता है और स्वयं उसका सुलझाव ढूंढ़ने का प्रयत्न करता है।

१३

निरीक्षण करना

अपने अध्ययन के सिलसिलेमें हम फिर एक नये मोड़ पर आ खड़े हुए हैं। गत तीन प्रकरणोंमें 'क्यों' प्रश्न पर, व्यवहारकी प्रेरणा पर विचार करनेके बाद हम पुनः 'कैसे' प्रश्नकी ओर लौट रहे हैं। आपको याद होगा, पुस्तकके प्रथम भागमें हमने योग्यता और व्यक्तित्वकी व्यक्तिगत भिन्नताओं पर विचार किया था और वंशानुक्रम तथा परिवेशमें उनके कारणोंको खोजनेका प्रयत्न किया था। हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि व्यक्तियोंमें भिन्नता होनी अनिवार्य है, किन्तु उनमें काफ़ी सुधार भी हो सकता है। बादके प्रकरणोंमें हम जिस बात पर विचार करते रहे, उसे व्यावहारिक दृष्टिकोणसे हम मानवीय व्यवहारमें उन्नति करनेका वैज्ञानिक आधार कह सकते हैं। हम देख चुके हैं कि व्यक्ति किस प्रकार परिपचन, अभ्यास और सीखनेके द्वारा अपना विकास करता है और हम उन प्रेरकोंकी भी परीक्षा कर चुके हैं जो व्यक्तिको क्रियाशील बनाते हैं।

चूंकि व्यक्तिको परिवेशसे व्यवहार करना पड़ता है, इस लिए परिवेशको जानना और अपनी आवश्यकताओं तथा अभिप्रायों (उद्देश्यों) के लिए उस पर पर्याप्त अधिकार पाना उसके लिए महत्वपूर्ण है। वह अपनी ज्ञानेन्द्रियों[1] का उपयोग करके परिवेशको जानने लगता है और अपनी मांस-पेशियों का उपयोग करके उसपर क्रिया करता तथा कुछ हद तक उस पर अपना अधिकार भी स्थापित करता है। ये बातें 'व्यक्ति और परिवेशके मध्य परस्पर क्रिया' शीर्षक प्रकरणमें बतायी गयी थीं और व्यक्तिके विकास वाले प्रकरणमें इससे सम्बन्धित कुछ और बातें जोड़ दी गयी थीं। किन्तु पुस्तकके इस तृतीय भाग के लिए हमने इस प्रश्न पर पूरा विचार करनेका काम छोड़ रखा है कि व्यक्ति परिवेशको कैसे जानता है और कैसे उसपर स्वामित्व प्राप्त करता है। यह एक कठिन प्रश्न है, किन्तु मनोवैज्ञानिकों ने इसके विषयमें बहुत छान-बीन कर रखी है। इस प्रश्नसे कई विशिष्ट प्रश्न फूटते हैं, जो ज्ञानेन्द्रियों, सीखने, स्मृति और सोचनेसे सम्बन्ध रखते हैं।

नित्यप्रतिकी बोल-चालमें «निरीक्षण[2]» शब्दका जो अर्थ है, वह प्रमुख विचारणीय प्रश्नोंमेंसे पहिले प्रश्नकी ओर संकेत करता है। वह प्रश्न है, ज्ञानेन्द्रियोंके उपयोगसे व्यक्ति परिवेश से कैसे परिचय प्राप्त करता है? इस प्रश्नका आंशिक उत्तर तो आपको अगले दो प्रकरणोंमें ज्ञानेन्द्रियों-सम्बन्धी अध्ययनसे मिल जायगा, किन्तु प्रस्तुत प्रकरणमें निरीक्षणकी प्रक्रियाके सम्बन्धमें कुछ अधिक साधारण तथ्योंका निरूपण किया जायगा।

परिवेशको कैसे जाना जाय, वास्तवमें यह एक बहुत व्यावहारिक प्रश्न है, हालांकि यदि हमने इसपर विचार करना प्रारम्भ किया, तो सम्भव है कि हमें कुछ प्राविधिक[3] विस्तारमें जाना पड़े। प्रारम्भमें, सम्भव है, इसका अध्ययन प्रेरकों, संवेगों और व्यक्तित्वके अध्ययनकी अपेक्षा बहुत कम रुचिकर जान पड़े। जब हम किसी असन्तोषप्रद व्यक्तित्वका विश्लेषण करते हैं, तब बहुधा पाते हैं कि निरीक्षणकी कमजोरियोंके कारण उस व्यक्तित्वमें उलझन पैदा हुई है। ऐसा व्यक्ति यह नहीं देखता कि दूसरे लोगोंकी इच्छा क्या है और वे वस्तुओंके विषय में कैसा अनुभव करते हैं। वह लोगोंका सहानुभूतिपूर्वक निरीक्षण नहीं करता और इसीलिए उनको समझनेमें असफल रहता है, और बिना उनको समझे हुए, उनसे यह आशा करना कि वे उसके लिए कोई ठीक काम करेंगे, दुराशा मात्र है। इस के अलावा, कुछ लोग स्मरण शक्तिकी निर्बलताकी शिकायत करते हैं, किन्तु उनके साथ असली परेशानी यह है कि वे वस्तुओं का निरीक्षण नहीं करते। जिस वस्तुका वे निरीक्षण नहीं करते, उसे स्मरण रखनेकी आशा वे कैसे कर सकते हैं? मनोविज्ञानके समस्त क्षेत्रमें निरीक्षण एक ऐसा विषय है, जिसका प्रमुख महत्व है।

निरीक्षणकी प्रक्रियाके दो चरण हैं। «ध्यान या अवधान[4]» प्रारम्भिक चरण है। इसम व्यक्ति निरीक्षणके लिए तैयारी करता है। «प्रत्यक्षीकरण[5]» अन्तिम चरण है। इसमें किसी तथ्यके निरीक्षणकी वास्तविक क्रिया होती है। जब कोई आदमी आपसे कहता है कि 'इसका निरीक्षण करो' या 'इसे देखो', तब वह चाहता है कि आप उस वस्तुकी ओर «ध्यान दें»। वह आपसे यह भी आशा करता है कि ध्यान देने पर आप कोई दिलचस्प या महत्वपूर्ण तथ्य «देखेंगे»। कुछ लोग मनोवैज्ञानिकके पास यह शिकायत लेकर आते हैं कि उनकी निरीक्षण-शक्ति बहुत निर्बल है। किन्तु वही व्यक्ति 'हीन निरीक्षक' होता है जो ठीकसे ध्यान नहीं देता या जो तथ्योंको देखनेमें लापरवाह रहता है। अपनी अन्य रुचियोंके

[1] senses [2] observation [3] technical [4] attention [5] perception

कारण वह ठीक वस्तुओंको नहीं देख सकता, या उसका निरीक्षण उन कठिनाइयोंके कारण स्पष्ट और यथार्थ[1] नहीं हो सकता, जिनका उल्लेख हम बादमें करेंगे।

ध्यान (अवधान)

ध्यान भी उन संज्ञाओंमें से एक है, जो वास्तवमें क्रिया होती हैं। कोई अध्यापक जब कहता है, 'कृपया मेरी ओर ध्यान दीजिए', तब उसका तात्पर्य रहता है कि 'मैं जो कहने जा रहा हूं, उस पर कृपया ध्यान दीजिए'। जब किसी व्यक्तिके लिए यह कहा जाता है कि उसमें 'ध्यानकी दृढ़ शक्ति' है, तब उसका वास्तविक अर्थ यह होता है कि वह जिस वस्तु या कार्यका निरीक्षण करनेकी चेष्टा कर रहा है, उस वस्तु या कार्य पर वह दृढ़तापूर्वक ध्यान दे सकता है। ध्यान देनेका मतलब है, अपनी क्रियाको केंद्रित करना। यह तथ्य कि प्रत्येक व्यक्ति न्यूनाधिक रूपसे ध्यान देता है, प्राणियोंके व्यवहारका आधारभूत लक्षण है। एक निर्दिष्ट क्षणमें अनेक प्राप्त उत्तेजनाओंके प्रति समान रूपसे प्रतिक्रिया करनेके बजाय प्राणी कुछ चुनी हुई उत्तेजनाओंके प्रति ही प्रतिक्रिया करता है, एक उत्तेजना या उत्तेजनाओंके एक समूह पर अपना ध्यान केंद्रित करता है और शेषकी लगभग उपेक्षा कर देता है। दूसरे ही क्षण दूसरी उत्तेजनाएं केन्द्रमें आ जाती हैं। ध्यानकी शब्दावलीमें भी हम यही बात कह सकते हैं। आप एकके बाद दूसरी वस्तु पर ध्यान देते हैं, किन्तु एक निर्दिष्ट क्षणमें आप अपनी ज्ञानेन्द्रियोंके सामने उपस्थित कई वस्तुओंमें से किसी एक वस्तु पर ही ध्यान दे पाते हैं। आप कभी-कभी चाहते हैं कि एक ही समयमें दो या दोसे अधिक महत्त्वपूर्ण वस्तुओं पर ध्यान दे सकते, या दो या दोसे अधिक दिलचस्प कार्योंको साथ-साथ करते रह सकते, किन्तु आपकी शक्तियां सीमित हैं और वे आपको विवश करती हैं कि आप एक समयमें एक ही वस्तु पर ध्यान दें या एक ही कार्य करें। 'ध्यान' शब्द किसी प्राणी की शक्तियोंके इस प्रकार सीमित होनेकी ओर संकेत करता है।

'व्यक्ति और परिवेशके मध्य परस्पर क्रिया' शीर्षक प्रकरण में कई प्रारम्भिक तथ्योंको सामने लाया गया था, जो 'ध्यान' शीर्षकके अन्तर्गत आने चाहिए। 'परिवेशसे कुशलतापूर्वक व्यवहार करनेमें दो प्रमुख तत्वों' का उल्लेख किया गया था, जिन्हें हमने «चुनाव[2]» और «तत्परता[3]» का नाम दिया था। '«चुनाव[2]» से तात्पर्य यह है कि किसी क्षणमें होनेवाली क्रिया उस समय प्रस्तुत सभी उत्तेजनाओं और सभी सम्भव प्रतिक्रियाओंमें न बिखरकर कुछ ही उत्तेजनाओं और कुछ ही प्रतिक्रियाओं पर केन्द्रित रहती है। तत्परतासे यह तथ्य प्रकट होता है कि शरीर साधारणतः आने वाली उत्तेजनाओं और की जानेवाली प्रतिक्रियाओंके लिए किसी भी क्षण «तैयार रहता है»'। संक्षेपमें, ध्यान देनेका अर्थ है—किसी वस्तुको देखने या किसी कार्यको करनेके लिए तत्पर और तैयार होना। निशान पर एक पैर रखे हुए दौड़नेके लिए तैयार दौड़ाक सब ओर से अपना ध्यान हटाकर सीटीकी आवाज सुननेके लिए तत्पर रहता है, ताकि आवाजको सुनते ही वह अविलम्ब आगे को भाग निकले। यह क्षणिक ध्यानका एक उदाहरण है। किन्तु 'किसी कार्यको जारी रखनेकी तत्परता' का भी उल्लेख किया गया था, जिसमें और 'निरन्तर ध्यान' में कोई अन्तर नहीं है। ध्यान बँटाने और 'एक ही साथ दो कामोंको करने' से सम्बन्धित प्रयोगोंका जिनका, उल्लेख उसी पूर्व प्रकरणमें किया गया था, सम्बन्ध भी यहां से जुड़ा है। चुनाव[2] के सिद्धान्तके साथ-साथ दो अन्य सिद्धान्त भी महत्त्वपूर्ण पाये गये थे। वे थे: 'परिवर्तन[4]' और 'संयोजन[5]' के सिद्धान्त। यहां हम देखेंगे कि ध्यान और प्रत्यक्षीकरण[6] में इन सभी सिद्धान्तोंका महत्त्व है।

ध्यान और चेतना[7]. आप किसी वस्तु पर, जैसे निकट आती हुई मोटरकार पर, किसी कार्य पर, जैसे सुस्पष्ट और

आकृति ८६. कोई क्रिया तो स्पष्टतः चेतन होती है, कोई केवल अस्पष्टतः चेतन और कोई विशुद्ध शारीरिक तथा अचेतन होती है।

सुपाठ्य अक्षरोंमें अपना नाम अंकित करने पर, या किसी अनुपस्थित व्यक्ति या दृश्यके विचार पर ध्यान दे सकते हैं। जिस-किसी वस्तु पर आप ध्यान देते हैं, उसके विषयमें आप पूर्ण सचेत रहते हैं। उस क्षणमें, आप अन्य किसी भी वस्तुसे अधिक अपने ध्यानमें आयी हुई वस्तुके प्रति सचेत रहते हैं, फिर भी

[1] accurate [2] selectivity [3] set [4] shifting [5] combination [6] perception [7] attention and consciousness

आप कुछ ऐसी वस्तुओं, कार्यों और विचारोंके प्रति सचेत रहते हैं, जिन पर उस क्षण आप ध्यान नहीं दे रहे होते। किसी समस्या में खोये हुए आप जब खिड़की से बाहर देखते होते हैं, तब आप अपनी समस्या के प्रति तो सर्वाधिक सचेत रहते ही हैं, परन्तु अपनी आंखों के सामने फैले हुए दृश्यके विषय में भी कुछ न कुछ सचेत रहते हैं, और आप अपने शरीर के अंगोंकी संवेदनाओं के प्रति भी पूर्णतया अचेत नहीं होते। भीतरी अंगों की कुछ क्रियाएं आपकी चेतना के क्षेत्र से बिल्कुल बाहर पड़ती हैं। किसी भी क्षणमें किसी शरीर की समग्र क्रिया एक ही केन्द्र वाले तीन क्षेत्रोंमें विभाजित समझी जा सकती है : ध्यान और पूर्ण चेतना का केन्द्रीय क्षेत्र, धुंधली चेतना का मध्यवर्ती क्षेत्र, और पूर्णतः अचेतन प्रक्रियाओं वाला बाह्य क्षेत्र। इन क्षेत्रों के बीच की सीमाएं बहुत स्पष्ट और पूर्णतया निश्चित नहीं होतीं। जब किसी कारणवश आप किसी सूक्ष्म वस्तु का बहुत सतर्कता से निरीक्षण कर रहे होते हैं, तब केन्द्रीय क्षेत्र बहुत सँकरा हो जाता है; किन्तु दूसरे समय जब आप पूरे दृश्यको ग्रहण करना चाहते हैं, तब केन्द्रीय क्षेत्र इतना विस्तृत हो जाता है कि उसमें सामने के सम्पूर्ण दृश्य[1] का समावेश हो जाता है। अस्पष्ट चेतना का मध्यवर्ती क्षेत्र साधारणतः काफ़ी विस्तृत होना चाहिए, जिसमें आप जिस वस्तु पर ध्यान दे रहे हैं, उसे छोड़कर प्रत्येक दृश्य वस्तु सम्मिलित हो; जिसमें किसी दृश्य वस्तु पर ध्यान देते समय आप जो ध्वनियां सुन रहे हों, वे भी सम्मिलित हों; जिसमें शारीरिक संवेदनाओं का एक समूह सम्मिलित हो; जिसमें अनुभूतिकी एक अन्तर्धारा सम्मिलित हो, जो न्यूनाधिक रूपसे सुखद या दुःखद और थोड़ा-बहुत आवेश और तनाव वाली हो। इन सब बातों के अतिरिक्त बहुधा आप पूर्णतया नहीं, बल्कि आंशिक रूपसे ही इस बातके प्रति सचेत होते हैं कि आप कहां हैं और क्या कर रहे हैं। यदि आप अपना हिसाब मिला रहे हैं तो यह तथ्य सारी क्रियाके दौरानमें पृष्ठभूमि में छिपा रहेगा और किसी एक क्षण में आपका ध्यान संख्याओंके एक समूहका ठीक योग निकालने में ही केन्द्रित रहेगा। यदि आप नियमित दिनचर्या का कार्य कर रहे हैं, जिसके आप खूब अभ्यस्त हो चुके हैं, तो उस समय आप मजे में किसी दूसरी बात पर भी विचार कर सकते हैं और इस लगभग स्वतः चालित क्रिया के प्रति केवल आंशिक रूपसे सचेत रह सकते हैं।

ध्यान आकर्षित करना और ध्यानमें टिके रहना. लोग किन चीजों पर ध्यान देते हैं? एक या दूसरे समय में वे हरएक वस्तु पर ध्यान देते हैं, चाहे वह बड़ी हो या छोटी, नयी हो या पुरानी, अमूर्त हो या ठोस, सुखद हो या दुःखद। किन्तु वे कुछ वस्तुओं पर अन्य वस्तुओंकी अपेक्षा अधिक ध्यान दे सकते हैं; और यही मनोवैज्ञानिक समस्या है कि कौन-सी वस्तुएं व्यक्ति के ध्यानमें आसानीसे आती हैं और देर तक ध्यानमें टिकी रहती हैं। 'व्य' के ध्यान में आने के लिए कई उत्तेजनाओं में प्रतियोगिता रहती है; हम जानना चाहते हैं कि इस प्रतियोगिता में कौन-से तत्व एक उत्तेजना को दूसरी उत्तेजनाओं की अपेक्षा लाभप्रद स्थितिमें ला रखते हैं। इस प्रश्नका उत्तर खोजनेमें हमें 'उ—व्य—प्र' सूत्र से मदद मिलेगी। यदि 'प्र' ध्यान देने की प्रतिक्रिया है, तो 'उ' (उत्तेजना) या 'व्य' (व्यक्ति) में वे कौन-से तत्व हैं जो ध्यान आकर्षित करने और उसमें टिके रहनेके लिए एक वस्तुको दूसरी वस्तुओंकी अपेक्षा सुविधा प्रदान करते हैं?

कुछ «उत्तेजनाएं» व्यक्ति का ध्यान आकर्षित करने में अधिक समर्थ होती हैं।

उत्तेजनाकी «तीव्रता» इसमें एक तत्व है। तीव्र उत्तेजना पर निर्बल उत्तेजनाकी अपेक्षा शीघ्र ध्यान जाना स्वाभाविक है। धीमी फुसफुसाहट की अपेक्षा ज़ोरका शोर पहिले ध्यान खींचता है; इसी प्रकार मन्द टिमटिमाहटकी अपेक्षा चमकीले प्रकाश पर व्यक्तिका ध्यान पहिले जाता है। दृश्य वस्तुओंके प्रसंगमें आकारका वही महत्व होता है, जो तीव्रता का। सूक्ष्म वस्तुओंकी अपेक्षा बड़े आकार वाली वस्तुएं व्यक्ति के ध्यानमें पहिले आती हैं।

«पुनरावृत्ति[2]» या उत्तेजनाओंका योग भी एक तत्व है। 'मदद करो, मदद करो, मदद करो!' का शोर हमारा ध्यान आकर्षित कर लेगा, जबकि एक बार कहा हुआ 'मदद करो!' वाक्य शायद हमारे ध्यान में आये भी नहीं। किन्तु यदि कोई उत्तेजना कई बार दोहरायी जाती है, तो वह अपनी नीरसता के कारण हमारे ध्यानसे उतरने लगती है। उसके स्थान पर हमारा ध्यान दूसरी किसी उत्तेजना पर जाता है, जिसमें परिवर्तन और नवीनता के तत्व होते हैं।

«परिवर्तन» भी एक शक्तिशाली तत्व है। जब कोई आवाज़ एक-सी गति और तीव्रतासे कुछ समय तक जारी रहती है, तब उसपर से हमारा ध्यान थोड़ी देर में हट जाता है, किन्तु उसमें किसी भी तरहका परिवर्तन होते ही हमारा ध्यान फिर उसपर चला जाता है। घड़ीकी टिक्-टिक् की ध्वनिको सुनते-सुनते आप इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि आप उसको मुश्किलसे ही सुनते हैं, किन्तु यदि वह बन्द हो जाय, तो आप को आश्चर्य होता है कि क्या बात हो गयी। कोई वस्तु जो हिलने लगे, वह निश्चय ही हमारे ध्यानको आकर्षित करेगी। किसी परिवर्तनमें भी जबतक आकस्मिकता की मात्रा न होगी, तब तक वह प्रभावशाली न होगी। किसी बहुत धीमे परिवर्तन पर काफ़ी समय तक हमारा ध्यान नहीं जाता।

[1] landscape [2] repetition

«अन्तर या वैषम्य[1]» बहुत-कुछ परिवर्तन की भांति ही प्रभावोत्पादक होता है। अपने चारों ओर की वस्तुओं से जो वस्तु बहुत भिन्न होगी, वह सबसे अलग-सी दिखायी देगी और उसपर हमारी आंख सबसे पहिले पड़ेगी, चाहे यह सफ़ेद सतह पर कोई काला दाग़ हो, या हरे मैदानमें कोई लाल वस्तु हो, या गतिशील वस्तुओंके बीचमें कोई स्थिर, गतिहीन वस्तु हो, चाहे वह दीवाल पर पड़ा हुआ कोई भद्दा दाग ही क्यों न हो, या किसी वस्त्रमें कोई पैवन्द या फटा स्थल हो। यह 'क' अक्षर के समूहोंमें छिपा हुआ एक 'अ' भी हो सकता और 'अ' अक्षर के समूहमें छिपा हुआ एक 'क' भी।

ककककककककक	अअअअअअअअअ
ककककककककक	अअअअअअअअअ
कककअककककक	अअअकअअअअअ
ककककककककक	अअअअअअअअअ
ककककककककक	अअअअअअअअअ

उत्तेजना के तत्वोंके सम्बन्धमें इतना ही पर्याप्त है। किसी खास समयमें 'व्य' में उपस्थित «आन्तरिक तत्वों» को दो प्रमुख शीर्षकोंमें बांटा जा सकता है : (१) व्यक्तिकी स्थायी और रचना-सम्बन्धी विशेषताएं; और (२) चालू चेष्टा और दशा के अस्थायी तत्व।

स्थायी तत्वोंमें व्यक्तिकी «अवधान और अनवधान[2] सम्बन्धी आदतें» हैं। उसने कुछ वस्तुओं पर ध्यान देना और कुछ वस्तुओंकी उपेक्षा करना सीखा है। कारके ड्राइवर को अपनी मोटरकी आवाज सुनने की आदत है, क्योंकि आवाज से उसे पता चल जाता है कि मोटर अच्छी तरह चल रही है या जोर लगाकर। वनस्पतिशास्त्री ऐसे अनाकर्षक नमूनों, जैसे चट्टानों या पेड़ों पर लगी हुई काईके गुच्छों, पर ध्यान देनेकी आदत बना लेता है। बच्चेमें अवधान और अनवधानकी आदतें बड़े लोगोंके प्रभावसे पड़ती हैं। बड़े लोग देखने योग्य वस्तुओं पर बच्चेका ध्यान आकृष्ट करते हैं। इस प्रकार बच्चा उन वस्तुओं से परिचय प्राप्त कर लेता है, जिन्हें दूसरे लोग भी जानते हैं और उसका ज्ञान परम्परागत पथका अनुसरण करने लगता है।

अस्थायी आन्तरिक तत्वोंमें सबसे महत्वपूर्ण तत्व «रुचि[3]» है। आप उसी वस्तुको देखते हैं, जो उस क्षण आपकी रुचिके अनुकूल होती है। किसी दूकानके प्रदर्शन-कक्ष में वही वस्तु आपका ध्यान आकृष्ट करती है, जिसे आप खरीदना चाहते हैं, हालांकि उसी कक्षमें दूसरी वस्तुएं भी अधिक आकर्षक तरीक़ेसे प्रदर्शित होती हैं। उस क्षणकी आपकी रुचि बहुधा एक प्रश्नका रूप ले लेती है। आपके दिमाग़में क़ीमतका सवाल आता है, और तुरन्त ही आप एक अनाकर्षक मूल-सूची पर अपना ध्यान जमा देते हैं।

किसी वस्तुका ध्यानमें आना एक बात है और उसका ध्यानमें टिक जाना दूसरी बात। नवीनता और तीव्रता जैसे उत्तेजना के तत्व हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं, किन्तु बहुत देर तक ध्यानमें चढ़े रहनेके लिए किसी सच्ची रुचिका उनसे सम्बन्धित रहना आवश्यक है। यहां पर प्रबलीकरण[4] का सिद्धांत व्यवहृत होता है। आकर्षक दिखायी देनेवाली कोई वस्तु आपका ध्यान खींचती है और यदि उसमें आपको कुछ रुचि हुई तो वह रुचि उस वस्तुको देखनेके आपके क्षणिक इरादे को पुष्ट कर देती है और आपके ध्यानको वहीं रोक लेती है। इसी बीच वैसी ही दूसरी आकर्षक वस्तु पर आपका ध्यान जाता है, किन्तु ध्यान उसपर जम नहीं पाता, क्योंकि उस वस्तुमें आपकी कोई व्यक्तिगत रुचि जाग्रत् नहीं होती, इसलिए ध्यान को कोई बल नहीं मिलता।

पहिलेपहिल कोई विज्ञापन ऊपर दिये हुए उत्तेजना-तत्वों के आधार पर ही लोगोंका ध्यान आकर्षित करता है। सड़क के प्रकाशमान चिह्नोंमें तीव्रता और आकर्षक रंगोंका प्रचुर उपयोग किया जाता है। चमकीले चिह्न पुनरावृत्ति और परिवर्तनके कारण लोगोंका ध्यान खींचते हैं, जबकि बड़े चिह्न छोटे चिह्नों पर हावी होकर ध्यान आकृष्ट करते हैं। समाचार पत्रों और पत्रिकाओंमें विज्ञापन करानेवाले लोग पाठकोंका ध्यान आकर्षित करने के लिए ऐसे ही उपायोंका सहारा लेते हैं। एक चित्र, विशेषकर जिसमें बहुत लोग हों, एक क्षणके लिए पाठक का ध्यान खींचता है। किन्तु पाठक का ध्यान उसपर काफ़ी देर तक जमा रहे, इसके लिए उस विज्ञापनमें कोई ऐसी चीज होनी चाहिए, जिसमें पाठक सच्ची रुचि ले सके। यदि समाचारपत्रका कोई पाठक नौकरीकी तलाशमें है, तो वह अन्य प्रतिकूल तत्वोंके होते हुए भी एकमात्र रुचिके तत्व के कारण 'आवश्यकता है' के विज्ञापन पर पहिले ध्यान देगा, और ध्यान को टिकाये रखेगा (२)।

स्थिर ध्यान[5]. ध्यान बहुत शीघ्रतासे एक वस्तुसे दूसरी वस्तु पर जाता रहता है। कोई व्यक्ति जब किसी दृश्य को देख रहा हो, तब उसकी आंखोंको देखकर आप यह बात अच्छी तरह समझ सकते हैं। प्रति एक या दो सैकेंडके बाद वे एक वस्तुसे हटकर दूसरी वस्तु पर जा टिकती हैं। ध्यान आंखोंसे भी अधिक चंचल होता है, क्योंकि बहुधा आपकी आंखें जब किसी वस्तु पर टिकी होती हैं, तब आपका ध्यान उस वस्तुसे हटकर किसी रुचिकर विचार पर जा जमता है। यहां तक कि जब आदमी बिस्तर पर आंखें मूंदकर लेटा रहता है, तब उसका ध्यान तेजी से एक विचारसे दूसरे विचार पर आता-जाता रहता है।

इस लगातार परिवर्तन के बावजूद स्थिर ध्यान[5] नाम की

[1] difference or contrast [2] attention and inattention [3] interest [4] reinforcement [5] sustained attention

भी कोई वस्तु होती है। एक आवेशपूर्ण खेल दर्शकका ध्यान जमाये रखता है। एक क्षणके लिए भी उसका मन खेलनेसे हट-कर इधर-उधर नहीं भटकता। किन्तु खेलमें भी उसका ध्यान पूर्ववत् शीघ्रगामी होता है। उसकी आंखें खिलाड़ियोंकी गतियोंका अनुसरण करती हैं। वह खेलके साथ अपने ध्यान के क़दम मिलाये रहता है, और जैसाकि आप जानते ही हैं, खेल गतिशील और परिवर्तनशील होता है। इसलिए स्थिर ध्यान[1] कोई गतिहीन वस्तु नहीं है, वरन् रुचिके एक निर्दिष्ट क्षेत्रमें यह गतिशील रहता है। यह उस क्षेत्रके बाहर नहीं भटकता और न ध्यान बँटानेवाली बातोंके वशीभूत होता है। अपने उचित क्षेत्रके भीतर ध्यान जितना ही सजीव और स्फूर्तिमय होगा, उतना ही अधिक वह बाहर भटकनेके प्रलो-भनका प्रतिरोध कर सकेगा।

कभी-कभी अध्यापक ध्यान न देनेवाले छात्रोंकी शिकायत करते हैं; स्वयं कुछ छात्र भी यह शिकायत करते हैं कि वे जम कर किसी वस्तु पर ध्यान नहीं दे पाते। बच्चोंके साथ यह परेशानी नहीं होती कि वे ध्यान बिल्कुल ही नहीं दे पाते, बल्कि परेशानी यह होती है कि वे «किसी अन्य वस्तु पर ध्यान देते हैं»। यही चीज छात्रोंकी कठिनाईका भी उद्गम है। उनमें से बहुत कम छात्र समाधिकी सी स्थितिमें पहुंच जाते हैं, जिस में किसी तरहकी केन्द्रीकृत क्रिया नहीं हो पाती। जिन्दादिल नौजवानोंकी प्रमुख समस्या यह है कि प्रतियोगी रुचियोंके रहते हुए वे किस प्रकार ध्यानको किसी एक वस्तु पर एकाग्र करें। यहां हम कहानी-पाठकसे कुछ सीख सकते हैं। उसको यह खतरा नहीं रहता कि उसका मन इधर-उधर भटकेगा; वह अपनी अन्य रुचियोंको अलग रखकर, कहानीमें आगे क्या होता है, यह जाननेके लिए उत्सुकतापूर्वक आगे बढ़ता है। गम्भीर पुस्तकोंके कुशल पाठकमें भी इसी प्रकारकी उत्सुकता पायी जाती है। वह समस्यासे उठने वाले प्रश्नको देखता है और उसका उत्तर ढूंढ़नेके लिए पृष्ठ पर पृष्ठ पढ़ता जाता है। ऐसा पाठक शीघ्रपाठी होनेके साथ-साथ याद रखने वाला भी होता है।

छात्रके ध्यानको स्थिर रखनेवाली आदर्श वस्तु पाठ्य-विषयमें उसकी सच्ची रुचि ही हो सकती है। विज्ञान, साहित्य या कलाकी किसी भी शाखामें उसकी रुचि उत्पन्न हो सकती है, यदि एक बार वह इन विषयोंमें बहुत दूर तक घुस सके और समझ सके कि वास्तवमें ये चीजें कितनी दिलचस्प हैं। किन्तु प्रारम्भमें उसे कुछ व्यक्तिगत प्रेरकोंको, जैसे विषयमें अनुत्तीर्ण हो जानेके भय और हाथमें लिये हुए कार्यमें पारंगत हो जाने के संकल्प आदिको जाग्रत् करके उस विषयमें प्रविष्ट होनेके लिए अपने ऊपर जोर डालना पड़ेगा।

यहां पर उस लेखक या वक्ताके लिए एक समस्या उठ खड़ी होती है, जो चाहता है कि उसके लेख या भाषामें पाठक या श्रोताका ध्यान लग सके। प्रश्न है, वह अपने विषयको कैसे प्रस्तुत करे, ताकि लोगोंका ध्यान उस पर एकाग्र हो सके? उसके लिए पहिली चीज़ यह आवश्यक है कि वह उस प्रश्नमें अपने श्रोताओं या पाठकोंकी रुचि जाग्रत् करे, जिसका उत्तर वह देने जा रहा है, और तब बिना बहुत इधर-उधर भटके वह उन्हें सीधे उत्तरकी ओर ले जाये। कुछ प्रासंगिक बातें, जो उसे कामकी मालूम पड़ सकती हैं, श्रोताओं या पाठकोंमें उचाट पैदा कर सकती हैं। यहां तक कि उसकी बातोंको स्पष्ट करने वाले उदाहरण भी, चाहे वे कितने ही आवश्यक हों, स्वयं इतने दिलचस्प हो सकते हैं कि वे श्रोताओंको मुख्य प्रसंग से अलग हटा ले जायें। श्रोतागण बहुधा उस उदाहरणको तो याद रखेंगे, किन्तु उस बातको भूल जायेंगे, जिसको प्रमाणित करनेके लिए वह उदाहरण दिया गया था।

प्रत्यक्षीकरण

«प्रत्यक्षीकरण[2]» शब्दका हम जिस रूपमें इस्तेमाल कर रहे हैं, उससे ज्ञानेन्द्रियों द्वारा परिवेशसे परिचित होनेकी प्रक्रिया का बोध होता है। व्यक्ति अपनी ज्ञानेन्द्रियोंका उपयोग करके अपने विषयमें तथ्योंका पता लगा सकता है, इस तथ्यके साथ न्याय करनेके लिए हमें इस परिभाषाको कुछ विस्तृत करना चाहिए। वह निरीक्षण कर सकता है कि उसकी त्वचा कड़ी हो गयी है या उसकी एक मांस-पेशीमें सूजन आ गयी है। यद्यपि ये परिवेश-सम्बन्धी तथ्य नहीं हैं, तो भी ये वस्तु-सम्बन्धी तथ्य हैं और उनका निरीक्षण करनेकी प्रक्रिया वैसी ही होती है, जैसी बाह्य वस्तुओं पर ध्यान देनेकी प्रक्रिया होती है। इस लिए सबसे ठीक परिभाषा यह रहेगी कि प्रत्यक्षीकरण ज्ञाने-न्द्रियोंके उपयोगसे वस्तुओं और वस्तु-सम्बन्धी तथ्योंको जानने की प्रक्रिया है।

जब हम परिवेशके साथ व्यक्तिके सम्बन्धों पर विचार करते हैं, तब वस्तु-सम्बन्धी तथ्योंको देखने और जाननेका व्यावहारिक महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। जैसाकि पहिले कहा जा चुका है, वे 'लेन-देनके सक्रिय सम्बन्ध' हैं। व्यक्ति परिवेश के साथ लगातार व्यवहार करता रहता है। वह परिवेशकी वस्तुओंके प्रति क्रिया करता है, और प्रभावपूर्ण ढंगसे क्रिया करनेके लिए उसे उन वस्तुओंके विषयमें जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। पूर्णतया उन्हें न जान पावे तो कोई हर्ज नहीं, किन्तु कुछ हद तक तो उन्हें जानना ही चाहिए। वह परिवेशका वस्तुओंको अपनी ज्ञानेन्द्रियों और उत्तेजनाओंके

[1] sustained attention [2] perception

द्वारा, जो उसके आदातृ-अंगों[1] तक पहुंचती हैं, जाननेकी चेष्टा करता है। उत्तेजनाएं परिवेशमें उपस्थित वस्तुओंसे ही आती हैं, किन्तु उत्तेजनाओंको वस्तु समझ लेना भूल होगी। वस्तुएं और उत्तेजनाएं बिल्कुल भिन्न होती हैं। जब आप किसी घाटीकी तलहटीमें स्थित झीलको देखते हैं, तब वास्तवमें झील दौड़कर आपकी आंखोंमें नहीं आ जाती, बल्कि केवल झील की सतहसे आनेवाला प्रकाश आपकी आंखोंसे टकराता है। वह प्रकाश कांपता है, तब आप देखते हैं कि हवाके कारण झीलकी सतहमें उथल-पुथल मच रही है। पहिले आप एक धीमी गूंज सुनते हैं, जो क्रमशः तेज होती जाती है और आप देखते हैं कि एक वायुयान निकट आता जा रहा है। यह गूंज वायुयान नहीं है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार हवा कम्प नहीं है या झील प्रकाशका एक चमकीला बिन्दु नहीं है। निरीक्षक जैसी उत्तेजनाएं प्राप्त करता है, उन्हीं के द्वारा उसे वस्तु-सम्बन्धी तथ्योंका किसी प्रकार संकेत मिलता है, किन्तु वे उत्तेजनाओंसे बहुत भिन्न होते हैं। शरीरके लिए, जो अपनी त्वचाके भीतर क़ैद रहता है, यह किस प्रकार सम्भव है कि वह 'वहांसे दूर स्थित' किसी वस्तुके बारेमें जान सके और उसके साथ प्रभावपूर्ण ढंगसे व्यवहार भी कर सके?

यह बतानेकी समस्या कि व्यक्ति वस्तु-सम्बन्धी तथ्योंको कैसे देख सकता है, दिलचस्प है, किन्तु मनोवैज्ञानिकोंके लिए यह विषय कठिन है। हमारे पुराने सूत्र: 'सं—उ—व्य स—प्र—सं' की कुछ सहायता इसकी व्याख्या करनेमें मिल सकती है। परिवेश उत्तेजनाएं भेजता है, जो 'व्य' के आदातृ-अंगों[1] के पास पहुंचती हैं और 'व्य' मांस-पेशियोंकी गतियों के द्वारा प्रतिक्रिया करता है, जिनसे परिवेशमें प्रभाव उत्पन्न होते हैं। 'व्य' के साथ जो छोटा 'सं' लगा हुआ है, वह इस महत्वपूर्ण तथ्यका प्रतीक है कि 'व्य' परिवेशके लिए «तत्पर[2]» है। किसी निर्दिष्ट क्षणमें, जहां तक वह वर्तमान परिस्थिति को पहिले ही देख चुका है, उसके लिए तत्पर रहता है। इसके अलावा वह किसी लक्ष्य तक पहुंचनेके लिए भी तत्पर रहता है। वह कुछ वस्तुओंके साथ व्यवहार करनेकी चेष्टा करता है और अपने अभिप्रायके लिए उन्हें पर्याप्त रूपसे देख लेनेका प्रयत्न करता है। इससे यह मतलब नहीं निकलता कि वह उनको देख ही लेता है, किन्तु चेष्टा करनेसे कुछ लाभ तो होता ही है। वह यह जाननेकी परवाह किये बिना कि धीमी भन्नाहट कहांसे आ रही है, उसे एक कोमल स्वरकी भांति सुनता रह सकता है, किन्तु यदि वह जाननेकी चेष्टा करता है कि यह भन्नाहट किस चीज़की हो सकती है, तो सम्भव है, वह जान सके कि यह वायुयानकी भन्नाहट है।

इससे भी अधिक—यदि उसने परिस्थितिको सामान्य रूप से पहिले ही प्रत्यक्ष कर लिया है और परिस्थिति-सम्बन्धी तत्परता[3] का निर्माण कर लिया है, तो जिस-किसी नये तथ्य को वह देखता है, उसे उस परिस्थितिमें ठीक बैठ जाना चाहिए। यदि वह कोई फ़ुटबॉलका खेल देख रहा है, तो एक तेज़ शोर की आवाज़से उसे यह संकेत नहीं मिलता कि कहीं विद्रोह हो गया है, बल्कि यही संकेत मिलता है कि एक दलने कोई अच्छी सफलता प्राप्त की है। वह अकेले तथ्यको सारी परिस्थितिसे मिलाकर देखता है। एक तथ्यको देखनेसे आगेके तथ्योंको देखनेमें भी सहायता मिलती है। तथ्योंकी एक साथ संगति मिलानेकी प्रक्रिया और इस प्रकार परिवेशका ज्ञान प्राप्त करनेका कार्य तभीसे शुरू हो जाता है जबसे बच्चा 'ध्यानसे देखना' प्रारम्भ करता है। दूसरे शब्दोंमें, यह प्रक्रिया तब प्रारम्भ होती है, जब उसका वृहत् मस्तिष्कीय त्वक्ष[4] कार्य करना शुरू कर देता है। त्वक्षके सक्रिय हो जाने पर, बच्चोंमें वस्तुओंको देखने और वस्तुओंके साथ कुछ क्रिया करनेकी अभिवृत्ति पहिलेसे ही आ जाती है। वह केवल उत्तेजनाओंको प्राप्त करके सन्तुष्ट नहीं हो जाता। वह सदा उत्तेजनाओंका अर्थ जाननेकी चेष्टा करता रहता है।

वस्तुओंका निरीक्षण और उत्तेजनाओंका निरीक्षण. यह सत्य है कि उत्तेजनाओंका नहीं, वस्तुओंका ही निरीक्षण किया जाता है। किन्तु उत्तेजनाएं तो फिर भी बनी रहती हैं। यदि व्यक्ति अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तिके अनुसार उत्तेजनाओंको प्राप्त करते ही तुरन्त उनके वस्तुगत अर्थोंको जाननेकी चेष्टा न करे, और उत्तेजनाओं पर ही अपना ध्यान जमानेका अभ्यास करे, तो वह उनका भी निरीक्षण कर सकता है। आंखें बन्द करके एक कुर्सी उठाइये और बताइये कि आपने क्या निरीक्षण किया। सम्भवतः आप बतायेंगे कि कुर्सी बहुत भारी है—यह वस्तुगत तथ्य हुआ। किन्तु, अब फिर अपनेसे पूछिए, कुर्सीसे आपको क्या वास्तविक उत्तेजनाएं प्राप्त हुईं। आप देखेंगे कि जिस हाथने कुर्सी उठायी, उसकी त्वचा पर कुछ दबाव पड़ा; जब तक कुर्सी ऊपर न उठ आयी, तबतक केहुनी के जोड़ पर काफ़ी खिंचाव रहा इत्यादि। सामान्यतः, आप इस दबाव और खिंचाव पर ख़याल किये बिना कुर्सीके बोझका ख़याल करते हैं, अर्थात् आप प्राप्त उत्तेजनाओंसे हटकर तुरन्त उन उत्तेजानाओं द्वारा लक्षित वस्तुगत तथ्य पर ध्यान लगा देते हैं। दृष्टि और श्रवणेन्द्रिय पर विचार करते समय इसी तरहके उदाहरण दिये जायेंगे।

चिह्न और अर्थ. प्रत्यक्षीकरण[5] चिह्नोंका उपयोग करने की एक प्रक्रिया है, जिससे उनका अर्थ जाना जा सकता है। परिवेशसे प्राप्त उत्तेजनाएं तो चिह्न होती हैं और वस्तुगत तथ्य उनके अर्थ होते हैं। चिह्नों और उनके अर्थोंका अध्ययन

[1] receptors [2] set [3] situation set [4] cerebral cortex [5] perception

करनेसे प्रत्यक्षीकरण[1] की कई महत्त्वपूर्ण विशेषताओंका पता चलता है।

१. जैसा कि हम पहिले ही बतला चुके हैं, साधारणतः निरीक्षक वस्तुगत तथ्योंको जाननेका इतना इच्छुक रहता है कि वह चिह्नों पर अधिक न रुककर शीघ्रातिशीघ्र उसके अर्थों को जाननेकी चेष्टा करता है। पढ़नेकी क्रियामें, जो प्रत्यक्षीकरणका एक प्रकार है, आप छपे हुए शब्दके स्वरूप पर उतनी देर ही अपना ध्यान टिकाते हैं, जितनी देर उसका अर्थ पानेके लिए टिकाना आवश्यक होता है। कई मामलोंमें तो तथ्योंको प्रकट करनेवाले चिह्नों पर ध्यान दिये बिना ही आप तथ्योंको देख लेते हैं। आप खूब अच्छी तरह यह देखते हैं कि अमुक वस्तु आपके निकट पड़ी है और अमुक वस्तु बहुत दूर रखी है; किन्तु किन चिह्नोंके द्वारा आपने उनकी दूरी देख ली? आप देखते हैं कि एक ध्वनि अमुक दिशासे आ रही है; किन्तु ध्वनि की दिशा पहिचाननेके लिए आपके पास कौन-से चिह्न हैं? ऐसी समस्याओंकी सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक छान-बीन आवश्यक है। प्रत्यक्षीकरणके अध्ययनमें मनोवैज्ञानिकका एक मुख्य कार्य यह है कि वह उन चिह्नोंकी खोज करे, जिनका उपयोग प्रत्येक व्यक्ति वस्तुगत तथ्योंको देखनेमें लगातार करता है। मनोवैज्ञानिक बहुधा चिह्नोंके बजाय संकेतों[2] का उल्लेख करता है। वह पूछता है: 'दूरी या दिशा या बोझ या समयावधिके संकेत[2] क्या हैं'? वह एक के बाद दूसरे संकेतको अलग करके प्रयोग करता है। यहां तक कि निरीक्षक वस्तुगत तथ्यको देख-पाने में असमर्थ हो जाता है। इस प्रकार वह विभिन्न चिह्नों या संकेतोंका आपेक्षिक मूल्य मालूम करता है।

२. साधारणतः किसी चिह्नका अर्थ अनुभवके द्वारा जाना जायेगा। दूरी और दिशाके बोधक कुछ चिह्न ऐसे हो सकते हैं, जो सीखे हुए होनेके बजाय नैसर्गिक[3] होते हैं (कुछ छोटी आयुके पशुओंके व्यवहारसे यह बात सही जान पड़ेगी), किन्तु मनुष्यों द्वारा जो बहुत-से चिह्न व्यवहृत होते हैं, वे निश्चय ही सीखे हुए होते हैं। अगर हम यह जाननेकी कोशिश करेंगे कि चिह्नों और उनके अर्थोंके सम्बन्ध कैसे सीखे जाते हैं, तो हम बहुत दूर निकल जायेंगे, किन्तु इस सम्बन्धमें एक तथ्य पर ध्यान देना चाहिए। चिह्न दो प्रकारके होते हैं, जिन्हें «प्रतीक[4]» और «इंगित[5]» कहा जा सकता है। प्रतीक वे उत्तेजनाएं हैं जो किसी वस्तुका बोध कराती हैं, जैसे कि नाम एक व्यक्तिका और शब्द एक सामान्य प्रत्यय[6] का बोध कराता है। प्रारम्भमें किसी भी प्रतीकका चुनाव यादृच्छिक होता है, किन्तु निरन्तर उपयोगके कारण हम उसके अर्थके साथ उसका सम्बन्ध इतनी अच्छी तरह जान जाते हैं कि उनमें प्राकृतिक सम्बन्ध जान पड़ने लगता है। कोई बच्चा, जो नामोंको सीख रहा हो, यह पूछ सकता है कि इतने दूरस्थ तारोंका नाम किसी ने कैसे जान लिया!

दूसरी ओर, इंगितों[5] का उनके अर्थोंके साथ अधिक यथार्थ और अनिवार्य सम्बन्ध होता है। किसी वस्तुका इंगित[7] उस वस्तुसे प्राप्त हुई कोई न कोई प्रकृष्ट उत्तेजना होती है। धुआँ आगके अस्तित्वका इंगित है; 'आग' शब्द आग नामक वस्तुका 'प्रतीक' है। इसी प्रकार भन्नाहट एक गतिशील वायुयानकी विशेषता है और हिलता-डुलता प्रकाश झीलकी सतह पर बहनेवाली हवाके प्रभावकी विशेषता है। विभिन्न स्वभावों या विशेषताओंसे युक्त वस्तुओंका निरीक्षण करनेसे बच्चा उन वस्तुओंके इंगितके रूपमें कुछ विशेषताओंको सीख लेता है। वह सीख लेता है कि मुस्कुराहट हास्यका चिह्न है और भौंहोंमें बल डालकर तीखी नजरसे देखना चिढ़ या क्रोध का चिह्न है। बचपनमें, प्रारम्भके दिनोंमें बच्चा अपने-आप जिन बहुत-सी बातोंको सीखता है, उनके लिए वह विभिन्न परिस्थितियोंमें लोगों द्वारा किये जानेवाले व्यवहारोंका निरीक्षण करता है; वह उनके विशिष्ट व्यवहार-चिह्नोंसे उनकी अभिवृत्तियों और अभिप्रायोंको देखना सीखता है। इस प्रकार वह सामाजिक प्रत्यक्षीकरण[8] का प्रारम्भ करता है।

३. «संक्षिप्त संकेत[9]». पहिले-पहिल किसी वस्तुसे परिचय प्राप्त करनेके लिए हम उसका चारों ओरसे निरीक्षण कर लेना चाहते हैं और उसे हिला-डुलाकर, चला-फिराकर देख लेना चाहते हैं, ताकि उसकी सभी (या कई) विशेषताओं को जान सकें। बादमें, जब हम उस वस्तुसे काफ़ी घनिष्ठता स्थापित कर चुकते हैं, तब उसकी केवल एक विशेषता उस वस्तुकी उपस्थितिका बोध करानेके लिए पर्याप्त होती है। सम्पूर्ण वस्तुकी तुलनामें इंगित बहुत हल्का हो सकता है। एक छोटी-सी झलक, सुगन्धका थोड़ा-सा आभास या ध्वनिका कानको छूना ही पर्याप्त हो सकता है। इस तरह संक्षिप्त इंगितोंसे समय और परेशानी दोनोंकी बचत होती है, हालांकि इनके कारण कभी-कभी प्रत्यक्षीकरणमें भूल हो जानेकी सम्भावना रहती है।

४. «द्व्यर्थक चिह्न[10]». संक्षिप्त संकेतोंका खुला उपयोग करनेसे प्रत्यक्षीकरणकी प्रक्रिया बहुत क्षिप्र हो जाती है, किन्तु यह निश्चित निशाने वाली प्रक्रिया नहीं हो पाती। वैसी यह हो सकती है, यदि प्रत्येक चिह्नका केवल एक अर्थ हो। शब्दों की भांति कई उत्तेजनाओंके भी दो या दोसे अधिक अर्थ होते हैं। एक शब्द 'द्विज' को ही लें। अकेले यह शब्द द्व्यर्थक है,

[1] perception [2] cues [3] instinctive [4] symbols [5] signals [6] concept [7] signal [8] social perception
[9] reduced cues [10] ambiguous signs

प्रसंगानुसार ही इसका अर्थ स्पष्ट होता है। यही बात अन्य चिह्नोंके सम्बन्धमें भी है। कोई उत्तेजना परिस्थितियोंके अनुसार एक से अधिक वस्तुओंसे प्राप्त हो सकती है; निरीक्षक किस वस्तुको देखेगा, यह उसकी परिस्थिति-सम्बन्धी तत्परता[1] पर निर्भर होता है। यदि आप रातको किसी अपरिचित मैदान में घूम रहे हैं, तो आपके सामने बड़ा-सा एक काला-काला जो ढेर दिखायी दे रहा है, वह या तो कोई दूरस्थ पहाड़ी होगी, या किसी किसान द्वारा एकत्र किया गया पुआलका ढेर। दोनों ही चीज़ें आपकी आंखोंको एक ही उत्तेजना देती हैं। वस्तुकी दूरीके अनुसार, किसी भी आकारकी वस्तुकी उत्तेजना किसी भी आकारकी हो सकती है। जब अच्छे प्रकाशमें आप परिचित वस्तुओंकी ओर देखते हैं, तब आपको उनके विषयमें कोई सन्देह नहीं होता और आप ग़लतियां कम या बिल्कुल नहीं करते। लेकिन जब वस्तु अपरिचित होती है और स्पष्ट रूपसे उपस्थित नहीं की जाती, तब आपके घपलेमें पड़ जानेकी सम्भावना होती है, और सन्तुष्ट होनेके पूर्व आप «प्रत्यक्षीकरणमें कई प्रयास और कई भूलें करते हैं»। रातको मोटर चलाते समय, पहिले जो वस्तु सड़कका एक हिस्सा लगती है, वही बादमें किसी गोदामकी छत साबित हो सकती है। शोर-गुल बहुधा द्वयर्थक हुआ करते हैं। एक उदाहरणमें, जो आवाज़ पहिले दूरसे आती हुई बादलोंकी गड़गड़ाहट जान पड़ी थी, उसीके विषयमें दूसरे क्षण पता चला कि ऊपर वाली छत पर कोई खाट घसीट रहा है। अन्धकारमें किसी वस्तुको छूते हुए आप उसको कई विभिन्न वस्तुओंके रूपमें बारी-बारीसे समझ सकते हैं; बादमें आपको उसका एक अर्थ ज्ञात होता है, जो उस परिस्थितिके उपयुक्त बैठता है और सन्तोषप्रद मान लिया जाता है (उसकी पुष्टि[2] हो जाती है)।

केवल यही सच नहीं है कि एक ही चिह्नके विभिन्न अर्थ हो सकते हैं, बल्कि यह भी सच है कि विभिन्न चिह्नोंका एक ही अर्थ हो सकता है। आप किसी वस्तुको अलग-अलग कोनोंसे देखते हैं; वह आपको अलग-अलग उत्तेजनाएं देती है, किन्तु फिर भी वह उसी वस्तुके रूपमें देखी जाती है। आप उसके निकट जाते हैं, तो वह आपके दृष्टिपथमें एक बड़ी वस्तुके रूपमें साफ़-साफ़ आ जाती है, आप उससे दूर हटते जाते हैं और वह भी अस्पष्ट होती जाती है; फिर भी आपको वह उसी आकारकी मालूम पड़ती है। यदि कोई वस्तु सफ़ेद या काली है, तो चाहे उसे आप तेज़ रोशनीमें देखें, जब वह आपकी आंखोंमें अधिक प्रकाश डाल सके, या धीमी रोशनीमें देखें, जब वह केवल हल्का प्रकाश डाल सके, फिर भी वह सफ़ेद या काली ही मालूम देती है। इसको 'प्रातीतिक स्थिरता[3]' कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि एक ही वस्तु द्वारा विभिन्न परिस्थितियोंमें विभिन्न उत्तेजनाएं भजनेके बावजूद वह वस्तु उसी रूपमें देखी जायगी और उसमें वही विशेषताएं (कुछ सीमाओंके भीतर) मालूम पड़ेंगी। अगले प्रकरणमें 'स्थिरता' के विषयमें अधिक बातें बतायी जायेंगी।
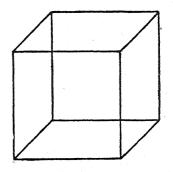
आकृति ८७. भिन्नार्थक घन।

'द्वयर्थक आकृतियां[4]' विशेषतः इस प्रकार खींची जाती हैं, कि वे दो या दोसे अधिक वस्तुओंका समान रूपसे प्रतिनिधित्व कर सकें। निरीक्षक विभिन्न वस्तुओंको सहज ही देख सकता है, किन्तु एक समयमें एक ही वस्तुको देख सकता है। पारदर्शी घनका चित्र, जिसके निकट और दूरके किनारे एक-से होते हैं, एक प्रसिद्ध उदाहरण है। अगर ध्यानसे देखा जाय, तो इस आकृतिको तीन विभिन्न तरीक़ोंसे देखा जा सकता है। यह केवल एक चौरस रेखाकृतिके रूपमें भी देखी जा सकती है। किन्तु इसके घनके रूपमें देखे जानेकी अधिक सम्भावना है। यदि इस रेखाकृतिको ध्यानपूर्वक देखा जाय तो इसके निकटवर्ती और दूरवर्ती किनारे समय-समय पर अपना स्थान बदलते मालूम होते हैं।

दूसरी प्रसिद्ध आकृति एक ज़ीनेकी है, जिसे विपरीत रूपमें भी देखा जा सकता है। इसे चौरस चित्रकी तरह भी देखा जा सकता है, किन्तु यह बहुत-कुछ या तो सीढ़ियोंके ज़ीनेके ऊपरी भागके रूपमें दिखायी देती है या ज़ीनेके भीतरी भागके रूपमें। यदि आप इसकी ओर काफ़ी देर तक टकटकी बांध कर देखें, तो यह बार-बार एक रूपसे दूसरा रूप बदलती दिखायी देगी। चूंकि रेखाकृतिमें कोई परिवर्तन नहीं होता, इसलिए इस परिवर्तन[5] का कारण निरीक्षकमें स्थित तत्वोंमें होना चाहिए। निरीक्षक रेखाकृतिके विभिन्न भागों पर दृष्टि जमा सकता है। कुछ दृष्टि-बिन्दु ज़ीनेके एक रूपके पक्षमें जाते हैं, और कुछ दूसरे रूपके पक्षमें, किन्तु स्थिर-दृष्टि रहने पर भी कुछ समय बाद ज़ीनेका रूप बदलता लगेगा, जब कि दृष्टि-बिन्दु

[1] situation set [2] reinforcement [3] perceptual constancy [4] ambiguous figures [5] shifting

में परिवर्तन करते रहने पर भी जीनेका रूप अपरिवर्तित रह सकता है (१०)।

आकृति ८८. उत्क्राम्य[1] जीना।
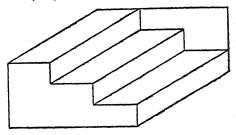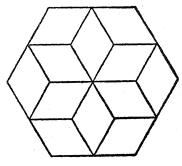
आकृति ८९. अत्यधिक भिन्नार्थक आकृति। काफ़ी देर तक इसे घूरनेके बाद आपको यह कम से कम आठ विभिन्न रूपों में दिखायी देगी कुछ रूप चपटे होंगे और शेष त्रि-वैम[2]। त्रि-वैम रूप अधिक दिलचस्प होते हैं और उनमें एक निश्चित विशेषता होती हैं, जिसके कारण व्यक्ति त्रि-वैम वस्तुओंको देखना अधिक पसन्द करता है। यदि ऐसी कोई पसन्द या रुझान न होती, तो मनुष्यों, पशुओं, मकानों और समग्र दृश्योंके रेखाचित्र, जो बच्चोंकी पुस्तकोंको सचित्र बनानेमें बड़े काम आते हैं, सच्चे न लगते, जैसा कि वे बच्चों को लगते हैं।

इन परिवर्तनशील प्रतीतियोंका सर्वोत्तम सिद्धान्त इस तथ्य से प्रारम्भ होता है कि कोई भी प्रतीति प्राप्त हुई उत्तेजनाओं के प्रति व्यक्तिकी प्रतिक्रिया होती है। जब उत्तेजनाएं द्व्यर्थक होती हैं, तब दो या दोसे अधिक प्रतिक्रियाएं प्राप्य होती हैं, और जब 'व्य' कुछ समय तक एक प्रतिक्रिया कर चुकता है, तब वह उससे ऊब जाता है और दूसरी प्रतिक्रिया करता है। सम्भवतः इसमें थकानका भी कुछ प्रभाव होता है। यह बहुत कुछ वैसी ही वस्तु है, जैसी ध्यानके परिवर्तनमें देखी गयी थी। इसी तरहके कई उदाहरण प्रतिक्षेप क्रिया[3] और व्यवहार के अन्य सरल रूपोंमें दिखायी देते हैं।

प्रत्यक्षीकरण में आकृति-सम्बन्धी तत्व

यदि आपकी आंखोंके सामनेके दृश्य-क्षेत्रमें परिचित वस्तुएं बिल्कुल नहीं हैं, केवल निरर्थक उत्तेजनाओंका समूह मात्र है, तो आपके सामने एक असाधारण परिस्थिति आ जायगी, जो एक वयस्कके लिए भी पेचीदा लगेगी। आप वयस्क होते हुए भी उस बच्चेकी स्थितिमें डाल दिये जायेंगे, जो अभी वस्तुओं को 'ग़ौरसे देखना' शुरू कर रहा है। आप इस अव्यवस्थित समूहको तोड़नेके लिए और उसमें स्थित वस्तुओंको देखनेके लिए पहला क़दम क्या उठायेंगे—बच्चा क्या क़दम उठाता है? निस्संदेह आपका पहला क़दम चुनाव[4] के नियमका अनुसरण करेगा: कोई चमकीला बिन्दु या हिलता हुआ बिन्दु अलग छँटा-सा दिखायी देगा, आपकी आंखोंको आकृष्ट करेगा और कुछ समय तक शेष क्षेत्रकी अपेक्षा अधिक स्पष्ट दिखायी
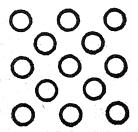
आकृति ९०. **विचलशील[5] प्रत्यक्षीकरणका एक उदाहरण।** इन वृत्तों को यदि टकटकी बांधकर देखा जाय, तो इनका समूह कई विभिन्न रूपों में दिखायी देगा। [सैनफ़ोर्ड, ९]।

देगा। शायद दूसरा क़दम यह होगा कि आपको कोई आकृति दिखायी देगी जो अपने चारों ओरकी चीज़ोंसे अलग-सी मालूम पड़ेगी। यह आकृति कोई एक वस्तु होनेके बजाय वस्तुओंके बीचका खाली स्थान भी हो सकती है। बच्चा कभी-कभी कमरे के कोनेमें टकटकी लगाकर देखता है, जहां किसी आकृतिकी स्पष्ट रूप-रेखा अंकित होती है, जो उसे अच्छी लग रही होती है। वह यथार्थ वस्तुओंको पहचाननेके पहिले आकृतियां ही देखता है, और वस्तुओंको देखनेमें आकृतियोंको देखनेकी योग्यता से बहुत सहायता मिलती है, क्योंकि अधिकांश वस्तुएं आंखोंके सामने बिल्कुल निश्चित आकृति लेकर ही आती हैं। वस्तु-दर्शन के लिए आकृति-दर्शन एक आवश्यक क़दम है।

आकृति और पृष्ठभूमि[6]. जब कोई आकृति अलग छँटी-सी दिखायी देती है, तब वह एक पृष्ठभूमिसे उभरती-सी होती है। एक न्यूनाधिक स्पष्ट रेखा दोनोंको अलग कर देती है। कमसे कम वयस्क निरीक्षक को तो यही लगता है कि रेखा[7] आकृतिसे

[1] reversible [2] three-dimensional [3] reflex action [4] selectivity [5] fluctuating [6] figure and ground [7] contour

सम्बन्ध रखती है, पृष्ठभूमिसे नहीं। एक परिचित मामलेमें, जिसमें एक वस्तु अपनी पृष्ठभूमिसे उभरती-सी, आंखोंको खींचती-सी दिखायी देती है, आधार आकृति के पीछेतक फैला हुआ दिखायी देता है, और वास्तवमें यही बात है भी। किन्तु एक अन्य परिचित मामलेमें, जब कि निरीक्षक खिड़की के परदे में से होकर दूर पर स्थित किसी वस्तुको देख रहा होता है, तब पृष्ठभूमि आकृतिके सामने फैली हुई दिखाई देती है। एक तीसरे मामलेमें आकृति और पृष्ठभूमि वास्तवमें एक ही स्तर पर होते हैं; यह बात केवल चित्रोंके विषयमें सही नहीं है, बल्कि उन ऊल-जलूल रेखाकृतियोंके बारेमें भी सही है, जिनका उपयोग मनोवैज्ञानिक इस मामलेकी छान-बीन
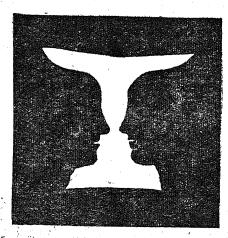
आकृति ९१. उत्क्राम्य आकृति और पृष्ठभूमि [रूबिन, ८]।

करनेमें करते हैं। वे इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यदि आकृतिका कोई दृश्य रूप है, तो वह परिचित हो, या न हो, कोई बात नहीं। यदि आकृति सघन[1] है तो वह स्पष्ट रूपसे अलग मालूम पड़ेगी, किन्तु यदि उसका कोई निश्चित समग्र रूप हो, जिसमें उसके सभी अंग आबद्ध हों, तो वह तुलनात्मक रूपसे बड़ी भी मालूम हो सकती है। स्वयं आधारके भीतर कोई आकृति हो सकती है, विशेषकर दीवाल पर मढ़े हुए काग़ज़की-सी आकृति, किन्तु यह पूर्णतया मुख्य आकृतिसे गौण होती है। कुछ चित्रोंमें आकृति और पृष्ठभूमि अपने स्थान सरलता से बदल लेते हैं—यह विवर्तन[2] का दूसरा उदाहरण हुआ। जब कभी ऐसा फेर-बदल होता है, तब चित्रका रूप बहुत परिवर्तित हो जाता है।

आकृति और पृष्ठभूमि केवल दृश्य-क्षेत्र तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि वे ध्वनि-संसार में भी दिखायी देते हैं। बहुधा अस्पष्ट और धीमी आवाज़ोंकी पृष्ठभूमिमें से एक व्यक्तिकी स्पष्ट व बुलन्द आवाज़ आकृतिके रूपमें अलग छँटी-सी मालूम पड़ेगी। संगीतमें भी रागसाज़ोंकी आवाज़की पृष्ठभूमिसे उभरता-सा मालूम होता है। साज़ोंकी सम्मिलित ध्वनिकी भी एक गौण मधुर आकृति होती है, जो संगीतके समग्र प्रभावको बढ़ाती है, किन्तु उसको इतना उभरने नहीं दिया जाता कि वह राग की प्रमुख आकृतिको ही दबा ले। इन निरीक्षणोंसे यह निश्चित जान पड़ता है कि आकृतिकी पहचान एक प्राकृतिक प्रक्रिया है, जो प्रत्यक्षीकरणमें महत्त्वपूर्ण भाग लेती है।

अंगोंको मिलाकर आकृतिकी रचना करना. जब दृश्य-क्षेत्र में 'निरर्थक उत्तेजनाओंका गड़बड़झाला' होता है, अर्थात् विभिन्न रंगों और चमक वाले बहुत-से धब्बे होते हैं, किन्तु उनमें परिचित वस्तुएं नहीं होतीं, तब इन धब्बोंको कई प्रकारसे विभिन्न रूपोंमें संयुक्त किया जा सकता है। कतिपय समूहीकरण तो स्वाभाविक होते हैं और सरल भी, किन्तु कुछ बहुत कठिन होते हैं। मनोवैज्ञानिक समस्या यह है कि समूहीकरण को सरल बनानेवाले तत्वोंको कैसे खोजा जाये। 'ध्यान' शीर्षक के अन्तर्गत हम पहिले जिस समस्याका सामना कर चुके हैं, उसीसे मिलती-जुलती यह समस्या भी है। यहां हम फिर 'उ–व्य प्र' सूत्रको अपना मार्गदर्शक बना सकते हैं और 'उ'–तत्वों (उत्तेजना तत्वों) और 'व्य'–तत्वों (या आभ्यन्तर तत्वों) की तलाश कर सकते हैं, जो कुछ निर्दिष्ट धब्बोंको एक आकृतिके रूपमें संयुक्त करनेकी प्रतिक्रियामें सहायता करते हों। इस प्रश्नके सम्बन्धमें प्रयोग करते समय मनोवैज्ञानिक बिन्दु-समूहों का बहुत इस्तेमाल करते हैं।

निम्नलिखित «उत्तेजना» सम्बन्धी तत्व पाये गये हैं (६, ११):

१. «निकटता[3]». जो बिन्दु एक साथ पास-पास होते हैं, वे सरलता से एक समूहमें संयुक्त किये जा सकते हैं; जो बिन्दु बहुत दूर स्थित होते हैं, उनको संयुक्त करना इतना सरल नहीं होता। दूरस्थ बिन्दु विभिन्न समूहोंमें सम्मिलित हो जाते हैं।

२. «समानता[4]». जो बिन्दु एक-से होते हैं, वे आसानीसे एक समूहमें लाये जा सकते हैं। यदि बिन्दु दो अलग आकारों या रंगोंके हों तो वे स्वभावतः दो समूहोंमें विभक्त हो जाते हैं।

३. «अविच्छिन्नता[5]». जो बिन्दु किसी सीधी रेखा या नियमित वक्ररेखा के सहारे स्थित होते हैं, वे उसी रूपमें संयुक्त हुए आसानीसे देखे जा सकते हैं।

ये तत्व दृश्य-क्षेत्रके साथ-साथ श्रवण-क्षेत्रमें भी काम करते हैं। एक ही समय यदि ढोल पर तीन चोटें थोड़े-थोड़े अन्तर से की जायें, तो उनकी आवाज़ एक समूहके रूपमें सुनी जाती है, किन्तु यदि तीनों काफ़ी देरका अन्तर देकर की जायें, तो वे

[1] compact [2] shifting [3] proximity [4] similarity [5] continuity

अलग-अलग मालूम पड़ती हैं। किसी 'सामूहिक संगीत[1]' को सुनते समय आप ऊँची ध्वनियोंको, या मन्द ध्वनियोंको, या एक ही वाद्ययंत्रसे बजायी गयी ध्वनि-श्रेणीको, या इसी तरह की समान ध्वनियोंकी श्रेणीको तुरन्त एक साथ मिला लेते हैं। यदि श्रेणीमें अविच्छिन्नता भी है, जैसे स्वरोंको ऊपर चढ़ाने या नीचे गिरानेमें, अथवा किसी नियमित ध्वनिके अनुसरण में, तो सम्भव है कि आप ऐसी श्रेणीको एक इकाईके रूपमें सुन सकें।

«अभ्यन्तर तत्व» या 'व्य'-तत्व क़रीब-क़रीब यहां भी वही हैं, जो ध्यान आकर्षित करनेमें पाये जाते हैं। पिछले अनुभव पर आधारित «आदत[2]» के कारण परिचित आकृतियों, जैसे वर्णमालाके अक्षरों या परिचित वस्तुओंकी शक्लोंको देखना आसान हो जाता है। «तत्परता[3]» चुनाव करनेमें एक तत्व है, जो आपको इस योग्य बनाता है कि जिन आकृतियोंकी आप तलाश कर रहे हैं, उन्हें देख सकें और जब किसी दूसरी वस्तु

क

ख

ग

आकृति ९२. बिन्दुओंका एकत्रीकरण, जिसमें निकटता, सादृश्य और अविच्छिन्नताका प्रभाव दिखाया गया है। प्रत्येक समूह पर दृष्टि डालकर देखिए कि कौन-सा समूहीकरण स्वाभाविक और सरल है। 'क' में २ और ३,४ और ५,६ और ७ आदि बिन्दुओंका समूह बनाना सम्भव है; किन्तु निश्चित रूपसे निकटताके प्रभावके वशीभूत होकर १ और २,३ और ४,५ और ६ आदि बिन्दुओंका समूहीकरण करना सरलतर है। 'ख' में सम्भवतः आप देखेंगे कि क़तारें या पंक्तियां असमान बिन्दुओंकी बनी हुई हैं, किन्तु समान बिन्दुओंकी पंक्तियां अधिक आसानीसे देखी जा सकती हैं। 'ग' में अविच्छिन्नताओंका प्रतिरोध करनेके लिए और तरंगाकार तथा नुकीली रेखाओंके वैकल्पिक भागों द्वारा निर्मित एक आकृति (डिज़ाइन) को वास्तवमें «देखनेके» लिए काफ़ी प्रयत्न करना पड़ेगा। (वर्थीमर, ११)।

की आप तलाश कर रहे हों, तब उन्हें उपेक्षित कर द। ये दोनों तत्व इस उक्तिके अन्तरगत हो जाते हैं: आप «सार्थक» आकृतियोंको देखते हैं, इसलिए कि या तो अपने पिछले अनुभवके कारण उन्हें देखनेकी आपकी आदत पड़ गयी है, या इस समय उनमें आपको कोई रुचि है। इनके अतिरिक्त एक सौन्दर्यात्मक तत्व[5] भी होता है। इसका पता इस तथ्यसे लगता है कि एक सम्मित[6] या आनन्ददायक आकृतिको आप देखते हैं, जब कि एक बेढंगी या अनियमित आकृतिकी आप उपेक्षा कर देते हैं। एक अन्य तथ्यसे भी इसका पता चलता है कि यदि असम्मिति[7] और दूसरे दोष बहुत स्पष्ट नहीं हुए तो उनकी भी उपेक्षा की जा सकती है। पियानो पर बजने वाला कोई राग, जो तनिक बेसुरा हो गया है, उस व्यक्तिको ठीक ही जँचेगा, जो विशेष-रूपसे अलोचना करना नहीं चाहता। किन्तु, जो आदमी स्वभावतः आलोचना करने वाला है, या इस समय आलोचना करनेकी मनोदशामें है, वह रागकी सुन्दरताको देखनेके बजाय उसकी त्रुटियोंको ही देखेगा। प्रत्यक्षीकरणमें «प्रबलीकरण[8]» का नियम कई तरहसे लागू होता है। जो चीज़ सार्थक होती है, उसको पुष्टि मिलती है और उस पर बल दिया जाता है तथा वह स्पष्टतर रूपमें पुनः सामने लायी जाती है; जो वस्तु आनन्ददायक होती है, वह पुष्ट[9] होकर अधिक आनन्ददायक बन जाती है; किन्तु जो वस्तु दोषपूर्ण है, उस पर भी ज़ोर दिया जा सकता है, और उसे और भी असन्तोषप्रद बना याजा सकता है। वह व्यक्ति, जो अत्यधिक आलोचना करने वाला है, वस्तुतः असन्तोषप्रद वस्तुमें भारी संतोष प्राप्त करेगा।

प्रच्छन्न आकृतियां—आच्छादन[10]. जब किसी भी कारण से एक ऐसी वस्तुको छिपाया जा रहा हो, जिसे लोगोंकी आंखोंके सामने खुला रहना चाहिए था, तब हमें उन तत्वोंको स्मरण रखना चाहिए, जो किसी आकृतिको सरलतासे दृष्टिगत कर देते हैं। एक छोटी आकृतिको पूर्ण सफलताके साथ एक बड़ी

आकृति ९३. अतिरिक्त रेखाओं द्वारा न्यूनाधिक रूपसे छिपाया हुआ एक षट्भुज। [हनावाल्ट, ४]।

आकृतिके, जिसकी विशेषताएं छोटी आकृतिकी विशेषताओंसे मेल नहीं खातीं, बीचोंबीच रखकर छिपाया जा सकता है। छोटी आकृतिमें यदि कुछ चीज़ें और जोड़ दी जायें तो उसका ढलाव[11] नष्ट किया जा सकता है, और उसकी कुछ भुजाओंको

[1] orchestra [2] habit [3] set [4] selectivity [5] aesthetic factor [6] symmetrical [7] asymmetry [8] reinforcement [9] reinforce [10] camouflage [11] slant

कोनोंसे केवल कुछ आगे बढ़ा दिया जाये, तो उसकी सुडौल, स्वच्छ रूप-रेखा नष्ट की जा सकती है।

किसी वस्तुकी रूपरेखा एक दूसरी तरहसे भी मिटायी जा सकती है, अर्थात् वस्तु और उसके इर्द-गिर्दकी चीज़ोंका वैषम्य हटाकर। सैनिककी इस्पातकी टोपीको उस क्षेत्रकी भूमिके रंग से मिलते-जुलते रंगसे रँगा जाता है। एक बड़ी वस्तु, जैसे जहाज़को इस प्रकार रंगा जा सकता है कि उसकी रूपरेखा आकर्षक हो उठे और स्वयं वस्तुसे बिल्कुल भिन्न जान पड़े। आजकल सेनामें यह नियम प्रचलित है कि आगे बढ़ते समय सैनिक कतार बांधकर न चलें, बल्कि छिट-पुट होकर चलें। इस नियमके लिए निकटता[1] का तत्व उत्तरदायी है। यह और भी अच्छा माना जाता है कि वे चट्टानों और झाड़ियोंसे अपनेको मिलाते हुए आगे बढ़ें, ताकि रूपकी कुछ समानताके साथ-साथ निकटताका लाभ भी वे उठा सकें। आपने देखा होगा कि जंगलोंमें रहने वाले पशुओं और घासोंमें रहने वाले कीड़े मकोड़ों का रंग प्रकृतिकी ओरसे उस वनस्पतिके अनुसार ही मिला होता है, ताकि वे अच्छी तरह अपनेको छिपा सकें (१,३)।

निरीक्षण की यथार्थता और अयथार्थता

प्रत्यक्षीकरण कभी-कभी निश्चित और सरल होता है, कभी कभी अनिश्चित और कठिन होता है। आप इसके सदा बिल्कुल सही होनेकी आशा नहीं कर सकते। कभी-कभी ज्ञानेन्द्रियों[2] द्वारा प्राप्त उत्तेजनाएं द्व्यर्थक होती हैं और उनसे आप वस्तु को ठीक-ठीक नहीं पहचान सकते, तथा कभी-कभी दो वस्तुएं इतनी समान होती हैं कि आप निश्चयपूर्वक उन्हें अलग-अलग नहीं कर सकते। यदि दो व्यक्तियोंकी ऊंचाईमें कई इंचोंका अन्तर है, तो आपके लिए यह बताना आसान होगा कि दोनों में से कौन अधिक लम्बा है, किन्तु यदि अन्तर केवल आधा इंचका हो तो यह बताना कठिन हो जायेगा कि कौन किससे लम्बा है। दो वस्तुओंको अलग करके बतानेको या किसी अन्तर का निरीक्षण करनेको «विवेचन[3]» कहा जाता है। जब अन्तर अधिक होता है, तब विवेचन सरल होता है, किन्तु अन्तर कम होने पर यह कठिन होता है। विवेचन-परीक्षामें निरीक्षक को दो वस्तुएं दिखायी जाती हैं और पूछा जाता है कि बताओ, कौन-सी वस्तु अधिक बड़ी है; या दोनोंमें से किसका रंग अधिक गहरा है; या वह उनको बारी-बारीसे उठाता है और बतानेकी चेष्टा करता है कि दोनोंमें से कौन-सी वस्तु ज़्यादा भारी है। इसमें उद्देश्य यह मालूम करना रहता है कि आकार या रंग या वज़नका कितना थोड़े-से-थोड़ा अन्तर भी प्रत्यक्षीकरणके द्वारा मालूम कर लिया जा सकता है—या कितनी यथार्थता[4] से ऐसे अन्तरोंका निरीक्षण किया जा सकता है। निरीक्षणकी यथार्थताके लिए ली जाने वाली परीक्षाओंका यह एक रूप है।

दूसरी तरहकी परीक्षामें व्यक्तिको एक वस्तु दी जाती है और उसे पहचानने, उसकी किस्म बताने, उसके आकार और वज़न आदिका अन्दाज़ करनेके लिए कहा जाता है। उस को लकड़ीका एक नमूना दिखाकर पूछा जा सकता है कि यह बांझ, शीशम, साखू, चीड़, आबनूस या आममें से किसकी लकड़ी है। यहां उसे अपनी ज्ञानेन्द्रियोंके साथ-साथ अपनी स्मृति पर भी निर्भर रहना पड़ेगा। यही बात तब होगी, जब उस से एक रेखाकी लम्बाई इंचोंमें, एक वस्तुका वज़न सेरोंमें या कमरे का तापमान तापांकों (डिग्रियों) में नापनेके लिए कहा जायेगा।

चाहे निरीक्षकको किसी एक वस्तुका आकार «बताने» को कहा जाये, या एक वस्तुसे दूसरी वस्तुका «विवेचन करने» के लिए कहा जाये, यदि कार्य कठिन है तो वह निश्चय ही भूलें करेगा। इन भूलोंमें मनोवैज्ञानिक विशेष रुचि लेते हैं, क्यों कि वे इनका उपयोग निरीक्षककी यथार्थता या अयथार्थता मालूम करनेमें करते हैं। भूलोंका निर्णय करनेके लिए मनोवैज्ञानिकके पास एक अच्छा तापमापक यंत्र (थर्मामीटर) होना चाहिए, जिससे वह ठीक ताप बता सके; या एक अच्छी तराजू होनी चाहिए, जिससे ठीक वज़न बताया जा सके, या किसी तरह का अच्छा मापक यंत्र होना चाहिए। मनुष्यके कौशलसे इन यंत्रों का निर्माण हुआ है, और सही निरीक्षणके कार्यमें ज्ञानेन्द्रियोंको इनसे सहायता मिलती है। मनोवैज्ञानिक इन औज़ारोंका उपयोग तथ्य-निर्धारणके लिए करता है, फिर वह जानना चाहता है कि बिना इन औज़ारोंकी सहायताके तथ्योंका कितना सही-सही निरीक्षण किया जा सकता है। मनोवैज्ञानिकको भूलों में रुचि लेनी पड़ती है; क्योंकि मान लीजिये कि कोई निरीक्षक एक परीक्षामें बिना एक भी भूल किये उत्तीर्ण हो जाता है, इसका मतलब यह होगा कि परीक्षा निरीक्षकके लिए बहुत आसान साबित हुई। वह कितनी कुशलता दिखा सकता है, इसका पता हमें तबतक नहीं लग सकता, जब तक हम उसकी अधिक कठिन परीक्षाओंमें जांच न करें, जिनमें वह भूलें करना शुरू कर देता है। खेलोंमें ऊंची कुदानके साथ भी यही बात होती है। हम पहिले डंडेको काफ़ी नीचा रखते हैं, फलतः खिलाड़ी हर बार उसे सफ़ाईसे कूद जाता है। उसके ऊंचे उछलनेकी शक्तिको मापनेके लिए हम डंडेको क्रमशः ऊपर उठाते जाते हैं और तबतक उठाते रहते हैं जबतक खिलाड़ी भूलें करना शुरू नहीं कर देता। किसी भी योग्यताको मापने में सफलताओं और असफलताओं—दोनों पर विचार करना चाहिए।

[1] proximity [2] senses [3] discrimination [4] accuracy

आकृति ६४. प्रच्छन्नता
[फ़ोटो : संयुक्त राज्य अमेरिकाके 'आर्मी सिगनल कोर' द्वारा]।

संख्याका प्रत्यक्षीकरण—ग्रहण-शक्तिका विस्तार[1]. डंडे की ऊंचाई, जिसे कूदनेवाला खिलाड़ी मुश्किलसे ही पार कर सका है, उसकी 'ऊंची कुदानका विस्तार[2]' कही जा सकती है। यह उसकी सीमा है। एक बार के प्रत्यक्षीकरण में कोई निरीक्षक कितनी सामग्रीको ग्रहण कर सकता या समझ सकता है, इसकी भी एक सीमा होती है। इस सीमा को उसकी

आकृति ६५. प्रत्येक संग्रह के बिन्दुओं को एक ही नजर में देखना या अनुमानित करना है।

«ग्रहण-शक्तिका विस्तार[3]» कहेंगे। जिस सामग्रीको वह ग्रहण करना चाहता है, उसमें एक ही जाति की वस्तुएं भी हो सकती हैं, जैसे मेज पर रखी हुई नारंगियां। आप उनकी ओर देखते हैं और कहते हैं कि वे 'बहुत-सी हैं', या 'कई हैं' या 'थोड़ी-सी' हैं। मनुष्य ने बहुत पहिले ही माप का एक अच्छा तरीक़ा ढूंढ़ निकाला था, अर्थात् गिनकर ठीक संख्या मालूम करना। किन्तु हम तो यह जानना चाहते हैं कि बिना गिनती किये हुए, सामने रखी वस्तुओं पर ध्यान से एक नजर डालकर ही आप कितनी यथार्थता से उनकी संख्या बता सकते हैं। यह मनोविज्ञानका एक सबसे प्रचीनतम प्रयोग है, जो पहिले बहुत भोंडे उपकरणोंसे किया जाता था। हम एक तश्तरीमें कुछ कंकड़ रखते हैं। आप उनपर एकदृष्टि डालकर उनकी संख्या बताते हैं और हम देखते हैं कि आप अपने निरीक्षणमें कितने
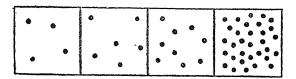
[1] the perception of number—the span of apprehension

[2] high-jump span

[3] span of apprehension

सही रहे हैं। यदि कोई भूल करने की छूट न हो, तो विस्तार ५ या ६ के लगभग होता है।

प्रयोगशालामें हमारे पास एक औज़ार होता है, जिसके द्वारा एक कार्डको १/१० सैकेंड या उससे भी कम समय तक प्रदर्शित किया जा सकता है। यह समय बस एक झलक पाने भरके लिए ही पर्याप्त होता है, कार्डको अच्छी तरह देखने और उसकी बुंदकियोंको गिननेका समय नहीं मिलता। प्रयोगकर्ताके पास अलग-अलग बुंदकियोंकी संख्यावाले कार्ड होते हैं, जिन्हें वह एक-एक करके दिखाता है। परिक्षार्थी कार्डकी बुंदकियोंको देखने या कमसे कम उनकी संख्याका अन्दाज़ लगानेकी कोशिश करता है। यदि कार्ड पर २, ३ या ४ ही बुंदकियां होती हैं, तो वह हर बार सही संख्या बता देता है। बुंदकियोंकी संख्या ५ रहने पर वह कभी-कभी भूल कर बैठता है; आगेकी संख्याओंके साथ भूलें क्रमशः बढ़ती रहती हैं, यहां तक कि १२ के पास तक पहुंचते-पहुंचते संख्या का ठीक प्रत्यक्षीकरण बिल्कुल असम्भव हो जाता है और निरीक्षक केवल अन्दाज़ कर सकता है। विस्तार[१] बिल्कुल निश्चित परिमाण नहीं होता, बल्कि व्यक्ति-व्यक्तिमें, तथा एक ही व्यक्ति में, क्षण-क्षण पर यह बदलता रहता है। कभी-कभी तो निरीक्षक निश्शंक होकर कह देता है कि बुंदकियों की संख्या ८ है, न कम न अधिक; किन्तु कभी-कभी उसे निश्चय नहीं रहता कि संख्या ६ है या ७ या ८। किन्तु बिना गिने हुए कोई भी निरीक्षक ८ जितनी बड़ी संख्या को कैसे ग्रहण कर सकता है? ऐसा लगता है कि अधिकतर वह «समूहीकरण[२]» के द्वारा ऐसा कर पाता है। जब केवल ३ या ४ बुंदकियां होती हैं, तब वे एक समूह बना लेती हैं; जब ७ या ८ बुंदकियां होती हैं, तब वे दो समूहोंमें बंट सकती हैं। जब तक वे तुरन्त छोटे समूहोंमें बंटी हुई न दिखायी दे जायें तबतक निरीक्षक ५ से बड़ी किसी भी संख्या को एक ही दृष्टिमें ग्रहण नहीं कर सकता (७)। अर्थात् वह उसे स्पष्टतया और ठीक-ठीक नहीं ग्रहण कर सकता। पूरी तरह ठीक उतरनेकी आशा किये बिना ही वह संख्याका हिसाब लगा सकता है; संख्या जितनी बड़ी होगी, उतनी ही अधिक भूलें करने की वह आशा करेगा और साधारणतः उतनी ही अधिक भूलें करेगा भी। यह कहने के बजाय कि '५४ या ५५ बुंदकियां हैं', वह यह कहेगा कि '५०-६० के लगभग बुंदकियां हैं'।

यदि प्रदर्शित सामग्री बुंदकियोंके बजाय अक्षर हों, तो ३ या ४ अक्षर एक ही नज़र में पढ़े जा सकते हैं। यदि अक्षर परिचित शब्दों के रूपमें संयुक्त करके दिखाये जायें, तो एक नज़र में २ या ३ शब्द पढ़े जा सकते हैं; और यदि शब्द किसी परिचित वाक्यांश के रूपमें संयुक्त करके प्रदर्शित किये जायें, तो पूरा का पूरा वाक्यांश जिसमें २० अक्षर तक हो सकते हैं, बहुधा एक नज़र में पढ़ लिया जाता है। साधारण पठन की भांति इस प्रयोगमें भी अलग-अलग अक्षरोंके बजाय अक्षरोंके समूह ही देखे जाते हैं।

स्थिर[३] और परिवर्तनशील[४] भूलें. यदि १२ बुंदकियों के संग्रह दिखाये जाय (छोटे-बड़े सभी तरहके संग्रह इसमें रहेंगे), तो निरीक्षक १२ बुंदकियों वाले संग्रहोंका अन्दाज़ करने में भिन्नता प्रकट करेगा—सम्भवतः ६ से १३ तक वह संख्याएं बतायेगा। इस तरह में वह «परिवर्तनशील भूल» प्रदर्शित करता है। सम्भावना इसी बातकी है कि वह संख्या को अधिक बतानेके बजाय कम बतायेगा, अर्थात् वह «स्थिर भूल[५]» दिखायेगा। निरीक्षणकी उसकी भूलोंको इन दो वर्गोंमें विभाजित किया जा सकता है, जैसे कि किसी लक्ष्य पर निशाना लगाते समय निशानेबाज़की भूलोंको इन दो वर्गों में बांटा जाता है। उसके निशानोंका बिखराव[६] परिवर्तनशील भूलके अन्तर्गत रखा जाता है, और ठीक लक्ष्यके दाहिने या बायें, ऊपर या नीचे अधिकतर निशाना लगानेकी भूलको स्थिर भूलके अन्तर्गत। परिणामोंका ज्ञान करके अभ्यास करनेसे स्थिर भूलका सरलतासे निराकरण किया जा सकता है, किन्तु प्रत्यक्षीकरण या किसी अन्य क्रियाकी परिवर्तनशील भूलको कभी भी पूरी तरहसे दूर नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह प्राणीमें जन्मजात होती है। फिर भी काफ़ी अभ्यासके बाद इस भूलको कम किया जा सकता है।

कभी-कभी स्थिर भूलें काफ़ी अधिक होती हैं और वे परिस्थितियोंके अनुसार बदलती रहती हैं। एक मिनट, जिसके समाप्त होने की प्रतीक्षा आप बहुत आतुरता के साथ कर रहे होते हैं (जैसा कि अपना तापमान लेते समय होता है), असाधारण रूपसे लम्बा मालूम होता है; किन्तु आप यदि समयाभावकी स्थितिमें काम कर रहे हैं, तो एक मिनट बहुत छोटा मालूम पड़ता है (परीक्षाओंमें प्रायः ऐसा होता है)। जब 'पीरियड' खत्म होनेका घंटा बजता है, तब प्रोफ़ेसर को एक धक्का-सा लगता है और वह सोचता है कि घंटा बजाने में चपरासी ने अवश्य जल्दी कर दी है, किन्तु उसकी कक्षा के कुछ विद्यार्थी न जाने कितनी देरसे अपनी घड़ियोंमें 'पीरियड' खत्म होने के मिनट गिनते होते हैं! एक अदालतमें जब किसी गवाहसे पूछा जाता है कि अमुक घटनामें कितना समय लगा था, तब वह बहुत ग़लत-सलत समय बता सकता है। वह निर्दिष्ट समयका अधिक अन्दाज़ लगायेगा या कम, यह इस बात पर निर्भर होता है कि घटना को घटित होते देखते समय उसकी इच्छा और अभिवृत्ति कैसी थी। किसी घटना के होने के लिए जब बहुत आतुर होकर प्रतीक्षा की जा रही हो, तब एक मिनट इतना लम्बा मालूम होता है, जितना पूरे पांच मिनट।

[१] span [२] grouping [३] constant [४] variable [५] constant error [६] scatter

वेबरका नियम[१]. किसी संग्रह (ढेर) के धब्बों या कंकडों या नारंगियोंका हिसाब लगाने में आप कभी अधिक हिसाब लगाने की स्थिर भूल करेंगे और कभी कम हिसाब लगाने की, या किसी अन्य प्रकार की, क्योंकि स्थिर भूलें प्राय: पहिले से निश्चित रूप से नहीं बताई जा सकतीं और वे विशेष परिस्थितियोंके अधीन होती हैं। किन्तु परिवर्तनशील भूलके बारे में इतना तो कम से कम पहिले से बताया जा सकता है कि यह वस्तुओंकी संख्यामें वृद्धि होने के साथ बढ़ती जाती है। इसी प्रकार, किसी वस्तु को उठाकर उसका वज़न अन्दाज़ने में यदि वस्तु का बोझ कई सेर हो, तो आपके द्वारा बड़ी भूल होने की सम्भावना रहेगी, और यदि वस्तु कुछ छटांक ही भारी हो, तो छोटी भूल होने की। यदि कोई रेखा एक या दो इंच ही लम्बी हो, तो उसकी लम्बाई का अन्दाज़ करने में आप एक इंच के किसी अंश की ही ग़लती करेंगे, किन्तु यदि रेखा एक फ़ुट लम्बी हो, तो आप उसकी लम्बाई का अन्दाज़ करने में कुछ इंचों की भूल कर जायेंगे। यदि रेखा २० फ़ुट लम्बी हो तो यह भूल कई फ़ुटों की हो जायगी। एक इंच का अन्दाज़ करने में आप जितनी परिवर्तनशील भूल[२] करते हैं, एक फ़ुट का अन्दाज़ करने में उससे लगभग १२ गुनी भूल करते हैं। इसी तरह एक फ़ुट का अन्दाज़ करने में की हुई भूल से २० फ़ुटों का अन्दाज़ लगाने में की हुई भूल लगभग २० गुनी होती है। «वेबर के नियम के अनुसार, अन्दाज़ करते समय होने वाली परिवर्तनशील भूल जिस परिमाणका अन्दाज़ करना है उससे एक निश्चित अनुपात रखती है»। फिर भी यह प्रसिद्ध नियम अक्षरश: सही होने के बजाय क़रीब-क़रीब ही सही है। बहुत छोटे परिमाणों में (जैसे १ इंच का १/३२) जिसमें अन्दाज़ की भूल अपेक्षाकृत (निरपेक्ष रूप से नहीं) बड़ी होती है, यह नियम लागू नहीं होता। इन बहुत छोटे परिमाणों की बात यदि छोड़ दें तो यह नियम एक व्यावहारिक मार्गदर्शक होने के लिए लगभग पर्याप्त रूप से ठीक है। अच्छा निरीक्षक भी लगभग २० फ़ुट की लम्बाई को निकटतम इंच तक सही-सही नहीं आंक सकेगा, उससे इस तरह की किसी यथार्थता की आशा करना बेतुका होगा, हालांकि वह १०-१५ इंचों की लम्बाई वाली किसी चीज़ को निकटतम इंच तक सरलता से आंक सकता है।

वेबर[१] के नियम का कई विभिन्न विधियों से वर्णन किया जा सकता है। अभी हमने जो विधि बतायी है, वह केवल एक अकेले परिमाणको आंकने में ही लागू हो सकती है। जब दो परिमाणों का विवेचन करना होता है, तब नियम यह सामान्य रूप ले लेता है: किसी भी विशेष प्रकार के प्रत्यक्षीकरण में, «समान सापेक्ष अन्तर (समान निरपेक्ष[३] अन्तर नहीं) समान रूपसे प्रत्यक्षीकृत हो सकते है या देखे जा सकते हैं»। इस नियम का इससे कुछ काम सामान्य वर्णन यह हो सकता है: किसी भी विशेष प्रकारके प्रत्यक्षीकरणमें, «कम से कम द्रष्टव्य अन्तर» कोई निर्दिष्ट निरपेक्ष परिमाण नहीं होता, वरन् «कुल परिमाण का एक स्थिर अंश होता है»। इसलिए लम्बाईमें कम से कम द्रष्टव्य अन्तर[४] एक इंच या एक फ़ुट या ऐसा ही कोई निरपेक्ष परिमाण नहीं होता, बल्कि (निरीक्षणकी सर्वोत्तम अनुकूल स्थितियों में) तुलना में आनेवाली रेखाओं की लम्बाई का लगभग १/५० होता है। वेबर के नियमके अनुसार, कम से कम द्रष्टव्य अन्तर तुलना में आये हुए परिमाणों के अनुलोम[५] अनुपात में बढ़ता है।

इस नियम के अनुसार, १० और ११ औंसों के दो वज़नों का अन्तर उतनी ही आसानी से देखा जा सकता है जितनी आसानी से १० और ११ पौंड़ों के बीच का अन्तर देखा जा सकता है। दोनों मामलोंमें अन्तर १० में १ भाग का (१/१० का) है। रोशनी के मामलेमें, २० और २१ की शक्ति के बल्बों के प्रकाश का अन्तर ठीक उसी तरह द्रष्टव्य होता है, जिस तरह ४०० और ४२० की शक्तिके बल्बों के प्रकाश का अन्तर। हर मामले में १/२० का अन्तर रहता है। १/१० का अन्तर रोशनी में वज़न की अपेक्षा अधिक सरलता से देखा जा सकता है; किन्तु यह तथ्य नियम के विपरीत नहीं जाता। नियम केवल प्रत्येक अलग तरह के परिमाण के विषयमें बताता है कि अन्तर को समान रूप से द्रष्टव्य[६] बनाने के लिए उत्तेजनाओंको परस्पर एक स्थिर अनुपात में रहना चाहिए।

वास्तव में विभिन्न «प्रकार» के परिमाण बहुत असमान यथार्थता[७] के साथ देखे जाते हैं। सम्भवत: चमकीलेपन का प्रत्यक्षीकरण सर्वाधिक यथार्थ होता है, क्योंकि अनुकूल दशाओं में यहां १/१०० का अन्तर देखा जा सकता है और भूलें भी बहुत कम होती हैं। रेखा की लम्बाई में १/५० के अन्तर का दृष्टिगत प्रत्यक्ष भली प्रकार हो जाता है, उठाये जाने वाले वज़नों में १/१० का प्रत्यक्ष, और ध्वनि की शक्ति में १/३ का।

वेबर के नियम की प्रामाणिकता की जांच करने के लिए जो सामग्री[८] प्रयुक्त हुई है, उसका एक उदाहरण हम यहां दे रहे हैं। यह चमकीलेपन का भेद मालूम करने का एक प्रयोग है। परीक्षार्थी अपने सामने श्वेत प्रकाशका एक गोला (बिम्ब) देखता है। इस गोले के ऊपरी और निचले अर्धांश दो अलग रोशनियों से प्रकाशित किये जाते हैं। निचले अर्धांश की चमक को स्थिर रखा जाता है, जब कि ऊपरी अर्धांश की चमक को प्रयोगकर्त्ता परिवर्तित करता रहता है; परीक्षार्थी इस परिवर्तित चमक की तुलना निचले बिम्बार्ध की चमक से करता है। प्रयोग-

[१] Weber's Law [२] variable error [३] absolute [४] least perceptible [५] direct [६] perceptible
[७] accuracy [८] data

कर्त्ता दोनों बिम्बार्धों में एक-सी चमक रखकर प्रारम्भ करता है, फिर क्रमश: ऊपरी बिम्बार्ध का प्रकाश बढ़ाता जाता है और तब तक बढ़ाता रहता है, जब तक परीक्षार्थी दोनों बिम्बार्धों के प्रकाशका अन्तर भांप नहीं लेता। प्रयोगकर्ता इसके बाद ऊपरी बिम्बार्धसे प्रारम्भ करता है, जो बहुत चमकीला होता है। धीरे-धीरे वह उसकी चमक को घटाता जाता है। यहां तक कि परीक्षार्थी दोनों बिम्बार्धोके प्रकाशमें कोई अन्तर नहीं देखता। यह परीक्षण तब तक दोहराया जाता है, जब तक औसत अन्तर न मालूम हो जाय। परीक्षार्थी इस औसत अन्तर को मुश्किल से ही देख सकता है। मान लीजिए कि निचले बिम्बार्ध की चमक की शक्ति १०० इकाई है, तो इस अन्तर की इकाइयां २ हैं; इस प्रकार केवल द्रष्टव्य[१] अन्तर आधारभूत चमक का ·०२ होता है। यह प्रयोग आधारभूत चमकके अन्य मानों[२] पर भी यह देखने के लिए लागू किया जाता है कि यह अंश[३] सभी मानों के लिए समान है या नहीं। वेबरके नियमानुसार यह अंश समान होना चाहिए। एक परीक्षार्थी से प्राप्त हुए परिणामों को हम निम्नलिखित तालिका में प्रस्तुत कर रहे हैं—

« मिलिलैम्बर्टों[४] के रूपमें आधारभूत चमक »	« आधारभूत चमकके अंश[३] के रूपमें केवल द्रष्टव्य अन्तर »
·०१	·३५
·१	·१३
१	·०५
१०	·०३
१००	·०२
१,०००	·०२
१०,०००	·०२
१,००,०००	·०३

यदि एक मेज़ पर पड़े हुए मोटे सफ़ेद काग़ज़ को मेजसे लगभग ३½ फ़ुट (१ मीटर) ऊपर रखे हुए १० की शक्तिके बल्ब से (जिसमें परावर्तक[५] न लगा हो) प्रकाशित किया जाय, तो उस काग़ज़ से जो चमक निकलेगी, वह एक मिलिलैम्बर्ट के बराबर होगी। (इस शास्त्रीय प्रयोग का प्रसंग ५ में पाया जा सकता है)।

वेबरका नियम प्रमाणित हो चुका है या नहीं? मध्यम श्रेणी[६] की ओर उच्च तीव्रताओं[७] तक ही अपने ध्यान को सीमित रखने पर हम देखते हैं कि अंश[३] लगभग स्थिर है, किन्तु निम्न-तीव्रताओंमें यह अपेक्षाकृत बड़ा होता है। अत: प्रकाश की मध्यम और उच्च तीव्रताओं के लिए वेबर का नियम लगभग सत्य है, किन्तु निम्न[८] तीव्रताओंमें यह टूट जाता है {क्योंकि शायद शंकुओं[९] (आंखों के अन्दर पाये जानेवाले सूक्ष्म अंग) के
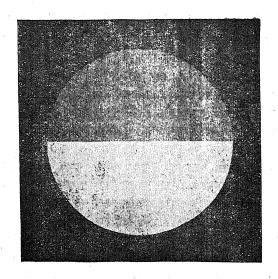
आकृति ९६. शुभ्रताके विवेचनके एक प्रयोगमें व्यक्ति यह देखता है : भिन्न शुभ्रता वाले दो अर्धवृत्त।

बजाय शलाकाएं[१०] (आंखों के अन्दर पाये जानेवाले सूक्ष्म अंग) ही निम्न तीव्रताओंकी स्थितिमें अधिकांश कार्य करती हैं, पृ० ४३८}। अन्य संवेदनाओंमें भी वेबरका नियम लगभग इतना ही प्रामाणिक है। यह सदा निम्न तीव्रताओंकी स्थितिमें टूट जाता है और मध्यम तथा उच्च तीव्रताओंकी स्थितिमें अच्छा काम देता है। सम्भवत: इस नियमका आधार शारीरिक है।

वेबरके नियमका व्यावहारिक महत्त्व बहुत है, विशेषकर वस्तुगत तथ्योंको, जैसे आकार, रूप और रंगको, देखनेमें आंखों का इस्तेमाल करने में यह बहुत काम आता है। कुछ दूरी से आते हुए दो व्यक्तियोंको आप देखते हैं, उनमेंसे एक दूसरेकी अपेक्षा ज़रा-सा लम्बा है। अभी जब वे काफ़ी दूर ही होते हैं, तब आपकी आंखोंमें वे छोटी आकृतियों के रूपमें आते हैं, किन्तु जैसे-जैसे वे निकट आते जाते हैं, उनकी आकृतियां बड़ी होने लगती हैं। उनके बीचका निरपेक्ष[११] अन्तर तो बढ़ जाता है किन्तु उनका सापेक्ष[१२] अन्तर ज्योंका त्यों रहता है। वेबरके नियम के अनुसार वे चाहे निकट हों या दूर, आपको पूर्ववत् ही दिखायी देते हैं—उनमेंसे एक, दूसरेसे कुछ बड़ा है। और उनका यह रूप वस्तुगत तथ्यसे मेल भी खाता है। एक दूसरा उदाहरण लीजिए : आप काफ़ी मन्द प्रकाशमें (परन्तु बहुत मन्द नहीं) साथ-साथ रखी हुई दो वस्तुओंको देखते हैं। दोनों मटमैले रंगके पदार्थ हैं, किन्तु एकका रंग दूसरेसे कुछ गहरा है। ज्यों ही प्रकाश बढ़ता है, दोनों मटमैले पदार्थ आपकी आंखों

[१] perceptible [२] values [३] fraction [४] millilamberts [५] reflector [६] moderate [७] intensities [८] low [९] cones [१०] rods [११] absolute [१२] relative

में अधिक प्रकाश प्रतिबिम्बित करते हैं, और जब कि सापेक्ष अन्तर वही रहता है, दोनों उत्तेजनाओंके बीचका निरपेक्ष[1] अन्तर बढ़ जाता है। वेबरके नियमानुसार, आप एक पदार्थको दूसरेकी अपेक्षा कुछ अधिक गहरे मटमैले रंगका देखना जारी रखते हैं—वस्तुगत दृष्टिसे ठीक भी यही है, क्योंकि प्रकाशकी मात्रामें परिवर्तन हो जानेके बावजूद दोनों मटमैले पदार्थ पहले जैसे ही रहते हैं। इस प्रकार वेबरका नियम कई वस्तुगत तथ्यों के प्रत्यक्षीकरणमें सहायक ही होता है, बाधक नहीं बनता। यदि दूसरे रूपमें देखें, तो वेबरका नियम अन्दाज़ और विवेचन की हमारी शक्तियोंकी सीमाओंकी ओर संकेत करता है। तारे दिनमें क्यों नहीं दिखायी देते? तारे तो अपने स्थान पर रहते ही हैं और वे हमारी ओर अपना प्रकाश दिनमें भी भेजते हैं, किन्तु दिवसकालीन आकाशकी पृष्ठभूमि इतनी चमकीली होती है कि तारे अद्रष्टव्य तेज प्रकाशके बिन्दु मात्र रह जाते हैं। वे आकाशकी चमकके द्वारा पूर्णतया प्रच्छन्न[2] कर दिये जाते हैं।

भ्रम[3]. जब कोई प्रक्रिया, चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक, ग़लत रास्ते पर जाने लगती है, तब उसकी भीतरी क्रिया-पद्धतियां उस समयकी अपेक्षा अधिक स्पष्टताके साथ व्यक्त होती हैं, जब वह प्रक्रिया सुचारु रूपसे चल रही होती है। अतएव हम भ्रमों[3] का अध्ययन करके प्रत्यक्षीकरणकी प्रक्रिया के सम्बन्धमें भी कुछ जान सकते हैं। भ्रम प्रत्यक्षीकरणकी एक भूल है। जितनी भूलोंके बारेमें हम पिछले पृष्ठोंमें पढ़ चुके हैं, उनको भ्रम कहा जा सकता है। किन्तु यह शब्द केवल उन्हीं भूलोंके लिए सुरक्षित रखा गया है, जो बड़ी और आश्चर्य-जनक होती हैं। जब हम अपनी ज्ञानेन्द्रियोंके सम्मुख उपस्थित वास्तविक तथ्योंके विषयमें ग़लत धारणा बनाते हैं, तब उसे भ्रम कहते हैं। उत्तेजना या तो सन्दिग्ध[4] होती है या गुमराह करनेवाली, और निरीक्षक उसके जालमें जा फंसता है और प्राप्त चिह्नका ग़लत अर्थ समझ लेता है। कुछ भ्रम तो बाह्य, भौतिक कारणोंसे उत्पन्न होते हैं, और कुछके कारण शरीरके भीतर उपस्थित होते हैं।

१. «भौतिक कारणोंसे उत्पन्न भ्रम». दर्पण और प्रति-ध्वनिसे उत्पन्न होनेवाले भ्रम अच्छे उदाहरण हैं। दोनों इस दृष्टिसे समान हैं कि एक प्रकाशके प्रत्यावर्तनके कारण उत्पन्न होता है, तो दूसरा ध्वनिके प्रत्यावर्तनके कारण। दर्पणमें प्रति-बिम्बित वस्तु दर्पणके पीछे खड़ी हुई लगती है, क्योंकि वास्तव में उसी दिशासे प्रकाश आपकी आंखोंमें आता है; और प्रति-ध्वनि ऐसी लगती है मानो झीलके उस पार खड़े किसी व्यक्ति की ध्वनि हो, क्योंकि वास्तवमें ध्वनि उसी दिशासे आपके पास पहुंचती है। ये भौतिक भ्रम केवल इसीलिए मनोवैज्ञानिक रुचिके हैं कि हम «उन पर विजय पाना सीखते हैं» और गुमराह करनेवाली उत्तेजनाओंके बावजूद वास्तविक तथ्योंको देखना सीखते हैं। हम पोशाक पहनने और कार चलानेमें भी दर्पणका अच्छा इस्तेमाल करते हैं। फिर भी, छिपाये हुए दर्पण हमें मूर्ख बना ही सकते हैं।

२. «आदत और परिचयके कारण उत्पन्न भ्रम». आप एक खास वास्तविक तथ्यके चिह्नके रूपमें एक खास उत्तेजना (या उत्तेजनाओंके समूह) को इस्तेमाल करनेके आदी हो गये हैं। साधारणतः आपका प्रत्यक्ष ज्ञान सही होता है, किन्तु यह उस समय ग़लत हो सकता है, जब आप साधारण उत्तेजनासे मिलती-जुलती कोई दूसरी उत्तेजना प्राप्त करते हैं, क्योंकि उस दशामें वास्तविक तथ्य भिन्न हो सकता है। इस तरहका एक भ्रम अरस्तू[5] (३३० ई० पू०), जिसने मनोविज्ञान पर सर्वप्रथम पुस्तकें लिखीं, के समयमें मालूम किया गया था। दो उंगलियोंको व्यत्यस्त रूप[6] में (कैंचीकी तरह) एक-दूसरे पर रखिए और उस व्यत्यस्त भागसे एक पत्थरकी गोलीका स्पर्श कीजिए, आपको लगेगा कि आप दो गोलियोंको छू रहे हैं। पत्थरकी गोलीके स्थान पर आप पेंसिलको इस्तेमाल कर सकते हैं। यदि उंगलियां अपनी साधारण स्थितिमें होतीं, तो इस प्रकारकी उत्तेजना एक वस्तुसे नहीं, दो वस्तुओंसे ही प्राप्त हो सकती थी।

इस तरहका एक दूसरा भ्रम 'प्रूफ़रीडरका भ्रम' कहलाता है, हालांकि पेशेवर प्रूफ़रीडर इस भ्रमका शिकार औरोंकी अपेक्षा कम होता है। प्रूफ़ पढ़ते समय प्रायः यह असम्भव हो जाता है कि शब्दविन्यास[7] की प्रत्येक ग़लती या टाइप-सम्बन्धी अन्य भूलोंको पूरी तरह लिया जाय। लगभग प्रत्येक पुस्तकमें प्रूफ़-सम्बन्धी कुछ न कुछ ग़लतियां रह ही जाती हैं, हालांकि कई आदमियोंसे प्रूफ़ दिखानेकी कोशिश की जाती है। यदि छापेकी भूल वाला शब्द सही शब्दसे काफ़ी मिलता-जुलता हैं, तो वह वही प्रतिक्रिया पैदा करता है और पाठक ठीक भाव समझकर, सन्तुष्ट होकर आगे बढ़ जाता है।

३. «तत्परता[8] और आशा या प्रतीक्षा[9] से उत्पन्न भ्रम». जब आप किसी तथ्यको देखनेके लिए बिल्कुल तैयार होते हैं, तब उस तथ्यके चिह्नोंके रूपमें बहुत अपर्याप्त उत्तेजनाओं को भी स्वीकार कर सकते हैं। एक पागल आदमी एक पुरानी कुर्सीके चरचरानेकी आवाज़के ही अपने लिए गाली समझ लेता है। वह किसीसे गाली पानेकी ही आशा करता है, क्योंकि उसके मनमें पहलेसे ही यह सन्देह भर गया होता है। बहुधा बिल्कुल स्वस्थ[10] व्यक्तिमें भी इसी तरहके क्षणिक

[1] absolute [2] camouflaged [3] illusions [4] ambiguous [5] Aristotle [6] cross [7] spelling [8] set [9] expectancy [10] normal

आकृति ९७. अरस्तूका भ्रम।

भ्रम कुछ नरम रूपमें उपस्थित रहते हैं। अपनी किसी खोयी वस्तुकी तलाश करते समय यदि आप उसी तरहकी किसी वस्तुकी झलक पा जाते हैं, तो ग़लतीसे उसे अपनी वस्तु समझ लेते हैं। कोई माता, जिसका बच्चा ऊपरी मंजिलमें सो रहा हो तथा जो हर समय बच्चेकी ओर ध्यान लगाये हो, बाहर किसी बिल्लीको बोलते सुनकर भी ऐसा ही सुनती है, मानो उसीका बच्चा रो रहा हो। भूत-प्रेत और चोर देखना भी इसी श्रेणीके भ्रम हैं।

४. «अविश्लिष्ट समग्र प्रभावके कारण उत्पन्न भ्रम». बहुधा प्राप्त उत्तेजनाएं इतनी जटिल[1] होती हैं कि आप जिस वास्तविक तथ्यको देखना चाहते हैं, उसे वे छिपा लेती हैं। वास्तविक तथ्य केवल विश्लेषण करने और विस्तृत बातोंको ध्यानसे देखने पर ही जाना जा सकता है। किन्तु यह प्रक्रिया इतनी श्रमसाध्य होती है कि हर व्यक्ति इससे बचना चाहता
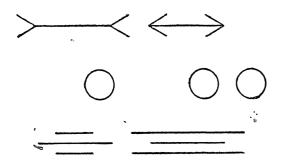
आकृति ९८. म्युलर-लायरके भ्रमके कई रूपोंमें से तीन रूप। ऊपरी आकृतिमें दो समस्थ रेखाओंकी तुलना लम्बाई की दृष्टिसे करनी है। दूसरी आकृतिमें, पहिले और दूसरे वृत्तोंके बीचकी खुली जगहकी तुलना दूसरे और तीसरे वृत्तों द्वारा घेरी हुई जगहसे करनी है। तीसरी आकृतिमें दो मध्य रेखाओंकी लम्बाइयोंकी तुलना करनी है। उपर्युक्त छओं लम्बाइयां वस्तुतः बराबर खींची गयी हैं।
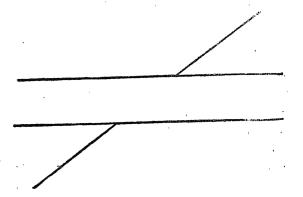
आकृति ९९. पोगेनडॉर्फ़का भ्रम। क्या दोनों तिरछी रेखाएं एक ही सीधी रेखाके टुकड़े हैं?

है। इस शीर्षकके अन्तर्गत मनोवैज्ञानिकों द्वारा तैयार किये गये भ्रमोंकी एक पूरी फ़ौज आ जाती है। कोई आकृति इस तरहसे खींची जाती है कि निरीक्षक जिस तथ्यको देखना चाहता है, उसको खोज निकालना उसके लिए कठिन हो जाता है। इस सम्बन्धका एक प्रसिद्ध उदाहरण म्यूलर-लायर[2] आकृति है: दो ठीक बराबर रेखाएं या दूरियां समग्र आकृति में इस प्रकार रख दी जाती है कि निरीक्षक भ्रममें पड़ जाता है। दो खास रेखाओंकी तुलना करना चाहते हुए, इस बातकी सम्भावना है कि वह सारी आकृतिको ध्यानमें रखे और उन खास रेखाओंकी तुलना करनेके बजाय बड़े-बड़े समूहोंकी तुलना करने लगे। इस तरहके भ्रम[3] शिल्पियों और पोशाकोंके नमूने तैयार करनेवालोंके लिए व्यावहारिक महत्त्वके होते हैं। कोई तिरछी[4] रेखा या किसी भी तरहकी जटिलता निश्चित रूपसे किसी वस्तुके प्रत्यक्ष अनुपातोंको बदल देती है। पोशाकमें या मकानके अग्र-भागोंमें अतिरिक्त रेखाओं द्वारा चौड़ाईका प्रभाव[5], लम्बाईका प्रभाव[6], या एक ओरको झुका हुआ प्रभाव[7] उत्पन्न किया जा सकता है।

निरीक्षण की उन्नति

किस तरह एक अच्छा निरीक्षक बना जाय, यह एक महत्त्व-पूर्ण प्रश्न है। इसके लिए जिस पहली चीज़ पर हमारा ध्यान जाना चाहिए, वह है चुनाव[8] का नियम। कोई भी व्यक्ति प्रत्येक वस्तुका निरीक्षण नहीं करता और न यह उसके लिए सम्भव ही है; फिर भी काफ़ी चीज़ें एक क्षणमें भी देखी जा सकती हैं। अच्छा निरीक्षक होनेका अर्थ यह है कि सबसे

[1] complex [2] Muller-Lyer [3] illusions [4] oblique [5] broad effect [6] long effect [7] lopsided effect
[8] selectivity
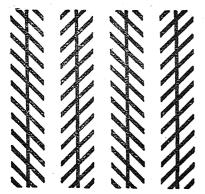
आकृति १००. ज़ोएलनरका भ्रम। लम्बी रेखाएं वास्तव में समानान्तर हैं। यदि आप इस पृष्ठको तिरछी स्थितिमें रखें, तो भ्रममें वृद्धि होगी। तिरछी रेखाओंकी अपेक्षा समस्थ और ऊर्ध्व रेखाओंके विषयमें 'आंखोंको धोखा देना' अधिक कठिन है।

यदि आप पृष्ठको समतल पर रखें और तिरछी रेखाओंके सहारे-सहारे देखें, तो आपको एक त्रि-वैम स्वरूप दिखाई देगा।

पहिले सर्वोत्तम दर्शनीय वस्तुका निरीक्षण किया जाय। यह वस्तु व्यक्ति-व्यक्तिके साथ और समय-समय पर अलग-अलग होती है। चूंकि निरीक्षणके लिए ध्यान[1] की आवश्यकता होती है और ध्यान रुचि[2] पर निर्भर होता है, इसलिए स्पष्ट हो गया होगा कि अच्छे निरीक्षकको किसी उपयुक्त वस्तुमें रुचि रखनी चाहिए। अतः सबसे उपयुक्त वस्तुमें रुचि उत्पन्न करना और इस विषयमें कुछ विचार करना अच्छा है। उदाहरणके लिए, जब दो आदमी साथ-साथ रहते या काम करते हों, तो हर आदमीके लिए यह देखना ठीक रहेगा कि दूसरा व्यक्ति प्रसन्नता या अप्रसन्नताको किन चिह्नोंसे प्रकट करता है, जैसा कि बहुधा दो निकट सहयोगियों में हुआ करता है, 'ध्यान न देनेकी आदत' डाल लेना ऐसे मामलेमें उपयुक्त नहीं होता।

जब आप यह निश्चय कर लेते हैं कि आपको किस वस्तुके निरीक्षणकी आवश्यकता है, तब आप उस वस्तुके निरीक्षणमें अभ्यासके द्वारा उन्नति भी कर सकते हैं। 'परिणामोंके ज्ञान' के साथ किया हुआ अभ्यास विशेष मूल्यवान् होता है। इसका तात्पर्य यह है कि आपको अपने निरीक्षणोंकी सत्यता की जांच करते रहना चाहिए, जिससे आप सफल विधियोंको पुष्ट कर सकें और शेषका बहिष्कार कर सकें। उदाहरण स्वरूप, हालांकि यह कोई महत्त्वपूर्ण उदाहरण नहीं है, आप नित्य प्रातः तापमानका अन्दाज कर सकते हैं और तापमापक द्वारा भी अपने अन्दाजके सही होनेकी जांच कर सकते हैं; इस प्रकार इस विशिष्ट प्रकारके निरीक्षणमें आप काफ़ी योग्यता प्राप्त कर लेंगे। इस तरहके किसी भी विशिष्ट प्रशिक्षणसे आप साधारणतः अच्छे निरीक्षक, हर चीज़के अच्छे निरीक्षक बन सकते हों, यह सन्देहास्पद है। इसके बजाय जान तो यह पड़ता है कि विशिष्ट रुचियों और विधियों पर निर्भर हर तरह के निरीक्षणके लिए अलगसे प्रशिक्षा लेनी आवश्यक है। फिर भी अच्छे निरीक्षणके कुछ नियम हैं, जिन्हें भ्रमों[3] और वैज्ञानिक निरीक्षकोंका अध्ययन करके सीखा जा सकता है।

भ्रमों[3] के अध्ययनसे प्राप्त निष्कर्ष. विभिन्न श्रेणियोंके भ्रमों[3] का अध्ययन करनेके पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि निम्न कोटिके निरीक्षणके लिए इतनी बातें उत्तरदायी हैं: (१) गुमराह करनेवाली उत्तेजनाएं; (२) आदतका असर, और नये प्रभावोंकी उपेक्षा; (३) पहिलेसे ही मनमें बैठी हुई कोई बात या पूर्वधारणा और (४) समग्र या सामान्य प्रभावों से सन्तुष्ट हो जाना। किसी भी अच्छे निरीक्षकको भूलके इन कारणोंसे सावधान रहना चाहिए। उदाहरणके लिए, अपने मित्रका निरीक्षण करते समय अच्छे निरीक्षकको ज्ञात होना चाहिए कि उसका मित्र कभी-कभी अप्रसन्न होने पर भी प्रसन्न होनेका दिखावा करके उसे धोखेमें तो नहीं रखता। अच्छे निरीक्षकको अपने मित्रके साधारण व्यवहारमें हल्का-सा परिवर्तन दिखाई देने पर ही सतर्क हो जाना चाहिए। अच्छे निरीक्षकको अपनी पूर्वधारणा[4] से भी बचना चाहिए। यह पूर्वधारणा[4] कई रूपोंमें हो सकती है, जैसे—सन्देह, शंका, और आत्म-सन्तोष। एक अच्छे निरीक्षकको कभी-कभी विशेष बातों पर ध्यान देनेवाला और विश्लेषणशील भी होना चाहिए; केवल यह कहकर ही सन्तोष नहीं कर लेना चाहिए कि 'हर चीज़ ठीक मालूम पड़ती है' या 'कुछ गड़बड़ मालूम पड़ती है'। किन्तु हमें यह भी देखना चाहिए कि भूलके यही कारण कुशल निरीक्षणके भी तत्व हैं। एक बार यदि आप गुमराह करनेवाली उत्तेजनाओंको, जैसे किसी दर्पणसे प्राप्त होने वाली उत्तेजनाओंको, जान गये, तो आप उनको आने दे सकते हैं और उनका अच्छा इस्तेमाल कर सकते हैं। एक बार यदि आप कुछ श्रेणीकी वस्तुओंको अच्छी तरह जान जाते हैं, तो आप उनको शीघ्रतासे और सरलतासे देखनेके लिए संक्षिप्त संकेतों[5] का इस्तेमाल कर सकते हैं। यदि आपके पास पिछला अनुभव न हो, तो आप यह नहीं जान सकते कि आपको क्या निरीक्षण करना है। पूर्वधारणा[4] से तो निश्चय ही दूर रहना चाहिए, किन्तु कोई निरीक्षण करनेके लिए एक तत्परता[6] का होना आवश्यक है। प्रारम्भिक तत्परता[7] के अभावमें आप किसी खास चीज़की तलाश नहीं कर सकते, और शायद आप किसी भी महत्त्वपूर्ण वस्तुका निरीक्षण नहीं कर

[1] attention [2] interest [3] illusions [4] bias [5] reduced cues [6] set [7] preparatory set

सकते। इसके अलावा जबतक आपमें समग्र प्रभाव ग्रहण करने कीयोग्यता न होगी, तबतक आप विस्तारकी छिट-पुट बातोंमें उलझ जायेंगे। संक्षेपमें अच्छे निरीक्षकमें कुछ लचीलापन[1] होना चाहिए, ताकि वह अवसरकी मांगके अनुसार समग्र प्रभाव तक पहुंच सके, या तथ्यका विश्लेषण कर सके; या नियमित चर्या[2] या नये और अप्रत्याशित प्रभावों के प्रति जागरूक रह सके।

वैज्ञानिक निरीक्षण. अच्छे निरीक्षणके लिए कुछ आवश्यक बातोंकी शिक्षा हमें वैज्ञानिकोंसे लेनी चाहिए। उनमें हम जो पहिली चीज़ देखते हैं, वह है: निरीक्षण पर उनका दृढ़ भरोसा। वे अपने सिद्धान्तोंको निरीक्षणके लिए खुला छोड़ देते हैं और निरीक्षणके परिणामोंको माननेके लिए सदा तैयार रहते हैं। यदि हम इस सम्बन्धमें वैज्ञानिकोंका अनुकरण करने लगें, तो हममें से सभी अच्छे निरीक्षक बन सकते हैं। वैज्ञानिकों की जिस दूसरी विशेषता पर हमारा ध्यान जाता है, वह यह है कि वे कुछ प्रश्न लेकर प्रकृतिके पास जाते हैं और «निरीक्षणके द्वारा उन प्रश्नोंका उत्तर खोजते हैं»। इसमें सन्देह नहीं कि वैज्ञानिक अप्रत्याशित तथ्यों[3] को देखनेके लिए हर समय सावधान रहता है और अपने ज्ञानकी पृष्ठभूमिके कारण किसी भी अप्रत्याशित तथ्यका महत्त्व समझ जाता है—कभी-कभी महत्त्वपूर्ण खोजें अकस्मात् हो जाती हैं, तब यही बात होती है। किन्तु अधिकतर वह अपने मनमें उठे किसी प्रश्नका उत्तर खोजनेके लिए ही निरीक्षण करता है। एक अच्छा प्रश्न, निरीक्षणको अत्यन्त तीक्ष्ण और सूक्ष्म बना देता है। यथासम्भव सर्वोत्तम तो यही रहता है कि पहिलेसे ही निश्चय कर लिया जाय कि हमें ठीक किस वस्तुके निरीक्षणकी आवश्यकता है और बादमें उसी पर ध्यान केन्द्रित किया जाय।

वैज्ञानिक अपने निर्णयात्मक निरीक्षणोंको यथासम्भव निश्चित कर लेनेका बहुत प्रयास करता है। किसी छोटी वस्तु को देखनेमें अपनी आंखों पर ज़ोर डालनेकी अपेक्षा वह अणुवीक्षण यंत्रका उपयोग करता है। वह ऐसे यंत्रोंका आविष्कार करता है, जो वस्तुओंके विषयमें ठीक-ठीक नाप-तोल बता सकें और उनको यथासम्भव त्रुटिहीन करनेका वह प्रयत्न करता है। वह प्रत्येक निरीक्षणको बार-बार दोहराता है और दूसरे निरीक्षक द्वारा उसकी जांच करवा लेता है। स्मृतिकी भूलसे बचनेके लिए वह अपने निरीक्षणके परिणामोंको तुरन्त लिख लिया करता है।

अपने निरीक्षणोंमें वैज्ञानिक पूर्वधारणा[4] की भूलसे कैसे बचता है? बहुधा किसी सिद्धान्तमें उसे व्यक्तिगत रुचि होती है और वह सत्यका कितना भी भक्त क्यों न हो, यह आशा किये बिना नहीं रह सकता कि तथ्य उसके सिद्धान्तका समर्थन करेंगे—या सम्भवतः किसी दूसरेके सिद्धान्तको अप्रमाणित कर देंगे। किन्तु वह पूर्वधारणा[4] को हस्तक्षेप नहीं करने देगा, क्योंकि वह अपनी सामग्री[5] के आधार पर ही कोई आशा करता है। वह अपने निष्कर्षोंका व्यावहारिक उपयोग करनेका विचार कर सकता है और निश्चय ही वे उसके विज्ञानके विशाल प्रासादकी ईंटें होती हैं, और यदि वे ठीक नहीं हैं, तो आगे चलकर कुछ न कुछ गड़बड़ी अवश्य होगी। उसके साथी वैज्ञानिक उसकी भूल खोज निकालेंगे। विज्ञान, यहां तक कि विशुद्ध विज्ञान भी, एक सामाजिक व्यवसाय है और वैज्ञानिक लोग व्यक्तिकी पूर्वधारणा[4] को सही राह पर लाने के सर्वोत्तम साधन हैं।

इन सभी बातोंमें भावी अच्छा निरीक्षक वैज्ञानिकोंके अनुभवसे बहुत-कुछ सीख सकता है।

सारांश

१. ज्ञानेन्द्रियों[6] की सहायतासे परिवेशको जाननेकी प्रक्रियाको «निरीक्षण करना[7]» कहते हैं। निरीक्षणके दो चरण हैं: ध्यान (अवधान) और प्रत्यक्षीकरण।

२. «ध्यान देना[8]» चुनाव[9] करके निरीक्षण करना है—एक खास वस्तुको देखनेके लिए तत्पर होनेकी प्रक्रिया है। एक समयमें अधिकसे अधिक एक वस्तु पर ध्यानको केन्द्रित किया जा सकता है।

(क) जिस वस्तु पर आप ध्यान देते हैं, उसके विषयमें तो आप पूर्ण «जागरूक» होते हैं, किन्तु उसी समय होने वाली अन्य वस्तुओं और क्रियाओंकी क्षीण जानकारी भी आपको होती है।

(ख) कौन-सी वस्तु आपके ध्यानमें चढ़ेगी और उसमें टिकी रहेगी, इसका निर्णय उत्तेजना-तत्व और आभ्यन्तर तत्व करते हैं।

१. «उत्तेजना-तत्वों[10]» में तीव्रता और आकार, पुनरावृत्ति, परिवर्तन और विषमता सम्मिलित रहते हैं।

२. «आभ्यन्तर तत्वों[11]» में व्यक्तिकी स्थायी

[1] flexibility [2] regular routine [3] phenomena [4] bias [5] data [6] senses [7] observing [8] attending [9] selective [10] stimulus factors [11] internal factors

विशेषताएं, जैसे ध्यानकी उसकी आदतें, और अपेक्षाकृत अस्थायी विशेषताएं, जैसे तत्परता और रुचियां, सम्मिलित रहती हैं।

(ग) ध्यान एक वस्तुसे दूसरी वस्तु पर शीघ्रता से हटता रहता है। «स्थिर ध्यान[१]» में परिवर्तन[२] सम्मिलित रहते हैं, जो रुचिके एक निर्दिष्ट क्षेत्र तक ही सीमित होते हैं।

३. ज्ञानेन्द्रियों[३] को प्रभावित करने वाली वस्तुओं की उत्तेजनाओं के आधार पर वस्तुओं और वस्तुगत तथ्यों को जाननेकी प्रक्रिया का नाम «प्रत्यक्षीकरण[४]» है।

(क) यदि व्यक्ति वस्तुओंकी अपेक्षा उनकी उत्तेजनाओं पर ही ध्यान देने का अभ्यास कर ले, तो उत्तेजनाओं का निरीक्षण किया जा सकता है।

(ख) मनोविज्ञान «चिह्नों» (उत्तेजनाओं) का अध्ययन करता है जिनके द्वारा हम «अर्थों» (वस्तुगत तथ्यों) को समझते हैं।

१. हम बहुधा उन चिह्नों से परिचित नहीं होते, जो प्रत्यक्षीकरण का आधार बनते हैं।

२. चिह्न दो प्रकारके होते हैं: «प्रतीक[५]», जो वस्तुओं को दिये गये मनमाने नाम होते हैं; और «इंगित[६]», जो सीधी वस्तु से आनेवाली उत्तेजनाएं होती हैं।

३. इंगित «संक्षिप्त संकेत[७]» होते हैं—य बहुधा किसी वस्तुकी छिट-पुट विशेषताएं होती हैं।

४. कभी-कभी चिह्न द्वयर्थक या सन्दिग्ध[८] होते हैं। यदि कोई चिह्न दो वस्तुओं का समान रूप से प्रतिनिधित्व कर सकता है, तो प्रत्यक्षीकरण उसका कभी एक अर्थ ग्रहण करेगा और कभी दूसरा अर्थ।

४. प्रत्यक्षीकरणमें कोई «आकृति[९]» स्वाभाविक रूपसे एक «पृष्ठभूमि[१०]» से उभरी हुई, अलग छंटी-सी जान पड़ती है।

(क) यदि दृश्य-क्षेत्र में कई निरर्थक वस्तुएं हैं, तो वे अपनी निकटता[११], समानता[१२], और अविच्छिन्नता[१३] के अनुसार; और परिचय[१४], तत्परता[१५], तथा सुखप्रदता[१६] आदि आभ्यन्तर तत्वोंके अनुसार एक आकृति के रूपमें संयुक्त हो जाती हैं।

(ख) किसी वस्तुकी आकृतिमूलक[१७] विशेषताओंको कम कर के उसे छिपा लेनेको «प्रच्छन्नता[१८]» कहते हैं।

५. «विवेचन[१९]» और आंकने[२०] के परीक्षणों द्वारा प्रत्यक्षीकरण की यथार्थता[२१] नापी जाती है।

(क) «ग्रहणशक्ति का विस्तार[२२]» उन वस्तुओंकी संख्या को कहते हैं जिनको, बिना गिने हुए एक ही नजर में सही-सही आंका जा सके।

(ख) प्रत्यक्षीकरणकी भूलोंको दो वर्गोंमें बांटा जासकता है: «परिवर्तनशील भूलें[२३]» और «स्थिर भूलें[२४]»। परिवर्तनशील भूलें सही मानके दोनों ओर बिखरी रहती हैं और स्थिर भूलें उसके केवल एक ही ओर रहती हैं। अभ्यास के द्वारा परिवर्तनशील भूलें कम तो की जा सकती हैं, किन्तु पूर्णतः दूर नहीं की जासकतीं; निरीक्षकको उचित प्रशिक्षण देकर स्थिर भूलको दूर किया जा सकता है।

(ग) «वेबर[२५] का नियम» बताता है कि आंकनेकी परिवर्तनशील भूल आंके जानेवाले परिमाणके साथ एक निश्चित अनुपात रखती है। मध्यम[२६] और तीव्र उत्तेजना-परिमाणों[२७] में तो यह नियम ठीक है, किन्तु बहुत सूक्ष्म उत्तेजना-परिमाणों का अन्दाज़ लगानेमें भूलें बगैर किसी निश्चित अनुपात के और बड़ी होती हैं।

६. «भ्रम[२८]» प्रत्यक्षीकरण में होनेवाली भूलोंके उल्लेखनीय उदाहरण हैं। वे प्रत्यक्षीकरणके आधारभूत नियमों को अच्छी तरह अभिव्यक्त करते हैं।

(क) दर्पण-प्रतिमा या प्रतिध्वनि के ग़लत स्थानीकरण के मूलमें भौतिक कारण हैं।

(ख) आदत और परिचयसे प्रत्यक्षीकरण ग़लत हो सकता है।

(ग) व्यक्ति जिस वस्तु को देखने की आशा कर रहा है, तत्परता[१५] उस वस्तुको (झूठ-मूठ) दिखा सकती है।

(घ) वस्तुके जिस भागको निरीक्षक स्वतंत्र प्रत्यक्षीकरणके लिए अलग करनेमें असमर्थ रहता है, उसके प्रत्यक्षीकरण को समग्र प्रभाव[२९] प्रभावित कर सकता है।

७. यद्यपि आधारभूत सांवेदनिक[३०] योग्यताएं अपरिवर्तनशील होती हैं, तथापि ध्यान[३१] की दिशा का नियमन करनेवाली रुचियोंका विकास करके और परिणामोंके ज्ञानके साथ अभ्यास बढ़ा कर निरीक्षण को उन्नत किया जा सकता है।

(क) भ्रम[२८] के अध्ययनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि अच्छे

[१] sustained attention [२] shifts [३] senses [४] perception [५] symbols [६] signals [७] reduced cues [८] ambiguous [९] figure [१०] ground [११] proximity [१२] similarity [१३] continuity [१४] familiarity [१५] set [१६] pleasingness [१७] figural [१८] camouflage [१९] discrimination [२०] estimation [२१] accuracy [२२] span of apprehension [२३] variable errors [२४] constant errors [२५] Weber [२६] moderate [२७] stimulus quantities [२८] illusions [२९] total impression [३०] sensory [३१] attention

निरीक्षक को गुमराह करनेवाले चिह्नों, आदत या पूर्वधारणा[1] के प्रति अन्धानुसरण और समग्र[2] या सामान्य[3] प्रभावोंसे सन्तुष्ट हो जानेके खतरोंसे सावधान रहना चाहिए।

(ख) «वैज्ञानिक» प्रत्येक साधन का लाभ उठा कर निरीक्षण को सही और पक्षपात-रहित[4] बनानेकी चेष्टा करता है।

[1] fias　[2] total　[3] general　[4] unbiased

१४

दृष्टि-ज्ञानेन्द्रिय[1]

निरीक्षण पर सामान्य रूपसे विचार करनेके अतिरिक्त, जैसा कि पिछले प्रकरणमें किया गया है, बहुत विस्तारसे भी विचार किया जा सकता है। ज्ञानेन्द्रियोंके सम्बन्धमें काफ़ी परिमाण में जानकारी उपलब्ध है, क्योंकि उनका शरीर-शास्त्रज्ञों और मनोवैज्ञानिकोंने अध्ययन किया है। उस अध्ययनकी अधिकांश सामग्री इस पुस्तककी सीमाके बाहर है, किन्तु कुछ विशेष महत्वपूर्ण तथ्योंको हम पाठकके ध्यानमें लानेकी चेष्टा करेंगे।

हम क्या देखते हैं? इसका सीधा-सा उत्तर यह हो सकता है कि हम अपनी आंखोंके सामनेकी वस्तुओंको देखते हैं। किन्तु जब हम पूछते हैं कि हम सामनेके उस मकानको «कैसे» देखते हैं, तब हमें पता चलता है कि हम वास्तवमें उस मकान से अपनी आंखोंमें आनेवाले सूर्य-प्रकाशको देखते हैं। हम वस्तुओंको देखते हैं या प्रकाशको? हम वस्तुओंके रंगोंको देखते हैं या प्रकाशके रंगोंको? चित्रकारके लिए यह दूसरा प्रश्न बहुत व्यावहारिक है। मान लीजिए, उसे एक चित्र बनाना है, जिसमें उसे एक वृक्षकी छायामें हरी घास पर बैठी हुई सफ़ेद गाय दिखानी है। वह गायको सफ़ेद और घासको हल्के हरे रंगकी देखता है, किन्तु यदि वह अपने चित्रमें गायको बिल्कुल सफ़ेद रंगसे चित्रित करे और घासको हल्के हरे रंगसे तो वह वृक्षकी छायाको नहीं दिखा सकता। अपनी आंखोंके सामनेके चित्रको अंकित करनेके लिए उसे गाय और घासको कुछ गहरा रंग देना पड़ेगा, उसे सफ़ेद गायको धूसर रंगमें और हल्के हरे रंगकी घासको गहरे हरे रंगमें रँगना होगा। चित्रकारको वस्तुओंका रंग सीखनेके बजाय प्रकाश, छाया और प्रकाशके रंगोंको देखना-सीखना पड़ता है। नौसिखुए चित्रकारके लिए प्रकाश और प्रकाशके रंगोंको—जिनको चित्रके रंग कह सकते हैं—देखना कठिन कार्य है। वस्तुओं और उनके रंगोंको देखनेकी जो प्रथा है, उससे वह अपना पीछा बड़ी मुश्किलसे छुड़ा पाता है। वस्तुएं किसी भी क्षण जो चित्र-रंग आंखोंको प्रदान करती हैं, उनकी अपेक्षा उन वस्तुओंके रंगोंको देखना ही साधारणत: अधिक उपयोगी रहता है। इसमें सन्देह नहीं कि आमतौरसे हम लोग प्रकाशको देखने से यथासम्भव बचते हैं और वस्तुओंको देखनेमें प्रवृत्त होते हैं।

संवेदना और प्रत्यक्षीकरण. स्पष्टत: 'देखना' क्रियाके दो अर्थ हैं, इनको समझानेके लिए दो अलग-अलग शब्दोंका उपयोग करना उचित रहेगा। हम प्रकाशको देखनेके लिए 'दार्ष्टिक संवेदना[2]' और वस्तुओं या परिवेश सम्बन्धी तथ्यों को देखनेके लिए 'दार्ष्टिक प्रत्यक्षीकरण[3]' का प्रयोग करेंगे। इसी प्रकार गन्धके विषयमें, सूंघनेसे सम्बन्धित संवेदना नाक में प्रविष्ट होनेवाली गन्धोत्तेजनाओंका बोध कराती है, और सूंघनेसे सम्बन्धित प्रत्यक्षीकरण निकटवर्ती गन्धयुक्त वस्तुओं का ज्ञान कराता है। सामान्यत: जब हम संवेदनाके विषयमें बात करते हैं, तब हम उत्तेजनाओं पर विचार और व्यक्तिके आदाताओं[4] तक पहुंचनेवाली विभिन्न उत्तेजनाओं के साथ व्यक्तिके अनुभवोंके सम्बन्धकी छान-बीन करते होते हैं। और जब हम प्रत्यक्षीकरणके विषयमें बात करते हैं, तब वस्तुओं पर विचार कर रहे होते हैं और यह छान-बीन करते होते हैं कि वास्तविक तथ्योंके साथ व्यक्तिके अनुभवोंका कितना अधिक सामंजस्य है। परिवेशके साथ सम्बन्धित अपने व्यावहारिक जीवनमें व्यक्तिका झुकाव प्रत्यक्षीकरणकी ओर रहता है, किन्तु ऐसा लगता है कि उसके आदाता[5] संवेदनाके लिए बने हैं। निश्चय ही वह प्राप्त उत्तेजनाओंका इस्तेमाल करके परिवेशको समझता है।

आँख की रचना

वस्तुओंको देखनेकी प्रक्रियाको विस्तारम समझनेके पूर्व हम आंख और दार्ष्टिक संवेदनाके सम्बन्धमें कुछ जान लेना चाहिए। निस्सन्देह आंख देखनेके लिए बने हुए अंगका एक भाग मात्र है। आंखें अपने ज्ञानवाही स्नायुओं, दृक्-स्नायुओं के द्वारा अन्तर्मस्तिष्कसे जुड़ी रहती हैं और अन्तर्मस्तिष्क दोनों वृहत् मस्तिष्कीय गोलार्धों[6] के पश्चकपाल-खंडों[7] से जुड़ा रहता है। आंखें उत्तेजनाओंको ग्रहण करती हैं; उत्तेजनाओंसे स्नायु-तरंगें उत्पन्न होती हैं, जो पीछेकी ओर अन्तर्मस्तिष्क और त्वक्ष[8] को जाती हैं; त्वक्षमें वे प्रक्रियाएं होती हैं, जिनसे उत्तेजनाओंको उचित समूहों और क्रममें रखना और वस्तुओंकी पहचान सम्भव होती है (पृष्ठ १५७)।

[1] The sense of sight [2] visual sensation [3] visual perception [4] receptors [5] receptive apparatus
[6] cerebral hemispheres [7] occipital lobes [8] cortex

कैमरेकी भांति मनुष्यका नेत्र भी एक अंकित करनेवाला यंत्र है। वास्तवमें यह कैमरा ही है, जिसकी संवेदनशील पट्टी (प्लेट)को «दृष्टि-पटल[1]» कहते हैं। फ़ोटोवाली प्लेटसे दृष्टि-पटल इस अर्थमें भिन्न है कि यह प्रत्येक विगोप[2] के पश्चात् आगामी विगोपके लिए प्रस्तुत हो जाता है। आंखके अग्र-भाग में, जहां प्रकाश प्रवेश करता है, «रंगीन उपतारा[3]» स्थित है। इसके केन्द्रमें एक छिद्र होता है जिसे हम आंखकी पुतली कहते हैं। इस उपतारे[3] में छोटी-छोटी पेशियां होती हैं, जो पुतली के आकारको ज़रूरतके अनुसार घटाती-बढ़ाती हैं; ये कैमरेके आवश्यकतानुसार बैठाये जा सकनेवाले 'डायफ़्राम[4]' के सदृश होती हैं। आंखके सामनेके भागमें झुकी हुई पारदर्शी «कनीनिका[5]» होती है, जो शक्तिशाली «ताल[6]» होती है। पुतली[7] के ठीक पीछे, एक दूसरा «ताल[6]» होता है, जिसकी गोलाई लघु वलिकाय पेशी[8] की चेष्टाके द्वारा घटाई-बढ़ाई जा सकती है। यह पेशी कैमरेके केन्द्रीकारक[9] यंत्रके सदृश होती है। इसके द्वारा आंख निकट या दूरकी वस्तुओं पर केन्द्रीभूत[10] हो जाती है। पारदर्शक द्रव[11] प्रकाशको दृष्टि-पटल[1] तक प्रविष्ट होने देता है। दृष्टि-पटल एक पतली झिल्ली होती है, जो अक्षिगोलकके पृष्ठ भाग पर चढ़ी होती है इसमें संवेदनशील कोशाएं[12] स्थित होती हैं, जहांसे स्नायु-कोशाएं[13] मस्तिष्कसे सम्बन्ध जोड़ती हैं।
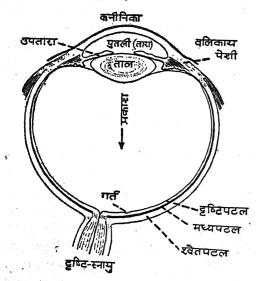
आकृति १०१. पुतलीकी समस्थ काट

देखनेके आदातृ अंग[14]. दृष्टि-पटलमें दो तरहकी ज्ञान-कोशाएं[15] होती हैं: «शलाकाएं[16]» और «शंकु[17]»। भीतर-आनेवाला प्रकाश «शलाकाओं» और «शंकुओं» में रासायनिक और वैद्युतिक परिवर्तन उत्पन्न करता है।

शंकु, शलाकाओंकी अपेक्षा अधिक सुविकसित कोशाएं होती हैं। पुतलीके सीधे पीछे दृष्टि-पटलमें ज़रा-सा गड्ढा[18] होता है, जिसे «गर्त[19]» कहते हैं। इस गर्तमें केवल शंकु ही उपस्थित रहते हैं और यही 'साफ़-साफ़ देखने का केन्द्र' होता है। किसी छोटी वस्तु पर सीधे देखते समय, हम उसे साफ़-साफ़ देखनेके लिए, अपनी आंखोंको इस प्रकार घुमा लेते हैं कि उस वस्तुसे गर्त पर प्रकाश पड़ता है। इस छोटे-से केन्द्रीय क्षेत्रके बाहर शलाकाएं और शंकु साथ-साथ होते हैं। दृष्टि-पटलमें जैसे-जैसे आप आगे बढ़ेंगे, शंकुओंकी संख्या न्यूनतर होती जायगी। गर्तसे जितनी दूर आप हटते जाते हैं, उतना ही वस्तुओंका रंग और रूप कम स्पष्ट दिखायी देता है, इस तथ्यसे यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि रंग और रूपकी दृष्टि अधिकतर शंकुओं पर ही निर्भर होती है।

आंखोंकी गतियां. अक्षिगोलक[20] आंखके गड्ढे[21] में छै मांस-पेशियों द्वारा घुमाया जाता है, और दोनों आंखें अपने कर्म-स्नायु-केन्द्रों[22] में इस प्रकार परस्पर समायोजित हुई रहती हैं कि उनकी गतियोंमें करीब-करीब पूर्ण सहयोग दिखायी देता है। वे दो प्रकारकी सम्मिलित गतियां करती हैं। सामनेके दृश्यमें इधर-उधर देखते समय, दोनों आंखें समानान्तर चलते हुए युगल अश्वोंकी तरह घूमती हैं। इसको आंखोंकी अनुबद्ध[23] गति कहते हैं। किन्तु किसी दूरवर्ती वस्तु परसे निकटवर्ती वस्तु पर आनेमें आंखें केन्द्राभिसरण[24] (एक-दूसरीकी ओर आता) करती हैं, जिससे दोनों आंखोंके गर्त[25] उस खास वस्तुसे प्रकाश प्राप्त करते हैं, जिसकी ओर देखा जा रहा होता है।

आंखोंकी अनुबद्ध[23] गतिका फ़ोटो लेनेसे पता चला है कि उस के दो प्रकार हैं: एकको «उछलने या फुदकने[26]» की गति कहते हैं और दूसरेको «पीछा करने[27]» की गति (२)। फुदकनेकी गति आंखोंको एक वस्तुसे दूसरी वस्तु पर ले जाती है, जबकि पीछा करनेकी गति एक चलती-फिरती वस्तुका अनुसरण करती है।

किसी ऐसे आदमीकी आंखोंको देखिए, जो किसी दृश्यको देख रहा हो। आप देखेंगे कि वे दृश्यके एक भागसे दूसरे भाग पर उछल रही होती हैं। आंखें थोड़ी देर तक एक बिन्दु पर स्थिर हो जाती हैं, फिर दूसरे बिन्दु पर उछल जाती हैं और कुछ क्षण वहां भी टिकी रहती हैं। इसी प्रकार वे समस्त

[1] retina [2] exposure [3] iris [4] diaphragm [5] cornea [6] lens [7] pupil [8] ciliary muscle [9] focussing [10] focussed [11] transparent fluid [12] sensitive cells [13] neurons [14] the visual receptors [15] sense-cells [16] rods [17] cones [18] depression [19] fovea [20] eyeball [21] socket [22] motor nerve centres [23] conjugate [24] converge [25] foveas [26] jump or saccadic [27] pursuit
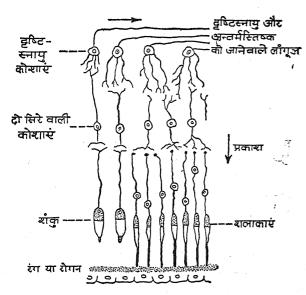
आकृति १०२. दृष्टि-पटल[1] की ऐन्द्रिय कोशाएं और स्नायु कोशाएं। प्रकाश जब दृष्टि-पटल के पास पहुंचता है, जैसा कि आकृति १०१ में दिखाया गया है, तब वह लगभग पारदर्शी दृष्टि-पटल में से गुज़रता है; तभी रंगकी तहके द्वारा वह रोक लिया जाता है और आत्मसात् कर लिया जाता है। वहां पर प्रकाश ऐसे रासायनिक परिवर्तन उत्पन्न करता है जो शलाकाओं और शंकुओंके सिरोंको उत्तेजित करते हैं। शलाकाएं और शंकु इस आवेगको दो सिरे वाली कोशाओं तक पहुंचा देते है और वे बदलेमें उसे दृष्टि-स्नायु-कोशाओं तक पहुंचा देती हैं। दृष्टि-स्नायु-कोशाओं के लांगूल[2] दृष्टि-स्नायु की राहसे अन्तर्मस्तिष्क तक फैले होते हैं। [पृष्ठ १५६ देखिये]।

दृश्य-क्षेत्रकी पड़ताल करती रहती हैं। पढ़ते समय, अभ्यास के कारण, आंखें अधिक नियमित क्रमका पालन करती हैं; छापेकी एक पंक्तिमें कई बिन्दुओंपर वे टिकती हैं और एक स्थिरता-बिन्दुसे दूसरे बिन्दुपर जानेमें छोटी-छोटी उछालें लेती चलती हैं। जब दूसरी पंक्तिके प्रारम्भमें आना होता है, तब वे एक लम्बी उल्टी उछाल लेती हैं (पृ० १३६)। चूंकि प्रत्येक उछाल[3] में केवल एक सैकेंडका ३० वां या ५० वां भाग लगता है, जबकि उजालोंके बीचके विरामों[4] में अधिक समय लगता है, इसलिए फल यह होता है कि छापेकी एक पंक्तिको पढ़नेमें जितना समय लगता है, उसका ९० प्रतिशत समय तो विराम-काल होता है और १० प्रतिशतसे भी कम समय उछालोंमें लगता है। यह पाया गया है कि उछालोंके दौरानमें कोई मतलब की चीज़ नहीं देख पातीं, केवल विराम-काल में ही आंखें मतलबकी बातें पढ़ पाती हैं। फुदकनेकी गति एक विरामसे दूसरे विराम तक जानेमें समयका कमसे कम दुरुपयोग करनेका एक साधन-मात्र है।

आंख किसी वस्तुको साफ़-साफ़ तभी देख पाती है, जब उस वस्तु पर वह स्थिर हो जाती है। यदि वस्तु स्थिर हो तो आंख को भी स्थिर होना होगा। किन्तु यदि कोई वस्तु साधारण चालसे चल रही हो, तो पीछा करनेकी गति द्वारा आंखें उस वस्तुके साथ-साथ चल सकती हैं, इस प्रकार उस चलती-फिरती वस्तु पर टिक सकती हैं और उस वस्तुका स्पष्ट चित्र प्राप्त कर लेती हैं, इस स्थितिमें स्थिर पृष्ठभूमि एक अस्पष्ट[5] रूपमें दिखायी देती है।

मन्द और तेज प्रकाशसे दृष्टि-पटल[1] का अनुकूलन. चमकमें फेर-बदल होने पर आंखोंकी पहिली प्रतिक्रिया पुतलीके फैलने या सिकुड़नेके रूपमें होती है। स्वयं दृष्टि-पटल में इससे अधिक धीमा, किन्तु इससे अधिक प्रभावशाली परिवर्तन होता है, जो 'दृष्टि-पटल' को चमककी मात्राके प्रति संवेदनशील बना
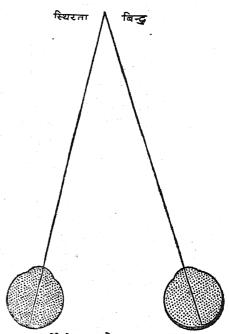
आकृति १०३. किसी समीपके स्थिरता, बिन्दु पर आंखोंकी केन्द्राभिसारिता। किसी दूरस्थ वस्तुको देखते समय आंखोंकी यह केन्द्राभिसारिता अनावश्यक होती है और आंखें समानान्तर देखनेका कार्य अपना लेती हैं।

[1] retina [2] axons [3] jump [4] fixation pauses [5] blur

आकृति A. «मंसेल रंग-पद्धति»

रंगों और अन्य भौतिक प्रतिमानोंका वर्णन करने और उन्हें सम्बन्धित करनेके लिए तैयार की गयी यह आकृति मंसेल रंग-पद्धतिसे सम्बन्ध रखती है। रंग-संवेदना के तीन परिवर्त्योंको देशकी तीन विमाओं से दिखाया गया है: मूल्य या शुभ्रता ऊर्ध्वमुखी है: रंगोंकी शुद्धता तटस्थ धुरीसे बाहरकी ओर फैली है; और वर्णोंको धुरीके चारों ओर परिधि पर रखा गया है।

मंसेल रंग-पद्धतिके मूल चित्र प्रयोगशाला का अत्यधिक यथार्थ प्रतिमान उपस्थित करते हैं। वे ऐसे रंगों द्वारा, जिनके स्थायित्वके विषयमें जांच कर ली गयी थी, नियंत्रित परिस्थितियोंमें तैयार किये गये हैं। इन आकृतियोंमें जिन रंगोंका प्रदर्शन किया गया है, वे छापेकी स्याहियां हैं, इसलिए ये मंसेलके मूल रंगोंके प्रतिमानके केवल आस-पास पहुंचती हैं, उनसे टक्कर नहीं लेतीं। जितने रंग दिखाये गये हैं, उनकी संख्या सादगीके लिहाजसे सीमित ही रखनी पड़ी और अधिक शुद्ध वर्णकी छापेकी स्याहियोंके अभावसे भी ऐसा करना पड़ा। मंसेलकी देश-योजना[१] में रंगोंके असीमित विस्तारके लिए ठीक स्थानोंको निर्धारित करनेकी सुन्दर व्यवस्था रखी गयी है।

इस आकृतिका इस्तेमाल करके अपने आस-पासके रंगोंके गुण, शुभ्रता और शुद्धता का कुछ अन्दाज कीजिए। उदाहरणके लिए आप चाहें तो किसी पुस्तकके 'कवर' या किसी नेकटाईको ले सकते हैं।

[A से लेकर G तकके जो रंगीन चित्र दिये गये हैं, वे श्री डीन फ़ार्न्सवर्थ, लेफ्टिनेंट कमांडर, एच० (एस०) यू० एस० एन० आर० ने विशेष रूपसे इस पुस्तकके लिए तैयार किये हैं]।

आकृति B. «उभरी हुई पश्चात्-प्रतिमाएं»

पुस्तकको तज़ रोशनीमें, जैसे कि लैम्पकी रोशनीमें रखिए, 'चेरी' फलोंकी ओर १०–१५ सैकेंड तक घूरिए और फिर घूसर वर्गोंकी ओर देखिए। नीचे वाले प्राकृतिक दृश्यके साथ इसी क्रिया को दुहराइये। विस्तारकी कितनी बातें आपकी पश्चात् प्रतिमामें वर्तमान रहती हैं? क्या सभी पश्चात्-प्रतिमाएं मूल रंगकी ठीक-ठीक पूरक हैं? इस प्रदर्शनका रंगोंकी फ़ोटोग्राफ़ीमें रंगोंके 'निगेटिवों' से क्या सम्बन्ध है?

आकृति C. «समकालीन विरोध»

एक कार्डमें 'पंच' करिए या छेद काट लीजिए और उस छदको आंखके निकट रखिए, ताकि शेष पृष्ठ दृष्टिगोचर न हो; इसके भीतरसे पट्टूके टुकड़ोंमें से एकको देखिए। हर रंगको सही-सही बतानेकी चेष्टा कीजिए और सान्निध्यके प्रभाव पर ध्यान दीजिए। रोग़नोंके स्वतंत्र रंगोंको देखनेके लिए कार्डको पृष्ठके ठीक ऊपर सटाकर रखिए। इस बात पर ग़ौर कीजिए कि दोनों पट्टुओंके केन्द्रीय आयत जब चारों ओरके रंगोंसे अलग कर दिये जाते हैं, तब वे मेल नहीं खाते और वास्तवमें धूसर भी नहीं लगते। रंगकी सौन्दर्यात्मक विशेषता रंग-विरोधके पैदा होने पर काफ़ी निर्भर रहती है। सजावट और पोशाक की डिज़ायनोंमें इसका जो उपयोग होता है, उस पर ध्यान दीजिए।

आकृति D. «रंगान्ध व्यक्तियोंके द्वारा न समझे जा सकने वाले रंगीन क्षत्र।»

इस तालिकासे इस प्रश्नका अच्छी तरह उत्तर मिल जाता है कि 'रंगान्ध लोग

[१] space plan

कैसे देखते हैं"? उन 'प्रोटानोप' रंगोंको पहचाननेमें गड़बड़ कर देते हैं, जो काली रेखाओंकी मध्यवर्ती श्रेणीमें हैं; 'ड्यूटरानोप' सफ़ेद रेखाओंके मध्यवर्ती क्षेत्रमें स्थित रंगोंको पहचाननेमें गड़बड़ी कर देते हैं; और 'ट्रिटानोप', जो विरले ही मिलते हैं— अन्तरालयुक्त रेखाओं (...) के मध्यवर्ती क्षेत्रोंके रंगोंको पहचाननेमें गड़बड़ कर देते हैं। उदाहरणके लिए, (a) और (b) के स्थल एक 'ड्यूटरानोप' व्यक्तिको या तो समान लगेंगे या लगभग समान लगेंगे; किन्तु 'प्रोटानोप' व्यक्तिको (a) स्थल (c) स्थलके लगभग समान जान पड़ेगा; किन्तु (b), (c) और (d) तीनों ही 'ट्रिटानोप' को एक-से मालूम पड़ेंगे। रंगकी गड़बड़ीसे सम्बन्धित इन्हीं पद्धतियों पर रंग-दोष के अधिकांश परीक्षण आधारित होते हैं।

साधारणतः 'प्रोटानोप' को 'लाल रंगके अन्धे' और 'ड्यूटरानोप' को 'हरे रंग के अन्धे' कहते हैं। क्या इस तालिकासे यह स्पष्ट हो जाता है कि बाद वाले नाम क्यों अत्यधिक सादे और भ्रामक हैं?

आकृति E. «गर्त पर रंग-दृष्टि»

प्रकाशों और रोग़नोंके रंग इस बात पर निर्भर रहते हैं कि दृष्टि-पटल के किस भाग पर प्रतिमा पड़ती है। जितनी दूरी पर प्रायः किताब पढ़ी जाती है उतनी दूरी से (आंखसे लगभग एक-सवा फ़ुट दूर से) यदि E आकृतिके रंगोंकी प्रतिमाको देखा जाय, तो वह इतनी बड़ी होती है कि गर्तसे बाहर भी फैली होती है। ग़ौरसे देखिए कि वे रंग कितने स्पष्ट हैं। अब पुस्तकको ८ या १० फ़ुटोंकी दूरीपर रखिए और उस समय रंगमें होनेवाले परिवर्तनका निरीक्षण कीजिए, जब प्रकाश केवल गर्त पर पड़ता है। इसके बाद धब्बोंके एक ओर ज़रा-सा हटकर दृष्टिको स्थिर कीजिए और देखिए कि गर्तसे बाहर दृष्टि-पटल पर रंग कैसे लगते हैं। पुनः पढ़नेकी दूरी पर पुस्तकको रख कर ध्यान दीजिए कि आंखके कोनेसे बाहरके कौन-से रंग पहचाने जा सकते हैं।

आकृति F. «अनेक रंगोंका प्रदर्शन करनेवाला एक चित्र»

रंग-दोष की पहचान करनेके लिए यह एक सीधी-सी परीक्षा है। सामान्य रंग-दृष्टि वाला व्यक्ति धूसर रंगकी पृष्ठभूमिके बीचमें अंकित रंगीन W अक्षरको देख लेगा। 'ड्यूटरानोप' एक V को अधिक स्पष्टतासे देखेंगे और 'प्र टानोप' दूसरे V को अधिक स्पष्टता से। क्या आप बता सकते हैं, कौन-सी तरहके व्यक्ति किस V को देखेंगे?

आकृति G. «द्विनेत्रीय मिश्रण और स्पर्धा»

पृष्ठको आंखोंसे कुछ इंचोंकी दूरी पर रखिए ताकि हरा वृत्त बायीं आंखके सामने रहे और लाल वृत्त दायीं आंखके सामने। आंखोंको विश्राम करने दीजिए। क्या आप लाल और हरी आकृतियोंको एक-दूसरे पर स्थापित करके पीला रंग प्राप्त कर सकते हैं? पीली और नीली-बैंगनी आकृतियोंको एक पर एक रखकर क्या आप कोई तटस्थ (न्यूट्रल) रंग प्राप्त कर सकते है? लाल और पीले, हरे और नीले, लाल और नीले रंगोंके मिश्रणसे किन रंगोंके बननेकी आप आशा करते हैं? इन मिश्रणोंको आप पुस्तकको ४५° कोण पर रखकर और इधर-से उधर अगल-बग़ल घुमाकर तैयार कर सकते हैं। मिश्रण-सम्बन्धी प्रयोग तेज रोशनीमें किये जाने चाहिए। मिश्रणका प्रभाव प्राप्त करनेसे पहिले स्पर्धा (दो रंगोंके प्रभावोंका एक के पश्चात् दूसरेका क्रमशः उदय होना) के प्रभावका समाप्त होना आवश्यक है।

देता है। किसी अंधेरे कमरे में चले जाइए, पहिले तो सब कुछ काला ही नज़र आयेगा, किन्तु क्रमशः (यदि कमरेमें कहींसे भी थोड़ा प्रकाश छनकर आ रहा है तो) आपको दिखायी देने लगता है, क्योंकि इस बीच आपका दृष्टि-पटल अपनेको अन्धकार से अनुकूलित बना रहा होता है। अब अंधेरे स्थान से तेज़ रोशनीवाले स्थानमें आ जाइये, पहिले तो लगेगा मानो आप 'अन्धे' हो गये, किन्तु शीघ्र ही आप तेज रोशनीके अभ्यस्त हो जाते हैं और साफ़-साफ़ देखने लगते हैं। ऐसा इसलिए होता है कि इस बीच आपका दृष्टि-पटल प्रकाशसे अनुकूलित हो चुका होता है।

अन्धकारमें भी पूर्णतया सुझायी पड़ने लगे, इसके लिए आपको अन्धकारमें लगभग आधे घंटे तक रहना पड़ेगा। पहिले, तेज़ धूपमें से अंधेरेमें जाते समय आंखें जितनी संवेदनशील थीं, उस से सहस्रों गुना अधिक संवेदनशील वे उस समय हो जाती हैं।

अंधेरी जगहमें, अपनी आंखोंको अन्धकारसे अनुकूलित बना लेनेके पश्चात् आप देखेंगे कि आप केवल प्रकाश और छाया देख रहे हैं, कोई रंग नहीं देख रहे। इस सम्बन्धमें एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि गर्त[1], जिसमें केवल शंकु होते हैं, शलाकाएं नहीं, अपनेको अन्धकारसे पूर्णतः अनुकूलित नहीं बना पाता और बहुत मन्द प्रकाशमें वह लगभग अन्धा हो जाता है। इन तथ्योंसे यह तात्पर्य निकलता है कि मन्द प्रकाशकी दृष्टि, «संध्या-दृष्टि[2]» जैसा कि इसका नाम है, शलाका-दृष्टि होती है, शंकु-दृष्टि नहीं। शलाकाएं बहुत क्षीण प्रकाशके प्रति भी संवेदनशील हो जाती हैं; इस मामलेमें वे शंकुओंको बहुत पीछे छोड़ जाती हैं। दूसरी ओर, शलाकाओंमें नहीं, केवल शंकुओं में रंगको देखनेकी क्षमता होती है।

अन्धकारसे अनुकूलन[3] की क्षमता में व्यक्तियोंमें अत्यधिक विषमता होती है। भोजनमें खाद्योज 'क' (विटामिन 'ए') की कमी रहनेसे 'आंख के अन्दर पाये जाने वाले जामुनी रंग[4]' का निर्माण रुक जाता है। यह शलाकाओंमें रहनेवाला एक रासायनिक रंग होता है। जिन व्यक्तियोंके भोजनमें खाद्योज 'क' की न्यूनता रहती है, उनमें रतौंधी[5] की कुछ मात्रा पायी जाती है, क्योंकि उनका अन्धकारसे अनुकूलन[3] अपूर्ण रहता है। खाद्योज 'क' के महत्त्वकी परीक्षा लेनेके लिए एक प्रयोगमें एक स्वस्थ युवक को ३४ दिनों तक ऐसे भोजन पर रखा गया जिसमें 'दूध या दूधसे बनी कोई भी चीज़, रंगीन सब्जियां, यकृत्, गुर्दा और अन्य कुछ चुने हुए खाद्यपदार्थ' नहीं थे। तात्पर्य यह है कि उसके भोजनमें खाद्योज 'क' को छोड़कर शेष सभी आवश्यक वस्तुएं थीं। अन्धकार से अनुकूलन[3] की उसकी शक्ति दिन पर दिन घटने लगी, यहां तक कि अन्तको शंकुओंकी संवेदनशीलता सामान्य[6] से $\frac{1}{3}$ और शलाकाओंकी संवेदनशीलता सामान्य से $\frac{1}{2}$ रह गयी। प्रयोग की अवधि समाप्त होने पर उस व्यक्तिको खाद्योज 'क' पर्याप्त मात्रामें खिलाया गया और उसका अन्धकारसे अनुकूलन[3] तुरन्त सामान्य-स्तर पर लौट आया (१६)। 'संध्या-दृष्टि' की संवेदनशीलताके सम्बन्धमें सामान्य व्यक्तियोंमें जो थोड़ा-थोड़ा अन्तर होता है, वह प्रायः खाद्योज 'क' की न्यूनता के कारण नहीं होता, इसलिए गाजर खानेसे ठीक भी नहीं किया जा सकता।

दार्ष्टिक संवेदना

दृष्टिके लिए उत्तेजना. प्रकाशके भौतिक विज्ञानमें अधिक उतरे बिना ही, हम कह सकते हैं कि प्रकाश एक विद्युत्-चुम्बकीय शक्ति[7] है, जिसका स्वरूप तरंगकी भांति है, इसलिए हम इसकी «तरंग की लम्बाई[8]» के सम्बन्धमें कुछ बातें कह सकते हैं। इन्द्रधनुष या वर्णपट[9] में विभिन्न लम्बाईकी तरंगोंवाले प्रकाशको अलग किया जाता है और क्रमसे हमारे सामने फैलाया जाता है। वर्णपट[9] के लाल सिरे पर प्रकाश की तरंगकी लम्बाई एक मिली मीटर[10] की ७६ 'लाखवें हिस्से' होती है और बेंगनी रंगके सिरे पर यह एक मिली मिटरकी ३९ 'लाखवें हिस्से' होती है। इनके बीचमें हर तरहकी मध्यवर्ती लम्बाईकी तरंगें होती हैं, जो नारंगी, पीले, हरे और नीले रंग तथा उनकी सम्पूर्ण विभिन्नताओंके साथ आंखोंको दिखायी देती हैं। ५८० की लम्बाईवाली तरंग पीला रंग प्रस्तुत करती है; ५२० की हरा रंग, ४८० की नीला रंग तथा इसी प्रकार अन्य रंग भी। आंख को दिखाई देनेवाले रंगोंकी सीमाओंसे परे, इनसे भी लम्बी और छोटी तरंगें होती हैं जो प्रकाशकी कोई भी संवेदना उत्पन्न करनेमें असमर्थ होती हैं, हालांकि लम्बी तरंगें —अधोरक्त[12]—त्वचा में उष्णता की संवेदना को पैदा करती हैं और बहुत छोटी तरंगें—पारनीललोहित[13] किसी भी ज्ञानेन्द्रिय को उत्तेजित न करते हुए त्वचा की रँगाई[14] कर देती हैं और अन्य शारीरिक प्रभाव उत्पन्न करती हैं।

किसी भी बिन्दुसे आंख तक पहुंचनेवाले प्रकाशमें बिरली ही ऐसी तरंगें होती हैं, जिनकी लम्बाई एक-सी होती है। सूर्यके प्रकाशमें वर्णपट[9] के सभी भागोंकी तरंगें सम्मिलित रहती हैं, इसलिए वह श्वेत जान पडता है। बिजलीके बल्बकी रोशनी हल्की पीली होती है, क्योंकि इसमें वर्णपट[9] के सभी भागों की तरंगें तो सम्मिलित होती ही हैं, किन्तु मध्यवर्ती लम्बाइयों में भी यह अपेक्षाकृत सबल होती है। अच्छे लाल रंगवाले किसी

[1] fovea [2] twilight vision [3] dark adaptation [4] visual purple [5] night blindness [6] normal
[7] electro-magnetic energy [8] wavelength [9] spectrum [10] millimetre [11] visble spectrum
[12] infra-red [13] ultra-violet [14] tan

शीशेसे गुजरनेवाली रोशनी इसलिए विशुद्ध लाल लगती है कि शीशेके रंगके कारण लाल तरंगोंको छोड़कर बाकी सभी तरंगें लुप्त हो जाती हैं। इस प्रकार विभिन्न लम्बाइयोंके «मिश्रणों[1]» के परिमाणके अनुसार प्रकाशमें अन्तर होता है। «तीव्रता[2] या शक्ति[3]» की दृष्टि से भी प्रकाशमें भिन्नता होती है।

इसलिए, किसी भी बिन्दुसे आंखमें प्रविष्ट होनेवाली उत्तेजना तीन प्रकारसे भिन्न होती है: लम्बाई, शक्ति और मिश्रणके परिमाणमें। अब हम यह जानना चाहते हैं कि संवेदना का कौन-सा अन्तर उत्तेजना के इन अन्तरोंमें से किससे सम्बन्धित है।

दार्ष्टिक संवेदना की विमाएं[4]. उत्तेजना की शक्ति या तीव्रता के साथ दार्ष्टिक संवेदना की «शुभ्रता[5]» सम्बन्धित है। दार्ष्टिक संवेदना की शुभ्रता-विमा[6] अन्धकारसे प्रकाश तक—पूर्ण अन्धकारसे चकाचौंध उत्पन्न करनेवाले प्रकाश तक—फैली रहती है।

उत्तेजक तरंगकी लम्बाईके साथ दार्ष्टिक संवेदना का «रंग[7]» सम्बन्धित है। रंगोंकी श्रेणी लालसे पीले और वर्णपटके अन्य रंगोंमें से होती हुई बैंगनी रंग तक जाती है और वहांसे जामुनी रंगसे गुजरती हुई पुन: लाल रंग पर लौट आती है। यह वृत्ताकार श्रेणी[8] होती है, जैसा कि आकृति १०४ में दिखाया गया है।

उत्तेजनामें तरंगोंकी लम्बाईका जो मिश्रण होता है, वह रंग-संवेदना[9] की «शुद्धता[10]» से सम्बन्धित होता है। मिश्रण जितना ही अधिक होता है शुद्धता उतनी ही कम होती है। पूर्ण, अमिश्रित रंग शुद्ध होता है और क्षीण, हलका रंग शुद्ध नहीं होता। शुद्ध रंग बहुत शुभ्र हो, यह आवश्यक नहीं; इसी तरह शुभ्र रंग भी शुद्ध हो, यह बिलकुल आवश्यक नहीं।

गुलाबी और रक्त-धूसर रंग, दोनों ही अशुद्ध लाल रंग होते हैं; इसी प्रकार हलका नीला और नीला-धूसर रंग अशुद्ध नीले रंगमें आते हैं। रंगीन आकृति A देखिए।

भौतिक प्रकाश और दार्ष्टिक संवेदना के बीच ये सामान्य सम्बन्ध हैं, किन्तु इनका सम्पूर्ण सम्बन्ध बहुत जटिल है। शुभ्रता[5] केवल उत्तेजना की शक्ति पर निर्भर नहीं होती, बल्कि इसकी तरंगकी लम्बाई पर भी निर्भर होती है। दृष्टि-पटल मध्यम लम्बाईकी तरंगोंके प्रति सबसे अधिक संवेदनशील होता है। मध्यम लम्बाईकी ये तरंगें वर्णपटके पीले रंगसे सम्बन्धित हैं। भौतिक शक्ति के एक निश्चित परिमाणसे बहुत तीव्र प्रकाश-संवेदना उत्पन्न होती है, बशर्ते कि उसकी तरंग-आयाम (तरंगकी लम्बाई) मध्यम[11] हो। यदि वह वर्णपटके
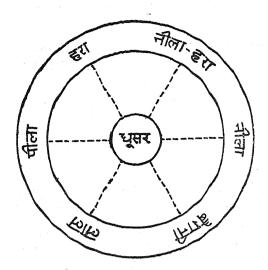
आकृति १०४. रंग-वृत्त। पूरक रंग (बादमें भी देखिए) एक-दूसरे के ठीक विपरीत रखे हुए हैं।

के लाल या नीले सिरके पास हो तो इतनी तीव्र प्रकाश-संवेदना नहीं उत्पन्न हो सकती।

रंगोंका मिश्रण. जैसाकि बताया जा चुका है, रंग प्रकाश की उत्तेजनाके तरंग-आयाम पर निर्भर करता है; प्रत्येक रंग एक खास तरंग-आयामके प्रति प्रतिक्रिया होता है। किन्तु यही सर्वांग सत्य नहीं है। किसी रंगका खास तरंग-आयाम यदि उसमें बिलकुल उपस्थित न हो तो भी उस तरंग-आयाम के दोनों ओर स्थित तरंग-आयामों को मिश्रित करके वह रंग उत्पन्न किया जा सकता है। उदाहरण-स्वरूप, ६५० के तरंग आयाम द्वारा जो नारंगी रंग प्राप्त होता है, वह ७०० और ६०० के तरंग-आयामों को मिलाकर भी प्राप्त किया जा सकता है; लाल और पीले प्रकाशके मिश्रणसे नारंगी रंग का प्रकाश उत्पन्न होता है।

प्रयोग-विधिमें एक विचारणीय बात यह है: रंगीन प्रकाशों का मिश्रण करनेमें, ताकि उसके फलस्वरूप होनेवाली संवेदनाओंका अध्ययन किया जा सके, हम चित्रके रंगोंका मिश्रण करने पर निर्भर नहीं रहते, बल्कि हम आंखोंमें या एक सफ़ेद पर्दे पर दोनों प्रकाशोंको फेंकते हैं। हम, दृष्टि-पटल की प्रतिक्रियाओंकी किसी ढील या पिछड़नका (देखिए पृ० २६९ 'पश्चात्-प्रतिमायें') लाभ उठाकर 'रंग-चक्र[12]' के द्वारा प्रकाशों का मिश्रण कर सकते हैं। 'रंग-चक्र' बारी-बारी से तेजीके साथ प्रकाशोंको आंखमें फेंकता है।

[1] mixtures [2] intensity [3] energy [4] dimensions [5] brilliance [6] brillance dimension [7] hue [8] circular series [9] colour sensation [10] saturation [11] medium [12] colour wheel

काले और सफ़ेद रंगोंको विभिन्न अनुपातोंमें मिलाकर हम गहरे धूसर रंगोंकी पूरी श्रेणी तैयार कर सकते हैं। किसी भी शुद्ध रंगके साथ सफ़ेद या धूसरको मिश्रित करके हम उसे कम शुद्ध बना देते हैं। किसी भी रंगके साथ काला मिलाकर हम उस रंगकी शुभ्रता घटा देते हैं।

लाल और पीले रंगको विभिन्न अनुपातोंमें मिलाकर हम लाल और पीलेके बीचके सभी रंगोंका—सभी तरहके नारंगी रंगोंका निर्माण कर सकते हैं। पीले और हरे रंगको मिलाने से सभी तरहके पीलापन लिये हुए हरे रंग बन सकते हैं और हरे तथा नीले रंगको मिलानेसे सभी तरहके हरापन लिये हुए नीले रंग बन सकते हैं। नीले और लाल रंगोंके मिश्रण से बैंजनी और जामुनी रंग बनते हैं। जामुनी रंगका वर्णपटमें कोई स्थान नहीं है, क्योंकि यह एक ऐसी संवेदना है जो किसी एक तरंग-आयामकी क्रियासे उत्पन्न नहीं की जा सकती, बल्कि केवल लम्बी और छोटी तरंगोंके मिश्रणसे उत्पन्न हो सकती है।

आइए देखें, पीले रंगमें नीला रंग मिला देनेसे क्या बन जाता है? जो लोग चित्रके रंगोंके मिश्रणके विषयमें कुछ जानते हैं, वे कहेंगे कि नीले और पीले रंगके मिलानेसे हरा रंग पैदा होगा। किन्तु चित्रके रंगोंका मिश्रण निश्चय ही वह चीज नहीं है, जो प्रकाशोंका मिश्रण होता है; क्योंकि प्रत्येक चित्रका रंग प्रकाश के एक अंशको «आत्मसात्[1]» कर लेता या घटा देता है। घटानेकी इस दोहरी क्रिया का प्रभाव पीले और नीले रंगको «जोड़ने» की क्रिया से बहुत भिन्न होता है। यदि हम नीले और पीले रंगको जोड़ते हैं, तो हम सफ़ेद या धूसर प्राप्त करते हैं। दो तरंग-आयाम, जो दृष्टि-पटल पर साथ-साथ क्रिया करते हुए सफ़ेद या धूसर संवेदना प्रदान करते हैं, «पूरक» रंग कहलाते हैं। इस प्रकार पीले और नीले रंग पूरक हैं। लालका पूरक नीलाभ-हरा और हरेका पूरक जामुनी रंग है। लाल और हरे रंग पूरक नहीं हैं किन्तु नीले और पीलेकी तरह इन्हें «अदृश्य होनेवाले रंगोंका जोड़ा» कहा जा सकता है। जब हम नीले और पीले रंगको मिलाते हैं तब दोनों ही अदृश्य हो जाते हैं और हमारे सामने सफ़ेदकी संवेदना रह जाती है, जिसमें पीले या नीलेका कोई रूप-साम्य नहीं मिलता। जब हम लाल और हरे रंगको मिलाते हैं, तब दोनों अदृश्य हो जाते हैं और पीले रंगकी संवेदना उनसे उत्पन्न होती है।

प्रारम्भिक[2] मौलिक[3] और उभरे हुए[4] रंग. भेद किये जा सकने योग्य सैकड़ों रंग हैं और उनमें से हर एक इस अर्थमें सरल या प्रारम्भिक है कि हम वास्तवमें उसके भीतर कोई अन्य रंग नहीं «देख» सकते। हम लाल और पीले दोनोंमें नारंगी रंगका कुछ रूप-साम्य देख सकते हैं, किन्तु जब हम नारंगी रंगकी ओर देखते हैं, तब हम वस्तुतः उसमें न अच्छा लाल रंग मिलता है, न अच्छा पीला रंग। लाल और पीले रंग नारंगी रंगमें इतनी खूबीके साथ मिले रहते हैं कि वे अपने विशेष गुण खो देते हैं और नारंगी रंगकी अपनी एक अलग विशेषता हो जाती है। इस रूपमें सभी रंग एक समान प्रारम्भिक[2] होते हैं।

किन्तु कुछ रंग अन्य रंगोंकी अपेक्षा अधिक उभरे हुए या प्रमुख होते हैं। सफ़ेद और काले रंग सबसे स्पष्ट उदाहरण हैं। धूसर रंगोंकी सफ़ेद-काली श्रेणीमें ये रंग आत्यन्तिक सीमाओं पर स्थित होते हैं। इस श्रेणीमें ऐसा कोई धूसर रंग नहीं होता, जो शेष रंगोंसे अलग छँटा-सा दिखाई दे। यदि रंगोंको एक वृत्तमें सजाया जाय, तो लाल, पीले, हरे और नीले रंग प्रमुख दिखाई देंगे। यदि वृत्तके स्थान पर कोई वर्गाकृति हो तो ये चारों रंग उसके चार कोनों पर रखे जा सकते हैं।

यह मान लेना तर्कसंगत रहेगा कि उभरे हुए, प्रमुख रंग मौलिक रंग भी होते हैं और उनसे अन्य रंग मिश्रणके द्वारा तैयार किये जाते हैं। कम से कम यह मानना तो तर्कसंगत है ही कि दृष्टि-पटल के कुछ मौलिक कार्य हैं, जो विभिन्न अनुपातोंमें साथ-साथ होते रहते हैं और जिनके फलस्वरूप कई प्रभाव उत्पन्न होते हैं।

रंग-मिश्रण के तथ्योंसे पता चलता है कि मौलिक रंगोंकी संख्या बहुत कम है, क्योंकि सभी रंग—सफ़ेद तथा धूसर रंग भी लाल, पीले, हरे और नीलेसे सम्बन्धित चार तरंग-आयामों[5] को मिलाकर प्राप्त किये जा सकते हैं। फिर भी, पीलेकी आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि यह लाल और हरेको मिलाकर तैयार किया जा सकता है। सभी रंग, जिनमें सफ़ेद भी शामिल है, लाल, हरे और नीले रंगोंको उचित अनुपातोंमें मिलाकर बनाये जा सकते हैं। यह उल्लेखनीय तथ्य यंग-हेल्महोल्त्स्[6] के प्रसिद्ध रंगदृष्टि-सिद्धान्त का आधार है (६)। इस सिद्धान्तके अनुसार दृष्टि-पटल प्रकाशके प्रति केवल तीन मूल प्रतिक्रियाएं करता है जो लाल, हरे और नीलेकी संवेदनाएं प्रदान करती है।

रंगान्धता[7]. रंगान्धता के दो प्रमुख प्रकार हैं: पूर्ण और आंशिक। «सम्पूर्ण रंगान्धता» शलाका-दृष्टि के समान होती है, जिसमें प्रकाश और अंधेरेका ज्ञान तो होता है, किन्तु वर्णपट के किसी भी रंगका ज्ञान नहीं होता। सामान्य दृष्टि-पटल का सबसे बाह्य क्षेत्र, जहां शंकुओंकी बहुत न्यूनता रहती है, लगभग पूर्णतः रंगान्ध[8] होता है। कुछ व्यक्ति, जिनकी संख्या बहुत थोड़ी है, सम्पूर्ण दृष्टि-पटल में रंगान्ध होते हैं। उनके दृष्टि-पटल में शंकु नहीं होते, केवल शलाकाएँ होती

[1] alsorb [2] elementary [3] primary [4] salient [5] wavelengths [6] Young-Helmholtz
[7] colour-blindness [8] colour blina

हैं; उनकी आंखोंकी दिशा-दृष्टि निर्बल होती है, और यह स्वाभाविक ही है।

« आंशिक रंगान्धता » ६ या ७ प्रतिशत पुरुषोंमें पायी जाती है, हालांकि स्त्रियों में यह प्रायः नहीं पायी जाती। यह कोई बीमारी नहीं होती और न आंख या मस्तिष्कके किसी दोषसे इसका सम्बन्ध होता है। प्रशिक्षणके द्वारा इसको सुधारा या नीरोग भी नहीं किया जा सकता। यह रंग-ज्ञान[1] की वंश-क्रमानुगत विचित्रता है; उसका ह्रासित या सरल रूप है। आंशिक रूपसे रंगान्ध व्यक्ति सभी रंगोंमें भेद करनेमें असमर्थ होता है, इसलिए सामान्य व्यक्ति द्वारा देखे गये कुछ रंगों को वह गलत समझ लेता है। उसके रंगोंका क्षेत्र तीनके बजाय केवल दो तरंग-आयामों[2] का मिश्रण करके द्विगुणित किया जा सकता है, किन्तु सम्पूर्ण रंगोंको उत्पन्न करने के लिए तीन तरंग-आयामोंका मिश्रण आवश्यक होता है। आंशिक रंगान्धताके तीन प्रकार हैं, जिनमें रंगोंके विभिन्न समूहोंकी पहिचान नहीं होती (आकृति D देखिए)। अधिकतर ऐसे ही आंशिक रंगान्ध मिलते हैं, जो लाल और हरे रंगोंको पहचाननेमें गड़बड़ा जाते हैं। इस तरह के व्यक्तियोंको बहुधा लाल हरेके अन्धे कहा जाता है। निस्सन्देह, वे अन्धे नहीं होते — लाल और हरे रंगों की ओर देखते समय भी वे कुछ देखते ही हैं —किन्तु वे उतने विभिन्न रंगों को नहीं देख पाते, जितने रंगोंको सामान्य व्यक्ति देख पाते हैं। हमने कुछ ऐसे लोगोंसे, जो एक आंखसे तो लाल-हरे रंगोंके लिए अन्धे हैं और दूसरी आंख में सामान्य रंग-दृष्टि रखते हैं, यह जानकारी प्राप्त की है कि लाल-हरे रंगोंके अन्धे व्यक्तिको सफ़ेद, काले और धूसर रंगोंके साथ-साथ पीले और नीले रंगोंकी भी संवेदनाएं होती हैं। किन्तु लाल और हरे रंगों की कोई संवेदना नहीं होती। रंग-निरीक्षणकी पूर्ण शक्ति वाले व्यक्तियोंको जो चीज लाल या हरी दिखायी देती है, वही चीज आंशिक रंगान्ध व्यक्तिको मैले[3] पीले रंगकी जान पड़ती है; सामान्य आंख वालेको जो वस्तु हरापन लिये हुए नीली, बैंगनी या जामुनी प्रतीत होती है, वही वस्तु उसको मैली नीली जान पड़ती है। पक्के लाल टिमाटर खरीदनेमें, अपनी नेकटाई या साड़ीके चुनावमें उसे कठिनाई होती है, क्योंकि वह लाल और हरे रंगोंमें भेद नहीं कर सकता।

दृष्टि-पटलके केन्द्रीय क्षेत्रके, जहां पूर्ण रंग-ज्ञान होता है और सबसे बाहरकी ओरके क्षेत्रके जो पूर्णतः रंगान्ध होता है, बीचमें पड़ने वाले क्षेत्रमें हर व्यक्ति लाल-हरे रंगके लिए अन्धा होता है। इस कथनकी सत्यता की जांच आप इस प्रकार कर सकते हैं: विभिन्न रंगोंके टुकड़ोंको लेकर दृश्य-क्षेत्र के किनारेसे धीरे-धीरे केन्द्रकी ओर बढ़ाते जाइए और ऐसा करते हुए आंखोंको ठीक सामने रखिए। जब टुकड़े दृश्य-क्षेत्र के किनारे पर पहिले-पहिल दिखायी देते हैं, तब वे केवल धूसर रंग के होते हैं, इसके बाद वे हल्के नीले या पीले रंगमें दिखायी देते हैं, और अन्त में दृश्य-क्षेत्र के केन्द्रके समीप वे अपने लाल या हरे अंशोंको भी प्राप्त कर लेते हैं और अपने सच्चे रंगोंमें दिखायी देते हैं। देखिए आकृति E।

ये क्षेत्र स्पष्ट रूपसे अलग-अलग नहीं हैं। गर्त[4] से काफ़ी बाहरकी ओर स्थित तीव्र शुद्ध रंग हलके रंगकी अपेक्षा अधिक अच्छी तरह पहचाना जा सकता है। बहुत तीव्र लाल, पीले और नीले रंग दृश्य-क्षेत्र की परिधि से बाहर होने पर भी देखे जा सकते हैं।

पश्चात्-प्रतिमाएं[5]. इनके लिए 'पश्चात्-संवेदनाएं[6]' शब्द अधिक उपयुक्त रहेगा। कोई भी प्रतिक्रिया अपनी उत्तेजना से अधिक देर तक टिकती है। किसी मांस-पेशी के लिए यह बात जितनी सत्य है, उतनी ही किसी ज्ञानेन्द्रियके लिए भी। कान बहुत शीघ्र अपनी पूर्व स्थितिमें आ जाता है और उसमें लगभग कोई पश्चात्-संवेदनाएं नहीं होतीं, किन्तु त्वचा के क्षणिक स्पर्शके बाद भी उसमें देर तक स्पर्श की पश्चात्-संवेदनाएं होती रहती हैं। दार्ष्टिक पश्चात्-संवेदनाएं बहुत दिलचस्प होती हैं। आप किसी दीपक की ओर देखिये और पर्दे के रूपमें किसी पुस्तक को अपनी आंखों के सामने रखिये; एक क्षणके लिए पर्दे को हटा दीजिये और फिर उसे यथास्थान कर दीजिये; उत्तेजना के हट जानेके बाद भी आप कुछ देर तक दीपकके प्रकाशको देखते रहते हैं। यह « पश्चात्-प्रतिमा » बहुत-कुछ मुख्य संवेदना की तरह होती है, केवल उससे कुछ निर्बल होती है। किसी काली, सफ़ेद या रंगीन आकृतिकी ओर टकटकी बांधकर १५ सैकेंड तक देखनेके बाद धूसर पृष्ठभूमि पर देखनेसे « पश्चात्-प्रतिमा » ग्रहण की जा सकती है (देखिये आकृति B)। इसके बाद पश्चात्-संवेदना इस रूपमें विकसित हो सकती है कि सफ़ेदके स्थान पर काला और कालेके स्थान पर सफ़ेद दिखायी देने लगे तथा प्रत्येक प्रारम्भिक रंगके लिए उसका पूरक रंग दिखायी देने लगे। इस प्रकार दिखायी देते समय पश्चात्-प्रतिमा 'ऋणात्मक[7]' होती है, किन्तु आंखोंको मूंदकर या उन्हें काली पृष्ठभूमिकी ओर घुमाकर इस ऋणात्मक पश्चात्-प्रतिमा को धनात्मक[8] बनाया जा सकता है। शक्तिशाली उत्तेजनाके बाद पश्चात्-प्रतिमा काफ़ी देर तक बनी रह सकती है और बार-बार धनात्मक और ऋणात्मक रूप ग्रहण कर सकती है। फिर भी रंगों पर भरोसा नहीं किया जा सकता। किसी चमकीले सफ़ेद प्रकाशकी पश्चात्-प्रतिमा अदृश्य होनेके पूर्व कई विभिन्न रंगों का रूप धारण कर सकती है।

[1] colourless sense [2] wavelengths [3] dull [4] fovea [5] after-images [6] after-sensations [7] negative [8] positive

दार्ष्टिक विरोध[1]. विरोध एक ऐसा प्रभाव है, जो अन्य ज्ञानेद्रियोंमें तो उत्पन्न होता ही है, परन्तु दृष्टि[2] में यह स्पष्ट दिखायी देता है। किसी चमकाले धरातलकी ओर देखनेके बाद यदि उससे कम चमकीली किसी वस्तुको देखा जाये, तो वह मटमैली दिखायी देगी, किन्तु किसी मटमैले धरातलकी ओर देखने के बाद वही कम चमकीली वस्तु काफ़ी चमकदार मालूम पड़ेगी। किसी एक रंगको ओर टकटकी बांधकर देखने के पश्चात् यदि उसके पूरक रंगको ओर दृष्टि फेरी जाये, तो पूरक रंग साधारणसे अधिक शुद्ध[3] दिखायी देता है; वास्तवमें सर्वाधिक शुद्ध रंग-संवेदनाओं को प्राप्त करनेका यही तरीक़ा है—इसका प्रयोग करके देखा जा सकता है। ये पूर्वानुपर विरोध[4] मुख्यतः ऋणात्मक पश्चात्-प्रतिमाएं होती हैं।

केवल दृष्टि-संवेदना में ही युगपत्[5] विरोध पाया जाता है। यदि आप धूसर[6] काग़ज़के एक-से दो टुकड़ोंको लीजिये और उन में से एकको काली पृष्ठभूमि पर और दूसरेको सफ़ेद पृष्ठ-भूमि पर रख दीजिये, तो काली पृष्ठभूमि पर रखा हुआ टुकड़ा दूसरे टुकड़ेकी अपेक्षा अधिक चमकीला दिखायी देगा। रंगीन पृष्ठभूमि पर धूसर[6] रंगके धब्बे पूरक रँगसे रंगे प्रतीत होते हैं। पास-पास रखे हुए दो रंग एक-दूसरे में विरोध-प्रभाव उत्पन्न करते हैं, हालांकि हम पश्चात्-प्रतिमाओं को ओर जितना ध्यान देते हैं उससे अधिक ध्यान उनकी ओर नहीं देते, जो निश्चित रूपसे दिन भरमें कई बार होती हैं। हम उन संवेदनाओंकी परवाह नहीं करते, जो वास्तविक तथ्योंको ओर संकेत नहीं करतीं (देखिये आकृति C)।

यहां «काले» रंगके सम्बन्धमें कुछ शब्द कहना अप्रासंगिक न होगा। कालेके विषयमें कभी-कभी कहा जाता है कि यह प्रकाशकी अनुपस्थिति-मात्र है। किन्तु काला रंग उतनी ही विधानात्मक[7] संवेदना है, जितनी कोई भी रंग हो सकता है। हम 'तीव्र काले रंग' के विषय में भी कहते हैं। प्रकाशके न होने पर जो प्रतिक्रिया होती है, वह है काला; किन्तु यह अपनी पूरी तीव्रता के साथ पूर्ण काले रूपमें तभी होती है, जब आंखों के सामनेसे प्रकाश हटा लिया जाता है; अथवा प्रकाशसे घिरी हुई किसी अप्रकाशित वस्तुमें यह दिखायी देता है। यदि किसी वस्तुके चारों ओर काफ़ी चमकीला प्रकाश हो, तो वह वस्तु काली दिखायी देती हुई भी आंखोंमें काफ़ी प्रकाश प्रतिबिम्बित कर सकती है। उदाहरणस्वरूप, सूर्यके सीधे प्रकाशमें रखा हुआ कोयले का टुकड़ा।

दार्ष्टिक प्रत्यक्षीकरण

यदि खिड़की से बाहर आप किसी बहुत साधारण-से दृश्यको देखें, तो जो कुछ आप देखेंगे वह आश्चर्यजनक होगा। मनोवैज्ञानिक को ऐसा ही प्रतीत होता है। आप विभिन्न रूपों, आकारों और रंगोंकी वस्तुओंको देखते हैं, जो अलग-अलग दूरी पर स्थित हैं; उनमें से कुछ धूप में पड़ी हैं, कुछ छाया में। इन सारी बातोंमें विचित्रता क्या है? विचित्रता यह है कि इस वस्तुगत स्थितिमें, जिसे आप देखते हैं और परस्पर निकटस्थ रंगों के धब्बोंके वैविध्यमें, जिसे आपके दृष्टि-पटल परिवेशसे प्राप्त करते हैं, बहुत विषमता है। उस दृश्यको देखते हुए ज़रा इधर-उधर घूमिये; आप देखेंगे कि दार्ष्टिक क्षेत्रमें लगातार गति है—हम कह सकते हैं कि चित्रमें गतिशीलता है—फिर भी, वस्तुएं हिलती-डुलती नहीं दिखायी देतीं। किसी नज़दीक की वस्तु, कुर्सी या मेज़को ओर भिन्न-भिन्न कोणों से देखिये, आप देखेंगे कि हर ओर से चित्र भिन्न-भिन्न हैं; फिर भी हर ओर से वस्तु एक-सी दिखाई देती है। उत्तेजनाएं परिवर्तित हो जाती हैं, परन्तु प्रतीति ज्यों की त्यों रहती है। निरीक्षक को वस्तुएं उसी रूपमें दिखायी देती हैं, जिस वास्तविक रूपमें वे होती हैं, दृष्टि-पटल पर उनका जो चित्र अंकित होता है, उस रूपमें वे उसे नहीं दिखायी देतीं।

कोई भी व्यक्ति, जो प्राकृतिक दृश्योंकी रेखाकृति या चित्र बनानेका पूर्व अनुभव प्राप्त किये बिना अपनी आंखोंसे देखे हुए दृश्यको काग़ज़ पर उतारने की चेष्टा करेगा, उसे समझते देर न लगेगी कि ऐसा करना टेढ़ी खीर है। बच्चे या आदि-कालीन कलाकारकी तरह वह निस्सन्देह चित्रपट पर उस दृश्यको अंकित करनेकी चेष्टा करेगा, जिसे वह सामनेके देशमें स्थित देखता है। यथार्थवादी चित्रकारों ने सदियों तक यह खोजनेकी चेष्टा की कि दृष्टिगत चित्र में ऐसी क्या चीज़ है जो उस देशमें स्थित दृश्य से भिन्न है। उनका काम यह था कि चित्रपट पर यथासम्भव रंगके लगभग उन सभी धब्बों को अंकित किया जाय, जिन्हें दृश्य दृष्टि-पटल के सम्मुख उपस्थित करता है। जैसा कि हम व्यावहारिक जीवनमें करते हैं, किसी वस्तुसे आनेवाली उत्तेजनाओंका अर्थ समझने के बजाय चित्रकारको वस्तुकी उपेक्षा करके उत्तेजनाओंका ही पुनर्निर्माण करना पड़ता है।

दूरी या तृतीय विमा[8] को देखना. परिवेशसे प्राप्त उत्तेजनाएं दृष्टि-पटल पर दो विमाओं[9] में इस प्रकार फैली रहती हैं, जिस प्रकार पर्दे पर कोई चित्र फेंका हुआ रहता है, जिसमें बायें-दाहिने और ऊपर-नीचे की विमाएं होती हैं, किन्तु आगे-पीछेकी विमा नहीं होती। फिर हम किस प्रकार अपनेसे वस्तुओंकी दूरी और उनके ठोसपन और उभारको देखते हैं? दार्ष्टिक प्रत्यक्षीकरणकी इस समस्या पर विद्वानों

[1] visual contrast [2] vision [3] saturated [4] successive contrast [5] simultaneous [6] grey [7] positive [8] third dimensions [9] dimensions

की काफ़ी ध्यान गया है और उसका सन्तोषप्रद हल भी निकाल लिया गया है।

« अकेली, निश्चल[1] आंख » वस्तुको उसी रूपमें देखती है, जिस रूपमें चित्रपट पर अंकित चित्र होता है, और दोनों हालतोंमें दूरीके संकेत एक-से होते हैं। चित्रकार चित्रमें नेत्रदृशा[2] का उपयोग करता है; जब वह किसी आदमीको बहुत दूर पर दिखाना चाहता है, तब आदमी को छोटे क़दका चित्रित करता है; और इसी प्रकार जब कोई परिचित वस्तु दृष्टि-पटल पर कोई छोटा चित्र फेंकती है, तब हम वस्तुको घटे हुए आकारकी नहीं, किन्तु बहुत दूरी पर स्थित देखते हैं। चित्रकार अपने निकटकी पहाड़ियोंको हरे रंगसे चित्रित करता है, दूरवाली पहाड़ियोंको नीले रंगसे; और दूरस्थ पहाड़ियोंकी विस्तृत बातोंको बिल्कुल चित्रित नहीं करता— इसको वह वायव्य नेत्रदृशा[3] कहता है। उसकी दूरस्थ पहाड़ी निकटवर्ती पहाड़ीसे आंशिक-रूपसे «ढकी होने» के कारण उसके पीछेसे झांकती होती है। उसकी «छायाएं[4]» दृश्य[5] के उभारों और गहराइयों[6] को व्यक्त करती हैं। दूरीके चिह्न अकेली आंखको भी प्रभावित करते हैं और उपयुक्त देश-प्रत्यक्षीकरण[7] द्वारा उनके प्रति प्रतिक्रिया होती है।

यदि सिरको इस बग़लसे उस बग़ल तक घुमाया जाय और दृष्टिको हर हालतमें सामनेकी ओर ही रखा जाय, तो दूरस्थ वस्तुएं सिरके साथ ही घूमती हुई नज़र आती हैं और निकटस्थ वस्तुएं विपरीत दिशाओंमें फिसलती दिखायी देती हैं। किसी समय जंगलमें जाकर इस बातकी परीक्षा लीजिए। आप देखेंगे कि निकट और दूरकी शाखाएं कितनी
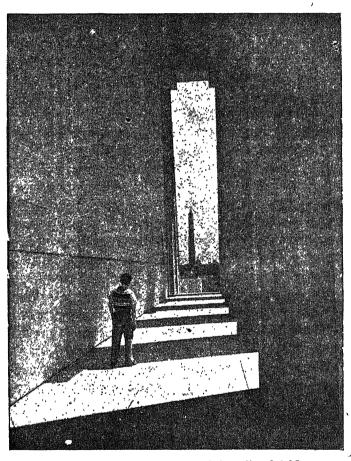
आकृति १०५. दूरीके संकेत। [फ़ोटो : इर्विग गैलोवे]।

[1] motionless [2] perspective [3] aerial perspective [4] shadows [5] landscape [6] relief [7] spatial perception

स्पष्टता से पहचानी जाती हैं। यदि किसी तेज़ रफ़्तारसे दौड़ती हुई कार या ट्रेनकी खिड़कीसे आप पीछे फिसलती हुई दूरीको देखें, तो आपको इस कथनकी सत्यता अधिक अच्छी तरह मालूम पड़ जायगी।

दोनों आंखों द्वारा गहराईका प्रत्यक्षीकरण[1]. कोई निरीक्षक किसी निकटकी वस्तुको देखते समय तृतीय विमा[2] (गहराई) को एक आंखकी अपेक्षा दोनों आंखोसे अधिक अच्छी तरह देख सकता है। ऊपर जिन चिह्नोंका वर्णन हम कर चुके हैं, वे तो अपरिवर्तित रहते ही हैं, किन्तु उनके अतिरिक्त दो महत्त्वपूर्ण चिह्न और भी हैं।

१. «त्रिविमक्षीय[3] प्रभाव». दोनों आंखें एक ही वस्तुके दो भिन्न दृश्य ग्रहण करती हैं। यदि आप अपने चेहरेके पास अपनी उंगलीको खड़ा करें और उसकी ओर पहले दाहिनी आंखसे, फिर बायीं आंखसे देखें, तो आप पायेंगे कि आप एक हालतमें उंगलीके नाखूनका अधिक भाग देख पाते हैं। दाहिनी आंख दाहिनी ओरका कुछ अधिक भाग देख सकती है और बायीं आंख बायीं ओरका कुछ अधिक भाग। एक ही वस्तुके थोड़ा फ़र्क़ लिये हुए दो दृश्योंको एक साथ पकड़कर मष्तिस्क तृतीय विमा[4] अर्थात् वस्तुके ठोसपन[5] का ज्ञान कराता है।

दोनों आंखोंसे देखने पर दूरीका निर्णय अधिक ठीक हो पाता है। दोनों हाथोंमें एक-एक पेन्सिल लीजिए, एक आंखको बन्द कर लीजिए और पेन्सिलकी नोंकोंको दायें-बायें यथाशक्ति एक सीधमें कुछ फ़ासले पर पकड़कर इस प्रकार दोनों ओरसे निकट लाइए कि दोनोंकी नोंक लगभग छूती-सी लगें; इसके बाद दूसरी आंखको खोल कर देखिए कि क्या आप उन नोकोंको अधिक सीधमें ला सकते हैं।

२. दूरीका दूसरा द्विनेत्रीय चिह्न «दोहरी-प्रतिमाओं[6]» में प्राप्त होता है। जब आंखें किसी निकट बिन्दु पर केन्द्रित होती हैं, तब अधिक दूरकी वस्तुएं दोहरी दिखायी देती हैं; और जब आंखें किसी दूरस्थ बिन्दु पर लगी होती हैं, तब उससे निकटकी वस्तुएं दोहरी जान पड़ती हैं। नाकसे एक फ़ुट की दूरी पर एक पेन्सिल रखिए, जो किसी दूरस्थ वस्तुकी ठीक सीधमें हो। जब आप पेन्सिलकी ओर देखते हैं, तब दूरकी वस्तुको दोहरी देखते हैं और जब आप दूरकी वस्तुको देखते हैं तब पेन्सिल दोहरी दिखाई पड़ती है। ये दोहरी-प्रतिमाएं साधारणतया अनदेखी ही रह जाती हैं, किन्तु दृश्य-क्षेत्रमें वस्तुओंकी सापेक्ष दूरियोंको देखनेमें इनसे बहुत सहायता मिलती है।

त्रिविमेक्ष[7] दोनों आंखोंकी दृष्टि पर प्रयोग करनेका एक सुविधाजनक यंत्र है। यह दोनों आंखोंके सामने अलग-अलग दृश्य उपस्थित करता है। यदि दो बहुत पास-पास के स्थानोंसे किसी वस्तु या दृश्यकी फ़ोटो ली जाय तो तृतीय विमा बहुत यथार्थ रूपसे प्रकट होती है। यदि दोनों फ़ोटो ऐसे दो कैमरोंसे ली गयी हों जिनके तालों[8] में दूरी हमारी आंखोंके बीचकी दूरीके बराबर हो, तो त्रिविमेक्षीय दृश्य सामान्य गहराई वाला होगा। यदि कैमरे परस्पर इससे अधिक दूर हों, तो गहराईका प्रभाव भी अतिरंजित होगा। यह परिणाम घरेलू त्रिविमेक्षमें तो केवल दिल-बहलाव की चीज होता है, किन्तु सैनिक महत्त्वके स्थानोंका हवाई जहाज़ से फ़ोटो लेते समय इसका उपयोग किसी मकान की ऊंचाई जाननेमें किया जाता है—ऊपरसे देखने पर ऊंचाई किसी दृश्यकी तृतीय विमा होती है।

दूरीके इन सभी चिह्नोंका इस्तेमाल त्रि-वैम देश[9] के दृष्टिगत प्रत्यक्षीकरणके निमित्त किया जाता है, कभी एक चिह्न अधिक उपयोगी होता है, कभी दूसरा चिह्न। जब वस्तुएं किसी बच्चेके पास पहुंचती हैं, या उसके पाससे हटती हैं, या जब वह स्वयं उनके पास पहुंचता है, तब उनको देखनेसे इन चिह्नोंका देशीय अर्थ सीखनेमें उसे निस्सन्देह मदद मिलती है। अंडेसे बाहर निकलते ही मुर्ग़ीका बच्चा दूरीके प्रति सही प्रतिक्रिया करता है और यह सम्भव जान पड़ता है कि दूरीके किसी चिह्नको, शायद द्विनेत्रीय[10] चिह्नको, सीखनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती (८)।

दृष्टि-पटल पर पड़े हुए औंधे चित्रके बावजूद सीधी दृष्टि. आंखके तालके द्वारा दृष्टि-पटल पर जो चित्र फेंका जाता है, वह औंधा होता है। जो भाग ऊपर होना चाहिए, वह नीचे होता है और दाहिनी ओरका हिस्सा बायीं ओर होता है। प्रश्न उठता है, फिर हम किस प्रकार दृश्य-क्षेत्रको सही तौरसे देख सकते हैं? स्ट्रैटन[11] ने कुछ इस तरहके चश्मे तैयार किये, जो दृश्य-क्षेत्रको पुनः औंधा[12] कर देते थे। वह इस चश्मेको लगातार एक सप्ताह तक पहने रहा, केवल रातको वह इन्हें नहीं पहनता था और उस समय आंखों पर पट्टी बांधे रहता था (१३, १४)। अब दृष्टि-पटल पर पड़े हुए चित्र सही ढंगमें थे, किन्तु हाथ, पैर और शरीरकी गतियोंके साथ दृष्टिगत क्षेत्रका सम्बन्ध उल्टा हो चुका था; फलस्वरूप गति और पदार्थोंके स्थान-निर्णय में बहुत गड़बड़ी फैल गयी थी। प्रारम्भमें तो देखी हुई वस्तुओंके प्रति जो प्रतिक्रिया होती थी, वह बिल्कुल ग़लत होती थी; किसी भी देखी हुई वस्तुको यदि उससे लानेको कहा जाता था, तो वह ग़लत दिशामें जाता था और जिस चीज़से वह बचना चाहता था, उसीसे जा टकराता था। आंख द्वारा निर्देशित गतियां

[1] Binocular perception of depth [2] third dimension [3] stereoscopic [4] third dimension [5] solidity [6] double images [7] stereoscope [8] lenses [9] (three-dimensional space [10] binocular [11] Stratton [12] re-inverted

[अ]-साध्य और स्नायुओं पर जोर डालने वाली होती थीं तथा [उ]न्हें या तो धैर्यपूर्वक हिसाब लगाकर या केवल 'प्रयास और [भ्रम]' के द्वारा करना पड़ता था। एक सप्ताहके अन्तमें वह घरमें [स्व]तन्त्र रूपसे घूम-फिर सकता था, हर तरहके शारीरिक [का]र्य कर सकता था तथा परिचित परिवेशमें उसका [व्य]वहार लगभग सामान्य हो गया था, हालांकि दृश्य-क्षेत्र [अ]भी तक सही ढंगमें दिखायी नहीं देता था। सप्ताहके अन्तमें [ज]ब उसने अपने चश्मे उतारे, तब उसपर पहिला प्रभाव यह [प]ड़ा कि अपने पुराने, परिचित दृष्टिगत देशमें स्वयंको पा[क]र उसे हर्षयुक्त आश्चर्य हुआ; किन्तु उसे काफ़ी घबराहट [भ]ी हुई और उसकी गतियां पुनः ग़लत होने लगीं, क्योंकि [उ]न्होंने नेत्र-हाथ-सहयोग[1] की नयी पद्धतिका अनुसरण [क]रना जारी रखा था। फिर भी कुछ घंटोंके बाद पुरानी [प]द्धति पुनः स्थापित हो गयी। इन परिणामोंके अनुसार, ऊर्ध्व-दृष्टि[2] (अर्थात् सिर ऊपर पांव नीचे दिखाई देना) बहुत कुछ दृष्टि और गतिके सहयोग पर निर्भर होती है (३)।

वस्तुओंके आकार और रूपका दृष्टिगत प्रत्यक्षीकरण[3]. प्रकृतिके आधार पर रेखाकृति और चित्र बनानेमें नवसिखुए व्यक्तिको वस्तुओंके सापेक्ष आकारों और रूपोंको खींचनेमें कठिनाई पड़ती है। वह दो व्यक्तियोंको एक ही ऊंचाई का «देखता है», जबकि उनमें से एक उससे दस फ़ुट दूर खड़ा रहता है और दूसरा बीस फ़ुट दूर; किन्तु यदि वह उनको अपनी रेखाकृतिमें एक आकारका बना देता है, तो वह कुछ ग़लती अवश्य करता है। उसका अध्यापक अपनी भुजा फैलाकर, एक पेंसिलको सीधी पकड़कर और अपने अंगूठेसे वस्तुकी प्रतीत होने वाली ऊंचाईके बराबर निशान बनाकर सिखलाता है कि वस्तुओंके चित्रगत आकारको कैसे नापा जाता है। इसके बाद वह नवसिखुआ चित्रकार समझता है कि जो आदमी अधिक दूर खड़ा है, उसकी ऊंचाई दृश्य-क्षेत्रमें अपेक्षाकृत कम होती है, इसलिए चित्रमें इसीके अनुरूप उसकी ऊंचाई घटा दी जानी चाहिए। चित्रगत आकार[4] या आंखको उत्तेजना देने वाला आकार[5] दो बातों पर निर्भर होता है: वस्तुका वास्तविक आकार और निरीक्षकसे उसकी दूरी।

वस्तुओंके रूप[6] (शक्ल) के बारेमें भी यही बात है। कोई नव-सिखुआ एक वृत्तको देखकर उसे रेखाकृतिमें वृत्तके रूपमें ही खींचता है, किन्तु प्राप्त उत्तेजनाके अनुसार वह तब तक दीर्घवृत्त[7] (अंडेकी शक्ल जैसा) ही रहता है, जब तक वह संयोगसे वृत्ताकार ही न दीख जाय।

किसी वास्तविक दृश्यकी ओर देखते समय निरीक्षक दूरीके चिह्नोंका इस्तेमाल करता है, जिनका उल्लेख पहिले किया जा चुका है, और वस्तुगत परिस्थितिमें देशीय सम्बन्धोंको तथा विभिन्न वस्तुओंकी सापेक्ष दूरियोंको देखता है। इन देशीय सम्बन्धोंके साथ उसका समायोजन उसकी परिस्थिति-तत्परता का ही एक भाग है। हरएक खास चीज़ इस साधारण रूपरेखा में ठीक बैठ जाती है। जैसे ही वह किसी वस्तुकी ओर देखता है, वह उसकी दूरी देख लेता है और उसके उत्तेजना-आकार या 'चित्र' के आकारका अन्दाज़ कर लेता है। चूंकि वह उस वस्तुकी दूरीके प्रति तत्पर[8] होता है, इसलिए उसके चित्रगत आकारसे वह तत्काल उसके वास्तविक आकारका «अर्थ ग्रहण कर लेता है»।

फिर भी, विभिन्न दूरियों पर रखी हुई वस्तुओंके वास्तविक आकारोंके प्रत्यक्षीकरणमें निरीक्षक पूरी तरह सही नहीं भी हो सकता। वह उनकी दूरियोंके अनुसार उनके आकारों का ठीक अन्दाज़ लगानेमें असफल भी रह सकता है। इस बात

आकृति १०६. दूरीके अनुपातसे चित्रका आकार।
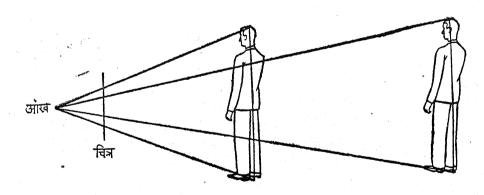
[1] eye-hand coordination [2] erect vision [3] visual perception of object size and shape [4] picture-size
[5] stimulus size [6] shape [7] ellipse [8] set

की परीक्षा लेनेके लिए एक प्रयोग किया गया। परीक्षार्थी ने एक लम्बी मेज़ पर रखी हुई दो वृत्ताकार भूरी तश्तरियों को देखा; उनमेंसे एक तश्तरी ५ फ़ुटकी दूरी पर थी और दूसरी १० फ़ुटकी दूरी पर। निकटवर्ती तश्तरीका व्यास ४ इंच था और दूरस्थ तश्तरीका व्यास इससे कुछ बड़ा या छोटा था। परीक्षार्थीसे पूछा गया कि कौन-सी तश्तरी बड़ी दिखायी देती है। इस बीच दूरस्थ तश्तरीको बदलते रहा गया, जब तक कि परीक्षार्थीने उसे निकटस्थ तश्तरीके बराबर नहीं बता दिया। इसमें तो सन्देह नहीं कि आकारकी वास्तविक समानताके लिए दूरस्थ तश्तरीके व्यासका ४ इंच होना आवश्यक था, किन्तु उत्तेजनाके आकार[१] की ठीक समानता का तक़ाज़ा था कि दूरस्थ तश्तरीको निकटस्थ तश्तरीके बराबर दीखने के लिए ८ इंच व्यासका होना चाहिए। जिन २५ महिला-कॉलेजकी छात्राओंने इस परीक्षामें भाग लिया। उनकी पसन्दगियोंमें अन्तर तो था, किन्तु दूरस्थ तश्तरीके व्यास के लिए उनकी औसत पसन्दगी ४½ इंचोंकी थी। यह पसन्दगी वास्तविक समानताके बहुत निकट थी, हालांकि इसमें कुछ समझौतेका भी प्रभाव था (१२)।

वस्तुओंके रंगोंका प्रत्यक्षीकरण[२]. अब हम फिर रंगोंके प्रत्यक्षीकरणकी समस्याकी ओर लौटते हैं, जिसे हमने इस प्रकरणके प्रारम्भमें उठाया था। विभिन्न प्रकाशोंमें वस्तुओंके रखे रहनेके बावजूद निरीक्षक किस प्रकार उनके वास्तविक रंगों को देख लेता है? यदि कोई सफ़ेद गाय धूपमें से हटकर पेड़ की छांहमें चली जाती है, तो हमारी आंखोंमें उसका रंग बदला हुआ प्रतीत नहीं होता। धूपमें खड़ी हुई काली गाय फिर भी काली ही दिखायी देती है, हालांकि छांहमें खड़ी हुई सफ़ेद गायके शरीरसे हमारी आंखोंमें जितना प्रकाश पहुंचता है, उससे अधिक प्रकाश धूपमें खड़ी हुई काली गायके शरीरसे पहुंचता है। प्रकाशमें परिवर्तन होनेके बावजूद हम किसी वस्तुके रंगको एक काफ़ी बड़ी सीमा तक पहचान लेते हैं। इस तथ्यको लोग 'रंगकी स्थिरता[३]' के नामसे जानते हैं, जिससे वस्तु के देखे हुए रंगकी स्थिरताका तात्पर्य रहता है (९, ११)।

यदि आप एक ही काग़ज़के दो पन्नोंको लें और एकको प्रकाश में तथा दूसरेको प्रकाशसे बहुत दूर रखें, तो दूसरा पन्ना बहुत मन्द रूपसे प्रकाशित होगा। फलतः वह आंखोंमें कम प्रकाश परावर्तित करेगा। इस तथ्यकी जांच आप निकट वाले पन्ने को इस तरह रखकर भी कर सकते हैं कि वह दूरस्थ पन्नेको आपके दृश्य-क्षेत्रमें आंशिक रूपसे ढक ले। फिर भी, आपको यह देखनेमें कोई कठिनाई नहीं होती कि दोनों पन्ने काग़ज़ के टुकड़ोंके रूपमें एक ही रंगके हैं। यह प्रयोग बच्चों और वयस्कों पर विधिवत् किया गया है। उनसे धूसर रंगकी विभिन्न छायाओंका मिलान बैठानेके लिए कहा गया, और उन्होंने सदा सुप्रकाशित नमूनेके साथ मन्द प्रकाशित नमूनेका मेल बैठाया। चूंकि धूसर काग़ज़ अन्य बातोंमें एक-से थे, इसलिए वे केवल अपनी छायाओं[४] के कारण मिलानमें लाये जा सकते थे। चार वर्षके बच्चों तक ने तुरन्त ये मिलान बैठा दिये और ग़लती भी बहुत कम की (१)। यथार्थ[५] परीक्षाओंमें व्यक्तियोंमें कुछ न कुछ भिन्नता पायी ही जाती है और रंग-स्थिरता शायद ही कभी पूर्ण होती है। साधारणतः मिलान उत्तेजनाके रंग और वस्तुके रंगके बीच समझौता होता है (७, १२)।

यहां पर भी मनोवैज्ञानिक समस्या वैसी ही है, जैसी वस्तुके आकार[६] को देखनेमें हुआ करती है। हम यह पता लगाना चाहते हैं कि वस्तु चाहे अच्छे प्रकाशमें हो या छायामें, निरीक्षक कैसे उस वस्तुके निकटतम रंगको देखनेमें समर्थ हो पाता है। हमें पहले यह समझना है कि वह कौन-सी चीज़ देखता है।

« वस्तुओंके रंगोंका भौतिक रूप क्या है? » सफ़ेद वस्तु या पदार्थ वह है जो जितना प्रकाश प्राप्त करता है, उसका सब का सब परावर्तित कर देता है और उसके किसी अंशका लोप नहीं करता, किन्तु काला पदार्थ सम्पूर्ण प्रकाशको लुप्त कर लेता है और उसका कोई अंश परावर्तित नहीं करता। (ये बातें 'आदर्श' सफ़ेद या काली वस्तुओंके विषयमें हैं; एक अच्छा सफ़ेद काग़ज़ कुछ न कुछ प्रकाशको, लगभग २० प्रतिशतको लुप्त कर लेता है और ८० प्रतिशतको परावर्तित करता है, तथा एक अच्छा काला काग़ज़ लगभग ५ प्रतिशत प्रकाशको परावर्तित करता है।) गहरी धूसर वस्तु प्रकाशके कुछ अंशको लुप्त कर लेती है और लोप करनेमें चुनाव[७] के नियम पर न चलती हुई, सभी तरंग-आयामों[८] को समान रूपसे लुप्त करती है। रंगीन वस्तु प्रकाशको लुप्त करनेमें चुनाव[७] के नियम पर चलती है, इसलिए वह चुनावपूर्वक परावर्तित भी करती है; लाल वस्तु लाल किरणोंको प्रधानरूपसे परावर्तित करती है और नीली वस्तु नीली किरणोंको। किसी भी वस्तुकी सतह प्रकाशको छानने वाली[९] होती है; सफ़ेद सतह[१०] प्रकाशमें परिवर्तन नहीं करती, काली सतह प्रकाशकी हत्या कर देती है और धूसर सतह आंशिक रूपसे प्रकाशको मार देती है; लाल सतह परावर्तित प्रकाशको लाल कर देती है और इसी प्रकार अन्य रंग भी प्रकाश पर अपना प्रभाव डालते हैं। जब हम वस्तुके रंगको देखते हैं, तब वस्तुका यही वह भौतिक गुण होता है, जिसे हम देखते हैं।

«प्रभासन (चमक)[११] का विचार करना». यह सिद्ध करना

[१] stimulus size [२] perception of object colours [३] colour constancy [४] shades [५] accurate [६] object size [७] selectivity [८] wavelengths [९] light filter [१०] surface [११] illumination

सरल है कि जब तक निरीक्षक प्रभासनके लिए गुंजाइश करनेमें समर्थ नहीं बना दिया जाता, तब तक वस्तुके रंगको नहीं देखा जा सकता।

प्रभासनकी दशाओंको छिपानेका सबसे आसान तरीक़ा यह है कि किसी नली या 'छिद्र-पट'[1] के द्वारा किसी समरूप तल की ओर देखा जाय। काग़ज़को नलीकी तरह इस प्रकार मोड़िए कि उसका छिद्र इतना छोटा हो जाय कि उसमेंसे देखने पर आप केवल एक समरूप[2] तल देख सकें। या किसी काग़ज़के पन्ने पर एक गोल छिद्र काट डालिए और काग़ज़को आँखके सामने कुछ इंचोंकी दूरी पर रखिए। पूर्ण समरूप तलोंको परीक्षणके लिए पाना सदा सम्भव नहीं होता, किन्तु यदि ऐसे तलकी किसी नलीमें से परीक्षा की जाय, तो यह अपना वस्तु-गुण खो देता है और द्रष्टव्य स्थान केवल अपने उत्तेजना-रंग[3] के अनुसार देखा जाता है।

वस्तु-रंगके भौतिक तथ्यके विषयमें जो कुछ कहा गया है, उससे हम देखते हैं कि निरीक्षक दो निर्दिष्ट तथ्योंसे निष्कर्ष निकालकर उस तथ्य तक पहुँच सकता था। वे निर्दिष्ट तथ्य ये हैं: वस्तु द्वारा प्राप्त किया हुआ प्रभासन[4] और उस वस्तु द्वारा आँखको परावर्तित प्रकाश। यदि निरीक्षकने वस्तु द्वारा परावर्तित प्रकाशको रंग और शुभ्रता में वैसा ही देखा, जैसा प्रभासन था, तो वह यह निष्कर्ष निकाल सकता था कि वस्तु सफ़ेद है। यदि उसने परावर्तित प्रकाशको प्रभासनकी अपेक्षा अधिक लाल देखा, तो वह यह निष्कर्ष निकाल सकता था कि वस्तु लाल है। निरीक्षक व्यवहारत: तर्क और गणना की ऐसी प्रक्रियासे नहीं गुज़रता, किन्तु वह वस्तुके रंगोंको तुरन्त देख लेता है—उन्हें वास्तवमें देख लेता है—किन्तु इसके साथ शर्त यह रहती है कि प्रभासन पर्याप्त रूपसे प्रकट किया गया हो।

«प्रभासनके प्रति तत्परता[5]». प्रभासन[4] के कई अच्छे संकेत हैं: क्षेत्रकी साधारण शुभ्रता और रंग, छायाएं और तेज़ प्रकाश, तथा विषम तल पर सूक्ष्म छायाएं[6] और तेज़ प्रकाश। वस्तुओंके द्रष्टव्य क्षेत्रको देशीय गुणोंसे सम्बन्धित कर के इन सबको देखा जाता है। सामान्य दशाओंमें निरीक्षक प्रभासन[4] के प्रति अविलम्ब तत्पर[7] हो जाता है या उससे अपना समायोजन कर लेता है। फलत: उसे किसी वस्तुके रंगके सम्बन्ध में तर्क-वितर्क करने की आवश्यकता ही नहीं रहती। समग्र परिस्थिति, जिसमें प्रभासन[4] भी सम्मिलित है, के प्रति तत्पर[7] होते समय वह वस्तुसे प्रकाश प्राप्त करता है। इसका भी नियम वही है, जो वस्तुके आकार[8] को देखनेका है। वहां व्यक्ति वस्तुकी दूरीके प्रति तत्पर रहता है और उत्तेजनाके आकारसे वस्तुके आकारको समझ लेता है। यहां, व्यक्ति प्रभासनके प्रति तत्पर रहता है और उत्तेजनाके रंगसे वस्तु के रंगको समझ लेता है।

गतिको देखना. दृश्य-क्षेत्रमें गतिको सरलतासे देख लिया जाता है, दृष्टिपटलके अन्य हिस्सों पर प्रतिबिम्बित होने वाली गतिको भी उतनी ही सरलतासे, जितनी सरलतासे गर्त पर प्रतिबिम्बित होने वाली[9] गतिको। दृष्टि-पटलके बाह्यक्षेत्रों[10] का एक उपयोग तो यह है कि वे किसी भी गतिको तुरन्त पकड़ सकते हैं और आंखोंमें फुदकनेकी गति[11] उत्पन्न करते हैं, जिससे गर्त गतिशील वस्तुसे सम्पर्क स्थापित कर लेता है।

गतिके प्रत्यक्षीकरणमें चल-चित्र (सिनेमा) एक दिलचस्प समस्या उपस्थित करते हैं। परदे पर जो कुछ दिखाया जाता है, वह स्थिर चित्रोंकी एक श्रृंखला होती है। इनमें से किसी एक में भी किसी तरहकी गतिका आभास नहीं मिलता। फिर गतिहीन दृश्योंकी इस श्रृंखलाको देखते समय आपको जो गति दिखायी देती है, वह कहांसे आ जाती है? स्पष्ट है कि जिस गतिको आप देखते हैं, वह चित्रोंके प्रति आपकी प्रतिक्रिया होती है। एक ही प्रकारका प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न करनेमें वस्तुत: सामने दिखाई देने वाली गतिशील वस्तु और फ़िल्म काफ़ी सादृश्य दिखाते हैं।

दृष्टिगत संवेदनाका उत्तेजनाके बाद कुछ समय तक बने रहना[12] भी यहां उपयोगी सिद्ध होता है। यह बहुत स्पष्ट है; क्योंकि इसके बिना चित्र परदे पर बारी-बारीसे आते हुए दिखायी देंगे, जैसे कि वे भौतिक रूपमें होते हैं। किन्तु, एक इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मस्तिष्क गति[13] को देखने के लिए तत्पर रहता है और वह उसे देखनेका कोई अवसर नहीं छोड़ता। जितनी तत्परता से वह क्रमिक स्थितियोंको, जिनसे होकर गतिशील वस्तु गुज़र रही होती है, देख पाता है, उससे कहीं अधिक तत्परतासे वह गतिको देखता है। जिन लोगोंने शीघ्रतासे लिये गये छाया-चित्रों[14] की परीक्षा की है, उनमें से प्रत्येकको यह देख कर आश्चर्य हुआ है कि अपनी गतियोंके सिलसिलेमें किसी आदमी या किसी घोड़ेको कितनी विचित्र स्थितियों[15] में पड़ना पड़ता है। हम मुश्किलसे विश्वास कर सकते हैं कि वह वास्तवमें इन स्थितियोंको ग्रहण करता है। हम गतिको एक अविच्छिन्न क्रमके रूपमें देखते हैं और क्रमिक स्थितियों[16] को नहीं देखते।

चल-चित्रोंकी उत्तेजनाओंकी अपेक्षा अधिक सरल उत्तेजनाओंसे गत्याभास देखा जा सकता है। आपको केवल इतनी चीज़ोंकी आवश्यकता पड़ती है: थोड़ी-थोड़ी दूरी पर

[1] hole screen [2] uniform [3] stimulus colour [4] illumination [5] the set for illumination [6] shadows [7] set [8] object size [9] foveal vision [10] external zones [11] saccadic movement [12] after-lag [13] motion [14] snap shots [15] positions [16] consecutive positions

स्थित दो रेखाओंकी, जो आंखोंके सामने एकके बाद एक, थोड़े-से रिक्त अवकाश[1] के साथ लायी जाती हैं। आप इस प्रयोगकी आज़माइश इस रीतिसे कर सकते हैं: अपनी तर्जनी (पहिली उँगली) को नाकके ठीक सामने तीन या चार इंचों की दूरी पर खड़ी रखिए और उसकी ओर देखिए; देखते समय पहिले एक आंखको मींच लीजिए और बादमें दूसरी आंखको। दाहिनी आंखको लगता है कि उँगली एक ओर अधिक झुकी है, और बायीं आंखको लगता है कि दूसरी ओर अधिक झुकी है; और जब साथ-साथ एक आंख बन्दकी जाती है, तथा दूसरी आंख खोली जाती है, तब वास्तवमें ऐसा लगता है कि उँगली एक स्थिति[2] से दूसरी स्थितिमें हट रही है। इस परिणामकी पुष्टि प्रयोगशालामें सतर्कतापूर्वक किये गये प्रयोगोंसे भी हो चुकी है। यदि दोनों रेखाओंके विगोपों[3] (अर्थात् आंखोंके सामने पड़ने) के मध्यका अवकाश बहुत कम होता है, तो रेखाएं एक साथ अपने-अपने स्थानोंमें स्थिर मालूम होती हैं, और यदि अवकाश कुछ लम्बा होता है, तो किसी गत्याभासके बिना ही पहिले एक रेखा अपने स्थान पर दिखायी देती है, फिर दूसरी रेखा अपने स्थान पर। किन्तु, यदि अवकाश बिलकुल ठीक है, तो गतिका आभास होता है (४,५)।

चल-चित्र[4] इस बात पर आधारित[5] है कि प्राणी एक दूसरे के बाद आने वाली उत्तेजनाओंके प्रति अलग-अलग प्रतिक्रिया करनेके बजाय गतिके नमूनोंको देखनेकी प्रवृत्ति रखता है। उनमें इस प्रवृत्तिका एक अच्छा उदाहरण मिल जाता है कि केवल वस्तुओंको प्रकाशित करने वाले प्रकाशको न देखकर, वस्तुओं और उनके व्यापारोंको देखा जाय।

सारांश

१. आंखोंमें «पुतली[7]» से होकर प्रकाश प्रविष्ट होता है। पुतलीके आकारका (उपतारे) के संकुचनसे नियमन होता है। प्रकाश «कनीनिका[8]» और (ताल[9]) से होकर गुज़रता है। तालकी गोलाई इस तरह घटाई-बढ़ाई जा सकती है कि वह «दृष्टि-पटल[10]» पर प्रकाशको केन्द्रित कर सके। वहां प्रकाश «शलाकाओं[11]» और «शंकुओं[12]» में, जहांसे स्नायु-आवेग[13] मस्तिष्ककी ओर जाते हैं, भा-रासायनिक[14] प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है।

(क) शंकु विशेषरूपसे वस्तुकी शक्लको विस्तारसे बताने[15] और साधारण प्रभासन[16] में दिखाई देने वाले रंगका ज्ञान करानेके लिए बने होते हैं।

(ख) शलाकाएं बहुत मन्द प्रकाशमें प्रतिक्रिया करनेकी विशेषता रखती हैं और वे रंग या सूक्ष्म बातोंमें अन्तर नहीं कर सकतीं।

(ग) «गर्त[17]» दृष्टि-पटलके केन्द्रमें एक छोटा-सा क्षेत्र है, जिसमें केवल शंकु होते हैं और जो स्पष्टतम दृष्टि प्राप्त करनेके काम आता है।

(घ) आंखोंकी गतियां दो तरहकी होती हैं। «अनुबद्ध-गतियां[18]» जिनमें «फुदकने[19]» की गति और «पीछा करने[20]» की गति आ जाती है, आंखोंको इस प्रकार समानान्तरमें घुमाती हैं कि देखी हुई वस्तुसे दोनों आंखोंके गर्तों[17] पर प्रकाश पड़े। «केन्द्राभिसरण की गतियां[21]» आंखोंको एक-दूसरोकी ओर घुमाती हैं, जिससे किसी निकटस्थ वस्तुको देखा जा सके।

(ङ) दृष्टि-पटल मन्द प्रकाशके साथ अनुकूलन शलाकाओं और शंकुओंकी बढ़ी हुई संवेदनशीलताके कारण कर पाता है, विशेषतः शलाकाओंकी संवेदनशीलता के कारण। रतौंधी[22] या शलाकाओंकी अपर्याप्त क्रिया का कारण भोजनमें खाद्योज 'क' (विटामिन 'ए') की कमी होना है।

२. «दार्ष्टिक संवेदना[23]» देखनेकी वह प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्तिके अनुभव आदातृ-अंगों[24] पर पड़नेवाली «उत्तेजनाओं» से सम्बन्धित किये जाते हैं।

(क) दृष्टि[25] की उत्तेजनाएं प्रकाशकी तरंगें[26] होती हैं जो «तरंग-आयाम[27]», «मिश्रण[28]» और «तीव्रता[29]» में भिन्नता रखती हैं।

(ख) तदनुसार दार्ष्टिक संवेदनाएं[30] «रंग[31]» «शुद्धता[32]» और शुभ्रता[33]» में, परस्पर भिन्नता रखती हैं।

(ग) सभी तरंग-आयामोंके प्रकाशका मिश्रण एक रंगविहीन (सफ़ेद या धूसर) संवेदना उत्पन्न करता है। दो तरंग-आयामोंका मिश्रण ऐसा रंग उत्पन्न करता है, जो एक मध्यम तरंग-आयाम[34] से सम्बन्धित होता है।

[1] blank interval [2] position [3] exposures [4] motion pictures [5] patterns [6] organism [7] pupil [8] cornea [9] lens [10] retina [11] rods [12] cones [13] nerve impulses [14] photo-chemical [15] detailed form [16] illumination [17] fovea [18] conjugate movements [19] saccadic [20] pursuit [21] convergence movements [22] night blindness [23] visual sensation [24] receptors [25] vision [26] light waves [27] wave lenth [28] mixture [29] intensity [30] visual sensations [31] hue [32] saturation [33] brilliance [34] intermediate wavelength

दो «पूरक[१]» रंगोंके मिश्रणसे एक रंगविहीन (धूसर[२]) संवेदना प्राप्त होती है।

(घ) तीन रंगों—लाल, हरा और नीला—को उचित अनुपातोंमें मिलाकर कोई भी रंग तैयार किया जा सकता है। इसी तथ्यके आधार पर यंग-हेल्महोल्त्स[३] का सिद्धान्त यह कल्पना करता है कि शंकु तीन प्रकारके होते हैं।

(ङ) «रंगान्धता[४]» दृष्टि-पटलकी वंश-परम्परागत विचित्रता है, जो ६ से ८ प्रतिशत पुरुषोंमें पायी जाती है।

१. लाल-हरी रंगान्धतामें हरे और लालकी पहचान नहीं होती। दोनों ही पीले रंगके दिखायी देते हैं।

२. सम्पूर्ण रंगान्धतामें, जो बिरले ही पायी जाती है, कोई भी रंग पहचाना नहीं जाता। प्रत्येक रंग धूसर[२] की विभिन्न मात्राओं[५] के रूपमें दिखायी देता है।

(च) दृष्टि-पटलके केन्द्रमें पूर्ण रंग-दृष्टि होती है; उसके चारों ओरके क्षेत्रमें अपेक्षाकृत लाल और हरे रंगके लिए अन्धापन होता है; सबसे बाहरी क्षेत्र पूर्णरूपेण रंगान्ध होता है (केवल बहुत शुभ्र रंग ही पहचाने जाते हैं)।

(छ) «पश्चात्-प्रतिमाएं[६]» या तो धनात्मक[७] हो सकती हैं (संवेदनाकी तरह), या ऋणात्मक (पूरक रंग)।

(ज) जब पूरक रंग उत्तेजनाके पहिले आता है या उसके पड़ोसमें होता है, तब दार्ष्टिक सवेदनाकी तीव्रताको «दार्ष्टिक विरोध[८]» कहते हैं।

३. «दार्ष्टिक प्रत्यक्षीकरण[९]» देखनेकी वह प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्तिके अनुभव उन वस्तुओंके साथ सम्बन्धित किये जाते हैं, जिनकी ओर वह देख रहा होता है।

(क) इस तथ्यके बावजूद कि दृष्टि-पटलकी प्राप्त उत्तेजनाएं केवल दो विमाओं वाली[१०] होती हैं, «दूरीको या देश की तृतीय विमा[११] को देखा जा सकता है»।

१. अकेली आंख दूरीके कुछ चिह्नोंके प्रति, जैसे—आकार-सम्बन्धी नेत्रदृशा, वायव्य[१२] नेत्रदृशा, वस्तुओंको ढकने, और छायाओं[१३] आदिके प्रति प्रतिक्रिया कर सकती है।

२. जब सिर और आंखें दायें-बायें हिलाये जाते हैं, तब हम दूरस्थ वस्तुओंको सिरके साथ घूमते और निकटस्थ वस्तुओंको विपरीत दिशा में घूमते हुए देखते हैं।

३. «द्विनेत्रीय दृष्टि[१४]» में दूरीके दो अतिरिक्त चिह्न होते हैं। प्रत्येक आंख वस्तुको जरा भिन्न रूप में देखती है और यह भिन्नता दूरीका एक चिह्न बन जाती है। जब आंखें किसी निकटस्थ बिन्दु पर केन्द्रित होती हैं, तब उस से दूरकी वस्तुएं दोहरी[१५] मालूम पड़ती हैं और जब आंखें किसी दूरस्थ बिन्दु पर केन्द्रित होती हैं तब निकटकी वस्तुएं दोहरी दिखायी देती हैं।

(ख) दृष्टि-पटल पर पड़ी हुई औंधी[१६] प्रतिमाके बावजूद «सीधी दृष्टि[१७]» दृष्टि[१८] और शारीरिक गतियोंके, जिनसे हम वस्तुओंका स्थान निर्धारित करते हैं, समाकलनका परिणाम होती है।

(ग) आकारका निर्णय करते समय निरीक्षक उत्तेजनाके आकार[१९] की अपेक्षा «वस्तुके आकार[२०]» के अधिक निकट आता है। दूरीके चिह्नोंका इस्तेमाल करके वह वस्तुकी दूरीके प्रति तत्पर[२१] हो, जाता है, और वस्तुका वास्तविक आकार देख पाता है।

(घ) प्रभासन[२२] की भिन्नताओंके और फलस्वरूप आंखोंको उत्तेजना प्रदान करनेवाले प्रकाशके बावजूद «वस्तु का रंग[२३]» बहुत कुछ अपने असली रूपमें ही देखा जाता है।

१. वस्तुका रंग उसकी सतह[२४] का परावर्तनकारी गुण[२५] है।

२. यदि निरीक्षक प्रभासनके लिए कुछ गुंजाइश नहीं रखता, जैसा कि किसी नलीके जरिये देखनेमें होता है, तो वह वस्तुके रंगको नहीं देख सकता।

(ङ) गति[२६] का आभास तब होता है, जब उचित अवकाश के बाद दो उत्तेजनाएं एक दूसरेके पश्चात् उपस्थित की जाती हैं।

[१] complementary [२] grey [३] Young-Helmholtz [४] colourblindess [५] shades [६] after-images [७] positive [८] visual contrast [९] visual perception [१०] two-dimensional [११] third dimension [१२] aerial perspective [१३] shadows [१४] binocular vision [१५] double [१६] inverted [१७] erect vision [१८] vision [१९] stimulus size [२०] object size [२१] set [२२] illumination [२३] object colour [२४] surface [२५] reflecting property [२६] apparent movement

१५

अन्य ज्ञानेन्द्रियां

यद्यपि दृष्टिको सभी ज्ञानेन्द्रियोंसे महत्त्वपूर्ण समझा जाना चाहिए, तो भी व्यक्तिको अन्य ज्ञानेन्द्रियोंसे कुछ कम लाभ नहीं है। व्यक्ति परिवेशकी छान-बीन करनेमें लगभग सभी ज्ञानेन्द्रियोंका उपयोग करता है, हालांकि भूख, प्यास तथा थकान जैसी आभ्यन्तर संवेदनाएं (जो कि शरीरके अन्दरकी ज्ञानेन्द्रियोंसे प्राप्त होती हैं) बाह्य तथ्योंके विषयमें उसे सूचना देनेके बजाय उसीकी शारीरिक दशाकी सूचना उसे देती हैं। वह वस्तुओंको छूकर उनके विषयमें जानकारी प्राप्त करनेके लिए हाथोंकी और शरीरके विभिन्न अंगोंकी त्वचाका इस्तेमाल करता है, और इस प्रकार उन वस्तुओंके खुरदरेपन या चिकनाहट, कठोरता या कोमलता, गीलेपन या सूखेपन, उष्णता या शीतलताकी खोज कर लेता है (११)। वस्तुओंको उठाकर और हाथसे उलट-पलट कर वह उनके वजन, लचीलेपन और अन्य गुणोंके विषयमें जानकारी प्राप्त करता है। गन्ध और स्वादके द्वारा वह भोजन तथा अन्य पदार्थोंके विषयमें आवश्यक तथ्योंका पता लगा लेता है। श्रवणेन्द्रिय द्वारा वह स्पष्टत: परिवेशके सम्बन्धमें बहुत-कुछ जान लेता है। कई ज्ञानेन्द्रियां अपनी रुचिकर संवेदनाओं द्वारा जीवनके आनन्दमें वृद्धि करती हैं। इस सम्बन्धमें श्रवण, गन्ध और स्वादको अधिक श्रेय दिया जा सकता है। किन्तु त्वचाको नहीं भूल जाना चाहिए, क्योंकि यह रुचिकर उष्णता तथा शीतलता, कोमल स्पर्शकी रुचिकर संवेदनाएं और काम-सम्बन्धी[१] संवेदनाएं प्रदान करती है। निश्चय ही, कुछ अरुचिकर आवाजें, स्वाद और गन्ध, अरुचिकर गरमी तथा सरदी, त्वचाकी पीड़ा और भीतरके दर्द आदि भी होते हैं, किन्तु ये सभी बाह्य या आभ्यन्तर दशाओंकी सूचना देते हैं, जिनको ठीक किया जाना चाहिए।

दृष्टि पर विचार करते समय हम पहिले ही बता चुके हैं, कि किसी ज्ञानेन्द्रियके अध्ययनमें दो मुख्य समस्याएं सामने आती हैं: (१) पहिली समस्या संवेदनाकी है, जो प्रत्येक इन्द्रिय द्वारा प्राप्त उत्तेजनाओंसे, ज्ञानेन्द्रियकी कार्य-विधिसे, और उत्तेजनाओं[२] तथा आदातृ-अंगों[३] से सम्बन्धित व्यक्तिके सांवेदनिक अनुभवोंसे अपना सम्बन्ध रखती है। (२) दूसरी समस्या प्रत्यक्षीकरण[४] की है, जो परिवेशमें या व्यक्तिके स्वयं अपने शरीरमें वस्तुगत तथ्योंको खोजनेके लिए व्यक्ति द्वारा अपनी प्रत्येक ज्ञानेन्द्रियका उपयोग करनेसे सम्बन्धित है। संवेदनाएं उत्तेजनाओंसे सम्बन्धित होती हैं, जब कि प्रत्यक्षीकरण न्यूनाधिक रूपसे वस्तुगत तथ्योंसे सम्बन्धित होते हैं।

ज्ञानेन्द्रियोंके विषयमें सामान्य बातें. सबसे आदिकालीन प्राणी प्रोटोज़ोआ (एककोशीय जन्तु[५]) यद्यपि विभिन्न उत्तेजनाओंके प्रति संवेदनशील होते हैं तो भी वे कुछ खास स्थानोंमें न होकर सारे शरीरमें संवेदनशील होते हैं। वे यांत्रिक[६] उत्तेजनाओं (जैसे-स्पर्श या धक्का मारना), कतिपय रासायनिक उत्तेजनाओं, तापीय (उष्णता या शीतलता) उत्तेजनाओं, वैद्युतिक उत्तेजनाओं और प्रकाशके प्रति प्रतिक्रिया करते हैं। उनके शरीरमें कोई खास स्थान ऐसा नहीं होता, जो विशेषत: प्रकाशके प्रति संवेदनशील हो, वरन् शरीरके किसी स्थानमें प्रकाश पड़नेपर उसके प्रति प्रतिक्रिया होती है।

बहुकोशीय[७] जन्तुओंके विकासमें विशिष्टीकरण हो चुका है, उनके शरीरके कुछ भाग मांस-पेशियां बन जाते हैं; कुछ भाग पाचक अंग, कुछ भाग संवाहक (नाड़ियां) और कुछ भाग आदाता[८] या ज्ञानेन्द्रियां बन जाते हैं। ज्ञानेन्द्रिय शरीरका वह अंग है, जो एक खास तरहकी उत्तेजनाके प्रति बहुत अधिक संवेदनशील होता है। आंख प्रकाशके रूपमें शक्तिके बहुत सूक्ष्म परिमाणोंके प्रति प्रतिक्रिया करती है, किन्तु शक्तिके अन्य रूपोंके प्रति नहीं। कान ध्वनि-स्पन्दनोंके रूपमें शक्ति[९] के बहुत सूक्ष्म परिमाणोंके प्रति प्रतिक्रिया करता है। इसी प्रकार नासिका रासायनिक शक्तिके बहुत सूक्ष्म परिमाणोंके प्रति प्रतिक्रिया करती है।

यदि ज्ञानेन्द्रियोंका कोई उपयोगी वर्गीकरण करना हो, तो उनको तीन भागोंमें बांटा जा सकता है: बाह्यादाता[१०], अन्तरादाता[११] और न्यादाता[१२]। बाह्यादाता शरीरके बाहरसे उत्तेजनाएं प्राप्त करते हैं; अन्तरादाता मुंह, गला, भोजन-प्रणाली, आमाशय, आंतों और फेफड़ोंसे उत्तेजनाएं प्राप्त करते हैं; न्यादाता शरीरके खास द्रव्य, जैसे मांस-पेशियों, कंडराओं[१३], सन्धियों[१४] आदि में अवस्थित होते हैं, और इन भागोंकी गतियोंके द्वारा उत्तेजित होते हैं। बाह्यादाताओंमें

[१] erotic [२] stimuli [३] receptors [४] perception [५] protozoa [६] mechanical [७] multicellular [८] specialized receptors [९] energy [१०] exteroceptors [११] inferoceptors [१२] proprioceptors [१३] tendons [१४] joints

आंख, कान और नाक को «'दूरीके आदाता[1]'» कहा जाता है, क्योंकि वे ऐसी चीजोंसे उत्तेजनाएं प्राप्त करते हैं, जो शरीरके सम्पर्कमें नहीं होतीं। दूरीके आदाता प्राणीको विस्तृत परिवेशसे अपना समायोजन करनेमें समर्थ बनाते हैं।

ज्ञानेन्द्रियकी रचना. प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय ग्रहण करनेका यंत्र या सूचक[2] होती है, जैसे कि तापमापक तापमानका सूचक होता है। ज्ञानेन्द्रियका संवेदनशील भाग बाहरसे दिखायी नहीं देता, बल्कि इन्द्रियकी गहराईमें स्थित होता है; उदाहरणके लिए, गन्ध ग्रहण करनेवाला भाग नाकमें बहुत पीछेकी ओर होता है और कानका सुननेवाला भाग-आन्तरिक कर्ण-बाहरी कानके नीचे हड्डीमें छिपा रहता है। प्रत्येक ज्ञानेन्द्रियका अपना «बोध-स्नायु[3]» होता है, जो उसे स्नयु-केन्द्रों से सम्बन्धित करता है और उनके ज़रिये उसे परोक्ष रूपसे शरीरके सभी भागोंसे जोड़ता है। इस स्नायु-सम्बन्धके बिना ज्ञानेन्द्रिय शरीरकी क्रियाओंपर कोई प्रभाव नहीं डाल सकती। बोध-स्नायु के तन्तु[4] ज्ञानेन्द्रियके भीतर बहुत सूक्ष्म शाखाओंमें विभक्त हो जाते हैं। ज्ञानेन्द्रियकी अत्यधिक संवेदनशीलता का एक कारण स्नायुके इन सिरोंका अत्यन्त सूक्ष्म होना भी है। इसके अतिरिक्त आंख, कान, नाक और मुँहमें विशेष «ज्ञान-कोशाएं[5]» भी होती हैं। इन संवेदनशील अवयवोंके अतिरिक्त अधिकांश ज्ञानेन्द्रियोंमें «सहायक उपकरण[6]» भी होता है, जो स्नायुओंके सिरों[7] और ज्ञान-कोशाओं[8] को प्रभावपूर्ण ढंगसे उत्तेजना पहुँचाता है। ताल, उपतारा[9] और आंखकी मांस-पेशियां सहायक उपकरण[6] के भाग हैं।

किसी आदाता[10] की कार्य-कुशलता इन बातों पर निर्भर करती है: (क) उसका चुनाव[11] करनेमें समर्थ होना; प्रत्येक उत्तेजना के प्रति समान रूपसे प्रतिक्रियाशील होनेके बजाय उसका किसी एक तरहकी उत्तेजना को ग्रहण करना; (ख) अपनी खास तरहकी उत्तेजना के प्रति उसका बहुत «संवेदनशील[12]» होना; (ग) उत्तेजना की विभिन्न «तीव्रताओं[13]» के प्रति उसका अलग-अलग ढंगसे प्रतिक्रिया करना; (घ) उत्तेजना के विभिन्न «गुणों और प्रकारों[14]» के प्रति उसकी प्रतिक्रिया का अलग-अलग होना। उदाहरणके लिए, घ्राणेन्द्रिय[15] इस अर्थमें चुनाव करने वाली होती है कि यह केवल गन्धोंके प्रति प्रतिक्रिया करती है, नाकमें प्रविष्ट होनेवाली ध्वनियोंके प्रति नहीं—यदि वह ध्वनियोंके प्रति भी प्रतिक्रिया करने लगे, तो बड़ी गड़बड़ मच जाय। घ्राणेन्द्रिय[15] इस अर्थमें संवेदनशील होती है कि यह वायुमें गन्धमय पदार्थके नगण्य परिमाणोंकी उपस्थितिकी सूचना देती है; विभिन्न तीव्रताओं वाली गन्ध-संवेदनाओं के द्वारा यह मन्द और तीव्र गन्धोंके प्रति भिन्न-भिन्न रूपसे प्रतिक्रिया करती है; और विभिन्न पदार्थोंकी विभिन्न सुगन्धोंको अलग-अलग बता देती है। शायद ही कोई मानव-निर्मित यंत्र इन बातोंमें नाककी या आंख और कानकी बराबरी कर सके।

त्वक्-ज्ञानेन्द्रियां

गीली और सूखी, गरम और ठंढी, खुजली, गुदगुदी, चुभन और दंशन (डँसना) त्वक्-संवेदनाएं हैं; किन्तु इनमें से कुछ निश्चय ही जटिल होती हैं। निर्बल उत्तेजनाओं द्वारा त्वचा की हर बिन्दु पर जांच करनेसे अपेक्षाकृत सरल संवेदनाएं प्राप्त की जा सकती हैं। शीतल उत्तेजना के रूपमें, कमरेके तापमानके सदृश तापवाली किसी पेंसिलकी नोक इस तथ्य को शीघ्र ही प्रमाणित कर सकती है। त्वचा के ऊपर यदि इस पेंसिलकी नोकको हल्के-हल्के घुमाया जाय, तो अधिकांश बिन्दुओं पर तो केवल स्पर्शकी संवेदना होगी, किन्तु कुछ बिन्दुओं पर स्पष्ट शीतल संवेदना अनुभूत होगी। हाथके पृष्ठ-भाग में किसी भी आधे इंच के वर्ग[16] में इस तरहके कई «शीतल स्थान[17]» पाये जा सकते हैं। इस सम्बन्धमें कठिन परिश्रम करनेके पश्चात्, उचित उपकरण और विधिके द्वारा यह जाना जा सका है कि ये शीतल स्थान अपेक्षाकृत स्थिर होते हैं। इसी प्रकार, त्वचासे कुछ अंश अधिक गरम उत्तेजना का इस्तेमाल करके «उष्णताके स्थानों[18]» का पता लगाया जा सकता है। यदि त्वचामें कोई नुकीली चीज़ नरमीसे दबाई जाय, तो उससे कई स्थानोंमें अल्प, तेज़ पीड़ा होती है। ये «पीड़ा के स्थान[19]» हैं। अन्ततः, यदि एक बाल को, जिसकी उचित नमनीयता हो—वह इतना लचकीला हो कि पीड़ा के स्थानोंको उत्तेजित न कर सके—त्वचा पर घुमाया जाय, तो अधिकांश स्थानोंमें कुछ भी अनुभव नहीं होता, लेकिन कुछ बिन्दुओं पर स्पर्शकी निश्चित संवेदना होती है—ये «स्पर्श-स्थान[20]» हैं। त्वचामें तापमानके स्थानों[21] की अपेक्षा पीड़ा के स्थानों और स्पर्शके स्थानोंकी संख्या अधिक है, और शीतल स्थान उष्णता के स्थानोंसे संख्या में अधिक हैं।

चूंकि इनसे अधिक सांवेदनिक स्थानोंका पता नहीं चलता, इसलिए स्पर्श, उष्णता, शीतलता और पीड़ा को एकान्त रूपसे

[1] distance receptors [2] indicator [3] sensory nerve [4] fibres [5] sense-cells [6] accessory apparatus [7] nerve endings [8] sense cells [9] iris [10] receptor [11] selective [12] sensitive [13] intensities [14] qualities and varieties [15] sense of smell [16] square [17] cold spots [18] warmth spots [19] pain spots [20] touch spots [21] temperature spots

मूल त्वक्-संवेदनाएं मान लेना चाहिए। खुजली, दंशन[1] और दुखना[2] पीड़ा के भिन्न-भिन्न प्रकार लगते हैं। गुदगुदी स्पर्शका एक प्रकार जान पड़ती है।

कठोरता और कोमलता में त्वचा का स्पर्श तो सम्मिलित है ही, उसके साथ-साथ मांस-पेशियों का प्रतिरोध और उस प्रतिरोधका पेशियोंमें स्थित ज्ञानेन्द्रियों[3] द्वारा बोध होना भी सम्मिलित है। वे उत्तेजनाओंकी विशेषताएं होनेके बजाय वस्तुओंकी विशेषताएं होती हैं, और उनकी संवेदना नहीं होती, बल्कि प्रत्यक्षीकरण होता है। कुछ-कुछ यही बात खुरदरेपन और चिकनाहटके लिए भी सत्य है। त्वचा (प्राय: हाथकी) को किसी चीज़की सतह पर फिराकर और इस प्रकार हिलने वाली उत्तेजना प्राप्त करके इनका अनुभव किया जाता है (१२)।

त्वक्-ज्ञानेन्द्रियोंकी प्रारम्भिक उत्तेजनाएं. प्रत्येक मूलय संवेदना का अनुभव करनेके लिए त्वचा के ऊपर ठीक किस प्रकारका कार्य होता है? «स्पर्श» के समय त्वचा का झुकना सही उत्तेजना होती है। झुकनेकी यह क्रिया भीतरकी ओर या बाहरकी ओर, किसी भी स्पर्श-स्थान पर, या एक ही साथ कई स्पर्श-स्थानों पर हो सकती है। «पीड़ा» देनेवाली उत्तेजना या तो यांत्रिक हो सकती है (जैसे, सुईकी चुभन), या तापीय (उष्ण या शीतल), या रासायनिक (जैसे, तेज़ाब की एक बूंद), या वैद्युतिक; किन्तु किसी भी दशामें उत्तेजना को इतनी बलवती होना चाहिए जिससे त्वचा को चोट पहुँचे या चोट-सी पहुँचे। पीड़ा के आदाता[4] बहुत संवेदनशील नहीं होते, बल्कि उनको काफ़ी शक्तिशाली उत्तेजना की आवश्यकता होती है; उनका उपयोग यह है कि वे चोट पहुँचानेवाली उत्तेजनाओंकी उपस्थितिका पता लगावें।

तापमान-सम्बन्धी उत्तेजनाओं पर कुछ अधिक विचार करने की आवश्यकता है। शरीरका आन्तरिक तापमान, स्वस्थ दशा में, स्थिर होता है, अर्थात् ९८° तापांश (फ़ारेनहाइट) के लगभग। किन्तु सम्भव है त्वचा की सतहका तापमान लगभग ८५-९०° के हो। ऐसी स्थितिमें त्वचाकी सतह न तो गरमी महसूस करती है, न सरदी, क्योंकि उसके न तो उष्णता वाले स्थान उत्तेजित होते हैं और न शीतलता वाले स्थान। वे त्वचा के तापमानके अनुकूल अपनेको बना लेते हैं। अब कोई धातुकी वस्तु या उष्णता की संवाहक कोई अच्छी वस्तु त्वचा पर रख दीजिए। यदि धातुकी वस्तु त्वचा से ज्यादा गरम है, तो वह त्वचा की सतहके तापमानको बढ़ा देगी। यदि उत्तेजना त्वचा के तापमानसे केवल एक अंश (डिग्री) भी अधिक है, तो यह उष्णता का अनुभव करायेगी और यदि एक अंश भी कम है, तो यह शीतलता का अनुभव करायेगी। यदि शरीर को हम तापमापक यंत्र (थर्मामीटर) मान लें, तो उसका शून्य बिन्दु त्वचातापके पास होगा। इसके शून्य बिन्दुके ज़रा ऊपर या नीचेके तापमानोंके लिए इसकी संवेदनशीलता बहुत अच्छी होती है।

यह मनोवैज्ञानिक शून्य बिन्दु त्वचाके तापमानके अनुसार ऊपर या नीचे सरकता रहता है। ६०° या १००° तापांश (फ़ारेनहाइट) के बीच, किसी भी तापवाले जलमें हाथको ५ मिनट तक डुबाये रहिए, तो आप देखेंगे कि त्वचा का तापमान बदल गया है, शून्य बिन्दु भी हट गया है। अब इस नये शून्य बिन्दुकी अपेक्षा एक या दो अंश उष्णतर या शीतलतर उत्तेजनाएं ही उष्ण या शीतल संवेदना प्रदान करेंगी। उपर्युक्त सीमाओंसे आगे बढ़ने पर तापीय ज्ञानेन्द्रिय अपना अनुकूलन पूरी तरह नहीं कर पाती, फलत: बहुत ठंडी वस्तु देर तक ठंडी महसूस होती रहती है और बहुत गरम वस्तु देर तक गरम या गुनगुनी महसूस होती रहती है (३)।

तापीय ज्ञानेन्द्रियके अनुकूलनका प्रदर्शन करनेकी एक सरल तथा आकर्षक विधि यह है: तीन कटोरियोंमें पानी लीजिए, एक कटोरीका पानी त्वचा-तापमान का हो और जिसमें हाथ डालने पर न गरम, न ठंडा महसूस होता हो; दूसरी कटोरीका पानी निश्चित रूपसे गरम हो और तीसरी कटोरी का पानी निश्चित रूपसे ठंडा हो। अब एक हाथको गरम पानी में डालिए और दूसरे हाथको ठंडे पानीमें; आधा मिनट तक ऐसे ही रहने दीजिए। इसके बाद दोनों हाथोंको मध्यम ताप वाले पानीमें डाल दीजिए। इस दशामें, शीतलता से अनुकूलित हाथ निस्सन्देह उष्णता का अनुभव करेगा और साथ ही उष्णता से अनुकूलित हाथ शीतलता का अनुभव करेगा।

तापमापककी भांति त्वचा हमें बतला देती है कि कोई वस्तु त्वचा-ताप से नीचे है या ऊपर, और यह इस बातकी भी कुछ सूचना दे देती है कि कोई वस्तु कितनी गरम या ठंडी है। त्वचा पर यदि एकसे एक बढ़कर ठंडी वस्तु लगायी जाय तो शीतलता की संवेदना तीव्रतर होने लगती है, और अन्तमें पीड़ा की संवेदना भी जाग्रत् हो जाती है। मनोवैज्ञानिक शून्य (त्वचा-ताप) से वस्तुएं जितनी ही ऊपर होती जायेंगी, उनका स्पर्श करते रहनेसे उष्णता की संवेदना अधिकाधिक तीव्र होती जायगी, और अन्तमें पीड़ा की संवेदना होने लगेगी और दाहक उष्णता का अनुभव होने लगेगा।

स्पर्श-ज्ञानेन्द्रिय तथा ताप-ज्ञानेन्द्रिय, दोनों ही में अनुकूलन[5] की क्षमता बहुत ऊंची मात्रामें दिखायी देती है। त्वचा पर पड़े हुए किसी पूर्णत: स्थिर[6] दबावका अनुभव होना शीघ्र ही बन्द हो जाता है। किसी तंग दस्तानेमें अपना हाथ डालिए और हाथ को चुपचाप उसमें पड़ा रहने दीजिए (ताकि दबावोंमें परिवर्तन न हो सके), थोड़ी देर बाद आप दस्तानेकी तंगीका

[1] stinging [2] aching [3] muscle-sense [4] receptors [5] adaptation [6] steady

अनुभव करना ही बन्द कर देंगे (१५)।

त्वक्-आदाता[1]. असंख्य बोध-स्नायु-तन्तु त्वचाके पास तक फैले रहते हैं और वहां उनमेंसे प्रत्येक कई सूक्ष्म शाखाओंमें विभक्त हो जाता है। त्वचाके सबसे ऊपरी, बालोंवाली तह में नहीं, किन्तु उससे तनिक नीचेकी ओर सूक्ष्म स्नायु-शाखाओं का पूरा जाल-सा बिछा हुआ है। बालोंवाले हिस्सोंमें, बाल (रोम) की जड़ स्नायु-शाखाओंके इस जाल तक फैली रहती है, इस लिए जब बालोंको बाहरकी ओर स्पर्श किया जाता है, तब स्नायुओंके सिरोंको उत्तेजित करनेमें वे लघु लीवर[2] का कार्य करते हैं। वे स्पर्श-संवेदनाके लिए सहायक उपकरण[3] का काम देते हैं।

रोमहीन भागोंमें, खासतौरसे हथेलियोंमें, कतिपय बोध-स्नायु-तन्तु त्वक्-ऊति[4] के छोटे-छोटे शंकुओंमें समाप्त होते हैं। इन स्पर्श-देहाणुओं[5] को स्पर्श-आदाताओं के रूपमें माना जाता है। गोलाकार अन्त्य-कन्द[6] जो सूक्ष्म गोल या अंडाकार पिंड होते हैं, तथा जिनमेंसे प्रत्येकमें एक बोध-स्नायु-तन्तु समाप्त होता है, सम्भवत: शीतलताके आदाता होते हैं (१६)

बोध-स्नायुओंके सिरे[7] केवल त्वचामें उपस्थित नहीं हैं, बल्कि चर्माधः ऊति[8] (चमड़े के नीचे रहने वाला पदार्थ) में भी पाये जाते हैं। इसी लिए त्वचा को औषध द्वारा संवेदनाहीन कर देने पर भी गहरा दबाव और हल्की पीड़ाका अनुभव किया जा सकता है। त्वक्-संवेदना मुँह और नाकमें भी होती है; जीभकी नोक[9] बहुत संवेदनशील स्पर्शेन्द्रिय है, किन्तु कुल मिलाकर ये हिस्से स्वयं त्वचासे अधिक संवेदनशील नहीं होते। जैसा कि प्रत्येक व्यक्ति जानता है, त्वचा के कुछ भाग अन्य भागोंकी अपेक्षा अधिक संवेदनशील होते हैं और एक क्षेत्र विशेषत: शीतलता के प्रति, दूसरा क्षेत्र उष्णताके प्रति; कोई दूसरा क्षेत्र स्पर्शके प्रति और कोई अन्य क्षेत्र पीड़ाकी उत्तेजनाओंके प्रति संवेदनशील होता है।

आजकल हम एक स्पर्श-ज्ञानेन्द्रियके बजाय «चार त्वक् ज्ञानेन्द्रियों[10]» की बात करने लगे हैं। उष्णता, शीततल पीड़ा और स्पर्श आदि एकदम भिन्न संवेदनाओंके रहते हुए हम विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों की बात करके कुछ अनुचित नहीं कर रहे हैं, हालांकि यह अभी तक स्पष्ट नहीं हो सका है कि उनमेंसे हरेक भिन्न प्रकारका आदाता[11] है या नहीं।

गति की ज्ञानेन्द्रिय

गति-ज्ञानेन्द्रिय ही वह प्रसिद्ध 'छठी ज्ञानेन्द्रिय' है, जिसके
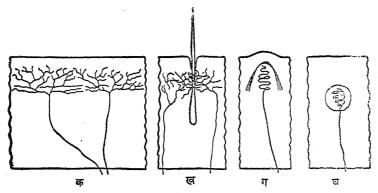
आकृति १०७. त्वचा-आदाताओं की रेखाकृतियां। त्वचा की सतह सबसे ऊपर है, स्नायु-तन्तु नीचेसे, अर्थात् त्वचा के भीतरसे प्रविष्ट होते हुए दिखाये गये हैं।

'क' सर्वाधिक सामान्य त्वचा-आदाता है। यह पीड़ा की संवेदना तो देता ही है, सम्भवत: अन्य संवेदनाएं भी देता है।

'ख' बाल है, जो स्पर्श-इन्द्रियके रूपमें दिखाया गया है।

'ग' एक स्पर्शाणु है।

'घ' एक अन्त्य-कन्द[6] है जो सम्भवत: शीतके प्रति प्रतिक्रियाशील होता है। अन्त्य-कन्दोंके कई अन्य प्रकार श्लैष्मिक कला[12] पुतलीकी सतह त्वचाकी गहराइयों और अन्यत्र भी पाये जाते हैं। वे निश्चित रूपसे आदाता होते हैं, किन्तु उनकी ठीक उत्तेजनाएं क्या हैं, यह अभी तक नहीं मालूम किया जा सका।

[1] the skin receptors [2] lever [3] accessory apparatus [4] skin tissues [5] touch corpuscles [6] spherical end-bulbs [7] endings [8] subcutaneous tissue [9] tip [10] four skin senses [11] receptor

विरोध में उन्नीसवीं सदीके मध्यमें उन लोगों द्वारा बड़ा वितंडा वाद मचाया गया था, जो यह मानते थे कि पांच ज्ञानेन्द्रियां हमारे पूर्वजोंके लिए ठीक थीं, वही हमारे लिए भी काफ़ी ठीक होनी चाहिए। प्रश्न यह था कि क्या स्पर्श-ज्ञानेन्द्रिय शारीरिक गतिकी सभी संवेदनाओंका स्पष्टीकरण नहीं करती। यह दिखाया गया कि त्वक्-ज्ञानेन्द्रिय के अतिरिक्त भी कोई चीज़ होनी चाहिए, क्योंकि गतिहीन हथेली पर वस्तुको रख लेनेसे ही उसका बोझ उतनी अच्छी तरह नहीं मालूम पड़ता, जितनी अच्छी तरह उसे हाथमें उछालनेसे मालूम पड़ता है; और क्योंकि किसी अंगकी संगठित गतियां केवल उसकी त्वचा के स्नायुओं को नष्ट करनेसे उतनी अस्त-व्यस्त नहीं होतीं, जितनी उसके «सभी» बोध-स्नायुओंके नष्ट होने पर हो जाती हैं। आगे चलकर यह महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रस्थापित किया गया कि ज्ञानेन्द्रियां (मांस-पेशीके तकुए[1]) मांस-पेशियोंमें अवस्थित होती हैं और इसी तरह की ज्ञानेन्द्रियां कंडराओं[2] में और सन्धियों[3] के आस-पास उपस्थित रहती हैं। यह ज्ञानेन्द्रिय केवल मांस-पेशी-ज्ञानेन्द्रिय न होकर-मांस-पेशी, कंडरा और सन्धि (जोड़) ज्ञानेन्द्रिय है।

यह ज्ञानेन्द्रिय पैशिक संकोचों[4], शारीरिक संस्थितियों और शरीरके हिलाये-डुलाये जानेसे तथा किसी गतिमें किसी बाहरी रुकावट के आने पर उत्तेजित होती है। यह वस्तुओंके वज़न, उनकी मज़बूती या ढिलाई, कठोरता या कोमलता, सख़्ती या लचीलेपनके विषयमें महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रदान करती है। गति-ज्ञानेन्द्रिय और स्पर्श-ज्ञानेन्द्रिय साथ-साथ काम करके हमें इस योग्य बनाती हैं कि हम किसी वस्तुको पहचान सकें और हाथसे उसे टटोलकर उसके आकार और शक्लका ज्ञान कर सकें।

प्रतिक्षेप[5] क्रिया और ऐच्छिक[6] क्रिया दोनोंमें ही गति-ज्ञानेन्द्रिय का महत्त्व है। जब आप कोई गति प्रारम्भ करना चाहते हैं, तब इसके बिना आपको अंगोंकी वर्तमान स्थितिकी सूचना नहीं मिल सकती; जब गति प्रारम्भ हो चुकी हो, तब इसके बिना आपको इस बातकी जानकारी नहीं हो सकती कि गति कितनी दूरतक आगे बढ़ चुकी है और न आप यही जान सकते हैं कि गतिको कब बन्द करना चाहिए। गति-कम्प[7] एक रोग है, जिसमें शरीरकी स्थिति अस्थिर रहती है और गतियों पर मनुष्यका नियंत्रण कम हो जाता है; यह बीमारी मुख्यत: गति-ज्ञानेन्द्रियके स्नायुओंसे सम्बन्ध रखती है।

आंगिक संवेदना[8]

'आंगिक संवेदना' में आन्तरिक अंगोंकी कई तरहकी संवेदनाएं, जैसे—भूख, प्यास, मिचली[9], छातीकी जलन, दम घुटना आदि आ जाते हैं; और कुछ अस्पष्ट शारीरिक संवेदनाएं भी, जो किसी क्षणकी संवेगात्मक दशाको प्रभावित कर देती हैं, इसमें सम्मिलित हैं। क्षुधा एक संवेदना है। जब आमाशय भोजनके लिए प्रस्तुत होने पर अपनी मथन-क्रिया प्रारम्भ करता है, तब आमाशय की दीवारोंमें रगड़ पैदा होने से यह संवेदना जाग्रत् होती है। आभ्यन्तर अंगोंका विधिवत् अनुसन्धान करनेसे यह आश्चर्यजनक तथ्य प्रकट होता है कि वहां बहुत कम संवेदनाएं उत्पन्न होती हैं, किन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि अभी ऊपर जिन संवेदनाओंका हमने उल्लेख किया है, वे वास्तवमें वहीं उत्पन्न होती हैं जहां वे उत्पन्न होती मालूम पड़ती हैं; अर्थात् धड़ का भीतरी भाग उनका उत्पत्ति-स्थल है।

स्वादेन्द्रिय

एक साधारण प्रयोगसे यह पता चल जाता है कि खान-पान के तथाकथित अनेक स्वाद वास्तवमें आंशिक रूपसे ही विशुद्ध स्वाद हैं। वह प्रयोग यह है: परीक्षार्थी अपनी नाक पकड़ता है, ताकि गन्ध-आदाताओं[10] के समीप कोई गन्ध न जाने पावे। इस के बाद वह कॉफ़ी और कुनैनके हल्के घोलमें भेद नहीं कर पाता, या सेबके रस और प्याज़के रसमें भेद नहीं कर पाता। कॉफ़ी और कुनैनमें कड़वाहटका सादृश्य है और उनमें यही स्वाद भी है; प्याज़ और सेबमें मधुर स्वादका सादृश्य है। मूल स्वाद केवल इतने हैं; «कड़वा», «मीठा», «खट्टा» और «नमकीन» (१०)।

मुंहके भीतरी भागमें त्वक्-ज्ञानेन्द्रियके साथ-साथ स्वाद-ज्ञानेन्द्रिय भी होती है। तीखा[11] 'स्वाद' अंशतः पीड़ा और नरम 'स्वाद' अंशतः स्पर्श-संवेदना होता है। जिस चीज़को हम ग़लती से भोजनका स्वाद कहते हैं, उसमें भोज्य या पेय पदार्थका तापमान भी अपना स्थान रखता है। मुँहसे प्राप्त होनेवाली इन सब संवेदनाओंके अतिरिक्त मुंहमें जाकर भोजन भी गलेकी राह और नाकको जानेवाली पिछवाड़ेकी राहके जरिये घ्राणेन्द्रियको उत्तेजित करता है। भोजनका «स्वादिष्ठ होना» बहुत कुछ उसकी गन्ध पर निर्भर करता है।

त्वक्-संवेदनाओंकी तरह स्वादोंके विश्लेषणमें भी इस तथ्य से बहुत सहायता मिलती है कि विभिन्न संवेदनाएं विभिन्न स्थानोंको उत्तेजना पहुँचनेसे उत्पन्न होती हैं। जिह्वा-तल पर जो छोटे-छोटे उभरे हुए अंकुर-से[12] होते हैं, उनमेंसे कुछमें स्वाद आदाता[13] होते हैं और वे मोटेतौर से त्वचाके सांवेदनिक स्थानों

[1] muscle spindles [2] tendon [3] joints [4] muscular contractions [5] reflex [6] voluntary [7] locomotor ataxia [8] organic sensation [9] nausea [10] olfactory receptors [11] biting [12] papillae or protuberances [13] taste receptors
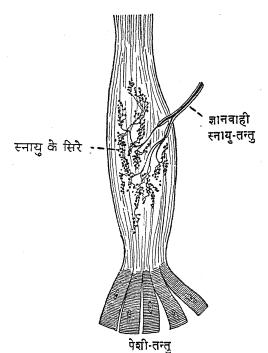
आकृति १०८. पुस्तकमें उल्लिखित मांस-तकुए[1] के समान ही एक कंडरा-तकुआ[2]। किन्तु यह तकुआ पेशी-द्रव्यके बजाय कंडरामें पाया जाता है। जब अपनी मांस-पेशीके संकुचनके कारण कंडरा तन जाती है, तब स्नायुके सिरे[3] निचुड़ जाते हैं और उत्तेजित होते हैं। [रैमनी काजल]।

के तुल्य होते हैं। कुछ उभरे हुए अंकुर[4] केवल एक प्रकारकी स्वाद-संवेदना प्रदान करते हैं और उनमेंसे कई चार मूल स्वादों में से केवल दो या तीन स्वादोंकी संवेदना प्रदान करते हैं। मुख्यरूपसे, कड़वा स्वाद जीभके पृष्ठ भागमें पहचाना जाता है और मधुर स्वाद जीभकी नोकसे, खट्टा स्वाद जीभके किनारोंसे और नमकीन स्वाद नोक[5] से तथा किनारोंके निकटवर्ती भागसे जाना जाता है। मीठा बनाया गया कोई कड़वा घोल यदि एक छोटे ब्रुश द्वारा जीभकी नोक पर लगाया जाय, तो उसका स्वाद मीठा लगेगा, किन्तु यदि उसे जीभके पिछले हिस्सेमें लगाया जाय, तो उसका स्वाद कड़वा जान पड़ेगा।

वास्तविक स्वाद-आदाता[6], जिन्हें स्वाद-कलियां[7] कहते हैं, जिह्वा-तल पर नहीं स्थित होते, बल्कि उन छोटे-छोटे गड्ढोंमें स्थित होते हैं, जो तलसे नीचेकी ओर फैले रहते हैं। स्वाद-कलियां ज्ञान-कोशाओंके गुच्छे होती हैं, प्रत्येक कोशाका एक पतला सिरा होता है, जो गड्ढे[8] में पहुंचा होता है। वहां वह मुंहमें उपस्थित शक्कर या नमक या अन्य किसी स्वादिष्ठ वस्तुके सम्पर्कमें आता है। इस प्रकार क्रियाशील बनने पर ज्ञान-कोशा[9] ज्ञान-स्नायु-तन्तुको जाग्रत् करती है, जो कोशाकी जड़के चारों ओर लिपटा होता है। इस प्रकार बोध-स्नायु के सहारे-सहारे चलकर स्नायु-आवेग[10] मस्तिष्कमें पहुंचते हैं।
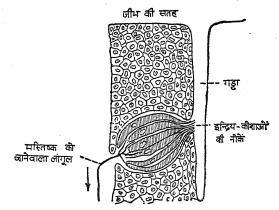
आकृति १०९. एक स्वाद-कलिका[7]। चित्रमें उसका स्थान और उसके स्नायु दिखाये गये हैं।

स्वादेन्द्रियको मिलनेवाली उत्तेजना रासायनिक होती है। जिस वस्तुका स्वाद लेना हो, वह घोल[11] के रूपमें होनी चाहिए, ताकि वह गड्ढोंमें प्रविष्ट हो सके और स्वाद-कोशाओंकी संवेदनशील नोक तक पहुंच सके। यदि जीभके ऊपरी तलको पहले सुखा लिया जाय और उस पर सूखी चीनी या नमकका एक टुकड़ा डाला जाय, तो उससे स्वादकी कोई संवेदना नहीं उत्पन्न होती। जब थोड़ी लार एकत्र हो जाती है और वस्तुका कुछ अंश उसमें घुल जाता है, तब उस वस्तुमें स्वाद मालूम पड़ने लगता है।

यह जानना एक कठिन समस्या है कि ठीक-ठीक वह कौन-सा रासायनिक साधन है, जो एक निर्दिष्ट स्वाद-संवेदना उत्पन्न करता है। कई विभिन्न पदार्थ कड़वी संवेदना प्रदान करते हैं। प्रश्न है कि इन पदार्थोंमें कौन-सी चीज एक-सी है। मीठा स्वाद केवल शक्कर द्वारा ही उत्पन्न नहीं होता, बल्कि 'ग्ली-सरीन[12]' 'सैक्रीन[13]' तथा 'लेड एसीटेट[14]' द्वारा भी। खट्टा स्वाद सभी अम्लों[15] से ही नहीं पैदा होता, बल्कि कुछ ऐसे पदार्थोंसे भी पैदा होता है, जो रासायनिक दृष्टिसे अम्ल नहीं होते। स्वाद-उत्तेजनाओंका रसायन अभी तक पूरी तरह

[1] muscle spindle [2] tendon spindle [3] nerve endings [4] papillae [5] tip [6] taste receptors [7] taste buds [8] pit [9] sense-cell [10] nerve impulses [11] solution [12] glycerine [13] saccharine [14] lead acetate [15] acids

नहीं समझा जा सका है।

यद्यपि उत्तेजनाके सम्बन्धमें ऐसी संदिग्धता है, तो भी कुल मिलाकर, जटिल संवेदनाओंके विश्लेषणमें प्रायोगिक विधियों द्वारा प्राप्त की हुई सफलताका एक अच्छा उदाहरण स्वाद-ज्ञानेन्द्रियमें मिलता है। साथ ही साथ यह विभिन्न संवेदनाओं के एक खास तरहके "मिश्रण[1]" में एकीभूत होनेका भी अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करती है। यद्यपि विश्लेषण करने पर नित्य-प्रतिके जीवनमें अनुभव होनेवाले अनेक 'स्वाद' गन्ध, स्वाद, स्पर्श, पीड़ा, ताप और मांस-पेशीकी संवेदनाओंके मिले-जुले रूप मालूम पड़ते हैं, तो भी उनका प्रभाव इकाइयोंके रूपमें —संगठित रूपमें—पड़ता है। उदाहरणस्वरूप 'लैमोनेड' के स्वादको ही लीजिए। वह मीठा, खट्टा, ठंडा और नीबूकी गन्ध का मिश्रित रूप होता है, किन्तु उसमें एक खास तरहकी अकेली संवेदनाका प्रभाव होता है। उसका विश्लेषण किया जा सकता है, किन्तु साधारणतः वह एक इकाईके रूपमें दिखायी देता है।

घ्राणेन्द्रिय

गन्धोंके इतने अधिक प्रकार हैं कि उनको व्यवस्थित करना बहुत कठिन है। गन्ध-आदाता[2] ऐसे एकान्त स्थान—नाकके पृष्ठ भागमें एक छोटी-सी गुफा—में हैं कि उनकी जांच-पड़ताल त्वचा या जिह्वाकी भांति सरलतापूर्वक नहीं की जा सकती। ये आदातृ-कोशाएं नासिका-छिद्रकी तहमें बिछी हुई श्लैष्मिक कला[3] में जड़ी होती हैं और उनकी सूक्ष्म नोकें (सिरे) नासिका-छिद्रमें बराबर हवाके सम्पर्कमें आती रहती हैं, इस लिए हवामें उपस्थित जिन गन्धमय पदार्थोंको हम श्वासके ज़रिये भीतर खींचते हैं, वे उनको रासायनिक उत्तेजना प्रदान करते हैं।

चूंकि हम हर अलग आदाताको पृथक् उत्तेजना नहीं दे सकते, इसलिए विश्लेषण करनेके निमित केवल यही किया जा सकता है कि गन्धोंको पूर्णतः श्रेणीबद्ध कर लिया जाय और उनकी समानताओं तथा भिन्नताओंसे पूर्णतया परिचित हो लिया जाय। इनकी श्रेणी[4] बनायी जा सकती है और वह इस प्रकार कि एक प्रमुख गन्धसे शुरू करके मध्यवर्ती गन्धोंसे होते हुए अन्य किसी प्रमुख गन्धपर उसे समाप्त कर दिया जाय। हालमें, इस सम्बन्धमें जो काम हुआ है, उसमें लगभग ६ प्रमुख गन्धोंका पता मिला है, किन्तु वास्तवमें ये मूल गन्ध हैं या नहीं, यह अभी तक अनिश्चित ही है। नीचे हम हेनिंग[5] द्वारा किये गये वर्गीकरण या प्रमुख गन्धोंकी सूची प्रस्तुत कर रहे हैं (६):

१. मसालेकी गन्ध—जो लौंग तथा दालचीनी आदिमें मिलती है।

२. महक[6]—जो बेला, चमेली आदिमें पाई जाती है।

३. ईथरकी गन्ध[7]—जो सन्तरेके तेल तथा ईथर आदिमें पायी जाती है।

४. रालकी गन्ध—जो तारपीनके तेल और देवदारकी पत्तियों आदिसे आती है।

५. सड़नेकी गन्ध—जो हाइड्रोजन सल्फ़ाइड आदिसे आती है।

६. जलनेकी गन्ध—जो जले हुए पदार्थोंसे आती है।

ये तो प्रमुख गन्ध हैं, किन्तु इनके अतिरिक्त कई मध्यवर्ती गन्ध भी हैं। भूनी हुई कॉफ़ी[8] में रालकी गन्ध और जलने की गन्धके बीचकी गन्ध आती है। इसी तरह पिपरमिंटमें ईथर और मसालेकी गन्धके बीचकी गन्ध आती है।
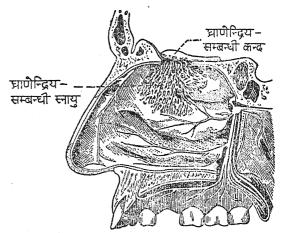
आकृति ११०. घ्राणेन्द्रियका एकान्त स्थान।

नाकके अन्तःप्रदेशके निचले हिस्सेमें त्वक्-ज्ञानेन्द्रियां[9] होती हैं, जो कई श्वासके साथ पहुंचे हुए पदार्थों द्वारा उत्तेजित की जाती हैं और उन पदार्थोंकी 'गन्ध' में अपना भाग भी बँटाती हैं। कपूर[10] या मेन्थौल[11] की 'गन्ध' अंशतः शीतल-संवेदनाके समान होती है, और अमोनिया (नौसादर +चूना+जल), एसेटिक एसिड, क्लोरीन[12] या आयोडीन की 'तीक्ष्ण गन्ध[13]' अंशतः पीड़ा-संवेदना होती है।

घ्राणेन्द्रियकी उत्तेजना निस्सन्देह रासायनिक होती है, किन्तु अभी तक रासायनिक अनुबन्धों[14] का ठीक-ठीक पता नहीं लग सका है। यह ज्ञानेन्द्रिय अत्यन्त संवेदनशील होती है, जो वायु

[1] blends [2] olfactory receptors [3] mucous membrane [4] series [5] Henning [6] fragrant [7] ethereal [8] coffee [9] cutaneous senses [10] camphor [11] menthol [12] chlorine [13] pungent odour [14] chemical correlations

में मिले हुए कतिपय पदार्थोंकी बहुत थोड़ी मात्राओंके प्रति भी प्रतिक्रिया करती है। अन्य पदार्थ कोई घ्राण-सम्बन्धी प्रतिक्रिया नहीं जगाते। कई पशु, जैसे कुत्ता, संसारकी छान-बीन करनेमें इस ज्ञानेन्द्रियका हमसे कहीं अधिक उपयोग करते हैं, किन्तु सम्भवतः हम इसका इस्तेमाल उससे अधिक करते हैं, जितना हम समझते हैं कि हम वास्तवमें करते हैं।

श्रवणेन्द्रिय

ध्वनि भौतिक दृष्टिसे एक तरंग-गति है, जो वायु या अन्य किसी प्रवाहक माध्यममें उत्पन्न कम्पन[1] है। वायुमें वायु के पीछे और आगे जानेकी एक हल्की गति होती है, जिससे ध्वनि उत्पन्न होती है। वायुमें उत्पन्न यह गति इतनी हल्की होती है कि स्पर्शेन्द्रिय द्वारा उसका अनुभव नहीं किया जा सकता। कान अपनी ज्ञान-कोशाओं[2] और सहायक उपकरण[3] के कारण अत्यधिक संवेदनशील होता है।
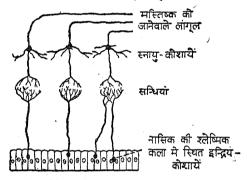
आकृति १११. घ्राणेन्द्रियकी चार कोशाएं और उनसे सम्बन्धित स्नायु। नासा-गुहा, जिसमें कोई गन्धमय वाष्प उपस्थित हो सकती है, आकृतिमें श्लैष्मिक कलाके नीचे स्थित है।

कानका ध्वनि-आदातृ उपकरण. हम बाह्य, मध्य तथा अन्तःकर्ण की बात करते हैं। बाह्य कर्ण संग्रहकर्ता[4] होता है, मध्यकर्ण परिवर्तक[5] होता है और अन्तःकर्ण संवेदनशील आदाता[6] होता है। मनुष्यके बाह्य कर्णमें कर्ण-तुरही[7] की क्रिया बहुत कम दिखायी देती है; गधा बड़ी सुन्दरताके साथ इस क्रियाका प्रदर्शन करता है। यदि मनुष्यके बाह्य कर्ण काट दिये जाएं, तो भी सुननेकी क्रिया पर इससे कोई उल्लेखनीय प्रभाव नहीं पड़ेगा। ध्वनि-तरंगें कर्ण-छिद्र में प्रविष्ट होती हुई «कर्णपटह—कानका परदा—[8]» पर आघात करती हुई उसमें कम्पन उत्पन्न करती हैं। वह झिल्ली अपनी गतिको अस्थिकाओं[9] तक पहुँचाती है। अस्थिकाएं मध्यकर्णमें तीन लघु अस्थियों[10] मुद्गर,[11] निहाई,[12] रकाब का एक समूह है। ये अस्थियां मध्यकर्णसे अन्तःकरण तक जाने वाले एक छोटे-से छिद्र पर कम्पनको केन्द्रित करती हैं। इस प्रकार मध्यकर्णका यांत्रिक संगठन अन्तःकरणमें भरे हुए तरल पदार्थमें कम्पन उत्पन्न करनेका महत्वपूर्ण कार्य कर पाता है।

अन्तःकर्ण खोपड़ीकी हड्डियोंमें से एक हड्डीके भीतर एक गुहाके रूपमें स्थित होता है—यह गुहा बहुत छोटी होती है, किन्तु जटिल होती है, क्योंकि इसके मध्यमें एक «ड्योढ़ी[13]» और एक पेचदार रास्ता होता है तथा ड्योढ़ीसे बाहरकी ओर निकली हुई तीन «अर्धचक्राकार नालियां[14]» होती हैं। पेचदार रास्ता «कोकला[15]» या घोंघा[16] कहलाता है, इसमें ध्वनि-आदाता[17] होते हैं। इन कोशाओंमें ध्वनि-कम्पनोंको ग्रहण करनेके लिए सूक्ष्म रोम-कोशाएँ होती हैं। इस प्रकार जब ये कोशाएं क्रियाशील हो जाती हैं, तब श्रवण-स्नायु[18] के निकटवर्ती तन्तुओं[19] को उत्तेजित करती हैं, और स्नायु-आवेग मस्तिष्ककी ओर दौड़ने लगते हैं। ज्ञान-कोशाएं[20] «आधार
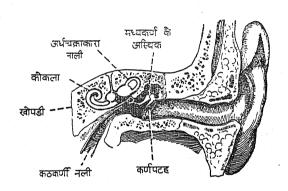
आकृति ११२. बाह्य, मध्य और अन्तःकर्ण। बाह्य कर्णमें प्रविष्ट होनेवाली ध्वनि-तरंगें कर्णपटह या कानके ढोलसे टकराती हैं और उसे कम्पायमान कर देती हैं। यह कम्पन 'अस्थिकों' द्वारा अन्तःकरणमें भरे हुए तरल पदार्थको प्रेषित किया जाता है और इस प्रकार यह कोकलाके पास पहुंचता है। मध्य कर्ण हवासे भरा रहता है। यह हवा मध्य कर्णमें गले और 'कंठकर्णी' नलीके रास्तेसे पहुंचती है।

[1] vibration [2] sense-cells [3] accessory apparatus [4] collector [5] transformer [6] sensitive recepto r [7] ear trumpet [8] tympanic membrane [9] ossicles [10] malleus [11] incus [12] stapes [13] vestibule [14] semi-circular canals [15] cochlea [16] snail [17] auditory receptors [18] auditory nerve [19] fibres [20] sense-cells

कला[1] पर स्थिति होती हैं। आधार-कला एक तन्तुमय फीता होती है, जो अस्थिकी दोनों दीवारोंके बीच फैली होती है और 'कोकला' की लम्बाईमें फैली रहती है। यह 'कोकला' के एक सिरेसे दूसरे सिरे पर अधिक चौड़ी रहती है और जैसे-जैसे यह चौड़ी होती है, सुस्त पड़ती जाती है और अधिक कोशाओंके भारसे बोझिल होती जाती है। इन विस्तारकी बातोंसे यह पता चलता है कि आधार-कला का एक सिरा क्षिप्र ध्वनि-कम्पनों के लिए प्रस्तुत रहता है और उसका शेष भाग क्रमशः धीमे कम्पनोंके लिए, जैसा कि पियानो या वीणा के तारोंमें भी दिखायी देती है।

अन्तःकर्ण किस प्रकार कार्य करता है. हेलमहोल्त्स[2] का 'पियानो सिद्धान्त' या «श्रवणका प्रतिध्वनि (गूंज) सिद्धान्त[3]» उपर्युक्त सुझावको स्वीकार करता है और यह मान लेता है कि जब कभी 'कोकला' में भरे हुए तरल पदार्थमें एक विशेष गतिसे कम्पन होता है, तब उस खास कम्पन-गति के लिए प्रस्तुत रहनेके कारण आधार-कलाका एक खास भाग

आकृति ११३. अन्तः कर्णकी गुहा। आदाता इस गुहाके भीतर होते हैं। देखिए, तीनों अर्धचक्राकार नालियां तीन धरातलों पर, लगभग एक-दुसरेसे लम्बाकार स्थित हैं।

अनुचारि कम्पन[4] करने लगता है। (अनुचारि कम्पनका उदाहरण इस प्रकार दिया जा सकता है : जब आप पियानोके पांवदान[5] को दबाते हैं, तब वह उसके तारों पर रखी हुई गद्दीको उठाता है और उसी समय आप एक तान अलापते हैं। गाना बन्द करनेके पश्चात् आप पियानोको वही तान दुहराते हुए सुनते हैं, क्योंकि उस तानके लिए प्रस्तुत तार आपके गानेसे उत्पन्न वायु-तरंगों द्वारा कम्पायमान कर दिये गये होते हैं।) जब मध्यकर्णके यांत्रिक संगठन द्वारा अन्तःकर्णके तरल पदार्थ को एक खास कम्पन-गति का स्वर प्रेषित किया जाता है, तब यह मान लिया जाता है कि आधार-कला का तत्सम्बन्धी[6] भाग भी कम्पायमान हो गया होगा। जैसे साधारणतः होता है, जब भीतर आनेवाली ध्वनिमें एकसे अधिक कम्पन-गतियां[7] होती हैं, तब आधार कला के दो या दो से अधिक क्षेत्रोंमें कम्पन उत्पन्न हो जाता है। आधार-कला के चाहे जिस भागमें कम्पन हो, उस भागमें स्थिति रोम-कोशाएं[8] भी हिल जाती हैं और उत्तेजित हो उठती हैं। वे बदलेमें सम्बन्धित स्नायु-सिरों को उत्तेजना प्रदान करती हैं और स्नायु-आवेगों[9] का मस्तिष्क की ओर भेजने लगती हैं। आधार-कला के विभिन्न भागोंके अलग-अलग कम्पन-गतियोंके लिए प्रस्तुत होनेकी बात यदि आप समझ गये होंगे, तो आपको यह समझते देर न लगेगी कि व्यक्ति विभिन्न कम्पन-गतियों की ध्वनियोंको कैसे पहचान लेता है, किस प्रकार वह ऊंचे, नीचे और मध्यम स्वरोंको सुनता है और किस प्रकार वह सारंगी की तांतोंमें से किसी एक तांत के स्वरको और गुल-गपाड़े में से किसी एक आवाज़को सुन पाता है (१, ८, १७)।

यदि यह सिद्धान्त सही है तो 'कोकला[10]' के एक सीमित भाग पर कोई चोट पहुँचनेसे सभी स्वरोंको सुननेमें समान रूपसे खराबी नहीं आनी चाहिए, बल्कि कुछ निकटतम कम्पन-गति वाले स्वरोंके सुननेमें त्रुटि आनी चाहिए। प्रायः देखा जाता है
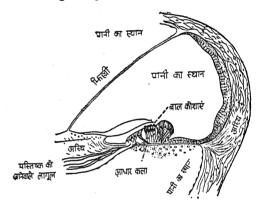
आकृति ११४. कोकलाकी व्यत्यस्त काट, जो ज्ञान कोशाओंकी एक क़तारको प्रदर्शित कर रही है। इस प्रकार की लगभग ५,००० क़तारें आधार कला[1] पर खड़ी रहती हैं। तीनों 'पानीके स्थानों' में से प्रत्येक एक पतली नली होता है। ध्वनि-तरंगें तीनों नलियोंमें से सबसे ऊपरवाली नलीके द्वारा मध्यकर्ण और 'ड्योढ़ी[11]' से भीतरकी ओर आती हैं, वे झिल्लियोंसे होकर गुज़रती हैं, और सबसे नीचेवाली नलीके द्वारा पीछेकी ओर एक ऐसे स्थान पर ले जायी जाती हैं, जो मध्य कर्णको जाता है। आधार-कलासे गुज़रते समय वे अपना कार्य करती रहती हैं।

कि मनुष्योंमें बहुत ऊंचे स्वरोंको सुननेकी शक्तिका ह्रास हो जाता है। कुछ व्यक्तियोंकी, जिनके विषयमें ठीक पता चल गया था कि उनमें ऊंचे स्वरोंको सुननेकी शक्ति नहीं है, शव-परीक्षा से मालूम किया गया कि आधार कला का संकीर्ण सिरा ही,

[1] basilar membrane [2] Helmholtz [3] resonance theory of hearing [4] sympathetic vibration [5] pedal [6] corresponding [7] vibration rate [8] hair cells [9] nerve impulses [10] cochlea [11] vestibule

जो इस सिद्धान्तके अनुसार ऊंचे स्वरोंसे सम्बद्ध होता है, वह भाग है, जिस पर किसी तरहकी चोट पहुँची है या जिसमें कोई खराबी आ गयी है। इन और कई अन्य निष्कर्षोंसे प्रतिध्वनि (गूंज) के सिद्धान्तको सामान्य समर्थन प्राप्त होता है (२)।

किसी सक्रिय स्नायुसे वैद्युतिक कम्पन[1] शुरू किये जासकते हैं और विपुलन[2] के पश्चात् उनका अंकन किया जा सकता है। अन्तःकर्णकी क्रियाके विषयमें इस अध्ययन-विधिके कारण कई महत्त्वपूर्ण बातें मालूम हो सकी हैं (२०)। साधारणतः प्रतिध्वनि––गूंज––का सिद्धान्त[3] ऊंचे स्वरोंको, जिनकी कम्पन-गति लगभग १००० प्रति सैकेंड होती है, सुननेके लिए ठीक जान पड़ती है, किन्तु नीचे स्वर समस्त आधार-कला को प्रभावित करते हैं, और स्नायुओंके माध्यमसे वे कुछ-कुछ उसी प्रकार आगे बढ़ते हैं, जिस प्रकार टेलीफ़ोन ट्रांसमिटर के द्वारा कम्पन तारोंके ज़रिये आगे भेजे जाते हैं।

श्रवण-संवेदनाएं और उनकी उत्तेजनाएं. एक श्रवण-संवेदना अर्थात् किसी ध्वनिको सुनना, कान पर आघात करने वाले कम्पनोंके प्रति कान और मस्तिष्ककी प्रतिक्रिया होती है। सुनी हुई ध्वनियां मोटे तौरसे स्वरों[4] और शोरों[5] में वर्गीकृत की जाती हैं। स्वर अपेक्षाकृत कोमल और नियमित होते हैं, तथा शोर मिश्रित एवं अनियमित होते हैं। शोर अस्थिर व विविध कम्पनोंके कारण उत्पन्न होता है, जब कि स्वर समरूप कम्पनोंके अनुक्रमके कारण।

सुनी हुई ध्वनियां बुलन्दी[6], तारता[7] और स्वर-गुण[8] में भिन्नता रखती हैं। «तारता[7]» से मतलब है किसी स्वरकी ऊंचाई या निचाई। सोप्रानों[9] की ऊंची तारता होती है और बास[10] की नीची। «स्वर-गुण[8]» से तात्पर्य है विभिन्न वाद्य-यंत्रों तथा अन्य ध्वनि-उद्गमों की विशिष्ट ध्वनि। वायलिन, शहनाई और मनुष्यकी आवाज, ये सभी एक ही समान तारता और बुलन्दी दिखा सकती हैं, किन्तु उनके स्वर-गुण के कारण उनमें सरलता से अन्तर किया जा सकता है।

सुनी हुई ध्वनियोंके इन तीन भेदोंका कारण बतानेके लिए अब हमें उन तरीक़ोका पता लगाना होगा, जिनमें कम्पनशील उत्तेजना अन्तर रख सकती है। वायुमें होनेवाले कम्पन[11], यदि वह जटिल न हों, तो केवल दो स्वतंत्र रूपोंमें भिन्नता रखते हैं: आगे-पीछे झूलनेके फैलाव या विस्तारमें और आवृत्ति या कम्पनकी गति में, कम्पनोंकी प्रति सैकेंड संख्यामें। मिश्रित[12] कम्पनें रचना की दृष्टिसे, अर्थात् जिन सरल कम्पनों से उनका निर्माण हुआ होता है, उनकी संख्या तथा सम्बन्धों की दृष्टिसे भी भिन्नता रखती हैं।

बुलन्दी[6] कम्पनोंके फैलाव[13] पर निर्भर होती है; फैलाव जितना अधिक होगा, ध्वनि उतनी ही बुलन्द होगी। तारता[7] कम्पनोंकी आवृत्ति[14] पर अवलम्बित होती है; आवृत्ति जितनी अधिक होगी, तारता भी उतनी ही ऊंची होगी। स्वर-गुण[8] एक जटिल कम्पनमें विभिन्न आवृत्तियोंके संयोग पर निर्भर होता है। इन सामान्य कथनोंकी थोड़ी व्याख्या और विशिष्टीकरण करनेकी आवश्यकता है।

गम्भीरतम श्रव्य[15] स्वरोंकी कम्पन-गति प्रति सैकेंड २० के लगभग होती है और सबसे ऊंचे श्रव्य स्वरोंकी लगभग २०,००० होती है। इन सीमाओंके बाहर भी बहुत-सी ध्वनियां होती हैं, किन्तु वे कोई श्रवण-संवेदना उत्पन्न नहीं करतीं। मुँहसे बजने वाला कोई बड़ा बाजा प्रति सैकेंड केवल १६ की दरसे कम्पन उत्पन्न कर सकता है, फिर भी श्रोतृशाला को हिला देनेके लिए वह काफ़ी हो सकता है, किन्तु ये कम्पन मनुष्य द्वारा सुने नहीं जा सकते। एक छोटी-सी सीटी प्रति सैकेंड ३०,००० या ५०,००० या इससे भी अधिक कम्पन उत्पन्न करती है; इन कम्पनोंको कोई पशु भले ही सुन सके, किन्तु मनुष्यके कान तो इन्हें सुननेमें असमर्थ हैं। तारता[7] की उच्चतम और निम्नतम सीमाओंकी दृष्टिसे व्यक्तियोंमें अन्तर होता है; उच्चतम सीमा धीरे-धीरे बीस वर्षकी आयुके बाद घटने लगती है।

यद्यपि कान में कम्पन-गतियोंकी इस विस्तृत श्रेणीके प्रति प्रतिक्रिया करनेकी सामर्थ्य होती है, तथापि वह श्रेणीके मध्य भाग, ५०० से ५,००० कम्पन प्रति सैकेंडके प्रति सबसे अधिक संवेदनशील होता है। निर्बल कम्पन श्रव्य श्रेणी[16] के आत्यन्तिक सिरों पर सुने जानेके बजाय इन मध्यम गतियोंसे भी सुने जा सकते हैं। इस प्रकार, बुलन्दी[6] कम्पन-गति के साथ-साथ फैलाव या विस्तार[13] पर भी निर्भर होती है।

पियानोका मध्यम 'सी[17]' जो सभी आवाज़ोंकी पहुँचके भीतर का स्वर होता है, यद्यपि सोप्रानों[9] से नीचा और बास[10] से ऊंचा होता है, तो भी उसकी कम्पन-गति प्रति सैकेंड लगभग २६० होती है। यदि एक अष्टक[18] आगे जाइये, तो आप कम्पन-गति को दुगुनी कर देंगे; एक अष्टक पीछेकी ओर जाइये, तो आप कम्पन-गति आधी कर देंगे। कोई भी गम्भीर बास स्वर[19] मध्यम 'सी[17]' से दो अष्टक नीचे तक जा सकता है, (अर्थात् ६५ कम्पनों वाले स्वर तक), और कोई भी ऊंचा सोप्रानों[9] दो अष्टक ऊपर तक जासकता है (अर्थात् १०,४० कम्पनों वाले स्वर तक)। प्रति सैकेंड २० से

[1] electrical oscillations [2] amplification [3] resonance theory [4] tones [5] noises [6] loudness [7] pitch [8] timbre [9] soprano [10] bass [11] air vibrations [12] compound [13] amplitude [14] frequency [15] audible [16] audible range [17] 'C' [18] octave [19] bass voice

लेकर २०,००० कम्पनों तकके श्रव्य स्वरोंकी पूरी श्रेणी[1] लगभग १० अष्टकों[2] के बराबर होती है। इनमें से संगीतमें केवल ८ अष्टकोंका उपयोग होता है, क्योंकि सबसे ऊंचे और सबसे नीचे श्रव्य स्वरोंका कोई सौन्दर्यात्मक महत्त्व नहीं माना जाता। पियानोमें दो स्वरोंके मध्य सबसे छोटा अन्तर, जिसे अर्धस्वर[3] कहते हैं, एक सप्तक का $\frac{1}{12}$ होता है; किन्तु इसको किसी भी प्रकार तारता[4] का सबसे छोटा श्रव्य अन्तर नहीं कहा जा सकता। अधिकांश आदमी ऐसे स्वरोंका अन्तर समझ सकते हैं जो ४ कम्पन दूर होते हैं और सधे हुए कान एक कम्पनसे कम अन्तरको भी पहचान सकते हैं; जबकि मध्यम 'सी[5]' का अर्धस्वर[3] लगभग १६ कम्पनोंका अन्तर होता है। अर्धस्वर[3] यूरोपीय मापदंडमें काम आनेवाला सबसे छोटा अन्तर[6] मात्र है, और यह मिस्रदेशवासियों और यूनानियों से प्राप्त हुआ है। प्राच्य संगीतके मापदंड इससे भिन्न होते हैं और उनके कुछ अन्तर[6] यूरोपीय संगीतके अर्धस्वरसे भी छोटे होते हैं।

स्वरोंके संयोग, उपस्वर[7] और स्वर-गुण[8]. जब दो या दो से अधिक स्वर एक साथ बजाये जाते हैं, तब या तो स्वर-साम्य सुनाई देता है या स्वर-वैषम्य। यह अच्छा लगेगा या बुरा, यह मुख्यतः इस बात पर निर्भर है कि संयुक्त स्वरोंकी सापेक्ष कम्पन-गतियां क्या हैं, किन्तु कुछ इस बात पर भी निर्भर होता है कि श्रोता उस विशिष्ट संयोगका आदी है या नहीं—सूक्ष्म स्वर-साम्यका आनन्द लेनेके लिए कुछ अभ्यास की आवश्यकता होती है–यह आंशिक रूपसे किसी संगीतमें संस्वरोंके अनुक्रमपर भी निर्भर रहता है।

संस्वर एक मिश्रण, एक इकाई होता है, किन्तु अभ्यास करके आप उन स्वरोंको अलग-अलग सुन सकते हैं, जो उस संस्वर का निर्माण करते हैं। कान एक विश्लेषककी तरह किसी संयोगमेंसे विभिन्न ध्वनियोंको अलग-अलग छांट सकता है। एक परिचित उदाहरण लीजिए: दूसरी आवाजों और बाजारके शोर-गुलके बीच भी आप एक व्यक्तिकी बातको सुन लेते हैं। एक ध्वनि कुछ हद तक दूसरी ध्वनिको अवश्य छिपा लेती है, विशेषकर तब, जब दोनों ध्वनियां एक ही तारताकी होती हैं, किन्तु आप एक उल्लेखनीय मात्रामें विभिन्न ध्वनियोंको सुन सकते हैं। ये ध्वनियां हवामें अलग-अलग नहीं होतीं, और न ये उस समय अलग-अलग होती हैं जब ये कानमें प्रवेश करती हैं, बल्कि एक जटिल कम्पनके रूपमें ये संयुक्त रहती हैं। पियानो-सिद्धान्तके अनुसार, आधार-कलाके विभिन्न भाग विभिन्न कम्पन-गतियोंके लिए प्रस्तुत होनेके कारण किसी संस्वर या ध्वनियोंके अनमेल मिश्रणके अंशभूत स्वरोंको चुन लेते हैं।

किसी वाद्य-यंत्रका अकेला स्वर भी विभिन्न कम्पन-गतियों का मेल होता है। प्रत्येक ध्वनिकारक वस्तु मूल स्वरके साथ-साथ उपस्वर[7] भी उत्पन्न करती है। पियानो पर बजाया गया कोई स्वर मूल स्वर और उपस्वरोंका संयोग होता है और इस जटिल उत्तेजना द्वारा जगायी हुई संवेदना भी एक मिश्रण होती है। अभ्यास करके आप कुछ उपस्वरोंको सुन सकते हैं, किन्तु साधारणतः आप उन मिश्रित स्वरोंको एक इकाईके रूपमें ही ग्रहण करते हैं (जिस तरह आप लेमोनेड के स्वादको ईकाईके रूपमें ग्रहण करते हैं) और पियानोके स्वरोंके विशेष गुणको समझ पाते हैं। कोई दूसरा वाद्य-यंत्र उपस्वरोंका भिन्न संयोग उपस्थित करेगा, उसका मिश्रण भिन्न कोटिका होगा और उसका समग्र गुण भी अलग तरह का होगा। किसी वाद्ययन्त्रका स्वर-गुण[8] उपस्वरोंके उस विशिष्ट संयोगपर निर्भर करता है, जिसे वह प्रस्तुत करता है।

वाक्-ध्वनियां[9]. मनुष्यों द्वारा सुनी जाने योग्य सभी ध्वनियोंमें ये ध्वनियां सम्भवतः सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। बहरे बच्चेके सामने एक बड़ी बाधा यह होती है, जो उसकी बुद्धि-लब्धि[10] में प्रकट हो जाती है, कि वह दूसरे लोगोंकी कही हुई बातोंको सुननेमें असमर्थ होता है। यदि हमें यहां विस्तृत अध्ययन करनेका अवकाश होता, तो हम वाक्-तन्तुओं[11] और मुख द्वारा वाक्-ध्वनियोंकी उत्पत्तिसे प्रारम्भ करते। इस सम्बन्धमें एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि वाक्-तन्तु[1] वाक्-ध्वनियोंको आवाजका तत्त्व प्रदान करते हैं—यह तत्त्व फुसफुसाने[12] और मूक व्यंजनों, जैसे क्, प्, ट्, फ और स् में अनुपस्थित रहता है। जो मूल स्वर गाया या बोला जाता है, उस के साथ-साथ वाक्-तन्तु उपस्वरोंको भी बाहर निकालते हैं। किन्तु वाक्-तन्तु स्वतः कोई 'स्वर' या 'व्यंजन' नहीं उत्पन्न करते। ये तो मुँह, जीभ और ओंठोंकी विभिन्न स्थितियोंके कारण उत्पन्न होते हैं। इनमेंसे कोई भी स्थिति[13] एक प्रति-ध्वनि (गूंज)-प्रकोष्ठ[14] का निर्माण करती है, जिससे वाक्-तन्तुके कतिपय उपस्वर शक्तिशाली बनते हैं; और इस प्रकार उनको 'स्वर' या व्यंजन' को विशेषता प्राप्त हो पाती है। 'ढोल' शब्दके उच्चारणमें «ओ» और 'नीम' शब्दके उच्चारणमें « ई » को बोलनेके लिए मुँहकी जैसी स्थितियां होती हैं; उनकी जरा तुलना कीजिए। 'ओ' वाली स्थिति वाक्-तन्तुओं के उपस्वरोंको ५०० प्रति सैकेंडके क्षेत्रमें परिपुष्टि[15] करती

[1] range [2] octaves [3] semitone [4] pitch [5] 'C' [6] step [7] over tones [8] timbre
[9] speech sounds [10] IQ [11] vocal cords [12] whispering [13] position [14] resonance chamber
[15] reinforce
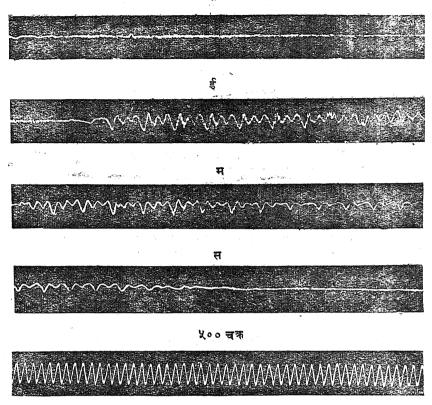
आकृति ११५. 'सीम्स' शब्दका उच्चारण करनेमें जो ध्वनि-तरंगें उत्पन्न होती हैं, उनका एक 'ओसिलोग्राफ़' (कम्पन अंकित करनेवाली मशीन) अभिलेख। शुद्ध « स » केवल छोटी और त्वरित मुख-तरंगें उत्पन्न करता है, किन्तु जैसे ही ध्वनि «ई» का उच्चारण प्रारम्भ होता है, ध्वनि-तन्तु स्वर और उपस्वर प्रकट करने लगते हैं। सबसे नीचेकी पंक्तिमें सरल तरंगों का वह रूप दिखाया गया है, जो एक ध्वनिकारक कांटे (ट्यूनिंग फ़ॉर्क) से उत्पन्न होता है। यह कांटा (फ़ॉर्क) प्रति सैकेंड ५०० बार कम्पन करता है। [फ़्लेचर, ४]।

है और 'ई' वाली स्थिति उनको २५०० प्रति सैकेंडके क्षेत्रमें परिपुष्ट[1] करती है। « स » का उच्चारण करनेकी स्थिति पर भी ध्यान दीजिए: जीभ ऊपरी दन्त-पंक्तिकी जड़ तक पहुंच जाती है और हवाके निकासके लिए एक संकरा मार्ग छोड़ देती है जिससे बहुत तेज कम्पन (लगभग ७५०० प्रति सैकेंड) उत्पन्न होनेमें 'सिसकारी'-सी निकल जाती है; इसको आप 'स' ध्वनिको फुसफुसाते समय अच्छी तरह सुन सकते हैं। यदि आप 'ज़' का उच्चारण करें, तो आप वाक्-तन्तुके स्वर और सिसकारी[2] को मुंहके अग्रभागमें सुन सकेंगे। प्रत्येक वाक्-ध्वनि स्वरोंका अलग-अलग संयोग होती है। टेलीफ़ोन, फ़ोनोग्राफ़ और रेडियो इंजीनियरिंगका विकास हो जानेसे वाक्-ध्वनियोंका सुन्दर अंकन[3] और विश्लेषण प्राप्त करना सम्भव हो गया है।

बोली[4] को सुनते समय हम उसके अंशभूत स्वरों[5] को किसी बड़ी सीमा तक अलग-अलग नहीं सुनते हैं, बल्कि समग्र जटिल स्वर-समूहको परिचित मिश्रणके रूपमें पहचानते हैं। यहां तक कि किसी शब्दका एक साथ उच्चरित होनेवाला भाग[6] भी, जो कई क्रमबद्ध वाक्-ध्वनियोंसे निर्मित होता है, एक इकाई के रूपमें सुना जाता है।

कई उपस्वरों[7] की उच्च तारता[8] से; जिनसे हम एक 'स्वर'

[1] reinforce [2] hissing [3] record [4] speech [5] component tones [6] syllable [7] overtones [8] high pitch
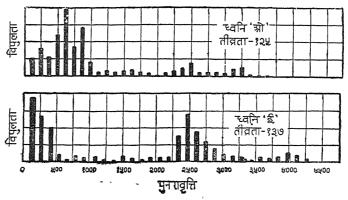
आकृति ११६. किसी मनुष्य द्वारा उच्चरित «ओ» और «ई» स्वरोंको बनानेवाले कम्पनोंका एक विद्युत्-विश्लेषक द्वारा किया गया विश्लेषण। आधार-रेखाके सहारे छड़ोंकी स्थिति प्रत्येक उपस्वरकी कम्पन-गति सूचित करती है; छड़ोंकी ऊंचाई अनेक उपस्वरोंकी सापेक्ष शक्तिको बतलाती है। वाक्-ध्वनियों के विशिष्ट चित्र होते हैं और अब तो इस दिशामें प्रयत्न किये जा रहे हैं कि तेज गतिवाले स्वतः चालित अंकन-उपकरण बनाये जायें, जो बहरे आदमीको आंखोंके जरिये शब्दोंको समझने में समर्थ बना सकें (१६)। [फ़्लेचर, ४]।

या 'व्यंजन' को दूसरे 'स्वर' या 'व्यंजन' से अलग कर पाते हैं, हम देखते हैं कि कानोंका बहुत संवेदनशील होना कितना उपयोगी है; क्योंकि यदि ये इतने संवेदनशील न होते, तो प्रति सैकेंड २,००० से लेकर १०,००० तक की कम्पन-गतियां, जो मनुष्यकी आवाजके क्षेत्रसे, अर्थात् उसके मूल स्वरोंके क्षेत्रसे, बहुत दूर जा पड़ती हैं, बड़ी बेतुकी जान पड़तीं। ये उच्च उपस्वर[1] वाक्-तन्तु के मूलस्वर[2] की तुलनामें निर्बल होते हैं, और चूंकि ऊंचे स्वरोंके प्रति कान की संवेदनशीलता अवस्था के साथ घटती जाती है, इसलिए किसी व्यक्तिको दूसरे लोगोंकी बातें सुन पानेमें अधिक कठिनाई हो सकती है, हालांकि वह उस समय भी उनकी आवाजोंकी घरघराहट सुन सकता है।

प्रारम्भिक श्रवण-संवेदनाएं[3]. उपस्वरों और शोरों[4] से रहित सरल स्वर निम्नतमसे लेकर उच्चतम श्रव्य[5] स्वरोंके हिसाबसे, बिना किन्हीं 'प्रमुख संवेदनाओं[6]' के, जैसा कि हम अन्य ज्ञानेन्द्रियोंमें देख चुके हैं, तारता[7] की एक अविच्छिन्न श्रेणीमें क्रमबद्ध किये जा सकते हैं। त्वक्-ज्ञानेन्द्रियों, दृष्टि, स्वाद और सम्भवतः घ्राणकी ज्ञानेन्द्रियोंको समझनेमें कुछ मूल संवेदनाओंका जो विचार उपयोगी था, उसका श्रवणेन्द्रिय के सम्बन्धमें कोई मूल्य नहीं है। प्रत्येक स्वर, यदि वह अकेला स्वर है तो, किसी भी अन्य स्वरकी भांति मूल[8] स्वर कहा जा सकता है। श्रवण-प्रतिक्रियाओं[9] की इस अविच्छिन्न क्रमिकता के कारण कान तारता[7] को ग्रहण करनेका इतना अच्छा साधन बन जाता है, जितना अच्छा साधन रंगको ग्रहण करनेके लिए आंख भी नहीं होती। आंख जितने सही तौरसे प्रकाशकी किरणोंके मिश्रणको ग्रहण नहीं कर सकती, उससे कहीं अधिक सही तौरसे कान किसी संस्वर[10] के अंशभूत कम्पनों[11] को ग्रहण कर सकता है। किन्तु दूसरी ओर, देश[12] के सम्बन्धोंकी (दूरी इत्यादि) ग्रहण करनेमें आंख कान की अपेक्षा श्रेष्ठ होती है।

वस्तुओंका श्रवण-सम्बन्धी प्रत्यक्षीकरण[13]. दृष्टिवाले प्रकरणमें हमने इस प्रश्न पर विचार किया था कि हम प्रकाश को देखते हैं या वस्तुओं को। सुननेके विषयमें भी एक ऐसा ही प्रश्न उठाया जा सकता है। इसका स्पष्ट उत्तर तो यह है कि हम निश्चय ही ध्वनियोंको सुनते हैं, किन्तु इस सम्बन्धमें कुछ बातें और भी कहनी हैं। शोरों[4] को सामान्यतः « वस्तुओं की ध्वनियों » के रूपमें सुना जाता है। हम साधारणतः बातचीतमें आंधी या लहरों, हवाई जहाज या मधुमक्खी, लकड़ी चीरते हुए मनुष्य या दुलकी चाल चलते हुए घोड़ेको सुननेका जिक्र किया करते हैं। जब हम किसी ऐसे शोर-गुल को सुनते

[1] overtones [2] vocal cord fundamental [3] elementary auidtory sensations [4] noises [5] audible [6] salient sensations [7] pitch [8] primary [9] auditory responses [10] chord [11] component vibrations [12] space [13] auditory perception of objects

हैं, जिसे पहचान नहीं पाते, तब हम बहुत अशान्त और असन्तुष्ट हो उठते हैं, क्योंकि सुनने और देखनेमें हमारी प्रबल प्रवृत्ति उत्तेजना द्वारा लक्षित वस्तुगत तथ्यको ग्रहण करनेकी होती है।

संगीतको सुनते समय हम चाहें तो उसके केवल सौन्दर्यात्मक प्रभावकी ओर ध्यान दे सकते हैं और बिना इस बातकी जानकारी प्राप्त किये कि संगीतके स्वर वायलिनसे आ रहे हैं या बांसुरी से, हम पूर्ण सन्तुष्टिके साथ आंखें मूंद कर स्वरों और संस्वरों के अनुक्रममें खो जासकते हैं। इसी प्रकार, सूर्यास्तके समयके रंग केवल सौन्दर्यके लिए देखे जाते हैं, वस्तुओंके चिह्नों के रूपमें नहीं, हालांकि अभी तक शुद्ध रंगोंकी कोई ऐसी विकसित कला सामने नहीं आयी है, जिसकी तुलना संगीतकी स्वर-सम्बन्धी[1] कला से की जा सके।

किसी व्यक्तिकी बात-चीत सुनते समय हम वास्तवमें क्या सुनते हैं? हम उत्तेजनाओंको, अपने कानों तक पहुँचनेवाली ध्वनियों[2] को सुनते हैं। हम वक्ता को, जो ध्वनि का उद्गम होता है, सुनते हैं; जैसे कि हम किसी हवाई जहाज़ या लकड़ी चीरते हुए मनुष्यको सुनते हैं। हम शब्दों और वाक्योंको ध्वनिके नमूनों[3] के रूपमें सुनते हैं। किन्तु हम वास्तवमें जो चीज़ सुनना चाहते हैं, वह है वक्ता का तात्पर्य। हमारा सारा इरादा यह होता है कि ध्वनि के नमूनोंका भेदन करके अर्थ तक पहुँच जायें। दूसरे कई मामलोंमें भी हम ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त उत्तेजनाओं से अधिक से अधिक अर्थ ग्रहण कर लेनेकी चेष्टा करते हैं।

कभी-कभी उत्तेजना से कूदकर उसके अर्थ तक पहुँच जाने की हमारी इस दृढ़ प्रवृत्तिके कारण हमें धोखा भी हो जाता है। कभी-कभी चिह्न अस्पष्ट होता है और हमारी चतुराई इसीमें होती है कि हम किसी निश्चित अर्थको प्राप्त करने के फेरमें न पड़ें। जहाज़के डेक पर खड़े होकर हम दूर क्षितिज पर कोई अस्पष्ट-सी चीज़ देखते और चिल्ला पड़ते हैं कि 'मैंने ज़मीन देख ली!', किन्तु तभी कोई नाविक हमारी ग़लतीको ठीक कर देता है कि नहीं, यह तो बादल मात्र है। अर्धरात्रिमें हम घरमें किसी चीज़के खटकनेकी आवाज़ सुनते हैं और मान बैठते हैं कि चोर दीवारमें सेंध काट रहा है। यह अधिक ठीक है कि हम थोड़ी देरके लिए अर्थसे पिंड छुड़ाकर केवल उत्तेजनाओं तक पहुँचनेकी चेष्टा करें। किन्तु वास्तविक प्रवृत्ति, जो अधिकांशमें उपयोगी होती है, इससे बिल्कुल विपरीत दिखायी देती है।

किसी ध्वनिके उद्गमका निर्धारण. देश[4] का जितना अच्छा प्रत्यक्षीकरण दृष्टिसे हो सकता है, उतना सुननेसे नहीं; फिर भी ध्वनि कहां से आ रही है, इसे जाननेकी कुछ शक्ति कानमें होती है, अर्थात् वह ध्वनिके उद्गमकी दिशा और दूरी का कुछ-कुछ प्रत्यक्षीकरण कर सकता है। यदि ध्वनि परिचित होती है, तो उसकी बुलन्दीसे पता चल जाता है कि मोटे तौरसे ध्वनिका उद्गम कितनी दूर है। किन्तु उसकी दिशा का पता लगाना कैसे सम्भव हो सकता है? इस प्रश्नका उत्तर जाननेके लिए कई सुन्दर प्रयोग किये गये हैं और उनके परिणाम आश्चर्यजनक निकले हैं, हालांकि वे अच्छी तरह मान्य हो चुके हैं। ये प्रयोग सबसे अच्छी तरह किसी खुले मैदान या गद्दीदार कमरेमें किये जाते हैं, जहां श्रोता को भ्रममें डालनेवाली प्रतिध्वनि न हो सके। इसका पहिला परिणाम यह होता है कि वह भली भांति यह बता सकता है कि ध्वनि दाहिनी ओर से आ रही है या बायीं ओर से; यदि वह ठीक सामने या पीछेकी दिशा से कुछ अंश (डिग्री) हटी हुई भी होती है, तो वह इस विचलन[5] का पता लगा लेता है। वह किसी ध्वनिके अदृष्ट उद्गमकी ओर बहुत सही तौरसे मुंह करके खड़ा हो सकता है। ध्वनि चाहे जिधरसे आ रही हो, नीचेसे ऊपरकी ओर या पीछेसे सामनेकी ओर, वह निश्चय ही उसे तब तक पहचान नहीं सकता, जब तक वह अपने सिरको स्थिर रखता है और सामनेकी ओर देखता है; हालांकि अपने सिरको थोड़ा मोड़ कर वह दूरीकी इन अन्य विमाओं[6] को अस्थायी रूपसे वाम-दक्षिण विमा में परिवर्तित कर सकता है और इस प्रकार बायें और दायेंसे आनेवाली ध्वनियोंको पहचाननेकी अपनी कुशलता का उपयोग कर सकता है।

उसमें यह योग्यता अपने दो कानोंके कारण है। कोई ध्वनि निकटवाले कानके पास कुछ शीघ्र और अधिक विपुलता के साथ पहुंचती है, और इस प्रकार दायें या बायेंके लिए दो सम्भव संकेत प्रदान करती है। किन्तु यदि हम इस मामलेको पदार्थ-विज्ञान की दृष्टिसे देखें, तो हम पायेंगे कि निकट और दूरके कानोंके बीच समय और विपुलता का अन्तर बहुत थोड़ा है। चूंकि ध्वनि हवा में १,१०० फ़ुट प्रति सैकेंडकी चालसे चलती है, इसलिए दोनों कानोंके बीचका समयान्तर एक सैकेंड के $\frac{1}{१५००}$ से अधिक किसी दशा में नहीं हो सकता। आप सोचेंगे कि इतने लघु समयका शरीर पर कोई उल्लेखनीय प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। आप इस मामलेकी परीक्षा अपने परीक्षार्थीको अलग चक्करों 'सर्किटों[7]' वाले दो 'इअर-फ़ोन' देकर और हरेक कानके लिए अलग-अलग खट्-खट् की आवाज़ें[8] प्रेषित करके ले सकते हैं। वह खट्-खट्की दोनों आवाज़ोंको एक आवाज़के रूपमें और किसी एक ही दिशा से आती हुई समझेगा। जब दोनों आवाज़ें बिल्कुल साथ-साथ आती हैं, तो ऐसा लगता है कि ध्वनि ठीक सामने (या ठीक पीछेसे) आ रही है, किन्तु जब दाहिना कान अपनी खट् खट्की आवाज़

[1] tonal [2] sounds [3] patterns [4] space [5] deviation [6] dimensions [7] circuits [8] clicks

बायें कानकी अपेक्षा १/१०००० सैकेंड पहिले प्राप्त करता है, तब ध्वनि लगभग १०° दाहिनी ओर से आती हुई जान पड़ती है। विपुलता के संकेत[1] की जांच करनेके लिए, दोनों आवाज़ों[2] को साथ-साथ ही प्रेषित कीजिए, किन्तु एक को दूसरे की अपेक्षा कुछ सबल रखिए: जब दाहिना कान सबल उत्तेजना प्राप्त करेगा, तब ध्वनि दायीं ओर से आती मालूम पड़ेगी। ऐसे प्रयोगों द्वारा समय और विपुलता के संकेतों[3] का प्रभाव दिखाया जाता है। कुछ दशाओंमें समयका संकेत अधिक प्रभावशाली होता है और अन्य दशाओंमें विपुलता का संकेत (२२)।

औंधी दृष्टि[4] सम्बन्धी प्रसिद्ध प्रयोग (पृ० २७२) की याद करके हम विस्मय करते हैं कि दोनों कानोंको प्रभावित करनेवाली उत्तेजनाओंकी अदला-बदली कर देनेसे ध्वनि की दिशा के संकेतोंमें जो उलट-फेर हो जायेगा, उसका क्या प्रभाव पड़ेगा! इस प्रयोगको किया जा चुका है (२१, २३), जैसाकि आपको आकृति ११७ से ज्ञात हो जायेगा। प्रत्येक कानको वह उत्तेजना प्राप्त हुई, जो सामान्य स्थितिमें दूसरे कानको प्राप्त होनी चाहिए थी। इसका प्रभाव यह हुआ कि ध्वनियों की प्रतीत होने वाली दिशा में दायें-बायें का उलट-फेर हो गया और इसके साथ ही साथ सामने-पीछे का भी अच्छा-खासा उलट-फेर हो गया। इस प्रयोगमें दरवाज़ा पीछेकी ओर और बायीं तरफ़ चरमराता लगेगा, किन्तु आगन्तुक सामने और दायीं ओर से प्रवेश करता हुआ दिखायी देगा। आंख मूंदकर टिक्-टिक् करती हुई घड़ीका पता लगाना लगभग असम्भव-सा मालूम पड़ा, क्योंकि व्यक्ति जितना ही 'उसकी ओर' जाता था, घड़ी की टिक्-टिक् उतनी ही दूरसे आती जान पड़ती थी। किन्तु आंखोंके खुले रहने पर इससे कुछ भिन्न प्रभाव पड़ा, क्योंकि यदि परीक्षार्थी ने किसी आदमी या वस्तुको आवाज़ करते हुए देख लिया तो दृष्टि द्वारा स्थान-निर्धारण श्रवण द्वारा स्थान-निर्धारण पर हावी हो गया, जिससे यह मान लिया गया कि ध्वनि दृश्य उद्गमसे आ रही है। जिन परीक्षार्थियों ने लगातार एक सप्ताह तक जागते समय प्रतिवर्तक यंत्र[5] धारण किये, वे भ्रामक श्रवण-संकेतों की (उदाहरणके लिए, यातायातमें) उपेक्षा करनेके अभ्यस्त हो गये, किन्तु वे उलट-फेर के प्रभाव[6] पर विजय न पा सके। समय और विपुलता के संकेत शरीर में इतनी गहराईमें जमे हुए हैं कि उनको आसानी से भुलाया नहीं जा सकता और न उनको कोई नया अर्थ ही दिया जा सकता है।

«दूरसे आनेवाली ध्वनियोंकी विपुलता जानना». हम एक वस्तुको विभिन्न दूरियों पर रखकर उसके सही आकारको देख सकते हैं (पृ० २७३)। ठीक इसी प्रकार हम विभिन्न दूरियोंसे आती हुई ध्वनियोंकी ठीक बुलन्दी[7] की तुलना कर सकते हैं; अर्थात् हम दूरीका अन्दाज़ लगा सकते हैं और अपने उद्गम पर ध्वनिकी बुलन्दीकी क्या मात्रा है, इसे प्रत्यक्ष कर सकते हैं। 'बुलन्दी की यह स्थिरता' इस प्रकार प्रदर्शित की जाती है: परीक्षार्थीसे अलग-अलग दूरियों पर, मान लीजिए ३ फ़ुट और ३० फ़ुट पर, दो ध्वनि-प्रसारकों (लाउड स्पीकरों) को रखा जाता है। नियंत्रित विपुलन[8] के ज़रिये दोनों ध्वनि-प्रसारकोंमें ग्रामोफ़ोनके रेकर्ड बजाये जाते हैं, पहिले थोड़ा-सा गाना एक
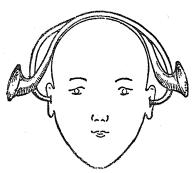
आकृति ११७. यंगके दिखावटी फ़ोनकी रेखाकृति (२३)। प्रत्येक कर्ण-दुन्दुभी में एक नली लगी होती है जो सिर परसे होकर दूसरी ओरके कानमें लगी रहती है। ध्वनिके निकलकर निकटवर्ती कानों में सीधे चले जाने की सम्भावना को कम करनेके लिए कानोंमें रुईकी गद्दी लगाना ज़रूरी है।

ध्वनि-प्रसारक से और फिर कुछ सैकेंड बाद ही थोड़ा-सा गाना दूसरे ध्वनि-प्रसारक से सुनाया जाता है और इसी प्रकार क्रम चलता रहता है। परीक्षार्थी निकटवर्ती ध्वनि-प्रसारकके विपुलन को तब तक घटाता-बढ़ाता रहता है, जब तक यह ध्वनि-प्रसारक उसी प्रतीत होने वाली विपुलताकी ध्वनि नहीं निकालता, जिस विपुलताकी ध्वनि दूरवर्ती ध्वनि-प्रसारक से आ रही है। वह दोनों विपुलताओंको «उनके उद्गम पर» ही बराबर करनेकी चेष्टा करता है और काफ़ी सही-सही उसे कर लेता है। यद्यपि वास्तविक बुलन्दी[9] को जाननेकी यह योग्यता देखी हुई वस्तुओं के आकार और रूप को जानने की योग्यतासे कम महत्वपूर्ण है, तो भी वास्तविक परिवेश का प्रत्यक्षीकरण करनेकी सामान्य प्रवृत्तिके साथ इसका अच्छा मेल बैठता है (१४)।

«प्रतिध्वनियोंके द्वारा वस्तुओंका प्रत्यक्ष करना». अधिकतर हम वस्तुओंको उनके द्वारा परावर्तित प्रकाशसे देखते हैं, किन्तु अभी तक हमने वस्तुओंको सुननेके सम्बन्धमें जो कुछ कहा है, उसका तात्पर्य ध्वनि-उद्गमोंको सुननेसे रहा है,

[1] intensity que [2] clicks [3] ques [4] inverted vision [5] reversing apparatus [6] reversal effect [7] loudness [8] controlled amplification [9] objective loudness

जैसे कि बोलता हुआ मनुष्य या भोंपू बजाती हुई मोटर कार। यदि हम किसी दिशासे कोई प्रतिध्वनि सुनते हैं तो हम जानते हैं कि वहां कोई वस्तु अवश्य होगी, जो ध्वनिको परावर्तित कर रही है। कुहरेमें पड़ा हुआ स्टीमर अपना भोंपू इसलिए बजाता है कि उसकी प्रतिध्वनियोंसे मालूम हो सके कि किनारा कितनी दूर है। अन्धे व्यक्ति दीवारों, मकानों या अपने रास्तेमें पड़ी हुई किसी रुकावटकी उपस्थितिका ज्ञान करनेमें परावर्तित ध्वनियोंका बहुत इस्तेमाल करते हैं (१३)। वे वस्तु की न केवल दिशाका ज्ञान कर लेते हैं, वरन् उसकी दूरीका भी अथवा कमसे कम इस बातका भी कि वह वस्तु बहुत निकट है या नहीं। साधारणतः वे यह नहीं बता पाते कि वे किन संकेतों[१] का प्रयोग करते हैं या वे रुकावटोंको कैसे जान लेते हैं। इनमेंसे कुछ तो 'चेहरेकी दृष्टि[२]' के सिद्धान्तकी पुष्टि करते हैं। इस सिद्धान्तमें यह माना जाता है कि चेहरेकी स्पर्श और तापकी ज्ञानेन्द्रियां[३] रुकावट डालने वाली वस्तुओंसे टकराकर आनेवाली वायु-तरंगोंसे प्रभावित होती हैं। किन्तु श्रवण-सम्बन्धी सिद्धान्त भी स्पष्ट रूपसे सम्भव जान पड़ता है। इन सिद्धान्तोंकी परीक्षा इस प्रकार की गयी: एक बड़े कमरे में रुकावटके रूपमें एक परदा इस प्रकार रखा गया कि इच्छानुसार उसका स्थान बदला जा सकता था। इसके बाद एक अन्धे (या आंख बांधे हुए सामान्य व्यक्ति) को परदेकी दिशा में चलाया गया; उससे कह दिया गया कि उसे ज्यों ही परदे की उपस्थितिका भान हो, वह इशारा करे और इसके बाद परदेको हाथसे बिना स्पर्श किये, उसके जितने निकट तक पहुँच सके, पहुंचे। इस प्रयोगमें कई महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकट हुए। अन्धे व्यक्तियोंने परदेकी उपस्थितिका भान काफ़ी दूरसे कर लिया, बहुधा १०-१५ फ़ुटकी दूरीसे। सामान्य दृष्टि वाले व्यक्तियोंने, जिनकी आंखें बांध दी गयी थीं, पहिले तो यह काम ठीक-ठीक नहीं किया, किन्तु अभ्यास करने पर वे अच्छा करने लगे। कुछ दूरसे ही परदेकी उपस्थितिका भान कर लेनेकी परीक्षार्थियोंकी योग्यता उनके क़दमोंकी आवाजको घटानेसे (मोटी दरी पर मोजे पहने हुए पैरोंसे चलाकर) कम हो गई, और उनके कानोंके छिद्रोंको मूंदनेसे तो यह योग्यता बिलकुल नष्ट हो गई, किन्तु चेहरेको एक मोटे नक़ाबसे (जो कुछ हद तक ध्वनियोंको भी घटा सकता था) ढकने पर यह योग्यता बहुत थोड़ी ही कम की जा सकी। इन और अन्य प्रयोगोंसे यह स्पष्ट हो गया कि अन्धा व्यक्ति दीवारों और अन्य वस्तुओं की उपस्थितिका भान करनेमें अपने चेहरेकी त्वचाका नहीं, प्रत्युत अपने कानोंका इस्तेमाल करता है (१८)। अन्धा व्यक्ति चलते समय अपनी छड़ीसे रास्तेको ठोककर कुछ आवाज करनेका आदी होता है। इस प्रकार वह ऊंची तारता[४] वाली आवाज उत्पन्न करता है, जो निम्न तारतावाली आवाज़ोंकी अपेक्षा अधिक स्पष्टतासे प्रतिध्वनि करती हैं। यह मालूम किया गया है कि अंधेरेमें उड़नेवाले चमगादड़ प्रतिध्वनियोंकी सहायतासे ही रुकावटोंको चतुराईसे बचा जाते हैं। वे बहुत शीघ्रतासे चीं-चीं की चिल्लाहट मचाते हैं, जिसकी कम्पन-गति प्रति सैकेंड ५०,००० से भी ज़्यादा होती है तथा जो मनुष्यकी श्रवण-शक्तिकी सीमासे बहुत ऊंची होती है। यदि चमगादड़ोंके कान बन्द कर दिये जायं या उनके मुँह सी दिये जायें, तो वे रुकावटोंसे बचनेकी शक्ति खो देते हैं। परावर्तित तरंगों[५] के द्वारा वस्तुओंके स्थान-निर्धारणका सिद्धान्त आजकलके कई साधनोंमें कार्यान्वित किया गया है; उदाहरण के लिए 'राडार[६]' को ले सकते हैं। किन्तु इस उदाहरणमें ध्वनि-तरंगोंके स्थान पर रेडियो-तरंगें प्रेषित की जाती हैं, जो ज्ञाताके पास परावर्तित होकर पहुँचती हैं (५, ६, ७)।

सिर की स्थिति और गति की ज्ञानेन्द्रिय

यह तथ्य आश्चर्यजनक है कि अन्तःकर्णके कुछ भागोंका सुनने की क्रियासे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। वास्तवमें यदि हम पशु-जीवनमें कानके विकासका इतिहास खोजें तो हमें पता चलता है कि पहिले-पहिल इसका उपयोग कम्पनोंके प्रति प्रतिक्रिया करनेमें नहीं होता था, वरन् सिरकी गतियों और स्थितियों के प्रति प्रतिक्रिया करनेमें होता था। 'कोकला[७]' और मध्य तथा बाह्य कर्ण तो बादमें जोड़े गये हैं। ड्योढ़ी[८] और अर्धचक्राकार नालियां[९] पुराने भाग हैं और वे मौलिक रूपसे श्रवणसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि सिरकी स्थितियों और गतियोंसे उत्तेजना प्राप्त करनेके कारण वे शरीरकी संस्थिति[१०], गुरुत्वाकर्षणकी अनुस्थिति, सन्तुलन और गतिकी दृढ़ताको बनाये रखनेके लिए सांवेदनिक सामग्री[११] प्रस्तुत करते हैं। वे मछलीको जलमें और पक्षीको हवामें शरीरका ठीक भाग ऊपर रखनेके लिए समर्थ बनाते हैं; यदि मेढकको पीठके बल उल्टा कर दिया जाय, तो वे तुरन्त उसे ठीक स्थितिमें ले आते हैं; इन्हींके कारण बिल्ली पेड़से गिरते समय जमीन पर पैरोंके बल गिरती है।

ड्योढ़ी[८] और अर्धचक्राकार नालियोंमें आदाता[१२] होते हैं जिनमें कुछ-कुछ 'कोकला[७]' की तरह ही रोम-कोशाएं[१३] होती हैं। ड्योढ़ी[८] में ज्ञान-कोशाओं[१४] के रोमोंकी नोकें[१५] आपसमें

[१] cues [२] facial vision [३] senses [४] pitch [५] reflected waves [६] radar [७] cochlea [८] vestibule [९] semicircular canals [१०] posture [११] sensory data [१२] receptors [१३] hair cells [१४] sense cells [१५] hair tips

चटाईकी तरह गुथी होती हैं। इस बुनावटमें पत्थरके छोटे-छोटे कण जमे होते हैं, जिन्हें "कर्ण-पाषाण[१]" कहते हैं। जब सिर किसी दिशामें झुका होता है, तब ये भारी कण रोमों (बालों) को लटका देते हैं और मोड़ देते हैं और इस प्रकार उन्हें उत्तेजित करते हैं। भारी कणोंकी जड़ताके कारण यही परिणाम उस समय भी उत्पन्न होता है, जब शरीरकी गति एकाएक प्रारम्भ होती या रुक जाती है। रोम-कोशाओंकी जड़ों के चारों ओर बोध-स्नायु-तन्तुओंके सूक्ष्म सिरे लिपटे होते हैं, जो ज्ञान-कोशाओंकी क्रियासे उत्तेजित होते और उस क्रिया को मस्तिष्क तक पहुँचा देते हैं।

प्रत्येक अर्धचक्राकारा नाली[२] में ज्ञान-कोशाओं का एक गुच्छा होता है। उसके साथ-साथ तरल पदार्थम से ऊपरको उठे हुए बड़े-बड़े रोम होते हैं, मानो किसी नदीमें नरकट[३] के झुरमुट खड़े हों। यद्यपि ये नालियां 'अर्धचक्राकार' कहलाती हैं, किन्तु ये अर्धवृत्तसे काफ़ी अधिक होती हैं। इनके प्रत्येक सिरे पर ड्योढ़ी[४] के भीतर घुसे हुए भागको मिला लें, तब तो ये पूर्ण वृत्त ही हो जाती हैं। सिरको गोलाईमें घुमानेसे, तरल पदार्थकी जड़ताके कारण, एक या अधिक नालियोंमें धाराका बहाव पीछेको धकेल दिया जाता है, जिससे रोम झुक जाते और उत्तेजित हो उठते हैं। चूंकि अर्धचक्राकार नालियां प्रत्येकके साथ समकोण बनाती हुई तीन धरातलों पर स्थित होती हैं, इसलिए वे सिरको किसी दिशामें भी गोलाईमें घुमाने पर उस दिशाकी पूरी जानकारी करा देती हैं। इसी बीच, कर्ण-पाषाण-आदाता[५] भी जो विभिन्न धरातलों पर
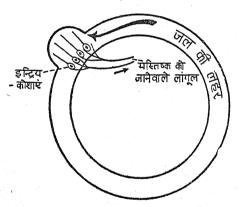
आकृति ११८. किसी अर्धचक्राकारा नालीमें स्थित इन्द्रिय-कोशाएं किस प्रकार उत्तेजित होती हैं, इसको बतलानेवाला एक चित्र। यह लहर पीछेकी ओर सीधे जानेवाला प्रवाह होता है, जो सिरको विपरीत दिशामें घुमानेसे पैदा हो जाता है।

व्यवस्थित होते हैं, सिरकी स्थितियों[६] और सीधी रेखामें होने वाली उसकी गतियों[७] की पूरी जानकारी कराते हैं। इस प्रकार कोकला[८] से बिल्कुल पृथक् सम्पूर्ण अन्तःकर्ण सिरकी स्थितियों और गतियोंके लिए पूर्ण विश्लेषकके रूपमें उपस्थित होता है।

यह ज्ञानेन्द्रिय चक्कर खाने, झूलने, अकस्मात् चल देने और अकस्मात् रुक जानेसे (जैसा 'लिफ़्ट' में होता है) तथा शरीर को उलट-पुलट करने इत्यादिसे अत्यधिक उत्तेजित हो जाती है। इस उत्तेजनाके फलस्वरूप चक्कर आनेकी संवेदनाएं उत्पन्न होती हैं, किन्तु यह निश्चित नहीं है कि चक्कर आने की सारी संवेदना अन्तःकर्णसे ही उत्पन्न होती हैं। शरीर विज्ञान[९] के प्रयोगोंसे, जिनमें अन्तःकर्ण या उसके स्नायुओंके कुछ भाग या सभी भाग नष्ट कर दिये जाते हैं, यह बात तो निश्चित रूपसे जानी जा चुकी है कि संस्थितियां[१०], शरीर को सीधा रखनेकी गतियां और आगे बढ़नेकी दृढ़ता आदि इस इन्द्रिय और गति-ज्ञानेन्द्रिय पर निर्भर होती हैं।

मामूली चक्राकार घुमावों[११] का प्रत्यक्षीकरण इन नालियों पर निर्भर होता है। यदि दोनों अन्तःकर्ण बीमारीके कारण खराब हो जायें तो यह प्रत्यक्षीकरण नहीं हो पाता। यदि किसी आदमीकी आंखें बांधकर उसे एक कुर्सी पर बैठा दिया जाय और कुर्सीको बिना ध्वनि किये या धक्का लगाये चक्राकार घुमाया जाय, तो वह आसानीसे आपको बता देगा कि आपने उसे घुमाना कब शुरू किया और किस दिशामें घुमाया। यदि आप उसे एक ही गतिसे लगातार घुमाते रहें, तो वह शीघ्र ही गतिके सम्बन्धमें अपना ज्ञान खो बैठेगा और यदि आप उसे तब रोक दें, तो वह मान बैठेगा कि आप उसे विपरीत दिशामें घुमाना शुरू कर रहे हैं। वह चक्राकार घुमावके प्रारम्भको इसलिए समझ पाता है कि उससे नालियों[१२] में तरल पदार्थ पीछेकी ओर बहने लगता है; वह समरूप[१३] चक्राकार घुमावके प्रति अपना ज्ञान शीघ्र ही इसलिए खो बैठता है कि पतली नालियोंमें रगड़ लगनेसे पीछेकी ओर का बहाव रुक जाता है; चक्राकार घुमावके रुकने पर वह यह समझनेकी भूल क्यों करता है कि उसे अब विपरीत दिशा में घुमाना प्रारम्भ किया जा रहा है, इसका कारण यह है कि जड़ता[१४] के कारण नालियोंका तरल पदार्थ चक्राकार घुमाव[१५] के रुक जानेके कुछ देर बाद तक बहना जारी रखता है।

अर्धचक्राकार नालियों[१६] में तीव्र उत्तेजना पहुँच जानेके कारण जो चक्कर आनेकी[१७] संवेदनाएं उत्पन्न होती हैं, उनको छोड़ दें, तो इस तरीक़ेसे हम पर जो प्रभाव पड़ते हैं, वे संवेदनाएं[१८] होनेके बजाय प्रत्यक्षीकरण होते हैं। कानों या सिर

[१] otolith [२] semicircular canal [३] reeds [४] vestibule [५] otolith receptors [६] positions [७] rectilinear movements [८] cochlea [९] physiological [१०] postures [११] rotations [१२] canals [१३] uniform [१४] inertia [१५] rotation [१६] semicircular canals [१७] dizzy [१८] sensations

खास संवेदनासे अभिज्ञ हुए बिना ही हम इस तथ्यका ज्ञान कर लेते हैं कि हम चक्राकार घुमाये जा रहे हैं। नालियों[1] की उत्तेजनाका अन्य प्रभाव सिर और आंखोंकी प्रतिक्षेप-गतियों[2] के रूपमें दिखाई देता है।

सारांश

१. प्रत्येक ज्ञानेन्द्रियके कार्यका अध्ययन करते समय दो मुख्य समस्याओंसे पाला पड़ता है: उत्तेजनाओंके साथ «संवेदना» का सम्बन्ध, और वस्तुगत तथ्योंके साथ «प्रत्यक्षीकरण» का सम्बन्ध।

(क) उन विशिष्टीकृत ऊतियों[3] को «ज्ञानेन्द्रियां[4]» कहते हैं, जिनमें एक खास तरहकी उत्तेजनाके प्रति बहुत ऊंची संवेदनशीलता होती है।

(१) «बाह्यादाता[5]» शरीरके बाहरसे उत्तेजनाएं प्राप्त करते हैं। आंख, कान और नाक «दूरी के आदाता[6]» हैं।

(२) «अन्तरादाता[7]» शरीरके भीतरसे उत्तेजनाएं ग्रहण करते हैं।

(३) «न्यादाता[8]» स्वयं शरीरकी ऊतियों (मांस-पेशियों, कंडराओं[9], सन्धियों) में स्थित होते हैं और इन भागोंकी गतिसे उत्तेजना प्राप्त करते हैं।

(ख) ज्ञानेन्द्रियोंमें विशिष्ट «ज्ञान-कोशाएं» होती हैं, जिनसे निकलकर «बोध-स्नायु-तन्तु[10]» स्नायु-केन्द्रों को जाते हैं। कई ज्ञानेन्द्रियोंके «सहायक उपकरण[11]» भी होते हैं, जो प्रभावपूर्ण ढंगसे ज्ञान-कोशाओंको उत्तेजना पहुंचाते हैं।

२. त्वचाकी मूल संवेदनाएं ये हैं: उष्णता, शीतलता, पीड़ा और स्पर्श। जलन, खुजली, गुदगुदी या दुखन जैसे जटिल अनुभव मूल संवेदनाओंके या तो रूपान्तर होते हैं या संयोग।

(क) त्वक्-ज्ञानेन्द्रियोंको प्राप्त होने वाली उत्तेजनाएं या तो यांत्रिक हो सकती हैं, या तापीय, या रासायनिक। तापीय[12] उत्तेजनाओंका ज्ञान तब होता है, जब वे उस तापमानसे ऊपर या नीचे होती हैं, जिससे त्वचा के आदाता उस समय अपना «अनुकूलन कर चुके होते हैं»।

(ख) त्वचा-तल पर संवेदनशीलता सर्वत्र नहीं होती, बल्कि छोटे-छोटे बिखरे हुए «स्थानों[13]» में पायी जाती है; प्रत्येक स्थान एक खास तरहकी संवेदना के प्रति ही प्रतिक्रिया करता है। विभिन्न प्रकारके स्नायु-शीर्ष[14] और सहायक उपकरण[11] विभिन्न स्थानोंके नीचे स्थित होते हैं।

३. गति-ज्ञानेन्द्रिय[15] गतियों, संस्थितियों और शरीरके अंगोंके तनावोंके सम्बन्धमें सूचना देती है।

(क) गति-ज्ञानेन्द्रियके आदाता मांस-पेशियों, कंडराओं[16] और सन्धियों[17] में स्थित होते हैं।

(ख) गतियोंका सामान्य सहयोग गति-ज्ञानेन्द्रिय पर ही निर्भर होता है।

४. आन्तरिक अंगोंकी ज्ञान-कोशाओं[18] से उत्पन्न «आंगिक संवेदनाएं[19]» प्रेरणा[20] और संवेग[21] में महत्त्वपूर्ण होती हैं।

५. «स्वाद»-संवेदनाएं कड़वी, मीठी, खट्टी और नमकीन तक ही सीमित होती हैं। भोज्य और पेय वस्तुओंके तथाकथित स्वाद कई स्वाद-संवेदनाओंके मिश्रण होते हैं। इन संवेदनाओंके साथ गन्ध और कभी-कभी तापमान तथा स्पर्शकी संवेदनाएं भी मिली रहती हैं।

(क) कुछ ज्ञान-कोशाएं जिह्वा-तलकी स्वाद-कलियों[22] के भीतर स्थित होती हैं। जीभके विभिन्न क्षेत्र दूसरे स्वादोंकी अपेक्षा किसी एक खास स्वादके लिए अधिक संवेदनशील होते हैं।

(ख) जीभको जिन वस्तुओंसे उत्तेजना प्राप्त होती है, वे घोलके रूपमें रासायनिक पदार्थ होते हैं।

६. «घ्राण-संवेदनाओं[23]» को स्थूल रूपसे ६ मौलिक वर्गोंमें बांटा जा सकता है, जिनके मिलनेसे कई तरहके मिश्रण तैयार होते हैं। ज्ञान-कोशाएं, जो नासिका-छिद्रकी सतहमें बिछी हुई श्लैष्मिक कला[24] में अवस्थित होती हैं, वायुमें फैले हुए रासायनिक पदार्थोंके सूक्ष्म परिमाणोंके प्रति भी प्रतिक्रिया करती हैं।

[1] canals [2] reflex movements [3] tissues [4] sense organs [5] exteroceptors [6] distance receptors [7] interoceptors [8] proprioceptors [9] tendons [10] sensory nerve fibres [11] accessory appartus [12] thermal [13] spots [14] nerve endings [15] kinaesthetic sense [16] tendons [17] joints [18] sense cells [19] organic sensations [20] motivation [21] emotion [22] taste buds [23] smell sensations [24] mucous membrane

७. «सुनना» एक संवेदना है जो वायुमें उत्पन्न लघु तरंग-कम्पनों द्वारा उत्पन्न की जाती है।

(क) ध्वनि-तरंगें[१] «कर्णपटह»–कानके परदे[२]–में कम्पन उत्पन्न करती हैं। कर्णपटहसे कम्पन «कोकला[३]» के तरल पदार्थ तक प्रेषित कर दिये जाते हैं।

(ख) ज्ञान-कोशाएं, जो कोकला की «आधार-कला[४]» पर स्थित होती हैं, कम्पनोंकी कतिपय आवृत्तियों[५] के प्रति चुनावपूर्वक[६] प्रतिक्रिया करती हैं।

(ग) सुनीं हुई ध्वनियाँ «बुलन्दी[७]», «तारता[८]» और «स्वर-गुण[९]» की दृष्टिसे बुनियादी तौर पर भिन्नता रखती हैं। ये भिन्नताएं, «कम्पन-विस्तार[१०],» «आवृत्ति[११]» और «रचना[१२]» की दृष्टिसे ध्वनि-तरंगों में पायी जाने वाली भिन्नताओंसे सम्बन्धित होती हैं।

(घ) स्वरोंके संयोगों[१३] का विश्लेषण किया जा सकता है और उन्हें अलग-अलग सुना जा सकता है, किन्तु साधारणत: ये मिश्रण[१४] के रूपमें (स्वर-साम्य या स्वर-वैषम्यके रूपमें) ही सुने जा सकते हैं। संगीत के हर स्वरमें कुछ उपस्वर[१५] सम्मिलित रहते हैं, जो उसे एक खास विशेषता प्रदान करते हैं।

(ङ) वाक्-ध्वनियां[१६] वाक्-तन्तुओं[१७] के कम्पन द्वारा उत्पन्न होती हैं। इन कम्पनोंकी कतिपय आवृत्तियां[११] और विस्तार[१८] होते हैं, जिनमें मुँह, जीभ और ओठोंकी स्थितियोंके द्वारा परिवर्तन हुआ करता है।

(च) देखनेमें[१९] तो उत्तेजनाओंकी अपेक्षा वस्तुको जानने की ही प्रवृत्ति अधिक होती है, किन्तु सुनने[२०] में यह प्रवृत्ति बहुत कम पायी जाती है, लेकिन बात-चीत को सुनते समय हम ध्वनियोंकी अपेक्षा उनके अन्तर्निहित अर्थ को सुनना अधिक पसन्द करते हैं।

(छ) सुनकर ध्वनिके उद्गमका «स्थान-निर्धारण[२१]» करना देखकर स्थान-निर्धारणसे कम सही होता है। यह दोनों कानों तक पहुंचने वाली उत्तेजनाओंके समयान्तरों और विपुलताके अन्तरों पर निर्भर होता है, और इसीलिए यह वाम-दक्षिण स्थान-निर्धारणमें प्रभाव-पूर्ण होता है, किन्तु ऊपर-नीचे या सामने-पीछे के स्थान-निर्धारणमें प्रभावहीन होता है।

(ज) «उद्गम-स्थल पर ध्वनिकी विपुलता» तब भी परखी जा सकती है, जब दूरी और उसके फलस्वरूप उत्तेजना की विपुलता भिन्न-भिन्न हो।

(झ) «प्रतिध्वनियां[२२]» किसी वस्तुकी दिशा और दूरीके प्रत्यक्षीकरणके लिए संकेत[२३] जुटाती हैं। चमगादड़ और अन्धे व्यक्ति अपने रास्तेकी रुकावटोंसे बचने के लिए ऐसे संकेतोंका उपयोग करते हैं।

८. सिरकी स्थिति और गतिको «ड्योढ़ी[२४]» और «अर्ध-चक्राकार नालियों[२५]» के उत्तेजनके आधार पर जाना जा सकता है।

[१] sound waves [२] tympanic membrane [३] cochlea [४] basilar membrane [५] frequencies [६] selectivity [७] loudness [८] pitch [९] timbre [१०] amplitude [११] frequency [१२] composition [१३] combinations [१४] blend [१५] overtones [१६] speech sounds [१७] vocal cords [१८] amplitudes [१९] seeing [२०] hearing [२१] localization [२२] echose [२३] clues [२४] vestibule [२५] semicircular canals

१६

सीखना

अभी एक बड़ा और महत्त्वपूर्ण प्रश्न रह गया है, जिस पर हम पुस्तक के इस अन्तिम भाग में विचार करेंगे। यह प्रश्न है उपलब्धि[1] का। व्यक्ति अपने परिवेश पर किस प्रकार स्वामित्व प्राप्त करता है? इस प्रश्नका जो उत्तर मनोविज्ञान दे सकता है, वह अधिकतर 'सीखना', 'स्मरण करना' और 'सोचना' शीर्षकोंके भीतर आ जाता है। इससे आगे हमारा काम यह जानना रह जायगा कि व्यक्ति किस प्रकार नई परिस्थितियों और समस्याओंका मुक़ाबला करता है और उन पर स्वामित्व प्राप्त करता है, अपनी उपलब्धिको कैसे बनाये रखता है और जब दुबारा वह उसी परिस्थिति या उसी तरहकी परिस्थितिमें पड़ता है, तब कैसे अपने पूर्व अनुभवका उसमें उपयोग करता है। किसी समस्याको सुलझानेके लिए सोचने[2] का सहारा लेना, स्पष्ट ही एक मानवीय तरीक़ा है। सीखने और स्मरण करनेका आश्रय मनुष्य भी लेते हैं और पशु भी। जब कभी व्यक्ति कोई चीज़ सीखता है, तब वह स्पष्टत: एक नयी परिस्थितिसे व्यवहार कर रहा होता है, क्योंकि यदि वह परिस्थिति पूर्णत: परिचित होती, तो वह अपनी स्मृति[3] पर निर्भर रह सकता था और उसे कोई चीज सीखनेकी आवश्यकता न होती।

यद्यपि सीखनेकी प्रक्रियाओंका गम्भीर अध्ययन करनेका कार्य हमने अब तक स्थगित रखा है, तो भी पूर्व प्रकरणोंके विशेष विषयोंके साथ न्याय करनेके लिए हमें प्रसंगवश, विवश होकर सीखनेकी प्रक्रिया पर कुछ विचार करना पड़ा है। बिना यह बताये कि व्यक्तिकी योग्यताएं और उसके व्यक्तित्वके विशिष्ट लक्षण[4] अनुभव और सीखने पर कितने अधिक निर्भर हैं, व्यक्तिके विकास-क्रमको समझाना असम्भव होता। बिना यह देखे कि अनुभव और परिवेशके साथ परिचय होनेसे उत्पन्न नयी रुचियोंके कारण क्या परिवर्तन[5] हुए हैं, अकेले बग़ैर सीखे हुए प्रेरकों[6] का अध्ययन करना भी असम्भव होता, और बिना यह कहे कि सीखनेके द्वारा उत्तेजनाएं सार्थक हो जाती हैं और वस्तुगत तथ्योंके चिह्न बन जाती हैं, निरीक्षण[7] का अध्ययन करना भी सम्भव न हो पाता। किन्तु बार-बार सीखनेके महत्त्व पर ज़ोर देनेके बावजूद हमने अभी तक सीखनेकी प्रक्रिया का कोई गम्भीर अध्ययन नहीं किया है। यह मनोवैज्ञानिक अन्वेषणका एक प्रमुख क्षेत्र है, जिसमें सन् १८८० से लेकर आधुनिक समय तक प्रायोगिक विधिका बहुत सफलतापूर्वक उपयोग किया गया है।

परिभाषा. 'व्यक्तिका विकास' शीर्षक प्रकरणमें सीखने की एक विस्तृत परिभाषा दी गयी थी। हमने उसमें कहा था कि व्यक्ति परिवेशकी शक्तियों द्वारा निष्क्रिय रूपसे (एक गीली मिट्टीके लोथड़ेकी तरह) ढाला नहीं जाता। इसके बजाय वह उत्तेजनाओंके प्रति सक्रिय रूपसे प्रतिक्रिया करता है, और अपनी क्रियासे ही वह सीखता है। क्रियाशीलता या अभ्यास मांस-पेशी के तन्तुओं[8] को और सम्भवत: मस्तिष्ककी 'स्नायु-कोशाओं[9]' को बलवान् बनाता है। किन्तु सीखनेका अर्थ केवल किसी वस्तुको सशक्त बनाना नहीं बल्कि इससे कुछ अधिक है। किसी कार्यका सीखना तो व्यक्तिके अनुभव-कोष में एक नयी चीज़की वृद्धि होना है। सीखनेमें किसी नयी चीज़को करना शामिल होता है, किन्तु इसमें शर्त यह है कि वह नयी चीज़ व्यक्तिके स्मृति-कोष में बनी रहे और उसके बादके कार्योंमें पुन: दिखायी दे। वह 'नयी चीज़' कुछ गतियों[10] का संयोग भी हो सकती है, जैसे कि मोटरकारका नवसिखुआ चालक 'ब्रेक' के साथ-साथ क्लच[11] को दबाना भी सीखता है; या यह किसी नयी वस्तुको देखनेकी क्रिया भी हो सकती है, जैसे कि आप किसी अजनबी आदमीका चेहरा देखकर उसे बादमें पहचान सकते हैं। सीखना कोई एक विशेष प्रकारकी क्रिया नहीं है, केवल उस क्रिया को आंशिक या पूर्ण रूपसे नयी होना चाहिए।

किन्तु हरेक 'नयी चीज़' नहीं सीखी जाती। किसी नवीन परिस्थिति पर स्वामित्व प्राप्त करनेके प्रयासमें यह सम्भव है कि आप कई ऐसी चीज़ें करें जो आपके किसी काम न आवें और जिनको आप अपनी स्मृतिमें बनाये भी न रखें, किन्तु कोई भी कार्य सफल होने पर पुष्टीकृत[12] हो जाता है और सीख लिया जाता है। 'ब्रेक' और क्लचके पावदानों[13] को दबानेकी गतियों में यदि उचित सहयोग हो जाय, तो इंजिनके बिना बन्द हुए ही कार खड़ी हो जाती है, और इस प्रकार यह खास क्रिया मस्तिष्कमें पुष्ट हो जाती है। 'चेहरोंकी भीड़' को देखते समय आप सैकड़ों ऐसे चेहरे देखते हैं, जो आप पर कोई खास प्रभाव

[1] achievement [2] thinking [3] memory [4] traits [5] modifications [6] unlearned motives [7] observation
[8] fibres [9] neurons [10] movements [11] clutch [12] reinforced [13] pedals

नहीं छोड़ते और उनको शायद ही आप कभी याद करें। उनके विषयमें यह कहा जायगा कि वे सीखे नहीं गये, किन्तु उनमें से कोई एक चेहरा आपका ध्यान आकर्षित कर सकता है और आपकी रुचिको जगा सकता है। इस तरहका पुष्टीकरण[1] उस चेहरेको स्मरणीय बना देगा। इस प्रकारके उदाहरणोंसे हम पहिले इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि 'पुष्टीकरण' सीखनेकी क्रियामें एक अनिवार्य तत्त्व है। प्रस्तुत प्रकरणमें हम देखेंगे कि यह विचार व्यवहारमें कैसा उतरता है।

अपने अध्ययनमें पशुओंके सीखनेके विषयको शामिल करनेका महत्त्व. कई लोग जब यह सुनते हैं कि सीखनेके सम्बन्धमें जितने उपयोगी प्रायोगिक कार्य हुए हैं, उनमें से अधिकांश पशुओंके ऊपर किये गये हैं (८, १२, १४, १६, २६, ३३), तब उन्हें आश्चर्य होता है। वे पूछते हैं मनोवैज्ञानिकों को पशुओंके सीखनेमें विशेष रुचि क्यों लेनी चाहिए? निस्सन्देह वे जानना चाहेंगे कि क्या पशु किसी चीज़को सीखनेमें समर्थ हैं। किन्तु कुछ प्रयोगोंसे ही यह सिद्ध हो गया है कि उच्च श्रेणी के पशु काफ़ी सीख लेते हैं, और सबसे निम्न श्रेणीके पशुओंमें भी सीखनेकी कुछ शक्ति होती है। फिर यह प्रश्न हो सकता है कि क्यों नहीं आप पशुओंको एक तरफ़ रखकर, सीखनेके सर्वोत्तम विकसित रूपका, जो मनुष्योंमें पाया जाता है, अध्ययन करते हैं? इसका उत्तर है कि सीखनेकी आधारभूत प्रक्रियाएं वहां अधिक स्पष्टताके साथ देखी जा सकती हैं, जहां वे अपेक्षाकृत सरल हैं और मनुष्योंकी श्रेष्ठ बौद्धिक प्रक्रियाओंके कारण जटिल नहीं बन गयी हैं। सन्तानोत्पत्ति[2] और वंशानुक्रम[3] की शक्तिके समान ही, मनुष्यों और पशुओंमें सीखनेकी शक्ति प्रकृतिके उल्लेखनीय तथ्योंमें से एक है। ऐसे तथ्य[4] किसी भी वैज्ञानिकके लिए चुनौती हैं। वह जानना चाहता है कि पशु हों या मनुष्य, उनके सीखनेकी प्रक्रिया में क्या बातें हुआ करती हैं। उसका यह भी विश्वास है कि उसका ज्ञान जितना ही मौलिक होगा, मानव-जीवन में उसका उतना ही अधिक उपयोग किया जा सकेगा। मनोवैज्ञानिक द्वारा तैयार किये गये भूलभुलैयों[5] में चलकर चूहा जो चीज सीखता है, वह मानव-जाति को अणुयुगकी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओंको सुलझानेमें मदद दे सकती है। मानवजाति निश्चित रूपसे एक भूलभुलैया में फँस गयी है और उसे उसमें से निकलनेका रास्ता ढूंढ़ना ही है। मनुष्योंको शान्तिमय अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहारका रहस्य सीखना चाहिए। उनको इस भूलभुलैयाका अनुसंधान करके, बन्द गलियों[6] को खोजकर और उन्हें बचाकर, तथा सही रास्तोंको पाने पर उनका पुष्टीकरण करके[7] सीखना होगा।

पशुओं पर किये जानेवाले प्रयोगोंसे अधिक लाभ उठानेके लिए, हमें अपने पशु-परीक्षार्थियों के सीधे-सादे व्यवहारमें मानवीय विशेषताएं खोजनेके बजाय, उसका यथासम्भव वस्तु-प्रधान-दृष्टिसे निरीक्षण करना होगा। यदि हम लापरवाहीसे यह मान बैठते हैं कि कोई पशु भी उसी तरह सोच रहा है या अनुभव कर रहा है, जैसा हम उसी तरहकी परिस्थितिमें सोचते या अनुभव करते हैं, तो हम किसी समस्या को सुलझानेकी एक अधिक आदिम और मनुष्यसे निम्न स्तर की[8] पद्धतिकी झांकी पानेसे स्वयंको वंचित कर लेते हैं। नरत्वारोपणकी प्रवृत्ति[9] (जड़ पदार्थों और पशुओंके व्यवहारमें मनुष्योचित प्रवृत्तियोंका आरोप करना) से हमको सँभल कर रहना चाहिए। इस सिद्धान्तका प्रणयन पशु-मनोविज्ञान के संस्थापकोंमें से एक ने किया था और यह उसीके सम्मानमें «लॉयड मॉर्गनका नियम[10]» कहलाता है। लॉयड मॉर्गन ने इसको इस प्रकार प्रस्तुत किया था: 'यदि किसी क्रियाको किसी नीची मानसिक शक्तिकी उपजके रूपमें देखना सम्भव हो तो हमें किसी भी दशामें उस क्रियाको एक ऊँची मानसिक शक्तिकी उपजके रूपमें नहीं देखना चाहिए' (२१)।

यदि हम किसी कुत्तेको अपनी थुथनीसे एक फाटककी सांकल खोलते हुए देखें, तो हमें यह नहीं मान बैठना चाहिए कि उसने इस समस्याका हल तर्क-वितर्क के बाद सोचकर निकाला है। हमें कोई ऐसा कुत्ता लेना चाहिए, जिसने यह चालाकी नहीं सीखी है और सीखनेकी प्रक्रियामें से गुज़रते हुए उसे देखना चाहिए। लॉयड मॉर्गन ने अपने कुत्तेके साथ ऐसा ही किया था। जब उनका कुत्ता पहिले-पहिल चहारदीवारीसे घिरे हुए सामनेके आंगनमें बन्द कर दिया गया, तब उसके व्यवहारमें आंगनसे किसी तरह निकल कर सड़क पर पहुँच जानेकी उत्सुकता (या लक्ष्य-तत्परता[11]) दिखायी दी। वह चहारदीवारी के छिद्रोंमें एक-एक करके अपनी नाक घुसाने लगा। चहारदीवारीमें ही एक जगह फाटक था, जिसकी सांकल लगी हुई थी। जब कुत्ता वहां भी अपनी नाक घुसानेके लिए पहुँचा, तब संयोगसे जंजीर उठ गयी। फाटक खुल गया और कुत्ता सड़क पर जा पहुँचा। दूसरे दिन और उसके बाद भी कई दिनों तक कुत्ते ने बाहर निकलनेके लिए चहारदीवारीमें स्थानोंकी तलाश की, लेकिन क्रमशः फाटकके आस-पासमें ही; अन्तमें यहां तक हुआ कि वह सदा सीधे सांकलके स्थान पर ही जाता था और अपने सिरको निश्चित रूपसे उठाकर सांकलको खोल लेता था।

इस कुत्तेके व्यवहारमें ऐसी कोई चीज नहीं दिखायी दी, जिसे तर्कना[12] की संज्ञा दी जा सके, क्योंकि तर्क-वितर्क के बाद किया गया कार्य अधिक विचारपूर्वक किया गया मालूम होता है और समस्याको सुलझानेकी आवेगशीलता[13] (जल्दबाजी)

[1] reinforcement [2] reproduction [3] heredity [4] phenomena [5] mazes [6] blind alleos [7] by reinforing [8] subhuman [9] anthropomorphism [10] Loyp Morgau's Cannon [11] goal set [12] reasoniug [13] impulsiveness

उसमें कम दिखाई देती है। कुत्तेने समस्याको जिस ढंगसे सुलझाया, उसमें बराबर उसकी चेष्टाका परिवर्तित होना और बाहर निकल भागनेका निरन्तर प्रयास दिखाई दिया। समस्या को सुलझानेकी इस पद्धतिको «प्रयास और भूल[१]» की पद्धति कहते हैं, क्योंकि इसमें कई मार्गोंकी आज़माइश की जाती है, जिनमें से अधिकांश मार्ग ग़लत या भ्रामक सिद्ध होते हैं। 'प्रयास और भूल' पद्धतिकी आवश्यक बातें ये हैं:

१. किसी लक्ष्य तक पहुंचनेकी 'तत्परता[२]'।

२. लक्ष्य तक पहुंचनेका कोई स्पष्ट मार्ग न दिखाई देना।

३. परिस्थितिका अनुसन्धान करना, सम्भव मार्गोंको खोजना और उनकी आज़माइश करना, एक मार्गमें अवरुद्ध होने पर पीछे हटना और दूसरे मार्गकी ओर उन्मुख होना।

४. अन्तमें एक अच्छा मार्ग पा लेना और लक्ष्य तक पहुँच जाना।

ये सारी बातें बिना सीखे भी हो सकती थीं, किन्तु जैसा कि दिन-प्रतिदिनकी प्रगतिसे प्रकट हुआ, सीखनेकी प्रक्रिया हुई अवश्य। यदि आप पूछें कि कुत्तेने क्या सीखा तो हम कहेंगे कि उसके व्यवहारसे यह पता चला कि उसने यह सीख लिया कि «कहां» प्रयास करना चाहिए। पहिले उसने यह सीखा कि उसे «लगभग» कहां प्रयास करना चाहिए, अर्थात् फाटक के क्षेत्रमें; और बादमें उसने सीख लिया कि उसे «ठीक» कहां प्रयास करना है, अर्थात् फाटकके बीचकी सन्धिके पास जहां सांकल है। इसको हम «स्थानको सीखना[३]» कह सकते हैं। अन्तको उसने यह सीखा कि सांकलको कैसे उठाना चाहिए; इसको हम «वस्तुको सीखना» या «उपकरणको सीखना[४]» कह सकते हैं।

यह कहनेसे कि पशु स्थानों और वस्तुओंको सीखता है, या स्थानों या वस्तुओंके साथ व्यवहार करना सीखता है, हमारा तात्पर्य यह नहीं है कि हम उसके सीखनेके मनोवैज्ञानिक स्तर-सम्बन्धी प्रश्न पर पहिलेसे ही कोई राय क़ायम करना चाहते हैं। लॉयड मॉर्गनके नियमका हमसे तक़ाज़ा है कि पशुके व्यवहारके तथ्योंका स्पष्टीकरण करनेके लिए उसको जिन मानसिक प्रक्रियाओंका श्रेय देना आवश्यक हो, उससे अधिक ऊंची मानसिक प्रक्रियाओंका श्रेय उसे न दिया जाय। यथा-सम्भव निम्नतम स्तर पर, पशु कुछ पेशिक गतियां करके कतिपय ज्ञानेन्द्रिय-सम्बन्धी उत्तेजनाओंके प्रति प्रतिक्रिया करना ही सीख सकेगा। उससे कुछ ऊंचे स्तर पर, पशु एक स्थानका अनुसन्धान करके उस स्थानके विषयमें जानकारी प्राप्त करनेकी चेष्टा करेगा, और किसी वस्तुको उलट-पुलट कर, इधर-उधरसे देखकर वह उसे जान जायगा, जिससे उसका गत्यात्मक व्यवहार[५] प्राप्त उत्तेजनाओंसे प्रत्यक्ष रूपसे प्रशासित न होकर इस ज्ञान द्वारा प्रशासित होगा। मनोवैज्ञानिकों ने यह जाननेकी आशामें कि पशु «ठीक किस चीज़को» सीखता है और वह «कैसे» सीखता है, स्थान और उपकरणको सीखने के सम्बन्धमें कई और विविध प्रकारके प्रयोग किये हैं।

स्थान को सीखना

सम्भवतः कुछ मेरुदंड-विहीन जीवों[६] को छोड़कर, शेष सभी प्राणी स्थानोंकी छान-बीन करते हैं और अपनी गतिको व्यर्थ अधिक नष्ट किये बिना उनमें घूमना सीख लेते हैं। स्थानको सीखनेके सम्बन्धमें खोज करनेके लिए मनोवैज्ञानिकोंका प्रिय प्राणी चूहा—विशेषतः सफ़ेद चूहा—है। सफ़ेद चूहा प्रयोगशालामें ही पैदा किया जाता है, जिससे उसके वंशानुक्रम, आयु और पिछले अनुभवके सम्बन्धमें जानकारी रहती है। इस कारण प्रायोगिक परिवर्त्यों[७] पर जितना अच्छा नियंत्रण चूहोंके मामलेमें रह पाता है, उतना अच्छा नियंत्रण मानव-परीक्षार्थियों पर किये गये अधिकांश प्रयोगोंमें नहीं रह सकता।

निषेधात्मक अनुकूलन[८]. जब कोई चूहा एक नयी जगह में—सन्दूक़ या किसी छोटे बाड़ेमें—रख दिया जाता है, तब वह भय या सतर्कताके लक्षण प्रदर्शित करता है। वह या तो वहां से बच निकलनेकी बेतहाशा कोशिश करेगा या सिटपिटा कर एक कोनेमें दुबका रहेगा। कुछ ही देरमें उसकी संवेगात्मक अशान्ति कम हो जाती है और वह उस स्थानकी छान-बीन करने लगता है। यदि उस समय उसे वहां से निकाल लिया जाय और दूसरे दिन फिर उसी बाड़े[९] में रखा जाय, तो उसके व्यवहारसे पता चलेगा कि उसने कुछ सीख लिया है, क्योंकि उसकी संवेगात्मक अशान्ति उस दिन इतनी अधिक नहीं होती और वह बाड़ेके एक भागसे दूसरे भागमें, मार्गमें पड़नेवाली किसी भी दीवार या वस्तुको सूंघता हुआ, स्वतंत्रतापूर्वक घूमता रहता है। यदि वह स्थान बिल्कुल खाली है, वहां किसी तरहका भोजन या चूहेके लिए सार्थक कोई वस्तु नहीं है, तो उसकी यह अनुसन्धानात्मक चेष्टा कुछ समयके बाद बन्द हो जाती है, और उसी बाड़ेमें यदि अगले दिन भी वह रखा गया, तो यह चेष्टा और कम हो जाती है। चूहेके व्यवहारमें यह जो परिवर्तन दिखायी देता है, उससे लगता है कि उसने कुछ सीखा है।

अब तक का उसका सीखना 'निषेधात्मक अनुकूलन' के नामसे अभिहित किया जाता है। चूहेने उस स्थानसे अपनेको

[१] trial and error [२] set [३] place learning [४] thing learning or tool learning [५] motor behaviour
[६] invertebrates [७] experimental variables [८] negative adpatation [९] enclosure

अनुकूलित कर लिया। इस अनुकूलनमें कुछ प्रतिक्रियाओं का लोप हो गया। सर्वप्रथम तो उसने भयकी प्रतिक्रियाओं को दूर किया और बादमें अनुसन्धानात्मक प्रतिक्रियाओं[1] को। चूंकि उस बाड़ेमें उसे कोई चीज़ खतरनाक नहीं मिली, इसलिए भयकी प्रतिक्रियाओंका पुष्टीकरण नहीं हुआ, और अनुसन्धानात्मक प्रतिक्रियाएं इसलिए बन्द हो गयीं कि उसने उस स्थानको पूरी तरह छान डाला था और उसे कोई चीज़ रुचिकर नहीं मिल पायी थी।

निषेधात्मक अनुकूलन[2] जो एक बुनियादी तरहका सीखना है, कई प्रकारसे महत्त्वपूर्ण है। घोड़ा धीरे-धीरे अपनी ज़ीन-काठीका अभ्यस्त हो जाता है, और कुत्ता घरमें बिल्लीका रहना सहन करने लगता है। किसी पशुको पालतू बनानेका मतलब है कि उसे छुए जाने, बंधने इत्यादिका अभ्यस्त बना लिया जाये, क्योंकि यही बातें उसमें प्रारम्भमें भागने या आक्रमण करनेकी उग्र प्रतिक्रिया पैदा करती हैं। मनुष्य भी उन परिस्थितियोंके साथ, जो प्रारम्भमें उसे भयभीत और अरक्षित अनुभव कराती हैं, निषेधात्मक अनुकूलन कर लेता है। उसकी भय-प्रतिक्रियाएं दूर हो जाती हैं, और यही बात उसकी अनुसन्धानात्मक प्रतिक्रियाओंके लिए भी सत्य है, जैसा कि इस तथ्यसे पता चलता है कि कोई शोर जो पहिले हमारा ध्यान तेज़ीसे आकर्षित करता था, यदि कई बार दोहराया जाये, तो उस पर हम ध्यान देना बन्द कर देते हैं। निषेधात्मक अनुकलन ऐसी प्रतिक्रियाओंसे पीछा छुड़ा लेता है, जिनके लिए कष्ट उठाना व्यर्थ होता है। यह व्यक्तिको परिस्थिति की महत्त्वपूर्ण चीज़ोंसे व्यवहार करनेके लिए स्वतंत्र कर देता है। यह उसकी परिस्थिति-सम्बन्धी तत्परता[3] का एक अंग होता है।

भूलभुलैया[4] में चूहा. एक ऐसे भूलभुलैयामें जिसकी दीवारोंके बीचमें सँकरे रास्ते हों, जिनमें कुछ बन्द गलियां[5] और भोजनकी पिटारी तक जानेवाली एक चक्करदार सीधी राह हो, रख दिये जाने पर चूहा आगेकी ओर बहुत दूर तक (जब कि मनुष्य पेंसिल-भूलभुलैयामें से रास्ता ढूंढ़ते हुए दूर तक देख सकते हैं) नहीं देख सकता, और प्रारम्भमें उसका कोई निश्चित लक्ष्य नहीं होता। किन्तु, शीघ्र ही वह छान-बीन शुरू कर देता है, विभिन्न रास्तोंमें होकर घूमता है और यत्र-तत्र सूंघता फिरता है। इस प्रकार घूमते हुए वह भोजनकी पिटारीके पास पहुँच जाता है और उसमें से भोजन खाता है। इसके बाद उसे बाहर निकालकर यदि पुनः दरवाज़े पर रख दिया जाये, तो वह अपने व्यवहारसे यह दिखाता है कि उसने पहिले ही कुछ सीख लिया है, क्योंकि उसके व्यवहारमें पहिले की ढिलाई नहीं रहती, बल्कि अधिक तेजी आ जाती है और बन्द गलियोंमें इस बार वह कम भटकता है। अब उसके पास एक निश्चित लक्ष्य होता है। यदि प्रतिदिन उसे उसी भूल-भुलैयामें एक या अधिक बार प्रयास करने दिया जाये, तो आप देखेंगे कि वह बन्द गलियोंमें क्रमशः बहुत कम भीतर तक जाने लगता है, बादमें वह आगे जाते समय बन्द गलियोंके प्रवेश-द्वार के पास पहुँचकर तनिक हिचकता-सा है, किन्तु अन्त में तो वह बिना उसकी ओर सिर घुमाये, सीधा चला जाता है। आखिरकार वह सभी बन्द गलियोंको छोड़ता हुआ, दरवाज़े से चलकर सीधे भोजनकी पिटारीके पास पहुंचता है। अब प्रश्न हो सकता है कि इस चूहेने वास्तवमें क्या चीज़ सीखी? «प्रतिक्षेप-शृंखला-सिद्धान्त[6]» के अनुसार वह गतियोंका
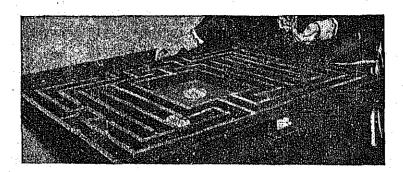
आकृति ११९. एक सफ़ेद चूहा भूलभुलैयाका अनुसन्धान कर रहा है। यह पुराने हैम्पटन कोर्टकी तरहकी भूलभुलैया है। उसको कुछ निश्चित रूप देकर पशुओंपर प्रयोग करने योग्य बना लिया गया है। फ़ोटो लेनेकी सुविधाके लिए भूलभुलैयाके ऊपरकी तारों की जाली हटा ली गयी है। चित्रमें चूहा एक बन्द गलीमें दिखायी दे रहा है। प्रयोगकर्ता एक घड़ीके ज़रिये समय देख रहा है। [सी० जे० वार्डनके सौजन्यसे]।

[1] responses [2] negative adaptation [3] situation set [4] maze [5] blind alleys [6] chain reflex theory
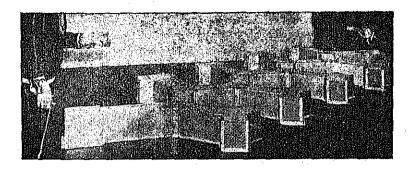
आकृति १२०. एक आधुनिक प्रकारकी भूलभुलैया। एक प्रयोगकर्ता चूहेको द्वार पर रखता है और भोजनकी पिटारीके पास खड़ा दूसरा प्रयोगकर्ता चूहेकी दौड़में लगनेवाला समय जाननेके लिए तैयार रहता है। [सी० जे० वार्डेनके सौजन्य से]।

एक निश्चित अनुक्रम सीख चुका होता है। प्रारम्भमें तो उसने कई विविध गतियां कीं, जिनमेंसे अधिकतर गतियां, जैसे बन्द गलियोंका अनुसन्धान करनेकी गतियां, निरर्थक सिद्ध हुईं। इन निरर्थक गतियोंके धीरे-धीरे लुप्त हो जानेके बाद, शेष रह जाती हैं गतियोंकी एक नियमित श्रृंखला। ये गतियां भूलभुलैयाके एकके बाद एक आनेवाले[1] भागोंसे प्राप्त हुई उत्तेज-

आकृति १२१. चूहोंके तीन समूहोंके सीखनेकी वक्ररेखा। पहिला समूह हर प्रयासमें पुरस्कृत होता है, दूसरा समूह तब तक पुरस्कृत नहीं होता जब तक वह ११ बार प्रयास नहीं कर लेता, और तीसरे समूहको ११ वें प्रयासके पश्चात् कोई पुरस्कार नहीं मिलता। चूहा जैसे-जैसे भूलभुलैया पर अधिकार पाता जाता है, बन्द गलियोंमें प्रवेश करनेकी भूलें न्यूनतर होती जाती हैं। [टॉलमैन और हॉंजिक, ३०]।
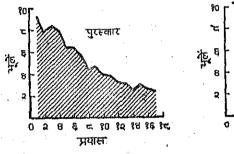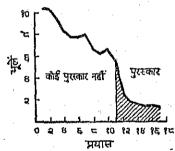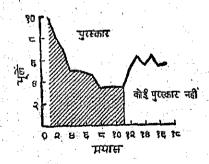
[1] successive

नाओंकी नियमित शृंखला के प्रति प्रतिक्रिया होती है। इस सिद्धांतमें सादगी का तो गुण है, किन्तु कई तरहके प्रयोगों द्वारा, जिनमे यह पता चलता है कि एक अच्छी तरह सीख हुए भूल भुलैयामें दौडते समय चूहको गतिया किसी भी तरह इतनी निश्चित और एक सी नही होती, जितना कि इस सिद्धान्त का तकाजा है। यह सिद्धान्त अमान्य सिद्ध कर दिया गया है। निम्नलिखित प्रयोग खास तौरसे विश्वास दिलाने वाला है। एक भूल भुलया इस प्रकार का बनाया गया है, जिसमें पानी बहाया जा सके। पानी या तो छिछला रहता था जिसमें से चलकर पशु निकल जाय, या इतना गहरा होता था कि पशुको विवश होकर उसमें तैरना पडता था। जिन चूहो न पैरोसे चलकर पानीको पार करते हुए, भोजन तक पहुँचनेका सही रास्ता सीख लिया था, वे पानीके गहरे हो जाने पर और तैरनेके लिए विवश होने पर भी उसी मार्गसे आते जाते रहे। इसी प्रकार तरते हुए जब उन्होंने भोजन तक पहुचने का सही रास्ता सीख लिया, तब वे पानीके छिछला हो जाने पर भी उसी रास्ते से आते जाते रहे। गहरे पानीमें परोसे चलकर पार करनेकी गतिया करना तो सम्भव है नही, और न छिछले पानीमें तैरनेकी गतिया करना। इसलिए चूहोने जो चीज सीखी और एक दशासे दूसरी दशामें जिस चीजको अपने साथ लेते गये, वह चीज गतियोकी शृंखलासे बिल्कुल भिन्न थी, उन्होंने भोजनकी पिटारी तक जानेका सही « रास्ता » सीख लिया था—जसे कि एक टागमें चोट खा जाने पर भी कुत्ता अन्य तीन टागोसे हुचकता हुआ, घरके सही रास्ते पर चला जाता है, कहीं खो नही जाता (१८)।

फिर भी «निश्चित पथका सिद्धान्त» पर्याप्त नही है। पशु भूलभुलैया में केवल एक निश्चित पथ को नही सीखता। किसी चूहेको एक सरल वर्गाकार बाडेमें कई बार रखिए और भोजन की पिटारी को सदा किसी कोनमें रखिए। जब वह प्रवेश द्वार से भोजनकी पिटारी तक अविलम्ब जाना सीख ले, तब बाडके मध्यमें कुछ आंशिक रुकावटें खडी कर दीजिए। इतना होने पर भी, चूहा भोजनकी पिटारीको ओर जायगा और बिना अधिक परेशानी के आवश्यक उपपथो[१] को पार कर लेगा (१०)। या किसी चूहको ऐसी विचित्र भूलभुलैया में रखिए, जिसकी भोजनकी पिटारी में खानेकी कोई चीज न रखी हो, जब चूहा उस भूलभुलैया का अच्छी तरह अनुसंधान कर चुके, तो उसे भोजन देना शुरू कीजिए। अब वह सही पथको बडी शीघ्रता से सीख जायगा, जिससे पता चलगा कि उसके प्रारम्भिक अनुसन्धानने भोजनकी पिटारी तक पहुचने का कोई निश्चित पथ तो उसे नही दिया, किन्तु उसने उसको बहुत कुछ सिखा दिया। इस प्रकारके प्रयोगोमें से एक प्रयोग का परिणाम आकृति १२१ में दिखाया गया है। इस प्रयोगमें लगभग ३५ ४० चूहोके तीन 'समूह' थे, किन्तु चूहे समूह में नही, बल्कि एक एक करके दौडाये जाते थे। प्रत्येक चूहको प्रतिदिन एक बार प्रयास करनेका अवसर दिया जाता था। पहले समूहके चूहोने हर प्रयासके समय भोजनकी पिटारीमें भोजन पाया, उनके सीखनेकी वक्ररेखा[२] से सुपरिचित क्रमिक प्रगतिका पता चलता है। चूहोंके दूसरे समूहको दस बार प्रयास करने तक अपने अनुसंधानका कोई पुरस्कार नही मिला, अलावा इसके कि जब वे भोजनकी खाली पिटारीके पास पहुचते थे, तभी उन्हें बाहर निकाल लिया जाता था, किन्तु ग्यारहवे प्रयासके प्रारम्भसे उन्हें पिटारीमें खाद्यसामग्री प्राप्त होने लगी, इसके बाद उन्होंने सही पथको इतनी शीघ्रता से सीख लिया कि जिससे यह सिद्ध हो गया कि उन्होंने सीखनेका अधिकांश आवश्यक कार्य पहिलसे ही पूरा कर लिया था। तीसरे समूहने केवल दस प्रयासो तक ही भोजन पाया और उसके बाद उनका भोजन बन्द कर दिया गया, वे तुरन्त पुन अनुसन्धान करने लगे। इससे उन्होंने सिद्ध कर दिया कि किसी भूलभुलैया पर पूर्ण अधिकार और किसी निश्चित
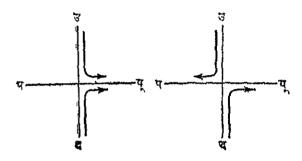
आकृति १२२ एक ऐसे प्रयोगमे, जो विशेषकर स्थान सीखनेके सिद्धान्तकी परीक्षा करनेके लिए तैयार किया गया था, चूहोके एक समूहको सदा एक ही स्थान 'पू' पर भोजन मिलता था, चाहे वे भूलभुलया में 'उ' स्थानसे छोड़े गये होते थे, या 'द' स्थानसे। 'उ' से आते समय उन्हें सन्धि पर बायीं ओर घूमना पडता था, किन्तु 'द' से आने पर दायी ओर घूमना पडता था। दूसरे समूहको सन्धि पर आकर सदा दायीं ओर ही मुडना होता था, क्योंकि 'उ' से रवाना होने पर उसे 'प' पर भोजन मिलता था और 'द' से रवाना होने पर 'पू' स्थान पर। एक निश्चित स्थान पर जाना सीखनें में चूहको बहुत आसानी हुई। सन्धि पर आकर हर बार वही चेष्टा प्रतिक्रिया करने में उसे इतनी आसानी नही हुई। प्रयोगमें उपर्युक्त परिवर्तन कर देने से उसका और कोई अन्य अर्थ निकालनेकी गुंजाइश ही नहीं रहती (३१)।

[१] detours [२] curve

पथका अनुसरण करनेकी आन्तरिक बाध्यता, दोनों एक ही चीजें नहीं हैं। आकृति १२२ को भी देखिए।

इन सारे उदाहरणोंसे, इस प्रश्नका कि चूहा भूलभुलैया में क्या सीखता है, सर्वोतम उत्तर यह प्राप्त होता है कि वह स्वयं भूलभुलैया को सीखता है। वह दीवारों, कोनों, बन्द सिरों, स्पष्ट पथोंको खोजता है और सम्पूर्ण भूलभुलैया में कम या अधिक निश्चय के साथ उनके स्थानों को पहिचानता है। वह भोजनकी पिटारीको खोज लेता है और कम या अधिक निश्चित रूपसे उसका स्थान पहिचान लेता है। वह इन तथ्योंको देखता है और देखे हुए कुछ तथ्योंको याद कर लेता है। इस प्रकार धीरे-धीरे भूलभुलैया उसके लिए एक परिचित स्थान हो जाता है। वह इस खास परिवेशसे परिचय प्राप्त कर लेता है, वस्तुगत परिस्थितिके प्रति 'तत्पर' हो जाता है; और उसकी गतियाँ, जो अब भी न्यूनाधिक रूप से रूपान्तरित होती रहती हैं, इस तत्परता[1] के द्वारा प्रशासित होती हैं।

सम्भवतः भूलभुलैया पर पूर्ण अधिकार करनेके कई चरण हैं। पहिले तो संवेगात्मक समायोजन[2] करना पड़ता है, उसके बाद भूलभुलैया के अनुसन्धान और उससे परिचित होनेकी क्रिया प्रारम्भ होती है। बन्द गलियाँ धीरे-धीरे छूटती जाती हैं और छोटे से छोटा सीधा पथ अपनाया जाता है। अब हम कह सकते हैं कि हमारी समस्या 'सिद्धान्ततः' हल हो चुकी है। यदि इसके पश्चात् चूहेको कई अतिरिक्त प्रयास करनेके अवसर दिये जायें, तो उसकी गति बढ़ जाती है और अन्तको वह भूलभुलैया में एक अपरिवर्तनशील विधि[3] से, जिसे देखकर प्रतिक्षेप-शृंखला[4] का आभास होने लगता है, सरपट दौड़ने लगता है। किन्तु सीखनेका क्रम यही है: पहिले स्थान, फिर सही पथ और अन्तको (यदि ऐसा हुआ तो) गतियोंका घनिष्ठ रूपसे संगठित अनुक्रम[5]।

मानव-परीक्षार्थियों द्वारा भूलभुलैया को सीखना. मनुष्य के सीखनेके सम्बन्धमें प्रयोग करनेके उपयुक्त करनेके लिए भूलभुलैया को बड़े पैमाने पर बनाया जा सकता है, किन्तु आमतौर से यह एक हाथके भूलभुलैया के रूपमें बदल दिया जाता है; इस भूलभुलैया में परीक्षार्थी हाथसे एक नाली[6] में एक सूचीको घुमाता चलता है या किसी लकड़ीके तख्ते पर मढ़े हुए तारोंके एक नमूनेका उंगलीसे अनुसरण करता है। साधारणतः मानव-परीक्षार्थी की आंखें बांध दी जाती हैं, या किसी प्रकार उसे भूलभुलैया को पूरी तरह देखनेसे रोक दिया जाता है। यदि एक ही नमूनेकी भूलभुलैयामें मनुष्य और चूहा, दोनोंकी परीक्षा ली जाय और उनकी गतिविधिकी तुलना की जाय, तो चूहेके प्रति हमारा सम्मान बढ़ जाता है। बहुधा चूहा भूलभुलैया को इतनी शीघ्रता से सीख जाता है, जितनी शीघ्रता से मनुष्य। चूहा पहिले तो कई भूलें करता है और एक ही प्रयासमें वह उसी बन्द गलीमें बार-बार घुस सकता है। वयस्क मनुष्यकी हरकतें अधिक जान-बूझ कर होती हैं। वह बन्द गलियोंका एक बार पता पा जाने पर उनसे दूर ही रहता है, ताकि वह उसी भूलको फिर न दोहरावे। वह बहुधा आत्मचेतन[7] हो जाता है (उसे यह ज्ञान होता है कि वह क्या कर रहा है)। जब वह किसी बन्द गली में स्वयंको पाता है, तब उसका लज्जित होना भी स्वाभाविक है। लेकिन इसी आत्मचेतना का आरोप हम चूहेमें नहीं कर सकते और न यही कह सकते हैं कि वह भूल करने पर लज्जित होता है।

इसके अलावा चूहा «शाब्दिक सहायताओं[8]» की तरहकी किसी चीजसे लाभ नहीं उठा सकता, किन्तु मानव-परीक्षार्थी कुछ भूलभुलैयोंमें शाब्दिक सहायताओंका अच्छा उपयोग कर लेता है। एक इस तरहका सूत्र (फ़ारमुला) कि 'एक बार दायेंको, फिर दो बार बायेंको, फिर दो बार दायेंको' इत्यादि, भूलभुलैयाके साधारण देशीय नमूनेको समझानेके बजाय ब्योरोंको स्थिर करनेके लिए अधिक उपयोगी होता है; यह सच्चे स्थान-सीखने[9] की जगह नहीं लेता (३२)।

भूलभुलैया को सीखनेके बाद मानव-परीक्षार्थी सही पथका एक स्थूल रेखाचित्र बना सकता है, जब वह भूलभुलैया से बाहर रहता है, तब भी वह पथका स्मरण कर सकता है। वह भूलभुलैया और पथका प्रत्याह्वान[10] करता है (पृष्ठ ३४४)। हम यह नहीं कह सकते कि चूहेमें भी प्रत्याह्वान-स्मृति[11] होती है या नहीं, क्योंकि हम किसी भी प्रकार यह प्रदर्शित नहीं कर सकते कि जब चूहा भूलभुलैया से बाहर होता है, तब वह उसके विषयमें कुछ स्मरण करता है। सम्भवतः हम चूहेको प्रत्यभिज्ञा-स्मृति[12] का श्रेय दे सकते हैं, क्योंकि वह ठीक स्थान पर ठीक चीज करके यह दिखा देता है कि भूलभुलैया से उसने घनिष्ठता कर ली है। वास्तवमें, स्थानको सीखने में यह बात आ जाती है कि जब चूहा किसी भूलभुलैया की काफ़ी छान-बीन कर चुकता है, तब उसके हिस्सोंके पास आने पर उनको पहचान लेता है।

किसी मानव-परीक्षार्थीके अन्तर्दर्शनों[13] से इस सम्बन्धमें कुछ महत्वपूर्ण बातें मालूम हो जाती हैं कि वह भूलभुलैया में क्या चीज सीखता है। उसके साक्ष्यके अनुसार लक्ष्य जिस ओर है, वह सामान्य दिशा और वहां पहुंचाने वाले रास्ते के मुख्य चिह्न

[1] set [2] emotional adjustment [3] stereotyped manner [4] chain reflex [5] integrated sequence [6] groove [7] self-conscious [8] verbal aids [9] place learning [10] recall [11] recall memory [12] recognition memory [13] introspection

सीखे जाते हैं। एक या दो प्रयासों[1] के बाद वह अपने लक्ष्यकी सामान्य दिशा को जानने लगता है। कुछ और अधिक प्रयासोंके पश्चात् वह बतलाता है कि मैंने सही पथके कुछ प्रमुख भागोंका निरीक्षण कर लिया है और जब-जब मैं उनके पास आता हूँ, उन भाग को पहचान जाता हूँ और समझ लेता हूँ कि मैं सही रास्ते पर हूँ। ये भाग उस अन्तिम लक्ष्यके, जिसके पास तक वह पहुँचने की चेष्टा करता है, मध्यवर्ती लक्ष्योंका काम देते हैं। ऐसे भाग[2] तथा भूलभुलैया का द्वार और अन्तिम स्थान शीघ्रतापूर्वक सीख लिये जाते हैं और ये एक ढांचेका काम देते हैं, जिसमें विस्तारकी शेष बातें जैसे-जैसे मालूम होती जाती हैं, अपना स्थान लेती जाती हैं (५)। चूहेके व्यवहारसे भी ऐसे संकेत मिलते हैं कि वह भी शीघ्र ही लक्ष्यकी दिशा का ज्ञान कर लेता है और रास्तेमें पड़नेवाले प्रमुख-चिह्नोंको पहचान लेता है।

भूलभुलैया तो इस समस्या की एक सरल-सी बानगी है कि आप परिवेशमें अपना मार्ग कैसे बनावेंगे। कई पशु—कई तरहके स्तनधारी पशु, चिड़ियां और मछलियां—बहुत दूर स्थित अपने रास्तोंको पहचान लेनेकी इतनी उल्लेखनीय योग्यता प्रदर्शित करते हैं कि यह प्रश्न उठता है कि क्या उनमें 'दिशा-ज्ञान की कोई विशिष्ट इन्द्रिय' है जो मनुष्यमें नहीं पायी जाती? इस प्रश्नके सम्बन्धमें कोई प्रमाण जुटाये बिना ही हम केवल इतना कह सकते हैं कि यह बात एक विशिष्ट दिशा-ज्ञानेन्द्रिय के सिद्धान्तके विरुद्ध पड़ती है। उदाहरण के लिए, चिट्ठी ले जानेवाला कबूतर भूमिके चिह्नों पर भी निर्भर होता है, जिन्हें वह अपनी तेज आंखोंसे देख सकता है (३३)।

मनुष्यको निश्चित रूपसे दिशा का कोई रहस्यमय ज्ञान नहीं होता, हालांकि हम कभी-कभी ऐसे कहते हैं कि जैसे उसके पास इस तरह की चीज है, क्योंकि वह अपने लक्ष्य की दिशा में बग़ैर भटके चलते रहने की काफ़ी योग्यता रखता है और भू-चिह्नों[2] का निरीक्षण करने और बादमें उन्हें पहचाननेकी श्रेष्ठ योग्यता भी उसमें होती है। जब दो आदमी किसी अनबसे प्रदेशकी सड़कों पर मोटरसे यात्रा कर रहे होते हैं या ठेठ जंगलों में, जहां रास्तों पर चिह्न नहीं बने होते, साथ-साथ भ्रमण करते होते हैं, तब प्रायः ऐसा होता है कि उनमें से एक तो अपने दिशा-ज्ञान को ठीक बनाये रखने पर भरोसा करता है और दूसरा आदमी रास्तेमें पड़नेवाले चिह्नों पर ज्यादा ध्यान देता है, जिन्हें वह दुबारा पहचान सके। दोनों ही आदमियोंके ग़लती करनेकी सम्भावना है, क्योंकि सम्भव है, पहिला आदमी तो पूरी तरह या कुछ-कुछ भटक जाय और दूसरा रास्तेके चिह्नोंको भुला दे या उलझा दे। यह एक ऐसा मामला है, जिसमें एक के बजाय दो मस्तिष्क सदा कारगर होते हैं। मनुष्य अपने द्वारा आविष्कृत वस्तुओं—पथ-चिह्न, मानचित्र, प्रकाश-स्तम्भ, दिशासूचक 'कम्पास', रेडिओकी किरण आदि—की सहायता लेकर अपने मार्गका पता लगाने और अपनी सहायता करनेमें आश्चर्यजनक करामात दिखाता है। मनुष्यमें अपने मार्गकी पूर्वयोजना तैयार करने और बादमें उसका प्रत्याह्वान करनेकी बौद्धिक योग्यता भी होती है।

वस्तु और यंत्र (उपकरण) को सीखना

यदि स्थानको अनुसन्धानके द्वारा (चल-फिर कर) सीखा जाता है, तो अब हमें प्रहस्तन[3] (हाथ से उलट-पुलटकर) से किसी चीजको सीखने पर विचार करना है। किसी स्थानसे परिचय प्राप्त करनेके लिए आप अपनी ज्ञानेन्द्रियोंका उपयोग करते हुए इधर-उधर घूमते हैं; आप गतिशीलता[4] को निरीक्षण[5] के साथ मिला कर चलते हैं। किसी चीजसे परिचय प्राप्त करनेके लिए आप बहुधा अपने हाथसे उसको हिलाते-डुलाते हैं और वह क्या कर सकती है इसकी परीक्षा करते हैं—खास तौरसे यदि वह चीज कोई औजार हुई तो। हम कह सकते हैं कि औजार एक ऐसी चीज है, जिससे कुछ परिणाम प्राप्त करनेके लिए हमें उसको अपने हाथसे चलाना पड़ता है। आप किसी औजारको हाथसे चला कर और परिणामों का निरीक्षण करके उससे परिचय प्राप्त करते हैं। यद्यपि औजारोंका इस्तेमाल और वस्तुओंका प्रहस्तन बचपन से लेकर आगेके दिनोंमें मनुष्योंमें व्यापक रूपसे दिखाई देता है, तथापि पशुओंमें भी इस तरहके व्यवहारका हम एकान्त अभाव नहीं पाते। वस्तुओंका प्रहस्तन करने और उनसे परिचय प्राप्त करनेमें मनुष्य तो अपने हाथोंका इस्तेमाल करता है, (जैसा कि प्रहस्तनका शब्दार्थ है) किन्तु पशु अगली टांगों, या पिछली टांगों दांतों, थूथन, चोंच या शरीरके किसी हिस्सेका इस्तेमाल कर सकता है।

भूलभुलैया के मामलेके समान ही यहां भी हमारा प्रमुख प्रश्न यही है कि पशु क्या सीखता है? क्या वह कुछ गतियों को सीखता है या उन चीजोंकी, जिन्हें वह औजारकी तरह इस्तेमाल करता है, कतिपय विशेषताओंको सीखता है?

थॉर्नडाइक[6] के पिंजरे में बिल्ली. एक जवान, भूखी बिल्ली को किसी पिंजरेमें बन्द कर दीजिए और उससे कुछ दूरी पर बाहरकी ओर मछलीका एक टुकड़ा रख दीजिए। फिर तमाशा देखिए। बिल्ली पिंजरेकी सलाखोंके बीच अपना पंजा घुसेड़ती है; किन्तु मछली तक नहीं पहुँच पाती; वह सलाखोंके बीच अपनी नाक घुसाती है, किन्तु बाहर नहीं निकल पाती; वह सलाखोंको काटती है, किसी भी छोटी चीज पर पंजा मारती

[1] trials [2] landmarks [3] manipulation [4] locomotion [5] observation [6] Thorndike

है, किसी भी ढीली चीजको हिलाती है, बहुत सम्भव है कि वह पिंजरेके सभी हिस्सोंमें ऐसी हरकत करती फिरे, हालांकि उसकी ज्यादातर हरकतें मछलीके पासवाले हिस्सोंमें ही होती हैं। देर-सबेर वह उस चटखनी पर पंजा मारती है जो पिंजरे के दरवाजेको बन्द रखे हुए है; पंजोंसे उसे छूनेसे वह उसे घुमाने में कृतकार्य हो जाती है; दरवाजा खुल जाता है और बिल्ली मछलीके टुकड़े पर झपट पड़ती है। प्रयोगकर्ता इस प्रथम प्रयासमें लगे हुए समयको लिख कर, बिल्लीको, जो अब भी भूखी होती है, पिंजरेमें बन्द कर देता है। फिर पिंजरेसे बाहर कुछ दूरी पर मछलीका दूसरा टुकड़ा रख देता है। पुनः 'प्रयास और भूल' का व्यवहार दिखायी देता है, हालांकि पहिलेकी अपेक्षा कम। आगेके प्रयासोंमें निरर्थक गतियोंकी संख्या क्रमशः कम होती जाती है। यहां तक कि अन्तको पिंजरेमें बन्द होते ही बिल्ली सीधे चटखनी पर झपट्टा मारती है और कुछ ही सैकंडोंमें उसे हटा कर बाहर निकल जाती है। कई दिनों के दौरानमें, १०-२० प्रयास करनेके बाद, बिल्ली इस चालाकी में उस्ताद बन सकती है।

बूढ़ी बिल्लियां, या शान्त बिल्लियां या ऐसी बिल्लियां जो किसी कारणवश अधिक उत्सुक नहीं होतीं, इतनी गलतियां नहीं करतीं, फिर भी उत्तेजित बिल्लियोंकी अपेक्षा वे कुछ कम प्रयासोंमें ही चटखनी खोलनेकी हिकमत सीख जाती हैं— यह एक तथ्य है, जिससे पता चलता है कि सीखनेमें स्फूर्तिमय गतियोंके बजाय ज्ञानेन्द्रियोंका उपयोग अधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। एक सार्थक तथ्य यह भी है कि एक बार बाहर निकल जाने पर बिल्लियां दरवाजेके क्षेत्रमें अपनी चेष्टाको केन्द्रित करती हैं। इससे पता चलता है कि उन्होंने पहिले ही * स्थानके
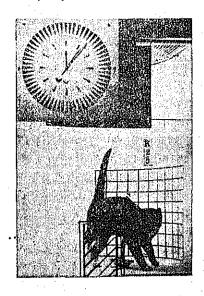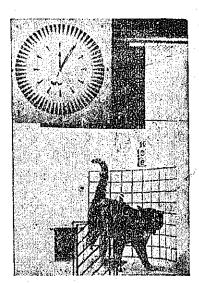
आकृति १२३. एक डंडेको अपने पार्श्वसे धकेल कर एक बिल्ली प्रयोगकी-पिटारी का दरवाजा खोल रही है। बिल्ली इस पिटारी या पिंजरेमें पीछेके छोटे-से दरवाजेसे घुसायी गयी थी और पिंजरेमें आते ही वह सामनेके तारोंके दरवाजेकी ओर बढ़ी थी। इसी बीच उसने अपने पार्श्वसे सीधे डंडेको धक्का दिया था। इस डंडे पर धक्का लगने से दरवाजा स्वतः खुल जाता था। दोनों दृश्योंमें एक ही बिल्ली दो प्रयासोंमें दिखायी गयी है; दीवार पर लगी हुई घड़ी डंडे पर धक्का मारने तक के समयकी गिनती बता रही है; उससे पता चलता है कि २३वीं बार प्रयास करने पर बिल्लीको दरवाजा खोलनेमें ६ सैकेंड लगे और ३८वीं बारके प्रयासमें केवल ५ सैकेंड। यह बिल्ली हर बार डंडेको अपने पार्श्वसे धक्का मारती थी। अन्य पशु एक पंजा या सिर इस्तेमाल करते थे; कई पशु इस परिस्थितिमें बराबर एकही तरीका अपनाते रहे। अन्य पिटारियोंमें हर पशुके प्रयासका क्रम हर बार बदलता रह सकता है। यहां भी, दोनों चित्रोंको ध्यानसे देखने पर पता चल जाता है कि बिल्ली अपनी विधिमें उन्नति कर रही है। दूसरे चित्रमें वह दरवाजेसे उतनी दूर नहीं मुड़ी हुई है, बल्कि ज्यों ही दरवाजा खुले, उसके पास पहुँचनेके लिए तैयार है। [ई० आर० गुथरीके सौजन्य से]।

सम्बन्धमें कुछ सीख लिया है»। एक दूसरे तरहके पिंजरेमें, एक रस्सी या तारके फन्देको, जो पिंजरेमें लटका होता है, खींच देने पर दरवाज़ा खुल जाता है। बिल्लियां शीघ्र ही इस फन्दे पर अपनी चेष्टा केन्द्रित कर देती हैं। यदि प्रयोगकर्ता फन्दे को पिंजरेके दूसरे किसी भागमें हटा दे, तो बिल्लियोंका व्यवहार दो तरहसे दिलचस्प होता है। पहिले तो वे उस स्थान पर जाती हैं, जहां पर फन्दा रहा करता था और हवामें पंजा मारती हैं, मानो फन्देको पकड़ना चाहती हों--इस प्रकार वे दिखाती हैं कि उन्होंने उस «स्थान» को सीख लिया है--और बादमें जब वे फन्देको एक नये स्थान पर देखती हैं, तब उसको उसी तरीक़ेसे खींचती हैं, जिस तरीक़ेसे उसे वे उसके पूर्व-स्थान पर खींचा करती थीं। इससे वे यह प्रकट करतीं हैं कि उन्होंने «वस्तु» को भी सीख लिया है। वे उछल-कूद का व्यायाम करनेके बजाय वस्तुओंसे व्यवहार कर रही होती हैं। किन्तु कोई पूछ सकता है कि क्या उन्होंने कुछ खास वस्तुओंको देखने पर ही कुछ खास तरहकी गतियां करना नहीं सीखा है? यदि यह बात ठीक होती, तो दरवाज़ा खोलनेकी हिकमत सीख लेने के बाद, बिल्लियां उसे कार्यान्वित करते समय सदा एक-सी ही गति करतीं। किन्तु वास्तविकता यह है कि वह बिल्ली जो फन्दा खींचना सीख चुकी होती है, उसी परिणामको प्राप्त करनेके लिए कभी तो अपने पंजोंका उपयोग करती है और कभी अपने दांतों का। कभी-कभी उसकी गति निश्चित और एक ही रहती है, किन्तु साधारणतः ऐसा नहीं होता (१, ६, २८)।

ऐसा लगता है कि बिल्ली किसी गति या गतियोंकी शृंखला को नहीं सीखती, बल्कि कुछ वस्तुओंके उपयोगी गुणों और अन्य वस्तुओंके अनुपयोगी गुणोंको सीखती है। सलाखोंके बीच की जगहको वह अनुपयोगी पाती है, वह जगह इतनी संकरी होती है कि बिल्ली उसमें से निकल नहीं सकती। बिल्ली दरवाजेकी चटखनीको हटने योग्य और दरवाज़ा खोलनेके लिए उपयोगी पाती है। वस्तुओंकी ये विशेषताएं उस पर अपनी छाप डालती रहती हैं और अन्ततः वह उनको भली भांति सीख जाती है। गति-पक्ष[1] में नये रूपमें सीखनेकी बहुत कम आवश्यकता होती है, क्योंकि रस्सीको खींचने या दरवाजेकी चटखनी को घुमानेकी गतियां पुरानी परिचित गतियां हैं। भूल-भुलैया की पूर्ण जानकारीके समान ही सादे औज़ारोंको चलाने की दक्षता प्राप्त करनेमें, यदि एक बार वस्तुगत परिस्थिति समझमें आ जाय, तो पुरानी और परिचित गतियां काम दे देंगी। एक बार जब चूहा यह खोज लेता है कि उसे भूल-भुलैया में किस पथका अनुसरण करना है, तब चलने और दौड़नेकी उसकी परम्परागत गतियां उसे उस पथका अनुसरण करनेके लिए समर्थ बना देती हैं; और एक बार जब बिल्ली पिंजरेमें घूमने योग्य चटखनी और खींचने योग्य रस्सीका पता पा जाती है, तब पंजा मारने और काटनेकी उसकी परम्परागत गतियां उसे इतना समर्थ बना देती हैं कि वह इस औज़ार का सफलतापूर्वक इस्तेमाल कर सके। इसमें कोई सन्देह नहीं कि दोनों मामलोंमें लगातार अभ्यासके कारण ऊंचे दर्जेकी कर्म-कुशलता[2] आ सकती है।

बन्दरों और वनमानुषों द्वारा औज़ारका इस्तेमाल सीखना: बिल्लियों और कुत्तोंकी तुलनामें बन्दरोंके पास प्रहस्तनके लिए अच्छे हाथ, निरीक्षणके लिए अच्छी आंखें और सीखनेके लिए बड़े मस्तिष्क होते हैं। वे अधिक शीघ्रतासे सीख जाते हैं और अधिक जटिल औज़ारोंको भी हाथसे चला सकते हैं। मनुष्य के समान दिखायी देनेवाले विपुच्छ वानर[3], विशेषकर चिम्पैन्ज़ी, मस्तिष्कके आकारमें बन्दरोंसे भी आगे बढ़ जाते हैं और औज़ारोंका इस्तेमाल करनेकी उनकी योग्यता शायद मनुष्योंके निकट पहुँचती है।

कुछ मनोवैज्ञानिक भूलभुलैया और पिंजरोंके प्रयोगोंको पसन्द नहीं करते, क्योंकि ये पशुको एक निराशाजनक परिस्थितिमें डाल देते हैं। ऐसी परिस्थितिकी थोड़ी-थोड़ी करके छान-बीन करनी होती है और 'प्रयास व भूल' का यह विलम्बकारी व्यवहार समस्या को सीखने और उस पर स्वामित्व प्राप्त करनेकी आवश्यक प्रक्रियाको व्यक्त करनेके बजाय उसे छिपा ही सकता है। ऐसी उलझनों से कुछ मुक्त छड़ी से पहुँचने की समस्या[4] है, जो बन्दरों और चिम्पैंजीके लिए उपयोगी होती है। इस प्रयोगकी विधि यह है: एक बन्दरको पिंजरेमें बन्द कर दिया जाता है; पिंजरेके बाहर फ़र्श पर केला या और कोई खाद्य-सामग्री रखी रहती है, जो इतनी दूर होती है कि हाथ और भुजा की पहुँच वहां तक नहीं हो पाती; किन्तु एक छड़ी बन्दर के पास ही पड़ी होती है। बन्दर शीघ्र ही छड़ीकी सहायतासे केलेको भीतर खींच लेनेकी क्रिया सीख जाता है। इसके पश्चात् उसे दो-छड़ीकी समस्या दी जाती है। एक छोटी छड़ी, जो बन्दरके पास ही पड़ी होती है, केले तक नहीं पहुँच सकती, किन्तु एक लम्बी छड़ीके पास तक पहुँच सकती है। इस तरह बन्दरको पहले बड़ी छड़ीको खींचना होता है। फिर केलेको खींचनेमें बड़ी छड़ीका उपयोग करना होता है। बन्दर इस चालाकीको और दूसरी चालाकियों को, जिनमें तीन या अधिक छड़ियोंके उपयोग की आवश्यकता रहती है, सीख जाता है।

एक चिम्पैंज़ीको, जो एक छड़ीकी सहायतासे केलेको पिंजरे के भीतर खींचनेकी कला सीख चुका था, बांसकी दो छड़ियां दी गयीं। इनमेंसे कोई भी इतनी बड़ी न थी कि केलेके पास

[1] on the motor side [2] motor skill [3] ape [4] reaching-stick problem
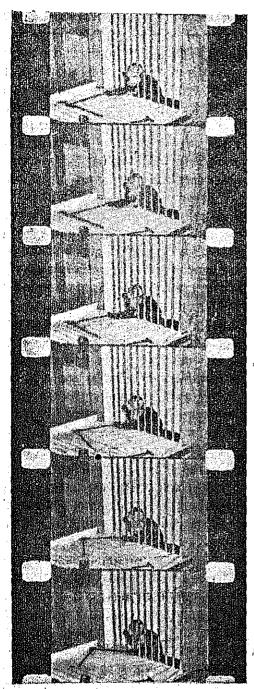
आकृति १२४. बन्दर 'अनेक छड़ियोंकी समस्या' को सुलझाने में व्यस्त है। लक्ष्य तक पहुँचनेके लिए एक लम्बी छड़ीकी आवश्यकता है। लम्बी छड़ीको प्राप्त करनेके लिए उसे एक के बाद दूसरी कई छोटी छड़ियोंको भीतरकी ओर खींचना है। [सी० जी० वार्डेन और जी० एम० गिलबर्टके सौजन्यसे]।

तक पहुँच सकती, किन्तु एक छड़ी इतनी पतली थी कि वह दूसरी छड़ीके पोले सिरेमें अच्छी तरह बैठ सकती थी। क्या पशुमें इतनी बुद्धि है कि वह «जोड़वाली छड़ी» बना ले और उसका इस्तेमाल करे? छोटी छड़ियोंके साथ एक घंटा तक निष्फल प्रयास करनेके बाद चिम्पैंजी यह अच्छी तरह सीख गया कि ये बहुत छोटी हैं। उसने प्रयास छोड़ दिया और अपने पिंजरेके पृष्ठ-भाग में चला गया। वहां उसने दोनों छड़ियोंके साथ खेलना शुरू किया और खेल ही खेलमें दोनों छड़ियोंके सिरोंको वह पास-पास ले आया और पतले सिरेको मोटे सिरेमें कुछ दूरी तक ढकेल दिया। फिर क्या था, वह खुशीसे उछल पड़ा, पिंजरेके अग्र-भाग में आया और अपनी जोड़वाली छड़ीसे केलेको अपनी ओर खींचने लगा। चूंकि दोनों छड़ियां बहुत ढिलाईसे जोड़ी गयी थीं, इसलिए वे अलग-अलग हो गयीं, किन्तु उसने तुरन्त उन दोनोंको फिर जोड़ लिया और केलेको प्राप्त किया। खानेके लिए रुके बिना ही उसने अपने नये औजार[1] की पहुँचके भीतरकी सभी चीज़ों को अपने निकट खींच लिया। अगले दिन, दुबारा परीक्षा ली जाने पर, उसने पहिले तो कुछ निरर्थक गतियां कीं, किन्तु कुछ ही सैकेंडोंमें उसने अपनी जोड़वाली छड़ी बना डाली और पहिलेकी भांति उसका इस्तेमाल किया (१६)। यह प्रयोग छोटे बच्चोंके साथ भी किया गया है और उसमें भी ऐसे ही परिणाम प्राप्त हुए हैं (२)।

सूझ या अन्तर्दृष्टि[2]. वह महत्त्वपूर्ण क्षण, जिसमें चिम्पैंजी निस्सहायता की दशा से समस्याको सुलझानेकी आश्वस्त दशा में पहुँच गया, «सूझ[2]» का क्षण कहा जा सकता है। सूझसे हमारा तात्पर्य यहां केवल इतना ही है कि पशुको यह ज्ञात हो गया कि उसके पास अब एक निरर्थक छोटी छड़ीके स्थान पर एक अच्छी लम्बी छड़ी है। उसने समस्या को हल करनेके लिए एक उपयोगी तथा सहायक वस्तुको देखा या निरीक्षण किया। यदि निरीक्षण शब्दका यहां 'जान-बूझकर किसी चीज को देखनेका प्रयत्न' अर्थ हो, तो यह शब्द भी कुछ अधिक कड़ा पड़ता है। हमारा केवल इतना मतलब है कि पशु अपनी ज्ञानेन्द्रियोंका इस्तेमाल करके वस्तुओंके साथ, विशेषकर उन वस्तुओंके साथ जिनका अपने लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए वह उपयोग कर सकता है, परिचय प्राप्त करता है।

सूझ या अन्तर्दृष्टि कभी तो «पूर्वदृष्टि[3]» होती है और कभी «पश्च-दृष्टि[4]»। जब चिम्पैंजी अपनी जोड़वाली छड़ी को लेकर पिंजरेके अग्रभागकी ओर दौड़ा और केलेको खींचने का प्रयास करने लगा, तब उसने पूर्वदृष्टि का परिचय दिया—उसने सफलता का पूर्वज्ञान कर लिया। उसने अपने लक्ष्य तक पहुँचनेकी स्पष्ट राह देख ली। पिंजरेमें पड़ी हुई बिल्ली,

[1] tool [2] insight [3] foresight [4] hind sight

भूलभुलैयामें पड़ा हुआ चूहा और चहारदीवारीके भीतर बन्द कुत्ता—अपने लक्ष्य तक पहुँचनेका कोई निश्चित मार्ग नहीं देख पाये थे। वे अपने लक्ष्य तक पहुँचनेके सम्भव मार्गों को देख सकते थे। जब उन्होंने एक सम्भव मार्गका अनुसरण किया और उसे अवरुद्ध अथवा निष्फल पाया, तब उनको कुछ पश्च-दृष्टि हुई होगी—अर्थात् उन्होंने निरीक्षण किया होगा कि यह तो गलत मार्ग था, और जब उन्होंने किसी ऐसे मार्गसे प्रयास किया जो कुछ कामका निकला, तब उन्होंने उस मार्गकी अच्छाईका निरीक्षण किया होगा। लक्ष्य तक जानेवाली राह पर चलनेके पहिले ही उसे देख लेनेको पूर्वदृष्टि कहते हैं—या बिना आजमाइश किये ही किसी सम्भव मार्ग[1] की व्यर्थता को समझ लेना, पूर्वदृष्टि या पूर्वज्ञान कहा जा सकता है। किसी मार्गका अनुसरण कर लेनेके बाद उसकी अच्छाई या बुराईका ज्ञान होना पश्च-दृष्टि है। जब सारी परिस्थिति स्पष्ट होती है और आंखोंके सामने होती है, तब पूर्वदृष्टिके लिए अच्छा अवसर होता है, किन्तु जब परिस्थितिकी महत्त्वपूर्ण विशेषताओंका अनुसन्धान[2] करना और हाथसे व्यवहार[3] करके पता लगाना होता है, तब पश्च-दृष्टि[4] की ही अधिक से अधिक आशा की जा सकती है।

मानव-परीक्षार्थियोंद्वारा औजारोंको सीखना. पशुओंके साथ प्रयोग करनेके लिए जिन सरल पिंजरोंका उपयोग किया जाता है, उनके स्थान पर यदि मनुष्योंके साथ यांत्रिक पहेली[5] का प्रयोग किया जाये, तो उनको काफ़ी कठिनाई पड़ सकती है। पहेलीको गम्भीरतापूर्वक हल करना होता है और अभ्यास तब तक जारी रखना होता है, जब तक परीक्षार्थी बिना किसी भूल या हिचकके पहेलीको शीघ्रतासे और समान रूपसे हल न करने लग जाये। प्रयोगकर्ता यह लिखता रहता है कि परीक्षार्थीने यांत्रिक पहेलीके भागोंको पृथक् करनेमें कितना समय लिया और वह पहेलीको सुलझानेके उसके तरीक़े का भी निरीक्षण करता रहता है। परीक्षार्थी भी प्रत्येक प्रयास[6] के पश्चात् बतलाता है कि वह अपने प्रयत्नों और कठिनाइयोंके विषयमें कितनी बातें याद रखे हुए है।

मानव-परीक्षार्थी जब पहेलीको पहिले-पहिल अपने हाथमें लेता है, तब वह प्रयास और भूल करके सीखनेकी विधि ही अपनाता है। वह आवेशमें कभी एक सम्भव तरीक़े से उसे खोलता है और कभी दूसरेसे, कभी-कभी एक ही ग़लत तरीक़े का बार-बार अनुसरण करता है, कि इतने ही में संयोगवश पहेलीके हिस्से अलग-अलग हो जाते हैं, जिससे उसे सन्तोष और आश्चर्य दोनों होता है। कुछ थोड़े-से व्यक्ति पहेली को सुलझानेके लिए कुछ अधिक विचारसे काम लेते हैं। वे पहेली की ओर देखकर पहिले उसका अध्ययन करते हैं; किन्तु यह बुद्धिमत्तापूर्ण दिखाई देनेवाली विधि शायद ही कभी सफल होती है, क्योंकि पहेली के भागोंकी त्रि-वैम-गतियां[7] बिना वास्तविक प्रहस्तनके मालूम ही नहीं की जा सकतीं।

दूसरे प्रयासमें भी परीक्षार्थी कुछ उलझनमें रह सकता है और पहिलेकी भांति बेतुके ढंगसे काम शुरू कर सकता है; किन्तु साधारणतः वह एक या दो उपयोगी तथ्योंका निरीक्षण कर चुका होता है। अधिक सम्भव तो यही है कि उसने यह देखा हो कि पिछली बार जब वह सफल हुआ, तब पहेलीके किस भागको सुलझानेमें वह लगा था—क्योंकि «स्थितियां[8]» निरीक्षण के लिए सबसे आसान तथ्य होती हैं—मनुष्योंके लिए ये सर्वाधिक सरल होते हैं और पशुओंके लिए भी। कुछ प्रयासोंके सिलसिलेमें परीक्षार्थी कई ग़लत तरीक़ों[9] को छोड़ देता है और सम्भवतः पहेलीके अन्दर उसकी कम या अधिक स्पष्ट पैठ हो जाती है, हालांकि यह अधिक सम्भव है कि वह बिना यह समझे हुए कि वास्तवमें क्या घटित हुआ है, वस्तुका सही-सही प्रहस्तन सीख जाये।

त्रि-वैम[10] पहेली को हल करनेमें जो सूझ या अन्तर्दृष्टि[11] होती है, वह अधिकांशमें पश्च-दृष्टि के प्रकारकी होती है। वह इतनी पूर्ण नहीं भी हो सकती है कि तात्कालिक समस्या को हल करनेमें उपयोगी सिद्ध हो। सूझ जितनी ही सर्वांगपूर्ण होगी, उसके उपयोगका सम्भावित क्षेत्र भी उतना ही विस्तृत होगा। एक दिलचस्प प्रश्न यह है कि किसी वस्तुका «प्रहस्तन करनेमें जिस कुशलता की आवश्यकता होती है», वह क्या निरीक्षणके द्वारा अर्जित की जा सकती है? जब परीक्षार्थी इन यांत्रिक पहेलियोंमें से किसी एक को हल करने में सफल हो जाता है, तब उसका प्रहस्तन[3] बेतुका होता है, किन्तु कई बार प्रयास करनेके बाद वह उसमें कुशलता[12] प्राप्त कर लेता है। कभी-कभी वह बयान करता है कि मैंने पहेली की कुछ विशेषताओं[13] को ध्यानपूर्वक देखा और इस निरीक्षण के कारण मुझे पहेलीका आसानीसे प्रहस्तन करनेमें मदद मिली। इस सम्बन्धके एक उदाहरणका अंकन आपको आकृति १२५ में मिलेगा। इस बातका दावा करना कि निरीक्षणके द्वारा ही सारी कुशलता प्राप्त होती है और निरीक्षण से ही सारी बातें सीखी जाती हैं, डूनकी हांकना होगा—अभी तक हमारे पास जो प्रमाण उपलब्ध हैं, उनसे बहुत परेकी यह बात होगी। किन्तु यह स्पष्ट है कि किसी भी तरहके औजार (उपकरण) को हिलाते-डुलाते समय, चाहे वह हथौड़ा हो या गॉल्फ़ खेलनेका डंडा, आप अपनी गतियोंकी अपेक्षा औजार और उससे सम्बन्धित अन्य वस्तुओं, जैसे कील और गॉल्फ़के

[1] lead [2] exploration [3] manipulation [4] hind sight [5] mechanical puzzle [6] trial [7] three-dimensional movements [8] locations [9] false leads [10] three-dimensional, [11] insight [12] *skill* [13] *characteristics*
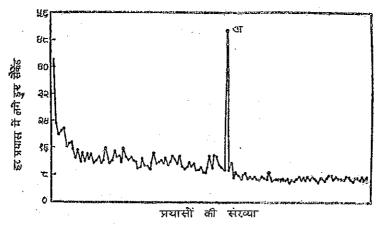
आकृति १२५. एक आदमी द्वारा एक यांत्रिक समस्या पर अधिकार पानेका प्रयास प्रदर्शित करनेवाली सीखनेकी वक्ररेखा। प्रयासोंको उनके क्रमसे बायेंसे दायें को सजाया गया है; हर प्रयासमें जो समय लगा, वह आधार-रेखासे ऊपरकी ओरके बिन्दुकी ऊंचाईसे सूचित किया गया है। वक्ररेखाकी धीरे-धीरे गिरावटसे प्रयासकी उन्नति दिखायी गयी है। 'अ' बिन्दुके पास विषयने पहेलीके सम्बन्धमें एक ऐसी बात देखी, जिसको उसने पहिले नहीं देखा था, और उसका उसने सावधानीके साथ अध्ययन किया। इस प्रकार उसके इस एक प्रयासमें अधिक समय अवश्य लगा, किन्तु इसके बाद उसने स्थायी रूपसे अपनी कार्य-पद्धति में सुधार कर लिया। [रूगरसे प्राप्त सामग्री, २५]।

गेंद, पर अधिक ध्यान देते हैं। इस तथ्यसे यह प्रकट होता है कि वस्तुओं और उपलब्ध परिणामोंका निरीक्षण करना क्रिया के संचालनमें दक्षता प्राप्त करनेके लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध होता है।

यांत्रिक वस्तुओंको समझने और उनका प्रहस्तन करनेमें मनुष्य पशुओंकी अपेक्षा बहुत अधिक श्रेष्ठ है। वस्तुका सफ़ाई से प्रहस्तन करनेके लिए उसके हाथ अधिक उपयुक्त हैं और जो इससे भी महत्त्वपूर्ण बात है, वह यह है कि उसकी निरीक्षण-शक्ति भी पशुओंकी अपेक्षा अधिक है। वह यांत्रिक वस्तुओं के सम्बन्धोंको अधिक स्पष्टता से देखता है। दरवाजेकी चटखनी घुमाने या दो छड़ियोंको जोड़ने-जैसी समस्याएं किसी वयस्क मनुष्य या अर्धविकसित बच्चेके लिए कोई कठिनाई नहीं उपस्थित करतीं। फिर भी, ऐसा प्रतीत होता है कि यंत्र-विद्या के विचित्र मानवीय क्षेत्रमें मनुष्यके पास अनुभवसे अलग कोई ज्ञान नहीं होता। छोटा बच्चा वस्तुओंको हाथसे छूने, उनका प्रहस्तन करनेका शौक़ीन तो होता है, किन्तु वह प्रारम्भ में वस्तुओंके गुणों-अवगुणों को नहीं जानता (१५)। यहां तक कि सबसे सरल यांत्रिक समस्या, जैसे खूंटीसे अपना कोट उतारना, भी उसके बूतेकी बात नहीं, जब तक वह उस के साथ प्रयोग नहीं कर चुकता। वह 'अनुभव' के द्वारा सीखता है। इसका अर्थ यह हुआ कि वह प्रहस्तन[1] के साथ निरीक्षण[2] को मिलाकर सीखता है। पश्च-दृष्टि[3] के साथ प्रयास और भूलको मिलाकर वह यांत्रिक वस्तुओंके विषयमें ज्ञान प्राप्त करता है और इस योग्य हो पाता है कि कुछ पूर्वदृष्टि (पूर्व-ज्ञान) के साथ नयी यांत्रिक समस्याओंको हल करनेमें प्रवृत्त हो सके।

बच्चा केवल यांत्रिक वस्तुओंको नहीं, बल्कि सामाजिक आवश्यकताओं को भी निरीक्षणके साथ प्रयास और भूलको मिलाकर सीखता है, जैसा कि हमने किसी समूह की नैतिक नियमावलीके मामलेमें देखा था (पृ० ८३)। इन मामलोंके बारेमें ज्ञानका कुछ कोष जमा करके वह कुछ पूर्वदृष्टिके साथ आगे बढ़नेमें समर्थ हो जाता है।

मनुष्यों और पशुओंके सीखनेमें अन्तर. अब तक हमारे अध्ययनके सिलसिलेमें मानवीय श्रेष्ठता के जो प्रमाण मिले हैं, उनकी कुछ मुख्य बातें ये प्रतीत होती हैं:

१. मनुष्य अच्छा निरीक्षक[4] है; वह वस्तुओं, लोगों और परिस्थितियोंकी कई ऐसी विशेषताओंका निरीक्षण कर लेता है, जो पशुकी समझके दायरे के बाहर होती हैं।

[1] manipulation [2] observation [3] hindsight [4] observer

२. किसी समस्या को हल करनेमें मनुष्य अधिक विचार, व्यवस्था और नियंत्रण का उपयोग करता है।

३. सीखनेमें मनुष्य नामों, संख्याओं और साधारणतः भाषा का काफ़ी इस्तेमाल करता है।

४. अंशतः, भाषा की सहायता से मनुष्य समस्याओंके सम्बन्धमें उस स्थितिमें भी सोच सकता है, जब सामग्रियां उसके सामने नहीं होतीं। किसी पहेलीसे निष्फल सिर मारने के बाद, देखा गया है कि परीक्षार्थी अगले दिन प्रातःकाल बिस्तरमें पड़े-पड़े उसका हल ढूंढ़ लेता है। मनुष्यमें चिन्तन-शक्ति—अप्रस्तुत वस्तुओंके विषयमें सोचनेकी शक्ति¹—असन्दिग्ध रूपसे इतनी अधिक विकसित है, जितनी किसी भी प्राणीमें नहीं पायी जाती।

कौशलपूर्ण क्रिया की 'उच्चतर इकाइयां'. जिन यंत्रों को मनुष्य काफ़ी कुशलता के साथ संचालित करता है, उनमें से कुछ ये हैं—टाइपराइटर, वायलिन और वायुयान। इनमें मांस-पेशियों की गतियोंके जटिल अनुक्रमों और संयोगोंकी, जो यंत्र के उपयुक्त हों, आवश्यकता होती है। दूसरे यंत्रमें परीक्षार्थीका अपना मुंह, जीभ और टेटुआ—उसकी वाणी और स्वरका उपकरण–सम्मिलित होते हैं, जिसका उपयोग वह गाने और बात-चीत करनेमें निश्चय ही बड़ी कुशलता के साथ करता है। व्यक्ति इन कौशलोंको कैसे सीखता है, और पटु बननेके लिए उसे ठीक-ठीक क्या सीखना चाहिए? उदाहरणके लिए टाइपराइटिंगको ही लीजिए, क्योंकि प्रयोगों में इसके विषयमें अध्ययन किया जा चुका है।

टाइपराइटिंग सीखनेके लिए पहिले आपको स्थानके विषय में कुछ सीखना चाहिए। आप उससे 'कीबोर्ड²' के अक्षरोंकी व्यवस्था को सीखते हैं, किन्तु कार्यको अच्छी तरह करनेके लिए आपको यह भी सीखना चाहिए कि हरएक अक्षरको दबानेमें किस उँगलीका इस्तेमाल किया जाय। यदि आप 'स्पर्श-पद्धति³' को अपनाना चाहते हैं, तो आप असली 'कीबोर्ड' को देखे बिना ही अक्षरोंके स्थानों को पहिचानना सीखते हैं। कुछ अभ्यास करनेके पश्चात् आप प्रायः प्रत्येक बार ठीक अक्षर पर ही चोट करेंगे और उसके विषयमें कोई ख्याल भी आपमें न उठेगा। एक शब्दको टाइप करते समय आप उसके विन्यास⁴ को अलग-अलग करते हैं और उँगलीकी उपयुक्त गतिके द्वारा हर अलग अक्षरको टाइप करते हैं। इतना कर चुकने के बाद आप स्वभावतः यह मान बैठते हैं कि आपने समस्या को 'सिद्धान्त रूपमें' सुलझा लिया और अब केवल अक्षरोंको दबानेकी गतिको बढ़ानेका काम शेष रहा है।

लेकिन इसके अतिरिक्त भी बहुत कुछ बाक़ी है। अभी तक आपने अलग-अलग अक्षरोंको ठीक से टाइप करना सीखा है, आपने आवश्यक «अक्षर-सम्बन्धी आदतों⁵» का अर्जन किया है। अपने अभ्यासको कुछ समय तक जारी रखनेके बाद आप पायेंगे कि आप अब कुछ «शब्द-सम्बन्धी आदतों⁶» का निर्माण करना शुरू कर रहे हैं। अब आप एक छोटे परिचित शब्दका विन्यास अलग किये बिना ही उसको समूचा टाइप करने लगे हैं और उँगलियोंकी आवश्यक गतियोंको पूरा शब्द टाइप करनेकी संश्लिष्ट क्रिया के रूपमें संयोजित कर रहे हैं। उदाहरणके लिए, आप अंग्रेजीके 'and' शब्दको लीजिए। प्रथम और अन्तिम अक्षर बायें हाथसे टाइप किये
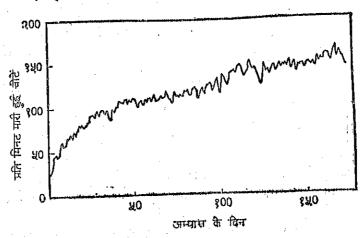
आकृति १२६. एक युवक द्वारा टाइपराइटिंग सीखनेकी वक्ररेखा। वक्ररेखा का प्रत्येक बिन्दु बतलाता है कि एक दिनमें उसने प्रति मिनट कितनी बार अक्षरों पर उँगलियां मारीं। [बुक,४]।

¹ ideation ² keyboard ³ touch system ⁴ spelling ⁵ letter habits ⁶ word habits

जाते हैं और मध्य अक्षर दायें हाथसे। तीन अलग अक्षर—ए, विराम ; एन, विराम ; डी, विराम—टाइप करनेके बजाय, जैसा कि आपने पहिले किया था, आप अब बायें हाथ से 'ए' अक्षरको दबानेके बाद उस हाथको 'डी' अक्षर पर चोट करनेके लिए तैयार रखते हैं और इसी बीच दायें हाथ से 'एन' अक्षरको इनके मध्यमें जोड़ देते हैं। कई अन्य अधिक इस्तेमाल होनेवाले शब्दों, सामान्य उपसर्गों, प्रत्ययों और अक्षर-श्रेणियोंके साथ भी यही बात होती है। अब आपके दोनों हाथ और दसों उँगलियां पृथक् गति करनेके बजाय संगठित गति कर रही हैं। इस प्रकारकी संगठित[1] प्रतिक्रियाएं सही इकाइयां होती हैं और अक्षर-सम्बन्धी आदतोंकी अपेक्षा वे 'उच्चतर इकाइयां[2]' होती हैं। अलग अक्षरोंकी पूरी शृंखला टाइप करनेके बजाय एक पूरे शब्दको टाइप करनेकी प्रक्रिया शीघ्रतर और सरलतर होती है। इन उच्चतर इकाइयोंका विकास करके टाइपराइटिंगका विद्यार्थी अपने हुनरमें पटुता प्राप्त करनेकी ओर बढ़ता है।

फिर भी, जो घटना घटती है, उसे हम कुछ प्रकारकी उच्चतर इकाइयोंका उपार्जन मात्र नहीं कह सकते, बल्कि यह उससे भी बढ़कर है। यदि हम ध्यानपूर्वक देखें कि किस प्रकार 'एंड' शब्दकी इकाईको टाइप किया गया, तो हम पाते हैं कि टाइपिस्ट जब प्रथम अक्षरको टाइप कर रहा होता है, तभी वह शब्दके अन्य अक्षरोंके लिए पहिलेसे ही तैयार हुआ रहता है। वह ऐसा करनेके लिए स्वतंत्र होता है, क्योंकि अक्षरोंकी दबानेकी अपनी गतियों पर उसका अच्छा नियंत्रण हो चुका होता है और एक-एक करके उन पर निकटतासे ध्यान देनेकी आवश्यकता उसे नहीं होती। केवल परिचित शब्दोंको टाइप करनेमें नहीं, बल्कि सभी शब्दोंको टाइप करते समय कुशल टाइपिस्ट आगे आनेवाले अक्षरोंके लिए पहिलेसे ही तैयारी करता होता है। आगे जो चीज की जानेवाली है, उसके लिए «तैयारी[3]» कुशलताकी एक प्रमुख कुंजी है (४)।

जब कि किसी कार्यका प्रारम्भिक रूप क्रियान्वित हो ही रहा हो, तभी उस कार्यके बादवाले रूपकी तैयारी तथा उच्चतर इकाइयां कई तरहके कुशल कार्यों, जैसे बात-चीत, गाने या कोई वाद्ययंत्र बजाने, ऊँची-कूद कूदने या बांससे उछलने आदि में पायी जाती हैं। किसी भी शब्दमें ध्वनियोंका एक क्रम सम्मिलित होता है, जो वाक्-गतियोंके एक क्रमसे उत्पन्न होता है, किन्तु शब्द, बोलनेवाले और सुननेवाले, दोनोंके लिए निश्चय ही एक इकाईके रूपमें उपस्थित होता है। एक सुपरिचित वाक्य एक इकाईके रूपमें बोला भी जाता है और सुना भी जाता है। एक सम्बद्ध भाषणमें वक्ता सदा आगे कहे जानेवाले शब्दोंके लिए पहिलेसे ही तैयारी करता रहता है और श्रोता भी उन शब्दोंके लिए तैयार होता रहता है, जो वक्ताके मुँहसे अभी-अभी निकलने ही वाले हैं। बहुधा ऐसा होता है कि वक्ता शब्दको मुंहसे निकाले भी नहीं रहता कि श्रोता समझ जाता है कि कौन-सा शब्द निकल रहा है।

कुशलताको सीखने में उन्नति. कार्यके गुण और परिमाण में, यथार्थता[4] और शीघ्रतामें पूर्णता प्राप्त करनेके लिए टाइपिस्टको निश्चय ही काफ़ी अभ्यास करनेकी आवश्यकता होती है। किन्तु *क्या अभ्याससे ही, चाहे वह कितना ही अधिक क्यों न हो, पूर्णताका आश्वासन मिल जाता है?* चूँकि इस तरह के काम करनेकी सामर्थ्यमें व्यक्तिगत भिन्नताएं पायी जाती हैं, इसलिए न्याय करनेकी दृष्टिसे हमें टाइपिस्टको उस समय पूर्णता प्राप्त किया हुआ मान लेना चाहिए, जब वह उस *अधिकतम कुशलता तक पहुँच चुके, जिसके लिए वह व्यक्तिगत रूपसे समर्थ है।* जिस अधिकतम सीमा तक कोई व्यक्ति जानेमें समर्थ है, वह उसकी «शारीरिक सीमा[5]» समझी जानी चाहिए; यह सीमा उसकी ज्ञानेंद्रियों, मांस-पेशियों और स्नायुओं इत्यादिकी विशेषताओं द्वारा निर्धारित होती है। दृष्टिके पैनी होनेकी भी एक सीमा है, सम्भावित शक्ति के सम्बन्धमें भी मांस-पेशियां एक सीमासे अधिक जोर नहीं लगा सकतीं, और सन्देशवहनकी शीघ्रताके सम्बन्धमें भी स्नायुओंकी शक्तिकी एक सीमा होती है। शारीरिक सीमा का एक स्पष्ट उदाहरण सौ गजकी दौड़में देखा जा सकता है, क्योंकि जाहिर है कि कोई भी दौड़ाक इस दूरीको ९ या १० सैकेंडके स्थापित समयसे कम समयमें नहीं तय कर सकता। लोग चाहे जितने परिश्रमसे और चाहे जितने दिन तक अभ्यास क्यों न करें, किन्तु अपेक्षाकृत बहुत थोड़े व्यक्ति ही इस सीमा तक पहुँच सकते हैं। किन्तु क्या काफ़ी अभ्यास किया हुआ मनुष्य अपनी शारीरिक सीमा तक पहुँच ही चुका हो, यह आवश्यक है?

यदि हम आकृति १२६ में टाइपिस्टके सीखनेकी वक्ररेखा[6] को ध्यान पूर्वक देखें, तो हम कुछ ऐसे तथ्य देखेंगे जिनका सम्बन्ध हमारी समस्यासे है। हमने उसमें यह देखा कि टाइपिस्टने प्रारम्भमें तो शीघ्रतासे अपनी गति बढ़ायी, किन्तु जैसे-जैसे अभ्यास जारी रहा, उसकी गतिकी वृद्धिकी शीघ्रता कम हो गयी। सीखनेकी वक्ररेखाका इस प्रकार धीरे-धीरे सपाट होते जाना एक बहुत सामान्य चीज है, लेकिन यह सब पर लागू होनेवाला नियम नहीं है। लगभग ४२ दिनके बाद से शुरू करके और लगभग ३० दिन तक जारी रखकर इस सीखनेवाले ने शायद ही कोई प्रगति की, और सम्भव है, उसने सोचा हो कि मैं अपनी सीमा तक पहुँच गया। फिर भी, यह उसकी शारीरिक सीमा नहीं थी, क्योंकि कुछ दिन और

[1] egrated [2] higher units [3] preparation [4] accuracy [5] physiological limit [6] curve
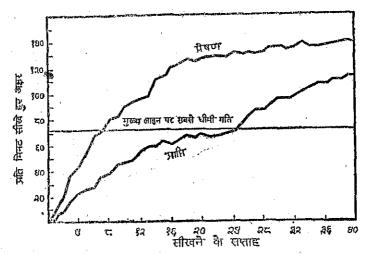
आकृति १२७. तार (टेलीग्राफ़ी) के एक विद्यार्थीके सीखनेकी वक्ररेखा[1]। आधार-रेखासे ऊपर वक्ररेखा की ऊँचाई यह बताती है कि प्रति मिनट कितने शब्द भेजे गये या प्राप्त किये गये। वक्र रेखाके ऊँचे उठनेसे उन्नतिका आभास मिलता है। प्राप्त करनेकी वक्ररेखा में एक जगह पठार आ गया है। सीखनेके मनोविज्ञानमें यह प्राचीन आकृति एक ऐतिहासिक महत्त्व रखती है। [ब्रायन और हार्टर, ६]।

अभ्यास करनेके बाद उसने पुनः प्रगति प्रारम्भ कर दी और इस अभिलेखके अन्त तक पहुँचनेके पूर्व उसने काफ़ी गति बढ़ाली; और इसके बाद भी ऐसा कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिला जिससे पता चल सके कि उसकी शारीरिक सीमा आ गयी है।

सीखनेकी वक्ररेखा में एक लम्बा सपाट स्थल, जो इस बात का सूचक है कि काफ़ी समय तक कोई प्रगति नहीं हुई, «सीखनेका पठार[1]» कहलाता है; किन्तु इसके साथ शर्त यह होती है कि इसके बाद अधिक प्रगति हो या किसी तरह यह ज्ञात हो जाय कि व्यक्तिकी शारीरिक सीमासे यह पठार नीचा है। सीखनेकी कई वक्ररेखाओंमें—हालांकि सभी वक्ररेखाओं में नहीं—यह पठार न्यूनाधिक रूपसे दिखायी देता है (६)।

इन पठारोंके लिए दो बातें उत्तरदायी हैं: निर्बल प्रेरणा[2] और कार्य करनेकी निर्बल विधि[3]। 'निर्बल' से यहां तात्पर्य है कि प्रेरणा[4] पर्याप्त बलवती नहीं है और न विधि ही इतनी अच्छी है, जो सीखनेवालेको उसकी सच्ची सीमाकी ओर धकेल सके। प्रेरणा उस समय निर्बल हो जाती है, जब सीखने वाला निरुत्साह हो जाता है और अनुभव करने लगता है कि कुशलताके स्तर तक पहुँचनेकी योग्यता या शक्ति उसमें नहीं है। (वह अपने इस अनुमानमें सही भी हो सकता है, क्योंकि उदाहरण स्वरूप, कई युवक पेशेवर संगीतज्ञ होनेका मनसूबा करते हैं, किन्तु वे कभी उस कोटि तक नहीं पहुँच पाते, हालांकि जिस बिन्दु पर उन्होंने हतोत्साह होकर अपना अभ्यास छोड़ दिया, उससे कुछ और आगे तक वे बढ़ सकते थे)।

प्रेरणा एक दूसरी तरह भी निर्बल हो सकती है। जब सीखनेवाला अपनी सामान्य उपलब्धिसे भली भाँति सन्तुष्ट हो जाता है और किसी पद पर बने रहनेके लिए ही वह वास्तवमें अच्छा काम करता होता है, तब उसमें प्रगतिके लिए उत्साह कम हो जाता है। वह वर्षों तक बिना कोई प्रगति किये अपने स्थान पर बना रह सकता है। ऐसे आदमीके मामलेमें, अभ्यासकी एक बड़ी मात्रा भी उसे पूर्णता प्रदान करनेमें असमर्थ रहती है। इतने वर्षों तक एक 'पठार' पर रहनेके पश्चात् कोई विशेष प्रलोभन ही पेशेवर कार्यकर्ताको अधिक प्रयत्न करनेके लिए उत्तेजित कर सकता है और ऐसी स्थितिमें वह उल्लेखनीय प्रगति करता भी है, जैसा कि कुछ औद्योगिक प्रयोगोंमें देखा गया है (पृ० १९८ देखिये)।

काफ़ी अच्छी प्रेरणा[4] के बावजूद कोई सीखनेवाला एक लम्बे पठार पर बना रह सकता है, क्योंकि जिन उपकरणों और औजारोंका वह इस्तेमाल कर रहा होता है, उनसे उसकी कार्य-पद्धतिका ठीक मेल नहीं बैठ पाता। आकृति १२५

[1] plateau of learning [2] poor motivation [3] poor method of work [4] motivation

में एक स्पष्ट उदाहरण दिखाया गया है। चूँकि यह वक्ररेखा कार्यकी प्रति इकाई[1] में लगे हुए समयके अनुसार खींची गयी है, समयकी प्रति इकाईमें किये हुए कार्यके अनुसार नहीं (देखिये आकृति १२६)। इसलिए प्रगतिके कारण वक्ररेखा ऊपर जानेके बजाय नीचेकी ओर जाती है। यह वक्ररेखा तेज़ीके साथ नीचेकी ओर चलती है और बादमें सपाट होती है। इस पठार पर पहुँचकर वह कुछ देर तक स्थिर रहती है और तब तक ऐसे ही रहती है जब तक सीखने वाला अपनी सामग्रियों के इस्तेमाल का कोई अच्छा तरीक़ा नहीं ढूंढ़ लेता। तत्पश्चात् वह नीची सतह पर उतरने लगती है, जो सम्भवत: व्यक्तिकी शारीरिक सीमाके आस-पास होती है।

अधिकांश हालतोंमें जब हम सोचते हैं कि हम यथासम्भव अच्छे से अच्छे ढंगसे कार्य कर रहे हैं, तब इसकी सम्भावना है कि हम एक पठार पर हों, अपनी शारीरिक सीमा पर नहीं। निस्सन्देह, इस बातमें कोई तुक नहीं कि हम जो भी काम करें उसमें पूर्ण कुशल बननेका प्रयत्न करें। इस तरहकी महत्त्वाकांक्षा रखनेवाले व्यक्तिको निश्चय ही आवश्यकतासे अधिक प्रेरित होना चाहिए। किन्तु यदि हमारी प्रगति इसलिए नहीं हो रही है कि हमारे काम करनेका तरीक़ा अच्छा नहीं है, तो घटिया क़िस्मके तरीक़ोंके स्थान पर अच्छे क़िस्मके तरीक़ों को अपना लेनेमें हमें कोई अनावश्यक परेशानी नहीं होनी चाहिए, किन्तु इसमें भी यह शर्त है कि हम जानते हों कि कौनसे तरीक़े सबसे अच्छे हैं। अच्छा अध्यापक या प्रशिक्षक प्रेरणा और कार्यमें पटुता लानेकी विधिके सम्बन्धमें बहुत सहायक हो सकता है।

सम्बद्धीकरण[2] अथवा अनुक्रमोंको सीखना

जैसा कि हम पहिले ही देख चुके हैं, परिवेशसे अच्छी तरह परिचित होनेके लिए और उसके साथ व्यवहार करनेके लिए अच्छी तरह साधन-सम्पन्न होनेके लिए, व्यक्तिको स्थान और वस्तुके विषयमें काफ़ी सीखना पड़ता है। अब हम देखेंगे कि इस दिशामें कुछ और बातें भी आवश्यक हैं। यह संसार स्थानों और वस्तुओंका ही संसार नहीं है, यह घटनाओं और परिवर्तनोंका संसार भी है। कई परिवर्तन नियमित होते हैं और उन पर भरोसा किया जा सकता है; जब 'क' घटना घटित होती है, तब 'ख' घटनाके होनेकी सम्भावना प्राय: निश्चित-सी हो जाती है। यदि व्यक्ति 'क'—'ख' के अनुक्रम[3] को सीखनेमें समर्थ है, तो वह 'क' को 'ख' के आगमनका संकेत समझ सकता है और जब 'ख' आ पहुँचेगा, तब उसके लिए वह तैयार मिलेगा। आगे जो घटना होनेवाली है, उसके लिए पहिलेसे ही तैयार हो जानेसे परिवेशके साथ व्यवहार करनेमें बड़ी सहायता मिलती है।

अब यह निश्चित ही है कि मनुष्य कई नियमित अनुक्रमोंसे अवश्य परिचय प्राप्त करता है और यह भी जानता है कि कई परिचित परिस्थितियोंमें किस चीज़की आशा करनी चाहिए। बचपनके प्रारम्भसे ही वह घटनाओंके अनुक्रमोंको सीखता आ रहा है। उसने बिजली—कड़कके अनुक्रमको सीख रखा है, जिससे वह जब बिजलीको चमकते देखता है, तब उसके तुरन्त बाद उसकी कड़क सुननेकी आशा करता है। जब गेंद धरती पर गिरता है, तो वह उसके उछलनेकी आशा पहिलेसे ही किये रहता है; जब कोई तश्तरी टूटती है, तब झनकनेकी आवाज़की, जब बच्चा गिरता है, तब रोनेकी आवाज़की आशा भी वह पहिलेसे ही कर लेता है। एक परिचित कहावतमें शब्दोंके अनुक्रमको और एक परिचित गीतमें स्वरोंके अनुक्रमको भी वह सीख चुका होता है। वह किसी भी वाक्यमें उसके अंशोंके सामान्य अनुक्रमको सीख जाता है, जिससे उद्देश्यको सुननेके बाद वह एक विधेयके आनेकी आशा करने लगता है। एक अकेला सुना हुआ शब्द भी वाक्-ध्वनियों का अनुक्रम होता है और व्यक्ति निश्चय ही कई शब्दोंके साथ अच्छी तरह परिचित होता है। संक्षेपमें, उत्तेजनाओंके असंख्य ऐसे अनुक्रम होते हैं जिनको व्यक्ति निरीक्षण करता है, सीखता है और याद करता है।

उसकी अपनी गतियोंमें भी कई ऐसे नियमित अनुक्रम होते हैं, जो उसके लिए परिचित और उसके व्यवहारमें स्वत:चालित से हो जाते हैं। जब वह किसी परिचित शब्दको बोलता है, तो वाक्-गतियोंकी एक सीखी हुई श्रृंखला बना रहा होता है। अपनी स्मृतिके आधार पर वह कोई गाना गाता है, यह इस बातका दूसरा उदाहरण हुआ। टाइपराइटिंग और अन्य कुशल कार्योंकी 'उच्चतर इकाइयां[4]' भी अच्छा उदाहरण उपस्थित करती हैं।

उत्तेजनाओं और गतियोंके इन अनुक्रमोंके अतिरिक्त कई अच्छी तरह सीखे हुए अनुक्रम भी हैं, जिनमें ऐन्द्रिय उत्तेजनाएं[5] और गत्यात्मक प्रतिक्रियाएं[6], दोनों ही सम्मिलित हैं। इस प्रकारके अनुक्रमका यह स्वरूप होगा :

$$उ_1—प्र_1—उ_2—प्र_2$$

और यह कई उत्तेजनाओं तथा प्रतिक्रियाओं तक जा सकती है। कई मामलोंमें $उ_1$ इस बातका संकेत या चेतावनी होती है कि $उ_2$ आ रही है और $प्र_1$ $प्र_2$ के लिए तैयारी होती है। दोनों उत्तेजनाएं 'तैयार!—जाओ!' हो सकती हैं और पहिली

[1] per unit [2] conditioning [3] sequence [4] higher units [5] sensory stimuli [6] motor responses

प्रतिक्रिया $प्र_१$ जल्दीसे भाग निकलनेकी, जो कि $प्र_२$ होती है, तैयारीकी शारीरिक संस्थिति[1] होती है। दौड़नेवालेकी तैयारी की इस शारीरिक संस्थितिका उपयोग हम एक बार पहिले भी प्रारम्भिक तत्परता[2] के प्रसिद्ध उदाहरणके रूपमें कर चुके हैं (पृ० १२९)। उसी सिलसिलेमें प्रतिक्रिया-काल[3] सम्बन्धी प्रयोगके द्वारा हमें "$उ_१$—$प्र_१$—$उ_२$—$प्र_२$ के अनुक्रमका एक अन्य अच्छा उदाहरण मिल चुका है। तैयार होनेके संकेतके प्रति 'क' प्रतिक्रिया-बटन पर अपनी उँगली रखकर और उस स्थानकी ओर देखकर, जहां प्रकाश प्रकट होनेवाला है, प्रतिक्रिया करता है; और जब प्रकाशकी चमक दिखायी देती है, तब वह $\frac{1}{5}$ सैकेंडके कम समयमें अपनी उँगली हटाकर प्रतिक्रिया करता है। यदि वह तैयार न होता, तो उसका प्रतिक्रिया-काल काफ़ी लम्बा होता।

इस प्रयोगमें बटनपर उँगली रखनेकी प्रारम्भिक प्रतिक्रिया[4] निश्चित रूपसे ऐच्छिक[5] और सहेतुक[6] होती है। 'क' जानता है कि वह क्या कर रहा है और क्यों कर रहा है। किन्तु वह अपनी भुजाकी मांस-पेशीके तनावके प्रति, जो शीघ्र प्रतिक्रिया करनेके लिए उसकी तैयारीका एक अनैच्छिक[7] भाग होती है, निश्चित रूपसे सचेत नहीं होता। यदि धुवाहमापकके द्वारा उँगलियोंकी पेशियोंकी विद्युत्-धाराओंको मालूम करके, उनका विपुलन करके और उनका अंकन (रेकर्ड) करके देखा जाय, तो पता चलेगा कि प्रतिक्रिया के लिए उत्तेजना ($उ_२$) के पहुँचनेके पहिले ही मांस-पेशियां क्रियारत हो जाती हैं, हालांकि उनकी क्रिया साधारणतः इतनी बलवती नहीं होती कि असमयमें ही उँगलीको बटन परसे उठा दे। प्रारम्भिक तत्परता[2], $प्र_१$ में यह अनैच्छिक मांस-पेशी—तनाव तो सम्मिलित है ही, बटन पर उँगली रखनेकी ऐच्छिक क्रिया भी सम्मिलित है (७)।

इसी प्रकार, दौड़नेवाला व्यक्ति भी स्वेच्छासे तैयारीकी किसी आदर्श शारीरिक संस्थितिमें, जिसकी शिक्षा उसके शिक्षक ने दी होती है, खड़ा हो जाता है; किन्तु यदि उसने खड़े होनेकी कोई प्रशिक्षा न भी ली हो, तो वह अनैच्छिक रूपसे तैयारीकी किसी न किसी संस्थितिमें खड़ा हो जायगा और उसकी दौड़ पड़नेकी उत्सुकताके कारण उसकी मांस-पेशियों में भी तनाव आ जायगा। इसी तरहके और भी कई मामले हैं। कक्षा में जब हाजिरी ली जा रही होती है, तब आप नामोंके क्रमका अनुसरण करते रहते हैं और अपना नाम पुकारे जानेके ठीक पहिले आप श्वासको भीतर खींचनेकी प्रारम्भिक (और सम्भवतः अनैच्छिक) प्रतिक्रिया करते हैं; जब आप 'उपस्थित महोदय!' कहकर अन्तिम प्रतिक्रिया करते हैं, तब आप रोकी हुई श्वासको भी छोड़ते हैं।

इन उदाहरणोंमें हमने एक बात देखी कि प्रारम्भिक प्रतिक्रिया या तो ऐच्छिक[5] हो सकती है, या अनैच्छिक[7], या कुछ अंशमें एक और कुछ अंशमें दूसरी हो सकती है। हमने यह भी देखा कि प्रारम्भिक प्रतिक्रिया या तो अन्तिम प्रतिक्रियाके समान हो सकती है या बिल्कुल असमान। उँगलीकी मांस-पेशियों में जो हल्की-सी क्रिया होती है, वह बटन परसे उँगली उठानेमें उन्हीं मांस-पेशियों द्वारा होनेवाली बलवती क्रियाके समान ही होती है, किन्तु कोई शब्द बोलनेकी तैयारीमें होने वाली श्वसन[8] क्रिया शब्दको वास्तवमें बोलते समय होनेवाली
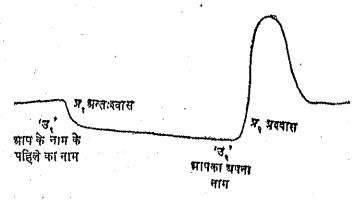
आकृति १२८. कक्षामें उपस्थिति देते समय घटनाओंका अनुक्रम। यहां '$उ_१$' आपके नामके पहिले वाले नामको पुकारना है; '$उ_२$' आपके अपने नामको पुकारना है। आपकी '$प्र_१$' बोलनेकी तैयारीमें ली हुई अन्तःश्वास है और '$प्र_२$' वह प्रश्वास है जो 'उपस्थित महोदय!' कहते समय बाहर निकल आती है।

[1] posture [2] preparatory set [3] reaction time [4] preparatory response [5] voluntary [6] purposeful [7] involuntary [8] inhalation

प्रश्वसन[1] क्रियासे बिल्कुल भिन्न होती है।

एक आदर्श 'सम्बद्ध प्रतिक्रिया'[2] एक अनैच्छिक प्रारम्भिक प्रतिक्रिया[3] होती है, जो एक प्रमुख उत्तेजनाके पूर्व नियमित रूपसे आने वाले संकेतके द्वारा जाग्रत् की जाती है; प्रमुख उत्तेजना ऐसी होनी चाहिए, जो महत्त्वपूर्ण अन्तिम प्रतिक्रिया को उत्पन्न कर दे। सम्बद्ध प्रतिक्रिया न्यूनाधिक रूपसे अन्तिम प्रतिक्रियाके समान हो सकती है, या जब तक वह प्रारम्भिक है, वह अन्तिम प्रतिक्रियासे बिल्कुल भिन्न हो सकती है। यद्यपि सम्बद्ध प्रतिक्रिया अपने आदर्श रूपमें अनैच्छिक होती है, तथापि यह कभी-कभी कम या अधिक ऐच्छिक भी होती है। किन्तु कोई सुनिश्चित योजनाबद्ध प्रारम्भिक प्रतिक्रिया, या प्रशिक्षक द्वारा सिखायी हुई प्रारम्भिक प्रतिक्रिया मुश्किलसे ही सम्बद्ध प्रतिक्रिया[2] कही जा सकती है। अनिवार्य रूपसे, सम्बद्धीकरण[4] उ$_1$—प्र$_1$—उ$_2$—प्र$_2$ के नये अनुक्रम[5] को सीखनेकी प्रक्रिया होती है। सीखनेके इस रूपका अध्ययन करने पर कई शिक्षाप्रद परिणाम ज्ञात हुए हैं।

पैवलोव[6] के सम्बद्धीकरण-सम्बन्धी प्रख्यात प्रयोग. सन् १९०० के लगभग इस प्रमुख रूसी शरीरशास्त्रीने कुत्तों पर पाचन-क्रिया-सम्बन्धी प्रयोग करते हुए, लार[7] के बहावको मापनेकी एक विधि खोज निकाली। लार[7] (थूक) की ग्रन्थियों में से एक ग्रन्थिकी प्रणालिका[8] को ऐसा बना दिया गया कि वह कुत्तेके गालके बाहर लार गिरावे, ताकि लारको एक माप के यंत्रमें एकत्र किया जा सके। इस उपकरण[9] का उपयोग करते समय पैवलोवने संयोगसे यह निरीक्षण किया कि लार केवल उसी समय नहीं बहती जब मुँहमें भोजन आ जाता है, बल्कि उस समय भी, जब कुत्ता खानेके पहिले अपनी तश्तरी में भोजन देखता है, या जब नौकरको खाना लाते हुए देखता है, या जब दूसरे कमरेसे आते हुए नौकरकी क्रमशः निकट आती हुई पदचापको सुनता है। जब भोजन मुँहमें आ जाय, तब लारका बहना प्राकृतिक प्रतिक्षेप क्रिया होती है (पृ० १४७), किन्तु जब यह ऐसी उत्तेजनाओं, जैसे भोजनकी तश्तरी के दर्शन या नौकरकी पदचाप द्वारा जाग्रत् की जाती है, तब यह स्पष्टतः सीखी हुई प्रतिक्रिया होती है और उन स्थितियों पर निर्भर होती है जिनमें रखकर पशु प्रयोगशालामें खिलाया जाता रहा है। अतएव पैवलोव ने इसे 'सम्बद्ध प्रतिक्षेप[10]' कहा था। चूँकि सच्चे अर्थोंमें यह प्रतिक्षेप नहीं होता, इसलिए इसको सम्बद्ध प्रतिक्रिया[2] कहना अधिक ठीक होगा (२३)।

तश्तरीका दर्शन या पदचापकी ध्वनि इस बातका संकेत थी कि भोजन आ रहा है, और असलमें भोजनके मुँहमें आनेसे पहिले ही लारका बहना एक प्रारम्भिक प्रतिक्रिया थी। स्पष्ट है कि कुत्तेने उ$_1$—प्र$_1$—उ$_2$—प्र$_2$ के अनुक्रमको सीख लिया था। यहां—

उ$_1$ जिसे 'सं' 'उ' (सम्बद्ध उत्तेजना[11]) भी कह सकते हैं, तश्तरीका दर्शन है या पदचापोंकी ध्वनि;

प्र$_1$, जिसे 'सं' 'प्र' (सम्बद्ध प्रतिक्रिया) भी कह सकते हैं, लारका पहिलेसे ही बहने लगना है;

उ$_2$, जिसे 'नै' 'उ' (नैसर्गिक उत्तेजना[12]) भी कहते हैं, भोजनका मुँहमें आ जाना है;

प्र$_2$ जिसे 'नै' 'प्र' (नैसर्गिक प्रतिक्रिया[13]) भी कहते हैं, मुँहमें रखे भोजनके कारण लारके बहावकी प्रतिक्षेप क्रिया है।

पैवलोव द्वारा निर्धारित सम्बद्धीकरण[4] के नियम. पैवलोव ने यह विश्वास करके कि उसने मस्तिष्ककी क्रियाओंके अध्ययनकी दिशामें एक अच्छे सम्भावित मार्गको खोज निकाला है, अपनी और अपने शिष्योंकी शक्तिको सम्बद्ध प्रतिक्रियाके सम्बन्धमें प्रयोग करनेमें लगा दिया। उन्होंने कई प्रकारके प्रयोग किये और उनसे जिन नियमोंका पता लगाया, उनकी पुष्टि बादके अन्वेषकोंने अन्य प्रयोगशालाओं में भी की। 'सीखने' के विद्यार्थीके लिए पैवलोवके नियमों में से निम्नलिखित नियम महत्त्वपूर्ण हैं:

१. *«पुष्टीकरण[14] के साथ दोहरानेसे 'सं' 'प्र' की स्थापना».* यह खोजनेकी आशा लेकर कि ऐसी प्रतिक्रियाएं कैसे अर्जित की जाती हैं, पैवलोवने लार बहनेकी प्रतिक्रिया[15] को एक पूर्णतया यादृच्छिक उत्तेजनासे (जैसे, घंटीकी ध्वनि या त्वचा पर स्पर्शसे), या किसी भी ऐसी उत्तेजनासे जो, पशुको बहुत परेशान किये बिना उसका ध्यान आकर्षित कर सके, 'सम्बद्ध' करनेकी चेष्टा की। एक नियमित विधिका उपयोग करके वह इस कार्यमें सफल हो गया। एक भूखे कुत्तेको—अच्छी तरह पाले हुए कुत्तेको जो, प्रयोगशालामें खूब सध गया था—एक मेज पर खड़ा कर दिया गया, किन्तु उसके शरीरके नीचे रबड़के फ़ीते लगा दिये गये, जो उसे वहांसे हटने न दे सकें। जब कुत्ता चुप हो गया और इस परिस्थितिसे उसने समायोजन स्थापित कर लिया, तब एक बिजलीकी घंटी बजायी गयी, और घंटीको कुछ देर, लगभग १५ सैकेंड तक, बजानेके बाद उसके मुँहमें खाना रख दिया गया। कुछ मिनटोंके बाद उत्तेजनाओंका यही अनुक्रम दोहराया गया; कुछ देर बाद फिर यही चीज़ की गयी, और इसी प्रकार कई बार किया गया। उत्तेजनाओंके अनुक्रम घंटी

[1] exhalation [2] conditioned response [3] involuntary preparatory response [4] conditioning [5] sequence [6] Pavlov [7] saliva [8] duct [9] apparatus [10] conditioned reflex [11] conditioned stimulus [12] unconditioned stimulus [13] unconditioned response [14] reinforcement [15] salivary response

—भोजन, के कई बार दोहराये जानेके बाद कुत्तेके मुँहसे घंटीके बजते समय ही, भोजन देनेसे «पहले» लार बहने लगी। इस सम्बद्ध लार[1] का परिमाण हर प्रयासमें क्रमशः बढ़ता गया और एक चरम[2] सीमा पर पहुंच गया; किन्तु इस तथ्य पर ध्यान देना आवश्यक है कि इस सम्बद्ध लारका परिमाण उस लारसे बहुत कम था, जो मुँहमें खाना आ जाने पर उत्पन्न होती है। इस प्रकार उस दिन लार-सम्बन्धी 'सं' 'प्र'[3] स्थापित हो गयी।

अगले दिन जब पहिले-पहिल घंटी बजी, तब लारका बहना नहीं शुरू हुआ, किन्तु कुछ बार घंटी बजाने पर लार दिखायी पड़ी; इस नियमित विधिको कुछ दिन तक जारी रखने पर 'सं' 'प्र' इतनी अच्छी तरह स्थापित हो गयी कि दिन प्रति दिन यह वैसी ही बनी रही। कोई सम्बद्ध प्रतिक्रिया यदि एक बार अच्छी तरह स्थापित हो जाय, तो उसे कई महीनों तक बनाये रखा जा सकता है।

यद्यपि पैवलोव[4] का ध्यान लारके नापने योग्य बहाव पर लगा हुआ था, तथापि उसने देखा कि ग्रान्थिक प्रतिक्रियाके साथ एक सम्बद्ध गत्यात्मक प्रतिक्रिया[5] भी होती है। जब घंटी बज रही होती थी और भोजन कुत्तेको नहीं दिया गया होता था, तब कुत्ता भोजनकी ओर सिर घुमाकर देखता रहता था। यह सारी 'सं' 'प्र', ग्रान्थिक[6] और गत्यात्मक, भोजनको प्राप्त करनेकी एक तैयारी थी। यह प्रारम्भिक प्रतिक्रिया खाना खानेकी अन्तिम प्रतिक्रियासे बिल्कुल भिन्न थी, क्योंकि जबकि परिमाणके अतिरिक्त इसका ग्रान्थिक भाग पूर्ववत् था, तब भोजनके पास जानेकी प्रारम्भिक गति चबानेकी अन्तिम क्रियासे क़तई भिन्न थी।

«पुष्टीकरण[7]» से यहां यह तात्पर्य है कि सदा घंटीके नियमित समय तक बज लेनेके बाद भोजन दिया जाता था।

२. «पुष्टीकरण» के बिना बार-बार दोहराये जानेसे 'सं' 'प्र' का विनष्ट हो जाना». पैवलोवकी एक मुख्य खोज यह है कि यदि बार-बार सम्बद्ध उत्तेजना प्रदान की जाये और उसके बाद मूल उत्तेजना न दी जाये, तो सम्बद्ध प्रतिक्रिया नष्ट की जा सकती है। घंटी बजाइये, लेकिन खाना न दीजिये, $उ_१$ दीजिये किन्तु $उ_२$ न दीजिये।

पैवलोवके एक अन्य प्रयोगमें, जिसमें घंटीकी ध्वनिको सम्बद्ध उत्तेजनाके रूपमें इस्तेमाल किया गया, कुछ दिनोंके लगातार प्रयासके बाद लार-सम्बन्धी[8] 'सं' 'प्र' अच्छी तरह स्थापित कर दी गयी। उसके बाद, एक दिन, सदाकी भांति घंटी बजायी गयी और उसकी प्रतिक्रियामें काफ़ी लार भी आयी, किन्तु कुत्तेको खानेके लिए कुछ न दिया गया (कोई पुष्टीकरण न हो सका)। तीन मिनट बाद, दूसरे प्रयासमें लारका बहाव पहिलेसे कम रहा। किन्तु इस बार भी उसे खानेको कुछ न मिला, और यही क्रम तब तक जारी रखा गया, जब तक घंटीकी ध्वनिने लार-सम्बन्धी प्रतिक्रियाको बिल्कुल बन्द न कर दिया। पैवलोव द्वारा प्राप्त परिणामोंकी निम्नांकित तालिकामें 'सं' 'प्र' के धीरे-धीरे विनष्ट होने के क्रमको देखा जा सकता है।
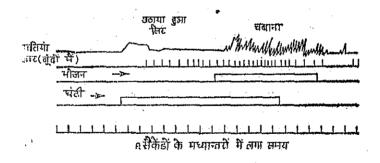
आकृति १२६. एक कुत्तेकी सुस्थापित सम्बद्ध प्रतिक्रयाका अंकित अभिलेख। घंटीकी आवाज़ सुनकर कुत्तेने अपना सिर भोजनकी तश्तरीकी तरफ़ उठाया और उसकी लार धीरे-धीरे बहने लगी। भोजन पानेके बाद वह तेज़ीसे उसे चबानेमें जुट गया और उसकी लार अधिकतेज़ीसे बहने लगी। अंकन-उपकरण (रेकर्डिंग एपरेटस) ने लारके प्रवाहको (बूंदोंमें) तथा सिर और जबड़ोंकी गतियोंको अंकित कर लिया। [जेनर और मकर्डी, ३५]।

[1] conditioned saliva [2] maximum [3] conditioned response [4] Pavlov [5] conditioned motor response [6] glandular [7] reinforcement [8] salivary

«घंटीके द्वारा उत्तेजना प्रारम्भ हुई :»		«लार, जो उत्पन्न हुई (बूंदोंमें):»
दोपहर को	१२·०७ बजे	१३
,,	१२·१० ,,	७
,,	१२·१३ ,,	५
,,	१२·१६ ,,	६
,,	१२·१६ ,,	३
,,	१२·२२ ,,	२·५
,,	१२·२५ ,,	०
,,	१२·२८ ,,	०

'विनष्ट' हो जाना[१] शब्द कुछ कड़ा मालूम होता है, क्योंकि विलुप्त[२] 'सं' 'प्र' निम्नलिखित दो तरीक़ोंमें से किसी एकसे आसानीसे पुनर्जीवित की जा सकती है : (१) एक या दो बार पुष्टीकरण[३] कीजिये; 'सं' 'प्र' तुरन्त पुनर्जीवित हो जायेगी; (२) विनष्ट होनेके बाद किसी तरहका पुष्टीकरण न कीजिये, किन्तु पशुको आराम करने दीजिये; अगले दिन आप 'सं' 'प्र' की «अचानक वापसी[४]» देखेंगे, क्योंकि घंटीकी आवाज़पर लार पुनः बहने लगेगी। लेकिन यदि इस दिन भी पशुको भोजन न दिया गया, तो पहिलेकी अपेक्षा 'सं' 'प्र' के विनष्ट होनेकी प्रक्रिया अधिक द्रुत हो जायेगी; और यदि इसी क्रमको दिन प्रतिदिन दोहराया गया और किसी दिन भी पुष्टीकरण न हुआ तो अन्ततः 'सं' 'प्र' का स्थायी रूपसे विनाश हो जाता है।

मौलिक रूपसे, विनष्ट होना भी निषेधात्मक समायोजन[५] के ही समान है(पृ० २६६)। दोनोंमें ही हम बार-बार आने वाली उत्तेजना के प्रति निरर्थक प्रतिक्रिया को धीरे-धीरे छंटती हुई पाते हैं।

३. «पुष्टीकरण[३] में विलम्ब होने पर 'सं' 'प्र' में भी विलम्ब[६]». भोजन देनेके पहिले घंटीको हमेशा पूरे एक मिनट तक बजने दीजिये। सम्बद्धीकरण[७] की प्रतिक्रियाके प्रारम्भ में, जब 'सं' 'प्र' सर्वप्रथम प्रकट होती है, तब यह प्रायः घंटी की ध्वनि के शुरू होते ही प्रकट होती है। इसके बाद लारका बहना प्रारम्भ हो जाता है और पूरे एक मिनटके कालमें, जब घंटी बजती होती है, उसका बहाव जारी रहता है। दिन पर दिन, सम्बद्धीकरण जैसे-जैसे आगे बढ़ता है, 'सं' 'प्र' अधिकाधिक विलम्बित होती जाती है। यहां तक कि वह उस मिनट की समाप्तिके आस-पास प्रकट होने लगती है। पहिले आधे-मिनट या उससे कुछ अधिक समय तक तो कुत्ता अपने जुएमें ऊंघता-सा पड़ा रहता है और लार बिल्कुल नहीं बहती, किन्तु उस मिनटके अन्तमें वह चौंक उठता है और लार बहने लगती है। वह उत्तेजनाओंकी समयावधिसे अपना समायोजन कर चुका होता है। उसने दो अवस्थाओं[८] वाली 'सं' 'प्र' सीख ली होती है: लम्बी प्रतीक्षा की तैयारीमें पहिले गिरावट, इसके बाद जाग्रत् होना और भोजनकी तैयारी में लार बहाना।

«चुनावपूर्वक पुष्टीकरण[९] द्वारा चुनावपूर्वक नियंत्रण[१०] करना». सम्बद्ध प्रतिक्रियाके इस अर्थमें चुनावरहित[११] होनेकी सम्भावना है कि यह किसी भी आकस्मिक उत्तेजना के द्वारा, जो सम्बद्धीकरणके सिलसिलेमें संकेतकी तरह काम आने वाली नियमित उत्तेजनाके समान हो सकती है, जाग्रत् की जा सकती है। यदि अभी तक नियमित 'सं' 'उ[१२]' के लिए बिजली की घंटीका इस्तेमाल होता रहा है, और अब उसके स्थान पर भुनभुने[१३] का इस्तेमाल होने लगे, तो नियमित 'सं' 'प्र' होगी अवश्य, हालांकि वह पहिले से कुछ कमज़ोर हो सकती है। यदि नियमित 'सं' 'प्र' के रूपमें किसी संगीत के स्वरका इस्तेमाल होता रहा है, तो पहिलेसे ऊँचे या नीचे स्वरसे भी 'सं' 'प्र' होगी;
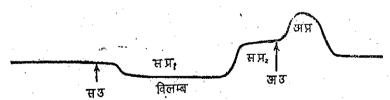
आकृति १३०. दो अवस्थाओं वाली या विलम्बित सम्बद्ध प्रतिक्रिया ('सं' 'प्र') की रेखाकृति। इस अनुक्रम—संकेत...देरतक प्रतीक्षा...भोजन—का अभ्यस्त हो जानेके बाद कुत्ता दोहरी सम्बद्ध प्रतिक्रिया ('सं' 'प्र') करता है: विलम्बके समय गिरावट दिखती है, उसके पश्चात् अवधान आता है और भोजनका समय जैसे-जैसे निकट आता जाता है, लार टपकने लगती है।

[१] extinct [२] extinguished [३] reinforcement [४] spontaneous recovery [५] negative adaptation [६] delay [७] conditioning [८] two-phase [९] selective reinforcement [१०] selective conditioning [११] unselective [१२] conditioned stimulus [१३] buzzer

यदि नियमित 'सं' 'उ' के लिए अभी तक कन्धे पर स्पर्शका उपयोग होता रहा है, तो उसके बजाय बग़लमें स्पर्श किया जा सकता है। *'सं' 'प्र' को अधिक चुनावपूर्ण कैसे बनाया जा सकता है?* इसकी विधि बहुत सरल है, हालांकि कई प्रयासों के बाद पशु दो उत्तेजनाओं का ठीक-ठीक अन्तर समझ सकता है। दो उत्तेजनाओं 'क' और 'ख' को नियमित क्रमसे इस प्रकार दीजिये कि 'क' के बाद तो हमेशा खाना मिले, किन्तु 'ख' के बाद कभी न मिले। सदा 'क' को ही पुष्ट[1] कीजिये और 'ख' को कभी नहीं। पुष्टीकरणके अभावमें 'ख' के प्रति धीरे-धीरे प्रतिक्रिया विलीन होती जायेगी और पुष्टीकरण के कारण 'क' के प्रति प्रतिक्रिया बनी रहेगी। फलतः इस प्रकार दो सम्बद्ध प्रतिक्रियाएं स्थापित होती हैं : 'क' के प्रति विधानात्मक[2] प्रतिक्रिया में चौंक कर लार बहाने लग जाना सम्मिलित होगा और 'ख' के प्रति निषेधात्मक[3] प्रतिक्रिया में सिर नीचे झुकाये रहना और लार न बहाना सम्मिलित होगा। 'क' इस बातका संकेत बन जायेगा कि 'खाना आ रहा है' और 'ख' इस बातका संकेत है 'कि इस बार बिल्कुल खाना नहीं आ रहा है'।

इन तथ्योंका समावेश करनेवाले प्रामाणिक पारिभाषिक शब्द कुछ कठिन हैं। «उत्तेजना के साधारणीकरण[4]»से इस तथ्यका पता चलता है कि किसी विशिष्ट 'सं' 'उ' के लिए निर्धारित कोई 'सं' 'प्र' उन अन्य उत्तेजनाओंके प्रति भी होगी, जो उस विशिष्ट 'सं' 'उ' के समान होंगी। «साधारणीकरण के प्रावण्य[5]»से तात्पर्य है कि ये स्थानापन्न[6] उत्तेजनाएं विशिष्ट 'सं' 'उ' के जितनी ही कम समान होंगी, उतनी ही कम वे प्रभावकारी होंगी। «भिन्नीकरण[7]»से तात्पर्य यह है कि चुनावपूर्वक पुष्टीकरण[8] का उपयोग करके प्रारम्भिक[9] साधारणीकरणको समाप्त किया जाये। इसकी सार्थकता इस तथ्यसे मालूम हो जाती है कि पशु भिन्न उत्तेजनाओंके लिए भिन्न प्रतिक्रियाएं सीख जाता है। जब कोई छोटा बच्चा किसी आकर्षक पुरुषको 'बप्पा' कहता है, तब 'उत्तेजना के साधारणीकरण' का परिचय देता है; यह साधारणीकरण शीघ्र ही उसके सामाजिक परिवेश से चुनावपूर्वक पुष्टीकरण मिलनेसे ठीक हो जाता है।

«सम्बद्धीकरण[10]के सफल प्रदर्शनके लिए परिस्थितिके साथ समायोजन आवश्यक है।» यदि कुत्ता (या कुछ अन्य शिक्षाप्रद प्रयोगों (१७) में भेड़) प्रयोगकर्ता के साथ घनिष्टता न स्थापित कर चुका हो और प्रयोगशाला की हालतोंसे भली भांति अपना समायोजन न कर चुका हो, तो ये प्रयोग सफल नहीं होते। ध्यान बँटानेवाली कोई भी उत्तेजना[11] क्षण भरके लिए स्थितिके साथ पशुके समायोजनको खत्म कर देती है और सम्बद्धीकरण[10], विलोप, या भिन्नीकरण[9] में बाधा देती है। पैवलोव[13] पशुका ध्यान न बँटानेको इतना महत्त्व देता था कि उस ने सम्बद्ध प्रतिक्षेप[14]-सम्बन्धी प्रयोगों के लिए एक विशेष प्रकारकी प्रयोगशाला ही बना डाली थी, जिसमें बाहरसे किसी तरहका प्रकाश और ध्वनि न आने देनेका पूरा प्रबन्ध था। यहां तक कि उसमें प्रयोगके समय कुत्तेकी दृष्टिसे प्रयोगकर्त्ता को ओझल रखनेका भी प्रबन्ध था।

मनुष्योंमें सम्बद्ध प्रतिक्रिया. पैवलोव[13] ने पशुओं पर जैसे प्रयोग किये, वे क्या मानव-परीक्षार्थियों पर भी सफल हो सकेंगे? बच्चों पर झुनझुना—बोतल अनुक्रम[15] का प्रयोग किया गया है; उनको दूधकी बोतल देनेसे पहिले एक झुनझुना बजाया गया। जब यह विधि कुछ दिनोंतक नियमित रूपसे जारी रही, *तब बच्चे सम्बद्ध हो जानेके चिह्न प्रकट करने लगे*, क्योंकि झुनझुनेकी ध्वनि सुनकर वे रोना बन्द कर देते थे, अपना मुँह खोलते थे; या दूध चूसनेकी गतियां करने लगते थे (२०)। बच्चेकी आयु जैसे-जैसे बढ़ती जाती है, चार वर्ष तक, वैसे-वैसे सम्बद्धीकरण सरलतर और शीघ्रतर होता जाता है। किन्तु चार वर्षकी आयुके पश्चात् क्रमसे कम «ऐसा लगता है»कि मनुष्य क्रमशः कम सरलतासे 'सम्बद्ध' हो पाता है। प्रयोग के रूपमें लार-सम्बन्धी 'सं' 'प्र' कुछ वयस्क मनुष्योंमें स्थापित की जा सकती है, किन्तु यह इतनी विश्वसनीय नहीं होती, जितनी कुत्तोंमें होती है। अप्रायोगिक रूपमें, अर्थात् साधारण जीवनमें भोजनको देखकर, भोजनकी घंटीकी आवाज सुनकर या किसी व्यक्तिके मुँहसे किसी स्वादिष्ट भोजनकी तारीफ़ सुनकर मुँहमें पानी आ जाया करता है। लेकिन प्रयोगशाला में जब प्रयोगकर्त्ता झुनझुने[16] की आवाज़से वयस्क मनुष्य के मुँहमें पानी ला देता है, या किसी भी तरह उससे ऐसा कोई काम करा लेता है, जिसे करनेका उसका इरादा क़तई नहीं होता, तब वह वयस्क यह अनुभव कर सकता है कि उसे मूर्ख बनाया जा रहा है। कुछ व्यक्ति दूसरोंकी अपेक्षा इस बात पर गम्भीरता से आपत्ति करते हैं, और उन्हीं व्यक्तियोंका *रुख समय-समय पर बदला हुआ दिखाई दे सकता है।* फलतः हम प्रयोगशाला की 'सं' 'प्र' पर पूरी तरह भरोसा नहीं कर सकते (३४)।

लेकिन इससे यह विचार बना लेना ग़लत होगा कि वयस्क मनुष्योंपर सम्बद्धीकरणके प्रयोग साधारणतः असफल ही हुआ करते हैं। यदि प्रयोगकर्ता अच्छी विधिका इस्तेमाल करे, तो

[1] reinforce [2] positive [3] negative [4] stimulus generalization [5] generalization gradient [6] substituted [7] differentiation [8] selective reinforcement [9] initial [10] conditioning [11] distracting stimulus [12] extinction [13] pavlov [14] conditioning reflex [15] buzzer-bottle sequence [16] buzzer

ये प्रयोग साधारणतः सम्बद्ध प्रतिक्रियाओंकी स्थापना, विनाश या भिन्नीकरण[1]के रूपमें फलित हो सकते हैं। घुटनों के झटके (२६, ३४), पुतलियोंका प्रतिक्षेप (१३), मनोविद्युत् प्रतिक्षेप और अन्य प्रतिक्षेपोंकी, जिनमें आगे वर्णित दो प्रतिक्षेप भी सम्मिलित हैं, तैयारीमें सम्बद्ध प्रतिक्रियाओंके निर्माणमें सफलता पायी गयी है।

«पलकोंकी प्रतिक्षेप क्रिया[3]». आंखोंके सामने फूंक मारने के समान उत्तेजना के प्रतिक्रिया-स्वरूप आंखोंके जल्दी-जल्दी बन्द होनेकी जो गति होती है, वह एक सच्चा प्रतिक्षेप है। सम्बद्ध उत्तेजना[4] के रूपमें, हर फूंकके ठीक ½ सैकेंड पहिले प्रकाशकी एक क्षीण चमक दिखाइये। एक घंटेके परिश्रमके बाद लगभग प्रत्येक परीक्षार्थी कम से कम कुछ सम्बद्ध प्रतिक्रियाएं अवश्य प्रकट करेगा, जिनमें फूंकके पहले आंखको आंशिक रूपसे बन्द कर लेना शामिल होगा। सम्बद्धीकरण से[5] एक छोटे, सुन्दर-से उ$_1$—प्र$_1$—उ$_2$—प्र$_2$ अनुक्रमका निर्माण हो जाता है, जिसमें प्रारम्भिक संकेतके समय तो आंखें अपेक्षाकृत धीमेसे, हल्की-सी बन्द होती हैं, किन्तु उसके बाद ही फूंकके प्रति तेजीसे प्रतिक्षेप करती हैं (१२)।

«बिजलीके धक्केसे हाथ हटा लेना». जोरसे बिजलीका धक्का लगने पर हाथको दूर खींच लेना एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया है। सम्बद्ध उत्तेजना के रूपमें हर धक्के के आधा सैकेंड पहिले प्रकाशकी चमक दिखाइये। उत्तेजना देनेवाला बिजलीके तारका सिरा हाथ से लगा रहेगा, ताकि पहलेसे ही हाथ खींचकर बिजलीके धक्केसे बचा न जा सके। फिर भी, यदि चमक—धक्के के अनुक्रमको एक घंटे तक प्रति मिनट दो बार दोहराया जाता रहा, तब आपको कॉलेजीय छात्रोंके एक बड़े भागसे सम्बद्ध प्रतिक्रियाएं प्राप्त होंगी, हालांकि बहुसंख्यक छात्रोंसे नहीं। इस 'सं' 'प्र' में धक्के के पहिले एक अनैच्छिक हिचक[6] हुआ करती है। यह शुरू-शुरू में तो बहुत निर्बल होती है, किन्तु हर प्रयासके बाद बढ़ती जाती है। अधिकांश व्यक्ति हिचक की गति[5] को दबानेकी चेष्टा करते हैं (११)।

सम्भवतः सम्बद्ध प्रतिक्रियाएं मूत्राशय[7] और मलद्वार के समीप बड़ी आंतके सिरेकी क्रियाओंको, तथा चेहरेकी संवेगात्मक अभिव्यक्तियोंको और श्वसन-प्रश्वसन एवं हृदय-गति आदिकी संयत करनेमें महत्त्वपूर्ण भाग लेती हैं (२२)।

साधनात्मक सम्बद्ध प्रतिक्रियाएं[8]. कोई 'सं' 'प्र' यदि परिवेश पर इस प्रकार क्रिया करती है, जिससे पुष्टीकरण[9] प्राप्त हो सके तो उसको «साधनात्मक[10]» कहा जा सकता है। पैवलोव[11] की लार-सम्बन्धी 'सं' 'प्र' शरीरको भोजनके लिए तैयार करती है, किन्तु इसका उस भोजनकी प्राप्तिसे कोई मतलब नहीं, जो प्रयोगकर्ता द्वारा नियमित समय पर दिया जाता है, चाहे पशुने लार बहाना शुरू किया हो या नहीं। इसलिए लार-सम्बन्धी[12] 'सं' 'प्र' साधनात्मक[10] नहीं है। लेकिन इस भिन्न स्थिति पर जरा विचार कीजिये : पशु, जो साधारणतः चूहा होता है, एक छोटी-सी पिटारीमें रखा जाता है। यह पिटारी बिल्कुल खाली होती है। केवल उसके एक किनारे पर टीनकी एक छोटी-सी खानेकी तश्तरी रखी होती है। पिटारीके बाहर एक मशीन होती है, जिससे चलाने पर एक छेदसे रोटीका एक टुकड़ा खानेकी तश्तरीमें गिर पड़ता है, और ऐसा करते हुए मामूली-खटका होता है। जब चूहा खाली पिटारीके साथ अपना समायोजन कर चुकता है, तब प्रयोगकर्ता मशीनको चलाता है और तश्तरीमें रोटीका कौर गिर पड़ता है। चूहा खटकेकी आवाज सुनकर इधर-उधर ढूंढ़ता है और रोटीको पाकर उसे खा जाता है। कुछ मिनटों के बाद प्रयोगकर्ता दूसरा टुकड़ा देता है और चूहा खानेकी तश्तरीके पास पहिलेकी अपेक्षा अधिक तत्परता से पहुँचता है। इसी प्रकार कई बार दोहराने पर तश्तरीके पास पहुँचने की प्रतिक्रिया भली भांति स्थापित हो जाती है। चूहा एक उ$_1$—प्र$_1$—उ$_2$—प्र$_2$ के अनुक्रमको सीख लेता है, जिसमें उ$_1$ खटकेकी मामूली आवाज होती है, प्र$_1$ खानेकी तश्तरीके पास पहुँच होती है, उ$_2$ रोटी होती है, प्र$_2$ खानेकी क्रिया होती है। यहां प्र$_1$ स्पष्टतया तैयारीकी प्रतिक्रिया है, और इसको हम साधनात्मक सम्बद्ध प्रतिक्रिया कह सकते हैं, क्योंकि यह भोजन को प्राप्त करनेके लिए परिवेश के ऊपर क्रिया करती है।

अब इस स्थितिको तनिक जटिल बना दीजिए। खानेकी तश्तरीके पास, एक दीवार के सहारे एक क्षैतिज[13] छड़ रख दीजिए और उसके एक सिरेको मशीनसे इस प्रकार सम्बन्धित कर दीजिए कि छड़को दबानेसे तश्तरीमें रोटीका टुकड़ा गिर पड़े। तश्तरीकी तलाश करते हुए चूहा इस छड़को देखता है। वह अपने पंजोंको उस पर जमाता है और अकस्मात् रोटीका टुकड़ा गिर पड़ता है। चूहा उसे प्राप्त कर लेता है, क्योंकि उसने पहिलेसे ही खटकेकी हल्की आवाजके प्रति प्रतिक्रिया करना सीख रखा है। जब कभी वह छड़को दबाता है, उसे रोटीका टुकड़ा मिल जाता है; यह प्रतिक्रिया उसमें शीघ्र ही स्थापित हो जाती है। स्पष्ट ही यह एक साधनात्मक[10] 'सं' 'प्र' है। पुष्टीकरण[9], अर्थात् रोटी देनेकी क्रिया को बन्द

[1] differentiation [2] Psycho-glavanic response [3] the eyelid reflex [4] conditioned stimulus
[5] shrinking [6] shrinking movement [7] bladder [8] instrumental conditioned responses
[9] reinforcement [10] instrumental [11] Pavlov [12] salivary [13] horizontal
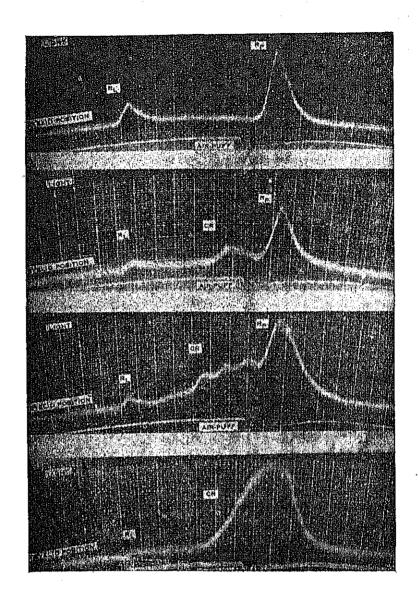
आकृति १३१. पलकोंकी सम्बद्ध प्रतिक्रिया। सम्बद्ध उत्तेजना एक क्षीण प्रकाश था, जिसने इस विषयमें पलकोंकी एक क्षीण प्रतिक्षेप-क्रिया उत्पन्न की, जिसे इस आकृति के चिह्नोंमें 'RL' से दिखाया गया है। नैसर्गिक उत्तेजना के रूपमें जब हवा की फूंक का इस्तेमाल किया गया, तब एक सबल प्रतिक्षेप क्रिया हुई, जिसे आकृतिके चिह्नोंमें 'RP' से प्रदर्शित किया गया है। पहिले अंकन (रेकर्ड) में ये दोनों प्रतिक्षेप क्रियाएं बिना किसी सम्बद्धीकरणके दिखायी गयी हैं, और बीचके अन्य दो अंकनों (रेकर्डों) में सम्बद्ध प्रतिक्रिया ('सं' 'प्र') के विभिन्न रूप दिखाये गये हैं। सबसे नीचेके अंकनमें 'सं' 'प्र' सरलता से 'नै' 'प्र' में मिल जाता है। मोटी ऊर्ध्व रेखाएं १/१० सैकेंडकी इकाइयोंमें समयका अंकन करती हैं। [हिलगार्ड और मार्क्विस, १२]।

करके इस प्रतिक्रिया को नष्ट किया जा सकता है। पैवलोव[1] के प्रयोगमें तो सम्बद्ध प्रतिक्रिया को विनष्ट करनेके लिए कुछ ही बार पुष्टीकरणको बन्द करना पड़ता था, किन्तु इस प्रयोगमें सम्बद्ध प्रतिक्रिया को विनष्ट करनेके लिए उससे अधिक संख्या के प्रयासोंमें पुष्टीकरणको बन्द करना पड़ता है।

सम्बद्धीकरण-सम्बन्धी प्रयोगकेइस विशिष्ट रूपका विकास स्किनर[2] (२७) ने किया था। थॉर्नडाइक[3] के पिंजड़ेकी तुलना में स्किनर की पिटारीमें पशुको बहुत कम अनुसन्धान करनेकी आवश्यकता रहती है। यदि कुछ सम्भावित मार्ग भूठे हुए ही, तो उनकी संख्या बहुत कम होती है, फलतः सीखनेकी क्रिया बड़ी तेजीके साथ आगे बढ़ती है। लेकिन दोनों तरहकी समस्याओंमें, सफल प्रतिक्रिया स्थापित करने की विधानात्मकप्रक्रिया[4] एक-सी होनी चाहिए। पिंजड़ेमें बन्द की हुई बिल्ली भी $उ_1$—$प्र_1$—$उ_2$—$प्र_2$ के अनुक्रमको सीख लेती है, जिसमें $उ_1$ कमरेको बदखनेका दर्शन, $प्र_1$ इसे घुमानेकी क्रिया, $उ_2$ भोजन, और $प्र_2$ खानेकी क्रिया होती है। पैवलोव की सम्बद्धीकरण[5] की विधि और थॉर्नडाइक की 'प्रयास और भूल' की विधि, सीखनेकी दो प्रमुख विधियां हैं, जिन्हें लोग बहुधा परस्पर नितान्त भिन्न मानते आये हैं, किन्तु स्किनर के प्रयोगने इन दोनों विधियोंके बीचकी खाई पर पुल का काम किया है। तीनोंकी विधियोंमें अनुक्रम[6] को सीखनेका विधान है। तीनोंमें ही उत्तेजना का अर्थ सीखना पड़ता है, क्योंकि कोई भी उत्तेजना एक इंगित या संकेत बन जाती है। वह संकेत बताता है कि आगे क्या होने जा रहा है या एक खास तरहकी प्रतिक्रिया करने पर क्या प्राप्त किया जा सकता है।

सीखने की क्रिया के महत्त्वपूर्ण तत्त्व

इस प्रकरणमें वर्णित प्रयोगोंके अतिरिक्त अन्य प्रयोगों पर भी ध्यान देना सीखनेके एक व्यापक सिद्धान्तके लिए आवश्यक होगा। इनमेंसे कुछ प्रयोग 'स्मृति'-सम्बन्धी आगामी प्रकरण में दिये गये हैं। इस समयमें, सीखनेके किसी भी सामान्य सिद्धान्तको सभी मनोवैज्ञानिकोंका समर्थन नहीं प्राप्त है। वे इस समस्या के विभिन्न पक्षों पर विभिन्न प्रयोगोंकी सहायता से विचार करके भिन्न-भिन्न तत्त्वों पर जोर देते हैं। यहां पर हम कुछ वस्तुतः महत्त्वपूर्ण तत्त्वों पर प्रकाश डालनेकी चेष्टा करेंगे।

निरीक्षण. सम्बन्द्धीकरण[5] पर विचार करते समय हमने इस तत्त्व पर काफ़ी जोर दिया है और स्थान तथा वस्तुको सीखने[7] केसम्बन्धमें विचार करते समय भी हमने इस पर जोर दिया था। परिवेश के साथ व्यवहार करना सीखनेमें जो चीज़ सीखनी पड़ती है, वह मुख्यतः परिवेशकी विशेषताएं[8] होती हैं। एक बार इनको सीख लेने पर, कम से कम सरल मामलों में, गतियोंको सीखने[9] की बहुत कम आवश्यकता रहती है, क्योंकि वस्तु तक पहुँचने या उससे बचनेकी आवश्यक गतियां या तो पहिले ही सीखी जा चुकी होती हैं, या वे प्रकृतिप्रदत्त[10] होती हैं। जब चूहा यह सीख लेता है कि खानेकी तश्तरीमें हल्का-सा खटका होनेका मतलब भोजन है, तब इसके अलावा उसे यह नहीं सीखना पड़ता कि तश्तरीके पास तक कैसे पहुँचा जाय।

परिणामोंके निरीक्षण पर एक-दो शब्द और कहना अनुचित न रहेगा। आप किसी लक्ष्य पर निशाना बांधते हैं, गोली छोड़ देते हैं और परिणामको देखते हैं। यदि परिणामसे पता चलता है कि आपका निशाना बहुत ऊंचा था, तो आप अपनी दृष्टिको कुछ नीचे करके फिर प्रयास करते हैं। इस प्रकार आप पहिलेसे अच्छा निशाना लगाना सीखते हैं। यदि आपको किसी तरह परिणामोंका निरीक्षण न करने दिया जाय,तो कार्य को पहिलेसे अच्छी तरह सम्पन्न करनेके लिए आपको कोई पथ-प्रदर्शन न प्राप्त होगा और अभ्यास अरुचिकर और अनुपयोगी हो जायगा। «परिणामोंके ज्ञान[11]»के प्रेरणात्मक मूल्य[12] के विषयमें हम एक बार पहिले भी चर्चा कर चुके हैं (पृ० १९७)।

एक और व्यावहारिक सुझाव लीजिए: आप परिस्थितिको जितनी स्पष्टता से देखेंगे और समस्या को समझेंगे, उतनी ही अच्छी तरह आवश्यक बातोंको सीख सकेंगे। सीखने की क्रिया अवधान[13] और निरीक्षण[14] के सहायक अन्य किसी भी तत्त्व (जैसे, तीव्रता[15] और रुचि[16] इत्यादि) के द्वारा (पृ० २४१ देखिए) उचित रूपसे और शीघ्रतापूर्वक सम्पन्न हो सकती है।

उत्तेजनाओंके नमूने[17]. सम्बद्धीकरण-प्रयोगोंमें छोटे अनुक्रम सीखे जाते हैं. वे सरल प्रकारके नमूने[18] होते हैं और 'सामयिक सन्निद्धि[19]' पर निर्भर करते हैं। 'सामयिक सन्निद्धि' से तात्पर्य यह है कि एक उत्तेजना के बाद दूसरी उत्तेजना तेजीके साथ आती जाय। एक भूलभुलैया में उत्तेजनाओंका अनुक्रम उत्तेजनाओं का नमूना[18] होता है। जब चूहा भूलभुलैया को

[1] Pavlov [2] Skinner [3] Thorndike [4] positive process [5] conditioning [6] sequence [7] place learning and thing learning [8] characteristics [9] motor learning [10] instinctive [11] knowledge of results [12] motivating value [13] attention [14] observation [15] intensity [16] interest [17] stimulus patterns [18] patterns [19] temporal contiguity

अच्छी तरह जान जाता है, तब वह उसमें बड़ी सफ़ाईसे और तेज़ी से दौड़ता है, जिससे पता चलता है कि वह प्रत्येक घुमावके लिए, वहां असलमें पहुँचे बिना भी, तैयार है। यद्यपि कार्य करनेकी उसकी कुशलता विशुद्ध स्वतः चालित स्वतः चेष्टा[१] के समान दिखायी देती है, तथापि आवश्यक संकेतोंको प्राप्त करनेमें वह अपनी ज्ञानेन्द्रियोंका उस समय भी उपयोग कर रहा होता है। इन क्रमिक क्रियाओंके अतिरिक्त, जो एक के बाद एक आनेवाली[२] उत्तेजनाओंके नियमित अनुक्रमों पर अवलम्बित होती हैं, गतियोंके कुछ ऐसे मेल भी हैं जो एक ही समयमें साथ-साथ[३] क्रियान्वित होते हैं। उदाहरणके लिए दोनों हाथोंकी गतियां, जो अभ्यास के कारण लगभग स्वतः चालित[४] सी हो जाती हैं। इन गतियोंको संगठित करनेके लिए विस्तृत निरीक्षणकी आवश्यकता होती है, किन्तु अभ्याससे वे इतनी अधिक गुंथ जाती हैं कि तब केवल न्यूनतम निरीक्षणसे भी काम चल जाता है।

अभ्यास और पुनरावृत्ति[५]. कभी-कभी सरल कार्य एक बारके प्रयास[६] में ही सीख लिये जाते हैं, किन्तु अधिक जटिल कार्योंको सीखनेके लिए साधारणतः बार-बार प्रयास करने की आवश्यकता होती है। सरल कार्योंमें भी यदि बार-बार प्रयास किया जाय, तो वे अधिक दिनों तक याद रहते हैं। यदि आपका किसी अजनबीसे परिचय कराया जाय और आप उसे दिलचस्प पावें तथा उसके नामको ध्यान देकर सुनें, तो शायद इस अकेली तीव्र क्रिया के कारण आप उसका नाम याद कर लेंगे। किन्तु, यदि आप उससे परिचय करनेके लिए अधिक उत्सुक नहीं हैं, तो उस नामको कंठाग्र करनेके लिए आपको कई बार याद दिलाना पड़ सकता है।

पुनरावृत्तियोंका समयान्तर[७]. यदि कोई बात सीखने की परिस्थिति काफ़ी समय तक फिर न उपस्थित हो, तो पहिली बारके सीखनेका प्रभाव नष्ट हो जायगा या भुला दिया जायगा। यदि सीखनेकी प्रगतिको तेज़ रखना है, तो उसको बार-बार दोहराना बहुत महत्त्वपूर्ण है। दूसरी ओर, यदि पुनरावृत्तियां बहुत जल्दी-जल्दी और काफ़ी संख्या में हुईं, तो इस बात की भी सम्भवना है कि वस्तुतः सीखनेकी क्रिया में बाधा उपस्थित हो जाय। किसी भी कार्यकी, जिसे सीखा जा रहा हो, पुनरावृत्तियोंमें एक अनुकूलतम अवकाश होता है। स्मरण करनेकी क्रिया पर इस तत्त्वका क्या प्रभाव पड़ता है, इसपर हम अगले प्रकरणमें विचार करेंगे (पृ० ३३३)।

पुष्टीकरण[८]. सीखनेके लिए अभ्यासकी आवश्यकता तो है, परन्तु बार-बार दोहराया गया और ठीक समय पर किया गया अभ्यास ही पर्याप्त नहीं है। क्या हमने नहीं देखा कि अच्छी प्रेरणा[९] के अभावमें, बहुत दिनों तक जारी रहनेवाले कामको नियमित दैनिक पुनरावृत्ति किसी व्यक्तिको 'सीखने के पठार' पर ही छोड़ सकती है और उन्नतिके लिए परिणामों की जानकारी भी एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है? और क्या हमने नहीं देखा है कि पुष्टीकरण[८] के साथकी हुई पुनरावृत्तिसे स्थापित सम्बद्ध प्रतिक्रिया[१०] पुष्टीकरण-रहित पुनरावृत्तिसे नष्ट हो जाती है? भिन्नीकरणके प्रयोग[११] से पता चलता है कि पुष्टीकृत प्रतिक्रियाएं[१२] तो कायम रहती हैं, जब कि अपुष्टीकृत प्रतिक्रियाएं दूर हो जाती हैं। भूलभुलैया या पिंजरेमें भी सीखनेवाला[१३] ऐसी प्रतिक्रियाओंको छांट देता है जो लक्ष्य तक पहुँचानेमें सहायक न होनेके कारण पुष्टीकृत नहीं हो पातीं और उन प्रतिक्रियाओंको बनाये रखता है जो सफलताके द्वारा पुष्टीकृत हो जाती हैं। केवल अभ्याससे समस्त प्रतिक्रियाएं सबल हो सकती हैं, किन्तु पुष्टीकरण[८] तो एक चुनाव करने वाला तत्त्व[१४] है।

पुष्टीकरणका पूरा अर्थ और उसका पूरा विस्तार समझने के लिए हमें यह याद रखनेकी आवश्यकता है कि यह सीखे हुए प्रत्यक्षों[१५] और सीखी हुई गतियों[१६] में भी एक तत्त्व[१७] है। 'निरीक्षण'-सम्बन्धी प्रकरणमें हमने 'प्रयास और भूल करते हुए प्रत्यक्षीकरण' के विषयमें कुछ बातें बतायी थीं। आप गड़गड़ाहटकी आवाज़ सुनते हैं, जिससे आपको प्रतीत होता है कि बादल गरज रहे हैं, लेकिन आप इस सुझावको अस्वीकार कर देते हैं, क्योंकि मौसम साफ़ दिखायी देता है; इसके पश्चात् उस आवाज़से यह सुझाव मिलता है कि ऊपरवाली मंजिल पर कोई आदमी खाट घसीट रहा है और आप इस सुझावको स्वीकार कर लेते हैं, क्योंकि इसका परिस्थितिके साथ मेल बैठ जाता है। «परिस्थितिके अनुकूल होना[१८]» एक प्रकारका पुष्टीकरण ही है। किसी देहातमें जब आप भ्रमण कर रहे होते हैं, तब कोई व्यक्ति आपको चेताता है कि 'उन पत्तियोंको मत छूना, वे ज़हरीली लताएं हैं'; यदि आप चतुर हैं, तो आप उन पत्तियोंका निकटसे निरीक्षण करते हैं और उनकी शक्ल आपको याद हो जाती है या मामलेके महत्त्वकी आपकी अनुभूतिके द्वारा वह पुष्टीकृत हो जाती है। आप अपने मित्रकी आँखोंका रंग नहीं बतला सकते, क्योंकि आपने कभी अपने-आप से यह नहीं पूछा है कि वे किस रंगकी हैं, किन्तु अब जब आपसे प्रश्न किया जा रहा है, तब आप उसे ध्यानपूर्वक देखने और याद करनेकी कोशिश करते हैं, क्योंकि

[१] motor automatism [२] contiguous [३] simultaneously [४] automatic [५] exercise and repetition [६] trial [७] timing of repetitions [८] reinforcement [९] motivation [१०] conditioned response [११] differentiation experiment [१२] reinforced responses [१३] learner [१४] selective factor [१५] learned perceptions [१६] learned movements [१७] factor [१८] fitting the situation

इस तरह आप अपने प्रश्नका एक उत्तर पा जाते हैं। इन सभी मामलोंमें, कतिपय निरीक्षित तथ्यों पर जो जोर दिया जाता है, वही पुष्टीकरण[1] है। कई अन्य तथ्य जिनको हम चलते-फिरते देख लेते हैं और जिन पर कोई जोर नहीं देते, शीघ्र ही विस्मृत हो जाते हैं, जब कि जिन तथ्यों पर जोर दिया जाता है, उनके स्मृतिमें टिके रहे रह जानेकी अच्छी सम्भावना रहती है। इस प्रकार प्रत्यक्ष करना सीखने[2] में पुष्टीकरण एक शक्तिशाली तत्त्व होता है।

'पुष्टीकरण'[1] शब्दका इस्तेमाल करनेके बजाय कुछ मनोवैज्ञानिक «पुरस्कार और दंड[3]» कहना अधिक पसन्द करते हैं। चूहा भूलभुलैया में सही रास्ता पकड़नेका पुरस्कार भोजनकी पिटारीमें भोजन पाकर पा लेता है। बन्द गली में जानेका दंड उसे इस रूपमें मिलता है कि वहां उसे कुछ भी भोजन नहीं मिलता, वहां बिजलीका मजबूत धक्का खाकर वह और सख्ती से दंडित हो सकता है। यदि वह इसके बाद उस गलीसे बाहर-बाहर ही रहता है, तो धक्का नहीं खाता और इस प्रकार पुरस्कृत होता है।

दंडके दो महत्त्वपूर्ण प्रभाव होते हैं। जब बच्चा लालटेनके शीशेसे एक बार जल जाता है, तब वह लालटेन से «बचकर रहना» सीखता है। जब कोई व्यक्ति किसी सम्भावित मार्ग को पकड़कर अपने लक्ष्यकी ओर जाता होता है और उस मार्गमें न्यूनाधिक रूपसे दंडित हो जाता है, तब वह «दूसरे मार्ग पर हटनेके लिए प्रवृत्त हो जाता है»।

पुष्टीकरणके सभी मामलोंका समावेश करनेके लिए पुरस्कारके प्रत्यय में काफ़ी खींच-तान करनी पड़ती है। पैवलोव[4] के प्रयोग में भोजनको पुरस्कारके रूपमें समझा जासकता है, किन्तु पलक-सम्बन्धी प्रयोगमें हवा की फूंक मारनेको आप क्या कहेंगे? बिजली—कड़क[5] अनुक्रमम कड़क क्या पुरस्कार है? शायद हम यह कहेंगे कि जो चीज होने जा रही है, उसके लिए «तैयारी[6]» पुरस्कृत होती है। और प्रात्यक्षिक पुष्टीकरणके सम्बन्धमें आप क्या कहेंगे? जब कभी आपके मनमें कोई प्रश्न उठता है, तब उसका उत्तर मिल जाना ही आपका पुरस्कार है, और जब कभी आप परिवेशका अनुसन्धान करते होते हैं, तब परिवेशकी परिस्थितिकी जानकारी हो जाना ही आपका पुरस्कार होता है। इस प्रकार पुरस्कारके विचारको खींच-तानकर हम इसे पुष्टीकरण[1] के लगभग समान ही बना सकते हैं।

प्रेरणा[7]. इस प्रकरणमें प्रेरकों[8] पर जितना जोर दिया गया है, उससे अधिक जोर उन पर दिया जासकता था, हालांकि सीखनेके लिए उनके महत्त्वको हमने कई बार स्वीकार किया है। साधारणतः सीखनेमें जो प्रेरक समाविष्ट होता है, वह सीखनेका प्रेरक नहीं होता। पशु तो निश्चित रूपसे भविष्यके उपयोगके लिए सीखनेको प्रेरित नहीं होते और मनुष्योंमें भी सीखनेवाले लोगोंका प्रेरक सामान्यतः वर्तमान परिस्थितिसे व्यवहार करने और तात्कालिक परिणाम प्राप्त करने तक ही सीमित रहता है। उनका प्रेरक हो सकता है भोजन प्राप्त करना, खतरेसे बचना, सामाजिक समर्थन प्राप्त करना, कोई दिलचस्प खेल खेलना; या उन प्रेरकोंमें से कोई भी हो सकता है जिनकी सूची हमने प्रेरकोंसे सम्बन्धित प्रकरण में दी है (पृ० १८५)। प्रेरक चाहे जो हो, वर्तमान परिस्थिति पर अधिकार प्राप्त करने के लिए सीखने की आवश्यकता रहेगी ही, और इस प्रकार वास्तवमें भविष्यके लिए तैयारी होती रहेगी।

यदि प्रात्यक्षिक सीखना[2] इतना महत्त्वपूर्ण है, जितना हम बताते आरहे हैं, तो अनुसन्धान करने[9] और प्रहस्तन[10] के प्रेरकों को सीखनेकी क्रिया में काफ़ी हिस्सा लेना होगा। दूसरे, अधिक जिद्दी क़िस्मके प्रेरक वास्तवमें बहुत शक्तिशाली हो सकते हैं; एक बहुत भूखा पशु भोजन-प्राप्ति की आशा में इतना उत्तेजित हो उठता है कि वह परिस्थिति की जांच करने के लिए रुके बिना ही सीधे अपने लक्ष्य पर दौड़ पड़ता है; यदि ऐसे समय उसकी राहमें कोई रुकावट डाली जाय, तो इसके बजाय कि वह अपने लक्ष्य तक पहुँचनेके लिए किसी कम सीधे मार्गका अनुसन्धान करे, वह आवेशमें उन्मत्त हो सकता है (३)।

स्पष्टतः पुष्टीकरण प्रेरणा[7] पर निर्भर करता है। यदि कोई पशु भूखा है, तो भोजन उसका पुरस्कार है; भोजनकी पिटारीमें भोजन पा लेने पर भूलभुलैया में सही रास्तेका उसका चुनाव[11] पुष्टीकृत हो जाता है। यदि वह भूखा नहीं है, तो वह यह पुष्टीकरण नहीं पाता है, हालांकि वह भोजन का निरीक्षण कर सकता है और इस निरीक्षणका उपयोग बाद में भूख लगने पर कर सकता है।

सीखी हुई प्रतिक्रिया का विनष्ट होना[12] और निषेधात्मक अनुकूलन[13] सीखनेके एक प्रमुख प्रकारके उदाहरण हैं। वह प्रकार है—कोई चीज «न» करनेकी बात सीखना। इस प्रकारके सीखनेके पीछे क्या प्रेरक हो सकता है? इसको मितव्यय का प्रेरक[14] कह सकते हैं जिसका तात्पर्य है—निरर्थक प्रयत्नोंसे बचनेकी प्राकृतिक प्रवृत्ति। चूंकि कुछ व्यक्तियोंमें यह प्रेरक अन्य व्यक्तियोंकी अपेक्षा बलवान् होता है, और

[1] reinforcement [2] perceptual learning [3] reward and punishment [4] Pavlov [5] lightning-thunder [6] preparation [7] motivation [8] motives [9] exploring [10] manipulating [11] choice [12] extinction [13] negative adaptation [14] economy motive

कुछ समयोंमें अन्य समयोंकी अपेक्षा अधिक बलवान् होता है, इसलिए विनष्ट होने[1] की बात पर भरोसा नहीं किया जा सकता। कोई निरर्थक कार्य, अर्थात् ऐसा कार्य, जिसका कोई पुष्टीकरण नहीं होता, बहुत शीघ्रता से अलग कर दिया जाना चाहिए, लेकिन कभी-कभी यह कई पुनरावृत्तियों तक जारी रहता है। सम्भवतः इसे कोई आन्तरिक पुष्टीकरण, या «कल्पित पुष्टीकरण[2]» मिल रहा होता है। व्यक्ति यह कल्पना कर सकता है कि उसने कुछ किया है, जब कि तथ्य यह होता है कि उसने कुछ भी नहीं किया होता।

कल्पित पुष्टीकरणका एक उदाहरण: एक अनावश्यक भय (पृ० १८८)। कुत्तोंसे डरनेवाला एक बच्चा जब एक हानि-रहित कुत्तेके पाससे भाग जाता है, तब वह कल्पना कर लेता है कि वह उसके काटनेसे बच गया और इस प्रकार बाल-बाल बचनेके लिए वह स्वयंको बधाई देता है। इस प्रकार वह उस भयको बहुत पुष्टीकरण देकर जीवित रखता है, हालांकि उसे कोई बाह्य पुष्टीकरण नहीं प्राप्त होता। इसी प्रकार कई व्यर्थ के द्वेष[3] भी जीवित रखे जाते हैं। सीखनेकी वक्ररेखा के पठार में इस चीजका एक दूसरे प्रकारका उदाहरण देखा जा सकता है, जब यह पठार स्वल्प प्रेरणा या 'महत्त्वाकांक्षा के निम्न स्तर' के कारण उपस्थित होता है। इस उदाहरणमें व्यक्ति कुछ न कुछ तो करता ही है, लेकिन वह समझता है कि वह कार्यको काफ़ी अच्छी तरह कर रहा है। इस प्रकार वह काम करनेकी अपनी अकुशल विधियोंको ही पुष्ट[4] करता रहता है।

जब कोई अच्छा काम बिना किसी बाह्य जांच[5] के किया जाता है, तब कल्पित पुष्टीकरण भलेके लिए ही होता है। यदि आप काफ़ी अंकगणित सम्बन्धी कार्य करते हैं, तो आप को पहाड़ेका इतना अच्छा अभ्यास हो जाता है कि आपको 'नौ साते ६३' कहते समय किसी बाह्य जांचकी आवश्यकता नहीं होती। जितनी बार आप इसे कहते हैं, आप जानते हैं कि मैं ठीक कह रहा हूं; इसलिए आप लगातार पुष्टीकरण के द्वारा इस प्रतिक्रिया को बनाये रखते हैं। यह विलोन नहीं होती, जैसा कि सम्भवतः बिना किसी तरहका पुष्टीकरण पाये यह हो सकती थी। कितने ही अच्छी तरह सीखे हुए[6] कार्य इसी प्रकार जीवित रखे जाते हैं।

सारांश

१. किसी नयी चीजको करनेका नाम «सीखना» है, किन्तु इसमें शर्त यह है कि नयी क्रिया पुष्टीकृत[7] होवे और बादके कार्योंमें भी दिखायी दे।

(क) सीखनेकी आधारभूत प्रक्रियाओंके सम्बन्धमें अन्वेषण करने के लिए, परीक्षार्थी के रूपमें पशुओं का उपयोग किया जाता है। इसमें यह उद्देश्य रहता है कि उच्चतर बौद्धिक प्रक्रियाओं की उलझनों से बचा रहा जा सके।

(ख) पशुओंके सीखनेका यथासम्भव वस्तु प्रधान दृष्टिसे निरीक्षण किया जाता है और यदि उसको किसी निम्न कोटिको मानसिक प्रक्रिया की उपज समझा जासकता है, तो उसे एक उच्च कोटिकी मानसिक प्रक्रिया की उपज बतानेकी चेष्टा नहीं की जाती (लॉयड मार्गनका नियम)।

२. अधिकांश परिस्थितियोंमें «स्थानको सीखना[8]» मौलिक होता है। अनुसन्धानके द्वारा इसमें यह सीखा जाता है कि काम कहां करना है, लक्ष्य कहां पर है और लक्ष्यकी दिशामें कौन-कौन से प्रमुख चिह्न हैं।

(क) अनावश्यक (अपुष्टीकृत[9]) क्रियाओं, जैसे भय या अनुसन्धानात्मक व्यवहारको घटाने और हटानेको «निषेधात्मक अनुकूलन[10]» कहते हैं।

(ख) «भूलभुलैया को सीखनेमें» चूहा नयी परिस्थितियों के साथ अपना समायोजन कर लेता है, भूलभुलैया का अनुसन्धान करता है, धीरे-धीरे बन्द गलियोंमें घुसना बन्द करता है और अन्तकी इस स्थितिमें पहुँच जाता है कि बिना भूलें किये वह सही पथ पर तेज़ीसे दौड़ सकता है।

१. «प्रतिक्षेप-शृंखला के सिद्धान्त[11]» के अनुसार चूहा गतियोंके एक निश्चित अनुक्रम को सीखता है। किन्तु यह इस तथ्यसे खंडित हो चुका है कि कोई पशु जो एक भुलभुलैया में अच्छी तरह दौड़ना सीख गया है, उस हालत में भी सही रास्तेका ही अनुसरण करता है, जब कि रास्तेमें इतना पानी भर दिया जाता है कि उसे उसमें तैरना पड़े।

२. «निश्चित पथ-सिद्धान्त[12]» के अनुसार, चूहा अकेले सही पथको सीखता है। लेकिन यह सिद्धान्त भी इस तथ्य द्वारा अप्रमाणित कर

[1] extinction [2] assumed reinforcement [3] antipathies [4] reinforce [5] objective check [6] well-learned [7] reinforced [8] place-learning [9] non-reinforced [10] negative adaptation [11] chain reflex theory [12] fixed path theory

दिया गया है कि रास्तेमें आंशिक रुकावटें उपस्थित कर दी जाने पर भी चूहा आवश्यक उपपथों[१] का अनुसरण करके भोजन-पिटारी की ओर बढ़ता ही जाता है।

३. इस साक्ष्यसे यह पता चलता है कि चूहा एक ऐसी परिस्थितिमें लक्ष्यकी दिशाको सीखता है, जिससे वह परिचित हो चुका होता है।

(ग) मानव-परीक्षार्थी भी इसी विधिसे भूलभुलैया को सीखते हैं, किन्तु वे इसके अतिरिक्त, विस्तारकी बातों (बन्द गलियों) और अन्य प्रमुख चिह्नोंको पहचाननेमें शब्दों और संख्याओंका भी उपयोग करनेमें समर्थ होते हैं।

३. «औज़ारों—उपकरणों—को सीखना[२]» एक दूसरा मौलिक प्रकारका सीखना है। यह वस्तुओंको हाथसे हिलाने-डुलाने और परिणामोंका निरीक्षण करने पर निर्भर करता है।

(क) «पिंजरेमें बन्द बिल्ली» पिंजरेके विभिन्न भागोंको नोचती-खसोटती है, धक्का देती है, पंजे मारती है और काटती है। अन्तको वह चटखनीको घुमानेमें समर्थ हो जाती है और अपनेको मुक्त कर लेती है। बादके प्रयासोंमें उसका आक्रमण अधिकतर सीधे चटखनीके स्थान पर होता है और पहिलेकी अपेक्षा अधिक शीघ्रतासे वह अपनी रिहाई कर लेती है। बिल्ली कोई अपरिवर्तनीय[३] गति नहीं सीखती, बल्कि कतिपय वस्तुओंकी उपयोगिताको[४] सीखती है।

(ख) «बन्दर और चिम्पैंजी» प्रहस्तन[५] और निरीक्षण[६] की इन्हीं प्रक्रियाओंके द्वारा जटिलतर समस्याओंको सीखते हैं।

(ग) «सूझ या अन्तर्दृष्टि[७]» किसी समस्याके अकस्मात् सुलझ जानेके क्षणकी ओर संकेत करती है। लक्ष्य की ओर बढ़नेसे पहले ही उस तक जानेवाले पथको देख लेना «पूर्वदृष्टि[८]» कहलाती है। किसी सम्भव मार्गका परीक्षण कर लेने के बाद यह निरीक्षण करना कि वह मार्ग अच्छा है या बुरा, पश्च-दृष्टि[९] कहलाती है (पुष्टीकरण)।

(घ) निरीक्षण, व्यवस्थित प्रहस्तन[१०], भाषाके उपयोग और विचार-प्रक्रिया[११] की दृष्टिसे मनुष्य द्वारा औज़ारों (उपकरणों) का सीखना पशुओंकी अपेक्षा श्रेष्ठ होता है।

(ङ) कौशलपूर्ण क्रियाओं[१२] को सीखनेमें व्यक्ति अकेली आंशिक इकाइयों[१३] पर अधिकार करके उच्चतर इकाइयों[१४] की ओर अग्रसर होता है, जिनमें अकेली इकाइयोंके अनुक्रम[१५] और संयोग[१६] होते हैं। एक इकाईके रूपमें अनुक्रम[१७]को कार्यान्वित करनेमें एक गतिके जारी रहते हुए अगली गतिके लिए तैयारी करनी पड़ती है।

४. उत्तेजनाओं, प्रतिक्रियाओं, और उत्तेजना-प्रतिक्रिया इकाइयोंके अनुक्रम[१७] सम्बन्धीकरण[१८] की प्रतिक्रिया द्वारा सीखे जाते हैं। «सम्बद्ध प्रतिक्रिया[१९]» एक अनैच्छिक तैयारीकी प्रतिक्रिया[२०] होती है। यह एक ऐसे संकेत द्वारा जाग्रत्की जाती है, जो नियमित रूपसे किसी महत्त्वपूर्ण उत्तेजनाका पूर्वगामी होता है।

(क) सबसे पहले पैवलोव[२१] ने कुत्ते पर प्रयोग करके यह अध्ययन किया कि भोजनका कोई संकेत पाने पर, उनमें लार[२२] बहानेकी सम्बद्ध प्रतिक्रिया[१९] होने लगती है। घटनाओंका अनुक्रम यह होता है:

$उ_१$ सम्बद्ध उत्तेजना[२३]: घंटी, प्रकाश, भोजनका दर्शन इत्यादि।

$प्र_१$ सम्बद्ध प्रतिक्रिया (पूर्व तैयारीके रूपमें लार बहाना)।

$उ_२$ नैसर्गिक उत्तेजना[२४]: मुँहमें शुष्क भोजन।

$प्र_२$ नैसर्गिक प्रतिक्रिया (लार बहानेकी प्रतिक्षेप क्रिया)।

पैवलोव ने सम्बद्धीकरण[१८] के जो प्रमुख नियम निर्धारित किये, वे निम्न प्रकार हैं:

१. 'सं' 'उ' के पश्चात् 'नै' 'उ'—'नै' 'प्र' आती है। इस अनुक्रमकी «पुनरावृत्ति[२५]» द्वारा 'सं' 'प्र' स्थापित हो जाती है» (पुष्टीकरण[२६])।

२. यदि 'सं' 'उ' की पुनरावृत्ति हो, किन्तु बादमें उसका पुष्टीकरण न हो, तो 'सं' 'प्र' नष्ट हो जाती है। नष्ट हुई 'सं' 'प्र' को या तो कुछ

---

[१] detours [२] tool learning [३] stereotyped [४] useful character [५] manipulation [६] observation [७] insight [८] foresight [९] hind sight [१०] managed manipulation [११] ideational activity [१२] skilful activities [१३] single part units [१४] higher units [१५] sequences [१६] combination [१७] sequence [१८] conditioning [१९] conditioned response [२०] involuntary preparatory response [२१] Pavlov [२२] saliva [२३] conditioned stimulus [२४] unconditioned stimulus [२५] repetition [२६] reinforcement

पुष्टीकरणों[1] के द्वारा पुनः जीवित किया जा सकता है या विश्रामके समय वह अनायास ही लौट आती है।

३. जब 'नै' 'उ' काफ़ी समयान्तरके पश्चात् 'सं' 'उ' का अनुसरण करती है, तब एक «विलम्बित» 'सं' 'प्र'[2] स्थापित हो जाती है।

४. एक 'सं' 'उ' के पुष्टीकरण और उसी तरह की दूसरी ऐसी उत्तेजनाके अपुष्टीकरण[3] के द्वारा, जो «साधारणीकरण[4]» के जरिये 'सं' 'प्र' को जाग्रत् करती है, «चुनावपूर्वक सम्बद्धीकरण[5]» अर्थात्, विवेचन[6] स्थापित हो जाता है।

(ख) वयस्क मनुष्योंके आलोचनात्मक रुख[7] और अपने ऊपर उनके ऐच्छिक संयमके कारण उनमें सम्बद्ध प्रतिक्रियाएं स्थापित करना एक जटिल काम है। सम्बद्धीकरण[8] का सबसे सुन्दर प्रदर्शन या तो अनैच्छिक प्रतिक्रियाओं[9] में हो सकता है या छोटे बच्चोंमें।

(ग) «साधनात्मक सम्बद्ध प्रतिक्रियाएं[10]» किसी संकेतके प्रति सीखी हुई प्रतिक्रियाएं[11] होती हैं, जो द्वितीय उत्तेजना या पुष्टीकरणको उत्पन्न करनेमें साधन[12] का काम देती हैं।

५. «सीखनेका सिद्धान्त» उन महत्त्वपूर्ण तत्त्वोंका एकीकरण करता है जो सीखने[13] की प्रक्रिया और उसकी मात्राको निश्चित करते हैं।

(क) सीखनेके लिए, उत्तेजनाके रूपों और किसी भी क्रिया के परिणामोंका «निरीक्षण करना» बहुत आवश्यक है। इसी प्रकार अवधान[14] और निरीक्षण[15] के सहायक कोई भी तत्त्व सीखने[13] में भी सहायक होंगे।

(ख) सीखनेके लिए अवसर प्रदान करनेके निमित्त «उत्तेजनाके नमूनों[16]» को अवश्य उपस्थित रहना चाहिए। नमूनों[17] में दो या अधिक उत्तेजनाएं सम्मिलित हो सकती हैं, जिनमें सामयिक सम्बन्ध[18]—(समसामयिकता) और देशीय सम्बन्ध (निकटता) होता है अथवा जो एक-दूसरे के समान होती हैं।

(ग) किसी क्रियाका «अभ्यास और पुनरावृत्ति[19]» पुष्टीकरण[20] के साथ मिलकर सीखनेकी क्रियाको शक्तिशाली बनाते हैं।

(घ) अधिकतर, शीघ्रतासे सीखनेके लिए «पुनरावृत्तियोंके बीचका समय[21]» न तो बहुत लम्बा होना चाहिए और न बहुत छोटा।

(ङ) «पुष्टीकरण[13]» एक चुनावकारी तत्त्व[22] है, जो यह निश्चित करता है कि व्यक्तिकी कौन-सी क्रियाएं सीखी जायेंगी। किसी सीखे हुए कार्यका पुष्टीकरण न होनेसे उस कार्यका विनाश या लोप हो जाता है।

(च) सीखनेके लिए «प्रेरणा[23]» दो कारणोंसे आवश्यक है:

१. अनुसन्धान करने[24], प्रहस्तन करने[25] और सम्बन्धित प्रेरकों[26] के कारण पशु सीखनेकी परिस्थितिमें किसी न किसी प्रकारका कार्य करनेमें प्रवृत्त हो जाता है।

२. पुष्टीकरण प्रेरणा पर निर्भर करता है।

---

[1] reinforcements [2] delayed conditioned responses [3] non-reinforcement [4] generalization [5] selective conditioning [6] discrimination [7] sophisticated attitudes [8] conditioning [9] involuntary reactions [10] instrumental conditioned responses [11] learned reactions [12] instrument [13] learning [14] attention [15] observation [16] stimulus patterns [17] patterns [18] temporal relations [19] exercise and repetition [20] reinforcement [21] spacing of the repetitions [22] selective factor [23] motivation [24] exploring [25] manipulating [26] related motives

१७

स्मृति

जब कवि स्मृति[1] के आनन्द—या कभी-कभी उसके आतंक—के गीत गाता है, तब वह हमारे सामने एक मानवीय योग्यता का वर्णन कर रहा होता है, जो सचमुच अद्भुत होती है। कुछ अंशोंमें, हालांकि पूरी तरह तो कभी भी नहीं, हम अपने पिछले अनुभवोंको पुनर्जीवित करते हैं, उन स्थितियोंमें एक बार पुनः अपनेको पाते हैं, उनका आनन्द लेते हैं—या उन की याद करके कांप उठते हैं—; और यह सब एक सैकेंड या उसके सौवें हिस्सेमें ही हो जाता है। प्रारम्भिक वर्षोंके मित्र पूर्णतया भुला नहीं दिये जाते, क्योंकि वे स्मृतिमें 'वापस लौट आते हैं'; और जब पुराने मित्र वास्तवमें फिर से मिल जाते हैं, तब उनसे बात-चीत करने पर वे पुराने दिन निश्चय ही 'लौट आते हैं'।

जीवनके व्यावहारिक मामलों और अवकाशके क्षणोंमें भी स्मृतिसे बड़ी सहायता मिलती है। सभी तरहके कार्योंमें, विशेषकर बौद्धिक कार्योंमें अच्छी स्मृति पर इतना अधिक निर्भर करता है कि कई लोग जो अपनी हीन स्मृति[2] से परेशान हो उठते हैं, किसी न किसी प्रकारका स्मृति-प्रशिक्षण लेते हैं, ताकि वे अपनी स्मृतिमें कुछ उन्नति कर सकें। किन्तु यहां पर वैज्ञानिक अध्ययन बहुत व्यावहारिक महत्त्वका प्रमाणित होता है; स्मृतिमें उन्नति करनेकी सर्वोत्तम विधि यह है कि स्मृतिके तथ्यों और नियमोंके विषयमें जानकारी प्राप्तकी जाये। इन नियमोंको खोजना—और उनको संगठित करके स्मृतिके विशद सिद्धान्तके रूपमें प्रस्तुत करना—मनोविज्ञान की एक बड़ी समस्या है जिस पर आधुनिक कालमें अभी आंशिक रूपसे ही कार्य किया गया है।

पहिले जो कुछ सीखा गया है, उसे याद करना स्मृतिके अन्तर्गत आता है। फिर भी, यह कहना ज़्यादा ठीक होगा कि «सीखना[3]», सीखे हुए को «धारण करना[4]» और «याद करना[5]»—यह सब कुछ स्मृतिके अन्तर्गत आ जाता है। उदाहरणके लिए, जब आप वास्तवमें किसी व्यक्तिका नाम याद करते हैं, तब आप ये दोनों बातें प्रदर्शित करते हैं कि आपने पहिले किसी समय उस नामको सीखा था, और बीच की अवधमें उसे धारण किये रखा, हालांकि उन दिनों एक बार भी आपने इस नामके विषयमें नहीं सोचा। धारणा[6] निष्क्रिय होती है और याद करना[7] सक्रिय होता है। ये दोनों ही स्मृतिके सामान्य शीर्षक के अन्तर्गत आ जाते हैं। याद करनेके कई अलग-अलग तरीक़े हैं, जिनमें से दो प्रमुख तरीक़े ये हैं: «प्रत्याह्वान करना[9]» और «पहचानना या प्रत्यभिज्ञा[8]»। जब आप किसी व्यक्तिके नामका प्रत्याह्वान[9] करते हैं, तब या तो आप जोरसे उसे कहते हैं या स्वगत रूपमें कहते हैं। किन्तु यह सम्भव है कि आप उस व्यक्तिके नामका प्रत्याह्वान न कर सकें और फिर भी यह अनुभव करें कि उस नामको मैं पूर्णतया नहीं भूला हूँ। कोई सुझाता है–'*क्या वह मोहन था?*' नहीं। 'क्या वह राम था?' 'नहीं'। 'क्या वह श्याम था?' हां, वह श्याम ही था, तुमने ठीक याद दिलाया। इस प्रकार आप जिस नामका प्रत्याह्वान नहीं कर सके थे, उसे आप पहचानते हैं। अतएव स्मृतिके सामान्य शीर्षकके अन्तर्गत हमारे पास तीन प्रमुख विषय हैं: सीखना, धारणा, याद करना।

यद्यपि सीखनेके विषय पर गत प्रकरणमें काफ़ी विस्तारसे विचार किया जा चुका है, तथापि मनुष्य द्वारा सीखने और 'कंठस्थ करने[10]' के सम्बन्धमें कई अन्य ऐसे प्रयोग किये गये हैं, जो हमारी ज्ञानवृद्धि करेंगे; इसके अतिरिक्त धारणा, प्रत्याह्वान और पहचान (प्रत्यभिज्ञा) पर भी कई शिक्षाप्रद प्रयोग किये जा चुके हैं। किसी भी स्मृति-प्रयोग की साधारण योजना का यह स्वरूप होता है:

सी—म—या

इसमें सीखनेके लिए 'सी' अक्षर प्रयुक्त हुआ है, याद करने[5] के लिए 'या' अक्षर और सीखने तथा याद करनेके मध्यान्तर[11] के लिए 'म' अक्षर व्यवहृत हुआ है। मध्यान्तरसे तात्पर्य है उस समयावधि से, जिसमें सीखी हुई चीज़ धारण की जाती है। यह प्रयोग ठीक किस विधिसे किया जायेगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि किस विशिष्ट प्रश्नका उत्तर देना है। यदि हम शीघ्रता से सीखनेकी अनुकूल दशाओंकी तलाश कर रहे हैं, तो 'सी' के अन्तर्गत दशाओंको बदल देते हैं और 'म' मध्यान्तरको अल्पकालिक रखते हैं तथा सीखनेकी परीक्षा के रूपमें 'या' को स्थिर रखते हैं। किन्तु यदि हम धारणा[6]

[1] memory [2] poor memory [3] learning [4] retaining [5] remembering [6] retention [7] recalling [8] recognizing [9] recall [10] memorizing [11] interval

के नियमोंको खोजनेकी चेष्टा कर रहे हैं, तो मध्यान्तर 'म' की लम्बाई बढ़ा देते हैं, या इस मध्यान्तरमें 'व्य' (व्यक्ति) का कार्य बदल देते हैं, जब कि धारणा की कसौटी के रूपमें 'या' को फिर भी स्थिर[1] ही रखते हैं। यदि हम प्रत्याह्वान[2] और प्रत्यभिज्ञा[3] में दिलचस्पी रखते हैं, तो हम 'या' परीक्षा की दशाओंको बदल देते हैं और 'सी' तथा 'म' को स्थिर रखते हैं। सब तरहके संयोग सम्भव हैं, इसीलिए *स्मृति-प्रयोगों के इतने अलग-अलग नमूने हैं, जिन्हें देखकर* आश्चर्य-चकित होना पड़ता है। हम उन सबकी झांकी कराने का प्रयत्न नहीं करेंगे।

कंठस्थ करना[4]

कंठस्थ करनेके एक प्रमुख प्रयोगमें 'व्य' का काम रहता है किसी 'पाठ' को अच्छी तरह सीखना, ताकि बादमें उसके आधार पर किसी स्मृति-परीक्षा में वह उत्तीर्ण हो सके। पाठ कम से कम आंशिक रूपसे नया और अपरिचित होना चाहिए, ताकि उसे सीखनेके लिए कुछ मसाला मिल सके। पूर्णतया अपरिचित सामग्रीका मिलना तो मुश्किल ही होता है, किन्तु अपेक्षाकृत निरर्थक सामग्रीका, जैसे निरर्थक शब्दों, निरर्थक रेखाकृतियों और शब्दों या संख्याओंकी मनमानी सूचियोंका बहुत इस्तेमाल किया जाता है। यदि पाठ इतना लम्बा हो कि उसके लिए कुछ अध्ययनकी आवश्यकता हो, तो सार्थक *सामग्रीका उपयोग किया जासकता है। पाठको काफ़ी कठिन* होना चहिए, ताकि 'व्य' स्मृति-परीक्षा में कुछ भूलें कर सके —अन्यथा पाठ को कंठस्थ करनेके काममें वह किस मात्रा तक सफल हुआ, इसको बतानेका कोई मार्ग हमारे सामने नहीं रह जायेगा (पृ० २५१)। इसलिए परीक्षार्थीका उद्देश्य है: सीखना और याद करना; प्रयोगकर्ताका उद्देश्य है यह खोजना कि क्या चीज सीखी जाती है और कैसे सीखी जाती है, तथा सीखने तथा याद करनेके लिए कौन-सी दशाएं अनुकूल हैं।

तात्कालिक स्मृतिका विस्तार[5]. एक प्रयासमें कोई भी व्यक्ति कितनी बातें इतनी अच्छी तरह ग्रहण कर सकता है कि उनका पूर्णतया प्रत्याह्वान कर सके (निरीक्षण के प्रकरण में उल्लिखित 'ग्रहण-विस्तार[6]' पृ० २५१ की इससे तुलना कीजिए)? उसे इन्हें देर तक धारण करनेकी आवश्यकता नहीं है, मध्यान्तर 'म' घटाकर न्यूनतम कर दिया जाता है। एक सबसे सरल स्मृति-परीक्षा यह है कि 'व्य' के सामने अंकों की संख्याएं पेश की जायें और देखा जाये कि एक ही बार दिखाने पर 'व्य' कितनी लम्बी संख्या को फिर दोहरा सकता है। उत्तरोत्तर लम्बी संख्याएं यहां दी जा रही हैं:

७०४६१
६२७३५८
४०१६३७२
२४६७१३०६
१७६०२८३६५
६३८१४७०२५६
८५०७६१५३६२४

लम्बाईकी कई संख्याएं दी जानी चाहिएं, क्योंकि 'व्य' में कुछ अन्तर हो सकता है। किसी एक व्यक्तिको तीन, चार, या पांच अंकोंकी छोटी संख्याओंके साथ कोई कठिनाई नहीं पड़ेगी, और वह हर बार छै और सात अंकों और साधारणतः आठ अंकोंकी संख्यामें भी मजेमें सफल हो सकता है, किन्तु इससे लम्बी संख्याओंमें वह शायद ही सफल होता है। उस दशा में 'अंकों[7]' के लिए उसकी तात्कालिक स्मृतिका विस्तार[8] लगभग आठ होगा, जो कि कॉलेजके किसी छात्रकी औसत के आस-पास होगा। चारसे छै वर्षकी आयुवाले बच्चोंका स्मृति-विस्तार लगभग चार अंक[9] होता है, और अठारह वर्ष की आयु तक औसतमें धीरे-धीरे वृद्धि होती रहती है। यह अभ्यासके कारण भी बढ़ सकता है। तात्कालिक स्मृतिके विस्तारमें जो व्यक्तिगत भिन्नताएं पायी जाती हैं, वे सामान्य बुद्धिमें पायी जानेवाली व्यक्तिगत भिन्नताओंसे सम्बन्धित होती हैं। प्रायः अधिकांश बुद्धि-परीक्षाओं में अंक-विस्तार[8] *की परीक्षा सम्मिलित की जाती है। उल्टे क्रम[9] से अंकों[7] को* दोहरानेका काम इससे अधिक कठिन है।

लम्बे पाठोंको कंठस्थ करना. यदि कंठस्थ की जानेवाली संख्या स्मृति-विस्तार[10] से बढ़ जाती है, तो इसका प्रपाठ[11], करनेके पूर्व इसे कई बार पढ़ना आवश्यक हो जाता है। निस्सन्देह!—लेकिन यह बात वास्तवमें विचित्र है। मान लीजिये, आपकी स्मृतिका विस्तार आठ अंक[7] है; तो दूसरे आठ अंकोंको पढ़ते समय आप पिछले आठ अंकोंको धारण *क्यों नहीं कर सकेंगे और फिर एक बार ही पढ़नेके बाद सम्पूर्ण* सोलह अंकोंका क्यों नहीं प्रपाठ कर सकेंगे? इसका कारण यह है कि संख्या के हिस्सोंमें एक तरहकी परस्पर बाधा होती है। जब आप दूसरे अंकों[7] के विस्तारको ग्रहण करने लगते हैं, तब पहिले अंकोंके विस्तार पर से आपकी पकड़ ढीली पड़ने लगती है। यहां पर हमें कंठस्थ करनेके सम्बन्धमें एक महत्त्व-पूर्ण प्रारम्भिक तथ्यका पता चलता है।

यदि आप अंकोंकी लम्बी संख्या पर बार-बार नज़र डालें तो *दूसरा प्रारम्भिक तथ्य भी प्रकाशमें आ जायेगा। यद्यपि*

[1] constant [2] recall [3] recognition [4] memorizing [5] the immediate memory span [6] span of apprehension [7] digits [8] digit span [9] in backward order [10] memory span [11] recitation

प्रारम्भमें इतनी लम्बी संख्याका प्रपाठ करना आपकी शक्ति से बाहरकी चीज मालूम पड़ती है, तो भी «पुनरावृत्ति[१]» के कारण यह क्रमशः परिचित होती जाती है और अन्ततः आप बिना भूल किये उसका प्रपाठ कर सकते हैं। संख्याकी लम्बाई जैसे-जैसे बढ़ती जाती है, उसको कंठस्थ करनेके लिए आवश्यक पुनरावृत्तियोंकी संख्या उतनी ही अधिक होती जाती है।

फिर भी केवल पुनरावृत्तिसे समझ-बूझ कर कंठस्थ करने की प्रक्रियाका पूरा वर्णन नहीं होता। सीखनेवाला बड़ा सतर्क रहता है। मान लीजिये, उसे बीस अंकों[२] वाली एक संख्याको कंठस्थ करना है। जब वह उस लम्बी संख्यासे गुजर

२६०१३६४२८१९५२६८६०१२७

रहा होता है और उसमें अपनी कहीं थाह लगती नहीं पाता, तब वह किसी भी चीजको सहायताके लिए पकड़ लेता है। वह केवल अंकोंको उनके क्रमिक रूपमें नहीं देखता, बल्कि ऐसे «समूहों[३]» की तलाश करता है जो एक साथ स्मृतिमें अटके रह सकते हैं। कोई भी परिचित समूह, जैसे १९५२ का अनुक्रम[४], दिखायी दे जाने पर, वह खुशीसे उछल पड़ता है। यदि उसे कोई विशेष सरल स्थान नहीं भी दिखायी देता, तो वह कमसे कम संख्यामें कुछ अंकों और समूहोंके «स्थानों[५]» को चिह्नित कर लेता है और संख्याके विभिन्न भागोंको एक-सूत्रमें बांधनेवाली समानताओं[६] तथा अन्य सम्बन्धोंको भी ध्यानमें ले लेता है।

भूल भुलैयाको सीखनेमें जो 'सूत्र' काम आया था, अर्थात् एक ढांचेमें भागोंको ठीक-ठीक बैठा देना, उसका अनुसरण कंठस्थ करनेकी इस प्रक्रियामें भी अच्छी तरह होता है (पृ० ३०३)। किसी संख्याको कंठस्थ करनेमें, सीखनेवाला पहिले उसकी लम्बाई और रचनाके बारेमें अपने मनमें एक सामान्य ढांचा बना लेता है और इसके पश्चात् वह संख्याके हिस्सोंको खोजकर इस ढांचेमें यथा स्थान बैठाने लगता है। संख्याके आदि और अन्तके भाग, जहां स्थान-निर्धारण करना सरल होता है, साधारणतः सबसे पहिले सीखे जाते हैं, किन्तु शीघ्र ही संख्याके मध्यमें भी कुछ चिह्न खोज लिये जाते हैं। जिन भागों पर वह अच्छी तरह अधिकार कर चुकता है, वे बढ़ते हैं और अन्तको सब संयुक्त हो जाते हैं। निरर्थक शब्दोंकी सूची, जैसे:

रक पन जट बिप सग रोन टज लुब मेर यद

साधारणतः समूहीकरणके द्वारा, समानताओं और असमानताओंके निरीक्षणके द्वारा और अकेले शब्दों या उनके संयोगों का अर्थ निकालनेकी चेष्टाके द्वारा सीखे जाते हैं। बहुधा परीक्षार्थी सूचीको कई जोड़ों[७] में विभाजित कर लेता है, हर जोड़ेके प्रथम शब्दके अक्षरों पर दबाव डालकर[८] उच्चारण करता है; वह देखता है कि इस प्रकार जो «लय[९]» उत्पन्न होती है, उससे कंठस्थ करनेमें सहायता मिलती है। सीखने वाला ऐसे ही कई साधनोंकी तलाश करता है। कुछ साधन औरोंसे अच्छे साबित होते हैं, लेकिन उन सबसे एक ही बात प्रकट होती है कि सीखनेवाला सक्रियताके साथ ऐसे संयोगों[१०] की खोज कर रहा है, जो परिचित, सार्थक या किसी भी तरह किसी विशेषता वाले हों और सभी भागोंको एक साथ संयुक्त करने तथा सूचीको एक गड़बड़झालेके बजाय सुसंश्लिष्ट तथा सुव्यक्त नमूने[११] का रूप देनेमें समर्थ हों।

कंठस्थ करमें मितव्यय

छात्रों और अन्य लोगोंके लिए, कंठस्थ करना—कमसे कम सारांशको ही—समय खर्च करानेवाला काम है, किन्तु सौभाग्यसे यह काम ऐसा भी है, जिसे इस प्रकार व्यवस्थित किया जा सकता है, जिससे समय और प्रयत्न, दोनोंका मितव्यय हो। वर्तमान दशाओंको इस तरह व्यवस्थित किया जा सकता है कि वे कुशलतापूर्वक सीखनेके कार्यमें सहायक हों। इस सम्बन्धमें एक स्पष्ट नियम यह है कि ध्यान बँटानेवाली बातों[१२] को दूर रखा जाय। अन्य नियमों और निर्देशोंका भी प्रयोगशालामें निर्माण किया गया है।

कंठस्थ करते समय अपने कार्य को पहचानना. सीखनेवाले व्यक्तिकी स्मृतिकी जो परीक्षा आगे चलकर ली जाने वाली है, उसके अनुसार ही यह निश्चित होता है कि वह समस्याको हल करनेका कौनसा तरीका अपनायेगा। मान लीजिए कि एक प्रयोग 'युगल-सहचर[१३]' पद्धतिसे किया जाता है। परीक्षार्थीको शब्दोंके जोड़ोंकी एक सूची दी जाती है, जैसे—

स्वर . . . . . चिह्न
घास . . . . . लघु
बन्दर . . . . . अदरक
जमुना. . . . . डेगची
देवदार. . . . . कप्तान
दया . . . . . रंग
पहाड़ी . . . . . आन्तरिक
उदाहार . . . . फ़ीता
वर्णन . . . . . बिजली
कदाचित् . . . . बन्दरगाह

[१] repetition [२] digits [३] roups [४] sequence [५] locations [६] similarities [७] pairs [८] accents [९] ythm [१०] combinations [११] pattern [१२] distractions [१३] paired associates

न्यायालय . . . . गरुड़
तेज . . . . . कब्जा
ऐंठना . . . . . शगल
गुब्बारा . . . . गुणा
नेकटाई . . . . असम्भव
कोमल . . . . पश्चिम
आज्ञा . . . . . इंच

टूटा . . . . . स्वाद
मंत्रमुग्ध . . . . क्षोभ
मरुस्थल . . . . आशा

जब हर जोड़ेका पहिला शब्द बतलाया जाय, तब परीक्षार्थी को उसी जोड़ेका दूसरा शब्द बतलाना सीखना है। जिस ढंग से वह इस पाठको सीखता है, वह यह है कि वह प्रत्येक जोड़ेको
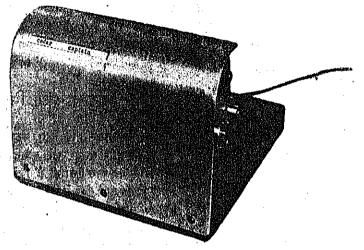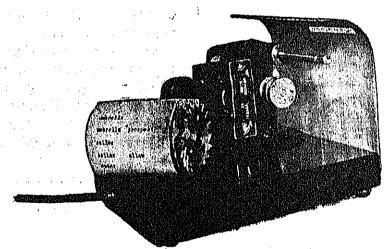
आकृति १३२. एक स्मृति-ढोल। ऊपरके चित्रमें यंत्रका वह हिस्सा दिखाया गया है जो परीक्षार्थीके सामने रहता है; नीचेके चित्रमें यंत्रकी कुछ छिपी हुई मशीनरी दिखायी देती है। कंठस्थ किये जानेवाले शब्दोंको जिस बेलन पर लिखा गया, उसे हल्की उछालके साथ घुमाया जाता है और इस प्रकार परीक्षार्थीको कुछ अवकाश (जैसे २सैकेंड का) मिल जाता है, जिसमें वह आगे आनेवाले शब्दकी पहिलेसे ही आशा करने लगता है। जब वह सभी शब्दोंको पहिलेसे ही बताने लगता है, तब समझा जाता है कि उसने सूचीको सीख लिया या कंठस्थ कर लिया है।

एक इकाईके रूपमें लेता है और उसमें किसी ऐसी चीज़की तलाश करता है, जो उसे एक साथ बांधती हो—वह चीज़ केवल दोनों शब्दोंकी लय हो सकती है या अर्थका कोई सम्बन्ध हो सकता है। कुछ बार पढ़ने पर अधिकांश जोड़े स्मृतिमें स्थिर हो जाते हैं।

किन्तु मान लीजिए, प्रयोगकर्ता यह पूछ कर परीक्षार्थीको आश्चर्यमें डाल दे कि शब्दोंके जोड़ोंको क्रमसे ज़बानी सुना जाइये। परीक्षार्थी एसा करनेमें पूर्णतया असफल रहता है और विरोध करता है कि परीक्षामें अन्याय हो रहा है, क्योंकि उसने केवल जोड़ों पर ही ध्यान दिया था, उनके क्रम पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया था। यदि उसने यह आशा की होती कि उसे सम्पूर्ण सूचीका प्रपाठ[१] करना होगा, तो उसने हर अलग जोड़ेमें शब्दोंके संयोग[२] पर ही ध्यान देनेके बजाय सूचीमें आदिसे अन्त तक शब्दोंके अनुक्रम[३] पर भी ध्यान दिया होता। साहचर्यों[४] को स्थापित करनेमें, ध्यान दिये बिना (एक तरहका पुष्टीकरण[५]) केवल पुनरावृत्ति[६] से काम नहीं चल सकता।

शब्दोंके जोड़ोंकी सूचीसे भी कहीं अधिक कठिन एक और स्मृति-कार्य है जिसे युद्ध-कालमें कई हजार नौजवान सैनिकों और नाविकोंने सीखा था। यह काम था रेडियो या 'ब्रिकर' के द्वारा संवाद-प्रेषणमें उपयोग करनेके लिए तार भेजनेकी सांकेतिक भाषा[७] के संकेतोंको सीखना। (देखिए आकृति १३३)। गिनतीके १० अंकों[८] के संकेतोंके अलावा यहां हमें २६ जोड़े वर्णमालाके संकेत (अंग्रेज़ीके हिसाबसे) सीखने पड़ते हैं। ३६ शब्दोंके जोड़ों पर अधिकार करनेके लिए आधे घंटेका समय पर्याप्त होगा, किन्तु अत्यधिक प्रेरणाप्राप्त[९] (किसी प्रेरकके कारण सीखनेके लिए अत्यन्त उत्सुक) कॉलेजीय छात्रों को भी ३६ तार-संकेतोंको सामान्य रूपसे सीखनेमें औसतन् ८ घंटे या इससे भी कुछ अधिक समयकी जरूरत हुई। सांकेतिक भाषामें भेजे गये सन्देशोंको सन्तोष-जनक गतिसे वे ग्रहण कर लें, इसके लिए और भी कई घंटोंकी आवश्यकता हुई। संकेतों का सम्बन्ध अक्षरोंसे जोड़नेमें उतनी कठिनाई नहीं पड़ती, जितनी कठिनाई स्वयं संकेतोंको स्पष्ट और असन्दिग्ध रूपमें प्राप्त करनेमें पड़ती है, ताकि हर संकेतको पहचाना जा सके और शेष संकेतोंसे उसमें अन्तर किया जा सके। तात्पर्य यह है कि सीखनेवाले व्यक्ति[१०] की एक बड़ी समस्या है 'भिन्नीकरण[११]' की (पृ० ३१८)। उदाहरण-स्वरूप काग़ज़ पर C और Y के संकेत बिल्कुल भिन्न जान पड़ते हैं, किन्तु जब उनका उच्चारण शीघ्रतासे किया जाता है, तो बहुधा उनमें भ्रम हो जाता है। यही बात K और R के, H और S के और अन्य अक्षरोंके संकेतोंके साथ भी कुछ मात्रामें सच साबित होती है। कुछ ऐसी ग़लतियां कर चुकनेके बाद सीखनेवाला व्यक्ति प्रत्येक संकेतके अपने प्रत्यक्षीकरण[१२] को स्पष्ट करने के लिए गम्भीरतापूर्वक कार्य करनेमें जुट पड़ता है। किसी संकेतको प्राप्त करने पर वह पहिले उसे 'प्रतिध्वनित' करने की या किसी तरह उसके नमूने[१३] का अनुकरण करनेकी चेष्टा करता है और बादमें उसे कोई नाम अर्थात् किसी अक्षरकी संज्ञा देता है। नमूने पर इस प्रकार ज़ोर देना एक तरह का पुष्टीकरण है (१५)।

A	●—	N	—●
B	—●●●	O	———
C	—●—●	P	●——●
D	—●●	Q	——●—
E	●	R	●—●
F	●●—●	S	●●●
G	——●	T	—
H	●●●●	U	●●—
I	●●	V	●●●—
J	●———	W	●——
K	—●—	X	—●●—
L	●—●●	Y	—●——
M	——	Z	——●●

आकृति १३३. अंग्रेज़ी वर्णमालाके लिए अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त मोर्स सकेत लिपि। रेडिओसे प्रेषित होने पर डौट और डैश लघु स्वरवाले और सभी एक ही तीव्रताके होते हैं। डैशमें ⅙ सैकंड और डौट उसका भी एक तिहाई समय लेता है। निर्देशक हर अक्षरका नाम बतानेके पहिले नौसिखुए को प्रत्येक अक्षरके बाद ३ सैकंडोंका मौका देता है, ताकि वह इस अवधिमें संकेतको पहचान ले और उसकी 'नक़ल' कर डाले। बादमें, जब सीखने वाला इस योग्य हो जाता है कि प्रति मिनट ५०, ७५, १०० और अधिक अक्षर ग्रहण कर सके, तब यह विराम हटा दिया जाता है (और अक्षरके नाम की घोषणा भी बन्द कर दी जाती है)।

निरीक्षणके द्वारा सीखना. किसी भी प्रकारके पाठको कंठस्थ करनेके लिए सीखनेवालेमें 'सीखनेका संकल्प' होता है। वह सीखनेके लिए प्रयत्न करता है। वह अपने प्रयत्नों को किस तरह शुरू करे? प्रारम्भमें वह पाठको बार-बार दोहराने पर ही निर्भर रह सकता है, किन्तु उसे सीखनेकी यह रटन-विधि[१४] बहुत धीमी और अकुशल जान पड़ती है। इसलिए वह किसी तरहके पुष्टीकरणको अपनानेके लिए बाध्य होता है, जिसका मतलब होता है निरीक्षणके द्वारा

[१] recitation [२] combination [३] sequence [४] associations [५] reinforcement [६] repetition [७] code [८] digits [९] highly motivated [१०] learner [११] differentiation [१२] perception [१३] pattern [१४] rote earning

सीखना[1]। वह पाठकी स्मरणीय विशेषताओंको खोजने और उन पर जोर देनेकी चेष्टा करता है। किसी संख्याको कंठस्थ करनेके लिए वह अंकोंकी स्थितियों[2] और अनुक्रमों[3] का निरीक्षण करता है। शब्दोंके जोड़ों[4] को कंठस्थ करनेके लिए वह प्रत्येक जोड़को एक इकाईके रूपमें लेकर उसकी कुछ विशेषताओंको ग़ौरसे देखता है। तारकी सांकेतिक भाषा[5] को कंठस्थ करनेके लिए, वह प्रत्येक संकेतके सही-सही नमूने को देखनेकी चेष्टा करता है और हर नमूनेको उसके अक्षरसे सम्बन्धित करता है। किसी चेहरेको स्मृतिमें बठा लेनेके लिए, ताकि उसे पहचान सके, वह चेहरेकी निजी विशेषता को ध्यानपूर्वक देखता है।

किसी कविता, व्याख्यान या किसी भी सार्थक गद्यांशको कंठाग्र करनेके लिए प्रमुख चीज है उसके अर्थका निरीक्षण करना। यदि पाठांश कठिन है, तो उसको कंठस्थ करनेकी दिशामें पहला क़दम होता है उसके अर्थको खोज निकालना। कोई भी व्यक्ति, जो किसी सार्थक सामग्रीको केवल रटनेके द्वारा कंठस्थ करनेका प्रयत्न करता है, निश्चय ही 'कठिन मार्गको सीख रहा होता है', क्योंकि प्रयोगसे पता चलता है कि असम्बद्ध शब्दोंकी एक सूचीको याद करनेमें जितना समय लगता है, उससे बहुत कम समय उतनी ही शब्द-संख्याके एक सार्थक पाठांशको कंठस्थ करनेमें लगता है। यदि पाठांशका अन्तत: एक-एक शब्द करके प्रपाठ[6] करना हो, तो भी शब्दों को एक संग मिलाये रखनेवाला सबसे अच्छा ढांचा होता है पाठांशका भावार्थ[7]। भावको कंठस्थ करनेके लिए आवश्यक है कि पहिले भावको समझा जाय। यदि पहिली बार पढ़नेमें ही पाठका मुख्य भाव समझमें आ गया, तो वह मुख्य भाव पहिले ही सीखा जा चुकता है, हालांकि सभी गौण विचारों को ढांचेमें यथास्थान रखनेके लिए पाठांशको कई बार पढ़ना आवश्यक होगा।

कंठस्थ करनेमें प्रपाठ[8] का महत्त्व. यहां प्रपाठका अर्थ है

कंठस्थ करनेमें प्रपाठ का महत्त्व

अध्ययन की हुई सामग्री		१६ निरर्थक शब्द[9]		५ छोटी जीवनियां, जिनकी कुल शब्द-संख्या १७० थी	
सीखनेमें लगे हुए समयका वितरण		याद करनेका प्रतिशत		याद करनेका प्रतिशत	
		तत्काल	४ घंटोंके बाद	तत्काल	४ घंटोंके बाद
सारा समय पढ़नेमें लगाया	...	३५	१५	३५	१६
१/५ समय प्रपाठमें लगाया	...	५०	२६	३७	१९
२/५ समय प्रपाठमें लगाया	...	५४	२८	४१	२५
३/५ समय प्रपाठमें लगाया	...	५७	३७	४२	२६
४/५ समय प्रपाठमें लगाया	...	७४	४८	४२	२६

सभी मामलोंमें अध्ययनमें ९ मिनट समय लगाया गया, और जैसा कि हर पंक्ति की बायीं ओर लिखा हुआ है, यह समय पढ़ने और प्रपाठके मध्य विभिन्न अनुपातोंमें विभाजित कर दिया गया था। संख्याओंके पहिले स्तम्भको पढ़ने पर हम पाते हैं कि जब निरर्थक शब्दों[9] का अध्ययन किया गया और परीक्षा अध्ययन-काल समाप्त होने के तत्काल बादमें ली गयी, तब वे ३५ प्रतिशत याद हो सके थे। यह हालत तब थी, जब अध्ययनका सारा समय पढ़नेमें व्यतीत किया गया था। जब अध्ययनके समयका १/५ भाग प्रपाठमें व्यतीत किया गया, तब ५० प्रतिशत याद किया जा सका, इत्यादि। दूसरा स्तम्भ[10] अध्ययन-काल समाप्त होनेके ४ घंटे बाद याद रहने वाले प्रतिशतोंको सूचित करता है। इस प्रयोगमें, हर परीक्षार्थीके सामने काग़जका एक पन्ना होता था, जिसमें अध्ययन किया जाने वाला पाठ लिखा होता था। वह उसे उस समय तक पढ़ता ही रहता था, जब तक उसे प्रपाठ शुरू करनेके लिए संकेत नहीं मिलता था। संकेत पाते ही वह अपने-आपको वह पाठ सुनाने लगता था। जब-जब आवश्यकता होती थी, वह काग़जको देख लेता था और इसी प्रकार अध्ययनकालके अन्त तक करता रहता था। इस खास परीक्षामें परीक्षार्थी आठवीं कक्षाके बालक थे; किन्तु वयस्क परीक्षार्थियोंने भी ऐसे ही सामान्य परिणाम प्रकट किये (९)।

[1] learning by observation [2] positions [3] sequences [4] pairs [5] telegraphic code [6] recite [7] sense [8] recitation [9] nonsense syllables [10] column

अपने मनमें प्रपाठ करना। जब सीखन वाला व्यक्ति पाठको एक या दो बार पढ़ चुके, तब उसे उसका प्रपाठ करनेके लिए छोड़ दीजिए; जहां वह अटकेगा, वहां स्वयं ही अपनेको 'प्रोत्साहित' कर लेगा। प्रश्न है कि अध्ययनकी इस सक्रिय विधिसे क्या समयकी बचत होती है और क्या यह पाठको काफ़ी समयके लिए स्मृतिमें स्थिर कर देती है? इस प्रश्नकी पूरी तरह छान-बीन की गई है और उत्तर असन्दिग्ध रूपसे प्रपाठ[1] के पक्ष में है। एक प्रयोगके परिणामोंका सारांश पिछले पृष्ठ पर दी हुई तालिकामें दिया गया है।

तालिकासे दो तथ्य सामने आते हैं: (क) स्तम्भोंको पढ़ते समय हम पाते हैं कि प्रपाठसे सदा लाभ ही हुआ है; (ख) अध्ययनके चार घंटों बाद ली गयी परीक्षाके साथ-साथ अध्ययनके तुरन्त बाद ली गयी परीक्षामें भी यह लाभ उपस्थित था। प्रपाठ स्थायी स्मृतिका सहायक है।

प्रपाठसे क्या लाभ है? एक बात तो है कि एक ही पाठको लगातार बार-बार पढ़नेकी अपेक्षा यह अधिक प्रोत्साहक[2] है। एक ही पाठको बार-बार लगातार पढ़ते रहनेसे जल्दी ही उसकी सार्थकता नष्ट हो जाती है और उससे पाठांशके भावार्थको सीखनेमें बहुत थोड़ी मदद मिलती है, प्रत्येक प्रपाठ[1] से आपको पता चल जाता है कि आप पहिलेसे ही क्या जानते हैं और किस चीज पर अब भी निकट ध्यान देने की आवश्यकता है। इससे आप निरीक्षण करनेमें अधिक समर्थ हो जाते हैं।

लगातार पुनःपठन[3] से तुरन्त सफलता या असफलताका पुष्टीकरण[4] नहीं मिलता। प्रपाठ इस खलमें पहिले ही पुरस्कार और दण्डका इस्तेमाल करने लगता है।

यदि प्रपाठ बहुत जल्दी शुरू कर दिया जाय तो वह समय का अपव्यय होता है। पहिले पाठ्य-सामग्रीका अनुसन्धान यह जाननेके लिए करना चाहिए कि इसमें क्या बात कही गयी है। इसके बाद प्रपाठकी एक चेष्टा कर देखिए। आप जिस प्रकार किसी यांत्रिक पहेली[5] को, उसका अच्छी तरह निरीक्षण करते हुए प्रहस्तन करके सीख जाते हैं, उसी प्रकार प्रपाठ करने पर आपको पाठ्य-सामग्रीके विषयमें अधिक जानकारी होगी।

जब किसी पाठांशके ठीक-ठीक शब्दोंको सीखनेके बजाय केवल उसका भावार्थ सीखना होता है, तब प्रपाठकी एक विधि विशेषतः महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है। वह विधि यह है कि पहिली बार पढ़नेके बाद विचारकी एक बाह्य रूपरेखा तैयार कर ली जाय और दूसरी बार पढ़ने पर उसमें विस्तार की बातें यथास्थान जड़ दी जायें।

समयावधिकी समस्याएं[6]. 'धीरे-धीरे जल्दी करो' के पुराने नियमका अनुसरण यदि चरम रूपमें न किया जाय, तो स्मृति-सम्बन्धी कार्योंमें यह उपादेय सिद्ध होता है। यदि आप किसी टेलीफ़ोन संख्या जैसे 'अमीनाबाद-२७११' को कंठाग्र करना चाहते हैं, जिसका प्रपाठ आप एक बारके पढ़ने पर ही कर सकते हैं, तो आप बिना रुके हुए इस संख्याको बार-बार दोहराते हैं। किन्तु शायद आप इस संख्याको अधिक दिनों तक याद रख सकते हैं, यदि आप हर पुनरावृत्तिके बाद कुछ सैकेंडोंके लिए रुक जायें। 'सावकाश पुनरावृत्ति[7]', से 'निरवकाश पुनरावृत्ति[8]' की अपेक्षा सम्भवतः अच्छे परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। एक प्रयोगशालाके परीक्षणमें परीक्षार्थी के सामने १२ निरर्थक शब्दोंकी एक सूची रखी गयी। सूची को प्रस्तुत करनेका क्रम यह था कि एक बारमें एक ही शब्द प्रस्तुत किया जाता था, हर शब्दके बाद २ सैकेंडका समय दिया जाता था और पूरी सूची समाप्त हो जाने पर, उसे दो-बारा शुरू करनेके पहिले ६ सैकेंडका अवकाश दिया जाता था। 'व्य' आने वाले शब्दको यदि पहिलेसे ही बतानेकी स्थितिमें हो जाता था, तो उसे वैसा करने दिया जाता था। अध्ययनका यह क्रम तब तक जारी रहता था, जब तक वह हर शब्दको पहिलेसे ही बतलाने न लगता था, और इस प्रकार वह सारी सूचीका सही-सही प्रपाठ करने लगता था। इसको 'निरवकाश सीखना[9]' कहते हैं। 'सावकाश सीखने[10]' के एक इसी तरहके प्रयोगमें और सब चीजें तो यही थीं, केवल सूचीके अन्तके विराम[11] को बढ़ाकर दो मिनट कर दिया गया था। इस लम्बे विरामकी अवधिमें परीक्षार्थीको शब्दोंका प्रपाठ करनेसे रोकनेके लिए, रंगोंका नाम बताने-वाली[12] परीक्षामें व्यस्त रखा जाता था। परीक्षार्थियों (३२ कॉलेजीय छात्रों) को 'निरवकाश सीखने' की विधि से पूरी सूची पर अधिकार करनेमें औसतन् १५ बार प्रयास करना पड़ा, और 'सवकाश सीखने[10]' की विधिसे सूची पर अधिकार करनेके लिए उन्हें ११ बार ही प्रयास करना पड़ा। सावकाश सीखनेमें लम्बे विरामों[11] के कारण कुल समय अवश्य अधिक लगा। किन्तु इस प्रयोगके दूसरे रूपमें सभी प्रयोगोंसे कम समय व्यय हुआ: शब्द[13] धीमी गतिसे (हर शब्दके बाद ४ सैकेंडका विराम देकर) उपस्थित किये गये और सूचीके अन्तमें केवल ६ सैकेंडका छोटा विराम दिया गया। इस मामलेमें परीक्षार्थियोंने ७ बारके प्रयासमें ही पूरी सूची कंठस्थ कर ली, और अन्य विधियोंकी तुलनामें

[1] recitation [2] stimulating [3] re-reading [4] reinforcement [5] mechanical puzzle [6] problems of timing [7] spaced repetitions [8] massed repetitions [9] massed learing [10] spaced learning [11] pause [12] colur-naming [13] syllables

समयकी भी बचत हुई (१६)।

इन परिणामोंका अर्थ निकालनेके प्रयत्नमें हम देख सकते हैं कि सीखने वालेने शब्दोंके बीचमें मिलने वाले ४ सैकेंडके मध्यान्तरका सदुपयोग अलग-अलग शब्दोंको समझने और उनके अनुक्रमों[1] पर ध्यान देनेमें—संक्षेपमें, कुछ पुष्टीकरण[2] प्राप्त करनेमें—किया। इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रयोगसे प्राप्त हुए सुझावका उपयोग सार्थक सामग्रीको सीखनेमें किया जा सकता है। पाठको बार-बार तेजीसे पढ़नेके बजाय यदि आप उसको धीरे-धीरे पढ़ें, ताकि उसके अर्थको समझ सकें और उसका मजा ले सकें, तो शायद आपका समय कम खर्च हो।

किन्तु जब हम पूछते हैं कि पाठकी आवृत्तियोंके बीच एक या दो मिनट ठहर जानेसे ही क्या लाभ होता है, तब इसका उत्तर देना आसान नहीं होता। एक बात तो निश्चित है कि कुछ देर ठहर कर आप नवोत्साह और नयी ताजगीके साथ पाठको फिर आरम्भ कर सकते हैं। किसी भी पाठको कंठस्थ करनेका एक अच्छा व्यावहारिक नियम यह है कि उसे मध्यान्तरों[3] के बाद पढ़ें। मध्यान्तर इतने लम्बे हों कि पाठ को पुनः प्रारम्भ करते समय आपके मनमें ताजगी हो। यदि आप किसी दिलचस्प पाठांशको बार-बार, बिना किसी विरामके पढ़ें, तो आप शीघ्र ही उसके अर्थको खो बैठते हैं, और केवल शब्दोंकी पिसाई ही जारी रखते हैं। कुछ मध्यान्तर दे देनेके बाद वह पाठांश पुनः सार्थक हो जाता है; और उस समय उसे पढ़ने पर आप उसके अर्थको अधिक अच्छी तरह याद कर सकेंगे।

पुनरावृत्तियोंका मध्यान्तर कमसे कम १ मिनट और अधिकसे अधिक २४ घंटोंका हो सकता है और फिर भी उससे अच्छे परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। लम्बे और सार्थक पाठके लिए मध्यान्तर भी काफ़ी लम्बा होना चाहिए, कमसे कम इतना लम्बा तो हो ही कि उसे नयी ताजगीके साथ पढ़ना फिर सम्भव हो सके।

जब हम यह कहते हैं कि कंठस्थीकरणमें सावकाश पुनरावृत्तियों[4] से सर्वोत्तम परिणाम प्राप्त होते हैं, तब हमारा यह तात्पर्य नहीं होता कि अध्ययनकी अवधि छोटी-छोटी हो और बीचमें विश्रामके लिए समय मिलता जाय। चूंकि अधिकांश विद्यार्थी अध्ययनके लिए 'गरम होनेमें' कुछ समय लगाते हैं, इसलिए सम्भावना तो इसी बातकी है कि काफ़ी लम्बे समय तक लगातार पढ़ते रहनेसे अच्छे परिणाम प्राप्त होंगे, बनिस्बत इसके कि उसी समयको कई छोटे भागोंमें बांटकर अध्ययन किया जाय। हम यहां कहना यह चाहते हैं कि «एक ही सामग्री» की पुनरावृत्तियोंके बीच यदि थोड़े समयका अवकाश रहे, तो वह सामग्री स्मृतिमें अच्छी तरह स्थिर हो जाती है।

पूरे पाठको एक साथ सीखें या उसीको टुकड़े-टुकड़े करके सीखें[5]? एक लम्बे पाठको कंठस्थ करनेके लिए कौन-सी विधिमें समयकी बचत होगी : पाठको कई भागोंमें बांटकर, हर भागको अलग-अलग कंठस्थ करनेसे या पूरे पाठको हर बार समूचा पढ़नेसे? हममेंसे अधिकांश आदमी शायद यह अनुमान लगावें कि एक-एक भागका अध्ययन करना अधिक अच्छा रहेगा, किन्तु प्रयोगोंसे प्राप्त होने वाले परिणाम साधारणतः समूचा पढ़नेके पक्षमें पड़ते हैं।

यदि आपको किसी कविताकी २४० पंक्तियां कंठस्थ करनी हों, तो आप निश्चय ही एक भागको एक समयमें याद करने की ओर प्रवृत्त होंगे, किन्तु निम्नलिखित प्रयोग पर जरा गौर कीजिए: एक युवकने एक ही कवितासे दो भाग इसी लम्बाई के लिए और प्रति दिन ३५ मिनट समय देकर इनमेंसे एक भागको खंड-अध्ययन विधिसे कंठस्थ किया और दूसरे भाग को समग्र-अध्ययन विधिसे (२२)। उसके परिणामोंको नीचे की तालिकामें दिखाया जा रहा है :

२४० पंक्तियोंके दो पद्यांशोंको समग्र और खंड अध्ययन विधिसे कंठस्थ करना

«अध्ययन करनेकी विधि»	«कितने दिन लगे»	«कुल कितने मिनट लगे»
प्रति दिन ३० पंक्तियां कंठस्थ की गयीं; इसके बाद पूरे पद्यांश का अध्ययन किया गया, ताकि उसका प्रपाठ हो सके······	१२	४३१
पूरे पद्यांशको प्रति दिन ३ बार पढ़ा गया, ताकि उसका प्रपाठ[6] किया जा सके······	१०	३४८

इस प्रयोगमें समग्र-अध्ययन विधिने खंड-अध्ययन विधिकी अपेक्षा ८३ मिनटोंकी, या लगभग २० प्रतिशत समयकी बचत दिखायी। इसी तरहके अन्य प्रयोगोंमें ये अन्तर कम भी दिखायी दिये हैं, और कभी-कभी तो खंड-अध्ययन विधि ही अधिक उपादेय सिद्ध हुई है।

प्रायोगिक परिणामोंमें पाये जाने वाले इन विरोधाभासोंसे हमें चेतावनी मिलती है कि समग्र-कंठस्थीकरणको सभी परिस्थितियोंमें आवश्यक रूपसे लाभप्रद नहीं समझ लेना चाहिए। आंख मूंद कर बँधे-बँधाये नियमोंका पालन करनेके बजाय आपको व्यावहारिक कार्यमें सामान्य नियमोंको लागू

[1] sequences [2] reinforcement [3] intervals [4] spaced repetitions [5] whole versus part learning [6] recitation

करना चाहिए और अपनी परिस्थितियों तथा व्यक्तिगत विशेषताओं के अनुसार उनमें तबदीली कर लेना चाहिए। यदि आपको काफ़ी चीजें कंठस्थ करनी हैं, चाहे शब्दशः या केवल भावार्थतः, तो सावकाश समग्र-अध्ययन[1] एक अच्छा सामान्य नियम सिद्ध होगा। लेकिन आपको इस बातके लिए स्वयं को पूर्णतः स्वतंत्र समझ लेना चाहिए कि आवश्यकता पड़ने पर इस नियमित क्रममें बाधा भी दी जा सकती है और कुछ समयके लिए किसी ऐसी बात पर अपना ध्यान केन्द्रित किया जा सकता है, जिसे थोड़े परिश्रमके बाद याद किया जा सकता हो। समग्र-विधिका अच्छी तरह इस्तेमाल करनेके लिए थोड़ी कुशलता और मानसिक सन्तुलनकी आवश्यकता है। कोई भी व्यक्ति, जो अखंड अध्ययन विधि[2] को इतना सुविधाजनक मानता है कि हर हालतमें उसीका इस्तेमाल करनेके पक्षमें है, उसे कमसे कम अपने पाठको काफ़ी लम्बे भागोंमें, अपनी स्मृतिके विस्तार[3] से भी लम्बे भागोंमें, विभाजित कर लेना चाहिए। यदि एक ही बार पढ़ने पर आप एक कविता की दो पंक्तियोंका प्रपाठ कर सकते हैं, तो उसी टुकड़ेको बार-बार दोहराते रहनेसे आपको शायद ही कुछ लाभ होगा। इससे तो *अच्छा यह होगा कि आप चार-चार पंक्तियोंकी इकाइयां बना* लें। यदि आप खंड-अध्ययन विधिको पसन्द ही करते हैं, तो भी यह सर्वोत्तम रहेगा कि शुरूमें सारे पाठको एक या दो बार सावधानीसे पढ़ लिया जाय और कभी-कभी बादमें भी उस पर सरसरी निगाह डाल ली जाय, ताकि मनमें पाठका एक ढांचा तैयार हो सके, जिसमें पाठांश जैसे-जैसे कंठस्थ होते जायँ; अपना स्थान लेते जायँ।

धारणा[4]

सीखने या कंठस्थ करनेकी प्रक्रिया पर इतना विस्तृत विचार कर लेनेके पश्चात् अब हम अपने विषयके तीन प्रमुख विभागों में से दूसरे विभाग पर आते हैं और जानना चाहते हैं कि जो कुछ सीख लिया गया है, उसे धारण करना किस प्रकार सम्भव हो सकता है। कुछ लोगोंने कहा है कि यह 'अचेतन[5] में' धारण किया जाता है। किन्तु इस रहस्यमय बातका क्या मतलब है? इसका मतलब या तो अचेतन सक्रियता[6] हो सकता है, या अचेतन निष्क्रियता[7]। अचेतन सक्रियताका मतलब यह होगा कि जिस लड़केने पहाड़ा सीख रखा है, वह लगातार उसका प्रपाठ अपने-आप करता रहे, भले ही अचेतन रूपसे; और वही लड़का, चूँकि उसने बर्फ़ पर फ़िसलना (स्केटिंग), तैरना और पेड़ पर चढ़ना भी सीख रखा है, इन सभी क्रियाओं को लगातार अपने मनमें दोहराता रहे, सीखे हुए सभी गानों को मन ही मन गाता रहे और जितने लोगोंको जानता है, उनको याद करता रहे, आदि-आदि। धारणाका कोई भी सिद्धान्त, जो सभी सीखी हुई प्रतिक्रियाओं[8] की निरन्तर क्रियाशीलता चाहता हो, अपने बोझसे खुद-ब-खुद टूट जाता है। किन्तु यदि धारणा[4] अचेतन निष्क्रियता है, तो 'अचेतन' शब्द व्यर्थ और भ्रामक है; क्योंकि इसका अर्थ यह होना चाहिए कि सीखनेसे शरीरकी रचना में परिवर्तन[9] हो जाता है और वे रचना[10]-सम्बन्धी परिवर्तन हमेशा बने रहते हैं, हालांकि जब तक किसी प्रभावपूर्ण उत्तेजनाके द्वारा उन्हें जाग्रत् न किया जाय, तब तक वे निष्क्रिय ही रहते हैं। अभ्यास[11] और पुष्टीकरण[12] मस्तिष्ककी रचनामें परिवर्तन उत्पन्न करते हैं। ये परिवर्तन यों तो आकारमें अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं, किन्तु व्यक्तिको इतना समर्थ बना देते हैं कि वह एक बारके सीखे हुए कामको पुनः कर सके और वस्तुओंको जिस भांति देखना सीखा हो, उसी भांति उनको पुनः देख सके (पृ० १२५-१२६, १६६)।

परिवर्तित रचना[13] जो *किसी निर्दिष्ट स्मृतिको धारण* करती है, उसे « स्मृतिका चिह्न[14] » कहते हैं। हम इस चिह्नकी ठीक प्रकृतिके विषयमें नहीं जानते, किन्तु हम इतना तो मान ही सकते हैं कि सीखनेकी प्रत्येक प्रक्रिया मस्तिष्कमें अपना कुछ चिह्न अवश्य छोड़ जाती है। ये चिह्न कमसे कम कुछ समय तक तो बने ही रहते हैं, इसलिए ये सीखी हुई वस्तुओंको फिरसे याद दिलाने में मदद पहुँचाते हैं। हमें यह माननेकी कोई आवश्यकता नहीं कि कोई निष्क्रिय स्मृति-चिह्न[15] किसी व्यक्तिके मस्तिष्कमें आजीवन अमिट बना रहेगा। यह धीरे-धीरे मिट सकता है, फलतः एक बार जो चीज सीखी गई होती है, वह अन्तको बिलकुल विस्मृत भी हो सकती है।

किन्तु, क्या कोई चीज जो एक बार सीखी जा चुकती है, बिलकुल ही विस्मृत की जा सकती है? कुछ लोग कहते हैं 'नहीं'। कभी-कभी जिन स्मृतियोंके विषयमें यह सोचा जाता है कि वे सदाके लिए नष्ट हो गयीं, उनको भी समय-समय पर हम पुनर्जीवित होते देखते हैं। इसलिए जो लोग यह कहते हैं कि एक बार सीखी हुई वस्तु बिलकुल विस्मृत नहीं की जा सकती, वे इस तथ्यसे बहुत प्रभावित होते हैं। कभी-कभी बचपनके अनुभव बहुत देर तक गम्भीर खोजके उपरान्त पुनर्जीवित होते देखे गये हैं। ज्वरकी दशामें लोगोंको अपने बच-

[1] spaced whole study [2] part method [3] memory span [4] retention [5] unconscious [6] activity [7] unconscious inactivity [8] learned responses [9] modification [10] structure [11] exercise [12] reinforcement [13] modified structure [14] memory trace [15] inactive memory trace

पन की बोली बोलते हुए सुना गया है, हालांकि अपनी स्वस्थ दशामें उस बोलीको वे क़तई भूल चुके थे। इस तरहके तथ्यों के आधार पर ही यह अतिशयोक्ति की जाती है कि 'एक बार जो चीज़ सीख ली जाती है, वह कभी विस्मृत नहीं होती'। यह बात निश्चय ही बढ़ा-चढ़ा कर कही गई है। यदि ऐसा होने लगे, तो इसका मतलब तो यह होगा कि जितने पाठ आपने कंठस्थ किये हैं, जितनी कहानियां आज तक आपने पढ़ी हैं, जितने चेहरों, दृश्यों और घटनाओंने आपका ध्यान कभी आकर्षित किया है, वे अब भी आपके मस्तिष्कमें सुरक्षित हैं और यदि केवल उन्हें पुनर्जीवित करनेका सही तरीक़ा अपनाया जाय, तो उन सभीका पुनः प्रत्याह्वान किया जा सकता है। इस प्रकारके आत्यन्तिक मतकी पुष्टि किसी प्रमाणसे नहीं होती। सम्भवतः हम अपनी सीखी हुई चीज़ोंमें से बहुत कुछ को भूल जाते हैं, जैसा कि हम आगे देखेंगे।

धारणा का निरीक्षण और उसकी माप कैसे की जाय? चूंकि हम स्मृति-चिह्न को प्रत्यक्षतः नहीं देख सकते, इसलिए धारणाके सम्बन्धमें हमारे पास केवल यह एक प्रमाण है कि जिस चीज़को हम सीख चुके होते हैं, उसे कुछ मध्यान्तरके पश्चात् हम याद कर सकते हैं। आप तीन प्रकारसे यह सिद्ध कर सकते हैं कि आप किसी पाठको धारण किये हुए हैं। आप उस पाठकी सामग्री[1] का «प्रत्याह्वान[2]» कर सकते हैं, जैसा कि निबन्ध-परीक्षा में होता है। आप पाठसे उद्धृत बातोंको «पहचान[3]» सकते हैं और उन बातोंसे उनको पृथक् कर सकते हैं, जो बातें पाठमें थीं ही नहीं, जैसा कि सत्यासत्य-परीक्षा[4] में हुआ करता है। ये दोनों विधियां धारणा[5] की जांच करनेमें बहुधा व्यवहृत होती हैं। एक तीसरी विधि भी है, जो कुछ कम स्पष्ट है, तथा जिसे «पुनः सीखने की विधि[6]» कहते हैं। यदि कुछ समय पहले, आपने किसी कविताके कुछ पद्योंको कंठस्थ किया था, तो यह सम्भव है कि इस समय आप उसकी एक भी पंक्तिका प्रत्याह्वान न कर सकें; यह भी हो सकता है कि जिन पद्योंको आपने कभी सीखा था, उनको आप पहचान भी न सकें, लेकिन अब आप पाते हैं कि आप कुछ पद्यों को बहुत आसानीसे सीख सकते हैं, क्योंकि जिसको पहिले सीख चुके होते हैं, उसको आप « पुनः सीख रहे होते हैं »। यदि किसी नये पद्यको कंठस्थ करनेमें आपको १० मिनट लगते हैं, और उसी तरहके एक अन्य पद्यको, जिसे आप पहले कभी सीख चुके होते हैं, कंठस्थ करनेमें केवल ८ मिनट लगते हैं, तो यह माना जायगा कि धारणा[5] के कारण २ मिनटोंकी «बचत» हो गयी या सीखनेके समयमें २० प्रतिशत की बचत। इस मामलेमें, पिछली बारके सीखनेके कारण जो चिह्न[7] बन गये थे उससे दुबारा सीखनके श्रमम २० प्रतिशतकी कमी हो गयी, या हम यों कह सकते हैं कि धारणा २० प्रतिशत के बराबर है और विस्मृति ८० प्रतिशत के।

इस पुनः सीखने या बचतकी विधिके मापदंडसे हम नापें, तो धारणा बहुधा इतनी अच्छी तरह लक्षित होती है, जितनी अच्छी वह प्रत्याह्वान-प्राप्तांक[8] द्वारा लक्षित नहीं होती। आप पिछले दिनोंमें सीखे हुए पाठका प्रायः कुछ भी प्रत्याह्वान न कर सकते हों, तो भी उसे दुबारा सीखनेमें बहुत आसानी महसूस कर सकते हैं। और आप जितना प्रत्याह्वान कर सकते हैं, उससे अधिक पहचान (प्रत्यभिज्ञा) कर सकते हैं। स्मृति-सम्बन्धी प्रयोगकी अपनी सामान्य योजना—

सी—म—या

के सिलसिलेमें हम पाते हैं कि धारणाकी 'या' परीक्षा प्रत्याह्वान प्रत्यभिज्ञा या पुनः सीखनेकी परीक्षा भी हो सकती है; और यह आवश्यक नहीं है कि इन तीनों परीक्षाओंके परिणाम एक-से ही हों। फिर भी, ये तीनों ही किसी न किसी समस्यामें उपादेय सिद्ध होते हैं।

धारणा की मनोवैज्ञानिक समस्याएं विशेषतः 'म' मध्यान्तर से सम्बन्धित हैं। इस मध्यान्तरके दौरानमें, जो पाठ सीख लिया गया है, उसका और अध्ययन नहीं किया जाता, बल्कि (यथ सम्भव) वह बिल्कुल निष्क्रिय[9] रहता है। 'म' मध्यान्तर (१) समय[10] की दृष्टिसे या (२) भराव[11] की दृष्टिसे भिन्न हो सकता है। (१) सीखनेके बाद समय जितना बढ़ता जाता है, धारणा उतनी ही कम होती जाती है, लेकिन समयके साथ स्मृतिमें होने वाले इस ह्रासके विषयमें हम कुछ और जानना चाहेंगे; (२) चूंकि मध्यान्तर रिक्त नहीं रहता, बल्कि उसमें कुछ अन्य क्रियाएं होती हैं, इसलिए यह प्रश्न उठता है कि क्या कतिपय क्रियाएं स्मृति-चिह्न के लिए बाधक होती हैं और इस प्रकार धारणा को निर्बल बना देती हैं?

विस्मृति[12] की वक्ररेखा. समयके साथ धारणा का ह्रास चित्रित करने वाली वक्र रेखाको पहले पुनः सीखनेकी विधिसे तैयार किया गया और बादमें प्रत्याह्वान तथा प्रत्यभिज्ञाकी विधियोंसे उसके सही होनेकी जांच करली गयी। धारणामें धीरे-धीरे ह्रास होता ही है, किन्तु सीखनेके बादसे पहले कुछ घंटोंमें यह ह्रास अधिक शीघ्रता से होता है और बादमें उतना नहीं।

यद्यपि विस्मृतिकी वक्र रेखा के इस तरह सपाट होने की (कुछ समय बाद भूलने में आगे प्रगति न होना) पुष्टि और तरह-तरह के प्रयोगों द्वारा हो चुकी है, तथापि विस्मृति की पूर्ण गतिमें काफ़ी भिन्नता दिखाई पड़ती है: (क) एक

[1] content [2] recall [3] recognise [4] true-false examination [5] retention [6] relearning method
[7] trace [8] recall score [9] inactive [10] duration [11] filling [12] forgetting
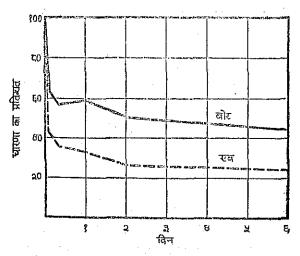
आकृति १३४. विस्मृतिकी वक्ररेखा या धारणाकी वक्ररेखा। निरर्थक शब्दोंकी सूचियां कंठस्थ कर ली गयीं, बादमें कुछ समयके लिए अलग रख दी गयीं और उल्लखित मध्यान्तरोंके बाद पुनः कंठस्थकी गयीं। पुनः कंठस्थ करनेमें समयकी जो बचत हुई, उससे धारणा का प्रतिशत मालूम किया गया। एबिनगौस वक्ररेखा (एब) एक अभ्यस्त परीक्षार्थीके सीखनेकी क्रियाका अंकन है; इस परीक्षार्थीने कई सूचियाँ कंठस्थ कर ली थीं। बोरियाज वक्ररेखा (बोर) २० छात्रोंसे प्राप्त औसतको सूचित करती है; इनमेंसे हर छात्र प्रत्येक मध्यान्तरमें एक सूचीको सीखता और पुनः सीखता था। 'बोर' वक्ररेखा 'एब' वक्ररेखाकी अपेक्षा विस्मृतिकी काफ़ी धीमी गतिकी परिचायक है, किन्तु दोनों वक्ररेखाओंका सामान्य मार्ग एक-सा है। [एबिनगौस, ७ और बोरियाज, ३]।

व्यक्ति दूसरे व्यक्तिकी अपेक्षा अधिक शीघ्रतासे भूल जाता है; (ख) जो सामग्री 'अत्यधिक सीख ली जाती है'[1], अर्थात् उस बिन्दुसे भी बहुत आगे उसका कंठस्थीकरण किया जाता है जहां बिना भूल किये उसका प्रपाठ करना सम्भव हो, वह अधिक धीमी गतिसे विस्मृत होती है; (ग) इन सबमें महत्त्वपूर्ण यह है कि सार्थक सामग्री, जहां निरर्थक सामग्रीकी अपेक्षा अधिक शीघ्रतासे सीख ली जाती है, वहां काफ़ी धीमी गति से विस्मृत भी होती है। निरर्थक शब्दोंकी एक सूची जो मामूली तौरसे सीख ली जाती है, चार महीनोंके बाद किसी परीक्षा द्वारा धारणाका प्रदर्शन नहीं करती, किन्तु मामूली तरीक़ेसे सीखी हुई कविताने २० वर्षोंके बाद भी कुछ धारणा का परिचय दिया है। जब सार्थक सामग्री 'अत्यधिक सीख ली जाती है', तब वह प्रायः अनिश्चित काल तक धारण की जा सकती है। एक बहुत पुराने गीतको, जिसे आपने कई वर्षों से न गाया है, न सुना है, यदि आप अब याद करने लगें, तो भले ही धीमी गतिसे, किन्तु वह अब भी आपको स्मरण हो सकता है। एक विद्यार्थीने, जिसने टाइपराइटर पर २०० घंटों तक अभ्यास किया था, एक वर्ष तक लगातार अपना अभ्यास छोड़ दिया, किन्तु उसके बाद एक घंटेके ताज़े अभ्यासमें ही उसने अपनी सारी खोयी हुई गति पुनः प्राप्त कर ली। इस प्रकार उसने ६६ प्रतिशतसे अधिक धारणा[2] का परिचय दिया। जो मामले कभी-कभी इस बातकी पुष्टि करते देखे जाते हैं कि 'एक बार जो चीज सीख ली गयी, वह कभी भुलायी नहीं जा सकती', वे प्रायः अत्यधिक सीखी हुई सामग्रीसे सम्बन्धित मामले होते हैं, जैसे—नित्य-प्रतिकी बोल-चाल और बचपनके सजीव अनुभव।

विस्मृतिके कारण. जहां तक हम समझ पाते हैं, केवल कालक्षेप[3] के कारण स्मृति-चिह्न नष्ट नहीं हो सकते। समय प्रभाव नहीं उत्पन्न करता, बल्कि वह चीज प्रभाव उत्पन्न करती है जो समयके भीतर होती है। यदि किसी तरह सीखनेके समय और उसे पुनः याद करनेके समयके बीचकी अवधिको पूर्णतः रिक्त रखना सम्भव होता, जिसमें न शरीरके साथ कुछ होता, न शरीरके भीतर कुछ होता, —जैसे कि 'सुप्त सुन्दरी[4]' शीर्षक कहानीमें जीवनकी सारी क्रिया ठप हो गयी थी—तो, जीवनके पुनः आरम्भ होने पर हर चीज वैसी ही मिलती, मानो कोई रिक्त मध्यान्तर रहा ही न हो। इस तरहके कालक्षेपमें स्मृतिका किंचिन्मात्र ह्रास नहीं होता। विस्मृतिके कारणोंको समयके भीतर होने वाली प्रक्रियाओं, अर्थात् 'म' मध्यान्तरके 'भराव[5]' में खोजना चाहिए। दो बिल्कुल भिन्न प्रक्रियाएं चालू रहती हैं, जिनका निर्देश व्यवहार[6] और «चयापचय[7]» इन दो शब्दोंसे होता है। तदनुसार विस्मृतिके दो सिद्धान्त हैं: बाधा-सिद्धान्त[8] और क्षयका सिद्धान्त[9]।

«बाधा». मान लीजिए, मेरे बचपनका लंगोटिया यार 'ठलुआ' था। वर्षों तक इस नामसे उसी बालकका बोध होता था, अन्य किसी बालकका नहीं। लेकिन जैसे-जैसे समय बीतता गया, वह मेरे जीवनसे निकल गया और दूसरे 'ठलुए' मेरे जीवनमें आ गये। फल यह हुआ कि मैं लगभग (बिल्कुल तो नहीं) भूल चुका हूँ कि प्रारम्भमें उस नामका मेरे लिए क्या अर्थ था। पुष्टीकरणके अभाव[10] के कारण उस शब्दका प्रारम्भिक अर्थ विलुप्त हो गया है और उसी नामके नये अर्थों ने उसे हटा दिया है। उ—प्र, का प्रारम्भिक सम्बन्ध बादके

[1] overlearned [2] retention [3] lapse of time [4] sleeping beauty [5] filling [6] behaviour [7] metabolism [8] interference theory [9] atrophy theory [10] non-reinforcement

उ—प्र$_1$ सम्बन्ध द्वारा तोड़ दिया गया है। बाधाका यह स्पष्ट उदाहरण है। इससे कुछ अस्पष्ट रूपमें हम देख सकते हैं कि हमारे दैनिक जीवनकी कई क्रियाएं, जो अंशतः समान और अंशतः असमान होती हैं, कैसे एक-दूसरेको कुछ हद तक बाधित कर सकती हैं और एक-दूसरेके स्मृति-चिह्नोंको अस्त-व्यस्त करती हैं।

«अनुपयोगके कारण क्षय[१]». यदि मस्तिष्क तांबेका बना होता और उसमें सुन्दर बिजलीके तार निकले होते, और वे तब तक वैसे ही पड़े रहते, जब तक 'स्विचें' दूसरी जगह नहीं लगा दी जातीं, तो यहां बाधाका सिद्धान्त बड़ा उपयुक्त बैठता। एक बार स्थापित सम्बन्ध तब तक स्थायी रहता है, जब तक किसी वैकल्पिक सम्बन्ध[२] की स्थापना उसे हटा नहीं देती। किन्तु सजीव अंग या ऊति[३] के लिए यह आवश्यक होता है कि शरीरकी चयापचयकी रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा उसे उत्तमोत्तम स्थितिमें रखा जाय। कोई मांस-पेशी, जो सक्रिय है, या अभी-अभी सक्रिय रह चुकी है, रक्तसे अपना पोषण प्राप्त करती है, किन्तु जो मांस-पेशी निष्क्रिय रखी जाती है, जैसे कमठीके अन्दर बांधी गयी टूटी भुजा निष्क्रिय रहती है, वह अपने कुछ द्रव्यको रक्तमें छोड़ देती है और धीरे-धीरे क्षीण हो जाती है। मांस-पेशियां पोषण प्राप्त करनेकी अपनी मांगमें एक-दूसरेसे होड़ करती हैं; इस प्रतियोगिता में निष्क्रिय मांस-पेशी घाटेमें रहती है। सम्भवतः यही बात बहुत सूक्ष्म पैमाने पर, मस्तिष्ककी रचनाओं[४] के, जो स्मृति-चिह्नोंको ग्रहण करती हैं, सम्बन्धमें भी सही है (पृष्ठ १६६)। जो चिह्न बहुत समय तक अनुपयुक्त और निष्क्रिय रहते हैं, वे व्यवहारके स्तर पर किसी बाधाके न होने पर भी उत्तम चयापचयकी स्थितिमें मुश्किलसे ही रह पाते हैं। बहुत दिनों तक निष्क्रिय रह चुके मांस-तन्तुओं[५] की तरह स्मृति-चिह्न भी निर्बल पड़ जाते हैं और प्रभावपूर्ण ढंगसे काम करनेमें असमर्थ हो जाते हैं।

विस्मृति पूर्णतः एक असुविधा नहीं है। भूल जानेकी प्रवृत्ति को एकान्त रूपसे प्राणीकी निर्बलता मान लेना ठीक नहीं होगा। कुछ हद तक विस्मृति प्रत्यास्थापनकी—पहले जैसी साधारण दशामें लौटनेकी, प्रक्रिया होती है। घावका भर जाना एक तरहकी शारीरिक विस्मृति है। कई चीजें जिन्हें आप सीखते हैं, आपके लिए केवल अस्थायी मूल्य रखती हैं। यदि हर चीज, जिसे आपने किसी समय सीखा था, पूरी तरह मस्तिष्कमें धारण हो जाती, तो वह हमेशा याद आती रहती और नयी परिस्थितियोंके साथ समायोजन करनेके आपके प्रयासोंमें सदा विघ्न डाला करती। इसका कारण यह है कि बाधा[८] दोनों ओरसे काम करती है। नयी चीजको सीखना पुरानी चीजकी धारणामें बाधा उत्पन्न करता है और पुरानी चीजका प्रत्याह्वान नयी चीजके सीखने में बाधा पैदा करता है। जब आप उ—प्र$_2$ को सीखते हैं, तब आप उ—प्र$_1$ की धारणामें रुकावट डालते हैं, और जब आप उ—प्र$_1$ को पुनर्जीवित करते हैं, तब आप उ—प्र$_2$ के सीखनेमें बाधा उत्पन्न करते हैं। इसलिए अनुपयुक्त स्मृति-चिह्नों[९] का (सम्भावित) चयापचयात्मक ह्रास कभी-कभी लाभप्रद हो जाता है। यद्यपि चयापचयात्मक ह्रास[१०] पुरानी स्मृतियोंकी धारणा[११] को कमजोर करनेमें बाधाका साथ देता है, तथापि यह नयी चीजको सीखनेके मार्गमें डाली गयी बाधाके विरुद्ध कार्य करता है।

सुप्तावस्थामें धीरे-धीरे भूलना. सुप्तावस्थामें व्यवहार निम्न स्तर पर चला जाता है, इसलिए उसके द्वारा स्मृति-चिह्नों में कम बाधा उत्पन्न की जाती है। अतएव जागनेकी घड़ियोंकी अपेक्षा सोनेकी घड़ियोंमें विस्मृतिकी गति कम तेज होनी चाहिए। इस आशाकी पुष्टि कई प्रयोगोंके परिणामों द्वारा हो चुकी है। आकृति १३५ में मनुष्य पर किये गये एक प्रयोग के परिणाम दिखाये गये हैं और आकृति १३६ में इससे भी अधिक पर्याप्त एक पशु-प्रयोगके परिणाम प्रदर्शित किये गये हैं। पशु पर किया गया प्रयोग अधिक पर्याप्त इसलिए था कि सोने या निष्क्रियताकी दशा, सीखनेके तुरन्त बाद प्रारम्भ हो गयी और सम्भवतः मनुष्यकी अपेक्षा उसकी नींद अधिक गहरी थी और बीच-बीचमें कम टूटी थी। वक्ररेखाएं बतलाती हैं कि क्रियाशीलताकी दशाके बजाय सुप्तावस्थामें विस्मृतिकी गति धीमी होती है। फिर भी नींदके प्रथम कुछ घंटोंमें कुछ विस्मृति अवश्य होती है। विस्मृतिकी वक्र रेखाओं[१२] की एक यह विशेषता है कि उनमें प्रारम्भमें तेजीसे गिरावट आती है; यह चीज सुनियंत्रित पशु-प्रयोगमें भी पायी जाती है; किन्तु सीखनेके बादवाले कुछ सक्रिय घंटोंमें जितनी अधिक गिरावट दिखायी देती है, उसकी तुलनामें सुप्तावस्था की गिरावट बहुत कम है।

इस निष्कर्षको कि सुप्तावस्थामें विस्मृतिकी गति धीमी होती है—या दिनकी क्रियाशीलताके दौरानमें तेज होती है, हमें कुछ शर्तोंके साथ स्वीकार करना चाहिए। पहिली बात तो यह है कि केवल «मामूली तौरसे सीखी हुई[१३]» सामग्री पर ही यह प्रभाव दिखायी देता है; अच्छी तरहसे सीखी हुई सामग्री साधारण क्रियाशीलताके आठ घंटे बाद भी उसी

[१] atrophy from disuse [२] alternative connexion [३] tissue [४] structure [५] muscle fibres [६] restorative process [७] normal [८] interference [९] memory traces [१०] metabolic decline [११] retention [१२] curves [१३] barelyle arned
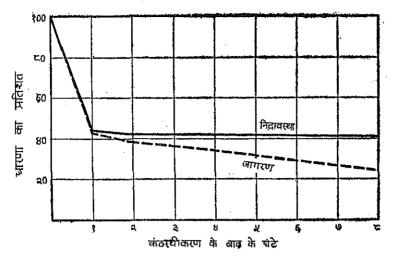
आकृति १३५. कंठस्थीकरणके पश्चात् सो लेनेसे धारणाको सहायता मिलती है। निरर्थक शब्दोंकी सूचियोंको कंठस्थ करनेके बाद परीक्षार्थी या तो अपने दैनिक क्रिया-कलापों में जुट गये, या यथासम्भव शीघ्र सो गये। कुछ मध्यान्तरके बाद सूचियोंको पुनः सीखनेके लिए जगाया गया। यह देखा गया कि नींदकी अवधिकी अपेक्षा जागनेके घंटोंमें विस्मृतिकी गति तेज रही, केवल आंशिक जागरणका पहिला घंटा इसका अपवाद रहा। [वान ओरमर, २५]।

तरह याद रहती है जिस तरह ८ घंटोंकी नींदके बाद। क्षय[1] और बाधा[2] की शक्तियोंके मुकाबलेमें एक गहरा चिह्न[3] अधिक अच्छी तरह टिक पाता है बनिस्बत एक हल्के चिह्नके। दूसरी बात यह है कि केवल «एकदम ताज़े नये चिह्न[4]» ही क्रियाशीलता के द्वारा बाधित होते हैं और सुप्तावस्थामें सुरक्षित रहते हैं। यदि आप पाठको सीखते समय खूब अच्छी तरह जगे हुए हों और उसके बाद तुरन्त गहरी नींदमें सो जायँ, तो इस बातकी पूरी सम्भावना है कि आप अगले दिन पाठको अवश्य याद रखेंगे। व्यावहारिक उद्देश्योंके लिए हर व्यक्ति को यह सोचना पड़ता है कि दिनके विभिन्न घंटोंमें उसकी सीखनेकी क्षमता कैसी रहती है। यदि शामको उसे पाठ अच्छी तरह याद नहीं होता, तो महत्त्वपूर्ण पाठोंको उस समय याद करनेके लिए छोड़नेसे उसे कोई लाभ न होगा। यदि सुबह और शामको उसकी सीखनेकी क्षमता बराबर रहती है, तो वह एक ऐसा कार्यक्रम तैयार कर सकता है जिसमें समग्र कंठस्थीकरण[5], सावकाश कंठस्थीकरण[6] और सीखनेके तुरन्त बाद सोनेके लाभ सम्मिलित किये जा सकें; सोनेके ठीक पहिले पाठको अच्छी तरह पढ़ जाइये और इसके बाद सो जाइये; सुबह फिर उसे पढ़ जाइये।

सीधी बाधा पर किये हुए प्रयोग[7]. मान लीजिए कि आप एक स्मृति-प्रयोग में 'व्य' (व्यक्ति या परीक्षार्थी) के स्थान पर काम कर रहे हैं; प्रयोगकर्ता 'प्र' आपको पृष्ठ ३२९-३३० पर दिये गये 'युगल-सहचरों' को कंठस्थ करनेके लिए आज्ञा देता है। वह सूची यों शुरू होती है:

«उत्तेजनाके शब्द[8]»	«प्रतिक्रियाके शब्द[9]»
स्वर	चिह्न
घास	लघु
बन्दर	अदरक
जमुना	डेगची
इत्यादि	इत्यादि

'प्र' आपको २ सैकेंड तक उत्तेजनाका शब्द दिखलाता है और फिर २ सैकेंड तक प्रतिक्रियाका शब्द, और इसी प्रकार पूरी सूची दिखला जाता है। जब वह दूसरी बार सूची को दोहराने लगता है, तब आप कुछ प्रतिक्रिया-शब्दों को पहिलेसे अन्दाजने में समर्थ हो जाते हैं। तीसरी बार आप अधिक प्रतिक्रिया-शब्दों को पहिलेसे ही बतलाने लगते हैं, चौथी बार उससे भी अधिक, और पाँचवीं बार, मान लीजिये,

[1] atrophy [2] interference [3] trace [4] brand new traces [5] whole learning [6] spaced learning
[7] experiments on direct interference [8] stimulus words [9] response words
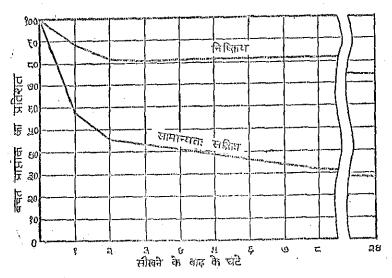
आकृति १३६. सीखनेके बादकी निष्क्रियतासे धारणाको सहायता मिलती है। इस प्रयोगमें परीक्षार्थी मनुष्य नहीं थे, वरन् कनखजूरे थे---क्या इस प्रचुर प्राकृतिक देन का यह उपयोग ढूंढ़ निकालनेके लिए मनोवैज्ञानिक धन्यवादके पात्र नहीं हैं? कनखजूरेको एक सँकरे, अँधेरे बिलमें, जिसमें कोई मुलायम चीज बिछी हुई हो, रखकर उसे 'निद्रित' (या निद्राकी तरह निष्क्रिय दशामें) किया जा सकता है। यदि उसे ऐसी जगहमें बन्द कर दिया जाये और अँधेरेमें छोड़ दिया जायें, तो वह घंटों तक बिना हिले-डुले वहां पड़ा रह सकता है। इस प्रयोगमें, कनखजूरों (कंसलों या गोजरों) ने पहिले तो प्रशिक्षण-पिंजरेके किसी अँधेरे कोनेसे अलग रहना सीखा। वे जब कभी उस अँधेरे कोनेमें जाते थे, उन्हें बिजली का धक्का लगता था, और औसतन् १५-१८ धक्के खानेके बाद वे उस अँधेरे कोनेसे बचना सीख जाते थे। इसके बाद प्रत्येक कनखजूरा तुरन्त 'सुला' दिया जाता था या एक गोल पिंजरेमें रख दिया जाता था जहां वह प्रथम मध्यान्तरमें अपनी सामान्य क्रिया जारी रख सकता था। इस मध्यान्तरके बाद पुनः सीखनेकी विधिसे हर कनखजूरेकी परीक्षा ली जाती थी कि उसने कितना धारण कर रखा। तात्पर्य यह है कि वह वापस उस प्रशिक्षण-पिंजरेमें रख दिया जाता था और देखा जाता था कि अन्धेरे कोनेसे बचनेकी आदत को पुनः सीखनेमें उसे कितने प्रयासों और बिजलीके कितने धक्कोंकी आवश्यकता होती थी। उदाहरणके लिए, यदि पहिले कनखजूरे ने यह बात सीखनेके लिए १५ बार प्रयास किया था, किन्तु उसीको पुनः सीखनेमें केवल ३ बार प्रयास किया, तो उसकी 'बचत' या धारणा-प्राप्तांक ८० प्रतिशत माना जायेगा।

जांचके लिए किये गये प्रयोगोंसे पता चला कि पुनः सीखनेके पहिलेकी निद्रावस्था के कारण सीखनेकी योग्यता पर कोई अधिक अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा---या हम कह सकते हैं कि सामान्य क्रियाकी अग्रिम अवधिका भी सीखनेकी योग्यता पर प्रभाव नहीं पड़ा। सीखनेके ठीक पहिले अत्यन्त क्रियाशीलताकी स्थिति (जैसे, पैरोंसे कोई मशीन चलाना) से सीखनेकी योग्यताको क्षति पहुँची और सीखनेके बाद इस तरहकी क्रिया करनेसे धारण शक्तिकी क्षति हुई। [एच० मिनामी और के० एम० डैलेनबाश्, १९]।

आपने २० प्रतिक्रिया-शब्दों में से १६ को सही-सही बतला दिया। 'प्र' कहता है: शाबाश! अब आप विश्वास कर सकते हैं, किन्तु कुछ मिनटों तक विश्राम करते समय अपने मनको व्यस्त रखनेके लिए आप कृपया इन चित्रोंकी ओर देखते रहिये।' १५ मिनटकी विश्रामावधिके बाद वह कहता है: 'अब हम उस सूचीको एक बार फिर दोहरायेंगे।' इस समय

तक आप कुछ शब्दोंको भूल चुके होते हैं, किन्तु फिर भी आप १२ शब्दोंको सही-सही बतलानेमें समर्थ हो जाते हैं; इससे यह सिद्ध हुआ कि पहिले आपने जितना सीखा था उसका १२/१६ या ७५ प्रतिशत अब भी आप धारण किये हुए हैं।

किन्तु मान लीजिए, 'प्र' ने प्रारम्भके सीखनेके तुरन्त बाद आपको विश्राम करनेका अवसर देनेके बजाय यह कहा होता—'अब मैं आपसे उन्हीं उत्तेजना-शब्दोंके लिए नये प्रतिक्रिया-शब्दोंको सीखनेके लिए कहता हूं'; और इसके बाद उसने आपको निम्नलिखित जोड़े दिखलाने शुरू कर दिये होते :

«उत्तेजना-शब्द»	«प्रतिक्रिया-शब्द»
स्वर	सूची
घास	विदेशी
बन्दर	चमड़ा
जमुना	पीला
इत्यादि	इत्यादि

सम्भव है कि पिछली बार सीखे हुए प्रतिक्रिया-शब्द आगे आ जायं और नये प्रतिक्रिया-शब्दोंको सीखनेके मार्गमें बाधा उत्पन्न करें, किन्तु ये पुरानी 'प्रतिक्रियाएं पुष्टीकृत[1] न होने पर कुछ आवृत्तियोंके बाद स्वतः विलीन हो जायेंगी और आप नयी प्रतिक्रियाओंको अच्छी तरह सीखने में समर्थ हो सकेंगे। इसके पश्चात् 'प्र' लघु विश्रामावधिमें आपका मन बहलाने के लिए चित्र देता है और विश्राम-कालकी समाप्ति पर कहता है: 'अब हम फिर प्रारम्भिक सूचीकी ओर लौटेंगे। मैं आपको उत्तेजना-शब्द दिखलाऊंगा और आपसे मूल प्रतिक्रिया-शब्द बतलानेके लिए कहूंगा'। मूल प्रतिक्रिया-शब्दोंका प्रत्याह्वान[2] करनेकी चेष्टा करते हुए आप यह अनुभव करते हैं कि बादमें सीखी हुई स्थानापन्न[3] प्रतिक्रियाओंसे कुछ विघ्न पहुँच रहा है। इन स्थानापन्न प्रतिक्रिया-शब्दों का यदि उच्चारण न किया जाय, तो भी ये मूल प्रतिक्रिया-शब्दोंके प्रत्याह्वानमें हस्तक्षेप और विलम्ब करते हैं। फिर भी धारणा[4] और प्रत्याह्वान[2] के साथ यह बाधा पूर्ण नहीं होती; आप देखते हैं कि मूल प्रतिक्रिया-शब्द बिल्कुल ही विस्मृत नहीं हो गये हैं और आप पहिलेके १२ सही प्रतिक्रिया-शब्दों (जो विश्रामावधिके पश्चात् इस तरहकी किसी सीधी बाधा से रहित स्थितिमें स्मरण किये गये थे) की तुलनामें ८ सही प्रतिक्रिया-शब्द बतला देते हैं। शुरू-शुरूमें आपने २० प्रतिक्रिया-शब्दोंमें से १६ को सही-सही बतलानेका अभ्यास कर लिया था; इसके बाद विश्राम करने पर, किन्तु बिना किसी सीधी बाधाके, आप उससे ४ शब्द कम बतला पाये थे, किन्तु इस सीधी बाधा के कारण उसमें से भी चार शब्दों की संख्या कम हो गयी। ठीक-ठीक संख्याओंमें तो भिन्नता मिलेगी ही, किन्तु इस प्रकारके कई प्रयोगोंमें कुछ-कुछ ऐसे ही परिणाम प्राप्त हुए हैं (१६, १८, २४)।

यदि प्रतिक्रियाओंकी दूसरी सूची खूब अच्छी तरह सीख ली गयी है, तो वह अधिक बाधा उत्पन्न करेगी। यदि वह मामूली तौरसे सीखी गयी होती, तो इतनी बाधा न डालती। यह परिणाम तो सरलतासे समझमें आ जाता है, किन्तु मान लीजिए कि दूसरी सूची इतनी अच्छी तरह सीख ली गयी है कि उस के शब्दोंके जोड़े पूर्णतः परिचित हो चुके हैं—तो, ऐसी दशा में आप क्या आशा करेंगे? इसमें सन्देह नहीं कि ये नयी प्रतिक्रियाएं उपयोगमें आनेके लिए बहुत प्रस्तुत रहती हैं, किन्तु ये तुरन्त पहचान ली जाती हैं कि इनका सम्बन्ध दूसरी सूची से है; और चूंकि अब आप पहिली सूचीका प्रत्याह्वान करने के लिए तत्पर[5] हैं, इसलिए आप तत्क्षण इन दूसरी प्रतिक्रियाओं को अस्वीकार कर सकते हैं; और इनकी बाधा उतना परेशान करनेवाली भी नहीं होती जितनी दूसरी सूची के कम परिचित होने पर उसकी बाधा होती है। अथवा, यदि पहिली सूची ही पूरी तरह कंठस्थ की जा चुकी है, तो दूसरी सूचीका कोई भी प्रतिक्रिया-शब्द, जो पहिली सूचीमें घुसना चाहेगा, तुरन्त पहचान लिया जायगा कि यह इससे सम्बन्धित नहीं है। यदि दोनों ही सूचियां पूर्णतया सीखी जा चुकी हैं, तो आप अधिक कठिनाईके बिना ही एक सूचीसे दूसरी सूची पर जा सकते हैं। उदाहरणके लिए, यदि आप अंग्रेजी और हिन्दी भाषाओंसे पूर्णतया परिचित हैं, तो आप ३, ५, ८, १, ६, २ इत्यादि गिनतियोंके लिए अंग्रेजी या हिन्दी नाम आसानीसे बतला सकते हैं। जब आप हिन्दीके लिए तत्पर[5] होते हैं, तब हिन्दी नाम आपकी जबान पर आते हैं और जब अंग्रेजीके लिए तत्पर होते हैं, तब अंग्रेजी नाम। इन मामलोंमें तत्परता[5] का तत्त्व बाधाको दूर ही रखता है। (पृ० १३४)

परोक्ष बाधा. अभी हमने जिस बाधा-सम्बन्धी प्रयोगका वर्णन किया है, उसमें एक ही उत्तेजनाकी दो वैकल्पिक[6] प्रतिक्रियाएं परस्पर सीधे रूपसे प्रतियोगिता कर रही थीं। किन्तु मान लीजिए सीखी जानेवाली दूसरी सूचीमें वही उत्तेजना-शब्द सम्मिलित नहीं हैं जो प्रथम सूचीमें हैं। मान लीजिए कि दोनों सूचियोंके शब्द बिल्कुल अलग-अलग हैं। आप शब्दोंके जोड़ोंकी पहिली सूचीको सीखते हैं (बहुत अच्छी तरह नहीं), फिर दूसरी सूचीको सीखते हैं और विश्रामावधि के पश्चात् आप पहिली सूचीके प्रतिक्रिया-शब्दोंका प्रत्याह्वान करनेकी चेष्टा करते हैं। अगर आपको किसी दूसरी सूचीको सीखना न होता, बल्कि प्रारम्भिक सीखने और उसके प्रत्याह्वानके बीचकी सम्पूर्ण अवधिमें केवल विश्राम करनेको

[1] reinforced [2] recall [3] substituted [4] retention [5] set [6] alternative

मिलता, तो आप जितनी अच्छी तरह प्रत्याह्वान कर पाते, उतनी अच्छी तरह इस प्रत्याह्वान-परीक्षामें नहीं कर पाते। इस परोक्ष बाधाका कारण बतलाना सहज नहीं है, किन्तु इसको एक तथ्य मानकर चलना होगा। यदि दूसरा पाठ पहिले पाठके समान ही न हो, तो यह परोक्ष बाधा हल्की-सी होती है। यदि पहिली सूचीमें शब्दोंके जोड़े हों और दूसरी सूचीमें संख्याओंके जोड़े, तो यह बाधा और भी हल्की होती है।

कोई भी व्यक्ति जो बाधा[१] के द्वारा सभी विस्मृतियों की व्याख्या करनेका प्रयत्न करता है, उसे अधिकतर परोक्ष बाधा का ही आश्रय लेना पड़ता है। अपेक्षाकृत विश्रामकी अवधि में भी जो विस्मृति हो जाती है, उसका कारण समझानेके लिए उसे यह मान कर चलना पड़ेगा कि कोई भी, किसी तरहकी भी क्रिया किसी भी पहिले सीखी हुई चीज़में कुछ न कुछ बाधा[१] डालती है और छोटी-छोटी बाधाएं ही जब एकत्र हो कर काफ़ी सघन हो जाती हैं, तब वे धीरे-धीरे धारणाशक्ति[२] को बिल्कुल समाप्त कर देती हैं। आत्यन्तिक सीमा तक खींच-तान करने पर बाधा-सिद्धान्त इतना अस्पष्ट[३] हो जाता है कि उसकी वैज्ञानिकता नष्ट हो जाती है और उसका कोई व्यावहारिक महत्व नहीं रहता।

सीखनेके तुरन्त बाद क्या होता है—ताजगीके प्रभाव.[४] बाधाका सिद्धान्त इस तथ्यका कारण आसानीसे नहीं बतला पाता कि विस्मृतिकी वक्ररेखा का ऐसा स्वरूप क्यों है—सीखनेके बादवाले प्रथम कुछ मिनटों और घंटोंमें उसमें इतना तेज़ पतन क्यों दिखायी देता है? सीखनेके बादके दूसरे या पचासवें घंटेके बजाय पहिले घंटे में ही बाधा इतनी अधिक क्यों होती है? इसके जो कारण बताये जाते हैं, वे सब बहुत काल्पनिक हैं। किन्तु सीखनेके तुरन्त बादमें जो समय आता है, उस पर विशेष ध्यान देना अच्छा ही रहता है। इसीको «ताजगी के प्रभाव[४]» भी कह सकते हैं। सीखनेवालेके लिए ये काफ़ी व्यावहारिक महत्त्वके होते हैं।

ताजगीके प्रभावोंसे हमारा तात्पर्य अल्पकालिक प्रभावोंसे, ऐसे प्रभावोंसे होता है, जो थोड़े समय तक ही बने रहते हैं और शीघ्र ही विलीन हो जाते हैं। विस्मृतिकी वक्ररेखामें पहिले तेज़ीसे जो पतन होता है उसीकी बातको ले लीजिए: यह पूछनेके बजाय कि थोड़ेसे समयके बाद ही इतना कैसे भूला जा सकता है, यह पूछिए कि थोड़े समय तक भी इतना अधिक कैसे स्मरण रखा जा सकता है। कोई आदमी इस उद्देश्यसे कि आप भी वही गायेंगे, एक गीतकी पंक्ति गाता है: एक या दो सैकेंड बाद तो आप ठीक उसी लयमें गीतकी पंक्तिको दुहरा सकेंगे, किन्तु यदि आपने आधा मिनट भी प्रतीक्षा की तो आप उस लयके आस-पास ही पहुँच सकेंगे। प्रारम्भमें ऐसा लगता था कि वह लय आपके कानमें गूंज रही है—जो कि वास्तवमें आपके मस्तिष्कमें गूंज रही होती है—और ऐसा प्रतीत हुआ कि आपने उसका प्रत्याह्वान नहीं किया, बल्कि केवल उस को जारी रखा। इस तरहके कई मामलोंमें आपको ऐसा अनुभव होता है कि अभी-अभी जो संवेदना[५] या अनुभव हुआ है, वह अभी तक 'प्रतिध्वनित' हो रहा है और कुछ कम तीव्रता के साथ अभी तक जारी है। इस अनुभूतिसे भले ही कोई बात सिद्ध न होती हो, किन्तु इससे इस परिकल्पना[६] का सुझाव मिलता है कि किसी उत्तेजना द्वारा प्रारम्भ की हुई एक मस्तिष्कीय क्रिया उत्तेजनाके रुकनेके साथ ही साथ एकाएक नहीं बन्द हो जाती, बल्कि थोड़े समय तक जारी रहती है। इस तरह जारी रहनेकी क्रिया[७] कई ताजगीके प्रभावोंकी व्याख्या कर सकेगी।

«'गरम होने' (स्फूर्ति लाने)[८] का प्रभाव». गेंद फेंकनेवाला खिलाड़ी खेलसे पहिले अभ्यास करके कुछ स्फूर्तिका संग्रह कर लेता है, दूसरे खिलाड़ीभी व्यवहारतः यही चीज करते हैं। उनका अनुभव है कि प्रारम्भमें थोड़ा अभ्यास कर लेनेसे शक्ति और कुशलता, दोनों बढ़ जाती हैं। मामूली मात्रा में शक्तिपूर्ण क्रिया कर लेने पर मांस-पेशियां भिन्न शारीरिक दशा में हो जाती हैं, कार्यके लिए अधिक तत्पर और उत्तेजना के प्रति अधिक प्रतिक्रियाशील हो जाती हैं; और यही बात मस्तिष्कके सम्बन्धमें भी सच जान पड़ती है। विश्रामके समय 'गरम होनेकी दशा' धीरे-धीरे खत्म हो जाती है, इसीलिए दिनके कार्यके सिलसिलेमें अल्पकालीन विश्राम लम्बी अवधि के विश्रामसे अधिक लाभदायक होते हैं। इस प्रकार क्रियाका एक अल्पकालिक प्रभाव यह 'गरम होनेकी दशा' हुई, जो उसी क्रियाको जारी रखनेकी विशेष तैयारी होती है।

«अल्पस्थायी बाधा[९]». बाधा[१] पर किये गये प्रयोगोंमें सबसे अधिक बाधा उस समय पायी गई है, जब पहली सूचीके तुरन्त बाद या प्रत्याह्वान-परीक्षाके तुरन्त पहिले दूसरी सूची सीखी जाती है (२१)। इसमें सन्देह नहीं कि जब कभी दूसरी सूची के कारण आपको पहली सूचीको भूल जाना पड़ता है और उन्हीं उत्तेजना-शब्दोंके लिए दूसरी सूचीके नये प्रतिक्रियाशब्दों को स्थानापन्न करना पड़ता है, तब इसकी सम्भावना रहती है कि स्थानापन्न शब्द कुछ समय तक बने रहें, किन्तु जब बाधा 'परोक्ष'[१०] होती, है तब दोनों सूचियोंके बीचमें पर्याप्त मध्यान्तर रहनेसे आपके लिए यह सम्भव हो पाता है कि आप दोनों सूचियोंको बिना अधिक बाधाके सीख सकें। यह मध्यान्तर

[१] interference [२] retention [३] vague [४] recency effects [५] sensation [६] hypothesis
[७] continuing activity [८] warming-up [९] short lived interference [१०] indirect

ठीक कितना लम्बा होना चाहिए, यह प्रयोगके द्वारा मालूम नहीं किया जा सका है और शायद इसमें बहुत भिन्नता हो सकती है, किन्तु यह तो कहा ही जा सकता है कि ज्यामिति[1] के एक साध्य[2] को भली भांति सीख लेनेके पश्चात् कुछ मिनटों का पूर्ण विश्राम[3] मिल जाने पर दूसरा साध्य पहले साध्यकी धारणा में बाधा नहीं उत्पन्न करेगा।

«प्रत्याह्वानकी गति (चाल)». हालके अनुभवों और विचारोंका प्रत्याह्वान शीघ्रता से हो जाता है, जब कि पुराने अनुभवों और विचारोंका प्रत्याह्वान करनेमें कुछ विलम्ब अवश्य होता है। यदि आप फ्रांस, इटली, स्वेडन, डेनमार्क, स्पेन और यूनान (ग्रीस) की राजधानियोंके नाम जानते हैं, किन्तु हाल ही में आपने उनके सम्बन्ध में कभी विचार नहीं किया है, तो उन सबको स्मरण करने में आपको कई मिनट लग सकते हैं; किन्तु एक बार जब आप उन नामोंका प्रत्याह्वान कर लेते हैं, तब कुछ मिनटोंके बाद उनका बहुत शीघ्र प्रत्याह्वान कर सकते हैं, क्योंकि वे अब 'दिमाग़में ताजे' हैं। चूंकि पुराने चिह्न[4] धीमी गतिसे कार्य करते हैं और ताजी प्रतिक्रियाएं शीघ्रता से और सरलता से दोहरायी जा सकती हैं, इसलिए ताजी प्रतिक्रियाएं बहुधा रास्तेमें आ जाती हैं और पुरानी प्रतिक्रियाओंका प्रत्याह्वान रोक देती हैं।

«ताजगीके प्रभाव[5] और विस्मृतिकी वक्ररेखा». धारणा की वक्र रेखामें पहले तेजीसे जो पतन होता है, उसका कारण ताजगीके प्रभावोंका विलीन हो जाना है। स्मृति-चिह्नों[6] में तेजीसे कमजोरी आ जानेके कारण वह पतन नहीं होता। यदि सीखनेकी कोई तीव्र क्रिया अपने पीछे अपनेसे कम तीव्र क्रिया या कमसे कम सीखी हुई प्रतिक्रियाओं की 'गरम हुई दशा[7]' ही छोड़ जाती है, तो भले ही कोई प्रबल चिह्न न स्थापित हो पाये, किन्तु थोड़े समय तक अच्छी स्मृतिका बने रहना तो सम्भव हो ही जाता है। अगले दिन ताजगीके प्रभाव विलीन हो चुकते हैं और स्मृति केवल चिह्नों[4] पर निर्भर करती है।

«ताजगीके प्रभाव और चिह्नोंकी स्थापना». एक सीखने की प्रक्रियाकी कोई भी जारी रहने वाली क्रिया[8] अभी-अभी निर्मित स्मृति-चिह्नों को सबल बना देती है, और विशेष रूपसे उस समय तो इसमें कोई सन्देह ही नहीं रहता, जब जारी रहने वाली क्रिया अनायास प्रत्याह्वान[9] के रूपमें होती है; जिसका मतलब होता है पाठ को अंशतः दोहराना[10]। इसलिए हम मान सकते हैं कि सीखनेकी अवधिके समाप्त होनेके साथ ही चिह्न की स्थापना का कार्य पूरा नहीं हो जाता, बल्कि उसके बाद भी थोड़े समय तक जारी रहता है। इस अल्प कालमें कोई भी बाधक क्रिया चिह्नोंकी स्थापना की इस प्रक्रिया को बाधित कर देगी और उनको उतनेसे भी अधिक निर्बल कर देगी जितने वे उसके अभावमें हुए होते। आगे चलकर, जब चिह्न मस्तिष्ककी निष्क्रिय रचना[11] मात्र रह जाते हैं, तब उन पर 'परोक्ष बाधाओं[12]' का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, हालांकि जब निश्चित रूपसे दूसरी प्रतिक्रियाओंको स्थानापन्न करने की चेष्टा की जाती है, तब वे अवश्य बाधित हो जाते हैं।

«चिह्नोंकी स्थापना पर आघातों (धक्कों) के प्रभाव[13]». यदि मस्तिष्कमें स्मृति-चिह्न को अंकित करनेकी जैविक प्रक्रिया[14] पूर्ण होनेमें थोड़ा समय लेती है, तो हमें यह आशा करनी चाहिए कि सिर पर आघात पहुँचानेसे, जिससे मस्तिष्क थोड़ी देर के लिए अपना नियंत्रण खो बैठता है (अचेतनता—बेहोशी—उत्पन्न हो जाती है), यह प्रक्रिया रुक जायगी; और फलस्वरूप आघात के «ठीक पहले» होने वाले अनुभवोंके चिह्न अच्छी तरह निर्मित न हो पायेंगे और ये अनुभव बाद में याद नहीं किये जा सकेंगे। इसी तरहके कई मामलोंके विवरण प्राप्त हुए हैं। हाल ही में कतिपय मानसिक रोगोंकी चिकित्सामें 'आघात चिकित्सा-पद्धति[15]' का उपयोग करने पर इस प्रश्नके सम्बन्धमें अधिक स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। रोगीके सिरमें एक क्षणिक शक्तिशाली विद्युत्-धारा का प्रवेश करा के आघातका प्रभाव[16] उत्पन्न किया जासकता है। रोगी कुछ समयके लिए अपनी चेतना खो बैठता है, किन्तु कई मामलों में देखा गया है कि बादमें उसकी मानसिक स्थिति उन्नत हो जाती है। निम्नलिखित ढंगसे दस रोगियोंकी परीक्षा ली गयी थी : विद्युत्-धारा ग्रहण करनेके थोड़ी देर पहले ही उन्होंने युगल-सहचरों[17] की एक सूचीको कंठस्थ किया था। बादमें, दिनमें, जब वे आघातके प्रभावसे मुक्त हो चुके थे, धारणा के लिए उनकी परीक्षा ली गयी। नियंत्रण वाले दिनों की तुलना में, जब बिजली के आघातको छोड़ कर शेष सारा क्रम एक-सा ही था, इन दिनों उनकी धारणा शक्ति बहुत निर्बल हो गयी थी। फिर भी, आघातके कारण उनके सीखने की योग्यता को कोई क्षति नहीं पहुँची थी। वे नये चिह्नोंका निर्माण कर सकते थे, किन्तु आघातसे पहले निर्मित स्मृति-चिह्नों को खो चुके थे। सम्भव है कि वे इन चिह्नोंको पूरी तरह स्थापित न कर पाये थे, क्योंकि उनके निर्माणकी प्रक्रिया में आघातके कारण विघ्न पड़ गया था। पशुओं पर किये हुए प्रयोगों में भी ऐसे ही परिणाम प्राप्त हुए हैं, हालांकि इस

[1] geometry [2] proposition [3] relaxation [4] traces [5] recency effects [6] memory traces [7] warmed-up state [8] continuing activity [9] spontaneous recalls [10] review [11] inactive structures [12] indirect interference [13] shock effects of the establishment of traces [14] biological process [15] shock therapy [16] shock effect [17] paired associate

समस्याके कई पहलुओंकी अभी छान-बीन नहीं हो सकी है (६, २७)।

दोहराना.[१] धारणा के विषयमें एक बहुत व्यावहारिक तथ्यको अभी तक सामने नहीं लाया गया है। जब एक पाठ को सीख लेने पर उसे अंशतः भुला दिया जाता है, और फिर दुबारा उसे सीखा जाता है, तब दूसरी बार वह पहले की अपेक्षा अधिक मजबूतीसे मस्तिष्कमें जम जाता है। यदि वह फिर अंशतः विस्मृत हो जाय और फिर दुबारा सीखा जाय, तो तीसरी बार वह और अच्छी तरह जम जाता है। इसी प्रकार आगेके क्रमोंमें भी होता रहता है। दोहराने में जहां तक सम्भव हो सके, प्रपाठ पर निर्भर रहना ही सर्वोत्तम होता है। पुराने चिह्नोंको काम करने दीजिए और इस प्रकार उन्हें अपना निर्माण स्वयं करने दीजिए।

प्रत्याह्वान[२]

इस प्रकरणके प्रारम्भमें याद करनेके दो प्रमुख तरीके प्रत्याह्वान और प्रत्यभिज्ञा या पहचान[३] बतलाये गये थे और एक उदाहरण देकर उनके बीचके अन्तरको स्पष्ट किया गया था। एक कामचलाऊ परिभाषा देते हुए हम कह सकते हैं कि 'किसी प्रस्तुत वस्तुको स्मरण करना तो प्रत्यभिज्ञा है' और 'किसी अप्रस्तुत वस्तुको स्मरण करना प्रत्याह्वान है'। 'प्रस्तुत' से यहां तात्पर्य है—'ज्ञानेन्द्रियोंके सम्मुख प्रस्तुत'।

एक आदमी आपके सामने खड़ा होता है : आप उसके चेहरे को पहचान लेते हैं और उसके नामका प्रत्याह्वान कर लेते हैं। किसी आदमीके नामका जिक्र किया जाता है : आप उस नामको पहचान जाते हैं और उस आदमीके चेहरेका प्रत्याह्वान करते हैं।

प्रत्याह्वान-स्मृति पुनरुत्पादक-स्मृति[४] के नामसे भी जानी जाती है, और कभी-कभी तो «पुनरुत्पादन[५]» शब्द «प्रत्याह्वान» शब्दसे अधिक उपयुक्त जँचता है। यदि आप मुझसे पूछें कि क्या मैं हैमलेट के स्वगत-भाषण[६] का प्रत्याह्वान कर सकता हूँ, तो मेरे 'हां' कहनेका केवल यही अर्थ हो सकता है कि मैं उसके कुछ प्रारम्भिक शब्दों और उसके भाषणकी सामान्य प्रकृतिको स्मरण करता हूँ। किन्तु, यदि आप मुझसे कहें कि स्मृतिके बलसे मैं उसे पुनः उत्पन्न[७] कर दूं, तो मेरा काम कठिन हो जायगा। यदि आप मुझसे पूछें कि क्या मैं सिस्टाइन मैडोना[८] का प्रत्याह्वान कर सकता हूँ और मेरा उत्तर हो कि 'हां', तो उसका यही तात्पर्य होगा कि मुझ पर उस चित्रका एक साधारण प्रभाव[९] है, किन्तु यदि आप कहें कि मैं उसे पुनः उत्पन्न कर दूं, तो मुझे स्मृतिके बल पर उसकी एक प्रतिकृति तैयार करनी पड़ेगी—या शायद आप उसका सुन्दर शाब्दिक वर्णन सुन कर भी सन्तुष्ट हो जायँ। फिर भी, «प्रत्याह्वान» शब्दका प्रयोग काफ़ी विस्तृत अर्थमें किया जा सकता है, जिसमें अप्रस्तुत वस्तुका स्मरण करनेके सभी प्रकारों और मात्राओंका समावेश हो सकता है।

स्मृति-प्रतिमाएं[१०]. यदि कोई प्रत्याहृत तथ्य या अनुभव किसी एक ज्ञानेन्द्रियसे होने वाली संवेदना जैसा लगता है—यदि यह यथार्थवत् होता है और वास्तविक देखने या सुनने या सूंघनेके समान होता है, तो यह स्मृति-प्रतिमा कहलाता है। क्या आप आकाशकी नीलिमा का, या वायलिनके स्वर का, या किसी मित्रकी आवाजका, या कपूरकी सुगन्धका, या हाथ में रखे हुए बर्फ़के टुकड़से होने वाली अनुभूतिका; या उछलने, ठोकर मारने, जम्भाने या मुट्ठीको जकड़नेकी अनुभूतिका प्रत्याह्वान कर सकते हैं? लगभग हर आदमी इनमेंसे कुछ प्रश्नोंके उत्तरमें 'हां' कहेगा। एक आदमी किसी दृश्यका सजीव चित्र प्राप्त करनेका वर्णन करेगा और दूसरा आदमी किसी संगीतकी यथार्थवत् मानसिक पुनरावृत्तिका। वे जिस चीजका प्रत्याह्वान करते हैं, वह निश्चित रूपसे उनको वास्तविक सांवेदनिक अनुभव[११] के समान जान पड़ती है।

स्मृति-प्रतिमाओंकी सजीवता[१२] और यथार्थताकी दृष्टिसे व्यक्तियोंमें बहुत भिन्नता होती है (८)। अधिकांश स्मृति-प्रतिमाएं यथार्थता और पूर्णता की दृष्टिसे वास्तविक सांवेदनिक अनुभवकी तुलनामें निम्नकोटिकी होती हैं। व्यावहारिक दृष्टिकोणसे वे इस बात में निम्न कोटि की होती हैं कि जब तक वस्तुकी वास्तविक उपस्थितिमें तथ्योंका निरीक्षण न कर लिया जाय, तब तक उन तथ्यों को उस वस्तुकी स्मृति-प्रतिमा में नहीं पाया जा सकता।

एक विश्वविद्यालयमें उसके सुन्दर पुस्तकालय-भवन के सामने वाले बरामदेके खम्भोंकी क़तार बड़ी मनोहर लगती है। छात्र इस भवनमें से होकर नित्य गुजरते हैं और उस बरामदे को देखकर बहुत प्रसन्न होते हैं। उस विश्वविद्यालय की मनोविज्ञान-कक्षा में एक सुन्दर प्रयोग यह हुआ करता है कि पहले छात्रोंसे कहा जाता है कि पुस्तकालय के अग्र-भाग की एक मानस-प्रतिमा का प्रत्याह्वान करें; और फिर उनसे कहा जाता है कि अपनी प्रतिमा में गिनकर बतावें कि बरामदे के खम्भोंकी संख्या क्या है। लेकिन इतना कहते ही छात्र आपत्ति करने लगते हैं। 'हमने उन खम्भोंकी कभी गिनती

[१] reviewing [२] recall [३] recognition [४] reproductive memory [५] reproduction [६] soliloquy [७] reproduce [८] Sistine Madonna [९] impression [१०] memory images [११] sensory experience [१२] vividness

नहीं की, इसलिए उनकी संख्या बतानेकी इस समय हमसे आशा नहीं की जा सकती।' वास्तवमें, उनमें से शायद ही कोई खम्भोंकी ठीक संख्या बता पाता है; और जिन छात्रोंकी प्रतिमाएं सजीव तथा यथार्थवत् होती हैं, वे इस दृष्टिसे उन छात्रोंसे कुछ अच्छे सिद्ध होते हैं, जिनकी प्रतिमाएं धुंधली और अस्पष्ट होती हैं।

साधारणतः किसी सुन्दर भवनको देखते समय हम केवल उसका सामान्य प्रभाव ही ग्रहण करते हैं; और बादमें जब हम उसकी प्रतिमा की रचना करते हैं, तब इस सामान्य प्रभावका ही हम प्रत्याह्वान करते हैं। यदि हम उस भवनकी विस्तारकी बातोंको भी ग़ौरसे देखें, तो बादमें उनका भी प्रत्याह्वान कर सकेंगे। भवनकी ओर देखते समय यदि हम उसकी रंग-योजना और उसके विभिन्न भागोंके कलात्मक सन्तुलनका अध्ययन करते हैं, तो हम उतनी ही चीजोंका प्रत्याह्वान कर पाते हैं, जितनी चीजोंका निरीक्षण हमने किया था, उससे अधिक का प्रत्याह्वान करनेमें हम असमर्थ रहते हैं।

प्राथमिक स्मृति-प्रतिमा[1]—ईडेटिक प्रतिमा. अब तक प्रतिमाओंके विषयमें जो कुछ कहा गया है, उसका सम्बन्ध उन्हीं प्रतिमाओंसे है, जिनका प्रत्याह्वान प्रथम अनुभवके कुछ समय बाद किया जाता है। इन प्रतिमाओंसे प्राथमिक स्मृति-प्रतिमा[1] इस मानेमें भिन्न है कि प्रथम उत्तेजना के समाप्त हो जानेके कुछ क्षण बाद तक भी अनुभव बना रहता है। जब कोई आदमी बात-चीत करना बन्द करता है, तब उसके कुछ सैकेंड बाद तक आप उसकी आवाजको प्रतिध्वनिकी भांति सुन सकते हैं—यह «ताजगीका प्रभाव[2]» होता है। *यद्यपि उसके बोलते समय आप उसकी बातों पर* अधिक ध्यान नहीं दे रहे थे, तो भी आप जान सकते हैं कि वह क्या कह रहा था। इसी प्रकार, अपनी खिड़कीसे सामनेके *दृश्य-पट को आप जब देख चुकते हैं, उसके तुरन्त बाद* भी आप उसको जितनी अच्छी तरह देख सकते हैं, उतनी अच्छी तरह थोड़ी देर बाद उसका प्रत्याह्वान नहीं कर सकते। *यह प्राथमिक स्मृति प्रतिमा बिल्कुल वही चीज नहीं* है, जो 'पश्चात्-प्रतिमा[3]' होती है और जिसका उल्लेख हम पिछले प्रकरणों (पहले और चौदहवें) में कर चुके हैं (पृ० ६, २६६)।

अब ऐसा जान पड़ता है कि चौदह वर्षकी आयुसे नीचेके कई लड़के, शायद उनमें से आधे ही लड़के, यदि आधे मिनट *तक किसी जटिल वस्तु या चित्रको तन्मय होकर* देखें और उसके बाद अपनी आंखें बन्द कर लें, या इससे भी अच्छा यह हो कि आंखोंको किसी समतल धूसर पृष्ठभूमिकी ओर फेर लें, तो वे उस वस्तुको ऐसे «देख» सकते हैं, मानो वह अब भी उनकी आंखोंके सामने उपस्थित हो; और उसके सम्बन्धमें ऐसे प्रश्नोंका उत्तर दे सकते हैं, जिनके विषयमें उन्होंने वस्तु की वास्तविक उपस्थितिके समय सोचा तक न था। यह प्रतिमा बिल्कुल फ़ोटोकी तरह नहीं होती, बल्कि व्यक्तिकी रुचिके अनुसार यह अपनेको परिवर्तित भी कर सकती है, दूसरे आकारमें ढल सकती है। वस्तु पहलेसे अधिक बड़ी दिखायी दे सकती है, या अधिक छोटी हो सकती है, या चलती-फिरती दिखायी दे सकती है। उसका रंग पहलेसे अधिक चटकीला लग सकता है, या बिल्कुल दूसरी तरहका मालूम हो सकता है। ऐसे परिवर्तन या तो ऐच्छिक[4] हो सकते हैं, या अनैच्छिक[5]। इस तरहकी प्रतिमा, यद्यपि कुल मिलाकर उस दृश्यसे काफ़ी मेल खाती है, जिससे वह ली गयी होती है, तो भी वह बिल्कुल व्यक्तिगत[6] होती है।

ये प्रतिमाएँ[7] बचपनके अन्तिम भागमें बहुत सामान्य रूपसे पायी जाती हैं और साधारणतः किशोरावस्थामें लुप्त हो जाती हैं, हालांकि कुछ लोग वयस्क होने पर भी कभी-कभी इस तरहकी प्रतिमाएं ग्रहण कर लेते हैं। यद्यपि ऐसी प्रतिमाएं साधारणतः किसी वस्तुके मननकी तन्मयताके समाप्त होनेके तुरन्त बाद प्रकट होती हैं, तथापि वे बादमें भी पुनः प्रकट हो सकती हैं (१, १४, १७, २०)।

विभ्रम[8]. चूंकि कुछ व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यके अनुसार एक सजीव स्मृति-प्रतिमा 'सभी तरहसे एक वास्तविक प्रत्यक्ष[9] के समान होती है,' इसलिए प्रश्न उठता है कि इस तरहकी प्रतिमाको प्रत्यक्षसे कैसे अलग किया जा सकता है। ज्ञानेन्द्रियोंके सामने जो वस्तु-स्थिति होती है, साधारणतः उसके साथ प्रतिमा का मेल नहीं बैठता। किन्तु यदि उसका मेल बैठ जाय या यदि व्यक्ति का वस्तुस्थिति से नाता *(मनोविकृति के कारण) टूट जाय, तो निश्चय ही प्रतिमाको* वास्तविक प्रत्यक्ष मान लिया जा सकता है।

आप अर्धनिद्रित अवस्थामें हैं, दुनियासे बिल्कुल बेखबर; *इसी समय आपके सामने एक दृश्य आता है, जो इतना सजीव* होता है कि उसे आप यथार्थ मान बैठते हैं; तभी आपकी नींद टूट जाती है और आप अपनेको यथार्थ जगत् में पाते हैं। *अथवा आप पूर्णनिद्रित हैं; उस समय आपके सपनोंमें प्रकट* होनेवाली प्रतिमाएं बिल्कुल यथार्थ जान पड़ती हैं, क्योंकि वस्तुस्थितिसे आपका सम्पर्क उस अवस्थामें टूटा रहता है।

कुछ तरहकी मानसिक खराबियोंमें प्रतिमाओंको लोग प्रायः यथार्थ वस्तुएं समझ लेते हैं। यहां पर व्यक्ति अपने भयों और अपनी इच्छाओंमें इतना खोया रहता है कि वस्तु-

[1] the primary memory image—eidetic images [2] recency effect [3] after-image [4] voluntary [5] involuntary [6] subjective [7] eidetic imagery [8] hallucinations [9] perception

स्थिति पर से उसकी पकड़ ढीली पड़ जाती है और वह चारों ओरसे अपने लिए अपशब्द सुनता है, सन्देहजनक गन्धोंको सूंघता है, और ऐसे दृश्योंको देखता है, जो उसके भयों और इच्छाओंके अनुकूल होते हैं।

इस तरहके मिथ्या इन्द्रियजन्य ज्ञानको «विभ्रम[1]» कहते हैं। विभ्रम एक स्मृति-प्रतिमा होता है, जिसे इन्द्रियजन्य ज्ञान समझ लिया जाता है; पिछले अनुभवके आधार पर इसका निर्माण होता है और इसका प्रत्याह्वान किया जाता है, तथा एक प्रस्तुत वस्तुगत तथ्यके रूपमें यह मान लिया जाता है।

स्मृतिकी कमियां[2]. याद करनेकी योग्यता प्राणीका एक विलक्षण गुण तो है, किन्तु यह योग्यता मनुष्य जैसे प्राणीमें भी सीमित होती है। यह अपूर्ण, अयथार्थ और यहां तक कि मिथ्या भी हो सकती है। प्रत्याह्वान और प्रत्यभिज्ञामें ये त्रुटियां प्रकाशमें आती हैं, परन्तु इनका कारण सीखने[3] और धारणा[4] की अपर्याप्तता तथा प्रत्याह्वानकी प्रक्रियामें उत्पन्न होनेवाली कठिनाइयां हैं। यदि हम अपना ध्यान शब्दोंकी स्मृति या विशेषतः एक-एक शब्द स्मरण रखने[5] तक ही सीमित रखें, तो निश्चय ही कुछ त्रुटियोंकी उपेक्षा कर जायेंगे। जहां तक शब्दों का सम्बन्ध है कोई कविता पूरी तरह और सही-सही कंठस्थ की जासकती है और उसे इतनी अच्छी तरह धारण भी किया जा सकता है कि बादमें उसका पूरी तरह और सही सही प्रपाठ[6] भी किया जा सके। किन्तु किसी भाषणके सारांश, किसी कहानीकी घटनाओंका अनुक्रम, किसी चित्रकी विषय-वस्तु[7] अथवा किसी अकेली वस्तु या व्यक्तिके रूपका पूर्णतया और ठीक-ठीक निरीक्षण कभी नहीं किया जाता। प्रथम तो पूर्ण और सही प्रत्याह्वानके लिए आवश्यक स्मृति-चिह्न निर्मित ही नहीं होते, और जो निर्मित होते भी हैं, उनमेंसे कुछ शीघ्र ही क्षीण हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि जब आप किसी कहानी या चित्र या किसी ठोस वस्तुको स्मरण करने लगते हैं तब आपके स्मृति-चिह्न इतने पर्याप्त नहीं होते कि इस कामको भली भांति पूरा कर सकें। वे कुछ सामग्री तो प्रदान करते हैं, किन्तु वह पर्याप्त नहीं होती। चिह्नोंकी परिपूर्तिके लिए आपको अपने ज्ञानके सामान्य भंडार पर ही निर्भर रहना पड़ता है, ताकि आप कहानीका 'पुनर्गठन' कर सकें; या सही तो यह है कि आप कहानीको नये सिरेसे इस प्रकार रचते हैं, जो अपने-आप में तर्कसंगत और पूर्ण तो हो ही, किन्तु यथाशक्ति आपकी अपनी पसन्दगियों और पूर्वग्रहों[8] के भी अनुकूल हो। आप वास्तवमें मूल कहानीको हूबहू पुनः प्रस्तुत नहीं कर सकते, परन्तु आप एक ऐसी कहानी अवश्य प्रस्तुत करते हैं, जो न्यूनाधिक रूपसे मूल कहानीके समान होती है, हालांकि यह स्मृतिका काम होनेके बजाय आंशिक रूपसे कल्पना का ही काम होता है (२)।

«निरर्थक आकृतियोंकी स्मृति». अपूर्ण और अयथार्थ प्रत्याह्वानके इन कारणोंको कुछ प्रयोगों द्वारा अच्छी तरह स्पष्ट किया जा सकता है। इन प्रयोगोंमें अपेक्षाकृत सरल आकृतियोंको परीक्षार्थीके सामने निरीक्षणके लिए पेश किया जाता है और बादमें उससे कहा जाता है कि स्मृतिके बल पर उनको खींचो। यदि आकृति वर्ग या वृत्त या अन्य कोई ज्यामितिकी परिचित आकृति हुई, तो उसे खींचनेमें परीक्षार्थी को कोई परेशानी नहीं होती। यदि वह आकृति किसी बिल्ली, बोतल या अन्य किसी परिचित वस्तुकी रूपरेखा हुई, तो परीक्षार्थी पहिले तो उसका नामकरण करेगा और बादमें उस वस्तुसे मिलती-जुलती कोई चीज खींच देगा। किन्तु निरर्थक आकृतिके सिलसिलेमें उसका काम इतना आसान नहीं रह जाता। वह या तो ज्यामितिकी आकृतियोंके रूप में उसका विश्लेषण करनेकी चेष्टा करता है, या साधारणतः यह जाननेकी कोशिश करता है कि किस वस्तु से यह मोटे तौर पर मिलती-जुलती दिखायी दे रही है। किन्तु जब वह उसे खींचने चलता है, तब उसे पता चलता है कि उसका निरीक्षण सही नहीं था और इतना विस्तृत नहीं था कि आकृतिकी ठीक-ठीक शक्ल निर्धारित हो सके (४,११,१२)।

उदाहरणके लिए, आकृति १३७ में से संख्या २ की मूल रेखाकृतिको स्मृतिके आधार पर खींचिए। ज्यामितिकी दृष्टि से यह एक समत्रिबाहु-त्रिभुज है, जिसकी एक भुजा से बाहर की ओर एक अतिरिक्त बिन्दु निकला हुआ है। किन्तु जब आप स्मृतिके आधार पर इस त्रिभुजको खींचने लगते हैं, तब आपको निश्चय नहीं रहता कि उस उभरे हुए बिन्दुको कितना बड़ा और कितना नुकीला बनाया जाय। अथवा यदि आप उस उभरे हुए भागके ठीक आकार और स्वरूपको जाने बिना ही इस आकृतिको तीरके अग्र-फलक[9] की शक्लका मान बैठते हैं, तो आप उसका मनमाना चित्र खींच देंगे और सम्भव है, उसकी मूल आकृति बनानेके बजाय आप सचमुच तीरके अग्र-फलक की सी आकृति ही बना देंगे। मूल आकृति का निरीक्षण करते समय आप उसके विषयमें कोई विचार बनाते हैं; बादमें आपको यह विचार ही याद रहता है, न कि वह मूल आकृति। मूल वस्तुकी कुछ विस्तृत बातें कुछ देरके लिए स्मृति-चिह्नों में रुक जाती हैं, किन्तु कुछ समय बाद वे क्षीण हो जाती हैं और उनके विषयमें एक सामान्य विचार ही शेष रहता है, जो प्रत्याह्वानके आधारका काम देता है।

[1] hallucinations [2] limitations of memory [3] learning [4] retention [5] verbatim memory [6] recitation [7] contents [8] prejudices [9] arrow-head
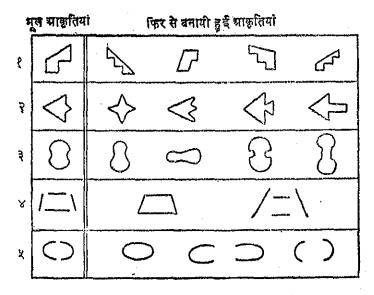
आकृति १३७. निरर्थक आकृतियोंको स्मरण-शक्ति के सहारे फिरसे बनानेकी चेष्टा। परीक्षार्थियों पर कामका बहुत बोझ था, क्योंकि उन्हें १४ निरर्थक आकृतियोंको स्मरण रखना था। पहिली आकृति साधारणतया सीढ़ियोंका आभास कराती थी, किन्तु एक परीक्षार्थीको उसे देखकर जहाजके रोशनदान की याद हो आयी। दूसरी आकृतिको विभिन्न परीक्षार्थियोंने तारा, चिड़िया, शर-फलक और बाणके रूपमें देखा। तीसरी आकृतिको लोगोंने किसी नारी-मूर्ति के धड़, पद-चिह्न, वायलिन, और डम्बबेल (व्यायामकी एक चीज) के रूपमें देखा। खंडित आकृतियोंको फिरसे बनाते समय परीक्षार्थियोंने या तो खाली जगहोंको सँकरा कर दिया, या उन्हें बढ़ा-चढ़ाकर दिखाया। [गिब्सन, १०]।

«मिथ्या साक्ष्य'[1]». किसी व्यक्तिको सबसे कठिन स्मृति-सम्बन्धी काम उस समय करना पड़ता है, जिस समय उसे न्यायालयके सामने सप्ताहों या महीनों पहिले घटित किसी घटनाके साक्षीके रूपमें गवाही देनेके लिए खड़ा होना पड़ता है। घटनाके समयके अधिक हो जानेकी परेशानी ही अकेली नहीं होती, बल्कि यह भी परेशानी होती है कि उससे कई ऐसी *विस्तारकी बातें* पूछी जाती हैं, जिनकी ओर उसने मूल अनुभवके समय कोई खास ध्यान नहीं दिया था। यदि उसने वकीलोंकी सलाहके अनुसार मूल घटनाके वर्णनको पुनर्गठित करनेका प्रयास किया, तो यह प्रायः निश्चित-सा रहता है कि वह अपने स्मृति-चिह्नों से दूर जा पड़े और एक ऐसी कहानी गढ़ ले जो सम्भव भले ही जान पड़े, किन्तु मामलेके सही तथ्योंसे बिल्कुल भिन्न हो।

साक्ष्यकी विश्वसनीयताका पता लगानेवाले प्रयोगमें प्रयोगकर्ताको सही तथ्योंकी जानकारी रहती है, क्योंकि उसने और उसके सहयोगियोंने घटनाकी योजना सावधानी से बनायी होती है और एक बार उसका 'रिहर्सल' भी कर लिया होता है। बादमें, इस नाटकके उद्देश्यसे बिल्कुल अनजान दर्शकों—मनोविज्ञानकी कक्षामें ये दर्शक विद्यार्थी ही होते हैं—के सामने यह नाटक खेला जाता है। या तो इस कांडके तुरन्त बाद ही या कुछ दिनोंके बाद ये साक्षी घटनाका *विवरण उपस्थित करते हैं* और एक *प्रश्नावलीका उत्तर* देते हैं। उनकी गवाही कितनी गड़बड़ और झूठी होती है, इसे देखकर आश्चर्य होता है। यदि उस कांडको इस प्रकार आयोजित किया जाय, जिससे गवाहों पर घटना का या अभिनेताओं के प्रेरकोंका ग़लत असर पड़े, तो सब साक्षियोंकी गवाहियोंमें यह चीज समान रूपसे दिखायी देगी कि उन्होंने घटनाका बिल्कुल ग़लत मतलब लगाया है। यद्यपि कुल मिलाकर प्रत्यभिज्ञा[2] प्रत्याह्वानकी अपेक्षा अधिक विश्वसनीय है, तथापि घटनासे सम्बन्धित व्यक्तियोंको पहचाननेमें भूलें

[1] false testimony [2] recognition

की जा सकती हैं। कई अदालती मामले ऐसे हो चुके हैं जिन में सन्दिग्ध अभियुक्तको काफ़ी लम्बे समयके लिए जेलकी सजा दे दी गयी, परन्तु बादमें यह प्रमाणित हुआ कि उस अभियुक्त का अपराधसे कोई सम्भव सम्बन्ध ही न था। पहचाननेमें होनेवाली इन भूलोंसे हमें चेतावनी मिलती है कि हमें पहचान (प्रत्यभिज्ञा) और प्रत्याह्वानके सिलसिलेमें अपनी स्मृतियों के प्रति भी आलोचनात्मक रुख रखना चाहिए। जब हमें न्यायालयमें या अन्यत्र साक्ष्य देनेके लिए बुलाया जाय, तब ईमानदारीका तक़ाज़ा यही है कि हम आलोचनात्मक रुख बनाये रहें, क्योंकि निश्चय ही हमारे मूल निरीक्षण अधूरे थे और सम्भव है, पक्षपातपूर्ण भी रहे हों, क्योंकि हमारे स्मृति-चिह्न समयान्तरमें धुंधले हो गये होते हैं और इस बातकी पूरी सम्भावना रहती है कि हम अपने साक्ष्यमें कुछ नमक-मिर्च मिला दें।

प्रत्याह्वानमें बाधा[1]. किसी चीज़को सीख लेना (कंठस्थ कर लेना) ही इस बातकी गारंटी नहीं है कि वह चीज़ बाद में स्मरण हो आवे, क्योंकि मध्यान्तरमें विस्मृति भी हो सकती है। अच्छी धारणा-शक्ति भी पूर्णतया प्रत्याह्वानकी गारंटी नहीं देती। किसी व्यक्तिके नामको हम धारण अवश्य करते हैं, क्योंकि ऐसा न होता, तो वह नाम हमें बादमें याद कैसे आ जाता, किन्तु मौक़े पर हम उसका नाम भूल जाते हैं और उसे स्मरण करनेके लिए सिर खुजलाने लगते हैं। परीक्षाके किसी प्रश्नका उत्तर हम जानते होते हैं, किन्तु परीक्षाकी जल्दी और चिन्ताके बीच हम ग़लत उत्तर लिख आते हैं। परीक्षा-भवन से बाहर निकलते ही या थोड़ी देर बाद हमें सही उत्तरका फिर ध्यान हो आता है। इससे पता चला कि हमारे प्रत्याह्वानमें कोई विघ्न अवश्य आ पड़ा था।

एक तरहकी बाधा संवेगात्मक होती है। भयके कारण प्रत्याह्वान कुंठित हो सकता है। व्यग्र आत्मचेतना, या लोगोंके सामने रंगमंच पर उपस्थित होनेका भय व्यक्तिका ध्यान बँटा देता है। यदि इसका शिकार होनेवाला व्यक्ति केवल अपनेसे ध्यान हटा सके, तो भली-भांति सीखे हुए व्याख्यान या कार्यको पूरा करनेमें उसकी स्मृति उसे धोखा नहीं देगी। दमन[2] (पृ० २३०) संवेगात्मक विस्मृति[3] का सबसे चरम रूप है।

दूसरी तरहकी बाधा तब सामने आती है, जब एक ही समय दो प्रतिक्रियाएं उत्पन्न होती हैं और वे एक-दूसरे की राहमें आ जाती हैं। एक भाषणकर्ता बोलते-बोलते हिचकिचा जा सकता है या हकलाने लग सकता है, किन्तु इसलिए नहीं कि वह जो कहना चाहता था, उसे भूल गया है, बल्कि इसलिए कि अपने विचारको व्यक्त करनेके दो तरीक़े एक ही साथ उसके सामने आते हैं; और इस तरह एक प्रत्याह्वान दूसरे प्रत्याह्वानका रास्ता रोक देता है। कुछ इसी तरहकी बात तब होती है, जब आप किसी व्यक्तिके नामका प्रत्याह्वान करने लगते हैं। वांछित नामके कुछ-कुछ समान ही कोई दूसरा नाम आपको याद आ जाता है, जैसे 'कृष्णकुमार' की जगह 'केशवराम'; आप कोशिश करने पर भी पथ-भ्रष्ट हो ही जाते हैं। इस मामलेको जहांका तहां छोड़ दीजिए, तो थोड़ी देर बाद ही आप पायेंगे कि वांछित नाम सरलतासे याद आ जाता है। ऐसा इसलिए होता है कि बाधा डालने वाला नाम अपना अस्थायी बल, अपनी ताज़गीका प्रभाव[4], खो देता है। नामकी तलाश वाले मामलोंके अलावा कई दूसरे मामलोंमें भी, अच्छी तरह प्रयत्न करनेके बाद उस बातको जहां का तहां छोड़कर, कुछ समय पश्चात् उस पर नये सिरेसे विचार करके अस्थायी बाधाओंसे बचनेका यह तरीक़ा अच्छा काम दे जाता है। जब किसी क्रियाकी विधि के दो विकल्प[5] आपके सामने उपस्थित हों, तब अपना मार्ग निश्चित करनेमें आपको कठिनाई हो सकती है। हरेक विधि के कुछ लाभ होते हैं, कुछ हानियां, और आपका मन कभी एक पर, कभी दूसरे पर डोलता रहता है। उथल-पुथल की यह स्थिति ताज़गीका प्रभाव[4] मात्र हो सकती है और अगले दिन प्रातःकाल आपको एक निर्णय पर पहुँचनेमें कोई कठिनाई नहीं होती। इस सम्बन्धमें एक अन्य महत्त्वपूर्ण उदाहरण आपको आगामी प्रकरणमें देखनेको मिलेगा (पृ० ३६८)।

पहचान (प्रत्यभिज्ञा)

प्रत्याह्वानसे पहचानका अन्तर स्पष्ट करते हुए कहा गया था कि यह 'किसी प्रस्तुत वस्तुको, अर्थात् ज्ञानेन्द्रियोंके सम्पर्क में आनेवाली वस्तुको स्मरण करनेकी क्रिया है'। आप अपने मित्रको उसका चेहरा देखकर या उसकी आवाज़ सुनकर पहचान जाते हैं। उसका कुत्ता अपने मालिकको घ्राणेन्द्रिय की सहायतासे पहचान लेता है। अन्य ज्ञानेन्द्रियाँ भी कभी-कभी कुछ ऐसे संकेत प्रस्तुत करती हैं, जिनसे कोई वस्तु पहचानी जाती है। संकेतों[6] या चिह्नों[7] का उपयोग जिस प्रकार प्रत्यक्षीकरणमें किया जाता है, उसी प्रकार उनका उपयोग पहचान (प्रत्यभिज्ञा) में भी किया जा सकता है, और वास्तवमें पहचान एक तरहका प्रत्यक्षीकरण ही है (पृ० २४४)। आप किसी काली वस्तुको अपनी ओर आती हुई देखते हैं। आप कह उठते हैं, 'यह कुत्ता है', और इसके बाद

[1] interference in recall [2] repression [3] emotional forgetting [4] recency effect [5] alternatives [6] cues [7] signs

कहते हैं, 'यह मोती है,' और अन्तमें आप चिल्ला उठते हैं, 'अरे! यह तो मनवीरसिंहका 'टाइगर' है!' किसी खास वस्तु को पहचाननेके लिए उस वस्तुके प्रकारको देखना ही काफी नहीं है, इसके लिए कुछ निश्चित संकेतोंकी आवश्यकता होती है, क्योंकि आपको उसी श्रेणीकी अन्य वस्तुओंसे उसे अलग करना पड़ता है। बहुधा आप उन निश्चित संकेतोंसे अवगत नहीं होते, जो आपकी किसी व्यक्तिको पहचानने में समर्थ बनाते हैं। आप अपने मित्रका इतना सही-सही वर्णन नहीं कर सकते कि कोई अपरिचित आदमी भी उससे मिलते-जुलते आदमियोंके बीचमें उसे ढूंढ़ निकाले। इसके लिए आपको बताना होगा कि आपके मित्रके शरीर पर कोई विचित्र दाग, घावका चिह्न या ऐसी ही कोई पहचान है। सामान्यत: आप प्रत्यक्षीकरणके अन्य रूपोंकी भांति ही संकेतोंसे स्पष्ट रूपसे परिचित हुए बिना ही पहचाननेमें उनका इस्तेमाल करते हैं, कारण कि आपकी रुचि वस्तुमें होती है, संकेतोंमें नहीं।

जब आप किसी एकाध बारके परिचित व्यक्तिको उसके साधारण परिवेशसे बाहर कहीं देख लेते हैं, तब आपके भीतर उसे कुछ-कुछ पहचाननेकी अनुभूति विचित्र स्थिति पैदा कर देती है। आप मनमें कहते हैं, 'मैं इस आदमीको जानता हूं, इसको मैंने कहीं देखा अवश्य है,' 'कौन है यह?' या आप कहते हैं, 'मैं इसे पहचानता तो हूं, लेकिन ठीक-ठीक नहीं बता सकता कि यह कौन है और इससे मेरा परिचय किस सिलसिले में, कहां पर हुआ है।' यह एक बड़ा पेचीदा अनुभव होता है और इससे आपको अपनी स्मृतिका कोना-कोना छान डालनेके लिए उत्तेजना मिलती है, अर्थात् आप इस व्यक्तिके साथ पहले जान-पहचान होनेके समय, स्थान और परिस्थितियोंका «प्रत्याह्वान» करनेकी चेष्टा करते हैं। यदि प्रत्याह्वान सफल हो गया, तो आप अपनी प्रत्यभिज्ञा (पहचान) को पूर्ण बना सकते हैं। यहां पर हम प्रत्याह्वान और प्रत्यभिज्ञाकी प्रक्रियाओंको सहयोग करते पाते हैं; पहिले आंशिक प्रत्यभिज्ञा होती है, उसके बाद प्रत्याह्वान होता है जो प्रत्यभिज्ञा को पूरा करता है।

एक दूसरी तरहकी स्मरण करनेकी प्रक्रिया प्रत्याह्वानसे आरम्भ होती है और प्रत्यभिज्ञा द्वारा पूरी की जाती है। जब आप किसी नामको स्मरण करनेकी कोशिश कर रहे होते हैं, तब किसी भी ऐरे-गैरे नामसे, जिसका प्रत्याह्वान आप प्रसंगवश करते हैं, सन्तुष्ट नहीं होते। कुछ नाम जो आपको याद आते हैं, उनको आप अस्वीकार कर देते हैं, परन्तु अन्तको आप एक नामका प्रत्याह्वान करनेमें समर्थ हो जाते हैं, जो आपको सही जान पड़ता है। आप उस नामको पहचान जाते हैं और इस प्रकार स्मरण करनेके कामको पूरा करते हैं। इसी प्रकार जब आप याददाश्तके सहारे किसी प्रश्नका उत्तर देनेका प्रयत्न करते हैं, तब आप किसी भी सामने आनेवाले उत्तरसे सन्तुष्ट नहीं हो जाते; आप चाहते हैं कि प्रत्याहृत उत्तर ऐसा हो जिसे पहचानकर आप कह सकें कि प्रसंगसे सम्बन्धित यही उपयुक्त उत्तर है।

पहचान की भूलें. कुल मिलाकर, पहचानकी प्रक्रिया प्रत्याह्वानकी प्रक्रियाकी अपेक्षा अधिक सरल और अधिक विश्वसनीय जान पड़ती है। कोई नाम, कोई चित्र, कोई संगीत, जिसका प्रत्याह्वान आप नहीं कर सकते, बिना किसी परेशानीके पहचान लिया जा सकता है। फिर भी, पहचान को किसी भी तरह निर्भ्रान्त नहीं माना जा सकता। यदि अभी-अभी प्रस्तुत कोई वस्तु किसी पहलेकी देखी हुई वस्तुके «सदृश» लगती है, तो मिथ्या प्रत्यभिज्ञा हो सकती है। एक सरल प्रयोगके द्वारा यह बात आसानीसे प्रदर्शित की जा सकती है: परीक्षार्थीको पहले एक दर्जन चित्र एक-एक करके दिखाये जाते हैं, ताकि वह उन्हें 'सीख सके'। कुछ मध्यान्तरके पश्चात्, जो लम्बा नहीं भी हो सकता है, यही सब चित्र एक-एक करके दिखाये जाते हैं, किन्तु इस बार उनमें एक दर्जन नये चित्र मिला दिये गये होते हैं; इनमें से कुछ नये चित्र तो कुछ पुराने चित्रोंके समान होते हैं, किन्तु कुछ नये चित्र पुराने चित्रोंसे बिल्कुल भिन्न होते हैं। पहचान-परीक्षा में 'व्य' (परीक्षार्थी) का काम होता है पुराने और नये चित्रोंमें अन्तर करना। यदि वह किसी चित्रको पहचानता है, तो 'हां' कह देता है और किसी चित्रको नया समझता है, तो 'ना' कह देता है। भले ही वह अधिकतर सही-सही प्रतिक्रिया कर रहा हो, फिर भी उससे दो तरहकी भूलें हो जानी सम्भव हैं: कुछ पुराने चित्रोंको तो वह पहचाननेमें असमर्थ रहता है और कुछ नये, किन्तु सादृश्य वाले चित्रोंको देखकर गलतीसे 'हां' कह बैठता है।

यदि इस प्रयोगमें प्रतिक्रिया-काल को नापा जाय, तो पता चलेगा कि सही प्रतिक्रियाएं ग़लत प्रतिक्रियाओंकी अपेक्षा शीघ्रतर—शीघ्रतर और अधिक दृढ़ होती हैं। किसी नये या समानता रखने वाले चित्रके प्रति होनेवाली प्रतिक्रिया निर्णयात्मक 'हां!' के रूपमें नहीं होती, बल्कि हिचकके साथ 'अँ···अँ···हां' के रूपमें होती है और शायद उसके पीछे एक प्रश्नवाचक चिह्न लगा होता है। किसी नये और असमान चित्रके प्रति होनेवाली प्रतिक्रिया निर्णयात्मक और शीघ्र 'ना!' के रूपमें होती है। प्रत्यनभिज्ञा या किसी वस्तुको नयी समझना केवल पहचानका अभाव नहीं है, बल्कि एक जोरदार और विधानात्मक कार्य है (२३)। नवीनताकी अनुभूति वैसी ही निश्चित होती है, जैसी सुपरिचयकी अनुभूति।

पहचानमें व्यवहार. कोई व्यक्ति किसी वस्तुको पहचानता है या नहीं, इस बातको वह केवल शाब्दिक 'हां' या

'ना' के अलावा व्यवहारके अन्य रूपोंके द्वारा भी प्रकट कर सकता है। यदि किसी वस्तुके प्रति उसका वर्तमान व्यवहार उस खास वस्तुके साथ उसके किसी पूर्व सम्पर्कमें सीखा गया है तो इससे पहचान प्रकट होती है; यदि उसका व्यवहार अनुसन्धानात्मक[१] है, तो इससे नयापन और प्रत्यनभिज्ञा[२] प्रकट होती है। जब कोई शिशु किसी खास व्यक्तिको देख कर मुस्करा उठता है (हर किसीको देखकर समान रूपसे नहीं), जिसने उसे पहिले कभी प्रसन्न किया है, तो यह कहा जायगा कि वह उस व्यक्तिको पहचानता है। किसी पिछले अवसर पर यह व्यक्ति शिशुके सामने उपस्थित हुआ होगा और उसे हँसाया-खिलाया होगा। अब किसी खुश करनेकी घटना के होनेकी प्रतीक्षा किये बिना ही, शिशु उस व्यक्तिको देखते ही मुस्करा देता है। यह मुस्कराहट एक « सम्बद्ध प्रतिक्रिया[३] » होती है। जब पैवलोव[४] के कुत्तेने घंटीकी ध्वनि सुनकर लार बहाना प्रारम्भ कर दिया था, तब उसने यही प्रकट किया था कि वह घंटीको पहचानता है। सम्बद्ध प्रतिक्रिया सम्बद्ध उत्तेजना[५] को पहचानेका एक व्यवहार-सम्बन्धी प्रमाण है। घंटीको भोजनके संकेतके रूपमें देखा गया था। ऐसा ही हमने पहिले एक बार देखा था (पृ० ३१३)। एक नियमित सम्बद्ध उत्तेजना ('सं' 'उ') के स्थान पर प्रस्तुत की हुई उसी तरहकी एक अन्य उत्तेजना के प्रतिक्रिया स्वरूप कुछ-कुछ लार टपका कर कुत्तेने « उत्तेजना के साधारणीकरण[६] » का परिचय दिया था। इसी प्रकार गत अनुच्छेद (पैराग्राफ़)में मानव परीक्षार्थियोंने पहिले देखे हुए चित्रोंके सदृश अन्य चित्रोंको देख कर हिचकके साथ अँ··· अँ···हां' कह कर उत्तेजना के साधारणीकरणका उदाहरण प्रस्तुत किया था।

बच्चा जब कुछ बड़ा हो जाता है और अपनी संवेगात्मक अभिव्यक्तियों[७] में परिवर्तन कर लेता है, (पृ० २११) तब वह अपने मित्र को उतने उदारतापूर्वक मुस्कराये बिना ही पहचान लेता है; फिर भी उसमें सम्भावित प्रसन्नता की अनुभूति होती है, जिसे आप एक तरहका संक्षिप्त आन्तरिक व्यवहार या कमसे कम मित्रकी उपस्थितिसे उत्पन्न स्थितिसे समायोजन करनेका प्रयत्न या उसके आनन्दायी आगमनके प्रति तैयारी या प्रारम्भिक तत्परता[८] कह सकते हैं। कई अन्य मामलोंमें, सम्भवत: पहचानसे सम्बन्धित सभी मामलोंमें, वस्तुके साथ एक अभ्यस्त तरीक़ेसे व्यवहार करनेकी तैयारी पायी जाती है। आपका अपने कमरेको पूरी तरह पहचान लेना ही इस बातको प्रकट करता है कि आप वहां नित्य-प्रति की तरह व्यवहार करनेके लिए तैयार हैं। किसी व्यक्तिको उसके सामान्य परिवेश से अलग पाकर उसे आंशिक रूपसे पहचान लेना परिचयकी सामान्य अनुभूतिसे कुछ अधिक विशिष्ट व्यवहार होता है। प्रारम्भमें आपको लगता है कि इस व्यक्तिको मैंने कहीं खिड़की के पीछेसे सौदा बेचते हुए देखा है; बादमें आप उसे एक रेलवे स्टेशनके 'बुकिंग क्लर्क' के रूपमें पहचानते हैं। एक दूसरा आदमी कोई अधिकारी पुरुष लगता है, बादमें उसे आप पहचान लेते हैं कि वह तो उसी बैंकका मैनेजर है, जिसमें मैंने रुपया जमा कर रखा है। एक तीसरा आदमी आपमें अस्पष्ट शत्रुताकी अभिवृत्ति जगाता है और एक चौथा आदमी आप को यह अनुभूति कराता है कि उसे आपने कहीं समुद्र-तट पर या किसी पहाड़ी स्वास्थ्यप्रद स्थान पर देखा है। ये अनुभूतियां यह बताती हैं कि पहचान किसी वस्तुके साथ वैसा ही बर्ताव करनेकी तैयारी की उस अभिवृत्ति को पुनर्जीवित करती है, जैसा पहले कभी आप उस वस्तुके साथ करना सीख चुके हैं। या हम यह कह सकते हैं कि पहचान उस वस्तुमें उन विशेषताओं[९] का प्रत्यक्षीकरण[१०] करना है, जिन्हें उस वस्तुमें पहिले कभी देखा गया था। आपको पहचान (प्रत्यभिज्ञा) के ये दोनों सिद्धान्त—एक जो पहचानको एक तरहका प्रत्यक्षीकरण मानता है, दूसरा जो इसको व्यवहारकी तैयारी[११] या तत्परता[१२] के रूपमें देखता है—कुछ विरोधी-से लगेंगे, किन्तु वास्तवमें ये एक ही चीज हैं; क्योंकि जब आप किसी वस्तु को देखते होते हैं, तब आप उसकी ज्ञान विशेषताओंके अनुसार उसके साथ बर्ताव करनेकी तैयारी करते होते हैं, उसी वस्तुके रूपमें देखते होते हैं, तब आप उसके साथ उसी तरह बर्ताव करनेकी तैयारी कर रहे होते हैं, जिस तरह आपने पहिले कभी किया था।

स्मृति-प्रशिक्षण

जब कोई आदमी अपनी 'निर्बल स्मरण शक्ति' या 'धारणा शक्ति की हीनता' के विषयमें शिकायत करता है, तब अपनी परेशानी के सम्बन्धमें उसका निदान ठीक हो सकता है—क्योंकि व्यक्ति जिस तरह अन्य योग्यताओं और सामर्थ्योंमें भिन्नता रखते हैं, उसी तरह वे स्मृतिमें भी एक-दूसरे से भिन्न होते हैं—किन्तु बहुत सम्भव है कि उसे स्मरण करनेकी अपनी 'शक्ति' को बढ़ानेकी उतनी आवश्यकता न हो, जितनी अपने स्मृति-कार्य को सुव्यवस्थित करने और उसके लिए अच्छी

[१] of exploring type　[२] non-recognition　[३] conditioned response　[४] Pavlov　[५] conditioned stimulus
[६] stimulus generalization　[७] emotional experession　[८] readiness of preparatory set　[९] characteristics
[१०] perception　[११] readiness　[१२] set

विधियोंका उपयोग करनेकी। व्यवस्था[1] से हमारा मतलब है: कार्यकी सम्पूर्ण योजना और उसकी रचनाका खाका; तथा विधियों[2] से तात्पर्य है: सीखने और याद करनेके अधिक विस्तारयुक्त तरीक़े। साधारण स्मरण-शक्ति वाला व्यक्ति भी, यदि स्मृति-कार्यकी योजना बुद्धिमत्तापूर्वक तैयार करता है, तो वह अच्छी सफलता पा सकता है।

इस प्रकरणके अधिकांशमें उन स्थितियों पर ही अधिक विचार किया गया है, जो सीखने और स्मरण करनेमें कुशलता लाने में सहायक हैं। 'कंठस्थीकरणमें मितव्यय[3] उप-शीर्षकके अन्तर्गत हम देख चुके हैं कि किसी पाठको केवल बार-बार पढ़नेके बजाय उसका प्रपाठ[4] करने और उसको रूप-रेखा तैयार करनेके क्या लाभ हैं; टुकड़े-टुकड़े करके पाठको सीखने के बजाय उसे समूचा सीखनेके क्या लाभ हैं; और पाठ को हर नयी बार सीखनेके प्रयासमें ताजगी लानेके लिए निरवकाशपुनरावृत्तियों[5] के बजाय सावकाश पुनरावृत्तियों[6] का तरीक़ा अपनानेसे क्या लाभ होते हैं? हम यह भी देख चुके हैं कि व्यक्तियोंमें इन विकल्पों[7] के प्रति भिन्नता होती है, और उसकी वजहसे सुव्यवस्थाके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि व्यक्ति अपने-आप पर स्मृति-सम्बन्धी कुछ प्रयोग कर देखे। 'धारणा' उप-शीर्षकके अन्तर्गत हमने देखा था कि महत्वपूर्ण सामग्रीको सीखनेके बाद विश्राम करने और शायद सोनेके ठीक पहिले सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पाठका अध्ययन करने के क्या लाभ हैं—हालांकि इस मामलेमें भिन्नता होती है और सुव्यवस्थाकी मांग है कि हरकए व्यक्ति को प्रयोग करके यह पता लगा लेना चाहिए कि गहन अध्ययनके लिए कौन-सा समय उसके लिए सबसे उपयुक्त पड़ता है। इस बातके लाभको भी असन्दिग्ध, बल्कि आवश्यक-सा मान लिया गया था कि यदि किसी सामग्रीको स्थायी रूपसे धारण करना है, तो उचित मध्यान्तरोंके बाद उसका पुनर्गठन[8] कर लिया जाय। 'प्रत्याह्वान' शीर्षकके अन्तर्गत हमने देखा था कि अस्थायी बाधाएँ[9] प्रक्रियाको अस्त-व्यस्त कर सकती हैं, इस लिए बहुधा सुव्यवस्था का यह तक़ाजा होता है कि किसी नामका प्रत्याह्वान करनेका एक अच्छा प्रयास करनेके पश्चात् उस मामलेको थोड़ी देरके लिए छोड़ दिया जाय हमने यह भी देखा कि यदि किसी वस्तुको उसी तरहकी दूसरी वस्तुओंसे अलग करके बादमें भली भांति पहचानना है, तो इसके लिए पूर्व निरीक्षण[10] की, बल्कि उस वस्तुके बहुत सूक्ष्म निरीक्षणकी आवश्यकता होती है। प्रत्याह्वान और पहचान, दोनोंमें ही हमने अपनी स्मृतिके प्रति आलोचनात्मक रुख अपनानेकी वांछनीयताको देखा था, हालांकि यह रुख भी एक और सुन्दर आदतके द्वारा सन्तुलित रखा जाना चाहिए। यह आदत है: जब कोई विचाराधीन सामग्री भली भांति सीख ली गयी हो, तब अपनी स्मरण-शक्ति पर निर्भर करना।

अभ्यासके द्वारा स्मृतिमें उन्नति. यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न कि क्या स्मृति प्रशिक्षणके द्वारा उन्नति की जासकती है, इन चार प्रश्नोंमें विभाजित किया जा सकता है: क्या कंठस्थीकरण[11] या धारणा,[12] या प्रत्याह्वान[13], या पहचान[14] की उन्नति की जा सकती है? प्रत्याह्वान और पहचानके सम्बन्धमें, सुव्यवस्था[1], जिस पर हम पहिले ही विचार कर चुके हैं, के अतिरिक्त अधिक कुछ चर्चा नहीं करनी है। धारणा-शक्ति के सम्बन्ध में भी, जिसके विषयमें लोग सबसे ज्यादा चिन्तित हो सकते हैं, सुव्यवस्थाके अतिरिक्त यदि और कुछ कहा जा सकता है तो अधिकांशतः निषेधात्मक ही। आप इस बातका निश्चय कर सकते हैं कि मैंने अमुक चीजको पूरी तरह सीखा है या नहीं, अपने सीखे हुए पाठको आप दुहरा भी सकते हैं, आप बाधाओं[15] को भी दूर रख सकते हैं, किन्तु हम यह नहीं समझ पाते कि आप अपने स्मृति-चिह्नों[16] या केवल मस्तिष्क की धारणा-शक्ति को उत्पन्न कैसे कर सकते हैं? इस सम्बन्ध में एक ही बात सुझायी जा सकती है कि आप शरीरको और उसके साथ ही मस्तिष्कको स्वस्थ स्थितिमें रखें। धारणा-शक्ति स्वास्थ्य-रक्षाके उपायोंसे सुरक्षित तो रह सकती है, किन्तु जहां तक हम जानते हैं, किसी तरहके प्रशिक्षणके द्वारा उन्नत नहीं की जा सकती।

फिर भी, सीखने या कंठस्थ करनेकी प्रक्रिया चूंकि सरल और नियंत्रण करने योग्य क्रिया है, इसलिए प्रशिक्षणसे इसके उन्नत होनेकी बहुत सम्भावना है। नवसिखुआ व्यक्ति निरर्थक शब्दोंकी सूचियोंको सीखनेमें संवेगात्मक रूपसे श्रान्त और अस्थिर होता है, शायद वह केवल रटनके द्वारा उन्हें सीखनेका प्रयास करता है, अथवा ऐसे उपायोंका इस्तेमाल करता है जो सामग्रीसे बेमेल बैठते हैं, और उसका काम बहुत मन्द तथा टेढ़ा हो जाता है। इसी तरहकी सामग्रीके सीखने का अभ्यास हो जानेके बाद वह कुछ उपयुक्त विधि सीख जाता है, अपने ऊपर उसे भरोसा हो आता है और संवेगात्मक बाधाओंसे वह बच जाता है; यहां तक कि उसे अपने काम में आनन्द भी आने लग सकता है। निश्चय ही वह निरर्थक शब्दोंको कंठस्थ करनेकी गतिमें काफ़ी उन्नति कर लेता है। यदि इसके बदलेमें वह स्पेन्सरकी «फ़ेयरी क्वीन[17]» कविता को याद करनेका अभ्यास करता है, तो वह उसमें भी उन्नति

[1] managements [2] methods [3] economy in memorizing [4] reaction [5] massed repetitions [6] spaced repetitions [7] alternatives [8] review [9] temporary interferences [10] previous observation [11] memorizing [12] retention [13] recall [14] recognition [15] interference [16] memory trace [17] Faerie Queen

कर लेता है और एक पद्य को कंठस्थ करनेमें, जहां पहिले १५ मिनट लगता था, वहां ५ ही मिनटमें उसे कंठस्थ कर सकता है। यह उन्नति इसलिए दिखायी दी कि परीक्षार्थी ने उस विधिका पता लगा लिया, जिससे इस तरहकी सामग्रीको व्यवस्थित किया जा सकता है। वह स्पेन्सर[1] की शैली और उसके विचार-विस्तार का अभ्यस्त हो जाता है। यही बात किसी भी तरहकी सामग्रीके साथ देखने में आती है; अभ्यास के कारण उस खास सामग्रीके कंठस्थीकरणमें बड़ी उन्नति हो जाती है।

प्रशिक्षाका स्थानान्तरण[2]. एक तरहकी सामग्रीको कंठस्थ करनेके अभ्यासके कारण व्यक्ति में जो कुशलता[3] आती है, उसे क्या दूसरी तरहकी सामग्रीमें स्थानान्तरित किया जा सकता है, यह एक बिल्कुल अलग ही प्रश्न है। पहली सामग्री का प्रहस्तन करनेसे जो उन्नति होती है, या दूसरी तरहकी सामग्रीके साथ विशिष्ट अभ्यास करनेके कारण जो उन्नति होती है, उसकी तुलना में स्थानान्तरित होनेवाली कुशलता की मात्रा बहुत थोड़ी होती है। स्थानान्तरित कुशलता कुछ तो समूहों[4] और सम्बन्धों[5] की तलाश करनेवाली आदत होती है और कुछ यह आत्मविश्वास कि मुझमें कंठस्थ करनेकी योग्यता है। वास्तवमें, कुछ स्मृति-सम्बन्धी प्रयोगोंमें भाग लेना अच्छा ही रहता है, क्योंकि इससे पता चल जाता है कि थोड़े अभ्यासके पश्चात् आप कितनी अच्छी तरह कंठस्थीकरण का कार्य कर सकते हैं। अधिकांश व्यक्ति, जिनको अपनी स्मरण-शक्ति की निर्बलता की शिकायत होती है, इस बातसे आश्वस्त हो जायेंगे कि उनकी स्मृति बुनियादी तौर पर ठीक है, उसमें कोई खराबी नहीं। *किन्तु प्रयोगशाला में किये जाने* वाले इन अभ्यासोंके विषयमें कोई इस भ्रममें न रहे कि इनसे सामान्य 'स्मरण-शक्ति' को बढ़ानेमें मदद मिलती है, और स्मृति प्रशिक्षणकी बहुविज्ञापित पद्धतियां भी यदि ऐसा कोई दावा करें, तो वह थोथा ही होगा। दोनों मामलोंमें जिस चीजका विकास किया जाता है, वह है कुछ तरहकी सामग्रियों को कंठस्थ करनेकी कुशलता, जिससे कुछ प्रकारकी स्मृति-परीक्षाओंमें उत्तीर्ण हुआ जा सकता है।

कंठस्थीकरणकी कुशलताके स्थानान्तरणके विषयमें अभी जो बात कही गयी है, वह अन्य कुशलताओंके लिए भी उचित हो सकती है। किन्हीं औजारों और सामग्रियों से व्यवहार करते समय सीखनेवाला अपने खास कामकी विशिष्ट प्रकृतिके साथ अपना समायोजन करता है। सम्भव है, उसे काम करते हुए कोई ऐसा सामान्य नियम हाथ न लगे, जिसे वह दूसरे कामोंमें भी इस्तेमाल कर सके। फिर भी, सौभाग्य-वश, यह देखा गया है कि काम करनेके अच्छे तरीकोंके लिए उपयुक्त शिक्षा तथा उन तरीकोंका उपयोग करनेका साधारण अभ्यास, ये दोनों चीजें मिलकर एक ऐसी योग्यताका निर्माण करती हैं, जिसे एक खास कामके अलावा भी दूसरे कामों में *इस्तेमाल किया जा सकता है* (५)। *यही बात स्मृति-प्रशिक्षण*[6] के सम्बन्धमें भी सत्य पायी गयी है। कॉलेजीय छात्रोंकी एक कक्षा को निरर्थक शब्दों और कविता को कंठस्थ करनेका मामूली अभ्यास करानेके बाद उन्हें कंठस्थ करनेकी सर्वोत्तम विधियोंके सम्बन्धमें कुछ शिक्षा दी गयी; फल यह हुआ कि उन छात्रोंने दूसरी तरहकी स्मृति-सामग्रियोंको भी असाधारण सफलताके साथ कंठस्थ कर दिखाया। इस प्रशिक्षण में आत्मविश्वासका रुख, सावधानी और एकाग्रता, अर्थ और समूहोंके प्रति सतर्कता, प्रपाठ, और छोटे-छोटे अंशोंमें सीखने के बजाय समग्र रूपमें पाठको कंठस्थ करनेकी विधिके महत्त्व पर जोर दिया गया था (२६)।

स्थानान्तरण[7] से सम्बन्धित अनेक प्रयोगोंसे यह सिद्ध होता है कि एक कार्य से दूसरे कार्यमें किसी योग्यताके स्वतः आ जाने पर विश्वास करना उचित नहीं है। जो चीज सफलतापूर्वक स्थानान्तरित की जा सकती है, वह ऐसी चीज होती है, जिसे आप उँगली पर गिन सकते हैं—एक नियम, एक सुन्दर संवेगात्मक रुख, एक विधि।

जब कोई आदमी किसी विशिष्ट सामग्री, जैसे नामों, संदेशों और कार्यक्रमों[8] को याद रखनेमें अपनी 'हीन स्मृति[9]' की शिकायत करता है, तब साधारणतः यह देखा गया है कि उस की धारणा शक्ति में कोई खराबी नहीं होती, बल्कि तथ्योंको *याद करनेका उसका लापरवाही का तरीका इसके लिए* जिम्मेदार होता है। सन् १८८० के उन पुराने दिनों में भी एम्हर्स्ट कॉलेज[10] के प्रिंसिपल स्टीले[11] वर्षारम्भके समय हर विद्यार्थीके साथ भेंट (इंटरव्यू) कर लेनेके पश्चात् उसे उस का नाम लेकर पुकारनेमें कभी नहीं चूकते थे। इस भेंटमें विद्यार्थीको पितृतुल्य परामर्श व सीख देनेके साथ ही वे उससे कुछ व्यक्तिगत प्रश्न भी पूछते थे और उस व्यक्तिके चेहरे-मोहरे तथा बातचीत की शैली और उससे लक्षित होनेवाले चरित्रका गहरा अध्ययन करते थे। वह उस विद्यार्थीमें रुचि लेते थे और उसके व्यक्तित्वके विषयमें एक स्पष्ट राय क़ायम करते थे और उस व्यक्तित्वके साथ विद्यार्थीके नामको सम्बन्धित कर देते थे। इसमें सन्देह नहीं कि इस सुयोग्य विद्वान् की धारणा-शक्ति असाधारण थी, किन्तु नामोंको याद रखनेकी उनकी विलक्षण स्मृति—जो निश्चय ही एक सामाजिक पूंजी है—उसकी अपनी विधि पर बहुत कुछ निर्भर थी।

[1] Spenser [2] transfer of training [3] skill [4] groupings [5] relationships [6] memory training [7] transfer [8] engagements [9] poor memory [10] Amherst College [11] Steelye

इस चीज़से हममेंसे कई लोगों द्वारा बरती जाने वाली विधि का अन्तर तो देखिए, जब हमारा परिचय किसी आदमीसे कराया जाता है। शायद हम उस व्यक्तिके नाम पर मुश्किल से ही ध्यान देते हैं, और उसके व्यक्तित्वके साथ उसके नामको सम्बन्धित करनेका तो हम कोई प्रयत्न ही नहीं करते। नामों को याद रखनेकी एक अच्छी स्मृतिके लिए इस खास मामले पर ध्यान देने और इसका अभ्यास करनेकी आवश्यकता होती है। सन्देशोंकी स्मृतिके सम्बन्धमें भी यही बात है; इसको भी विशेष प्रकारसे प्रशिक्षित[1] किया जा सकता है। सम्भवतः इस सम्बन्धमें एक ही सर्वोत्तम सामान्य सुझाव दिया जा सकता है और वह यह कि अपने मनमें उस स्थानसे सन्देशको जोड़ दीजिये, जहां आप उस संदेशको कार्यान्वित करनेके लिए याद करना चाहते हैं।

बहुधा असम्बद्ध तथ्योंको याद करनेमें किसी मामूली «स्मृति सहायक पद्धति[2]» से भी सहायता ली जाती है, किन्तु ऐसे उपायोंका उपयोग एक सीमित क्षेत्रम ही किया जा सकता है और स्मृतिकी साधारण शक्तिको बढ़ानेमें इनसे कोई मदद भी नहीं मिलती। कुछ व्याख्यानदाताओंका यह तरीक़ा होता है कि वे अपने भाषणकी योजना बनाते समय प्रत्येक आगामी[3] तथ्यको सभा-भवन या अपने ही मकानके किसी कमरेके एक-एक कोनेसे सम्बन्धित कर देते हैं; जब वे एक तथ्यको बोल चुकते हैं, तब दूसरे कोनेकी ओर देखते हैं या अगले कमरेके बारेमें सोचते हैं और आगे आने वाले तथ्यको उस सम्बन्धसे स्मरण करते हैं। यह अधिक ठीक लगता है कि सुरचित भाषण में स्वयं कुछ तार्किक संकेत हों, ताकि कृत्रिम उपायोंकी सहायता लेना बेकार साबित हो सके। किसी व्यक्तिके व्यवसाय से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण तथ्योंको स्मरण रखनेके लिए स्मृति को प्रशिक्षित करनेका सबसे अच्छा नियम यह है कि तथ्योंको एक समूह[4] में परस्पर सम्बन्धित कर दिया जाय।

सारांश

१. स्मृतिकी प्रक्रियामें इतनी चीज़ें सम्मिलित हैं : सीखना[5] धारण करना[6] और स्मरण करना[7]।

२. «कंठस्थीकरण[8]» या सीखनेमें अपरिचित या अधिक लम्बी सामग्री[9] का उपयोग किया जाता है, ताकि कंठस्थीकरण की सफलताकी मात्राको नापा जा सके।

(क) «तात्कालिक स्मृति-विस्तार[10]» विषयों[11] की, जैसे अंकों[12] की, संख्याको कहते हैं, जिसे एक बार देखकर ही याद किया जा सके। आयु और अभ्यासके साथ-साथ इस विस्तार[13] में वृद्धि होती रहती है।

(ख) जो सामग्री स्मृति-विस्तारसे लम्बी है, उसको कई बारके प्रयासोंमें कंठस्थ किया जा सकता है। सामग्री के विषयोंकी संख्या जितनी बढ़ती जाती है, कंठस्थी-करणकी कठिनाई उतनी ही अधिक होती जाती है। यदि सामग्रीको अर्थ, स्थान, समानता या अन्य विशेषताओंके अनुसार छोटी इकाइयों[14] में समूहबद्ध कर दिया जाय, तो यह कठिनाई कम की जा सकती है।

३. भले प्रकार सीखनेकी दशाओंकी उचित व्यवस्था कर के कंठस्थीकरणमें समय और शक्तिका मितव्यय किया जा सकता है।

(क) परीक्षार्थी (व्यक्ति) को पहिले यह समझ लेना चाहिए कि उसे क्या काम करना है। फिर उस कार्यको सफल बनानेके लिए उस दिशामें अपने प्रयत्न प्रारम्भ करने चाहिए।

(ख) यदि परीक्षार्थी सामग्रीकी अपनी विशेषताओं[15] अर्थात अर्थोंका निरीक्षण कर ले, तो वह अच्छी तरह कंठस्थ कर सकता है।

(ग) यदि कंठस्थीकरण और धारणा[16] में मितव्यय[17] करना हो, तो पाठके निष्क्रिय पुनः पठनकी अपेक्षा मन ही मनमें प्रपाठ[18] श्रेष्ठ सिद्ध होता है।

(घ) «निरवकाश पुनरावृत्तियों[19]» के द्वारा कंठस्थ करने में जितनी बार प्रयास करना पड़ता है, «सावकाश पुनरावृत्तियों[20]» की विधिमें उससे कम प्रयाससे ही काम चल जाता है।

(ङ) यदि सामग्रीका «खंड-विधि[21]» से अध्ययन करने के बजाय «समग्र-विधि[22]» से अध्ययन किया जाय, तो साधारणतः उसे अधिक शीघ्रतासे कंठस्थ किया जा सकता है; किन्तु इसके लिए जो प्रमाण मिले हैं

[1] trained [2] mnemonic system [3] successive [4] system [5] learning [6] retaining [7] remembering [8] memorizing [9] material [10] immediate memory span [11] items [12] digits [13] span [14] units [15] distinguishing charecteristics [16] retention [17] economy [18] recitation [19] massed repetitions [20] spaced repetttions [21] part method [22] whole method

उनमें पूरी एकता नहीं है।

४. «धारणा» का मतलब निरन्तर सक्रियता नहीं, बल्कि मस्तिष्ककी रचना[1] में एक परिवर्तन ला देना है, जिसे «स्मृति-चिह्न[2]» कहते हैं।

(क) केवल स्मरण करनेके द्वारा धारणा-शक्तिको सिद्ध किया जा सकता है। इसके लिए «दुबारा सीखनेकी» परीक्षाएँ[3] «पहचान या प्रत्यभिज्ञा» परीक्षाओं[4] की अपेक्षा अधिक उपयोगी[5] होती हैं, और पहचान परीक्षाएँ «प्रत्याह्वान» परीक्षाओं[6] की अपेक्षा अधिक उपयोगी होती हैं।

(ख) सीखने और स्मरण करनेके बीचके समयके बढ़नेके साथ धारणाका ह्रास होने लगता है। इस ह्रास की गति पहिले तेज होती है, किन्तु बादमें ह्रास उतना तेज नहीं होता।

(ग) कालक्षेप[7] के कारण ही «विस्मृति[8]» नहीं होती; इसका कारण तो वे प्रक्रियाएं होती हैं, जो उस अवधि में जारी रहती हैं।

१. नयी चीज सीखनेके कारण उत्पन्न बाधा या विघ्न[9] स्मृति-चिह्नोंको क्षति पहुंचा सकता है।

२. अनुपयोगके कारण पैदा होने वाला क्षय[10] या चयापचयात्मक परिवर्तन भी स्मृति-चिह्नों को क्षति-ग्रस्त कर सकते हैं।

(घ) जागनेके घंटोंकी अपेक्षा निद्रावस्थामें धारणा-शक्ति अच्छी बनी रहती है। शायद इसका कारण यह हो कि उस दशामें बाधाएँ कम हो जाती हैं।

(ङ) मूल उत्तेजनाओंकी नयी प्रतिक्रियाओं[11] को सीखने से जो «सीधी बाधा[12]» होती है, उससे धारणा-शक्ति को उल्लेखनीय क्षति पहुँचती है। यदि मूल सूची और दूसरी सूची, दोनोंको पूर्णतया सीख लिया जाय (कंठस्थ कर लिया जाय), तो बाधाके प्रभाव पर विजय पायी जा सकती है।

(च) भिन्न शब्दों वाली दूसरी सूचीको सीखनेसे जो «परोक्ष बाधा[13]» उत्पन्न होती है, वह सीधी बाधाकी अपेक्षा कम होती है। जब तक दूसरी सामग्री पहिली सामग्री के समान न हो, तब तक बाधाका प्रभाव हलका-सा पड़ता है।

(छ) «ताजगीके प्रभाव[14]» धारणा-शक्ति से सम्बन्धित तथ्य[15] हैं, जो प्रत्यक्षीकरण[16] के तत्काल बादमें प्रकट होते हैं। यह प्रक्रिया दीर्घकालीन धरणासे भिन्न जान पड़ती है और मस्तिष्कमें क्रियाके जारी रहने पर निर्भर होती है।

१. «गरम होने[17]»—स्फूर्ति लाने—की दशा तैयारी[18] की एक स्थायी दशा है, जो क्रिया द्वारा उत्पन्न होती है।

२. यदि दोनों सूचियोंके सीखनेके बीच कुछ समय का अन्तर नहीं पड़ता, तो उनके बीचकी बाधा अधिक हो जाती है।

३. पुराने अनुभवों और पुरानी प्रतिक्रियाओंका प्रत्याह्वान करनेमें जितना समय लगता है, उससे कम समय बहुत हालकी घटनाओंका प्रत्याह्वान करनेमें लगता है।

४. विस्मृतिकी वक्ररेखा[19] में शुरू-शुरूमें ही जो तेजी से पतन आता है, उसका कारण ताजगीके प्रभावोंका तेजीसे लुप्त होना हो सकता है।

५. ताजगीके प्रभावकी अवधिमें स्मृति-चिह्नकी स्थापनाका कार्य जारी रहता है।

६. यदि सिर पर आघात पहुंचाया जाय या सिरमें से बिजलीका जोरदार धक्का गुजारा जाय, तो आघातके पूर्व सीखी हुई सामग्री विस्मृत हो जाती है।

(ज) अपाठ और दुबारा सीखनेके द्वारा यदि पाठको «दोहरा» लिया जाय, तो स्मृति-चिह्नोंकी उन्नति होती है और विस्मृति घटती है।

५. किसी अप्रस्तुत वस्तुको स्मरण करना «प्रत्याह्वान» कहलाता है। पूर्ण प्रत्याह्वानके लिए सामग्रीको हूबहू याद करनेकी आवश्यकता होती है।

(क) «स्मृति-प्रतिमाएं[20]» साधारणतः वास्तविक इन्द्रिय-जन्य अनुभवों[21] की अपेक्षा इस बातमें निम्न कोटि की होती हैं कि जब तक मूल प्रत्यक्षीकरणके समय विस्तारकी बातोंका निरीक्षण न कर लिया गया हो, तब तक उनको प्रतिमामें नहीं देखा जा सकता।

(ख) «प्राथमिक मानसिक प्रतिमाएं[22]» ताजगीके प्रभाव[14] हैं। कई बच्चोंमें सजीव[23] और विस्तारयुक्त[24]

[1] structure [2] memory trace [3] relearning tests [4] recognition tests [5] sensitive [6] recall tests [7] lapse of time [8] forgetting [9] interference [10] atrophy [11] responses [12] direct interference [13] indirect interference [14] recency effects [15] phenomena [16] preception [17] warm-up [18] readiness [19] curve [20] memory images [21] sensory experiences [22] primary mental images [23] vivid [24] detailed

प्राथमिक मानसिक प्रतिमाएं[1] पायी जाती हैं।

(ग) «विभ्रम[2]» उन सजीव प्रतिमाओंको कहते हैं, जो प्रत्यक्ष से अलग नहीं पहचानी जा सकतीं। विभ्रम मुख्यरूपसे स्वप्नोंमें दिखायी देता है और कुछ मानसिक विकारोंमें भी पाया जाता है।

(घ) प्रत्याह्वान मूल वस्तुका विकृत, अधूरा, और कभी कभी मिथ्या रूप भी प्रस्तुत कर सकता है। ये त्रुटियां अपर्याप्त सीखने और प्रत्याह्वानकी प्रक्रिया की कठिनाइयों, दोनोंके कारण उपस्थित होती हैं।

१. निरर्थक आकृतियों[3] के प्रत्याह्वानमें लोग एक सामान्य विचारका प्रतिनिधित्व करनेवाले शब्दको तो याद रखते हैं, किन्तु वास्तविक आकृतिकी विस्तृत बातोंको भूल जाते हैं। प्रत्याह्वानमें मूल तथ्यकी जो पुनर्रचना[4] की जाती है, वह बहुधा व्यक्तिके सामान्य विचारके अनुकूल तोड़ी-मरोड़ी हुई होती है।

२. गवाहोंकी क़ानूनी गवाही[5] इन्हीं कमियों[6] का शिकार होती है। जब मूल घटना की विस्तृत बातोंका विशेषरूपसे निरीक्षण नहीं किया गया होता, तब प्रत्याह्वान अस्पष्ट, अधूरा या मिथ्या हो सकता है।

(ङ) धारणा-शक्ति के पर्याप्त होते हुए भी «प्रत्याह्वान में बाधाएँ[7]» पड़ सकती हैं। ऐसी बाधा या तो 'संवेग[8]' का या किसी अन्य (ग़लत) प्रतिक्रिया का प्रत्याह्वान करनेकी शक्तिशाली प्रवृत्तिका परिणाम होती है।

६. किसी प्रस्तुत वस्तुको स्मरण करने, पहिले कभी देखी हुई वस्तुके रूपमें उसे पहचाननेको «प्रत्यभिज्ञा[9]» कहते हैं। पूर्ण प्रत्यभिज्ञा में पूर्व प्रत्यक्षीकरणकी परिस्थितियोंका प्रत्याह्वान करना भी सम्मिलित होता है।

(क) यद्यपि प्रत्याह्वानकी अपेक्षा प्रत्यभिज्ञा सरलतर होती है, तथापि दो समान अनुभवोंमें भेद न कर पानेकी असफलता के कारण भूलें हो सकती हैं।

(ख) शब्दोंके अतिरिक्त व्यवहार के द्वारा भी प्रत्यभिज्ञा का प्रदर्शन किया जा सकता है—यह किसी वस्तुके प्रति पूर्व अनुभवमें स्थापित रुखको पुनर्जीवित करनेसे होता है।

७. व्यक्तियोंमें स्मरण करनेकी योग्यता भिन्न-भिन्न होती है, किन्तु कोई व्यक्ति सुव्यवस्था[10] और स्मृतिकी अच्छी विधियों[11] के द्वारा स्मरण करनेकी अपनी शक्तिको उन्नत बना सकता है।

(क) कंठस्थीकरणमें उन्नति करनेके लिए «अभ्यास[12]» प्रभावशाली होता है; किन्तु धारणा, प्रत्याह्वान, और प्रत्यभिज्ञा (पहचान) की प्रक्रियाओं पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

(ख) एक तरहकी सामग्रीको कंठस्थ करनेके लिए जो अभ्यास बढ़ाया जाता है, उसे दूसरी सामग्रीमें स्थानान्तरित[13] नहीं किया जासकता। दोनों कार्यों के बीच जितनी समानता और एकता रहेगी, उसी अनुपातमें अभ्यास-साध्य कुशलता का स्थानान्तरण हो सकेगा। इसलिए यदि सीखनेवाला व्यक्ति कार्य के उन रूपोंका, जो अन्य कार्योंमें भी समान रूपसे पाये जाते हैं, जैसे—नियमों[14], रुखों[15] और विधियों[16] आदि का, निरीक्षण करे और उन पर अपना ध्यान केंद्रित करे, तो अभ्यास-साध्य कुशलता[17] को अधिक परिमाणमें स्थानान्तरित[18] किया जा सकता है।

[1] eidetic images [2] hallucinations [3] nonsense figures [4] reproduction [5] legal testimony [6] limitations [7] interference with recall [8] emotion [9] recognition [10] better management [11] better methods of memory [12] practice [13] transfer [14] principles [15] attitudes [16] techniques [17] skill [18] transfer

विचारना[1]

यों तो मानव-जाति शेष सभी प्राणियोंसे विशेष रूपसे श्रेष्ठ है, उसकी यह श्रेष्ठता कई रूपोंमें दिखायी भी देती है, जैसे—प्रेरकों और रुचियोंकी विविधता, निरीक्षण, सीखना, और स्मृतिकी शक्तियां—परन्तु यह कहीं भी उतनी प्रमुख नहीं जान पड़ती जितनी बौद्धिक क्रियाओंमें, जिनका उल्लेख हमने पूर्व प्रकरणोंमें केवल प्रसंगवश किया है। स्पष्ट ही मनुष्य एक विचारक है। अपनी मेज पर झुका हुआ वह जब एक पेन्सिल और कागजके जरा-से टुकड़ेकी सहायता से कुछ लिख रहा होता है, या जब आरामकुर्सी पर बैठकर पैरोंको किसी छोटी मेज पर फेंककर वह अपने विचारोंमें खोया हुआ होता है, तब आन्तरिक क्रिया में तल्लीन होता है और शायद किसी महान् कार्यके लिए कोई महत्त्वपूर्ण क़दम उठा रहा होता है। मनुष्य कर्ता[2] और विचारक[3] के रूपमें प्रसिद्ध है। वह अपने परिवेशसे व्यवहार करना और उसको बदलना पसन्द करता है। वह बड़े-बड़े साहसके कार्यों[4] में जुट पड़ता है और दूर तक प्रभाव डालनेवाले परिणामोंको पैदा करता है। किन्तु ये बड़े-बड़े साहसके कार्य पहिलेके सोच-विचार[5] पर निर्भर होते हैं। ये योजनाबद्ध कार्य होते हैं, और योजना बनाना[6] भी सोचने-विचारने का ही एक रूप है। स्पष्टत: मनुष्य बात-चीत करनेवाला[7] और विचारक होता है, और उसकी बात-चीत तथा उसके सोच-विचार में कई प्रकार से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। भाषा[8] उसके विचारों[9] को ठोस रूप प्रदान करने में सहायता करती है और वह भाषा की सहायता से अपने साथियों पर अपना विचार प्रकट कर पाता है। भाषा लोगोंके एक समूहको अपने विचारोंको संगठित करनेमें समर्थ बनाती है; मनुष्य द्वारा किये जानेवाले बड़े-बड़े साहसके कार्य साधारणतः सामाजिक साहसपूर्ण कार्य ही होते हैं, जो योजना बनाने और उसे कार्यान्वित करनेमें दलबद्ध कार्य पर निर्भर करते हैं।

चिन्तन[10]

पूर्व प्रकरणोंमें व्यक्तिको 'परिवेशके साथ व्यवहार करते हुए' या 'परिवेशके साथ सक्रिय लेन-देन का सम्बन्ध रखते हुए' दिखाया गया है। वह ऐसी उत्तेजनाओं[11] को ग्रहण करता है, जिनको वह परिवेशमें उपस्थित वस्तुओं और परिवेशमें हो रही घटनाओंके संकेतों या चिह्नों[12] के रूपमें इस्तेमाल करता है; वह परिवेशमें इधर-उधर घूमकर, वस्तुओंका प्रहस्तन करके, और चालू क्रियाओंमें भाग लेकर परिवेशके प्रति अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करता है। वह परिवेशको जानना और उस पर शासन करना सीखता है।

फिर भी मनुष्योंमें, और कुछ हद तक उच्चतर पशुओंमें भी एकप्रकारकी चिन्तन-क्रिया[13] होती है, जो « प्रस्तुत » परिवेश से व्यवहार नहीं करती। चिन्तन या 'विचारना' स्पष्टतः इस अर्थमें 'मानसिक' क्रिया है कि यह स्पष्ट रूपसे ज्ञानेन्द्रिय-सम्बन्धी[14] या गति-सम्बन्धी[15] क्रिया नहीं होती। यह प्रस्तुत वस्तुओंके संकेतोंके रूपमें सांवेदनिक उत्तेजनाओं[16] का इस्तेमाल नहीं करती, और न यह वर्तमान परिवेशमें कोई परिवर्तन उत्पन्न करनेके लिए मांस-पेशियों की गतियां करती है। किसी रोचक कहानीको पढ़ते समय आप छपे हुए पृष्ठसे जो उत्तेजनाएं ग्रहण करते हैं, उनको आप काल्पनिक घटनाओंके संकेतोंके रूपमें ही देखते हैं, न कि अपने वास्तविक परिवेशमें सचमुच हो रही किसी घटना के रूपमें। कलके लिए योजना बनाते समय आप अपनी मांस-पेशियोंका उपयोग कर सकते हैं, फ़र्श पर चहल-क़दमी कर सकते हैं, और यहां तक कि अपने भावी प्रतिद्वंद्वी को चुनौती देते हुए हवा में घूंसा तक मार सकते हैं, किन्तु इन सब चेष्टाओंसे यह पता नहीं चलता कि आप अपने वर्तमान परिवेश को बदलनेकी कोशिश कर रहे हैं। दूसरे समयोंमें आप अपने किसी अनुपस्थित मित्रके विषय में सोचते हैं, अमुक दूरस्थ स्थान पर क्या हो रहा होगा, इस सम्बन्धमें विस्मय करते हैं या इस विषयमें चिन्तित होते हैं कि भविष्यमें क्या होनेवाला है। क्या हम विचार और अनुभूतिके इस 'आन्तरिक जीवन' को परिवेशके साथ सक्रिय व्यवहार करनेवाले व्यावहारिक जीवनसे बिलकुल अलग मान लें ?

स्वप्न और दिवास्वप्न. शैथिल्यके किसी क्षणमें और विशृंखल विचारकी अवस्था में, आपके विचार इधर-उधर चक्कर खाते रहते हैं, एक चीज आपकी किसी दूसरी चीज

[1] thinking [2] doer [3] thinker [4] enterprises [5] previous thinking [6] planning [7] talker [8] language [9] thoughts [10] ideation [11] stimuli [12] signs [13] ideational activity [14] sensory [15] motor [16] sensory stimuli

का स्मरण दिलाती है, एक स्मृति दूसरी स्मृतिका प्रत्याह्वान[1] करती है, और आप देखते हैं कि अपने प्रारम्भ-बिन्दुसे आप आश्चर्यजनक रूपसे बहुत दूर निकल आये हैं; किन्तु यदि आप सावधानीसे विचारोंके अनुक्रमका पुनर्निरीक्षण[2] करें, तो साधारणतः उन साहचर्यकी कड़ियोंको खोज सकेंगे जो आपको एक चीज पर से दूसरी चीज पर ले गये। कभी-कभी चिरविस्मृत स्मृतियां «स्वतंत्र-साहचर्य[3]» की इस प्रक्रियासे पुनर्जीवित हो जाती हैं। इस साहचर्यको इसलिए 'स्वतंत्र[4]' कहा जाता है कि यह किसी उद्देश्यसे नियंत्रित नहीं होता और न किसी लक्ष्यकी ओर संचालित होता है (पृ० १३३)।

दिवास्वप्नमें अधिक अविच्छिन्नता[5] होती है। आप 'हवा में महल' बना रहे होते हैं, वस्तुओंकी कल्पना उस रूपमें कर रहे होते हैं जिस रूपमें आप उनको देखना चाहते हैं, न कि जिस रूपमें वे वास्तवमें हैं। या आप किसी ऐसी कहानी का निर्माण कर रहे होते हैं, जिसके नायक आप स्वयं होते हैं। साधारणतः दिवास्वप्नमें आप 'विजेता नायक' होते हैं। आप कल्पना करते हैं कि आपने अपनी प्रियतमा का हृदय जीत लिया, प्रतियोगी लोग अपना-सा मुँह लिये रह गये, या आप यह कल्पना करते हैं कि आपने किसी काममें विलक्षण योग्यताका परिचय दिया। किन्तु इस बातकी भी सम्भावना है कि आप अपने दिवास्वप्नमें स्वयंको 'पीड़ित नायक' के रूपमें देखें, अपनी प्रियतमासे ठुकराया जाता पावें, या देखें कि आपके अच्छेसे अच्छे मित्र भी आपको ग़लत समझ रहे हैं। विजेता नायकके स्वप्नकी प्रेरणा[6] को तो समझना सरल है, किन्तु कोई मनुष्य अपनी वास्तविक स्थितिसे भी बुरी स्थितिमें पड़नेकी कल्पना क्यों करता है? यदि कोई व्यक्ति मामूली तरीक़ेसे अपमानित या आलोचित हुआ है, तो वह 'राईका पर्वत' बनाकर उस घटनाको क्यों देखता है? कोई व्यक्ति, जिसे बहुत साधारण-सी चोट पहुँची है, कभी-कभी अपनेको हास्यास्पद स्थितिमें पड़ा पाता है, और यदि वह इसे मज़ाक़में टाल नहीं देता तो उसके सामने एक ही रास्ता रह जाता है कि वह अपनी चोटको बढ़ा-चढ़ा कर दिखावे और इस प्रकार आत्म-गौरव[7] की भावनाको पुनः प्राप्त करे। इसलिए दोनों प्रकारके नायकोंके-दिवास्वप्न[8] स्वप्नद्रष्टाके आत्मसम्मानके पोषक होते हैं। दिवास्वप्न के प्रेरक दैनिक जीवनके प्रेरक होते हैं, और जिन सामग्रियों से स्वप्नोंके महलका निर्माण होता है, वे दैनिक जीवनके अनुभवोंसे ली गयी होती हैं। इस प्रकार दिवास्वप्न परिवेश के साथ जीवनके सक्रिय लेन-देन[9] से बिलकुल भाग जानेका नाम नहीं है।

खेल-कूदकी क्रियाके रूपमें, या 'कल्पनाके खेल' के रूपमें दिवास्वप्नका भी अन्य प्रकारके खेलोंके समान कुछ मूल्य है। किन्तु यथार्थ जीवनकी कठिनाइयों और उत्तरदायित्वोंसे पलायनके रूपमें यह स्पष्टतः ख़तरेसे ख़ाली नहीं है। जैसा कि कुछ पागल व्यक्ति करते हैं, यदि इसे चरम सीमा तक बढ़ाया जाय, तो यह व्यक्तिको वास्तविक जीवनके अयोग्य बना देता है। इनमें कुछ भाग्यहीन लोग कल्पना-सृष्टिमें इतने तल्लीन हो जाते हैं कि वे परिवेशके साथ, कमसे कम सामाजिक परिवेशके साथ, अपना सारा सम्पर्क खो बैठते हैं। दूसरे दिवास्वप्नद्रष्टा अपने चतुर्दिक् संसारसे कुछ सम्पर्क बनाये रखते हुए, उसे एक काल्पनिक जगत्‌का रूप दे देते हैं, जिसमें वे या तो विजेता नायक होते हैं या पीड़ित नायक या एक ही साथ दोनों। तात्पर्य यह कि उन्हें महान् और पीड़ित होने का मिथ्या विश्वास होता है।

अब हम दिवास्वप्नोंको छोड़कर निशास्वप्नों पर विचार करेंगे। निद्रामें मस्तिष्ककी क्रिया निम्न स्तर पर उतर आती है। परिवेशके साथ सम्पर्क प्रायः टूट जाता है, हालांकि अपरिपक्व और कपोलकल्पित रूपमें कुछ उत्तेजनाओंकी जानकारी हो जाया करती है, जैसे—घड़ीके 'अलार्म' को मधुर संगीत समझ लेना, या पैरों पर लगनेवाली ठंडी हवा को भीगा रास्ता समझ लेना। बहुधा निशास्वप्न भी दिवा-स्वप्नकी भांति विचारों और प्रतिमाओंकी, जिनसे कहानीका निर्माण होता है, शृंखला प्रतीत होता है, हालांकि उस कहानी में कथानक अधिक नहीं होता और न उसमें अविच्छिन्नता ही होती है। उस समय स्वप्नकी घटनाएं वास्तविक जान पड़ती हैं, क्योंकि वास्तविक जगत्‌से उसकी तुलना नहीं हो पाती। कुछ स्वप्न तो स्पष्टतः इच्छा-पूर्तिकारक होते हैं; उदाहरण-स्वरूप बच्चेका यह स्वप्न देखना कि उसे चाकुओंका पूरा सन्दूक ही मिल गया है, या अतृप्त कामवासनावाले[10] लोगों द्वारा कामुक स्वप्नोंको देखना; बुभुक्षित व्यक्तिका यह देखना कि वह दावतमें छत्तीसों प्रकारके व्यंजन खा रहा है, या ध्रुवों की खोज करनेवाले व्यक्तिका बहुधा यह देखना कि उसे गरम हरे-भरे मैदानोंका दर्शन हो गया है। कुछ स्वप्न तो इतने अधिक काल्पनिक होते हैं कि उनका कोई व्यक्तिगत अर्थ ही नहीं निकलता और न यही जान पड़ता है कि वे किसी इच्छा की पूर्ति करते हैं; हालांकि प्रसिद्ध मनोविश्लेषक फ्रायड[11] का यह विश्वास था कि ये सभी स्वप्न किसी न किसी इच्छाकी तृप्ति प्रच्छन्न रूपमें करते हैं, बहुधा ये बचपनसे लेकर अब तक व्यक्तिकी दबाई[12] इच्छाओंको पूर्तिके साधन होते हैं (६)।

यदि कोई स्वप्न किसी स्पष्ट प्रेरक या लक्ष्यसे रहित भी

[1] recall [2] review [3] free association [4] free [5] continuity [6] motivation [7] self-importance [8] 'hero' day dreams [9] give-and-take [10] sexually abstinent [11] Freud [12] repressed

दिखाई दे, तो भी उस स्वप्नकी सामग्रियां जाग्रत् जीवनके अनुभवोंसे प्राप्त हुई रहती हैं।

सप्रयोजन-विचार[1]. दिवास्वप्नसे भी एक अच्छे उद्देश्यकी पूर्ति इस तरह हो जाती है कि वह कठिन श्रमपूर्ण कार्यके पश्चात् कुछ समयके लिए विश्राम[2] और गम्भीर उत्तरदायित्वोंसे छुटकारा देता है। कहानी पढ़नेसे भी यही होता है। किन्तु चिन्तन[3] का उपयोग परिवेशके साथ व्यवहार करनेके व्यावहारिक जीवनमें भी होता है। «खोज या अनुसन्धान[4]» तथा «आविष्कार[5]» से सम्बन्धित महान् मानवीय कार्योंमें इसका महत्त्वपूर्ण भाग होता है। अनुसन्धान छोटेसे छोटे और बड़ेसे बड़े वैज्ञानिकों, अन्वेषकों और हर तरहके खोजियों[6] का लक्ष्य होता है; और आविष्कार इंजीनियरों, कलाकारों तथा हर तरहके निर्माताओंका लक्ष्य होता है। छोटा-सा बच्चा भी अपने छोटे तरीक़ेसे आविष्कार और अनुसन्धान करता है, क्योंकि परिवेशका अनुसन्धान करने पर उसे बहुत-सी चीजें ऐसी मिलती हैं, जो उसके लिए नयी होती हैं; परिवेशके साथ व्यवहार करते समय वह कई ऐसे खेल करता है, जिनमें कुछ-कुछ मौलिकता होती है। आविष्कार या अनुसन्धानकी प्रक्रियामें चिन्तनका क्या आवश्यक भाग है, यह साधारण, सीधे-सादे उदाहरणोंमें भी देखा जा सकता है।

मान लीजिए, आपको हथौड़ेकी आवश्यकता है। आप उस जगह जाते हैं जहां वह रोज रखा जाता है, किन्तु वहां वह नहीं मिलता। यदि आप बिना किसी पथ-प्रदर्शक विचार[7] के, आवेशमें आकर, सारे घरमें उलट-पलट शुरू कर दें, तो यह एक विशुद्ध गत्यात्मक अनुसन्धान[8] होगा। किन्तु थोड़ी देर खोजनेके बाद आप बैठ जायें और मनमें कहें— 'मैं सोचूं तो सही, हथौड़ा कहां मिल सकता है? शायद उस जगह पर रखा हो, जहां मैंने कल शामको काम किया था!' आपको एक खास स्थानमें उसका इस्तेमाल करनेकी याद हो आती है और आपको जाते ही हथौड़ा वहां रखा हुआ मिल जाता है। इस उदाहरणमें आपने केवल गत्यात्मक अनुसन्धान के स्थान पर मानसिक अनुसन्धानको प्रतिष्ठित किया, फलतः समय और शक्तिका अपव्यय न होने दिया। इसमें दो चिन्तन-तत्त्वोंने भाग लिया—(१) एक पथ-प्रदर्शक विचार ने, 'उस जगह पर देखो, जहां तुमने कल शामको उससे काम किया था'; और (२) स्मृतिसे प्राप्त एक विशिष्ट तथ्यने।

एक उदाहरणके रूपमें, जो 'अनुसन्धान' शीर्षकके अन्तर्गत आनेके बजाय 'आविष्कार' शीर्षकके भीतर आयेगा, मान लीजिए कि आप अपने कमरेमें रखे हुए फ़र्नीचरकी व्यवस्था से असन्तुष्ट हैं; आप काफ़ी मेहनत करके फ़र्नीचरको इधर-उधर हटानेके बजाय बैठ कर अपने मनमें कहते हैं, 'मैं सोचूं तो सही, वर्तमान व्यवस्थामें क्या खराबी है और मैं पुनर्व्यवस्था करके अपने कमरेको कैसा देखना चाहता हूं?' यह प्रश्न और इसका जो उत्तर आप देंगे, वह आपके विचारको एक निश्चित दिशामें ले जायगा और आपको उन कमरोंकी याद दिलायेगा, जिनकी व्यवस्थाको आपने पसन्द या नापसन्द किया था। अब यदि आप अपने फ़र्नीचरकी सम्भव पुनर्व्यवस्था पर विचार करें, तो फ़र्नीचरकी वस्तुओंको वास्तव में हटाये बिना ही पुनर्व्यवस्थाके कारण उत्पन्न होनेवाले प्रभावकी कल्पना कर सकेंगे।

इस तरह चिन्तन[3] तीन प्रकारसे आविष्कार और अनुसन्धान में उपयोगी होता है: (१) सबसे स्पष्ट उपयोग तो यह होता है कि आप ऐसे पूर्व निरीक्षित तथ्योंका प्रत्याह्वान करते हैं जो वर्तमान समस्यासे सम्बन्धित होते हैं; (२) पथ-प्रदर्शक विचारों[9] का प्रत्याह्वान भी इससे कम मूल्यवान् नहीं होता। किसी समस्याको सुलझानेके प्रयत्नमें परिश्रमसे प्राप्त एक नियम या सिद्धान्त कभी-कभी सफलतापूर्वक किसी नयी समस्या में व्यवहृत किया जा सकता है (पृ० ३५२)। (३) एक बार जब अपनी समस्याको सुलझानेका कोई उपाय आपको सूझता है, तब चिन्तनके द्वारा आप यह निर्णय कर सकते हैं कि यह उपाय आपके लिए अच्छा सिद्ध होगा या नहीं। आपको अपने मित्रके साथ करनेके लिए एक बड़ा अच्छा मज़ाक़ सूझता है, किन्तु फिर आप स्वयंसे पूछते हैं कि आपके मित्रकी प्रतिक्रिया इस मज़ाक़के प्रति क्या होगी; वह इससे खुश होगा या नाराज़। आप कल्पनाके द्वारा ही मज़ाक़को क्रियान्वित होते और उसके प्रति अपने मित्रकी प्रतिक्रिया देख लेते हैं। आपको लगता है कि सम्भावनाएं कुछ बहुत अच्छी नहीं हैं। आप इस चीज़को आंखोंके वास्तविक प्रयोगसे नहीं देखते, चिन्तनकी विधिसे[10] 'देखते' हैं, बल्कि मज़ाककी बातको तौल कर 'देखते' हैं। 'देखने[11]' का अर्थ यहां कोशकी भाषामें 'समझना, मानसिक अन्तर्दृष्टिके द्वारा देखना[12]' है। इस सम्बन्धमें एक ज़रूरी बात यह है कि कभी-कभी हम केवल सोच-विचारसे यह पता लगा लेते हैं कि अमुक कथन सत्य है या मिथ्या; अमुक कार्य-योजना सफल होगी या असफल। दूसरे मौक़ों पर जब तक हम अपने हल[13] की परीक्षा करके उसका परिणाम अपनी आंखोंसे नहीं देख लेते, तब तक उसके विषयमें पूर्ण

[1] purposive thinking [2] relaxation [3] ideation [4] discovery [5] invention [6] explorers [7] guiding idea [8] motor exploration [9] guiding ideas [10] ideationally [11] to see [12] to discern, to percive by mental insight [13] solution

आश्वस्त नहीं हो सकते; किन्तु यह होने पर भी चिन्तन के द्वारा समझने[१] से प्रयोगका रास्ता तैयार होता है और बिना समझके प्रयोगसे कुछ भी सिद्ध नहीं होता। सोद्देश्य सोच-विचार खोजने और पानेकी एक प्रतिक्रिया है। पथ-प्रदर्शक विचार[२] खोजनेकी प्रक्रिया को संचालित करते हैं, किन्तु समझ लेना या लेना[३] है।

विचार के साधन[४]

विचारकी क्रिया सदा कठिन या श्रमसाध्य नहीं होती, क्योंकि विशृंखल विचारकी दशा में और दिवास्वप्नमें विचारोंको अबाध गतिसे दौड़ानेके समान दूसरी सरल चीज़ और क्या होगी। फिर भी किसी समस्या पर विचार करना अधिक कठिन है, क्योंकि विचारोंकी प्रवृति बे-लगाम घूमनेकी होती है, और प्रस्तुत परिवेश से भी विघ्नकारी उत्तेजनाएं प्राप्त होती रहती हैं। ये कठिनाइयां «प्रतीकों[५]» का उपयोग करके कुछ हद तक कम की जाती हैं। ये प्रतीक प्रस्तुत वस्तु होते हैं, जो अप्रस्तुत वस्तुओंके स्थानापन्न होते हैं। यदि आप बताना चाहते हैं कि एक चौराहे पर आपकी कार और एक दूसरी कारमें कैसे भिड़न्त हुई, तो आप कुछ इस तरह अपनी बात समझायेंगे: 'यह एक सड़क है और यह दूसरी सड़क; इस पुस्तकको मेरी कार समझ लीजिए और एक दूसरी पुस्तकको दूसरी कार'—इत्यादि। आप अप्रस्तुत सड़कों और कारोंके लिए प्रतीकोंका उपयोग कर रहे हैं, और वास्तव में आप दो तरहके प्रतीक इस्तेमाल कर रहे हैं: चित्र[६] और शब्द[७]। पुस्तकें और दो सड़कोंके रूपमें बतायी गयी दूरियां परिस्थिति का चित्र तैयार करती हैं और आपके शब्द, 'मेरी कार' और 'दूसरी कार' आदि शब्द-प्रतीक[८] होते हैं, जो एक अप्रस्तुत वस्तु को दूसरी अप्रस्तुत वस्तुसे अलग करते हैं। शब्द और चित्र, दोनों ही विचारके साधनों[४] का काम देते हैं।

स्मृतिको विचारका एक साधन कहा जा सकता है। यदि इसे साधनोंकी पिटारी[९] कहा जाय तो अधिक ठीक रहे, क्यों कि इससे आप पूर्वार्जित ज्ञान प्राप्त करते हैं, जो आपकी वर्तमान समस्याके सुलझानेमें उपादेय सिद्ध हो सकता है। आप के ज्ञान-भंडार में कई ऐसे प्रत्यय[१०] और सिद्धान्त[११] हैं, जिनका उपयोग विचारके साधनोंके रूपमें किया जासकता है।

विचार और भाषा. यदि आप किसी बच्चेसे पूछिए कि वह 'किस चीज़से सोचता है' तो बहुत सम्भव है कि वह अपने मुंहकी ओर इशारा करे। कुछ व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों[१२] ने गलेके स्वर-यंत्र[१३] की ओर संकेत किया है; प्राचीन यूनानी विद्वानों ने उर:प्राचीर[१४] की ओर इशारा किया था। ये सभी विद्वान् विचारको वाणी[१५] के साथ निकटता से संयुक्त करनेमें सहमत हैं। उनके इस मतको हममें से कई लोग अपने अन्त-र्दर्शन[१६] के द्वारा समर्थन प्रदान करते हैं, क्योंकि हम सोचते समय 'मूक वाणी' का प्राय: अनुभव करते हैं।

निस्सन्देह, भाषा से विचारनेमें बड़ी सहायता मिलती है। सर्वप्रथम विचारनेकी क्रिया अधिकतर सामाजिक परिस्थितियों में विकसित होती है। बच्चेसे जब प्रश्न किया जाता है और जब वह यह बतलानेकी चेष्टा करता है कि उसने क्या देखा है और क्या चाहता है, तब उसे सोचनेके लिए उत्तेजना मिलती है। वयस्क व्यक्तियोंको वाद-विवाद और तर्क-वितर्क से विचारके लिए उत्तेजना प्राप्त होती है। जब कोई व्यक्ति अकेला होता है और अपने-आप में विचार कर रहा होता है, तब वह कभी-कभी बोलता है और ऐसे इशारे करता है, मानो श्रोताओंके सामने वह अपने विचारोंका समर्थन कर रहा हो।

भाषा विचार-सामग्रियों को जुटानेमें सहायता करती है, क्योंकि इससे प्रत्याह्वान[१७] में सुविधा होती है। शब्दोंके रूप में वर्णित सिद्धान्तों और तथ्योंको याद करना खास तौरसे आसान होता है। एक समस्याको सुलझानेके सिलसिलेमें प्राप्त सिद्धान्तको यदि आपने उपयुक्त शब्दोंमें रख दिया है तो उसी तरहकी समस्याके फिर सामने आने पर आप उस सिद्धान्तका प्रत्याह्वान बड़ी तत्परता से कर लेते हैं। कुछ तो इसका कारण यह है कि सुन्दर शब्द-रचना वाले वाक्योंको कंठस्थ करना और याद रखना सरल होता है, और कुछ कारण यह है कि यदि किसी सिद्धान्तको स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करना है तो पहले उसे स्पष्ट रूपसे समझना आवश्यक है।

किन्तु भाषा एक धोखेबाज़ साधन[१८] सिद्ध हो सकती है। एक अच्छे वाक्यसे आपको यह भ्रान्ति हो सकती है कि आपने अमुक चीज़को समझ लिया है, जबकि वास्तवमें आप उसको बिल्कुल हृदयंगम नहीं किये होते। इसके अलावा कई द्व्यर्थक[१९] शब्द होते हैं, कई बहुप्रश्नात्मक[२०] शब्द होते हैं, जो कहते कुछ हैं, पर जिनका अर्थ बिल्कुल दूसरा होता है। इनके अतिरिक्त डींग मारनेवाले शब्द होते हैं, शोक-व्यंजक शब्द होते हैं, ऐसे शब्द होते हैं जो खुशीके मारे तालीं बजानेको विवश कर दें। कीचड़ उछालनेवाले शब्द भी होते हैं, जो संवेग[२१] और पूर्वग्रह[२२]

[१] discern [२] guiding ideas [३] finding [४] tools of thought [५] symbols [६] diagrams [७] words [८] verbal-symbols [९] tool chest [१०] concepts [११] principles [१२] behaviouristic psychologists [१३] larynx [१४] diaphragm [१५] speech [१६] introspection [१७] recall [१८] treacherous tool [१९] ambiguous [२०] question begging [२१] emotions [२२] prejudice

को जाग्रत् करते हैं और स्पष्ट विचारका मार्ग बन्द कर देते हैं (८)।

केवल बातचीत[1], केवल शब्दाडम्बर[2] को विचारकी संज्ञा नहीं दी जा सकती। एक लड़का व्याख्यान रट लेता है और सभा-मंच पर बोलनेके लिए जाता है। वह किंचिन्मात्र यह अनुभव किये बिना कि वह क्या बोल रहा है, रटी हुई वक्तृता को शब्दश: उगल देता है। जो 'मूक वाणी' विचारके साथ रहती है, वह सार्थक वाणी होती है; विचार अर्थके साथ सम्बन्धित होता है, शब्दोंके साथ नहीं; हालांकि सतर्क विचारके लिए शब्दोंका भी बहुत महत्त्व हो सकता है।

बहुधा मूक वाणीके साथ-साथ कुछ वास्तविक पैशिक क्रिया भी होती है, जैसाकि हम इस तथ्यसे आशा कर सकते हैं कि छोटा शिशु उच्चारण करते हुए सोचता है। कम शोर करनेके लिए कहने पर वह फुसफुसाना या केवल ओठोंसे बुदबुदाना शुरू करता है और अन्तको बोलनेकी कोई प्रत्यक्ष क्रिया किये बिना ही सोचनेका अभ्यस्त हो जाता है। पढ़ना सीखनेमें भी वह इसी तरहके अनुक्रमसे गुजरता है—पहिले जोरसे पढ़ता है, फिर कुछ धीरे-धीरे और अन्तको मन ही मन पढ़नेका अभ्यस्त हो जाता है। इस घटना-क्रम से हम यह आशा कर सकते हैं कि वयस्क व्यक्तिके सोचते या मौन होकर पढ़ते समय मांस-पेशियों की कुछ अवशिष्ट चेष्टा होती होगी। मांस-पेशियां कोई द्रष्टव्य (या श्रोतव्य) गतियां किये बिना भी मामूली तौरसे सक्रिय हो सकती हैं। मांस-पेशियोंकी हल्की क्रियाशीलता के दौरान में उत्पन्न होनेवाली 'पेशी-तरंगों'[3] या वैद्युतिक परिवर्तनोंका पता लगाने और उनका विपुलन करनेसे उपर्युक्त बात प्रमाणित हो जाती है। यदि जीभमें बिजलीके तारका छोर[4] लगा दिया जाय तो किसी मूकवाणीके दौरानमें निर्बल पेशी-तरंगों[5] का पता लगाया जा सकता है। ऐसा प्रायः तब होता है, जब व्यक्ति किसी कविता का प्रपाठ[6] स्वयंको सुनाकर करता है (१०)। किसी बहरे आदमीको, जो अधिकतर अपनी उँगलियों से बातचीत करता है, वाक्-मांस-पेशियां[7] भुजाके अग्रभागमें स्थित होनेके कारण अधिक सुलभ[8] होती हैं। ऐसे व्यक्ति की अग्र भुजा[9] में यदि बिजलीके तारका छोर छुआया जाय, तो सरल पठन या सरल अंकगणित-सम्बन्धी कार्यके दौरानमें कोई पेशी-तरंगें मालूम न की जा सकेंगी, किन्तु विचारना जितना ही कठिन होता जाता है, पेशी-तरंगें प्रकट होने लगती हैं (१४)। इसी प्रकार हममें से कोई व्यक्ति, जो चुपचाप पढ़नेका आदी है, कभी-कभी कठिन पाठ्य-सामग्री से सामना होने पर या तो अपने ओठोंसे बुदबुदाने लगता है, या जोरजोर से बोलकर पढ़ने लगता है। गहन विचारके समय आदमी बहुधा हल्के हाव-भाव[10] और बोलनेकी गतियां करने लगता है।

चित्र[11]. किसी जटिल परिस्थिति या कार्य-योजना का शाब्दिक वर्णन बहुत उलझा हुआ[12] हो जायगा और उसको सम्बद्ध करना कठिन हो जायगा। एक ऐसे शिल्पकार की कल्पना कीजिए, जो बढ़इयों और नल लगानेवाले कारीगरोंको बिना रेखाकृतियोंकी सहायता के समझा रहा हो कि वह मकान को किस प्रकार बनवाना चाहता है! या एक ऐसे संगीतनिर्देशक की कल्पना कीजिए, जो अपने 'ऑर्केस्ट्रा' को बिना संगीत-संकेतों (या स्वरलिपि) की सहायताके केवल शब्दोंके जरिये यह बताना चाहता है कि उनको एक नया गीत बाजों पर कैसे बजाना है! कोई रेखाकृति[13], संगीतकी स्वरलिपि, नक़्शा या संगठन तालिका[14] एक विस्तृत प्रतीक[15] होती है, जिसमें शाब्दिक वर्णनकी अपेक्षा कुछ अधिक लाभ होते हैं। यह समस्त योजना

आकृति १३८. उँगलियोंकी सहायता से बात-चीत करना—बहरे व्यक्तियों द्वारा इस्तेमाल किये जानेवाले एक प्रामाणिक वर्णमाला के प्रथम कुछ अक्षर इस आकृतिमें दिखाये गये हैं। कई अन्य प्रामाणिक संकेत और इशारे भी इस्तेमाल किये जाते हैं। यदि कोई व्यक्ति अपने हाथोंकी सहायता से बात-चीत करता है तो क्या उसे अपने हाथोंकी सहायता से सोचना भी नहीं चाहिए?

[1] talk [2] verbalism [3] muscle currents [4] electrode [5] feeble muscle current [6] recitation [7] speech muscles [8] accessible [9] forearm [10] gesturing [11] diagrams [12] unwieldy [13] blue-print [14] organization chart [15] elaborate symbol

या परिस्थिति का विस्तृत स्वरूप सामने रख देती है, और इसकी रचना इस प्रकार हुई होती है कि यथार्थ वस्तुकी कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएं भी इसमें समाहित रहती हैं। किसी रेखाकृति[1] या संगठन-तालिका का अध्ययन करके आप उस योजना की त्रुटियों का पता लगा सकते हैं और उनको ठीक करने का उपाय सोच सकते हैं। एक सड़कका नक़शा देखकर आप अपनी यात्रा के लिए सन्तोषप्रद मार्ग निर्धारित करते हैं। किसी समस्या को सोचनेके लिए इससे अधिक सरल चित्र[2] उपयोगी होते हैं।

प्रत्यय[3]. यदि किसी शब्दको विचारका साधन[4] बनना है, तो उसका कुछ अर्थ होना चाहिए। किसी शब्दके अर्थ को प्रत्यय[3] कहते हैं। शब्द-कोश में किसी शब्दकी जो परिभाषा दी गयी होती है, वह प्रत्ययको अभिव्यक्ति प्रदान करनेका एक प्रयत्न होता है और उदाहरण अर्थ को स्पष्ट करने में सहायता करते हैं। बहुधा आप किसी शब्दका अर्थ जानते होते हैं, किन्तु उसे ठीक शब्दोंमें दूसरों पर प्रकट नहीं कर पाते। इसका मतलब यह हुआ कि आपके पास ऐसे प्रत्यय हैं, जिनको आप स्वरूप नहीं प्रदान कर सकते, और निस्सन्देह आपके पास ऐसे प्रत्यय होते हैं, जिनके लिए आपके पास कोई सुविधाप्रद नाम नहीं होते।

कोई व्यक्ति, जो पहिली बार भूलभुलैयाका अनुभव कर रहा है, किसी रास्तेमें प्रवेश करता है, उसका अनुसन्धान करता है, देखता है कि यह तो आगे चलकर बन्द हो गया है, वह पुन: उस स्थान पर लौट आता है जहां से वह चला था। यदि पुन: आगे बढ़नेके पहिले वह उस रास्तेके विचित्र स्वरूप को ध्यानमें रखता है, तो जब अगली बार किसी रास्तेके प्रवेश-द्वार पर पहुँचता है, तब वह अपने-आप से पूछता है कि 'क्या यह भी पहिले रास्तेकी तरह ही तो नहीं निकलेगा?' और वह इस दूसरे रास्तेका अनुसन्धान एक निश्चित प्रश्नके साथ करता है, जिसका उत्तर उसे खोजना रहता है। अपने पूर्व निरीक्षण का प्रत्याह्वान करके वह हर नयी समस्या को 'क' 'ख' 'ग' से शुरू करनेसे बच जाता है। यदि वह 'उन चीज़ों' के लिए कोई अधिक निश्चित नाम तय कर लेता है,तो वह नाम उसके प्रत्ययात्मक साधन[5] के एक अच्छे प्रतीक का काम दे जायगा। 'बन्द गलियों' का प्रत्यय भूलभुलैयोंका अनुसन्धान करते समय उपादेय साधन सिद्ध होगा और आलंकारिक रूपमें[6] कहें, तो यह अन्य प्रकारकी समस्याओंको सोचनेमें स्थानान्तरित[7] हो सकता है और उनका हल निकालनेमें इसका उपयोग किया जा सकता है।

इस बातका एक उच्चस्तरीय उदाहरण वह होगा, जिसमें लोगोंका एक समूह महँगाईकी समस्या पर विचार-विनिमय कर रहा होगा। एक आदमी कहेगा—'यदि क़ीमतें बढ़ेंगी, तो मजदूरी भी बढ़ानी ही पड़ेगी।' दूसरा आदमी कहेगा—'किन्तु यदि मजदूरी बढ़ी, तो उत्पादनके बढ़े हुए व्ययको सँभालनेके लिए क़ीमतोंको बढ़ाना जरूरी हो जायेगा।' एक तीसरा बोल उठेगा—'ठीक है, तो हमारे सामने इस कुचक्र से बचनेका एक ही उपाय है कि उत्पादन बढ़ाया जाये'। इस उदाहरणमें कई शब्द ऐसे इस्तेमाल हुए हैं जो धाराप्रवाहवत्, तोता-रटन की तरह बोले जा सकते हैं, या जो निश्चित प्रत्ययों[3] के बदलेमें काम आ सकते हैं और स्पष्ट विचारके लिए साधनों के रूपमें इस्तेमाल किये जाते हैं।

किसी वस्तुका आपका प्रत्यय[3] प्रामाणिक परिभाषा से पूर्णतया मेल नहीं खा सकता, क्योंकि आपके प्रत्यय में वे बातें भी सम्मिलित हैं, जिन्हें उस वस्तुके बारे में आप जानते या विश्वास करते हैं; उसमें उस वस्तुके प्रति आपका रुख[8] भी सम्मिलित होता है। किसी गिरजाघर या मन्दिरके विषयमें आपका प्रत्यय मेरे प्रत्ययसे भिन्न हो सकता है। गिरजाघरों या मन्दिरोंके विषयमें चर्चा करते समय आप अपने प्रत्ययका इस्तेमाल करते हैं और मैं अपने प्रत्ययका; फल यह होता है कि हम एक-दूसरे को समझनेमें असफल रहते हैं।

केवल वस्तुओं और व्यक्तियोंके ही प्रत्यय नहीं होते, बल्कि उनके गुणों, क्रियाओं और परस्पर सम्बन्धों के भी प्रत्यय होते हैं। इस प्रकार पर्वतोंकी ऊँचाई, पत्तोंकी फड़फड़ाहट और गिरना तथा दो स्थानोंके बीचकी दूरी के प्रत्यय भी होते हैं। इसी तरह कुछ लोगों की आशावादिता, उनके चलने, बोलने और सांस लेने तथा लोगोंके बीच मित्रता और शत्रुता के भी प्रत्यय होते हैं।

बोलनेमें समर्थ होनेके पहिले बच्चा निस्सन्देह अपने लिए कुछ प्रत्ययोंका निर्माण कर लेता है। वह निरीक्षण करता है और याद करता है कि कुछ व्यक्ति और वस्तुएं किस प्रकार व्यवहार करती हैं। जिस तरीक़े से वह अपने पालनेमें से चीज़ों को गिराता है और जमीन पर उनके गिरनेकी आवाज़ को सुनता है, उससे प्रतीत होता है कि उसके पास वस्तुओं को गिरानेका और गिराने योग्य वस्तुओं का प्रत्यय अवश्य होता है। अपनी माता और पिता के प्रति उसके व्यवहार में जो भिन्नता दिखायी देती है, उससे लगता है कि इन दोनों व्यक्तियों के विषयमें उसने दो तरह के प्रत्ययोंका निर्माण कर रखा है। जब वह भाषा बोलने की चेष्टा करने लगता है, तब उसके सामने शब्दोंका अर्थ जाननेका काम रहता है और जिस अनुपात में वह सही शब्दोंका इस्तेमाल करता है, उससे हम जान

[1] blue-print [2] diagrams [3] concepts [4] tool of thought [5] conceptual tool [6] in a figurative sense [7] transferred [8] attitude

सकते हैं कि उसने सम्बन्धित प्रत्ययों[1] को सीख लिया है। इस आधार पर हम यह मान लेते हैं कि वह जिन वस्तुओं का किसी सक्रिय रूप में व्यवहार या उपयोग कर सकता है, उन वस्तुओं के प्रत्ययोंका अर्जन सरलता से कर लेता है। इसी प्रकार जिन क्रियाओंको वह करता है या जो क्रियाएं उसके ऊपर की जाती हैं [जैसे लँगड़ी मारना[2] और गुदगुदाना[3]], उनके विषय में भी वह आसानी से प्रत्ययों का निर्माण कर लेता है। रंगों के नामों और संख्याओंकी गिनतीको वह काफ़ी आसानीसे सीख जाता है, किन्तु शुरू-शुरू में उनका इस्तेमाल कम विवेक के साथ करता है। उससे रंगों और संख्याओंका «उपयोग» किसी न किसी रूपमें कराना आवश्यक होता है, ताकि इन शब्दोंके ठीक अर्थोंको वह समझ सके। प्राकृतिक तथ्योंके सम्बन्धमें उसके प्रत्यय आरम्भमें बहुत सीधे-सादे होते हैं (१७)।

«साधारणीकरण[4] और भिन्नीकरण[5]» प्रत्यय-निर्माणमें महत्त्वपूर्ण भाग लेते हैं, जैसा कि वे सम्बद्धीकरण[6] में भी करते हैं (पृ० ३१८)। बच्चेके प्रत्ययोंमें बहुधा अपरिपक्व साधारणीकरण दिखायी देता है, जिस में विभेदोंकी ओर ध्यान देकर सुधार करना आवश्यक है। एक छोटी लड़की पहिले-पहिल गिलहरीको देखकर उसे 'चुलबुला बिल्ली का बच्चा' बतलाती थी। वह नयी वस्तुका पुरानी वस्तुके साथ अभेद स्थापित करके साधारणीकरणका प्रयत्न कर रही थी, किन्तु ज्योंही उसने देखा कि यह 'नया' बिल्लीका बच्चा तो चुलबुला' है, वह उसके लिए एक नया नाम सीखने और एक ताजा प्रत्यय अलग करनेके लिए तैयार हो गयी। अस्पष्ट सामान्य प्रत्ययों से अधिक नपे-तुले प्रत्ययों की ओर बढ़नेके लिए निरीक्षण और पुष्टीकरण[7] की आवश्यकता होती है।

अपरिपक्व तथा प्रारम्भिक साधारणीकरण[4] की पद्धति के अतिरिक्त एक और उन्नत पद्धति है। वह है, उन वस्तुओं में समान विशेषताओं[8] को खोजना, जो पहिले बिल्कुल भिन्न दिखायी देती हैं। यह पता लगाना कि चूहों, खरगोशों और गिलहरियोंमें कौन-सी चीज समान है और इस प्रकार कुतर कर खानेवाले पशुओं[9] के प्रत्यय तक पहुँचना, साथ ही उन्हें बिल्ली-परिवार और कुत्ता-परिवार से अलग करके देखना—उन्नत प्रकारके साधारणीकरणका एक उदाहरण है।

«पृथक्करण[10]»। उच्च स्तर पर साधारणीकरण के लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न वस्तुओं में पायी जानेवाली समान विशेषताओं पर ध्यान दिया जाये। कम से कम मनुष्योंके लिए तो यह सम्भव है ही कि वस्तुकी एक खास विशेषता को अलग छांट लिया जाये और उस क्षणके लिए उसकी अन्य सभी विशेषताओंकी उपेक्षा कर दी जाये। आप इस विशेषता को 'पृथक्[11]' कर लेते हैं, और इस प्रकार इस विशेषता का एक अमर्त प्रत्यय[12] निर्माण कर लेते हैं। जब आप किसी व्यक्तिके विषयमें कहते हैं कि वह 'लम्बा है', तो 'लम्बा' विशेषण एक विशेषताका परिचायक होता है, जो इस व्यक्तिमें देखी गयी है। किन्तु कई अन्य व्यक्तियोंमें भी यह विशेषता पायी जाती है। उस क्षणके लिए आप उस व्यक्तिकी अन्य सभी विशेषताओंकी उपेक्षा कर जाते हैं और केवल एक विशेषता का उल्लेख करते हैं, जो उसमें और अन्य कई लोगोंमें समान रूपसे पायी जाती है। जब कभी आप किसी व्यक्ति का वर्णन करनेकी चेष्टा करते हैं, तब आपको ऐसे शब्दों का इस्तेमाल करना पड़ता है, जो उस के कुछ गुणों और विशेषताओंका परिचय देते हैं; यही बात उस समय भी होती है, जिस समय आप किसी वस्तुका वर्णन करने लगते हैं या बताने लगते हैं कि अमुक मौक़े पर क्या घटना घटी थी। आप ऐसे शब्दों का उपयोग करते हैं, जो गुणों और सम्बन्धोंके बोधक होते हैं; आप अपनी बातको समझने योग्य बनाते हैं, क्योंकि जो व्यक्ति इन शब्दोंको सुन रहा होता है, वह इन शब्दों के अर्थोंको जानता है, अर्थात् इन शब्दों द्वारा अभिव्यक्त अमूर्त प्रत्ययों[12] को जानता है।

एक प्रत्ययके निर्माणकी प्रक्रिया का उदाहरण निम्नलिखित प्रयोगकी तरहके प्रयोगोंसे मिल जाता है: निरर्थक रेखाकृतियों[13] की एक श्रृंखला दिखायी जाती है। सभी रेखाकृतियों में कुछ विशेषताएं समान होती हैं और अन्य सब बातोंमें वे एक-दूसरे से भिन्न होती हैं। इस श्रेणीकी आकृतियोंके नामके रूपमें एक निरर्थक शब्द निर्धारित किया जाता है; आकृतियोंकी एक या अधिक अन्य श्रेणियां भी होती हैं, जिनके अपने-अपने नाम होते हैं। व्यक्तिका काम यह होता है कि वह एक-एक करके दिखायी जानेवाली आकृतियोंका निरीक्षण करे और हर श्रेणी की आकृतियोंकी समान विशेषता का पता लगावे, ताकि वह प्रत्येक निरर्थक नामकी परिभाषा बतला सके। इस तरहके प्रयोगमें काफ़ी सतर्क रहनेके कारण व्यक्ति पहिली आकृति की किसी विचित्र विशेषता पर ध्यान देता है, दूसरी आकृति में उस विशेषता की तलाश करता है, और यदि वहां उसे वह मिल जाती है, तो वह तीसरी आकृतिमें उसे खोजता है और इसी प्रकार आगेकी आकृतियोंका भी निरीक्षण करता जाता है। जब तक वह उस विशेषता को प्राप्त करता जाता है, उस श्रेणीकी समान विशेषता के रूपमें उस पर उसका विश्वास बढ़ता जाता है। किन्तु यदि एक या अन्य आकृतियों में उसे यह विशेषता नहीं मिलती, तो वह इसे छोड़कर किसी अन्य

[1] corresponding concepts [2] carry [3] tickle [4] generalization [5] differentiation [6] conditioning [7] reinforcement [8] common characteristics [9] rodents [10] abstraction [11] abstract [12] abstract concept [13] nonsense drawings
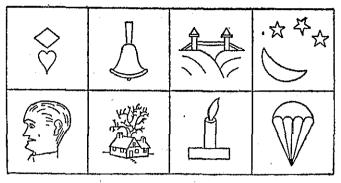
आकृति १३९. एक सामान्य प्रत्ययकी स्थापना करना। ऊपरकी क़तार वाली आकृतियोंको थोड़ी देरके लिए 'ऊपरली' कह लीजिए और नीचेकी क़तारवाली आकृतियोंको 'निचली'। पाठकको इन प्रश्नोंका उत्तर खोजना है कि 'ऊपरली क्या है?' और 'निचली क्या है?' अगली आकृतिमें दोनों सामान्य प्रत्ययोंके और भी उदाहरण दिये गये हैं।
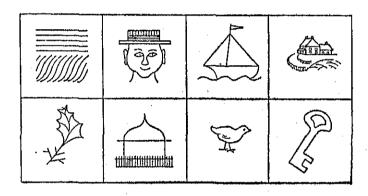
आकृति १४०. आकृति १३९ से आगे।

विशेषताकी तलाश करने लगता है। वह आकृतियोंके अपने निरीक्षण द्वारा सुझाये गये प्रत्ययों की जांच कर रहा होता है। उसके प्रत्यय जब तक काम देते रहते हैं और जब तक परीक्षार्थी उनके सहारेसे आकृतियोंका सही-सही नामकरण करता रहता है, तब तक तो उनका पुष्टीकरण[1] होता रहता है, किन्तु जब वे काम देनेमें असमर्थ हो जाते हैं, तब वे समाप्त कर दिये जाते हैं (५, २०, २१)।

आकृतियोंकी कतिपय समान विशेषताएं अन्य विशेषताओं की अपेक्षा अधिक सरलतासे मालूम की जा सकती हैं। किसी ठोस वस्तुसे सादृश्य रखने वाले लक्षण कम स्पष्ट विशेषताओं, जैसे किसी वस्तुके अंगोंका स्वरूप या संख्या, की अपेक्षा अधिक आसानीसे ढूंढ़े जा सकते हैं। इस बातकी बहुत सम्भावना है की पृथक्[2] करनेकी योग्यता, अर्थात् किसी वस्तुकी अन्य सभी विशेषताओंकी उपेक्षा करके किसी एक खास विशेषताको धारण करनेवालीके रूपमें उस वस्तुके साथ व्यवहार करनेकी योग्यता प्रारम्भमें बहुत व्यावहारिक परिस्थितियोंमें विकसित होती है। जब आपको किसी चीजको ठोंकनेके लिए एक साधन की आवश्यकता होती है और आप यह काम जूते से ही लेने लगते हैं तथा उस समय उसके साधारण उपयोगकी उपेक्षा कर देते हैं, तब आप एक अमूर्त प्रत्यय[3] का निर्माण कर रहे होते हैं। किसी वस्तुके प्रत्यक्षीकरण[4] का मतलब यह है कि आप उस वस्तुसे व्यवहार करनेके लिए तैयार हैं; और कई वस्तुओंकी एक समान विशेषताको 'देखने[5]' से यह तात्पर्य है कि आप इस समान विशेषता वाली किसी भी वस्तुसे व्यवहार

[1] reinforcement [2] abstract [3] abstract concept [4] to perceive [5] to discern

करनेके लिए प्रस्तुत हैं। अमूर्त प्रत्यय दो व्यक्तियोंके मध्य ज्ञानका आदान-प्रदान तो करते ही हैं, किन्तु इसके अतिरिक्त कुछ व्यावहारिक उद्देश्योंकी पूर्ति भी करते हैं और वे वैज्ञानिकों या अविष्कारकोंके लिए भी बहुत महत्त्व रखते हैं (६)।

प्रत्ययोंके संयोग[1]—सिद्धान्त, नियम, क़ानून, तंत्र. विचारको केवल अकेले प्रत्ययों द्वारा पथ-प्रदर्शन नहीं प्राप्त होता, बल्कि कई तरहसे संयुक्त प्रत्ययोंसे भी। परिस्थितियों की अवांछित दशाको सुधारनेके तरीकों पर विचार करते समय आप प्रायः इस कहावतका स्मरण करते हैं कि 'रोग से बुरा तो उसका इलाज ही था' और आप किसी प्रस्तावित उपायके सभी सम्भव प्रभावों पर सावधानीके साथ विचार करनेके लिए प्रवृत्त होते हैं। यह कहावत रोग और उसके इलाजके प्रत्ययोंको एक ऐसे सम्बन्धमें ला रखती है, जिस पर विचार होना जरूरी है। जब आप ज्यामितिमें एक साध्य को सीख चुकते हैं, जैसे—'किसी त्रिभुजके तीनों कोणोंका योग दो समकोणोंके बराबर होता है' यह एक ऐसा कथन है जो कतिपय प्रत्ययोंको परस्पर सम्बन्धित कर देता है—तब एक ऐसा साधन आपके हाथ लग जाता है, जो कई ज्यामिति-सम्बन्धी समस्याओंमें उपयोगी सिद्ध होता है। अंकगणितके नियम, सड़कके नियम, किसी खेलके नियम प्रत्ययोंके संयोग[1] हैं, जो विचारके साथ-साथ क्रियाका भी पथ-प्रदर्शन करते हैं। यही बात किसी राज्यके नियमों और प्रकृतिके नियमोंके बारेमें भी सत्य है, जिनका उपयोग वैज्ञानिक चिन्तनमें किया जाता है। इनमें से किसी भी क़ानून[2], नियम[3] और साध्य[4] को «सिद्धान्त[5]» कहा जा सकता है, या हम इस शब्दको अन्य उच्चतर तथा अधिक महत्त्वपूर्ण नियमोंके लिए सुरक्षित रख सकते हैं। विश्लेषण करने पर पता चलेगा कि एक सिद्धान्तमें दो या दो से अधिक प्रत्यय कतिपय सम्बन्धोंमें संयुक्त रहते हैं।

«एक प्रत्यय-तंत्र[6]» में कई प्रत्यय सम्मिलित होते हैं, जो निश्चित तरीक़ोंसे परस्पर सम्बन्धित रहते हैं। अंकगणित एक ऐसा ही तंत्र है, जिसमें संख्याओं, चार आधारभूत क्रियाओं[7], भिन्नों[8], दशमलवों, प्रतिशतों, औसतों आदिके प्रत्यय सम्मिलित रहते हैं। जब आप देखते हैं कि कोई समस्या अंकगणितकी है, तब आप उचित दिशामें सोचने-विचारने लगते हैं। यदि कोई सौंदर्यानुभूतिकी समस्या है, तो आप आनुपातिक सामंजस्य[9], सन्तुलन, विषमता और प्रत्ययोंके इस तंत्रके अनुसार सोचेंगे। यदि समस्या व्यक्तिगत सम्बन्धों की है, तो आप प्रेरणा[10] और निराशा[11], पसन्दों और नापसन्दों, प्रतिद्वंद्विता और सहानुभूति, पारिवारिक पृष्ठभूमि, शिक्षा और अन्य मनोवैज्ञानिक प्रत्ययोंकी शब्दावलीमें सोचेंगे। ये अन्य मनोवैज्ञानिक प्रत्यय, निश्चय ही, एक तंत्रके रूपमें इतनी अच्छी तरह नहीं गुंथे हुए हैं, जितनी अच्छी तरह प्रत्यय अंकगणितमें गुंथे हुए हैं, किन्तु फिर भी ये किसी मानवीय समस्याके अध्ययनमें आपका मार्ग-प्रदर्शन करनेमें कुछ तो उपयोगी सिद्ध हो ही सकते हैं।

चूंकि आपके प्रत्यय और सिद्धान्त—और आपके विश्वास भी—आपके सोच-विचारका मार्ग-प्रदर्शन करते हैं और उसके मार्गको सुविधाप्रद बनाते हैं, इसीसे यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि वे सदा आपका सही-सही मार्ग-प्रदर्शन करते हैं। आप ग़लत तरहके प्रत्ययोंका इस्तेमाल कर सकते हैं, या स्वयं प्रत्यय इतने संकीर्ण या इतने घिसे-घिसाये हो सकते हैं कि स्पष्ट, यथार्थ विचारके लिए वे साधक नहीं, बाधक सिद्ध हो सकते हैं। आपकी निजी अनुभूतियां और आपके समूहके पूर्वग्रह[12] आपके विचारोंको झुठला सकते हैं और आपको ग़लत निष्कर्षोंकी ओर ले जा सकते हैं। ऐसी भूलोंसे अपनी रक्षा करनेका कोई तरीक़ा नहीं है, किन्तु वस्तुओंका निरीक्षण और स्पष्ट सोच-विचारका दृढ़ अभ्यास डालकर, सम्भव है, आप इस दिशामें काफ़ी सफलता प्राप्त कर सकें (२२)।

समस्या का सुलझाना

जब इच्छित लक्ष्य तक जानेका मार्ग सीधा नहीं होता, जब किसी इच्छित परिणामको पूरा करनेका साधन पूर्णतया स्पष्ट नहीं होता, तब समस्या पैदा हो जाती है। जब लक्ष्य तक जाने का मार्ग और परिणामको पूरा करनेका साधन मालूम हो जाता है, तब समस्या सुलझ जाती है। इसलिए सुलझावकी प्रक्रिया खोजने[13] और पाने[14] की प्रक्रिया होती है, और बहुधा कुछ कार्य गत्यात्मक अनुसन्धान[15] और प्रहस्तनकी सहायता से होनेके बजाय सोचने-विचारनेसे भी हो जाते हैं। 'विचार के साधनों[16]' का उपयोग किया जाता है। पिछले अनुभवमें सीखे हुए प्रत्यय नयी समस्या पर लागू किये जाते हैं। साधारणतः ये प्रत्यय अपने शाब्दिक प्रतीकोंकी सहायतासे याद किये जाते हैं; नवीन समस्याको हल करनेके लिए नये प्रत्ययोंका आविष्कार किया जा सकता है। सिद्धान्तोंको याद किया जा सकता है और उनकी एक बार परीक्षा कर

[1] combinations [2] law [3] rule [4] proposition [5] principle [6] conceptual system [7] operations [8] fractions [9] symmetry [10] motivation [11] frustration [12] prejudices [13] seeking [14] finding [15] motor exploration [16] tools of thought

के देखा जाता है। भाषाकी सहायतासे विचारक अपनी समस्याके विषयमें स्वयंसे बात कर सकता है और अपने साथियोंसे भी बातचीत करके उनकी सहायता प्राप्त कर सकता है।

अपने दैनिक जीवनमें हमें जिन परिस्थितियोंका सामना करना पड़ता है, उनमें से अधिकांशको हम अपने पूर्व अनुभव में अर्जित ज्ञान और कुशलता स्थानान्तरण[1] करके आसानी से सँभाल सकते हैं। परिस्थिति पर एक सरसरी दृष्टि डालने से पता चल जाता है कि अमुक-अमुक प्रत्यय उपयोगी हैं। इन प्रत्ययोंको समाहित करने वाले ज्ञात सिद्धान्तोंका प्रत्याह्वान किया जाता है और तत्काल एक उपयुक्त सुझाव मिल जाता है। ऐसे उदाहरण वास्तवमें समस्या नहीं होते। जब कोई यथार्थ समस्या उठ खड़ी होती है, जिसका हल हमारी अभ्यस्त विधियोंसे तुरन्त नहीं निकल पाता, तब हम साधारणतः उसे किसी तरह अलग हटा देते हैं। किन्तु बौद्धिक उत्सुकता या व्यावहारिक आवश्यकताके कारण हम अपने प्रयत्न जारी रख सकते हैं। जब अन्तिम रूपसे समस्याका हल निकल आता है, तब हमें आश्चर्य होता है कि वह कितना सरल है, किन्तु हल तक पहुँचनेकी प्रक्रिया लम्बी और कष्टप्रद हो सकती है। इस बातका साक्ष्य हमें वैज्ञानिकों, इंजीनियरों, संगीतज्ञों और हर तरहके सर्जनात्मक विचारकोंके कार्योंसे मिलता है।

स्पष्ट विचारके मार्गके अवरोध. किसी समस्यात्मक परिस्थितिमें एक तो आरम्भ-बिन्दु[2] होता है और एक लक्ष्य[3]। कुछ चीजें दी हुई होती हैं, और कुछ चीजें मालूम करनी होती हैं। जो चीजें दी हुई होती हैं, वे कुछ 'सामग्रियां[4]' होती हैं, जो विचारकको पहिलेसे ही प्राप्त होती हैं। वे सामग्रियां हैं : कुछ तथ्य, जिन्हें वह जानता है, कुछ वस्तुएं, जिनका वह उपयोग कर सकता है। जो चीज मालूम करनी होती है, वह सामान्यतः ज्ञात तथ्योंकी एक खास तरहकी व्याख्या होती है या दी हुई वस्तुओंके उपयोगकी एक सन्तोषप्रद विधि होती है, जिससे इच्छित परिणामको प्राप्त किया जा सके। इसमें ये कठिनाइयां हो सकती हैं : (१) प्राप्त सामग्रीके अपर्याप्त होने पर सर्वप्रथम अधिक सामग्री जुटानेकी आवश्यकता हो सकती है; (२) कुछ दिये हुए तथ्य और वस्तुएं निरर्थक हो सकती हैं, जिससे विचारकके उलझनेकी आशंका हो सकती है; (३) समस्त समस्याके एक ढांचे[5] या समग्र चित्रमें सामग्री तत्काल ठीक नहीं भी बैठ सकती है।

स्पष्टतः यही कठिनाइयां उस जासूसके मार्गमें भी उपस्थित होती हैं, जो अपराधके रहस्यको सुलझानेके लिए प्रयत्न कर रहा होता है (या उस पाठकके सामने भी यही कठिनाइयां आ सकती हैं, जो रहस्यको स्वयं सुलझानेकी कोशिश करता है)। (१) कुछ तथ्य प्रारम्भसे ही ज्ञात रहते हैं, किन्तु वे पर्याप्त नहीं होते, इसलिए पहिला काम होता है अधिक सामग्री[4] का संग्रह; (२) अनिवार्यतः अपराधकी कुछ परिस्थितियां अप्रासंगिक होती हैं और वे घटनाके सम्बन्धमें गलत सुझाव देती हैं तथा कुछ निर्दोष व्यक्तियोंके विरुद्ध सन्देह पैदा करती हैं; (३) जब सभी आवश्यक सामग्री एकत्र कर ली जाती है, और अप्रासंगिक सामग्री चुन-चुनकर हटा दी जाती है, तब भी सम्भव है, तथ्योंका कोई मतलब न निकले, या वे किसी एक सम्बद्ध ढांचेमें[6] न बैठ सकें। जासूस तो यह कह सकता है (कम से कम कहानियोंमें) कि वह अभी ठीक सुलझावको पेश करनेके लिए तैयार नहीं है, क्योंकि 'कहानी के चित्रमें अभी कुछ गड़बड़ी है'; कहानीके अंग एक साथ मेल नहीं खा रहे हैं। जब तक वह किसी ऐसे नमूने[7] को निश्चित नहीं कर लेता, जो हर चीजको सूत्रबद्ध कर ले, तब तक वह सामग्रीके समूहके बारेमें बहुत खुले दिमागसे काम लेता है।

पथ-प्रदर्शक विचारोंका महत्त्व[8]. निस्सन्देह, विचारके सामने जैसी समस्या होती है, उसके अनुसार ही उसका काम भी होता है। किसी गणित-सम्बन्धी समस्यामें, जैसे ज्यामिति की साध्य या बीजगणित या अंकगणितकी ठोस समस्याओंमें, जो वस्तु 'प्रदत्त[9]' होती है, वह साधारणतः पर्याप्त होती है और उससे अधिक किसी सामग्रीकी आवश्यकता नहीं होती। कुछ सामग्री अप्रासंगिक हो सकती है। 'एक ३ फ़ुट ऊंचे, ३ फ़ुट चौड़े और ८ फ़ुट लम्बे चीड़के सन्दूकके एक बग़लके सिरेको ढकनेके लिए हरी दरीके कितने वर्ग गज टुकड़ेकी जरूरत होगी?' कक्षामें इस तरहके भुलावेमें डालनेवाले प्रश्नों को प्रश्रय नहीं मिला करता, किन्तु ये प्रश्न दैनिक जीवनकी अंकगणित-सम्बन्धी समस्याओंसे भिन्न नहीं होते। इस समस्याको सुलझानेके लिए आपको सन्दूककी लम्बाई और चौड़की अप्रासंगिक सामग्री[10] की उपेक्षा करनी होगी और केवल सन्दूकके सिरेके आकार पर अपना ध्यान केन्द्रित करना होगा। इस अमूर्त प्रत्यय[11] के सहारे समस्याका हल आसानी से मालूम किया जा सकता है।

आइए, हम जरा और कठिन उदाहरण पर विचार करें। मेरा मित्र एक पहाड़ी स्थानके लिए कारसे रवाना हो गया है और कारकी चाल औसतन् ४० मील प्रति घंटा है। एक घंटे बाद में उसका साथ पकड़नेके लिए, अपनी कारको ५० मील प्रति घंटेकी चालसे चलाकर रवाना होता हूं। अपने मित्रको पकड़नेमें मुझे कितना समय लगेगा?

[1] transfer [2] starting-point [3] goal [4] data [5] unified pattern [6] consistent pattern [7] pattern [8] the value of guiding ideas [9] given [10] irrelevant data [11] abstract concept

मैं सामग्री[1] की जांच करता हूं: एक घंटा पहिले वह चला है; ४० मील प्रति घंटा की चालसे वह गया है और ५० मील प्रति घंटा की चालसे मैं मोटर दौड़ा रहा हूँ। समस्या के ये तत्व तत्काल उपयोग किये जाने योग्य किसी ढांचे[2] के अन्तर्गत नहीं आ जाते। किसी सूत्रबद्ध करने वाले पथ-प्रदर्शक विचार की आवश्यकता होती है। मैं उससे तेज चालसे चल रहा हूँ, इसलिए उसको मैं पकड़ ही लूंगा, यह लाभ[3] का अमूर्त प्रत्यय[4] एक पथ-प्रदर्शक विचारका काम देता है। मैं हर घंटे उससे कितने अधिक मील चल रहा हूं? वह ४० मील जा रहा है, मैं ५० मील, इसलिए मैं १० मीलके लाभमें रह रहा हूं। कुल कितने मीलकी कसर मुझे निकालनी है? वह एक घंटा पहिले चला था और अब वह मुझसे ४० मील आगे होगा; इस प्रकार मुझे ४० मीलकी कसर निकालनी है; मैं प्रति घंटा १० मीलके लाभमें रहा हूं, इसलिए उसे पकड़नेमें मुझे ४ घंटे लगेंगे।

यदि इस उत्तरके बारेमें मुझे शंका है और मैं उसकी सत्यता की किसी तरह जांच करना चाहता हूं, तो मुझे समस्या पर दूसरे दृष्टिकोणसे विचार करना चाहिए और दूसरे पथ-प्रदर्शक विचारका उपयोग करना चाहिए। मुझे बीजगणितका ख्याल आता है और मैं कहता हूं: 'मान लिया अ = उतने घंटे जितने मुझे लगेंगे।' इसके बाद मुझे एक समीकरण बनाना चाहिए और दो ऐसी संख्याओंको मालूम करना चाहिए, जो आपसमें बराबर हों। अच्छा, तो—जबमें उसे पकड़ लूंगा, तब प्रारम्भ-बिन्दु से हम दोनों ही समान फ़ासला तय कर चुके होंगे। चूंकि मैं ५० मील प्रति घंटा की चालसे 'अ' घंटे तक मोटर दौड़ाऊंगा, इसलिए मेरे लिए दूरी ५० अ मील होगी। मेरा मित्र चूंकि मुझसे एक घंटा पहिले रवाना हुआ है और ४० मील प्रति घंटा की चालसे जा रहा है, इसलिए वह उस स्थल तक ४० (अ + १) मील चल चुका होगा। चूंकि ये दोनों दूरियां बराबर होंगी, इसलिए मैं यह समीकरण बनानेमें समर्थ हो जाता हूं: ५० अ = ४० (अ + १)। इसको संक्षिप्त करने पर मैं पहिलेकी भांति 'अ = ४ घंटे' उत्तर पा लेता हूं।

चूंकि मेरे दोनों पथ-प्रदर्शक विचारोंने मुझे एक ही निष्कर्ष पर पहुंचाया, इसलिए जब मैं पाता हूं कि केवल दो घंटे बाद मैंने अपने मित्रका साथ पकड़ लिया, तब मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। मुझे पहिला ख़याल यह होता है कि मेरे गणित में कुछ ग़लती रह गयी थी। लेकिन मेरा मित्र मुझे बतलाता है कि एक घंटे तक ४० मीलकी चालसे चलानेके बाद उसने मेरा साथ पकड़नेके लिए अपनी कारकी चाल ३० मील प्रति घंटा कर दी। पुनः जांच करके मैं देखता हूं कि मेरी तर्कना[5] शुद्ध थी, किन्तु मेरी सामग्री[1] आंशिक रूपसे अशुद्ध थी।

इससे कुछ भिन्न प्रकारकी दूसरी समस्या लीजिए: आकृति १४३ के पांच छोटे-छोटे टुकड़ोंको इस प्रकार मिलाना है कि वे एक पूर्ण वर्ग बन जायें और उनके बीच किसी तरहकी खाली जगह न रहे। विभिन्न व्यक्ति इस समस्या पर विभिन्न तरीक़ों से विचार करते हैं।

१. «'मारो-या-छोड़ो' प्रहस्तन-व्यवहार[6]». एक व्यक्ति कह सकता है, 'काग़ज़की मोटी दफ़्ती से मैं उन आकृतियोंके समान टुकड़े काट लूंगा और उनको भिन्न-भिन्न प्रकारसे रख कर देखूंगा कि किस तरहसे रखने पर वर्गाकृति बन जाती है।' ऐसा लगता है कि इस व्यक्तिने समस्या के समग्र चित्र को प्राप्त नहीं किया है और न उसके पास कोई पथ-प्रदर्शक विचार है, हालांकि जब वह टुकड़ोंको मिलाने लगेगा, तब उसे उनकी कुछ ऐसी विशेषताओंका पता चलेगा, जिनका विचार उसे करना ही पड़ेगा। व्यक्तिके काम करनेका यह तरीक़ा ढीलाढाला है।

२. «टुकड़ोंकी प्रमुख विशेषताओं द्वारा पथ-प्रदर्शन». दूसरा व्यक्ति तुरन्त यह समझ जाता है कि चारों बराबरके टुकड़ोंके आगे निकले हुए हिस्से छोटी-सी गुणन चिह्नाकृतिके चारों भीतरी कोणोंमें ठीक-ठीक बैठ जायेंगे; और इस प्रकार वह अपना प्रयोग प्रारम्भ करता है। वह वास्तवमें वास्तविक प्रहस्तन[7] किये बिना भी केवल चिन्तनसे[8] यह काम कर सकता है। प्रथम प्रयासमें वह चारों टुकड़ोंसे एक अच्छा आयत[9] और एक सुन्दर गुणनचिह्नाकृति[10] बना लेता है, किन्तु वांछित वर्गाकृति नहीं बना पाता। परन्तु शायद उसे इस विधि में परिवर्तन करनेका कोई तरीक़ा सूझ जाय और वह सही हल निकालनेमें समर्थ हो जाय।

३. «वांछित वर्गाकृति के आकार द्वारा पथ-प्रदर्शन». दूसरा व्यक्ति स्वयंसे पूछ सकता है कि वर्गाकृति कितनी बड़ी होने जा रही है। इस ख़ास पहेलीमें वह इस प्रश्नका उत्तर सरलतासे दे सकता है; क्योंकि गुणनचिह्नाकृति[10] को ५ छोटे वर्गोंमें विभाजित किया जा सकता है, और अन्य टुकड़ोंमें से हरएक भी उसी तरहके ५ छोटे वर्गोंमें बांटा जा सकता है। चूंकि वर्गाकृतिका समग्र क्षेत्रफल इन छोटे वर्गोंके क्षेत्रफलका २५ गुना होगा, इसलिए बड़े वर्गकी एक भुजा छोटे वर्गोंकी एक भुजा के ५ गुनेके बराबर होगी। इसके बाद व्यक्ति जानना चाहता है कि टुकड़ोंको एक साथ मिलाकर किस प्रकार रखा जाय, ताकि वांछित लम्बाईकी सीधी भुजाएं प्राप्त की जा सकें, और शीघ्र ही वह समझ जाता है कि ऐसा किस तरह किया जा सकता है। अन्य दो व्यक्तियोंकी अपेक्षा उसकी विधि अधिक

[1] data [2] pattern [3] again [4] abstract concept [5] reasoning [6] hit-or-miss manipulation [7] manipulation [8] ideationally [9] rectangle [10] cross
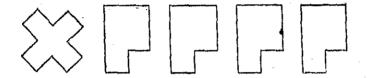
आकृति १४१. एक रचना-पहेली। ये पांचों आकृतियां लकड़ीके टुकड़ोंकी हैं। इनको एक साथ मिलाकर एक वर्ग बनाना है। [डकिन, ४]।

योजनापूर्ण और अधिक तर्कपूर्ण है। दूसरे दोनों व्यक्तियोंकी अपेक्षा वह दी हुई सामग्रीका अनुसन्धान करनेमें अपने लक्ष्य को अधिक स्पष्टता से सामने रखता है (४)।

लक्ष्यकी ओर अधिक ध्यान दिये बिना वर्तमान परिस्थिति की परीक्षा करके एक पथ-प्रदर्शक विचारकी प्राप्ति की जा सकती है; अथवा वर्तमान परिस्थिति या सामग्री[१] पर बिना अधिक ध्यान दिये ही केवल लक्ष्यका विचार करने से वह प्राप्त किया जा सकता है; किन्तु यदि प्रदत्त सामग्री[२] और ज्ञातव्य परिणाम—दोनों ही बातोंका विचार करके चला जाय, तो बहुत सम्भव है कि पथप्रदर्शक विचार सुलझावकी ओर ले जाय (३, १३)।

परिकल्पनाएं[३]. परिकल्पना[४] एक प्रश्न होती है जो विचार और निरीक्षणकी ओर ले जाती है। यह एक निश्चित प्रश्न होता है, जो एक उत्तर सुझाता है, जिसकी जांच करना उचित होता है। पूर्ण परिचित परिस्थिति में तथ्यों या क्रिया की उचित विधिके सम्बन्धमें कोई प्रश्न नहीं उठता। नवीन और समस्यात्मक परिस्थितिमें जो प्रश्न पहिले उठते हैं, वे बहुत सामान्य और अनिश्चित होते हैं। वे इस प्रकारके प्रश्न होते हैं: 'मामला क्या है? कार चलते-चलते कैसे रुक गयी? अब हम क्या करें?' ये प्रश्न इतने निश्चित नहीं हैं कि इन्हें परिकल्पना की संज्ञा दी जा सके। किन्तु इनसे भी निश्चित प्रश्न तत्काल उठ खड़े होते हैं—'क्या हमारा पेट्रोल तो नहीं खत्म हो गया?' यदि ऐसा होता तो पेट्रोल-मापक[५] शून्य बिन्दु पर पहुंच गया होता, किन्तु उसको देखनेसे तो लगता है कि पेट्रोलकी टंकी अभी आधी भरी है। ''स्पार्क' का क्या हाल है?' और इसी तरहके प्रश्न उठने लगते हैं। ये अधिक निश्चित प्रश्न विचार और निरीक्षणको उत्तेजना देते हैं; विचार तो उत्तर पानेकी राह सुझाते हैं, और इसके बाद निरीक्षणके द्वारा उत्तर खोज लिया जाता है।

वैज्ञानिक अन्वेषकके सामने जो समस्याएं होती हैं, उनको सुलझानेके लिए इससे कहीं अधिक मौलिक परिकल्पनाएं और अधिक विस्तृत सोच-विचार तथा निरीक्षणकी आवश्यकता होती है, किन्तु उसकी विधिकी रूपरेखा भी वही होती है, जो ठप हुई कारके सरल उदाहरणमें दिखायी गयी है। विज्ञानके इतिहाससे हमें एक उदाहरण रक्त-संचार[६] विषयक हार्वे की खोज (लगभग सन् १६२८) में मिलता है। धड़कते हुए हृदय की जांच करके हार्वे[७] ने यह परिकल्पना सामने रखी कि हृदय एक पम्पके रूपमें धमनियों[८] में रक्त फेंकता है; रक्त शरीरमें संचारित होता है और बड़ी शिराओं[९] के रास्तेसे वह वापस हृदयमें लौट आता है। हार्वेने (सोच-विचार के द्वारा विवेचन करके) देखा कि यदि ऐसी ही बात है, तो किसी भी धमनी में होकर रक्तका प्रवाह हृदयसे दूर जाना चाहिए, और किसी भी शिरा से होकर उसे हृदयकी ओर बढ़ना चाहिए। उसने निरीक्षणके द्वारा यह पता लगाया कि यह बात सही है। इसके बाद उसने यह परिकल्पना की कि सबसे छोटी धमनियोंसे होकर सबसे छोटी शिराओंमें जानेके लिए छोटी-छोटी नलिकाएं[१०] होनी चाहिएं; आगे चलकर, जब सूक्ष्मदर्शक यंत्र[११] का आविष्कार हो गया और केशवाहिनियों[१२] का निरीक्षण करना सम्भव हो गया, तब हार्वे की यह परिकल्पना भी सही प्रमाणित हो गयी। इस परिकल्पना के अन्य निष्कर्षों पर भी समय-समय पर विचार किया गया तथा उनकी सत्यता की जांच की गयी, और इस प्रकार रक्त-संचार एक प्रमाणित नियम मान लिया गया।

कई परिकल्पनाएं उतनी भाग्यशाली नहीं होतीं, जितनी यह परिकल्पना है, क्योंकि उनके कुछ तार्किक निष्कर्ष निरीक्षित तथ्यों द्वारा सत्यापित नहीं हो पाते। उनको या तो छोड़ देना पड़ता है, या उनमें परिवर्तन कर देना पड़ता है। जब परिकल्पनाओंका असत्य सिद्ध होना निश्चित-सा रहता है, तब भी वे विचार और निरीक्षणके उत्तेजकोंके रूपमें वैज्ञानिकों के लिए अस्थायी तौरसे उपादेय होती हैं। वैज्ञानिक अन्वेषणकी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया कुछ-कुछ इस प्रकारकी होती है: आप कुछ ऐसे तथ्योंको लेकर चलते हैं, जिनकी व्याख्या

[१] data [२] given data [३] hypotheses [४] hypothesis [५] gauge [६] circulation of blood [७] Harvey [८] arteries [९] veins [१०] tubes [११] microscope [१२] capillaries

होनी आवश्यक होती है और ज्ञान के वर्तमान ढांचेमें उनका मेल बैठानेकी कोशिश करते हैं। यदि आप इन तथ्योंकी व्याख्या करनेवाला कोई स्वीकृत वैज्ञानिक सिद्धान्त नहीं खोज पाते, तो एक ऐसी परिकल्पना का आविष्कार करने की चेष्टा करते हैं जो नये तथ्योंसे तो मेल खाती ही हो, पहलेसे संचित ज्ञान[1] से भी सामंजस्य रखती हो। यदि आप ऐसी किसी परिकल्पना का निर्माण करनेमें सफल हो जाते हैं, तो स्वभावतः उस पर गर्व करते हैं और उसे अपने 'प्यारे बच्चे' के समान प्यार करते हैं, किन्तु यदि आप सच्ची वैज्ञानिक भावना से अनुप्राणित हैं, तो अपनी सुन्दर परिकल्पना के पीछे एक प्रश्नवाचक चिह्न लगा देते हैं और उसे केवल पथ-प्रदर्शक विचारके रूपमें इस्तेमाल करते हैं। आप उसे वर्तमान ज्ञानसे संयुक्त कर देते हैं और उससे तार्किक निष्कर्ष निकालते हैं, अर्थात् आप देखते हैं (विवेचना करते हैं) कि «यदि» परिकल्पना सही है, तो उसके कुछ निश्चित परिणाम होंगे और उनका निरीक्षण भी किया जा सकेगा। इसके बाद आप प्रयोगशाला में या कार्य-क्षेत्र में जाते हैं और वस्तुओंको इस प्रकार सजाते हैं कि वह निरीक्षण कर सकें कि अनुमानित परिणाम प्राप्त हो सके हैं या नहीं। यदि परिणाम तदनुसार ही उपलब्ध हुए हैं, तो आपकी परिकल्पना उस हद तक स्थापित हो चुकी, हालांकि आगे चलकर उसमें गड़बड़ भी हो सकती है। यदि विरोधी तथ्य पाये जाते हैं, तो परिकल्पना असिद्ध हो जाती है और उसमें या तो आपको परिवर्तन करना होता है या पुन: नये सिरे से उस पर प्रयोग करना पड़ता है (पृ० ६)।

भावी अनुसन्धानकर्ता अपने विषयको अच्छी तरह जानने पर भी कई स्थानों पर बहक सकता है। सम्भव है, वह किसी सफल परिकल्पना को न पकड़ पा सके या वह अपनी परिकल्पनासे कोई ऐसा अनुमान न निकाल सके, जिसका निरीक्षण किया जा सके। या उसमें इतना साहस और अध्यवसाय न हो कि प्रयोग या दौड़-धूप करके आवश्यक सामग्री[2] का संग्रह कर सके।

'मैं किस तरह प्रारम्भ करूं कि सफल परिकल्पना के विषय में सोच सकूं?', यह मनोवैज्ञानिकोंके लिए एक कठिन प्रश्न है, क्योंकि सोच-विचार की प्रक्रिया प्रच्छन्न और परिवर्तनशील होती है। आप पहिले अपनी समस्या को यथासम्भव स्पष्टता और पूर्णता के साथ समझनेकी चेष्टा करते हैं। आप इस कार्यमें अपने संचित ज्ञानकी भी सहायता लेते हैं। आप कोई अच्छा संकेत पानेके लिए बहुत कोशिश करते हैं। यदि आप कोई कारगर संकेत पानेमें असफल रहते हैं, तो कुछ क्षण के लिए अधिक निष्क्रिय, ग्रहणात्मक मनोदशा[3] में अपने-आप को छोड़ देते हैं और समस्या को जहां का तहां पड़ा रहने देते हैं। यदि इससे पूर्व नहीं, तो यहां पर तो यह उचित है ही कि आप «अपनी मान्यताओं[4] पर एक प्रश्नात्मक दृष्टि डालें», क्योंकि सम्भव है, आप कुछ बातोंको स्वतःसिद्ध मानकर, जो कि वर्तमान परिस्थितिमें वैसी न हों, कतिपय सम्भव मार्गों पर आंख मूंद कर चल रहे हों। किसी नये मार्गकी तलाश करनेके लिए आपको समस्या को एक नये दृष्टिकोणसे देखने की आवश्यकता हो सकती है। कभी-कभी, इसके विपरीत, आप किसी यथार्थतः अच्छे मार्गको बिना उसका पर्याप्त अनुसरण किये अस्वीकार कर देते हैं। इसलिए जो व्यक्ति एक सफल अनुसन्धानकर्ता बनना चाहता है, उसे चाहिए कि (१) सक्रिय होकर खोज[5] करता रहे और साथही किसी अच्छे परिणाम की सतर्क होकर प्रतीक्षा[6] करता रहे, तथा (२) सभी बातों पर विचार करते हुए नये सुझावोंके लिए अपने दिमाग़को खुला रखे।

«परिकल्पनाओं और 'पथ-प्रदर्शक विचारों' की तुलना». कोई परिकल्पना स्वयमेव अत्यन्त निश्चित पथ-प्रदर्शक विचार होती है, किन्तु साधारणतः यह ऐसे ज्ञान पर आधारित होती है, जो उससे अधिक सामान्य पथ-प्रदर्शक विचारको प्रस्तुत करता है। अच्छी परिकल्पना बहुधा 'असंगत कल्पना' या 'अँधेरेमें ढेला फेंकना' नहीं होती। विचारक समस्या को जितनी अच्छी तरह समझता है, उतनी ही अच्छी तरह वह एक तर्कसम्मत परिकल्पना की ओर बढ़ सकता है। जब कोई कार सड़क पर खड़ी हो जाती है, तब समस्या इंजनकी यंत्रकला से—अंकगणितसे नहीं—इतनी सम्बन्धित होती है कि चालक उसी क्षेत्रमें खोज शुरू करता है और वहीं अपनी निश्चित परिकल्पनाको प्राप्त करता है। जब एक घंटा पहिले चली हुई कारको पकड़नेकी समस्या होती है, तब स्पष्ट ही वह अंकगणित से सम्बन्धित दिखायी देती है, अतः वह अंकगणितके रूपमें सोचनेकी चेष्टा करता है। इस दूसरे मामलेमें उसे किसी निश्चित परिकल्पना की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि यदि वह समस्या को अच्छी तरह सही-सही समझ जाता है, तो उसे उसके उत्तरका अन्दाज करनेकी आवश्यकता नहीं रहती, बल्कि वह उसे सुलझानेमें सीधे तौरसे जुट सकता है। यदि उसे अंकगणितका अधिक ज्ञान नहीं होता तो वह इस प्रकार कहकर एक परिकल्पना का निर्माण कर सकता है: 'मैं समझता हूं, दो घंटेमें उसे पकड़ लूंगा।' वह इस परिकल्पना की जांच गणितकी दृष्टिसे इस तरह कर सकता है: 'दो घंटे में मैं यहां से १०० मीलकी दूरी पर रहूंगा और दूसरा चालक उस स्थानसे, जहां वह इस समय होगा, ८० मील दूर जा चुका होगा, अर्थात् यहां से १२० मील दूर होगा। इस प्रकार वह

[1] existing knowledge [2] data [3] receptive attitude [4] assumptions [5] active seeking [6] watchful waiting [7] flexible open-mindedness

जाय। अनेक प्रश्नोंका परीक्षण किया जाय और उनमें से उन प्रश्नोंको हटा दिया जाय जो परीक्षार्थियोंमें अच्छे-बुरे का अन्तर स्पष्ट करनेमें असफल रहते हैं। प्रश्नोंमें किसी तरह की अस्पष्टता न रहने दी जाय और हरेक परीक्षार्थीके लिए और परीक्षार्थीको कोई बात समझानेका समय तथा परिमाण निर्धारित करदिये जायें, ताकि जब वास्तविक परीक्षा ली जाय तब सभी परीक्षार्थियोंके लिए सभी बातें एक समान हों।

'गति-मापक परीक्षाओं' में बहुत सरल कार्य करनेको दिये जाते हैं और देखा जाता है कि व्यक्ति कितनी शीघ्रता से उन्हें पूरा करता है। इस तरहके कार्यका एक नमूना यह होसकता है कि व्यक्तिसे ऊपरके अनुच्छेद (पैराग्राफ़) में आये हुए 'क' और 'र' अक्षरोंको काटनेके लिए कहा जाय। हर व्यक्तिके कार्य करनेकी गतिमें अन्तर होता है। आपको दिलचस्पी होगी यह जानकर कि उपर्युक्त परीक्षा मान निर्धारित कर दिये जाने पर क्लर्कोंकी योग्यता मापनेका अच्छा साधन होसकता है। थकान, संवेग, या ओषजनकी कमीके कारण कार्य करनेकी गतिमें जो शिथिलता आजाती है, उसको भी इस परीक्षासे मापा जासकता है।

'यथार्थता-मापक-परीक्षाओं'[१] जैसे एक लक्ष्य पर गोला फेंकने या गुज़रती हुई मोटरकारकी गतिका अनुमान लगानेमें उद्देश्य यह देखना होता है कि किस व्यक्तिने सही अन्दाज़ लगानेमें कितनी ग़लती की।

'कठिनता-मापक परीक्षाओं' में गतिके ऊपर कोई ज़ोर नहीं दिया जाता। प्रश्न उत्तरोत्तर अधिक कठिन होते हैं। कुछ तो इतने सरल होते हैं कि परीक्षामें बैठनेवाला कोई भी व्यक्ति शायद ही उसे छोड़े और कुछ इतने कठिन होते हैं कि शायद ही कोई उनमें उत्तीर्ण होपावे। इस तरहकी परीक्षाओंमें यह देखना उद्देश्य रहता है कि (एक ख़ास तरहका) कितना कठिन कार्य कोई व्यक्ति सही-सही कर सकता है। उदाहरणके लिए, व्यक्तिसे नीचेकी सूचीमें प्रत्येक शब्दका विलोम[१] शब्द बताने को कहा जासकता है:

अच्छा	सुखकर
प्रारम्भिक	हठी
उत्तर	निस्सहाय
सुन्दर	एकाकी
भला	क्षुब्ध
अस्पष्ट	उल्लेखनीय
सन्देहजनक	चिपचिपा

प्रवणता-मापक परीक्षाएं[२]. यदि किसी विषय की प्रशिक्षा पहले व्यक्तिकी सामर्थ्यकी माप करली जाय या कमसे कम उसका अन्दाज़ कर लिया जाय तो शक्तिका बहुत-सा अपव्यय रुक सकता है। कई नवयुवक विमान-चालक बननेकी आकांक्षा रखते हैं, परन्तु उनमें से कुछ प्रशिक्षणके दौरानमें या तो छोड़ भागते हैं या अनुत्तीर्ण रहजाते हैं। वास्तविक प्रशिक्षण प्रारम्भ करनेके पहिले उनकी कार्य-क्षमताका जितना ठीक-ठीक पता चल सके, सभी सम्बन्धित व्यक्तियोंके लिए वह उतना ही हितकर रहेगा। कुछ छात्रोंमें कॉलेजका काम पूरा करनेकी क्षमता नहीं होती; यदि कॉलेजमें भरती होनेके पहिले ही उनकी इस असमर्थताको किसी तरह जाना जासके और उनको कोई दूसरा कार्य सीखनेकी सलाह दी जासके तो बहुत-सा समय, धन और शक्ति बचायी जासकेगी।

दुर्भाग्यसे यह सच है कि प्रत्यक्ष रूपसे सामर्थ्यकी माप या उसका निरीक्षण नहीं किया जासकता। अधिकसे अधिक जो हम करसकते हैं, वह यह कि हम व्यक्तिकी «प्रवणता या रुझान का जो उपलब्धिका पूर्वाभास[३]» है, अन्दाज़ लगानेके लिए परीक्षाएं या रीतियां सोच निकालें। वस्तुतः प्रवणता-मापक परीक्षा है तो उपलब्धि-मापक परीक्षा ही, परन्तु इसका उपयोग केवल किसी विशेष कार्यमें वर्तमान कुशलता को मापनेमें ही नहीं होता, बल्कि अन्य कार्यों और बृहत्तर कार्योंको पूरा करनेकी भावी कुशलताका पहिलेसे ज्ञान करनेमें भी। मनोवैज्ञानिकको प्रयोग और बादके घटना-क्रमके निरीक्षणके द्वारा यह खोज निकालना होता है कि प्रवणताकी परीक्षाओंमें लक्षित व्यक्ति की वर्तमान कुशलतासे भविष्यकी उसकी उपलब्धिका पूर्वाभास ठीक-ठीक कैसे पाया जासकता है।

किसी ख़ास तरहके काममें व्यक्तिकी प्रवणताका अन्दाज़ लगानेकी एक रीति यह है कि कुछ ऐसे व्यक्तियोंको लिया जाय जो इस समय उस कामसे बिलकुल अनजान हैं और उन्हें एक निश्चित मात्रामें उस कामकी प्रशिक्षा दी जाय। हम देखेंगे कि उनमें से कुछ व्यक्ति दूसरोंकी अपेक्षा तेज़ीसे प्रगति करते हैं। उदाहरणके लिए रेडियोके गुप्त संकेतोंको सीखनेके पहिले ही घंटेमें कुछ छात्र दूसरोंकी अपेक्षा दुगुनी-तिगुनी-जानकारी कर लेते हैं। देखा गया है कि जो लोग प्रारम्भमें अच्छे रहे, वे साधारणतया सीखनेके बादकी अवस्थाओंमें भी अच्छे सिद्ध हुए परन्तु जो प्रारम्भमें ही पिछड़ गये, वे आगे चल कर अपेक्षाकृत शिथिल ही सिद्ध हुए। किन्तु चूंकि इस नियम के कई अपवाद भी हैं, इसलिए प्रारम्भिक सफलता या असफलता से कोई भावी चित्र बना लेना किसी तरह उचित नहीं कहा जासकता। कुछ छात्र जो इस कार्यमें अच्छी प्रवणता रखते हैं, भय या संकोचके कारण प्रारम्भमें अपना कौशल नहीं दिखा पाते। कुछ बुद्धिमान छात्र जो जानते हैं कि पाठ कैसे अच्छी तरह याद किया जाता है, प्रारम्भमें अच्छे नम्बर ले आते हैं, हालांकि इस विशेष कार्यमें उनकी प्रवणता कुछ

[१] opposite [१] aptitude tests [३] prediction

उल्लेखनीय नहीं होती। इन कारणोंसे मनोवैज्ञानिक यह स्वीकार करेंगे कि वर्तमान उपलब्धि या सफलताको मापनेकी अपेक्षा भविष्यकी उपलब्धि या प्रवणता को मापना अधिक कठिन कार्य है।

निरपेक्ष प्राप्तांक[1] और सार्थक प्राप्तांक[2]. कोई व्यक्ति जब किसी परीक्षामें भाग लेता है, तब वह कुछ अंक प्राप्त करता है; यह उसका निरपेक्ष प्राप्तांक कहलाता है। खेल-कूद की प्रतियोगिताओंमें एक खिलाड़ी १०० गज दौड़ने, या कुछ फ़ीट व इंच उछलने, या इसी तरहके किसी लक्ष्य तक पहुंचनेमें जितने सैकेंड लगाता है, वह उसका निरपेक्ष प्राप्तांक होता है। किसी पूर्व जानकारीके बिना निरपेक्ष प्राप्तांकसे विशेष कुछ पता नहीं चलता।

जब निरपेक्ष प्राप्तांककी तुलना किसी रूपमें अन्य प्राप्तांकोंसे की जाती है तब वह सार्थक होजाता है। सामान्यतया इस प्रकारकी तुलना करनेकी दो पद्धतियां हैं।

१. कुछ परिस्थितियोंमें व्यक्तिके प्राप्तांककी तुलना किसी निश्चित किये हुए निरपेक्ष मानदंड[3]से या आवश्यकताओंसे की जाती है। एक गुप्त संकेत-चालक (कोड ऑपरेटर) उस समय तक विधिवत् नौकरीमें नहीं लिया जासकता जब तक वह एक विशेष मानदंडके अनुसार शीघ्रतापूर्वक संकेतोंको नहीं समझने लगता। कोई विमान-चालक अकेले विमान चलाने की अनुमति तबतक नहीं पा सकता, जबतक वह एक निश्चित मानदंडकी कार्य-कुशलता और ज्ञान प्रदर्शित नहीं कर देता। फिर भी, कड़े मानदंड चाहे जितने आवश्यक हों, उनको बनाये रखना बहुधा कठिन होजाता है। जब सुयोग्य संकेत-चालकों की अधिक मांग हो और वे कम संख्यामें मिल पावें तो आवश्यकताओं या शर्तोंको कुछ नरम करना पड़ता है, यह मानदंड पुनः बढ़ाया जासकता है यदि, और जब, अच्छे उमेदवारों का अधिक संख्यामें मिलना सम्भव हो जाय। तब, अप्रत्यक्ष रूप से, जो उम्मेदवार सम्पूर्ण आवश्यकताओंको पूरा करनेमें उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण होता है, उसकी तुलना अन्य उमेदवारों से की जाती है।

२. प्रायः एक व्यक्तिके प्राप्तांककी तुलना प्रत्यक्षरूपसे उसी कार्यको करनेवाले अन्य व्यक्तियोंके प्राप्तांकोंसे की जाती है। सम्पूर्ण आबादी, या आबादीके किसी वर्ग जैसे बारह वर्षके बालकों, कॉलेजके छात्रों, या किसी नौकरीके उमेदवारोंका प्रतिनिधित्व करनेवाली एक संस्थाकी परीक्षा ली जाती है। सबके प्राप्तांकोंका औसत निकाला जाता है और एक व्यक्तिके प्राप्तांककी तुलना औसत प्राप्तांक और सम्पूर्ण प्राप्तांकोंसे की जाती है। इस प्रकार व्यक्तिकी सापेक्ष स्थिति मालूम होजाती है और उसका निरपेक्ष प्राप्तांक सार्थक बन जाता है। हमको इन बातों पर अधिक विस्तारसे विचार करना चाहिए।

प्राप्तांकोंका वितरण. व्यक्तिगत भिन्नताओंका समग्र चित्र «वितरण वक्ररेखा[4]» द्वारा प्रस्तुत किया जासकता है, जैसाकि जोड़नेकी एक परीक्षामें कॉलेजके छात्रोंके प्राप्तांकोंको आकृति ३ में एक वक्ररेखा द्वारा दिखाया गया है। इसी प्रकार के वितरण कई बार, कई परीक्षाओंमें और विभिन्न परीक्षार्थियोंके समुदायों (बालक या वयस्क) से पाये गये हैं। प्रत्येक वक्ररेखामें मामूली उतार-चढ़ाव तो रहते ही हैं, उनका कोई महत्त्व भी नहीं होता, किन्तु व्यक्तिगत भिन्नताओंसे सम्बन्ध रखनेवाले निम्नांकित नियमोंकी उनके द्वारा बार-बार पुष्टि हो चुकी है:

१. किसी परीक्षामें भाग लेनेवाले व्यक्तियोंके प्राप्तांक एक निश्चित अवधि[5] के भीतर ही आते हैं। आकृति ३ में यह अवधि २ से लेकर २४ तक फैली हुई है। निस्सन्देह ये सीमाएं एक दम स्थिर नहीं हैं; कॉलेजके छात्रोंके नमूनों और जोड़नेकी क्रियाके उदाहरणोंके बदलने के साथ ये सीमाएं कुछ-कुछ बदलती रहती हैं, फिर भी बहुत नहीं।

२. अधिकांश व्यक्ति मध्यम श्रेणीके अंक ही पाते हैं। वक्र-रेखा अपने विस्तारके मध्य भागके निकट अपने शिखर पर पहुंच जाती है। इसका मतलब यह हुआ कि अधिकतर व्यक्ति औसत योग्यता (उपलब्धि) के ही होते हैं।

३. वक्ररेखाके शिखरसे इधर या उधर किसी भी दिशामें आप जाइये, आपको प्राप्तांकोंकी संख्या उत्तरोत्तर कम मिलेगी। वक्ररेखा दोनों सिरों पर सपाट या पुच्छाकार हो जाती है। इसका अच्छा दिग्दर्शन इसी प्रकरणमें बादमें दिये हुए बुद्धि-वितरणों[6] में किया जासकता है। वक्ररेखाकी बनावट मध्यगत रेखासे दोनों ओर लगभग अनुरूप होती है। वह देखनेमें घंटीकी शक्लकी लगती है। इस तरहके, घंटीके तरहके, वितरणको «साधारण वितरण[7]» कहते हैं।

४. कहीं विच्छेद नहीं है (बशर्ते कि काफ़ी अच्छी संख्याकी परीक्षा ली गयी हो); सबसे उत्तम व्यक्तिको मध्यम व्यक्ति से या मध्यमको निम्नसे अलग दिखानेवाला कोई बड़ा अन्तर नहीं है। इसके बजाय एक सिरेसे दूसरे सिरे तक निरन्तर क्रमिकता है।

वितरणकी माप. यदि आप एक विशिष्ट वितरणका वर्णन करना चाहते हैं, जैसा कि आकृति ३ में है, तो आपको बताना होगा कि वितरणका कहां केन्द्र है और केन्द्रसे कहां तक फैला हुआ है। आपको वितरणके «केन्द्र» और «विस्तार»

[1] raw scores [2] meaningful scores [3] absolute standards [4] distribution curve [5] range [6] intelligence distribution [7] normal distribution

उस समय भी आगे रहेगा। शायद उसका साथ पकड़नेमें मुझे तीन घंटे लग जायें।' समस्या को सुलझानेकी यह पद्धति आदर्श[1] वैज्ञानिक विधिके अनुकूल जान पड़ती है, जिसमें पहिले कोई परिकल्पना रखी जाती है और बाद में उसकी परीक्षा की जाती है; किन्तु समस्याके इस रूपमें यह पद्धति बेतुकी जान पड़ेगी, क्योंकि यदि उसे ठीक पथ-प्रदर्शक विचार मालूम हो जाय, तो वह एक भी खाली अन्दाजका सहारा लिये बिना उत्तर तक पहुँच सकता है। गणितमें बहुधा परिकल्पनाके बिना भी काम चला लेना सम्भव होता है, क्योंकि उसमें समस्या का रूप इतना स्पष्ट होता है कि उससे उस विधिका पता चल जाता है जिसका अनुसरण करने पर हल तक पहुँचना निश्चिंत हो जाता है। अधिकांश विज्ञानों तथा व्यावहारिक कार्योंमें, साधारणत: यह आवश्यक होता है कि पथ-प्रदर्शक विचारसे ऐसी सुनिश्चित परिकल्पनाओंका सुझाव प्राप्त किया जाय, जिन्हें प्रयोग या तथ्योंके निरीक्षणके द्वारा जांचा जा सके। गणितज्ञ भी साधारणत: समस्या से उसके हल तक एकदम सीधे नहीं पहुँचता। उसे परिकल्पनाओं की आवश्यकता भले न हो, परन्तु एक पथ-प्रदर्शक विचारकी आवश्यकता तो होती ही है; और एक अच्छे पथ-प्रदर्शक विचारको प्राप्त करने के लिए उसे विभिन्न दिशाओं में तलाश करनी पड़ती है। किन्तु वह समस्या को जितनी स्पष्टता और पूर्णता से समझ पाता है, उसका एक अच्छे पथ-प्रदर्शक विचार को प्राप्त करना उतना ही निश्चित हो जाता है।

किसी कठिन समस्या की 'सेना'[2]. किसी समस्या को सुलझाते समय आप अपनेको एक चक्करदार रास्तेमें उलझा हुआ पा सकते हैं और समस्या का हल पाने में असमर्थ रह सकते हैं। ऐसे समय में यह अच्छा होता है कि मामले को कुछ समयके लिए स्थगित रख दिया जाय। कई रचनात्मक विचारकों[3] ने, चाहे उनका क्षेत्र विज्ञान हो या आविष्कार, कला हो या साहित्य, इस नियम को उपयोगी पाया है। उनके साक्ष्यके आधार पर यह सम्भव जान पड़ता है कि किसी कठिन समस्या पर होनेवाले मौलिक सोच-विचार की सारी प्रक्रिया को « रचनात्मक विचार[4] के चार चरणोंमें » विभाजित किया जा सके:

१. तैयारी[5], 'लदान[6]'।

२. 'सेना[7]'—जब कि समस्याको अलग रख दिया जाता है और उस पर सोचना स्थगित कर दिया जाता है।

३. प्रकाश[8]—वह 'आनन्ददायक विचार' या पथ-प्रदर्शक विचार[9], जो समस्या के हल तक ले जाने वाली परिकल्पना[10] को सुझाता है।

४. सत्यापन[11] और विस्तृत करना[12]।

तैयारीकी हालतमें, समस्या का विश्लेषण किया जाता है और सभी प्राप्य सूचनाओंको एकत्र करके गहराईसे उनका अध्ययन किया जाता है। किसी हल तक पहुँचनेके लिए प्रारम्भिक प्रयत्न किये जाते हैं, किन्तु यदि वे असफल रहे, तो मामलेको अलग रख दिया जाता है। 'सेने[7]' की स्थितिमें समस्या पर कोई गम्भीर विचार नहीं किया जाता, हालांकि वक़्त-बेवक़्त वह मनमें आ सकती है। जब कि स्थगित समस्या मनमें आनेकी कोशिश करती है, वह समय होता है—सोकर उठनेके बाद प्रातःकाल, या दिवास्वप्नका समय, या बातचीत का समय, या टहलनेका समय, या स्नान करनेका समय, (आर्किमिदीज़ की बात याद रखिए)। ऐसे समय में 'प्रकाश[8]' एक विचारके रूप में आता है और वह इतना आशाजनक लगता है कि तत्काल विचारकके मनमें छा जाता है और विचारक को उस पर अपना ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है। यदि विचार अच्छा होता है, तो उस पर विस्तारसे काम करना पड़ता है, ताकि रचनात्मक विचारक[13] की समस्याके अनुसार उसे पूर्ण मशीन या वैज्ञानिक आविष्कार, या पूर्ण कविता या चित्रका रूप दिया जा सके (१६, २८)।

'सेना[7]' शब्दमें एक सिद्धान्त छिपा है। वह सिद्धान्त यह है कि समस्या जब स्थगित रखी होती है, या ध्यानसे उतरी हुई होती है, तब भी उस पर अज्ञात रूप से काम हो रहा होता है, ठीक वैसे ही जैसे अंडेको सेते समय भी उसके भीतर महत्त्वपूर्ण प्रक्रियाएं जारी रहती हैं। इस सिद्धान्तके लिए हमारे पास कोई विधानात्मक साक्ष्य[14] नहीं है, इसलिए दूसरे किसी सिद्धान्तकी सम्भावना भी की जा सकती है। क्या कारण है कि सभी आवश्यक सामग्री[15] को प्राप्त करनेके बाद भी विचारक समस्याके हल पर तत्काल नहीं पहुँच पाता? इसका उत्तर यह है कि वह अप्रासंगिक सामग्रीसे भरमाया जा सकता है, वह गलत मान्यताएं कर सकता है, या हीनमार्गका सहारा ले सकता है, या वह विस्तारकी बातों में उलझकर समस्या के पूरे ढांचेकी विवेचना करनेमें असमर्थ रह सकता है। सोच-विचार को अवकाश दिये बिना, वह जब एक ही समस्या पर लगातार सोचता है तब इन सभी विघ्नों[16] की सम्भावना रहती है, किन्तु जैसा कि इससे बहुत सरलतर, पर समानान्तर मामले—विस्मृत नामके सम्बन्धमें होता है, वैसा ही इस मामलेमें भी होता है, अर्थात् विश्राम-कालमें ताजगी का प्रभाव[17] विलीन हो जाता है (पृ० ३४२, ३४८)। विचारक

[1] standard [2] incubation of a difficult problem [3] creative thinkers [4] creative thinking [5] preparation [6] loading up [7] incubation [8] illumination [9] guiding idea [10] hypothesis [11] verification [12] elaboration [13] creative thinker [14] positive evidence [15] data [16] interference [17] recency effect

के लिए यह बहुत आवश्यक है कि उसे समस्या को नयी दृष्टि से देखनेका अवसर मिले। ऐसा अवसर उसे तभी मिल पाता है जब वह अच्छी तरह विश्राम ले चुका होता है और जांच-पड़ताल की पुरानी निष्फल पद्धतियोंका आतुरतापूर्वक पीछा नहीं कर रहा होता। किन्तु 'सेने[१]' का लाभ उठानेके लिए उसे पहिले पूरी तैयारी कर लेनी चाहिए।

बुद्धिमत्तापूर्ण विचार और 'प्रयास तथा भूल' की तुलना. किसी समस्याको सुलझानेमें लगा हुआ विचारक कुछ-कुछ उसी स्थितिमें होता है, जिसमें भूलभुलैयामें पड़ा हुआ चूहा या पिंजरेमें बन्द बिल्ली होती है। उसके पास प्रारम्भ करनेके लिए सामग्री होती है और पहुँचनेके लिए एक लक्ष्य भी होता है, किन्तु लक्ष्यकी ओर बढ़नेका उसे कोई सीधा रास्ता नहीं सूझता। यदि वह लक्ष्य तक जानेका रास्ता देख ले, तो वह समस्या उसके लिए कोई समस्या नहीं रह जायगी। उसको सम्भावनाओं[२] का अनुसन्धान करके, सम्भव मार्गोंको पाकर और उन पर चलनेका प्रयास करके, एक रास्तेको बन्द पाकर फिर पीछे लौटकर दूसरे रास्तेको अपनाकर आगे बढ़ना होता है। इस प्रकार विचारककी विधि भी 'प्रयास और भूल' के व्यवहारकी तरहकी होती है (पृ० २६६)। यह दो बातोंमें 'प्रयास और भूल' से भिन्नता रखती है। पहिले, विचारक अपने सम्भव मार्गों या उनमेंसे कुछ पर चलनेका प्रयास करता है; वह प्रहस्तन[३] और गत्यात्मक अनुसन्धान[४] के जरिये प्रयास न करके चिंतनके द्वारा[५] प्रयास करता है। दूसरे, समस्या को यथासम्भव पूरी तरह समझ कर वह समस्या के स्वरूपसे मेल खानेवाले पथ-प्रदर्शक विचारोंका पल्ला पकड़ता है। जो मूर्खतापूर्ण सुझाव समस्त समस्याके ढांचेके अनुकूल नहीं पड़ते, उनको वह अस्वीकार कर देता है। वह समस्या पर योजनाबद्ध रूपसे विचार करता है। इतना होने पर भी, उसे इस बातका पूरा निश्चय नहीं होता कि उसने सर्वोत्तम सम्भव मार्ग[६] का चुनाव कर लिया है, और चूँकि उसे विस्तार की बातों पर बहुत निकटसे ध्यान देना पड़ता है, इसलिए वह सारी परिस्थितिको हमेशा दिमागमें नहीं रख सकता। इस प्रकार विचार एक टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता अपना लेता है। उच्च कोटि के जितने विचारक वस्तुतः कठिन समस्याओं पर विचार करते हैं, उन सबके साथ भी यही बात होती है (२३)।

तार्किक[७] और अतार्किक[८] विचार

जब कोई विचारक अपनी सामग्रीकी जांच-पड़ताल करनेके बाद एक ऐसे परिणाम पर पहुँचता है, जिसे वह निश्चित या कम से कम, सम्भव मानता है, तब वह तर्क[९] कर रहा होता है। अपनी सामग्री[१०] से अनुमित निष्कर्ष पर जब वह पहुँच जाता है, तब यह माना जाता है कि उसने तार्किक विचार किया है। जैसा कि कभी-कभी होता है, जब वह किसी ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचता है जो उसकी सामग्री[१०] से अनुमित नहीं होता, तब यह समझा जाता है, कि उसका सोचना-विचारना ढीलाढाला रहा है और उसका निष्कर्ष अतार्किक[८] है।

कोई निष्कर्ष सामग्रीसे अनुमित उसी दशामें होता है, जब उसकी संगति सामग्रीके ढांचेसे निश्चित हो जाती है। यदि मोहन सोहनका पुत्र है और राधाकृष्णका पिता, तो इससे यह अनुमान होता है कि सोहन राधाकृष्णका दादा है। इस खास सामग्रीका चित्रण रेखाकृतिके रूपमें इस प्रकार किया जासकता है: एक उदग्र[११] रेखा खींची जाय, जिसके मध्य-बिन्दु पर मोहन रहे, सोहनको सबसे ऊपरी सिरे पर रखा जाय और राधाकृष्णको सबसे निचले सिरे पर। यहां पर नमूना[१२] सरल है और तार्किक निष्कर्षको सरलता से देखा जा सकता है। इस पुरानी बुझौवल में—

> 'मेरा कोई भाई नहीं, कोई बहन नहीं;
> पर, इस आदमीका पिता मेरे पिता का बेटा है।'—
> Sisters and brothers have I none.
> But this man's father is my father's son.

नमूना[१२] इतना स्पष्ट नहीं है, किन्तु एक बार यदि इसका निर्माण कर लिया गया, तो निष्कर्ष पर आसानीसे पहुँचा जा सकता है।

तर्क में 'हेतु या मध्यपद[१३]' का उपयोग. उपर्युक्त उदाहरणमें मोहन सोहन तथा राधाकृष्ण के मध्यमें उनसे विशेष रूपोंमें सम्बन्धित हेतु-पद है। उसीके कारण इन दोनों का सम्बन्ध जाना जाता है। बहुधा तर्क किसी हेतु-पद के इस्तेमाल पर निर्भर होता है। आप दो पेड़ोंके तनोंकी मोटाई की तुलना करना चाहते हैं। आप दोनों हाथोंसे एक पेड़के तनेको कसते हैं, तो वह आपके अंकमें आ जाता है, किन्तु दूसरे पेड़का कुछ भाग ही अंकमें आ पाता है। अपनी इस पहुँच को हेतु-पद[१३] के रूपमें इस्तेमाल करके आप 'देख' लेते हैं कि कौनसा पेड़ अधिक मोटा है। जो वस्तुएं परस्पर सीधे सम्पर्कमें नहीं लायी जा सकतीं, जैसे दो आदमियोंके वजन या दो दिनोंके तापमान, उनकी तुलना करनेके लिए जो पैमाना काममें आता है, वह हेतु-पद का काम करता है।

हेतु-पद एक संख्या भी हो सकता है। 'क्या हमने सभी लोगोंके लिए मेजें लगा दी हैं?' 'लोगोंको मेजके पास तक

[१] incubation [२] possibilities [३] manipulation [४] motor exploration [५] ideationally [६] lead
[७] logical [८] illogical [९] reasoning [१०] data [११] vertical [१२] pattern [१३] middle term

आन दो, उनके आ जाने पर ही हम बता सकेंगे कि सबके लिए मेजें है या नही।' 'लेकिन' हम उन्हें गिनकर यह बात पहले ही बतला सकते है। कितने लोग आ रहे है? एक, दो, तीन कुल पन्द्रह। अब मेजोंको तो गिन डालो—केवल चौदह है। हमें एक आदमीके लिए और स्थान बनाना चाहिए।' यहा हेतु पद के रूपमें दो संख्याए, १४ और १५ है और इन दो अमूर्त संख्याओंके बीचका सम्बन्ध मूर्त वस्तुओं[१]—लोगो और कुर्सियों—का, जो गिनी जा चुकी है, भी सम्बन्ध है।

यदि दो वस्तुए एक ही वस्तुके बराबर हैं, तो वे आपसमें भी बराबर होती हैं। यहा पर तीसरी वस्तु ही हेतु पद होती है। लेकिन क्या हम कह सकते है कि दो वस्तुए, जो किसी एक वस्तुके «सदृश होती है[२]», एक दूसरे के भी सदृश होती है? यदि लता और कमला दोनो निमला से सादृश्य रखती है, तो क्या हम इससे यह निष्कर्ष निकाल लें कि वे आपसमें भी सादृश्य रखती है? उनमें सादृश्य मुश्किलसे ही हो सकता है, क्योंकि लता निमला से किसी एक बातमें सादृश्य रखती है, तो कमला निमला से किसी दूसरी बातमें, और लता तथा कमला में कोई खास सादृश्य नही भी हो सकता। निमला की हम जब तक कुछ ठीक तरहसे व्याख्या नही करते, तब तक वह अच्छे हेतु पद का काम नही दे सकती। हेतु पद को द्व्यर्थक[३] नही होना चाहिए।

हम एक इस तरहके निष्कर्ष पर पहुँचना चाहते है, जैसे "'उ' ही 'व' है", या 'उ' किसी रूपमें 'व' से सम्बन्धित है, यहा 'उ' उद्देश्य[४] है या जिसके विषयमें हम बात कर रहे है, और 'व' विधेय[५] है या हम उद्देश्यके विषयमें जो कुछ कह सकते है। हेतु पद 'म' को एक ओर 'उ' से और दूसरी ओर 'व' से इस प्रकार सम्बन्धित रहना चाहिए कि वह दोनोके बीच पुलका काम दे सके। यदि हमारी सामग्री[६] यह है कि 'उ' देश विषुवत् रेखा के उत्तरमें स्थित है, किन्तु 'व' देश विषुवत रेखा के दक्षिणमें, तो विषुवत रेखा सही हेतु पद होगी, और इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि 'उ' 'व' से सुदूर उत्तरमें स्थित है। लेकिन यदि हमसे कोई यह कहे कि 'उ' विषुवत रेखा के उत्तरमें स्थित है और 'व' भी विषुवत रेखा के उत्तरमें है, तो हमें इतना तो मालूम हो जाता है कि उत्तरमें होनेकी दृष्टिसे 'उ' और 'व' एक समान है, किन्तु हम यह नही बतला सकते कि दोनोमें से कौन अधिक उत्तरमे स्थित है, क्योंकि इस दशा में विषुवत रेखा सच्चा हेतु पद नही है। यदि हमें यह बताया जाता है कि 'उ' विषुवत रेखा से ४०° उत्तरमें है और 'व' केवल ३०°, तो हम कह सकते है कि 'उ' अधिक उत्तरमें स्थित है, किन्तु इस हालत मे हमारा हेतु पद केवल विषुवत रेखा नही है। यह आवश्यक नही कि हेतु पद शब्दश: 'उ' और 'व' के मध्यमें पड़े, किन्तु उसके सम्बन्ध 'उ' और 'व' से ऐसे होने चाहिए कि उनको 'उ' और 'व' के बीच एक सम्बन्धके रूपमें संयुक्त किया जा सके।

इसके अतिरिक्त भी अन्य आवश्यकताए है, जिनकी पूर्ति एक सन्तोषप्रद हेतु के द्वारा होनी चाहिए। जटिल दलीलोंमें जो निष्कर्ष निकाले जाते है, वे बहुधा अतार्किक[७] और धोखा देनेवाले[८] होते है, क्योंकि उनके हेतु पद अपर्याप्त होते है।

मनोविज्ञान और न्याय शास्त्र[९] केवल मनोविज्ञान ही ऐसा विषय नही है जो तर्क[१०]में रुचि रखता है। जब मनोविज्ञान ने सोच विचार की वास्तविक प्रक्रियाओं, तर्कको सरल या कठिन बनानेवाली दशाओं, बच्चेमें तर्क शक्ति की वृद्धि, प्रशिक्षण (ट्रेनिंग) के प्रभाव, व्यक्तिगत भिन्नताओं और अन्य समस्याओंकी, जो स्पष्टत मनोवैज्ञानिक है, परीक्षा करनी शुरू की, उसके पहले ही न्याय शास्त्र[९] का अच्छा विकास हो चुका था। न्याय शास्त्र का सम्बन्ध विशेषत इस प्रश्न से है कि क्या निष्कर्ष सामग्री[६] से अनुमित हुआ है और उसका सम्बन्ध उन तरीकोंसे भी है, जो तर्ककी सारी प्रक्रिया में तार्किक विधि[११]को बनाये रखते हैं। अब तक हम हेतु पद[१२] के विषय में जो कुछ कहते आये है, उसका सम्बन्ध मनोविज्ञानसे होनेके बजाय न्याय शास्त्रसे है। अभी हम न्याय शास्त्र में थोडा और गोता लगाएगे, क्योंकि हम उन दोषोंका पता लगाना चाहते हैं, जो विचारक को अस्त व्यस्त कर सकते है।

न्याय वाक्य[१३] किसी युक्ति[१४] की यथार्थता की जाच करनेके लिए, वह सभी सामग्री, जिस पर निष्कर्ष अवलम्बित रहता है, पूर्णतया स्पष्ट की जानी चाहिए। साधारण बात चीत और लेखमें बहुधा किसी निष्कर्षके हेतुओंको आंशिक रूपसे ही व्यक्त किया जाता है। हम कहते है 'यह उडने वाला प्राणी पक्षी नही हो सकता, क्योंकि इसके छै पर है।' यदि इस युक्तिको पूरी तरह स्पष्ट किया जाय, तो वह यह रूप लेगी—

> यह प्राणी छ परो वाला है।
> कोई भी पक्षी छै परो वाला नही है।
> इसलिए, यह प्राणी पक्षी नही है।

इस एक मामलेमें न सही, किन्तु कई मामलोमे स्पष्ट विधिवत[१५] कथनसे यह समझना अधिक आसान हो जाता है कि निष्कर्ष सामग्री[६] से अनुमित होता है या नही। विधिवत कथन[१६]

[१] concrete objects [२] resemble [३] ambiguous [४] subject [५] predicate [६] data [७] illogical [८] deceptive [९] logic [१०] reasoning [११] logical procedures [१२] middle term [१३] syllogism [१४] argument [१५] formal [१६] formal statements

से यह पता चल जाता है कि हेतु-पद क्या है और 'उ' तथा 'व' पदोंसे उसके क्या सम्बन्ध हैं। अन्य दो पदोंसे हेतु-पद का सम्बन्ध बतलाने वाली उक्तियोंको «आधार-वाक्य[1]» कहते हैं, जिनसे निष्कर्ष अनुमित होता है, ऐसा माना जाता है। ये दो आधार-वाक्य और निष्कर्ष एक साथ संयुक्त होकर न्याय-वाक्य[2] का निर्माण करते हैं। (लम्बी युक्तियों और जटिल तर्ककी प्रक्रियाओंमें दो से भी काफ़ी अधिक आधार-वाक्य[1] हो सकते हैं, किन्तु वे बहुधा जोड़ोंके रूपमें संयुक्त रहते हैं, ताकि वे मध्यवर्ती निष्कर्षोंको, जो अन्तिम निष्कर्षको उत्पन्न करनेवाले आधार-वाक्यों का काम देते हैं, पैदा कर सकें)।

अपने 'उ', 'म' और 'व' प्रतीकोंका इस्तेमाल करके हम न्याय-वाक्य[2] को अभिव्यक्त कर सकते हैं, जिसका सामान्य रूप इस प्रकार होगा :

'उ' 'म' है।
'व' 'म' नहीं है।
इसलिए, 'उ' 'व' नहीं है।

हम देखते हैं कि जब कभी कोई युक्ति इस नपे-तुले रूपमें रखी जाती है, तब उसका निष्कर्ष तर्कसम्मत ही होता है, किन्तु इसमें एक शर्त भी है और वह यह कि 'म' एक अच्छे, एकार्थक हेतु-पद के रूपमें उपस्थित हो और उसका 'उ' तथा 'व' से उपयुक्त सम्बन्ध भी हो। छोटे-से शब्द 'है' से अभिप्रेत सम्बन्धको भी स्पष्ट कर देना उचित है। यहां उसका अर्थ है '...में सम्मिलित है[3]' जबकि 'नहीं है' का अर्थ है '...से पृथक् है[4]'। जब और कुछ न कहा जाय, तब इन सम्बन्धोंको समझ लेना चाहिए। यदि उड़नेवाले प्राणी-विषयक न्याय-वाक्य[2] को इस रूपमें रखें, तो वह इस प्रकार होगा :

यह प्राणी छै टांगों वाले प्राणियोंमें सम्मिलित है।
कोई भी पक्षी छै टांगों वाले प्राणियोंमें सम्मिलित नहीं है (या सभी पक्षी उस श्रेणीसे पृथक् हैं)।
इसलिए, यह प्राणी पक्षियोंकी जातिमें सम्मिलित नहीं है।

दूसरा प्रतिमान न्याय-वाक्य[5], जो अभावात्मक निष्कर्षके बजाय भावात्मक निष्कर्षकी ओर ले जाता है, इस रूपमें प्रस्तुत किया जा सकता है :

सभी 'उ' 'म' हैं।
सभी 'म' 'व' हैं।
इसलिए, सभी 'उ' 'व' हैं।

यह निष्कर्ष स्पष्टही तर्कसम्मत है और यह न्याय वाक्य[2] का लगभग सबसे सरल रूप है, जिसको साफ़-साफ़ देखा जा सकता है। निम्नलिखित दो रूप सरल तो लगते हैं, किन्तु वे अतार्किक[6] हैं :

सभी 'उ' 'म' हैं।
सभी 'व' 'म' हैं।
इसलिए, सभी 'उ' 'व' हैं। (?)

कोई 'उ' 'म' नहीं है।
कोई 'व' 'म' नहीं है।
इसलिए, सभी 'उ' 'व' हैं। (?)

इन दोनोंमें से किसीसे भी कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। केवल एक निष्कर्ष अवश्य निकलता है कि 'उ' और 'व' केवल एक बातमें, अर्थात् 'म' होनेमें या 'म' न होनेमें सादृश्य रखते हैं।

आवश्यक नहीं कि कोई तर्कसम्मत निष्कर्ष तथ्यतः सच्चा ही हो. तर्कसम्मत शुद्धता[7] और तथ्यात्मक सत्यके बीचका भेद तर्क[8] में महत्त्वपूर्ण होता है। तर्कसम्मत निष्कर्ष तो वह है, जो आधार-वाक्यों[1] से अनुमित होता है, किन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह तथ्यतः सही ही हो। «यदि» आधार-वाक्य सच्चे होते हैं, तो तर्कसम्मत निष्कर्ष भी सच्चा होता है। तर्क[8] के दो उपयोग हैं। यदि यह ज्ञात है कि आधार-वाक्य सत्य हैं, तो सही तर्कसे अतिरिक्त ज्ञान की उपलब्धि होती है; सत्य आधार-वाक्यों से ही निष्कर्षकी सत्यता जानी जा सकती है। यदि हमें निश्चय है कि भालू अपने बच्चोंको दूध पिलानेवाले स्तनधारी प्राणी है और सभी स्तनधारी उष्ण-रक्तवाले पशु होते हैं, तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि (जाड़ेकी ऋतु को सोनेमें बितानेके बावजूद) वे उष्ण-रक्तवाले पशु हैं। किन्तु यदि हम अपने आधार-वाक्यों में से एक की सत्यता के विषयम सन्तुष्ट नहीं हैं, तो हम क्या कर सकते हैं? हम उसे एक परिकल्पना[9] के रूपमें स्वीकार करके तर्कसम्मत निष्कर्ष निकाल सकते हैं; यदि निष्कर्ष तथ्यतः «मिथ्या» सिद्ध होता है, तो हम समझ जाते हैं कि हमारा आधार-वाक्य[1] या परिकल्पना[9] अवश्य ग़लत रही होगी। जैसा कि हम पहिले ही देख चुके हैं, निष्कर्षोंका अनुमान करके परिकल्पनाओंको जांचना और तब यह देखना कि क्या निष्कर्ष वास्तवमें ठीक हैं, तर्क[8] का बहुत महत्त्वपूर्ण उपयोग है (पृ० ५६७)। यदि अनुमित निष्कर्ष तथ्यतः सच्चे पाये जायें, तो इससे यह सिद्ध नहीं होता कि परिकल्पना निश्चित रूपसे सच्ची ही है, क्योंकि एक तर्कसम्मत और सच्चा निष्कर्ष भी कभी-

[1] premises [2] syllogism [3] is included in [4] is excluded from [5] standard syllogism [6] illogical [7] logical correctness [8] reasoning [9] hypothesis

कभी आंशिक रूपसे या पूर्णरूपसे मिथ्या आधार-वाक्यों[1] से अनुमित होता है। उदाहरणके लिए, 'सभी ह्वेल मछलियां स्तनधारी[2] हैं; मनुष्य ह्वेलोंकी जातिका है, इसलिए मनुष्य स्तनधारी है।' या 'सभी छिपकलियां[3] स्तनधारी हैं; मनुष्य छिपकलियोंकी जातिका है; इसलिए मनुष्य एक स्तनधारी प्राणी है।'

यद्यपि किसी निष्कर्षकी सत्यता उसकी तर्कसम्मत शुद्धता से भिन्न होती है, तथापि दोनोंको उलझा देना और किसी निष्कर्षके, जिसके विषयमें ज्ञात है या विश्वास किया जाता है कि वह सच्चा है, निर्बल तर्ककी उपेक्षा करना आसान होता है। निम्नलिखित युक्ति पर ध्यान दीजिए:

सभी मंगोलोंकी आंखें तिरछी[4] होती हैं,
चीनियोंकी आंखें तिरछी होती हैं।
इसलिए, चीनी मंगोल हैं।

कॉलेजीय छात्रोंके एक समूहम से ५० प्रतिशतसे अधिक छात्रोंने इस निस्कर्षको सही बताया। इसमें सन्देह नहीं कि यदि इसी न्याय-वाक्य[5] के पदोंको बदल दिया जाता, तो उन की प्रतिक्रिया इससे बहुत भिन्न होती; उदाहरणके लिए:

सभी पक्षियोंके पंख होते हैं।
मक्खियोंके भी पंख होते हैं।
इसलिए, मक्खियां पक्षी हैं।

इस तरहकी गड़बड़ीसे बचनेके लिए और स्वयंको सामग्री[6] के नमूने[7] के साथ व्यवहार करनेमें संलग्न करनेके लिए किसी न्याय-वाक्य[5] के सार्थक पदोंके स्थान पर अक्षर-प्रतीकोंको रखा जा सकता है। इन अन्तिम दोनोंमें से किसी एकके लिए हम नीचे लिखा न्याय-वाक्य स्थानापन्न कर सकते हैं:

सभी 'व' 'म' है।
'उ' 'म' है।
इसलिए, 'उ' 'व' है।

यह उपाय अभ्यासके बाद तो उपादेय हो सकता है, किन्तु अदक्ष व्यक्ति[8] के लिए यह सहायक होनेके बजाय बाधक ही होता है। यहां तक कि कॉलेजीय छात्र बीजगणितकी इतनी शिक्षा पानेके बाद भी इस तरहके प्रतीकात्मक न्याय-वाक्यों[9] में अधिक भूलें करते हैं; इतनी भूलें वे साधारण भाषामें वर्णित न्याय-वाक्योंमें नहीं करते। प्रयोगोंसे ऐसा जान पड़ता है कि सरलतासे तर्क करनेके लिए हमारे पास कुछ मूर्त चीज होनी चाहिए, हालांकि यह सम्भावना हो सकती है कि मूर्त चीजको पाकर हम उपलब्ध निष्कर्षोंके विषयमें अपने ज्ञान, विश्वास या पूर्वग्रहों[10] के द्वारा अनुचित रूपसे बहका दिये जायें (११, १२, १५, २४)।

किन्तु यदि निष्कर्ष सच्चे हों, तो अतार्किक ढंगसे तर्क करने में हानि ही क्या है? मनुष्य अपने मस्तिष्कको गड़बड़में डालनेके बजाय उसको स्पष्ट-स्वच्छ रखना अधिक पसन्द करता है; इसके अलावा सच्चे निष्कर्षोंको मिथ्या आधार-वाक्यों[1] या ढीले-ढाले तर्क पर आधारित करनेसे बहुधा व्यावहारिक हानि भी हो जाया करती है। जब बच्चेसे कहा जाता है कि 'अच्छे बालक बनो, वर्ना हौआ तुम्हें उठा ले जायगा' और बादमें जब वह पाता है कि हौआ नामकी कोई चीज नहीं है, तब वह सोच सकता है कि अच्छा बननेमें कोई तुक नहीं है। जब कोई राजनीतिक वक्ता अपने व्याख्यानमें अपने दलके पक्षमें मिथ्या युक्तियां देता है, तब जो लोग उस की निराधार, मनगढ़न्त तर्ककी असलियत समझ जाते हैं, वे यह मान सकते हैं कि उसका दल कोई अच्छा नहीं है।

तर्कमें शाब्दिक कठिनाइयां. जैसा कि पहले कहा जा चुका है, (पृ० ३५९) भाषा यदि सोच-विचारके मार्गमें बहुत सहायक होती है, तो वह भूल तथा गड़बड़ीका एक कारण भी होती है। कभी-कभी सामग्रियां ऐसे रूपमें अभिव्यक्त की जाती हैं जो उनके परस्पर सम्बन्धोंको उलझा देता है। इसका एक उदाहरण नीचे लिखी समस्याको आठ वर्षके बच्चों द्वारा सुलझानेके प्रयासोंमें मिलता है:

पुष्पा सुरेशसे गोरी है, किन्तु वह कृष्णासे कम गोरी है।
कौन कम गोरा है—सुरेश या कृष्णा?

केवल ४० प्रतिशत बच्चोंने इसका सही उत्तर दिया, किन्तु समस्यामें मामूली-सा शाब्दिक हेर-फेर कर देनेसे यह प्रतिशत ७२ तक उठ गया, और उस रूपमें समस्या इस प्रकार हो गयी:

कृष्णा पुष्पासे अधिक गोरी है; पुष्पा सुरेशसे अधिक गोरी है;
कौन अधिक गोरा है, कृष्णा या सुरेश?

पहिले रूपमें दो विरोधी सम्बन्ध वाले शब्दों, 'अधिक गोरी' और 'कम गोरी' के मिश्रणके कारण गड़बड़ी मालूम पड़ी थी। जैसा कि पहिले ही बतलाया जा चुका है, इस तरहके न्याय-वाक्य[5] को एक सीधी रेखाकी आकृतिसे, जिसके मध्यमें तो हेतु-पद[11] रखा हो और दोनों सिरों पर अन्य दोनों पद रखे हों, स्पष्ट किया जा सकता है (१, २)।

दूसरे प्रकारके न्याय-वाक्य,[12] जो समावेश[13] और अपवर्जन[14]

[1] premises [2] mammals [3] lizards [4] slant [5] syllogism [6] data [7] pattern [8] un-initiated [9] symbolic syllogism [10] prejudices [11] middle term [12] syllogisms [13] inclusion [14] exclusion

पर आधारित रहते हैं, साधारणत: ऐसी भाषामें अभिव्यक्त किये जाते हैं, जो सामग्रियोंके ठीक सम्बन्धोंको प्रकट नहीं करती। यह निर्णय करनेकी सरल समस्या कि क्या किसी वाक्य[1] का विपरीत[2] तर्कसम्मत है, में भी यह कठिनाई उपस्थित रहती है। नीचे कुछ विपरीत वाक्य और उनके मूल वाक्य दिये जा रहे हैं, आपको विचार करना है कि इनमें से कौन-सा विपरीत वाक्य अपने मूल वाक्यसे तर्कसम्मत ढंगसे अनुमित हुआ है :

«मूल-वाक्य[3]»	« विपरीत[2]-वाक्य »
(१) सभी 'अ' 'ब' हैं	सभी 'ब' 'अ' हैं
(२) कुछ 'अ' 'ब' हैं	कुछ 'ब' 'अ' हैं
(३) कोई भी 'अ' 'ब' नहीं हैं	कोई भी 'ब' 'अ' नहीं हैं
(४) कुछ 'अ' 'ब' नहीं हैं	कुछ 'ब' 'अ' नहीं हैं

अधिकांश व्यक्ति सभी विपरीत वाक्योंको स्वीकार कर लेने में आसानी देखते हैं, हालांकि सावधानीसे देखने पर पता चलेगा कि केवल (२) और (३) तर्कसम्मत[4] हैं। "सभी 'अ' 'ब' हैं" से यह निश्चित्त रूपसे पता चलता है कि "कुछ 'ब' 'अ' हैं", किन्तु "सभी 'ब' 'अ' हैं" यह नहीं। यहां कठिनाई भाषा के कारण है। "सभी 'अ' 'ब' हैं" इस कथनसे एक ऐसा «वातावरण[5]» बनता है, जिसमें दृढ़ विधानात्मक निश्चित वाक्य[6] की झलक मिलती है, जिससे दृढ़ विपरीत वाक्य बिल्कुल ठीक जान पड़ता है। और "कुछ 'अ' 'ब' नहीं हैं", इस कथनमें निर्बल अभावात्मक कथनका वातावरण है, जो उसी तरहके विपरीत कथनका औचित्य प्रमाणित करता मालूम पड़ता है (१६)।

इन सभी मामलोंमें कठिनाई शब्द-सम्बन्धी है, यह बात इस तथ्यसे स्पष्ट हो जाती है कि एक चित्रसे सारी बातें साफ़ की जा सकती हैं।
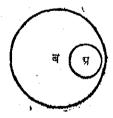
आकृति १४२. इस कथनका चित्र, कि सभी 'अ' 'ब' हैं।

'अ' वर्गको एक वृत्तके द्वारा दिखाइए और 'ब' वर्गको दूसरे वृत्त द्वारा। इसके बाद "सभी 'अ' 'ब' हैं", इस कथनको इस प्रकार चित्रमें व्यक्त किया जा सकता है : 'ब' वृत्तके भीतर 'अ' वृत्तको रखकर। चित्रसे यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि 'सभी' नहीं, बल्कि 'कुछ' 'ब' 'अ' वर्गके अन्तर्गत आता है। वाक्य '२' के लिए जो चित्र बनेगा, उसमें एक दूसरेको काटते हुए[7] वृत्त बनेंगे; और '३' वाक्यके लिए दो बिल्कुल अलग वृत्त खींचे जाएंगे। ये चित्र विपरीत वाक्यों[8] की शुद्धता प्रकट करते हैं। कथन '४' के लिए जो चित्र बनेगा, वह दो परस्पर काटने वाले वृत्तोंका होगा। किन्तु यह 'अ' वृत्तके भीतर एक 'ब' वृत्त बनाकर भी खींचा जा सकता है, जिससे कोई निश्चित विपरीत वाक्य प्राप्त नहीं होता।

किसी न्याय-वाक्य[9] को चित्रित करनेके लिए तीन वृत्तों की आवश्यकता होती है। यह उक्ति कि भालू उष्ण-रक्त वाले[10] होते हैं, क्योंकि वे स्तनधारी हैं और सभी स्तनधारी उष्ण-रक्त वाले होते हैं, तुरन्त शुद्ध तर्क मालूम हो जाता है। यदि 'उ' 'म' में सम्मिलित है और 'म' 'व' में, तो 'उ' 'व' में अवश्य सम्मिलित होगा।

किन्तु यह न्याय-वाक्य[9] कि चीनी इसलिए मंगोल हैं, कि दोनोंकी आंखें तिरछी[11] होती हैं, अशुद्ध[12] मालूम पड़ता है। आधार-वाक्यों[13] से हमें पता चलता है कि 'उ' और 'व' दोनों ही 'म' में सम्मिलित हैं, किन्तु 'म' वृत्तके भीतर दोनों छोटे वृत्तोंको पूरी स्वतंत्रता मिली हुई है। वे एक-दूसरे पर ठीक-ठीक बैठ सकते हैं[14], एक दूसरेके एक भागको ढक सकता है, वे बिल्कुल अलग-अलग रह सकते हैं, या इस तरह रखे जा सकते हैं कि उनमेंसे कोई भी एक दूसरेमें सम्मिलित हो जाय। अन्य अशुद्ध न्याय-वाक्य[9] के साथ भी (पृ० ३७२) सही तरीका बरता जाता है; उसमें 'उ' और 'व' दोनों ही 'म' से बाहर निकाले गये हैं; उसके उपयुक्त चित्रसे पता चलता है कि इस तरहके आधार-वाक्यों[13] से कोई तर्कसम्मत निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।

सम्भावनाओं[15] से प्रसूत तर्क. जिन न्याय-वाक्यों[9] पर हम विचार कर रहे हैं, वे अधिकतर 'सब कुछ—या—कुछ भी नहीं[16]' नमूनेके हैं और उनके आधार-वाक्य[13] इस प्रकारके हैं, जैसे—"सभी भालू स्तनधारी[17] हैं" या "किसी भी पक्षीके छै टांगें नहीं होतीं।" हमने 'कुछ[18]' आधार-वाक्योंका उल्लेख अवश्य किया था, परन्तु फिर भी उनसे अधिक अनुमित नहीं किया जा सकता। इन आधार-वाक्यों पर तनिक विचार कीजिए :

[1] proposition [2] converse [3] original [4] logical [5] atmosphere [6] strong positive assertion [7] intersecting [8] converse statements [9] syllogism [10] warm-blooded [11] slant [12] unsound [13] premises [14] might coincide [15] probabilities [16] all-or-none [17] mammals [18] some
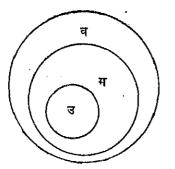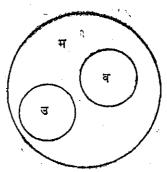
आकृति १४३. दो न्यायवाक्यों के चित्र।
१. सभी 'उ' 'म' हैं; सभी 'म' 'व' हैं; इसलिए सभी 'उ' 'व' हैं— तर्कसंगत।
२. सभी 'उ' 'म' हैं; सभी 'व' 'म' हैं; इसलिए सभी 'उ' 'व' हैं——अतार्किक।

स्पेनिश कक्षा के कुछ छात्रोंने परीक्षा में असभ्य व्यवहार किया।

गम्मा[1] बिरादरीके दस आदमी स्पेनिश कक्षा में थे। इसलिए, क्या?

हम तर्कपूर्वक यह नहीं कह सकते कि किसी भी गम्मा ने असभ्य व्यवहार किया होगा, हालांकि यह सम्भावना की जा सकती है। यदि पहले आधार-वाक्य को अधिक निश्चित बनाया जाय, ताकि यह कहा जा सके कि स्पेनिश कक्षाके २०
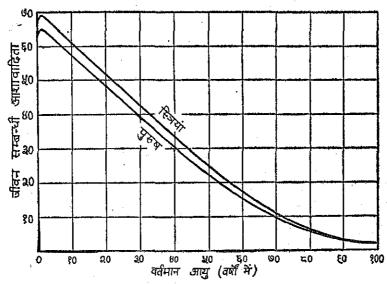
आकृति १४४. सम्भावना से तर्कना——यहां पर सम्भावना का तात्पर्य है विभिन्न आयुओंमें जीवित रहनेकी आशा। उदाहरणके लिए, २० वर्षकी आयुमें औसत युवक यदि यह सोचे कि वह अभी अनुमानत: ४८ वर्ष और जीवित रहेगा, और औसत युवती यदि सोचे कि वह लगभग ५२ वर्ष और जीवित रहेगी, तो उनकी ऐसी आशा तर्कसंगत है, क्योंकि अमेरिका की गोरी जातिकी मृत्यु-दरों के अनुकूल ही उनका सोचना है। कोई भी युवा व्यक्ति कितने वर्षों तक जीवत रहेगा, यह निस्सन्देह कई व्यक्तिगत बातों पर निर्भर होता है और औसतोंके आधार पर इस सम्बन्धमें कोई सही भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। किन्तु ये औसत उन लोगोंके लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं, जो जीवन-बीमा, सालाना पुरस्कार और पेंशन देनेके लिए औसतों और सम्भावनाओंकी शब्दावलीमें सोचते हैं।

[1] Gamma

प्रति शत छात्रोंने असभ्य व्यवहार किया, तो यह सम्भावना हो सकती है कि दस गम्माओंमें से दो ने असभ्यता दिखायी होगी —यदि गम्माओंका बौद्धिक स्तर निम्न होगा, तो यह संख्या अधिक हो सकती है, यदि बौद्धिक स्तर ऊंचा होगा, तो यह संख्या कम हो सकती है। इस प्रकारके निष्कर्षमें 'सम्भवतः' और 'लगभग' जैसे विशेषतासूचक शब्द अवश्य सम्मिलित रहने चाहिए। अपने दैनिक जीवनमें हमें 'निश्चित तथ्यों'[1] के बजाय 'सम्भावनाओं'[2] पर ही अधिकतर निर्भर रहना पड़ता है, और मानवीय कार्योंके विषयमें तर्क करते समय भी पूर्ण निश्चय बहुधा दुर्लभ होता है। हमें परिवर्तनशील दशाओं और मनुष्य की प्रतिक्रियाओंकी परिवर्तशीलता के लिए भी गुंजाइश रखनी पड़ती है। 'यदि क़ीमतें अत्यधिक बढ़ गयीं, तो लोग सामान खरीदनेसे इन्कार कर देंगे'—यह एक अच्छी भविष्य-वाणी है, किन्तु इसमें अपवाद भी हो सकते हैं, क्योंकि कुछ लोग तो इस डरसे सामान खरीदेंगे कि कहीं क़ीमतें और न बढ़ जायें, और कुछ लोग इस बातकी डींग मारनेके लिए खरीदेंगे कि उन्होंने इतनी महँगीमें भी ऊंचे दाम देकर चीजें खरीदी थीं।

सम्भावनाओंको वैज्ञानिक दृष्टिसे देखनेके लिए उनको परिमाण से संयुक्त करना आवश्यक है, ताकि 'सम्भवतः' और 'लगभग' जैसे अनिश्चित शब्दोंके स्थान पर एक भविष्यवाणी[3] के पक्ष या विपक्षमें सम्भावनाओंके लिए संख्या-सूचक कथन रखा जा सके। अपेक्षाकृत छोटे नमूनोंके परिमाणों पर कई बड़ी-बड़ी भविष्यवाणियां आधारित होती हैं, जैसा कि हम मतदान-शलाकाओं[4] और चुनावके वोटोंमें देखते हैं। किसी खास मुद्दे पर कुछ हजार आदमी अपनी राय जाहिर करते हैं, इन सामग्रियोंसे यह भविष्यवाणी करनेके लिए आधार मिल जाता है कि उस मुद्दे पर साधारण जनता के क्या विचार हैं या वह उस मुद्दे पर किस प्रकार मतदान करेगी। किसी सामग्री के आधार पर अच्छी भविष्यवाणी की जा सके, इसके लिए उसे बहुत सावधानीसे इकट्ठा करना आवश्यक है। नमूना बहुत छोटा नहीं होना चाहिए और वह प्रतिनिध्यात्मक होना चाहिए, अर्थात् उसमें देशके विभिन्न प्रान्तों, विभिन्न व्यवसायों इत्यादि के प्रतिनिधि पूरी आबादीमें अपने अनुपातके अनुसार सम्मिलित होने चाहिएं। जब बानगीको तैयार करनेमें अच्छे तरीक़ोंसे काम लिया गया, तब शलाका-मतदानों से चुनावके परिणामों के सम्बन्धमें कुछ आश्चर्यजनक रूपसे सही भविष्यवाणियां की जा सकीं, किन्तु जब बानगी प्रतिनिध्यात्मक नहीं थी, तब बहुत मिथ्या भविष्यवाणियां ही हो सकीं, जिनका बादमें मज़ाक़ उड़ाया गया (७)।

'सब कुछ—या—कुछ भी नहीं' आधार-वाक्यों[5] के आधार पर तर्क करनेकी अपेक्षा सम्भावनाओं और परिवर्तनशील तथ्यों[6] के सम्बन्धमें स्पष्टता से सोचना अधिक कठिन है। इनमें कुछ सामान्य भूलें हो जाती हैं। (१) कोई निष्कर्ष बिल्कुल छोटे नमूने[7] पर आधारित होता है। आप किसी आदमीको ऐसा कहते सुन सकते हैं कि मैंने 'निश्चित रूपसे' उस मामलेको ऐसा-ऐसा पाया, किन्तु उससे प्रश्न करने पर आपको पता चल सकता है कि उसने केवल एक-दो आकर्षक दृष्टान्तों पर ही ध्यान दिया है, शेष बातों पर नहीं। (२) 'विपक्ष दृष्टान्तों'[8], को सामान्य नियमका अपवाद कहकर भी अलग हटा दिया जाता है, किन्तु इसके बजाय होना यह चाहिए कि उन्हें उस समय तक सुरक्षित रखा जाय, जब तक नियमके पक्षों और विपक्षोंकी गिनती की जा सके। (३) वह बानगी, जिस पर साधारणीकरण[9] आधारित होता है, अप्रति-निध्यात्मक हो सकती है। आप समझते हैं कि किसी निर्दिष्ट मामले पर आप आम रायको जानते हैं, क्योंकि आपने उस विषय पर अपने मित्रोंसे बातचीत की होती है और उनको अपनेसे काफ़ी सहमत पाया होता है। लेकिन सवाल यह है कि क्या आपके मित्र आम आबादीकी हर सूरतसे सही नुमाइन्दगी करते हैं? (४) कोई निष्कर्ष, जो केवल सम्भावित हो सकता है, बहुधा निश्चित-सा मान लिया जाता है। इसके सम्बन्ध में उठनेवाले सन्देहोंको भुला दिया जा सकता है और बहुत समय तक यह एक स्वीकृत सिद्धान्तके रूपमें मान्य होता रह सकता है; और ऐसा तब तक चलता रह सकता है, जब तक कोई व्यक्ति उसका सही स्वरूप निश्चित करनेके लिए अधिक साक्ष्य जुटानेका कष्ट नहीं करता। विज्ञानके इतिहासमें यह बात एकाधिक बार होती देखी गयी है।

सारांश

१. «चिन्तन[10]» एक मानसिक क्रिया है, जो प्रस्तुत परिवेश के साथ सांवेदनिक[11] और गत्यात्मक[12] सम्पर्क रखने पर

[1] certainties [2] probabilities [3] prediction [4] straw ballots [5] all-or-none premises [6] variable phenomena [7] sample [8] negative instances [9] generalization [10] ideation [11] sensory [12] motor

सीधे निर्भर नहीं होती।

(क) «स्वप्नों और दिवास्वप्नों[१]» में चिन्तनकी क्रिया जान-बूझ कर विशिष्ट दिशाओंमें संचालित नहीं की जाती, बल्कि विचारों[२] और प्रतिमाओं[३] का अनुक्रम[४] और अविच्छिन्नता[५] व्यक्तिके अनुभवमें अपने पिछले साहचर्यके कारण उत्पन्न होती हैं। स्वप्न व्यक्तिके प्रेरकों[६] और इच्छाओं[७] से सम्बन्धित होते हैं; स्वप्न का विषय प्रेरकोंकी विकृत और प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति हो सकता है, जिसे व्यक्ति स्वयं भी स्वीकार नहीं करता।

(ख) «सोद्देश्य विचार[८]» चिन्तन की क्रिया होती है, जो आविष्कार और अनुसन्धानके लक्ष्योंकी ओर नियंत्रित और संचालित की जाती है।

२. «प्रत्यय[९]» चिन्तनकी क्रिया[१०] के साधन होते हैं। «प्रतीक[११]» वस्तुएं या अभिव्यक्तियां या क्रियाएं होते हैं जो वास्तविक विषयोंकी अनुपस्थितिमें प्रत्ययोंके स्थान पर व्यवहृत होते हैं।

(क) «भाषा के प्रतीक[१२]» कथित और लिखित अभिव्यक्तियां होते हैं, जो प्रथम तो लोगोंके बीच विचार-विनिमय[१३] का कार्य करते हैं और दूसरे, चिन्तनक्रिया के लिए इस्तेमाल होते हैं। छोटे बच्चे सोचनेमें भाषा-प्रतीकों के कार्य को बहुधा स्पष्टरूपसे प्रदर्शित करते हैं: समस्या को हल करते समय वे जोर-जोर से बातचीत करते हैं। ज्यों-ज्यों वे बड़े होते जाते हैं, कुछ कम जोर-से बोलकर काम करना सीखते हैं और अन्तको बिना किसी गत्यात्मक अभिव्यक्ति[१४] के काम करना सीख जाते हैं।

(ख) «रेखाकृतियां[१५]», «नक्शे[१६]», «संगीतकी स्वर-लिपियां[१७]» आदि जटिल परिस्थितियों और उनके बीचके बहुविध सम्बन्धोंका प्रतिनिधित्व करनेके लिए उपयोगी होते हैं।

(ग) «प्रत्यय[१८]» वस्तुओं, घटनाओं और गुणों आदिकी ओर संकेत करते हैं। वस्तुओं[१९] के बीचकी समानताओं और भिन्नताओं पर ध्यान देने और प्रत्येक प्रत्यय[१८] के लिए एक अलग शब्द या अन्य प्रतीकको सीखनेसे प्रत्ययों[१८] का निर्माण होता है। इस प्रकार प्रत्यय उस शब्द का अर्थ बन जाता है।

१. «साधारणीकरण[२०]» एक मानसिक प्रक्रिया है, जो कतिपय दृष्टान्तोंके साथ किये गये अनुभव के आधार पर वस्तुओंकी एक जातिके प्रत्यय[१८] का निर्माण करती है।

२. «भिन्नीकरण[२१]» एक विरोधी प्रक्रिया है, जो एक जातिकी वस्तुओंके बीच अन्तर मालूम करती है और एक प्रत्ययसे दो या दो से अधिक प्रयत्नोंका निर्माण करती है।

३. «पृथक्करण[२२]» एक सम्बन्धित प्रक्रिया है, जिसमें किसी गुण या विशेषता पर अन्य विशेषताओं या उस समग्र वस्तुसे पृथक् विचार किया जाता है।

(घ) «सिद्धान्त[२३]» प्रत्ययोंके बीचके सम्बन्ध होते हैं, जो साधारणतः वाक्यों या गणितके समीकरणोंके रूप में अभिव्यक्त किये जाते हैं।

३. «समस्या को सुलझाने» का व्यवहार नवीन या कठिन परिस्थितियोंमें हुआ करता है, जिनमें बहुत सादृश्यमूलक परिस्थितियोंमें अर्जित पिछले अनुभवसे प्रसूत प्रत्ययों और सिद्धान्तोंका उपयोग करनेकी अभ्यस्त विधियोंसे कोई सुलझाव नहीं प्राप्त किया जा सकता।

(क) कुछ समस्याओंमें ऐसी चीजें होती हैं, जो «स्पष्ट विचारके मार्गमें रुकावटें डालती हैं। «ऐसा तब होता है, जब परिस्थितिमें अपर्याप्त सामग्रियां,[२४] अप्रासंगिक सामग्रियां[२५] या परस्पर विरुद्ध सामग्रियां[२६] होती हैं।

(ख) «पथ-प्रदर्शक विचार[२७]» इस बातका निश्चय करते हैं कि समस्या के सुलझावके लिए किस तरहके प्रयत्न किये जायेंगे। यदि किसी पथ-प्रदर्शक विचारसे उत्पन्न होनेवाले सभी प्रयत्न निष्फल सिद्ध होते हैं तो बुद्धिमानी इसी में है कि किसी अन्य पथ-प्रदर्शक विचारकी खोज की जाय।

(ग) «परिकल्पना[२८]» एक आविष्कृत सिद्धान्त होती है, जो एक प्रश्नके रूपमें किसी समस्यात्मक परिस्थितिमें उपयुक्त होती है। उससे अनुमित तर्कसम्मत निष्कर्षों को स्पष्ट करके, उसका प्रयोग करके और यह निरीक्षण करके कि पूर्वानुमानित परिणाम प्राप्त हुए हैं या नहीं, उसकी परीक्षा की जाती है।

(घ) «सेने[२९]» की अवधि उस मध्यान्तर कालको कहते हैं, जिसमें सुझावके लिए किये गये प्रारम्भिक प्रयत्नों

[१] dreams and daydreams [२] ideas [३] images [४] sequence [५] continuity [६] motives [७] desires [८] purposive thinking [९] concepts [१०] ideational activity [११] symbols [१२] language symboles [१३] communication [१४] motor expression [१५] diagrams [१६] maps [१७] musical scores [१८] concept [१९] items [२०] generalization [२१] differentiation [२२] abstraction [२३] principles [२४] data [२५] irrelevant data [२६] inconsistent data [२७] guiding ideas [२८] hypothesis [२९] incubation

के विफल हो जाने पर समस्या पर विचार करना स्थगित रखा जाता है।

(ङ) बुद्धिमत्तापूर्ण विचार[1] कुछ-कुछ 'भूल—और—प्रयास' के व्यवहारके समान होता है, किन्तु यह उससे इस रूपमें भिन्न होता है कि यह गत्यात्मक[2] होनेके बजाय चिन्तनात्मक[3] होता है, और यह समस्या को सुलझाने का योजनाबद्ध प्रयास होता है।

४. «तार्किक विचार[4]» «तर्क[5]» की उचित प्रक्रिया के द्वारा सामग्रियों[6] से शुद्ध निष्कर्षकी ओर बढ़ता है।

(क) तर्क बहुधा «हेतु-पद[7]»के इस्तेमाल पर निर्भर करता है और वह उसी हालत में शुद्ध हो सकता है, जब हेतु-पद द्व्यर्थक[8] न हो और वह एक ही तरीक़ेसे उद्देश्य[9] तथा विधेय[10] से सम्बन्धित हो।

(ख) «न्यायशास्त्र[11]» शुद्ध तर्कके लिए नियमोंका एक तंत्र है।

(ग) «न्याय-वाक्य[12]» तर्ककी प्रक्रिया का एक विधिवत् कथन[13] होता है, जिसमें दो स्पष्ट «आधार-वाक्य[14]» और एक «निष्कर्ष[15]» सम्मिलित होता है।

(घ) यदि कोई निष्कर्ष आधार-वाक्यों से अनुमित होता है तो वह «तर्कसम्मत» होता है; जब तक आधार-वाक्य सत्य नहीं होते, तब तक निष्कर्ष तथ्यतः «सच्चा» हो ही, यह आवश्यक नहीं।

(ङ) किसी न्याय-वाक्य[12] का «शाब्दिक रूप[16]» शुद्ध तर्क की सम्भावना को कम कर देता है। कई आदमियों को शब्दोंकी अपेक्षा प्रतीकोंके साथ तर्कसंगत व्यवहार करनेमें अधिक कठिनाई होती है। शाब्दिक अभिव्यक्ति द्वारा जो तर्क उलझा दिया जाता है, उसे चित्रों[17] से स्पष्ट किया जा सकता है।

(च) मानवीय प्रतिक्रियाओंको समझनेके लिए «सम्भावनाओंके आधार पर तर्क[18]» करनेकी साधारणतः आवश्यकता होती है। सम्भावनाओंका परिमाणात्मक रूप स्पष्ट करके और उस बानगीके, जिस पर कोई कथन आधारित होता है, आकार और उसकी प्रतिनिध्यात्मकता[19] पर सावधानीसे ध्यान देकर ऐसे तर्क[5] को अधिक सही बनाया जा सकता है।

[1] rational thinking [2] motor [3] ideational [4] logical thinking [5] reasoning [6] data
[7] middle term [8] ambiguous [9] subject [10] predicate [11] logic [12] syllogism [13] formal statement
[14] premises [15] conclusion [16] verbal form [17] diagrams [18] reasoning from probabilities
[19] representativeness

परिशिष्ट ख

ग्रन्थ-सूची

१
मनोविज्ञान का उद्देश्य और रीति

1 Cattell, J McK 'The conception and method of psychology' *Pop Sci Mon*, 1904, 46, 176–86

2 Crafts, L W, Schneirla T C, Robinson E E, Gilbert, R M *Recent experiments in psychology* N Y, McGraw Hill 1938

3 Davis, A M, Dollard J *Children of bondage* Washington, American Youth Commission, 1940

4 Garrett H E *Great experiments in psychology* N Y, Appleton Century, 1941

5 Haldane, J S, Priestley, J G *Respiration* 2nd ed New Haven, Yale University Press, 1935

6 Hulin, W S *A short history of psychology* N Y, Holt, 1934

7 Keller, F S, *The definition of psychology* N Y, Appleton Century, 1937

8 McFarland, R A 'Psychophysical studies of high altitude in the Andes' *J comp Psychol*, 1937, 23 191—225

9 Munn, N L *Psychological development* Boston, Houghton Mifflin, 1938

10 Pratt, C C *The logic of modern psychology* N Y, Macmillan 1939

11 'War work of psychologists' See many reports in *Psychol Bull*, 1945, and in *Amer Psychologist*, 1946, 1947

२
योग्यता की व्यक्तिगत भिन्नताएं

1 Abel, T M, Kinder E F *The subnormal adolescent girl* N Y, Columbia University Press, 1942

2 Anastasi, A *Differential psychology* N Y Macmillan 1937

3 Binet, A, Simon, T 'Sur la necessite d etablir un diagnostic scientifique des etats inferieurs de l intelligence' *Anneepsychol* 1905, II, 163—90, *The development of intelligence in children* Baltimore, Williams & Wilkins, 1916

4 Bingham, W V 'Inequalities in adult capacity—from military data' *Science* 1946, 104, 147—52

5 Freeman, F N Flory, C D 'Growth in intellectual ability as measured by repeated tests' *Soc Res Child Develpm Monogr* 1937, 2 No 9

6 Garrett, H E *Statistics in psychology and education* 3rd ed N Y, Longmans, Green, 1947

7 Goodenough, F L *Measurement of intelligence by drawings* Yonkers, World Book Co, 1926

8 Greene, E B *Measurements of human behavior* N Y, Odyssey Press 1941

9 Guilford, J P *Fundamental statistics in psychology and education* N Y, McGraw Hill, 1942

10 Hollingworth, L S *Children above 180 IQ Stanford Binet* Yonkers, World Book Co, 1942

11 Lindquist, E F *A first course in statistics* Rev ed Boston Houghton Mifflin 1942

12 Selz, O 'Versuche zur Hebung des Intelligenzniveaus' Z *Psychol*, 1935, 134, 236 301

13 Smith, G M *A simplified guide to statistics* N Y Rinehart 1946

14 Terman L M, and others *Genetic studies of genius* Stanford University Press 5 vols 1925 1930

15. Terman, L. M , Merrill, M. A. *Measuring intelligence.* Boston, Houghton Mifflin 1937.
16. Thorndike, E. L., and others. *Adult learning.* N. Y., Macmillan, 1927.
17. Thurstone, L. L. *Primary mental abilities.* University of Chicago Press, 1938. (Supplement.)
18. Trodgold, A. F. *Mental deficiency.* 6th ed. Baltimore. Wood, 1937.
19. Wechsler, D. *The measurement of adult intelligence.* 3rd ed. Baltimore, Williams & Wilkins, 1944.
20. Yerkes, R. M. *Psychological examining in the United States Army.* Washington National Academy of Sciences, Memoirs, Vol 15, 1921.

३

योग्यताओं का अनुबन्ध

1. Bingham, W. V. *Aptitudes and aptitude testing.* N. Y., Harper, 1937.
2. Brown, W., Stephenson, W. 'A test of the theory of two factors.' *Brit. J. Psychol.*, 1933, 23, 353-70.
3. Crawford, A. B., Burnham, P. S. *Forecasting college achievement; a survey of aptitude tests for higher education.* New Haven, Yale University Press, 1946.
4. Garrett, H. E. *Statistics in psychology and education.* 3rd ed. N. Y., Longmans, Green, 1947.
5. Garrett, H. E. 'A developmental theory of intelligence.' *Amer. Psychologist*, 1946, *I*, 372-8.
6. Guilford, J. P. *Psychometric methods.*, N. Y., McGraw-Hill, 1936.
7. Lindquist, E. F. *A first course in statistics.* Rev. ed. Boston, Houghton Mifflin, 1942.
8. McCullough, C. M., Strang R. M., Traxler, A. E. *Problems in the improvement of reading.* N. Y., McGraw-Hill, 1946.
9. Schiller, B. 'Verbal. numerical and spatial abilities of young children.' *Arch. Psychol.*, 1934, No. 161.
10. Shartle, C. L. *Occupational information, its development and application.* N. Y., Prentice-Hall, 1946.
11. Smith, G. M. *A simplified guide to statistics.* N. Y., Rinehart, 1946.
12. Sommerville, R. C. 'Physical, motor and sensory traits.' *Arch, Psychol.*, 1924, No. 75.
13. Spearman, C. E. *The abilities of man.* N. Y., Macmillan, 1927.
14. Staff. 'Psychological activities in the training command, Army Air Forces.' *Psychol. Bull.*, 1945, 42, 37-54.
15. Staff. 'Research program on psychomotor tests in the Army Air Forces.' *Psychol. Bull.*, 1944, 41, 307-21.
16. Super, D. E. *The dynamics of vocational adjustment.* N. Y., Harper, 1942.
17. Thomson, G. H. *The factorial analysis of human ability.* London University Press, 1939.
18. Thorndike, E. L. and others. *The measurement of intelligence.* N. Y., Teachers' College, Columbia University, 1926.
19. Thurstone, L. L. *Primary mental abilities.* University of Chicago Press, 1938.
20. Tiffin, J. *Industrial psychology.* N Y., Prentice-Hall, 1942.
21. Traxler, A. E. *Techniques of guidance.* N. Y., Harper, 1945.
22. Tredgold, A. F. *Mental deficiency.* 6th ed. Baltimore, Wood 1937.

४

व्यक्तित्व

1. Allport, G W. *Personality.* N. Y., Holt, 1937.
2. Anon. 'A good man is hard to find ' *Fortune*, 1946, 33, 92-5, 217-23.
3. Asch, S. E. 'Forming impressions of personality.' *J. abnorm. soc. Psychol.*, 1946, 41, 258-90.
4. Beck, S. J. *Rorschach's test:* Vol. I, *Basic processes;* Vol. II, *A variety of personality pictures.* N. Y., Grune & Stratton, 1944, 1945.
5. Bingham, W. V., Moore, B. V. *How to interview.* Rev. ed. N. Y., Harper, 1934.

6. Cattel, R. B. *Description and measurement of personality.* Yonkers, World Book Co., 1946.

7. Cantril, H., Allport, G. W. *The psychology of radio.* N. Y., Harper, 1935.

8. Dashiell, J. F. 'Experimental studies of the influence of social situations on the behavior of individual human adults.' *Handbk. Soc. Psychol.*, edited by C. Murchison. 1935, 1097-1158.

9. Estes, S. G. 'Judging personality from expressive behavior.' *J. Abnorm Soc. Psychol.*, 1938, 33, 217-36.

10. Franz, S. I. *Persons one and three.* N. Y., McGraw-Hill, 1933.

11. Guilford, J. P. *Fundamental statistics in psychology and education.* N. Y., McGraw-Hill, 1942. (Esp. pp. 118-22).

12. Guilford, J. P., Guilford, R. S. 'Personality factors *S, E,* and *M* and their measurement.' *J. Psychol.*, 1936; 2, 109-27; Guilford, J. P., Martin, H. 'Age differences and sex differences in some introvertive and emotional traits.' *J. gen Psychol.*, 1944, 31, 2 19-21.

13. Harriman, P. L. 'A follow-up study of the Woodworth-House mental hygiene inventory.' *Amer. J. Orthopsychiat.*, 1938, 8, 255-9.

14. Hartshorne, H., May, M. A *Studies in deceit*, 1928; *Studies in service and self-control*, 1929; *Studies in the organisation of character*, 1930. N. Y., Macmillan.

15. Heidbreder, E. 'Measuring introversion and extroversion.' *J. abnorm. soc. Psychol*, 1926, 21, 120-34.

16. Hollingworth, H. L. *Vocational Psychology and character analysis.* N. Y., Appleton, 1929.

17. Jung, C. G. *Psychological types.* N. Y., Harcourt Brace, 1923.

18. Klopfer, B, Kelly, McG. *The Rorschach technique.* Yonkers, World Book Co., 1946 Supplement.

19. Kuder, G. F. *Manual for the Kuder Preference Record.* Chicago, Science Research Associates, 1946.

20. Landis, C., Katz, S. E. 'The validity of certain questions which purport to measure neurotic tendencies.' *J. appl. Psychol.*, 1934, 18, 343-56.

21. Lecky, P. *Self-consistency, a theory of personality*, N. Y., Island Press, 1945.

22. McDougall, W. *Outlines of abnormal psychology*, N. Y., Scribners, 1926. (Esp.pp. 482-506.)

23. Murphy, G., Murphy, L. B., Newcomb, T. M. *Experimental social psychology.* N. Y., Harper, 1937. (Esp. pp. 769-888.)

24. Murray, H. A., and others. *Explorations in personality.* N.Y., Oxford University Press, 1938.

25. Newcomb, T. M. *The consistency of certain extrovert-introvert behavior patterns in 51 problem boys.* N. Y., Teachers' College, Columbia University, 1929.

26. Paterson, D G. *Physique and intellect.* N. Y., Century, 1930.

27. Preston, M. G., 'Note on the reliability and the validity of the group judgment.' *J. exp. Psychol.*, 1938, 22, 462-71.

28. Prince, M. *Clinical and experimental studies in personality.* Cambridge, Mass., Sci-Art, 1929.

29. Prince, W. F. *The Doris case of multiple personality.* York, Pa., York Printing Co., 3 Vols., 1915-17.

30. Ryans, D. G. 'An experimental attempt to analyze persistent behavior.' *J. gen. Psychol.*, 1938. 19, 333-71.

31. Schmidt. H. O. 'Test profiles as a diagnostic aid : the Minnesota Multiphasic Inventory.' *J. appl. Psychol.*' 1945, 29, 115-31.

32. Sears, R. R. 'Experimental studies of projection. 1. Attribution of traits.' *J. soc. Psychol.*, 1936, 7, 151-63.

33. Stagner, R. *Psychology af personality.* N. Y., McGraw-Hill, 1937.

34. Strong, E. K. *Vacational interests of men and women.* Stanford University Press, 1943.

35. Terman, L. M., and others. *Psychological factors in marital happiness.* N. Y., McGraw-Hill, 1938.

36. Thorndike, R. L. 'The effect of discussion upon the correctness of group decisions, when the factor of majority influence is allowed for.' *J. soc. Psychol.* 1938, 9, 343-62.

37. Thurstone, L.L., Thurstone, T.G. 'A neurotic inventory.' *J. soc. Psychol.*, 1930, 1, 3-30.

५

व्यक्तित्व के निर्माण में शारीरिक और सामाजिक तत्त्व

1. Adler, A. *Problems of neurosis.* N. Y., Cosmopolitan Book Corp., 1930. (Esp. pp. 151-78.)

2. Beach, F. S. 'Effects of cortical lesions upon the maternal behavior pattern in the rat.' *J. comp. Psychol*, 1937, 24, 393-440.

3. Bender, L. 'The Goodenough test (drawing a man) in chronic encephalitis in children.' *J. nerv. ment. Dis.*, 1940, 91, 277-86.

4. Brown, A. W., Jenkins, R. L., Cisler, L. E. 'Influence of lethargic encephalitis on intelligence of children.' *Amer. J. Dis. Child.*, 1938, 55, 304-21.

5. Burt, C. L. *The young delinquent.* 4th ed. London University Press, 1945.

6. Cannon W. B. *Bodily changes in pain, hunger, fear and rage*, 2nd ed. N. Y., Appleton, 1929.

7. Carpenter, J., Eisenberg, P. 'Some relations between family background and personality.' *J. Psychol.*, 1938, 6 115-36.

8. Emerson, H., editor. *Alcohol and man: the effects of alcohol on man in health and disease.* N. Y., Macmillan, 1932.

9. Freud, S. *A general introductian to psycho-analysis.* N. Y., Liveright, 1935.

10. Furfey, P H. 'Pubescence and play behavior.' *Amer. J. Psychol*, 1929, 41, 109-11.

11. Guetzkow, H. S., Bowman, P. H. *Men and hunger.* Elgin, Ill., Brethren Publishing House, 1946.

12. Healy, W., and others. *Reconstructing behaviour in youth* N. Y., Knopf, 1929.

13. Horney, K. *New ways in psycho-analysis.* N. Y., Norton, 1939, (Esp. pp. 88-100.)

14. Hoskins, R. G. *Endocrinology.* N. Y., Norton 1941.

15. Ingle, D. J. 'Endocrine function and personality.' *Psychol Rev.* 1935, 42, 466-79.

16. Jack, L. M. 'An experimental study of ascendant behavior in pre-school children.' *Univ. Iowa Stud Child Welfare*, 1934, 9, No 3, Pt. 1, 1-65.

17. Jones, H. E. 'Order of birth.' *Handbk. Child Psychol.*, edited by C. Murchison. 2nd ed., 1933, 551-89.

18. Keister, M. E. 'The behavior of young children in failure.' *Univ. Iowa Stud. Child Welfare*, 1938, 14, 29-82.

19. Lashley, K. S. 'Experimental analysis of instinctive behavior.' *Psychol Rev.*, 1938, 45, 445-71.

20. Leacock, S. B '*Mark Twain.* N. Y, Appleton, 1933.

21. Lehman, H. C., Witty, P. A. 'A study of vocational attitudes in relation to pubescence.' *Amer. J Psychol.*, 1931, 43, 93-101.

22. Levy. D. M. *Maternal overprotection.* N. Y., Calumbia University Press, 1943.

23. Lurie, L. A. 'Endocrinology and the understanding and treatment of the exceptional child.' *J. Amer. Med. Ass.*, 1938, 110, 1531-6.

24. Mead, M. *Coming of age in Samoa*, N. Y., Morrow, 1928.

25. Moore, J. E. 'A comparative study of the intelligence of delinquent and dependent boys.' *J. educ. Psychol.*, 1937, 28, 355-66.

26. Page, M L. 'The modification of ascendant behavior in pre-school children.' *Univ. Iowa Stud. Child Welfare*, 1936, 12, No. 3, 169.

27. Paine, A. B. *A short life of Mark Twain.* Abridged ed. N. Y., Doubleday, Doran, 1928.

28. Piaget. J. *The moral judgment of the child.* London K. Paul, 1932.

29. Regensburg, J. 'Studies of educational success and failure in supernormal children.' *Arch. Psychol.*, 1931, No. 129.

30. Shaw, C. R. *Delinquency areas.* University of Chicago Press, 1929.

31. Sherman, M., Henry, T. R. *Hollow folk.* N. Y., Crowell, 1933.

32. Shock, N. W. 'Some psychophysiological relations.' *Psychol Bull.*, 1939, 36, 447-76.

33. Slawson, J. *The delinquent boy.* Boston, Badger, 1926.

34. Thrasher, F. M. *The gang.* 2nd ed University of Chicago Press, 1936. (Esp pp. 328-63.)

35. Tryon C. M. 'Evaluations of adolescent personality by adolescents.' *Soc. Res. Child Developm. Monogr*, 1939, 4, No. 23.

36. Willson, G. M. 'A case of post-encephalitic conduct disorder.' *Training Sch. Bull.*, 1925, 22, 25-7.

37. Witty, P.A., Schachter, H.S. 'Hypothyroidism as a factor in maladjustment.' *J. Psychol.*, 1936, 2, 377-92.

६

व्यक्तित्व अन्तर के कारण : वंशानुक्रम और परिवेश

1. Bennett, G. K., Cruikshank, R. M. 'Sex differences in the understanding of mechanical problems.' *J. appl. Psychol*, 1942, 26, 121-7

2. Bingham, W. V. 'Inequalities in adult capacity—from military data.' *Science*, 1946, 104, 147-52.

3. Burgess, E. W., Wallin, P. 'Homogamy in personality characteristics.' *J. abnorm. soc. Psychol.*, 1944, 39, 475-81.

4. Burks, B. S. 'The relative influence of nature and nurture upon mental development.' *27th Yearb. Nat, Soc. Stud. Educ.* 1928, Pt. I, 219-316.

5. Burks, B. S. 'On the relative contributions of nature and nurture to average group differences in intelligence.' *Proc. Nat. Acad. Sci.* 1938, 24, 276-82.

6 Burks, B. S. 'A study of identical twins reared apart under differing types of family relationships.' *Studies in personality contributed in honour of Lewis M. Terman.* N. Y., McGraw-Hill, 1942, pp. 35-69.

7. Byrnes, R., Henmon, V.A.C. 'Parental occupation and mental ability.' *J. educ. Psychol.*, 1936, 27, 284-91.

8. Chein. I. 'The problems of heredity and environment.' *J Psychol.*, 1936, 2, 229-44.

9. Cook, R., Burks, B. S. *How heredity builds our lives.* Washington, American Genetic Association, 1946.

10. Dennis, W. 'The performance of Hopi children on the Goodenough draw-a-man test.' *J. comb. Psychol.*, 1942, 34, 341-8.

11. Evans, H. M., Swezy, O. *The chromosomes in man, sex and somatic.* University of California Press, 1929.

12. Freeman, F. N., Holzinger, K. J., and others. 'The influence of environment on the intelligence, school schievement, and conduct of foster children.' *27th Yearb. Nat. Soc. Stud. Educ.*, 1928, Pt. I, 103-217.

13. Glass, B. *Genes and the man.* N. Y., Teachers' College, Columbia University. 1943.

14. Harrell, T. W., Harrell, M S. 'Army general classification test scores for civilian occupations.' *Educ. psychol. Meas.*, 1945, 5, 229-39

15. Havighurst, R. J., Hilkevitch, R R. The intelligence of Indian children as measured by a performance scale.' *J, abnorm. soc. Psychol.*, 1944, 39, 419-33.

16. Jones, H. E., Conrad, H. S., Blanchard M. B. 'Environmental handicap in mental test performance.' *Univ. Calif. Publ. Psychol.*, 1932, 5, 63-99.

17. Klineberg, O., editor. *Characteristics of the American Negro.* N. Y., Harper, 1944. (Esp. pp. 23-138.)

18. Leahy, A. M. 'Nature-nurture and intelligence.' *Genet. Psychol. Monogr.*, 1935, 17, 234-308.

19. Macmeeken, A. M. *The intelligence of a representative group of Scottish children.* London University Press, 1939.

20. McNemar, Q. *The revision of the Stanford-Binet scale.* Boston, Houghton Mifflin, 1942. (Esp. pp 42-54.)

21. Newman, H. H. *Multiple human births.* N. Y., Doubleday. Doran, 1940.

22. Newman, H. H., Freeman, F. N., Holzinger, K. J. *Twins: a study of heredity and environment.* University of Chicago Press, 1937.

23. Outhit, M. C. 'A study of the resemblance of parents and children in general intelligence.' *Arch Psychol.*, 1933 No. 149.

24. Roe, A., Burks, B. S, Mittelmann, B. 'Adult adjustment of foster children of alcoholic and psychotic parentage.' *Men. Alcohol Stud Yale Univ.*, 1945, No. 3.

25. Rohrer, J. H. 'The test intelligence of Osage Indians.' *J. soc. Psychol.*, 1942, 16, 99-105.

26. Scheinfeld, A. *You and heredity.* N. Y., Stokes, 1939.

27. Schneidler, G. G., Paterson, D. G. 'Sex differences in clerical aptitude.' *J. educ. Psychol.* 1942, 33, 303-9.

28. Shaw, C. R., and others. *Delinquency areas.* University of Chicago Press, 1929.
29. Skodak, M. 'Children in foster homes.' *Univ. Iowa Stud. Child Welfare*, 1939, 16, No. I.
30. Skodak, M., Skeels, H. M. 'A follow-up study of children in adoptive homes.' *J. gen. Psychol.*, 1945, 66, 21-58.
31. Smith, S. 'Language and non-verbal test performance of rocial groups in Honolulu before and after a fourteen-year interval.' *J. gen Psychol.*, 1942, 26, 51-93.
32. Stockard, C. R. '*The physical basis of personality.* N. Y, Norton, 1931.
33. Sturtevant, H., Beadle, G. W. *An introduction to genetics.* Philadelphia, Saunders, 1939.
34. Terman, L. M., and others. *Genetic studies of genius.* 3 vols. Stanford University Press, 1925-30.
35. Terman, L. M., Merrill M. A. '*Measuring intelligence.* Boston, Houghton Mifflin 1937.
36. Visher, S. S. 'Where our notables come from.' *Scient. Mon.*, 1937, 45, 172-7.
37. Wheeler, L. R. 'A comparative study of the intelligence of East Tennessee mountain children.' *J. educ. Psychol*, 1942, 33, 321-34.
38. Wilson, P. T. 'A study of twins with special reference to heredity as a factor in determining differences in environment.' *Hum. Biol.*, 1934, 6, 324-54.
39. Wingfield, A. H. '*Twins and orphans.* London Dent, 1928.
40. Witty, P. A., Jenkins, M. D. 'The educational achievement of a group of gifted Negro children.' *J. educ. Psychol.*, 1934, 25, 585-97.
41. Witty, P A., Theman, V. 'A follow-up study of educational attainment of gifted Negroes.' *J. educ Psychol.*, 1943, 34, 35-47.
42. Woodworth, R. S. *Heredity and environment.* N. Y., Social Science Research Council, 1941.
43. Yerkes, R. M. *Psychological examining in the United States Army.* Washington, National Academy of Sciences, Memoirs, Vol. 15, 1921.

७

व्यक्ति और परिवेश के मध्य परस्पर क्रिया

1. Baker, K. H. 'Pre-experimental set in distraction experiments.' *J. gen. Psychol.*, 1937, 16, 471-88.
2. Buswell, G. T. 'Remedial reading.' *Suppl. educ. Monogr.*, 1939, No. 50.
3. Gates, A. I. *The improvement of reading.* N. Y., Macmillan, 1935.
4. Hovey, H. B. 'Effects of general distraction on the higher thought processes.' *Amer. J. Psychol.*, 1928, 40, 585-91.
5. Luchins, A. S. 'Mechanization in problem solving, the effect of *Einstellung.*' *Psychol. Monogr.*, 1942, No. 248.
6. Mowrer, O. H. 'Preparatory set (expectancy)—some methods of measurement.' *Psychol. Monogr.*, 1940, No. 233.
7. Poffenberger, A. T. *Principles of applied psychology.* N. Y., Appleton-Century, 1942 (Esp. pp. 141-3.)
8. Rees, H. J., Israel, H E. 'An investigation of the establishment and operation of mental sets.' *Psychol Monogr*, 1935, No. 210, 1-26.
9. Triggs, F. O. *Remedial reading: the diagnosis and correction of reading difficulties at the college level.* University of Minnesota Press, 1943.
10. Woodworth, R. S. *Experimental psychology.* N. Y., Holt., 1938.

८

स्नायु-संस्थान (नाड़ी मंडल)

1. Adrian, E. D. *The basis of sensation.* London, Christophers, 1928.
2. Brickner, R. M. *The intellectual functions of the frontal lobes.* N. Y., Macmillan, 1936.
3. Förster, O. 'Beiträge zur Pathophysiologie der Sehbahn und der Sehsphäre.' *J. Psychol. Neurol.*, 1929, 39, 463-85.
4. Franz, S. I. 'On the functions of the cerebrum: the frontal lobes.' *Arch. Psychol.*, 1907 No. 2.
5. Freeman, W., Watts, J. W. *Psychosurgery.* Springfield, Ill, Thomas, 1942.

6. Fulton, J.F. *Physiology of the nervous system*. 2nd ed.N.Y., Oxford University Press, 1943.
7. Lashley. K. S. 'Studies of cerebral function in learning.' *Comp. Psychol. Monogr.*, 1935, II, No. 52.
8. Lashley, K. S., Wiley, L. E. 'Mass action in relation to the number of elements in the problem to be learned.' *J. Comb. Neur.* 1933, 57, 1-55.
9. Martin, H. N. *The human body*. Revised by E. G. Martin. N. Y., Holt, 1934.
10. Morgan, C. T. *Physiological Psychology*. N. Y., McGraw-Hill, 1943.
11. Piéron, H. *Thought and the brain*. Trans. by C. K. Ogden. N Y., Harcourt, Brace, 1927.
12. Poljak, S. 'A contribution to the Cerebral representation of the retina.' *J. comp. Neur.*, 1933, 57, 541-617.
13. Weisenburg, T. H. 'McBride, K. E. *Aphasia*. N. Y., Commonwealth Fund, 1935.

६

व्यक्ति का विकास कैसे होता है

1. Abernethy, E. M. 'Relationships between mental and physical growth.' *Soc. Res. Child Develpm Monogr.*, 1936, 1, No. 7.
2. Ames, L B 'The sequential patterning of prone progression in the human infant.' *Genet. Psychol. Monogr.*, 1937, 19, 409-60.
3. Bayley, N. 'The development of motor abilities during the first three years.' *Soc. Res. Child Develpm. Monogr.*, 1935, I, No. 1.
4. Bird, C. 'Maturation and practice: their effects upon the feeding reactions of chicks.' *J. comp., Psychol.*, 1933, 16, 343-66.
5. Carmichael, L. 'The onset and early development of behavior.' Pp. 43-166 of the following.
6. Carmichael, L., editor. *Manual of child psychology*. N. Y., Wiley, 1946.
7. Dennis, W. 'On the possibility of advancing and retarding the motor development of infants.' *Psychol. Rev.*, 1943, 50, 203-18.
8. Donaldson, H. H. 'Anatomical observations on the brain and several sense-organs of the blind deaf-mute, Laura Dewey Bridgman.' *Amer. J Psychol.*, 1890, 3, 293-342; 1891, 4, 248-94.
9. Filimonoff, I. N. 'Zur embryonalen und postembryonalen Entwicklung der Grosshirnrinde des Menschen.' *J. Psychol. Neurol.*, 1929, 39, 323-89.
10. Gesell, A., Thompson, H. *The Psychology of early growth*. N. Y., Macmillan, 1938.
11. Halverson, H. M. 'The development of prehension in infants'. In *Child development and behavior*. Edited by Barker and others. N. Y., McGraw-Hill, 1943, 49-65.
12. Hartson, L D. 'Does college training influence test intelligence?' *J. Educ. Psychol.*, 1936, 27, 481-91.
13. Jones, H. E., Conrad, H. S. 'The growth and decline of intelligence.' *Genet. Psychol. Monogr.*, 1933, 13, 223-98; 'Mental development in adolescence.' *43rd Yearb. Nat. Soc. Stud. Educ.* 1944, I, 146-63.
14. Kappers, C. U. A. *The evolution of the nervous system in vertebrates*. Haarlem, Bohn, 1929. (Esp. p 144).
15. Lehman, H. C. 'The creative years.' *Sci. Mon.*, 1937, 45, 65-75; 'The creative years in science and literature.' *Sci. Mon.*, 1936, 43, 151-62; 'The most proficient years at sports and games.' *Res Q. Amer. Ass. Hlth. Phys. Educ.*, 1938, 9, 3-19; 'The creative years: oil paintings, etchings, and architectural works. *Psychol, Rev.*, 1942, 49, 19-42.
16. Lehman, H. C., Ingerham, D. W. 'Man's creative years in music.' *Sci. Mon.*, 1939, 48, 431-443.
17. Maxfield, K. E., Fjeld, H. A. 'The social maturity of the visually handicapped preschool child.' *Child Developm.*, 1942, 13, 1-27.
18. Mc-Graw, M. B. *The neuromuscular maturation of the human infant.*, N. Y. Columbia University Press, 1943.
19. Miles, C. C., Miles, W. R. 'The crrelation of intelligence scores and chronological age from early to late maturity.' *Amer. J. Psychol.*, 1932, 44, 44-78.
20. Miles W. R. 'Age and human society.' *Handbk. soc. psychol.* Edited by C. Murchison, 1935, 596-682.
21. Miles, W. R. 'Psychological aspects of ageing.' *Problems of ageing*. Edited by E. V.

Cowdry. 2nd ed. Baltimore Williams & Wilkins, 1942, 756-84.
22. Morpurgo, B. Über Activitäts-Hypertrophie der will Mür-lichen Muskeln.' *Arch. path. Anat*, 1897-150, 522-54.
23. Munn, N. L. *psychological development, an introduction to genetic psychology*. Boston Houghton Mifflin, 1938.
24. Murphy, L. B. *Social bahavior and child personality*. N. Y., Columbia University Press, 1937.
25. Parten, M. B. 'Social participation among pre-school children.' *J. abnorm. soc. Psychol.*, 1932, 27, 243-69.
26. Scheinfeld, A. *Women and men*. N. Y., Harcourt, Brace, 1944.
27. Shirley, M. M. *The first two years*. 2 vols. University of Minnesota Press, 1931, 1933.
28. Shuttleworth, F. K. 'Sexual maturation and the physical growth of girls, age six to nineteen.' *Soc. Res. Child Develpm.. Monogr.*, 1937, 2, No. 12.
29. Slater, E., and others. 'Types, levels, and irregularities of response to a nursery school situation.' *Soc. Res. Child Develpm. Monogr.*, 1939, 2, No. 21.
30. Thorndike, E. L., *Man and his works*. Cambridge Mass., Harvard University Press, 1943.
31. Thorndike, E. L., and others. *Adult learning*. N. Y., Macmillan, 1927.
32. Wechsler, D. *The measurement of adult intelligence*. 3rd ed. Baltimore, Williams & Wilkins, 1944.

१०

प्रेरक

1. Bavelas, A. See Maier, Ref. 12, p. 265.
2. Boring, E. G. *Psychology for the armed services*. Washington, 'The Infantry Journal', 1945.
3. Cannon, W. B. *The wisdom of the body*. N. Y., Norton, 1939.
4. Crawley, S. L. 'An experimental investigation of recovery from work.' *Arch. Psychol.*, 1926, No. 85.
5. Goodenough, F. L. *Anger in young children*. University of Minnesota Press, 1931.
6. Gottschaldt, K. 'Der Aufbau des kindlichen Handelns'.' *Z. angew. Psychol.*. 1933, Beiheft 68.
7. Hamilton, H. C. 'The effect of incentives on accuracy of discrimination.' *Arch. Psychol.*, 1929, No. 103.
8. Hull, C. L. 'The rat's speed-of-locomotion gradient in the approach to food.'' *J. comp. Psychol.*, 1934, 17, 393-422.
9. Jones, H. E., Jones, M. C. 'A study of fear in young children.' *Childhood, Educ.*, 1928, 5, 136-243.
10. Jones, M. C. 'A laboratory study of fear: the case of Peter.' *Ped Sem.*, 1924, 31, 308-15.
11. Kraut, H. A., Muller, E. A. 'Calorie intake and industrial output.' *Science*, 1946, 104, 495-7.
12. Maier, N. R. F. *Psychology in industry*. Boston, Houghton Mifflin, 1946.
13. Morgan, C. T. *Physiological Psychology*. N. Y , McGraw-Hill, 1943
14. Richter, C. P. 'Animal behavior and internal drives.' *Q. Rev Biol.*, 1927, 2, 307-43.
15. Roethlisberger, F. J. *Management and morale*. Cambridge, Mass, Harvard University Press, 1941.
16. Thorndike, E. L., *Human nature and the social order*. N. Y., Macmillan 1940.
17. Tolman, E. C. *Drives toward war*. N. Y., Appleton-Century, 1942.
18. Troland, L. T. *The fundamentals of human motivation*. N. Y., Van Nostrand, 1928.
19. Viteles, M. S. *Industrial psychology*. N. Y., Norton, 1932.
20. Warden, C. J., and others, *Animal motivation*. N. Y., Columbia University Press, 1931.
21. Watson, G., editor. *Civil an morale*. Boston, Houghton Mifflin, 1942
22. Watson, J. B. Raynor, R. 'Conditioned emotional reactions.' *F. exp. Psychol.*, 1920, 3, 1-14.
23. Young, P. T. 'The experimental analysis of appetite.' *Psychol. Bull.*, 1941, 38, 129-64; 'Studies of food preference, appetite and dietary habit.' *J. comp. Psychol.*, 1946, 39, 139-76.

११

अनुभूति और संवेग

1. Bard, P. 'The neuro-humoral basis of emotional reactions.' *Handb. gen. exp. Psychol,* Edited by C. Murchison, 1934, 264-311.
2. Boring, E. G., editor. *Psychology for the armed forces.* Washington, 'The Infantry Journal', 1945.
3. Cannon, W. B. *Bodily changes in pain, hunger, fear and rage.* 2nd ed. N. Y., Appleton, 1929.
4. Cannon, W. B. 'The James-Lange theory of emotions., *Amer J. Psychol.,* 1927, 39, 106-24.
5. Cantril, H. 'The roles of the situation and adrenalin in the induction of emotion.' *Amer, J. Psychol.,* 1934, 46, 568-79.
6. Cantril, H., Hunt, W. A. 'Emotional effects produced by the injection of adrenalin.' *Amer J. Psychol.,* 1932, 44, 300-7.
7. Carmichael, L., and others. 'A study of the judgment of manual expression as presented in still and motion pictures.' *J. Soc. Psychol.,* 1937, 8, 115-42.
8. Cason. H. 'Common annoyances.' *Psychol Monogr.,* 1930, 40, No. 182.
9. Dana, C. L. 'The anatomic seat of the emotions : a discussion of the James-Langes theory.' *Arch. Neurol. Psychiat.,* 1921, 6, 634-9.
10. Darwin, C. *The expression of the emotions in man and animals.* London, John Murray, 1872.
11. Dollard, J. *Fear in battle.* New Haven, Yale University Institute of Human Relations, 1943.
12. Eastman, M. *Enjoyment of laughter.* N. Y., Simon and Schuster, 1936.
13. Fairbanks, G., Pronovost, W. 'Vocal pitch during simulated emotion.' *Science,* 1938, 88, 382-3.
14. Feleky, A. *Feelings and emotions.* N. Y., Pioneer Publishing Co., 1924.
15. Hebb, D. O. 'On the nature of fear.' *Psychol Rev.,* 1946, 53, 259-76.
16. Hulin, W. S., Katz, D. 'The Frois-Wittmann pictures of facial expression.' *J. exp. Psychol.,* 1935, 18, 482-98.
17. Husband, R. W. 'A study of the emotion of excitement.' *J. genet. Psychol.,* 1935, 46, 465-70.
18. Inbau, F. E. *Lie detection and criminal interrogation.* Baltimore, Williams & Wilkins, 1942.
19. James, W. *Principles of psychology.* 2 vols, N. Y., Holt, 1890.
20. Landis, C., Hunt, W. A. *The startle pattern* N. Y., Farrar and Rinehart, 1939.
21. Lashley, K. S. 'The thalamus and emotion.' *Psychol Rev.,* 1938, 45, 42-61.
22. Morgan, C. T. *Physiological psychology.* N. Y., McGraw-Hill, 1943.
23. Schlosberg. H. 'A scale for the judgment of facial expressions.' *J. exp. Psychol.* 1941, 29, 497-510.
24. Sherrington, C. S. *The integrative action of the nervous system.* New Haven, Yale University Press, 1906. (Esp. p. 259).
25. Stratton, G. M. 'Excitement as an undifferentiated emotion.' *Wittenberg Symposium.* Edited by M. L. Reymert, 1928, 215-21.
26. Wolf, S., Wolff, H. G. *Human gastric function, an experimental study of a man and his stomach.* N. Y., Oxford University Press, 1943.
27. Wundt, W. *Grundriss der Psychologie,* 1896. Translated by C. H. Judd. *Outlines of psychology,* Leipzig, Engelmann, 1897.
28. Young, P. T. *Emotion in man and animal.* N. Y., Wiley, 1943.

१२

चुनाव, संघर्ष, विफलता

1. Adler, A. *Problems of neurosis.* N. Y., Cosmopolitan Book Corp., 1930.
1a. Alexander F., French, T. M. *Psychoanalytic therapy.* N. Y., Ronald Press, 1946.
2. Barker, R. G., Dembo, T., Lewin, K. 'Frustration and regression : an experiment with

young children.' *Univ. Iowa. Stud. Child Welfare*, 1941, 18, No. 1.
3. Dollard, J., and others. *Frustration and aggression.* New Haven, Yale University Press, 1939.
4. Freud, S. *A general introduction to psycho-analysis* N. Y. Liveright, 1935.
5. Horney, K. *New ways in psychoanalysis.* N. Y., Norton, 1939.
6. Hovland, C. I., Sears, R. R. 'Experiments on motor conflict.' *J. exp. Psychol.*, 1938, 23, 477-93.
7. Hull, C. L. *Hypnosis and suggestibility.* N. Y., Appleton Century, 1933.
8. Landis, C., Bolles, M. M *Text-book of abnormal psychology.* N. Y. Macmillan, 1946.
9. Lewin, K. *A dynamic theory of personality.* N. Y., McGraw-Hill, 1935.
10. Lewin, K., Dembo, T., and others. 'Level of aspiration', in Hunt, J. McV. *Personality and the behavior disorders.* N. Y. Ronald Press, 1944, I, 333-78.
11. Maier, N. R. F. 'The role of frustration in social movements.' *Psychol. Rev.*, 1942, 49, 586-99. *Psychology in industry.* Boston, Houghton Mifflin, 1946. (Esp. pp. 65-8)
12. McClelland, D C., Apicella, F. S. 'A functional classification of verbal reactions to experimentally induced failure.' *J. abnorm. soc. Psychol.*, 1945, 40, 376-90.
13. Miller, N. E. 'Experimental studies of conflict', in Hunt, J. McV. *Personality and the behavior disorders.* N. Y., Ronald Press, 1944, I, 431-65.
14. Richards, T. W. *Modern clinical psychology.* N. Y., McGraw-Hill, 1946.
15. Rogers, C. R. *Counseling and psychotherapy.* Boston, Houghton Mifflin, 1942; 'Significant aspect of client-centered therapy.' *Amer. Psychologist*, 1946, 1, 415-22.
16. Rogers, C. R., Wallen, J. L. *Counseling with returned servicemen.* N. Y., McGraw-Hill, 1946.
17. Rosenzweig, S. 'An outline of frustration theory', in Hunt, J. McV., *Personality and the behavior disorders.* N. Y., Ronald Press, 1944, I, 379-88.
18. Sears, R. R. 'Experimental analysis of psychoanalytic phenomena', in Hunt, J. McV., *Personality and the behavior disorders.* N. Y., Ronald Press, 1944, 1, 306-32.
19. Shaffer, L. F. *The psychology of human adjustment.* Boston, Houghton Mifflin, 1936.
20. Sherman, M. *Mental conflicts and personality.* N. Y., Longmans, Green, 1938.
21. Symonds, P. *The dynamics of human adjustment.* N. Y., Appleton-Century, 1946.
22. Zander, A. F. 'A study of experimental frustration.' *Psychol. Monogr.*, 1944, No. 256.

१३

निरीक्षण करना

1. Boring, E.G. editor. *Psychology for the armed services.* Washington. 'The Infantry Journal', 1945.
2. Burtt, H. E. *The psychology of advertising.* Boston, Houghton Mifflin, 1938.
3. Friedmann, H. 'The natural-history background of camouflage.' *Smithsonian Institution War Background Studies*, 1942, No. 5.
4. Hanawalt, N. G. 'The effect of practice upon the perception of simple designs masked by more complex designs., *J. exp. Psychol*, 1942, 31, 134-48.
5. Holway, A. H., Pratt, C. C. 'The Weber-ratio for intensitive discrimination.' *Psychol. Rev.*, 1936, 43, 322-40.
6. Köhler, W. *Gestalt psychology.* N. Y, Liveright, 1929.
7. Oberly, H. S. 'The range for visual attention, cognition and apprehension.' *Amer. J. Psychol.*, 1924, 35, 332-52.
8. Rubin, E. *Visuell wahrgenommene Figuren.* København, Gyldendal, 1921.
9. Sanford, E. C. *Experimental psychology.* Boston, Health, 1898.
10. Sisson, E. D. 'Eye-movements and the Schröder stair-figure.' *Amer. J. Psychol.*, 1935, 47, 309-11.
11. Wertheimer, M. 'Untersuchungen zur Lehre von der Gestalt.' *Psychol. Forsch.*, 1923, 4, 301-50.

१४

दृष्टि-ज्ञानेन्द्रिय

1. Burzlaff, W. 'Methodologische Beiträge zum Problem der Farbenkonstanz.' *Z. Psychol.*, 1931, 119, 177-235.

2. Dodge, R. 'Five types of eye movement in the horizontal meridian plane of the field of regard., *Amer. J. Physiol*, 1903, 8, 307-29.
3. Ewert, P. H. 'A study of the effect of inverted retinal stimulation upon spatially co-ordinated behavior., *Genet. Psychol. Monogr.*, 1930, 7. 177-363.
4. Fernberger. S. W. 'New phenomena of apparent visual movement.' *Amer. J. Psychol.*, 1934, 46, 309-14.
5. Gilbert, G. M. 'Dynamic psychophysics and the phi phenomenon.' *Arch. Psychol* 1939, No. 237.
6. Helmholtz, H. L. F. von. *Helmholtz's treatise on physiological optics.* Translated from the 3rd German ed. Edited by J. P. C. Southall. Rochester, N. Y., Optical Soc. Amer., 124-5 3 vols. (Esp. vol. 2, p. 426.)
7. Henneman, R. H. 'A photometric study of the perception of object color.' *Arch. Psychol.*, 1935, No. 179.
8. Johnson, B., Beck, L. F. 'The development of space perception : stereoscopic vision in pre-school children. *J. genet Psychol.*, 1941, 58, 247-54.
9. Katz, D. *The world of colour.* Translated from the German by R.B. MacLeod and C.W. Fox. London, Kegan Paul, 1935.
10. Ladd-Franklin, C. *Colour and colour theories.* N. Y., Harcourt, Brace, 1929.
11. MacLeod, R. B. 'An experimental investigation of brightness constancy.' *Arch. Psychol.*, 1932, No. 135.
12. Sheehan, M. R. 'A study of individual consistency in phenomenal constancy,' *Arch. Psychol.*, 1938, No. 222.
13. Stratton, G M. 'Some preliminary experiments on vision without inversion of the retinal images.' *Psychol. Rev.*, 1896, 3, 611-17.
14 Stratton, G. M 'Vision without inversion of the retinal image.' *Psychol. Rev.*, 1897, 4, 341-60 ; 463-81.
15. Troland, L. T. *Principles of psychophysiology.* Vol. 2. N. Y., Van Nostrand, 1930.
16. Walds G., Steven, D. 'An experiment in human vitamin A deficiency.' *Proc. Nat. Acad. Sci.*, 1939, 25, 344-9.

१५

अन्य ज्ञानेन्द्रियाँ

1. Banister, H. 'Auditory phenomena and their stimulus correlation.' *Handbk. gen. exp. Psychol.* Edited by C. Murchison 1934, 880-923.
2. Crowe, S. J, Guild, S. R., Polvogt, L. M. 'Observations on the pathology of hightone deafness.' *Johns Hopkins Hosp. Bull.*, 1934, 54, 315-79.
3. Culler, E A. 'Thermal discrimination and Weber's law. *Arch. Psychol.*, 1926, No. 81.
4. Fletcher, H., *Speech and hearing.* N. Y., Van Nostrand, 1929.
5. Galambos, R. Cochlear potentials from the bat.' *Science*, 1941, 93, 215.
6. Griffin, D. R. 'Echolocation by blind men, bats and radar.' *Science*, 1944, 100, 589-90.
7. Griffin, D. R., Galambos, R. 'The sensory basis of obstacle avoidance by flying bats,' *J. exp. Zool*, 1941, 86, 481-506.
8. Hartridge, H. 'Theories of hearing.' *Handbk. gen. Psychol.* Edited by C. Murchison, 1934, 924-61.
9. Henning, H. *Der Geruch.* Leipzig, Barth, 1924.
10. Henning, H. 'Psychologische Studien am Geschmackssinn.' *Handbkh. biol. Arbeitsmeth.*, 1927, 6, A, 627-740.
11. Katz, D. *Der Aufbau der Tastwelt.* Leipzig, Barth, 1925.
12. Katz, D. *The vibratory sense and other lectures.* Orono, Maine, University Press, 1930.
13. Mansfeld, F. 'Die Verdunklung und die Blinden.' *Arch. ges. Psychol.*, 1940, 107, 411-36.
14. Mohrmann, K. 'Lautheitskonstanz im Entfernungswechsel.' *Z. Psychol.*, 1939, 145, 145-99.
15. Nafe, J. P., Wagoner, K. S. 'The nature of sensory adaptation'; 'The nature of pressure adaptation.' *J. gen. Psychol.*, 1941, 25, 295-321, 323-51.
16. Potter, R. K. 'Visible Patterns of sound.' *Science*, 1945, 102, 463-70.

17. Stevens, S. S., Davis, H. *Hearing, its psychology and physiology*. N. Y., Wiley, 1938.
18. Supa, M., Cotzin, M., Dallenbach, K. M. "Facial vision" : the perception of obstacles by the blind.' *Amer. J. Psychol*, 1944, 57, 133-83.
19. Walshe, F. M R. 'The anatomy and physiology of cutaneous sensibility : a critical review.' *Brain*, 1942, 65, 48-112.
20. Wever, E. G., Bray, C. W. 'The nature of acoustic response.' *J. exp. Psychol.*, 1930, 13, 373-87.
21. Willey, C. F., Inglis, E, Pearce, C. H. 'Reversal of auditory localization.' *J. exp. Psychol.*, 1937, 20, 114-30.
22. Woodworth, R. S. *Experimental psychology*. N. Y., Holt, 1938. (Esp. pp. 518-34.)
23 Young, P. T. 'Auditory localization with acoustical transposition of the ears.' *J. exp. Psychol.*, 1928, 11, 399-429.

१६

सीखना

1. Adams, D. K. 'Experimental studies of adaptive behavior in cats.' *Comp. Psychol. Monogr.*, 1929, 6, No. 27.
2. Alpert, A. 'The solving of problem-situations by pre-schooll children.' *Teachers' College, Columbia University, Contrib. Educ.*, 1928, No. 323.
3. Birch, H. G. 'The role of motivational factors in insightful problem-solving.' *J. comp. Psychol.*, 1945, 38, 295-317.
4. Book, W. F. *The psychology of skill*. N. Y., Gregg, 1925.
5. Brown, W. 'Spatial integrations in a human maze.' *Univ. Calif. Publ. Psychol.*, 1932, 5, 123-34.
6. Bryan, W. L., Harter N. 'Studies in the physiology and psychology of the telegraphic language.' *Psychol. Rev.*, 1897, 4, 27-53.
7. Davis, R. C. 'Set and muscular tension.' *Indiana Univ. Publ. Science Series*, 1940, No. 10.
8. Guthrie, E. R. *The psychology of learning*. N. Y. Harper, 1935.
9. Guthrie, E. R., Horton, G. P. *Cats in a puzzle box*. N. Y. Rinehart, 1946.
10. Hebb, D. O., Williams, K. 'A method of rating animal intelligence.' *J. gen. Psychol.*, 1946, 34, 59-65.
11. Hilden, A. H. 'An action current study of the conditioned hand withdrawal.' *Psychol. Monogr.*, 1937, 49, No. 217, 173-204.
12. Hilgard., E. R., Marquis, D. G. *Conditioning and learning*. N. Y., Appleton-Century, 1940.
13. Hudgins, C. V. 'Conditioning and the voluntary control of the pupillary light reflex.' *J, gen. Psychol.*, 1933, 8, 3-51.
14. Hull, C. L. *Principles of behavior*. N. Y., Appleton Century, 1943.
15. Kellogg, W. N., Kellogg, L. A. *The ape and the child*. N. Y., McGraw-Hill 1933.
16. Köhler, W. *The mentality of apes*. N Y., Harcourt, Brace, 1925. (Esp p. 132.)
17. Liddell, H. S., James, W. T., Anderson, O. D. 'The comparative physiology of the conditioned motor reflex.' *Comp. Psychol. Monogr.*, 1934, 11, No. 51.
18. Macfarlane, D.A. 'The role of kinesthesis in maze learning.' *Univ. Calif. Publ. Psychol.*, 1930, 4, 277-305.
19. Maier, N. R. F., Schneirla, T. C. *Principle of animal psychology*. N. Y., McGraw-Hill, 1935.
20. Marquis, D. P. 'Can conditioned responses be established in the new-born infant?' *J. gen. Psychol.*, 1931, 39, 479-92.
21. Morgan, C. L. *An introduction to comparative psychology*. London, W. Scott, 1894. (Esp. p. 53.)
22. Mowrer, O. H., Mowrer, W. M. 'Enuresis—a method for its study and treatment.' *Amer. J. Orthopsychiat.*, 1938, 8, 436 59.
23. Pavlov, I. P. *Conditioned reflexes*. N. Y., Oxford University Press, 1927.
24. Razran, G. H. S. 'Attitudinal control of human conditioning.' *J. Psychol.*, 1936, 2, 327-37.
25. Ruger, H. A. 'The psychology of efficiency.' *Arch. Psychol.*, 1910, No. 15.

Verification	सत्यापन	Visual area	दृष्टि-अधिष्ठान
Vestibule	ड्योढ़ी	Volition	संकल्प
Visible	दृश्य	Voluntary	ऐच्छिक
Visual	दार्ष्टिक	Vocal cord	ध्वनि-तन्तु

W

Whole method of learning	कंठस्थीकरणकी समग्र विधि	Will	संकल्प, शक्ति
White blood corpuscles	श्वेताणु	Word-fluency	शब्द-प्रवाह
		Word association	शब्द-साहचर्य

Y

Yielding	विनीत	Yearning	चाह, लालसा

Z

Zoology	जन्तु-विज्ञान

परिशिष्ट घ

अनुक्रमणिका

म

य

र

श

स

26. Schlosberg, H. 'A study of the conditioned patellar reflex.' *J. exp. Psychol*, 1928, 11, 468-94.
27. Skinner, B. F. *The behavior of organisms*. N. Y., Appleton-Century, 1938.
28. Thorndike, E. L. 'Animal intelligence.' *Psychol Monogr*. 1898, 2, No. 8 ; *Animal intelligence*. N. Y., Macmillan, 1911.
29. Tolman, E. C. *Purposive behavior in animals and men*. N. Y., Century, 1932.
30. Tolman, E. C, Honzik, C. H. 'Maze learning in rats': 'Maze performance in rats.' *Univ. Calif Publ. Psychol*, 1930, 4, 241-75.
31. Tolman, E. C, Ritchie, B. F., Kalish, D. 'Studies in spatial learning.' II. 'Place learning versus response learning.' *J.exp. Psychol.*, 1946, 36, 221-9.
32. Warden, C. J 'The relative economy of various modes of attack in the mastery of a stylus maze.' *J exp Psychol*, 1924, 7, 243-75.
33. Warden, C. J, Jenkins, T. N., Warner, L. H. *Comparative psychology*. 3 vols. N. Y., Ronald Press, 1935-40.
34. Wendt. G. R. 'An analytical study of the conditioned knee-jerk.' *Arch. Psychol.*, 1930, No. 123.
35. Zener, K., McCurdy, H. G. 'Analysis of motivational factors in conditioned behavior. *J. Psychol.*, 1939, 8, 321-50.

१७

स्मृति

1. Allport. G. W. 'Eidetic imagery.' *Brit J. Psychol.*, 1924, 15, 99-120.
2. Bartlett, F. C. *Remembering* N. Y, Macmillan, 1932.
3. Boreas, T. 'Experimental studies of memory.' (Greek.) *Praktika Acad. Athènes*, 1930, 5, 382-96.
4. Carmichael, L., Hogan, H. P., Walter, A. A. 'An experimental study of the effect of language on the reproduction of visually perceived forms.' *J. exp. Psychol.*, 1932, 15, 73-86
5. Cox, J. W. 'Some experiments on formal training in the acquisition of skill.' *Brit. J. Psychol.*, 1933, 24, 57-87.
6. Duncan, C. F. 'The effect of electroshock convulsions on the maze habit in the white rat.' *J. exp. Psychol.*, 1945, 35, 267-87.
7. Ebbinghaus, H. *Uber das Gedachtnis*. 1885. Translated by H. A. Ruger and C. E. Bussenius. *Memory*. N. Y., Teachers' College, Columbia University, 1913.
8. Galton, F. *Inquiries into human faculty and its development*. London, Macmillan, 1883.
9. Gates, A. I. 'Recitation as a factor in memorizing.' *Arch. Psychol*, 1917, No. 40.
10. Gibson, J. J. 'The reproduction of visually perceived forms.' *J. exp Psychol.*, 1929, 12, 1-39.
11. Hanawalt, N. G., 'Memory trace for figures in recall and recognition.' *Arch Psychol.*, 1937, No. 216.
12. Hanawalt, N. G. Demarest, I. H. 'The effect of verbal sugestion in the recall period upon the reproduction of visually perceived forms.' *J. exp. Psychol.*, 1939, 25, 159-74.
13. Hovland, C. I. 'Experimental studies in rote-learning theory.' *J. exp. Psychol.*, 1938, 23, 172-90
14. Jaensch, E. R. *Eidetic imagery*. N. Y., Harcourt, Brace, 1930.
15. Keller, F. S., and others. 'Studies in International Morse Code.' *J. appl. Psychol.*, 1944, 28, 254-66; 1946, 30, 265-70.
16. McGeoch, J. A. *The psychology of human learning*. N. Y, Longmans, Green, 1942. (Esp. pp. 453-512.)
17. Meenes, M, Morton, M. A. 'Characteristics of the eidetic phenomenon.' *J. gen. Psychol.*, 1936, 14, 370-91.
18. Melton, A. W., von Lackum, W. J. 'Retroactive and proactive inhibition in retention: evidence for a two-factor theory of retroactive inhibition.' *Amer. J. Psychol.*, 1941, 54, 157-73.
19. Minami, H., Dallenbach, K. M. 'The effect of activity upon learning and retention in the cockroach.' *Amer J. Psychol.*, 1946, 59, 1-58.
20. Murphy, G. *An historical introduction to modern psychology*. N. Y., Harcourt, Brace, 1932. (Esp. supplement by H. Klüver, pp. 437-42.)